नैमिषारण्य (श्री अवध) अन्तर्राष्ट्रीय रामायणोत्सव १९७९ के शुभ अवसर पर प्रकाशित

रामचरितमानस चतुश्शती



सन्त श्यामजी पराशर [illegible].ए.

❋ रामायण का राष्ट्रवादी स्वरूप ❋

(१)

मंगलाचरण

आलोक्य यस्यातिललामलीलां सद्भाग्यभाजौ पितरौ कृतार्थौ ।
तमर्भकं दर्पकदर्पचौरं श्री जानकीजीवनमानतोऽस्मि ॥
रामायणं जनमनोहरमादिकाव्यं ब्रह्मादिभिः सुरवरैरपि संस्तुतं च ।
श्रद्धान्वितः पठति यः श्रणुयात्तु नित्यं विष्णोः प्रयाति सदनं च विशुद्धदेहः ॥

माताओ, बहनो एवं भद्र पुरुषो

प्रभु की प्रभुता का प्रत्यक्ष प्रमाण, जगदीश की ज्योत्सना का शुभ्र जयगान, विभु के वैभव का विमल विकास, परमात्मदेव की प्रतिभा का मंगल प्रकाश, सच्चिदानन्द स्वरूप की सात्विक सम्पदाओं का अक्षय भण्डार, शान्ताकार विश्व-देव की सर्जन कला का मंगलमय मंगलाचार— जहाँ स्वयंभु प्रभु ने सर्व प्रथम वेद का गान गाया, जिसे जगदीश्वर ने सर्व प्रथम अपनी लीलास्थली बनाया, पंजाब और बंगाल जिसके दो हाथ हैं, कटाक्ष और पुष्करराज जिसके नेत्र-युगल हैं, संयुक्त प्रदेश जिसका वक्षःस्थल है, महा कौशल जिसका हृदय है, नासिक जिसकी नाभि है, त्रावणकोर और रामेश्वरम् जिसके दो चरण हैं, विशालकाय वरुण देव जिसका चरण सेवक है, हिमालय जिसका सन्तरी है, कैलाश जिसके सिर का मुकुट मणी है, गंगा और यमुना की मालायें जिसके वक्षःस्थल की शोभा हैं—वह है मेरा देश, मेरा आर्यावर्त, मेरा भारतवर्ष, मेरा हिन्दुस्थान् ।

प्राचीन स्मृतिकारों ने देवाधिदेव महादेव के रूप में जिसका गुण गान गाया । महेश्वर, स्मरहार, त्रिनेत्र, पञ्चानन, वृषभ-वाहन, गिरीश, गौरीश, त्रिपुरारि, कामारि, मृत्युंजय, कैलाशपति, गिरिजापति, चन्द्रशेखर, आशुतोष के विविध नामों से जिसको मस्तक नवाया; स्वर्णमयी वसुधा के सर्वश्रेष्ठ वसु होकर भी जो दिगम्बर भस्मधारी हैं, षट्-ऋतुओं के ऋत्विज– दुग्ध, घृत, आम, अंगूर सरीखे अमृत पदार्थों के जनक होकर भी स्वयं जो गरल पान में ही सन्तोष मान लेते हैं; शक्ति, साहस और सौन्दर्य के आगार होकर भी जो त्याग तपस्या, ब्रह्मचर्य के आकार हैं; विश्व-कल्याण-कारी जो शंकर हैं, देवों के देव जो महादेव हैं, ब्रह्मा जिन का मस्तक है, विष्णु जिनकी नेत्र-ज्योति है, नक्षत्रधारी नीलकाय गगन जिनकी ओढ़नी है, वृषभ जिनका वाहन है, त्रिशूल जिनका अस्त्र है, पार्वती जिनकी सहधर्मचारिणी है, भस्मासुर को वरदान देकर स्वयं आत्म-रक्षार्थ इतस्ततः भागने वाले, अपनों को शाप और बेगानों को वरदान देने वाले भूत-भावन

भूतेश, अशरण-शरण भगवान् भोलानाथ यही तो हैं।

मेरे देश के तीन नाम हैं—हिन्दुस्थान, भारतवर्ष तथा आर्यावर्तः । देश की भावना एक परम पवित्र भावना है। यह पवित्र भावना मानव-शरीर में एक रोमान्च सा उत्पन्न कर देती है। कौनसा ऐसा भारतीय है बंकम बाबू का अमर गीत 'वन्देमातरम्" जिस के हृदय में उथल-पुथल नहीं मचा देता । यदि वास्तव में इस भावना से शून्य कोई व्यक्ति इस भारत-भूतल पर है तो समझ लो उसके शरीर में रुधिर नहीं नमक का तेजाब है; उसके शरीर में अन्तड़ियां नहीं फौलाद की जंजीरें हैं, उसके दिल में दिल नहीं पत्थर का ढेला है । स्वदेशाभिमान ही तो मनुष्यत्व है, स्वदेश भक्ति ही तो मनुष्यता है। देश प्रेम तो पशुओं और पक्षियों में भी होता है, कीड़े-मकौड़ों में भी होता है, घास के तिनकों और जंगल के वृक्षों में भी होता है—और हम तो मनुष्य हैं—मनुष्य, परमात्मा की सर्वोत्कृष्ट गौरवमयी रचना,

'न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं ही कश्चितं'

जिस की महिमा का बखान करते हुए गोस्वामी जी ने फरमाया है—

बड़े भाग्य मानुष तन पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा।
पाइ न जेहि परलोक संवारा ॥
नर तन सम नहीं कवनेहु देही।
जीव चराचर याचत जेहि ॥
नर तन भववारिधी कहं बेरो।
सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥

संस्कृति, इतिहास तथा भौगोलिक परिस्थिति (प्रकृति) इन तीनों सम्पदाओं के समूह का नाम है—राष्ट्र। देश के पूर्व-पुरुषाओं द्वारा निर्मित तथा परिपालित जीवन-विधि (Culture) का नाम है संस्कृति। स्वदेश में पैदा हुए वीर-पुरुषाओं की जीवन लीला का नाम है इतिहास—और भूगोल का अर्थ है स्वदेश की अभ्यांतरिक रचना का विस्तार । जो व्यक्ति इन तीनों से प्रेम करता है वही है सच्चा राष्ट्र-भक्त।

इस देश के तीनों नाम इसके तीन गुणों के प्रतीक हैं। आर्यावर्त इस देश की संस्कृति का प्रतीक है, भारतवर्ष इस देश के इतिहास का प्रतिनिधि है, और हिंदुस्थान इस देश की भौगोलिक संज्ञा है । सृष्टि के आरम्भ में इस देश का कुछ भी नाम न था। तथापि इस देश के रहने वाले इस देश को जननी जन्मभूमि तथा अपने को आर्य कहते थे। "आर्य" शब्द का अर्थ है ईश्वर-पुत्र, श्रेष्ठ, आचारवान्, गुणवान्—एक ऐसा व्यक्ति सद्सद् विवेक तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति ही जिसके जीवन का उद्देश्य है। जैसा आकार हमारे देश का आज है, सृष्टि के आरम्भ में इस आकार में कुछ अन्तर था। भारत-माता के दोनों हाथ पंजाब और बंगाल आजकी अपेक्षा अधिक सुदृढ़ थे; भारत जननी के सिर का ताज कैलाश भी अधिक शोभाशाली था; मुकुट-मणी बद्री-केदार अपनी वर्तमान अवस्था से भी अधिक ज्योत्स्ना मय थे। इसका वक्षः स्थल कौशल-देश महा बलशाली था; हिमालय के गौरव का तो ठिकाना ही क्या था, वह तो साक्षात् मूर्तिमान् गौरव ही था । वरुण देव इसी प्रकार उसके चरण कमल की सेवा में चौबीसों घन्टे तत्पर रहता तथा अपनी जननी जन्म-भूमि के स्तोत्र गाता—सब कुछ ऐसा ही

था केवल उन दिनों अपनी अगाध श्रद्धा के वशीभूत हुआ महाकाय नीलोदधि अपनी मातृभूमि के वक्ष:स्थल तक पहुँच गया था। वह अपनी जननी जन्म-भूमि के अत्यन्त निकट रहना चाहता था, इसी लिये एक ओर वह नन्हें से बालक के समान अपनी माता के वक्ष:स्थल से खेल रहा था दूसरी ओर जननी जन्मभूमि की चरण-सेवा द्वारा अक्षय कीर्ति का उत्पादन कर अपने भविष्य को सार्थक बना रहा था। उन दिनों राजपूताना के स्थान पर सागर था। एक ओर यह सागर त्रिगर्त (जालन्धर और फीरोजपुर) तक छाया हुआ था, दूसरी ओर इस का शरीर दिल्ली तक फैल चुका था, मानो उन दिनों सिन्धु सौवीर, क्षुद्रक (बहावलपुर) राजपूताना यह सब अरब सागर का ही एक अंग थे। परन्तु परमात्मा की लीला बड़ी विचित्र है, जल में थल और थल में जल करते उसे कुछ भी देर नहीं लगती। लगे भी क्यूं! अपने संकल्प मात्र से उसने संसार का खेल खेला, वह इस खेल को जैसे चाहे खेले, अपनी पुतलियों को वह पुतिलयों वाला जैसा उसका दिल चाहे नचाये। कभी उसने बिहार में कैसा नाच नचाया था, कभी उस ने कोयटा में अपना कैसा रंग जमाया था। कभी कांगड़ा को उसने कैसा हिलाया था।

हां, तो उन दिनों परमात्मा को थोड़ा सा क्रोध आ गया, बस फिर क्या था आकाश कांप उठा, धरती हिल गई, समुद्र का पानी उछल पड़ा। संसार में प्रलय आ गई। राजपूताना सागर का सारा पानी संयुक्त-प्रांत, बिहार और बंगाल पर छा गया। माता के स्तनों का पिया हुआ दूध, अपचन के कारण बालक ने माता के वक्ष:स्थल पर ही उंढ़ेल दिया। संसार में हाहाकार मच गया। प्रकृति का प्रकोप अपनी सीमा को पार कर गया। उन दिनों धरती पर पापी तो नहीं बसते थे, फिर भी न जाने धरती माता को किन पापों का फल भोगना पड़ा। नीचे भी पानी और ऊपर भी पानी; इसी का नाम तो है प्रलय। कहते हैं उन दिनों निरन्तर ५८ दिन तक वर्षा होती रही। मुफत का पानी था परमात्मा के प्रमुख अहलकार इन्द्र देवता ने धरती वालों पर केवल अपनी शान का सिक्का जमाने के लिये उसे यूं ही बहा दिया। वे दिन भी कितने गजब के होंगे, उन दिनों वाला कोई मिले तो पूछें। लोग अपनी जान बचाने के लिए हिमालय पर जा चढ़े। वे अपना दाना पानी समेट उसकी कन्दराओं में जा छिपे। कुछ इतने घबराये कि वे हिमालय को भी पार कर तिब्बत और मध्य एशिया में जा बसे। ५८ दिन थोड़े नहीं होते। मुसीबत की तो एक घड़ी भी मान नहीं। फिर ५८ दिन, पूरे दो कम साठ!! निश्चय ही वे लोग धन्य थे जिन्होंने इस घोर आपत्काल में भी दिल न छोड़ा। धन्य था उनका साहस और धन्य थी उनकी सहन शक्ति।

वे दिन आये और चले गये। परन्तु उन दिनों की याद आज भी संसार के दिल से भूली नहीं। संसार में आप कहीं भी चले जाइए उन साहसी पुरुषाओं की करुण-कथा किसी न किसी रूप में आपको सर्वत्र मिलेगी—कोई इसे "मनु की प्रलय" के नाम से याद करता है, किसी ने इस घटना को "नूह के तूफान" शीर्षक से अपनी धर्म-पुस्तकों में लिखा है तो कोई इसे "Noaha's Flood" के रूप में अपने अनुयाइयों के सन्मुख उपस्थित करता है। वे दिन कितने भयंकर थे, आज तक भी जिनकी भयंकरता के

गीत भुलाये नहीं जा सके।

वे कतिपय भाग्यशाली जो उस प्रलय में मनुमहाराज का पल्ला पकड़ बच गये, आज निखिल ब्रह्माण्ड में उन्हीं सौभाग्यशाली वीर पुरुषाओं की सन्तान का विकास है। आज हमारी आँखों पर साम्प्रदायकता की पट्टी भले बंधी हो, अपने ही द्वारा रचे हुए जाति-बन्धनों के विद्वेष में अन्धे होकर सिवाय अपने आप के और हमें कुछ भी न दीखता हो, और संसार के निखिल प्राणियों में एक ही सच्चिदानन्द की ज्योति को न देखते हुए हम भले ही अपने आप को भी भूल चुके हों, परन्तु यह बात तो शतांश रूप में ऐतिहासिक तथ्य है कि आज जर्मनी, इंगलैंड, टर्की, ईरान, अफगानिस्तान, यूनान में उन्हीं आर्य पुरुषाओं की सन्तान का निवास है जो हिमालय पर्वत से—मध्य-एशिया तथा यूरोप में जाकर बसे। यूरोप एवं मध्य पूर्व में जो कुछ भी आज दिखाई देता है, उन्हीं आर्य पूर्व-पुरुषाओं के वरदान का पुण्य प्रताप है। मिश्र, ईरान, अफगानिस्तान, टर्की, ईराक, जर्मनी—सबका खन आर्यों का ही खून है। ईरानी शब्द आर्यान, आर्य से ही बना है। ईरान के शाह आज भी अपने को बड़े गौरव से आर्य मिहिर कहते हैं। हिटलर भी अपने को आर्य कहता था। स्वस्तिक को उसने अपना राष्ट्रीय चिन्ह बनाया था। हर हर महादेव की शैली पर ही जर्मन लोगों ने अपने नाम के साथ 'हर' लगा रखा था—हर हिटलर, हर वान रिब्बनट्राप—ईराक का अर्थ है सूर्य, अर्वन का अर्थ है घोड़ा।

जो लोग हिमालय में ही रह गये थे, जिन्होंने इतनी घोर आपत्ति में भी अपनी पुण्य-भूमि के नेह को न छोड़ा वे प्रलय के पश्चात् अर्थात् जब वर्षा बन्द हो गई और राजपूताना सागर का जल गंगा, यमुना, शोना, सरयू, गोमती, स्यन्दका तथा कौशकी सप्त-सरिताओं को अपने वैभव के स्मृति चिन्ह के रूप में छोड़ बंगाल की खाड़ी में बह गया, उस समय वे लोग गंगाद्वार के मार्ग से हरद्वार के पवित्र स्थान पर पुनः अपनी पुण्य-भूमि में प्रविष्ट हुए। उस समय अपने पुनरागमन को अमरत्व प्रदान करने के लिए उन आर्य-सूरमाओं ने इस देश को आर्यावर्त के शुभ नाम से समलंकृत किया। आर्य—आवर्त अर्थात् आर्यों का लौट कर आना (The return of the Aryans) इसीलिए आर्यों की दृष्टि में आज भी अपने हिमाद्रि पिता के लिये इतनी अगाध श्रद्धा है Himalaya being the saviour of our ancestors is duly honoured and worshipped by the Hindus of to-day. यदि हिमालय न होता, इस प्रलय से हमारे पुरुषाओं की रक्षा कौन करता। वास्तव में हिमालय ही हमारा पिता है। हमारे पुरखाओं पर हिमालय ने जो उपकार किये उसे हम न आज तक भूले हैं और न कभी भूलेंगे। कृतज्ञता ही देवत्व है, कृतज्ञता ही मनुष्यत्व है। इसी कृतज्ञता की भावना को हरा-भरा रखने के लिये हम लोग जीवन में अनेक वार नंगे पांव बद्रि-केदार, गंगोत्तरी और यमुनोत्तरी, अमरनाथ और उत्तर-काशी की यात्रा की घोर यात्नायें सहर्ष सहन करते हैं।

निश्चय ही पृथ्वी तल का वह भू-भाग जिसे एक बार फिर से हमारे आर्य-पितामहाओं ने अपने चरण-कमल के स्पर्श द्वारा पवित्र किया उस पृथ्वी-तल का एक एक रज कण आर्य-पुत्रों के लिये स्वर्ग की सम्पदा से भी अधिक मूल्यवान् है। वह गौरवशाली भू-भाग है कनखल, हरिद्वार सप्तस्रोत—इसी लिये तो भारतवासियों के हृदय में पंच-पुरी के लिए इतनी अगाध श्रद्धा है।

जीवन में तो प्रत्येक वर्ष नव सम्वत्सर के दिन वह वहां आता ही है। जीवन के अन्तिम दिनों में वह इसी पवित्र स्थल पर रहना चाहता ही है—परन्तु उसे तो इस स्थलसे इतना प्रेम है कि मर कर भी वह हरी की पैड़ी पर ही अनन्त काल तक पड़े रहना चाहता है। गंगाद्वार उस के लिए मनुष्यों का द्वार नहीं, यह द्वार हरी का द्वार है। वहां जाकर रहने से नहीं, बल्कि इस पवित्र प्रदेश में पांव रखने मात्र से पाप कट जाते हैं—ऐसी प्रत्येक हिंदू की दृढ़ धारणा है। गंगा हमारी संस्कृति का तरल इतिहास है, हिमालय हमारे राष्ट्र का अमर संगीत है। गंगा और हिमालय की भक्ति ही सच्ची देश भक्ति है।

गंगा गंगेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि,
मुच्यते सर्व पापेभ्यो विष्णु लोकं स गच्छति।
हरिद्वारे कुशावर्ते विल्विके नीलपर्वते,
स्नात्वा तु कनखले तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते॥

आर्य-पितामहाओं के देश में पुनः लौट आने की पवित्र स्मृति ने इस देश को आर्यावर्त का नाम दिया और यह नाम बहुत देर तक, शताब्दियों तक सहस्राब्दियों तक ही नहीं बल्कि लक्षाब्दियों तक रहा। पुनः हमारे देश में एक महान प्रतापी सूरमा—महाराज भरत का जन्म हुआ। कहते हैं इस अनुपम नर-रत्न ने निखिल जगत में अपने देश के गौरव को प्रदीप्त किया। सारे संसार ने इस देश का लोहा माना। उन ही महाराज भरत की अमर कीर्ति को चिर-स्थायी रखने के लिए बढ़ आर्यावर्त को काया-कल्प द्वारा भारतवर्ष का नाम दिया।

इस देश को भारत वर्ष के स्थान पर एक नया नाम हिन्दुस्तान अपनाए कोई बहुत देर नहीं हुई, अधिक से अधिक एक हजार वर्ष। कतिपय सज्जन पुरुषों का ऐसा विचार है कि इस देश के निवासियों को हिन्दू नाम मुसलमानों द्वारा दिया हुआ है, परन्तु महाकवि चन्दवरदाई ने इस्लामी प्रभुत्व के बहुत पहले पृथ्वीराज के लिए हिन्दू शब्द का प्रयोग किया। राणा प्रताप हिन्दुपति कहलाए, राष्ट्र-कवि भूषण ने "हिन्दू" शब्द को महामहिमामय समझा। हिन्दू शब्द का उद्गम स्थल ईरान है। जिन दिनों ईरानियों ने हमें इस नाम से सम्बोधित किया उन दिनों ईरानी मुसलमान न थे। उन का धर्म और हमारा धर्म एक था। ये ईरानी भी उन्हीं आर्य पितामहाओं के वंशज हैं।

छोटी सी बात पर एक ही वंश दो परस्पर विरोधी दलों में बट गया। बात कुछ भी नहीं थी और मामला यहाँ तक बढ़ गया कि दल विशेष को देश छोड़ कर परदेश में रहना पड़ा। झगड़े का श्रीगणेश इन्द्र की पूजा से हुआ। एक दल इन्द्र को इतना प्रभुत्व देने का विरोधी था, वह दल अग्नि का उपासक था। अग्नि के उपासक तो दोनों ही थे, परन्तु वह दल इन्द्र की अपेक्षा अग्नि को अधिक महत्व देता था। जो लोग इन्द्र के पक्ष में थे वे बड़े-बड़े यज्ञ करते थे। यज्ञ तो दूसरे दल वाले भी करते थे, परन्तु वे लोग अग्नि में कुछ निषिद्ध वस्तुएँ डालने के पक्ष में न थे। एक दल ने इन्द्र को ऊँचा उठाया, दूसरे ने मित्रावरुणा को, बस झगड़ा चल पड़ा। एक पार्टी इन्द्र को गालियाँ देने लगी और दूसरी मित्रावरुणा को। व्यक्तियों की लड़ाई देवी-देवताओं की लड़ाई में पलट गई। जिस देवता की इन्द्र-पक्षी महिमा गायें, इन्द्र-विरोधी उसी देवता की पगड़ी उतारें, धीरे-धीरे मामला बहुत बढ़ गया, मार-पीट तक नौबत आ गई। एक दूसरे की सूरत तक से घृणा होने लगी। दोनों में देवासुर संग्राम छिड़ गया।

महाभारत में लिखा है यह देवासुर संग्राम पूरे ३२००० वर्ष तक रहा।

जो लोग इन्द्र को देवराज की उपाधि से विभूषित करना चाहते थे वे देवता कहाए और जो लोग इन्द्र-पूजा के विरोधी थे वे असुर। आज हमारी दृष्टि में असुर शब्द का अर्थ भले ही बुरा हो, परन्तु उन दिनों असुर शब्द का प्रयोग बुरे अर्थों में कदापि न होता था। महा मनि यास्काचार्य ने असुर शब्द का अर्थ किया है–असुरो बलवानिति, असुरो प्रज्ञावानिति—वेद में इन्द्र, आदित्य, पूषाण, मित्रावरुणा इन सब को असुर कहा गया है।

जब तक आर्य-पितामहाओं में दो दल न थे तब तक असुर और देव इन दोनों शब्दों का अर्थ "अच्छा" था—परन्तु आपस के विरोध का प्रभाव इन दोनों शब्दों पर भी पड़ा। देवताओं की दृष्टि में असुर शब्द का अर्थ बुरा माना जाने लगा तो असुरों की दृष्टि में देव शब्द भी अच्छा न रहा। असुरों के संसार में उस से भी अधिक बुरा व्यवहार देव शब्द के साथ होने लगा। देव ने दयो की कहानियों का रूप धारण कर लिया।

साधारण मत-भेद बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक बढ़ गया, कि दोनों दलों का आपस में एक ही नगर में रहना कठिन ही नहीं असम्भव हो गया। एक दल दूसरे दल को अपने से पृथक किसी अन्यत्र स्थान पर निकाल देना चाहता था। काफी झगड़ा बढ़ा। आरम्भ में तो असुरों का पक्ष प्रबल था, परन्तु अन्त में इन्द्र-पक्षी देवता जीत गये। असुरों को आर्यावर्त छोड़ आर्यायन वर्तमान ईरान में चले जाना पड़ा।

आज भले ही ईरान भारत के बाहर का देश हो परन्तु जिन दिनों की हम चर्चा कर रहे हैं उन दिनों ईरान, अफगानिस्तान सब विशाल भारत भूखण्ड का ही एक अंग थे। आर्य, देव तथा असुर आज कल के पंजाबी तथा मद्रासी की तरह प्रान्त दृष्टि से भले ही दो हों परन्तु उन सब में परस्पर विवाह-सम्बन्ध खुले आम हुआ करते थे। भीम ने एक असुर स्त्री हिडिम्बा से विवाह किया, जिस से भीम का पुत्र घटोत्कच पैदा हुआ। ययाती ने शर्मिष्ठा से विवाह किया। वर्तमान पारसियों के समान असुर स्त्रियां अत्यन्त रूपवती थीं। वाणासुर की कन्या यादवों के परिवार में व्याही गई थी। यह वाणासुर हिमाचल प्रदेश में वर्तमान रामपुर बुशहर के स्थान पर अपनी रियासत बनाए बैठा था और भी ऐसे अनेक असुर भारत के पर्वतीय प्रदेश में यत्र तत्र सर्वत्र अपना अधिकार जमाये पड़े थे। खांडव वन में मय नामी असुर था जिस ने पांडवों के लिये भवन बनाया था।

इस असुर जाति का हमारे देश में बड़ा आतंक था। ऐसा ही जैसा—बम्बई कलकत्ता के भोले भाले लोगों पर काबुली पठानों का आतंक आज तक भी है। यह असुर लोग तो भारत में जहाँ चाहते निर्भयता पूर्वक घूमते फिरते लूट-मार मचाते, जो जी में आता करते और हम लोग इनके देश में जा सकने तक का साहस न कर पाते। मिलमिला कर केवल एक शुक्राचार्य का वर्णन पुराणों में मिलता है, जो असुरों के देश में अध्यापक बनकर गये, परन्तु वे भी असुर प्रदेश में दूर तक नहीं जा सके केवल सीमान्त के नगर तक ही रहे और वहां भी सदैव सतर्क हो कर रहे। परन्तु यह देव तथा राक्षस थे एक ही पुरुखाओं की सन्तान। इनके रीतिरिवाज तथा भाषा तक आपस में मिलते जुलते थे। आज भी पारसी लोग मुसलमानों की अपेक्षा हिन्दुओं के अधिक निकट हैं।

देवता भी मनुष्य ही थे। इनका प्रमुख निवास स्थान त्रिविष्टप था। इसी शब्द का अपभ्रंश तिब्बत है। यह प्रदेशहिमालय के उत्तर की ओर स्थित है। विष्टप शब्द "विश" धातुसे बना है, जिसका अर्थ to enter। त्रिविष्टप शब्द का अर्थ तीन मार्गों से प्रवेश करने योग्य प्रदेश। तिब्बत तक पहुंचने के दुर्गम मार्ग तो और भी होंगे, परन्तु सुगम मार्ग केवल तीन ही हैं। इसी तिब्बत को शास्त्रकारों ने स्वर्ग लोक के नाम से सम्बोधित किया है। आज कल जो सर्वसाधारण में "लोग" शब्द प्रचलित है वह "लोक" से ही बना है। लोग का अर्थ है मनुष्य (people) लोक का अर्थ मनुष्यों के रहने का स्थान।

देवताओं के राजा थे इन्द्र जो किसी व्यक्ति विशेष का नाम नहीं। इन्द्र का स्थान न तो खानदानी था और न ही किसी व्यक्ति के लिये आयु भर की पदवी A Permanent post। कोई भी व्यक्ति उसी समय तक इन्द्र पद पर सुशोभित रह सकता था जब तक वह अपने गुण कर्म तथा धर्मानुसार इन्द्र पद के लिये योग्य समझा जाता था। परन्तु यदि कोई व्यक्ति इन्द्र पद से हटा दिया जाता था तो उस अवस्था में वह अपने देश में कदापि रह नहीं सकता था। क्योंकि इस बात का सदैव भय बना रहता था कि पदच्युत इन्द्र पुनः इन्द्रासन प्राप्ति के लिए कोई षड्यन्त्र खड़ा न कर डाले। अतः जो व्यक्ति इन्द्रासन से हटा दिया जाता था तो उस अवस्था में वह अपने देश में कदापि नहीं रह सकता था। अतः जो व्यक्ति इन्द्रासन त्यागता था साथ ही उसे तिब्बत को भी त्यागना पड़ता था। और वह रीटायर्ड इन्द्र भारत में बसने के लिए आ जाता। भारत में तिब्बत वालों के कितने ही उपनिवेश थे। ऐसा एक बड़ा उपनिवेश तो ब्रज के समीप खांडव बन में ही था। भारत में आया हुआ इन्द्र अपने किसी उपनिवेश में आकर रहने लगता।

भारतीय जनता में स्वर्ग-प्राप्ति तथा इन्द्रासन की प्राप्ति की लालसा सदैव बनी रही। स्वर्ग प्राप्त करना भारतीय जीवन का परम लक्ष्य माना जाता था। लोगों की प्रबल इच्छा थी कि जीवन के चौथे पन में वे हिमालय में जाकर रहें और देहावसान के समय तो वे हिमालय को पार करके तिब्बत में अवश्य ही प्रवेश हो पायें। जीवन के इस चरम लक्ष्य की प्राप्ति को ही भारतीयों ने स्वर्ग-प्राप्ति समझा।।

देवता अन्न के लिए भारत पर निर्भर थे। भारतीय लोग यज्ञकरते थे और इन्द्रादि देवताओं के नाम से अन्न का अधिक भाग अलग रखते थे। इस यज्ञ के द्वारा देवों को अन्न भाग देने के कारण देव भारतीय आर्यों की रक्षा करते थे—इसके अतिरिक्त यज्ञ करने वाले को एक और भी बहुत बड़ा पुरस्कार मिलता था—वह पारितोषिक था "स्वर्गवास"—आज कल स्वर्गवास, बैकुण्ठवास, कैलासवास आदि शब्द मृत्यु को प्रकट करते हैं परन्तु महाभारत काल तक स्वर्गवास का अर्थ 'तिब्बत में निवास' इतना मात्र था।

देवराज इन्द्र की सदैव यह कोशिश रही कि भारतीय अधिक संख्या में तिब्बत में न आने पावें, और ऋषि मुनि तथा पराक्रमी राजा तो स्वर्ग लोक में पदार्पण करने ही न पावें, क्योंकि इन्द्र को ऐसा भय था कहीं यह प्रभावशाली लोग अपनी प्रतिभा के चमत्कार से इन्द्रासन पर अपना ही अधिकार न जमा बैठें। और स्वर्ग प्राप्ति के इच्छुक ऋषि-मुनियों को मार्ग से पथ भ्रष्ट करने के लिए देवराज इन्द्र के पास एक

बहुत बड़ा अस्त्र था—अप्सरा। गढ़वाल प्रदेश की गौरवर्ण सुन्दरियों को इन्द्र उस ऋषि के पास भेज देता। इन्द्र के इस प्रहार ने विश्वामित्र जैसे दिग्विजयी सूरमाओं को भी परास्त कर डाला। इन्द्र के दरबार तक पहुंचना किसी अर्जुन सरीखे परम चरित्रवान् का ही काम था, जिसने उर्वशी के प्रेम को रास्ते की ईंट समझ कर ठुकरा दिया।

देवताओं और असुरों का बहुत पुराना वैर था। देवता यदि असुरों को बुरा कहते थे तो असुर भी देवताओं से कुछ कम घृणा नहीं करते थे। देवताओं में असुरों की भयंकर कहानियां प्रचलित थीं तो असुरों में भी देवों की भयंकरतम कथायें थीं। देवों और असुरों के नाम भी प्रायः संस्कृत निष्ठ थे। उनमें और देवताओं में देखने में कुछ भी भेद न था, जहाँ तक कि मोहनी रूप धारी विष्णु चोरी छिपी देवताओं को अमृत पिलाने लगे तो एक असुर भी देवताओं में बैठ कर अमृत पी गया। देवताओं को इस बात का पीछे पता चला परन्तु वे अब कर ही क्या सकते थे। मन मसोस कर रह गये।

रामायण में वर्णित देवता, वानर, राक्षस, पक्षी, ऋक्ष, भूत, पिशाच, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, दैत्य, दानव, असुर, सर्प, नाग, विद्याधर, मृग, सिद्ध, सभी मनुष्य ही थे। वे सचमुच ही बन्दर (Monkeys), रीछ (Bear) गृध Vulture इत्यादि पशु-पक्षी नहीं थे। राक्षस, दैत्य, दानव भी देवों तथा मनष्यों के समान ही सभ्य, सुसंस्कृत तथा देखने परखने में उनके समान ही सुन्दर थे, इन सभी के बीच खुले रूप में विवाह-शादियों के सम्बन्ध होते थे। रामायण में ही आप देखिये, जहां एक ओर राक्षस-कन्या शूर्पणखा ने श्री राम से विवाह प्रस्ताव किया वहां अनेकों राक्षस-पुरुषों ने भी आर्य अथवा देव-कन्याओं से विवाह किये। स्वयं रावण की माता राक्षस वन्शी थी यद्यपि उसके पिता एक सुप्रसिद्ध वैदिक ऋषि थे।

पक्षी, वानर, मृग आदि कृत्रिम रूप से बनाये वेष हैं अन्यथा सभी लोग एक ही प्रकार के मनुष्य थे। रामायण में इस प्रकार वेष बदलने के अनेकों उदाहरण मिलते हैं।

मारीच रावण को कहता है—"एक दिन मृगरूपधारी दो राक्षसों के साथ मैं दण्डक वन में गया और अत्यन्त भयंकर रूपधारण करके तपस्वियों को तिरस्कृत करता हुआ हुआ सब ओर विचरने लगा।"

"वे दोनों राक्षस (शुक-सारन) पक्षी का रूपधारण करके वानर दल में विचरने लगे।"

"तब हनुमान् जी ने वानर-रूप का परित्याग करके भिक्षु का वेष बना लिया।"

"तदनन्तर महाबुद्धिमान् वायुपुत्र हनुमान् ने भिक्षुरूप का त्याग करके वानर रूपधारण कर लिया।"

"उस नगर की बड़ी भारी चौकसी, उसके चारों ओर समुद्र की खाई और रावण जैसे भयानक शत्रु को देखकर हनुमान् जी विचारने लगे—'इस लंका में तो अंगद, नील, महाराज सुग्रीव और मैं—केवल चार ही वानर प्रवेश कर सकते हैं। मैं भी इस रूप से इस में प्रवेश नहीं कर सकता, क्योंकि अनेकों क्रूर और बलवान् राक्षस इसकी रक्षा कर रहे हैं। अतः मुझे रात्रि के समय ही नगर में जाना चाहिए और ऐसा रूपधारण करना चाहिए, जिस से मैं पहचाना भी जा सकूँ और न भी पहचाना जाऊँ। किन्तु ऐसा कौन उपाय है, जिससे मैं तो जनकनन्दिनी सीता को देख लूँ और राक्षसराज दुरात्मा

रावण मुझे न देख सके।

हमारा इस बात का दावा है कि प्राचीन भारत सर्वतोरूपेण गौरवपूर्ण भारत था।

दिल्ली में कुतुबमीनार के साथ शताब्दियों से अक्षत, गर्वोन्नत खड़ा है एक लौह स्तंभ, जिस पर न जंग चढ़ता है न हवा-पानी का असर होता है। फास्फोरस और गंधक से रहित इस्पात से बना यह स्तंभ पुरातन भारत की अत्यंत उन्नत टैक्नालाजी का जीवंत और मुखर साक्षी है। जाने किस विधि से उन लोगों ने ऐसे इस्पात का निर्माण किया था, जो दो हजार वर्षों से आंधी-पानी झेलता, अब भी चमचमा रहा है, जैसे कल ही ढाला गया हो।

इस युग की सारी चमत्कारिक प्रगति के बावजूद अभी ऐसे इस्पात का निर्माण नहीं किया जा सका है जो जंग लगने से बच सकता हो। कौन थे ऐसे इस्पात के निर्माता ? कहां चले गये वे उन्नत-प्रबुद्ध लोग ? क्या इस देश की धरती पर दूर अतीत में कभी ऐसे लोग बसते थे, जिन्होंने अति उन्नत वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति अर्जित कर ली थी ?

लंका-विजय के पश्चात् राम अपने दल-बल सहित पुष्पक विमान द्वारा आकाश-मार्ग से लौटते हैं, राम के आदेश पर जब वह दिव्य रथ ऊपर उठा तब कर्ण-भेदी कोलाहल से वायुमंडल गूंज उठा था, कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसा निर्घोष आज के वायुयान, हेलिकाप्टर या राकेट भी करते हैं, ऋग्वेद में इसी प्रकार के एक अश्वहीन, चालकरहित तीव्रगामी श्रेष्ठ यान का उल्लेख है, जो धूल के विशाल बादल उड़ाता हुआ उठता है—

अनेनो वो मरुतो यामो
अस्तु अनश्वः चित्यः अजत्यरथीः
अनवसो अनमीशु रजस्तूः
विरोवी पत्थायति साधन।

हनुमान् जी लक्ष्मण के लिए हिमालय से संजीवनी बूटी लाये थे, यह यात्रा उन्होंने आकाश-मार्ग से तय की थी, वस्तुतः वे हमेशा आकाश-मार्ग से ही यात्रा करते थे। लंका भी वे उड़ कर गये थे, ऐसा लगता है कि हनुमान के पास या तो हेलिकाप्टर सदृश्य यान था अथवा कमर से राकेट बेल्ट बाँध कर वे उड़ा करते थे। उसी प्रकार का राकेट बेल्ट, जो आज अंतरिक्षयात्री व्यवहार में ला रहे है।

निवात-कवच युद्ध में अर्जुन इन्द्र के 'दिव्य रथ' पर सवार हो कर रण का नेतृत्व करते हैं, उनका 'रथ'—

अंतर्भूमौ निपतति पुनरुध्वं प्रतिष्ठते
पुनस्तिर्यक् प्रत्याशु पुनरप्सु निमज्जति।

नारद सदा-सर्वदा त्रिलोकों का भ्रमण करते थे, संभवतः पृथ्वीतर नक्षत्रों की यात्रा भी वे किया करते थे, इन घुमंतू दीर्घायु ऋषि की प्रायः सभी देवताओं एवं नरेशों से भेंट हो जाया करती थी, नारद ने सभी राजाओं से 'इंटरव्यू' लिया है, ऐसा लगता है कि उनके पास राकेट-परिचालित कोई तीव्रगामी विमान था, यही कारण है कि वे ऐन मौकों पर घटनास्थलों पर उपस्थित हो जाते थे।

देवताओं के नेता मानवों-दानवों को अपनी बात प्रायः आकाशवाणी द्वारा बताया करते थे, ऐसा प्रतीत होता है कि रेडियो-वायरलेस देवों तथा देवेतर जातियों के बीच सचार माध्यम था।

पाशुपतास्त्र, नारायणास्त्र, ब्रह्मशिर, ब्रह्मास्त्र आदि दिव्यास्त्र प्रथम कोटि के परम विनाशक अस्त्र थे, ये देवताओं ने अपने विशिष्ट विश्वासपात्र इने-गिने सेनानियों को ही दिये थे, इन्हें अर्जित करने के लिए उन्हें कठिन तपस्या अर्थात् प्रशिक्षण करनी पड़ी थी; देवलोक जाना पड़ा था। इन अस्त्रों के प्रयोग की मनाही थी। चरम स्थिति में ही इनका प्रयोग किया जा सकता था, आज भी अमेरीका केवल अपने परम विश्वस्त मित्र देशों को ही परमाण्विक अस्त्र दे रहा है, रूस ने तो चीन को भी ये आयुध नहीं दिये।

गोस्वामी तुलसी दास कालीन भारत

वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति ।
रामचन्द्रकथां साध्वीं भाषारूपां करिष्यति ।।

भारतीय राष्ट्र-निर्माताओं में गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज का भी अपना एक विशेष स्थान है। गोस्वामी जी महाराज निः-सन्देह महान् राष्ट्र-निर्माता कवि थे।

सबसे पहला कवि वह परमात्मा था जिसने वेद का काव्य रचा; दूसरे कवि वे ऋषि थे, जिन्होंने "देवस्य काव्यं" के तत्व का साक्षात्कार किया तीसरे कवि वे महात्मा थे जिन्होंने उपनिषदों के ब्रह्म-ज्ञान के अमृत-जल से संसार की आत्माओं को परम-पवित्र बनाया। चौथे कवि स्मृतिकार मनु, पराशर, वशिष्ठ, अत्रि, याज्ञवल्क्य इत्यादि थे, जिन्होंने देश को जीवन का ढंग सिखाया। अन्त में कविकुल गुरु कालीदास, भवभूति, अश्वघोष, भर्तृहरी, जयदेव, वाण, कल्हण, दण्डिन, सुबन्धु, भूषण, बङ्किम, रवीन्द्र-नाथ ठाकुर, मैथिलीशरण प्रभृति महापुरुष हुए जिन्होंने अपने काव्य-प्रकाश से अनंत तक के लिए भूतल को प्रकाशमान बना दिया।

वेद में सब विद्या बीज रूप में विद्यमान है। ब्रह्म और जीव क्या है, उनमें परस्पर कैसा सम्बन्ध है, इत्यादि अनेक विद्याएं, जिनको जान लेने पर फिर किसी विषय का ज्ञान, प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं रहती, ऐसे सर्वोत्तम ज्ञान के भण्डार का नाम वेद है। उपनिषद् भी वेद के ज्ञान-मार्ग के पथ प्रदर्शक हैं। ब्राह्मण ग्रंथों में कर्मकाण्ड की विवेचना है, स्मृतियों में ज्ञान और कर्म दोनों के सत्य-असत्य रूप का विश्लेषण है।

सर्वसाधारण संस्कृत साहित्य में भर्तृहरि के तीन शतकों का बहुत ऊंचा स्थान है। यह अपने ढंग का अद्वितीय ग्रंथ है। इस साधू दार्शनिक ने अपने हीरिक के समान प्रेम, नैतिकता और धार्मिक गीतों को बड़ी सुन्दरता से संवारा है। लेखक ने प्रेमियों की आशा-निराशा, क्रोध उपासना आदि भावों का बड़ी कुशलता से चित्रण किया है। मेघदूत की कविता बड़ी सुन्दर है। मन्दाक्रान्ता छन्द में कवि ने एक निर्वासित प्रेमी का प्रियतमा के नाम सन्देश भेजा है। उपमा में तो कालिदास ने कमाल कर दिया है। कुमारसम्भव में कार्तिकेय की उत्पत्ति का वर्णन है। रति का विलाप पढ़ने योग्य है। रघुवंश में दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक अयोध्या महा के राजाओं का इतिहास है। कालिदास के तीनों नाटक प्रेम गाथाएं हैं, परन्तु शकुन्तला नाटक

इतिहास के आधार पर कवि की अद्भुत रचना है। भवभूतिका उत्तररामचरितम् वीररस में लिखा गया है, परन्तु करुण रस प्रधान है। कवि ने राम के द्वारा सीता को बालमीकि-आश्रम में भेजने का वर्णन किया है। लव-कुश का राम-सैना से युद्ध कवि की कल्पना का ही चमत्कार है। जयदेव की विचारधारा से किसी का भले ही मतभेद हो, परन्तु गीत-गोविन्द में भाषा के प्रवाह तथा लालित्य को तो मानना ही पड़ता है बुद्धचरित तथा सौन्दरानन्द ज्ञान के भंडार हैं।

मुद्रा राक्षस विशाखदत्त की लेखनी का कमाल है। समस्त नाटक में स्त्री का पार्ट नहीं के बराबर है तथापि नाटक में सजीव रोचकता है। षड्यन्त्रों की सृष्टि और संहार, राजनीतिक ग्रन्थियों का सुलझना और उलझना ग्रन्थकार की प्रतिभा का आश्चर्यजनक नमूना है। यह एक ऐतिहासिक नाटक है और इस में चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन का वर्णन है। ऐतिहासिक रचनाओं में बाण का हर्षचरित्त भी अच्छा ग्रन्थ है। कादम्बरी में बाण ने अपनी पूरी प्रतिभा दिखाई है। भाषा पर बाण का कितना कंट्रोल है यह तीन-तीन पृष्ठों के लम्बे समासों से अच्छी तरह पता चल सकता है।

दंडन का दशकुमारचरित्तम् कुछ एक रहस्यमय कहानियों का गड़बड़गुथला है। सुबन्धुका वासवदत्ता एक प्रेम-कहानी है। वात्स्यायन का काम-सूत्र गृहस्थाश्रम की सुख-शांति के लिए एक अच्छा ग्रन्थ है। जिन ऋषियों ने संसार को माया जाल कहकर त्यागवाद का उपदेश दिया था, उन्हीं में से एक महात्मा ने संसार के कल्याणार्थ इस ग्रन्थ की रचना की। हितोपदेश तथा पञ्चतन्त्र गद्य पद्य मिश्रित नीति-ग्रन्थ हैं। इन दोनों ग्रन्थों में एक ब्राह्मण शिक्षक द्वारा शासन व्यवस्था के सिद्धांत गृहस्थ एवं वैयक्तिक चरित्र सम्बन्धी बहुत-सी कथाएं कही गई हैं। शिशुपालवध, ऋतु-संहार, वृहत्कथा, मृच्छकटिका, प्रबोध चन्द्रोदय, रत्नावली, नागानन्द, नैषिध चरित्र, भट्टि काव्य, किरातार्जुनीय, नलोदय, जानकी हरण, गौड-वहो, हरविजय, राजतरंगणी, विक्रमांकदेवचरित्त, कविरहस्य, सेतुबन्ध प्रभृति संस्कृत साहित्य के अन्य अनेक ग्रन्थ पढ़ने योग्य हैं।

भारत के कण-कण में उसकी अतीत कला का चमत्कार भरा है। भारतीय कलाकारों ने पुनीत भावों की कूंची लेकर "सुन्दर" के श्री चरणों में जो कुछ समर्पित किया है वह हृदय के अनुभव की चीज है। उसी ने संसार में भारत का नाम उज्जवल किया है। उसी ने वसुन्धरा के कोने-कोने को ढूंढ़ कर लोगों को गिरिगुफाओं से निकाल कर सभ्यता का आलोक दिखाया था। उसी ने अनेक तूफानों के बीच में भी अपनी राष्ट्रीयता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हमें प्रोत्साहन दिया है। आओ हम बड़े आदर सत्कार तथा श्रद्धा-भक्ति के साथ भारत के उन सभी ज्ञात-अज्ञात योद्धाओं, सन्तों और कवियों के चरणों में कृतज्ञता के पत्र-पुष्प भेंट करें।

प्रताप को महाराणा प्रताप किसने बनाया! गोस्वामी तुलसीदास ने। देशद्रोही मानसिंह को अन्तिम दिनों में देश भक्ति का पाठ किसने पढ़ाया? तुलसी दास ने—सुनिये!

चित्तौड़ की पवित्र भूमि न केवल राजपूताने के लिए ही पवित्र स्थान है अपितु सारे भारत के लिये गौरव का कारण और तीर्थ स्थान है। इस भूमि को रानी पद्मिनी ने अपने ही समान तेरह सहस्र सखियों सहित रक्त से सींच

कर पवित्र किया था, इस भूमि की रक्षा के लिये जयमल फत्ता ने अपने सिर दिये, वाप्पा रावल ने अपने शरीर का रुधिर अर्पण किया। सहस्रों राजपूतों ने उठती जवानी में अपने प्राण इसकी सम्मान रक्षा के निमित्त उत्सर्ग कर दिये। वीरांगनाओं ने पुरुष वेश धारण कर शत्रु के कठिन शस्त्रों का प्रहार अपने कोमल शरीरों पर सहन किया। निःसन्देह चित्तौड़ का एक-एक रजकण मस्तक पर रखने योग्य है। शताब्दियां व्यतीत हो गईं परन्तु आज तक उसके गहरे रक्त प्रवाह की लालिमा चितौड़ भूमि से नहीं मिटी।

प्रताप ने दृढ़ प्रतिज्ञा की—"जब तक प्यारे चित्तौड़ को दासता के कलंक से मुक्त करके उसकी कीर्ति-ध्वजा को पूर्ववत न फहरा दूंगा, न दाढ़ी मुण्डाऊंगा, न सोने चांदी के पात्रों में भोजन करूंगा और न ही पलंग पर शयन करूंगा। प्रताप के सगे भाई तक उसका साथ छोड़ अकबर से जा मिले, मानसिंह और भगवान दास का तो कहना ही क्या। परन्तु प्रताप ने हिम्मत नहीं हारी, स्वाभिमान की पताका को उसने कदापि नीचा न होने दिया। आंधियां आईं, तूफान आए—बड़े-बड़े सूरमाओं के दिल दरख्त भी जड़ से उखड़ गये, परन्तु राजस्थान का शेर चट्टान की तरह अटल रहा। यद्यपि आयु पर्यन्त उन्होंने कष्ट भोगे, परन्तु अकबर को भी उस सूरमा ने सुख की नींद नहीं सोने दिया।

स्वतन्त्रता के पुजारियों का ढंग ही निराला है। कौन सी विपत्ति और संकट है जो उन्हें सहने नहीं पड़ते। यदि प्रताप चाहते तो जरा सी जीभ हिलाकर वे दरबार में बड़े से बड़ा रुतबा पा सकते थे परन्तु यदि ऐसा होता तो आज मानसिंह और प्रताप सिंह में भेद ही क्या रहता। प्रताप की घर-घर में पूजा होती है, मानसिंह का नाम सुनते ही लोग घृणा से मुंह फेर लेते हैं।

हल्दि घाटी का मैदान—मानसिंह अपने भानजे सलीम को साथ लिये लाखों तुरकों की फौज बांध अपने अपमान का बदला लेने आ गया। प्रताप के सरफरोश भी मोर्चे पर जाने को तैयार हुए। राजस्थान का शेर अपने सर फरोशों को सम्बोधित करता हुआ बोला—

"मेरे शूरवीर क्षत्रियो! आज हम अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये और दिल्ली के बादशाह से अपना धर्म बचाने के लिये इकट्ठे हुए हैं। हम लोग कायर नहीं कि डर कर मुसलमानों के अधीन हो जावें। मेवाड़ के शूरवीर राजपूत प्राण त्याग देंगे परन्तु शूरवीर राजपूती टेक न त्यागेंगे। हम लोग मेवाड़ की स्वाधीनता की रक्षा के लिये अन्त तक युद्ध करेंगे और अपने पराक्रम द्वारा शत्रु को दिखा देंगे कि हमारी रगों में अभी अपने पूर्वजों का रक्त बाकी है। युद्ध के लिये कटिबद्ध हो जाओ। चलो, आगे बढ़ो और शत्रु को मेवाड़-खड्ग का स्वाद चखाओ।" एकलिंग भगवान की जय हो! मेवाड़ाधिपति की जय!! हिन्दू धर्म की जय!!! जय जय ध्वनि से आकाश गूंजने लगा।

जैसे भूखा सिंह हरिण पर छलांग लगाता है, वैसे ही राजपूत हाथों में नंगी तलवारें ले तुरकों पर टूट पड़े। सम्वत् १६३२ के श्रावण सुदी सात का दिन और हल्दी घाटी का युद्ध स्थान मेवाड़ के इतिहास में सदैव के लिये स्मरणीय हो गया। उस दिन मेवाड़ के शूरवीरों के रुधिर से हल्दी घाटी रक्त-वर्ण हो गई थी।

कविता में कितनी महान् शक्ति है।

शिवाजी, औरंगजेब की जेल से भाग कर पूना लौट रहे थे। रास्ते में एक जंगल में चलते चलते उन्हें एक नवयुवक मिला। "तुम कहां जा रहे हो नवयुवक ?" साधु वेश धारी शिवाजी ने प्रश्न किया। "मैं जा रहा हूं शिवा जी के पास।" "आपका प्रयोजन ?"—"शिवा जी की तारीफ तो मैंने बहुत सुनी थी, परन्तु औरंगजेब के दरबार में शिवा की वीरता को देख उस तारीफ को मानों चार चांद लग गये। मुझे पक्का विश्वास हो गया कि यही सूरमा देश का कल्याण करेगा। मुझे विश्वस्त रूप से पता चला है कि शिवाजी आज कल में पूना पहुंचने वाले हैं। मैंने उनको वीरता के फूलों को कविता माला में पिरोया है।

"तो आप कवि हैं, आप का नाम ?"

"मेरा नाम है भूषण।"

"परन्तु भूषण जी महाराज, हमें भी तो एकाध कविता सुनाओ, हम भी पूना जा रहे हैं। शिवाजी हमारा बड़ा मान करते हैं। हम कल शिवाजी से आपकी भेंट करा देंगे। परन्तु जरा एकाध कविता तो सुनाओ।"

अच्छा लो सुनो—

केतक देश दल्यो दल के बल,
सिंहगढ़ चंगुल चाप पै चाख्यो।
रूप गुमान हरयो गुजरात को,
सूरत को रस चूसि के चाख्यो॥
पंजन पेली म्लेच्छ मलयो, प्रते
सोई बचयो जिन दीन है भाख्यो।
सो रंग है शिवराज बली,
जिन नौरंग में रंग एक न राख्यो॥

वाह भाई भूषण, तुम तो बहुत अच्छे कवि हो। हम शिवाजी से न केवल तुम्हारी भेंट ही करवायेंगे बल्कि बहुत सा पुरस्कार भी दिलवायेंगे। अच्छा एक कविता और तो सुना दो। वही कवित्त सुनाओ जो औरंगजेब के दरबार में सुनाया था।

दाढ़ी के रखैयन की दाढी सी रहती छाती।
बाढ़ी मर्याद जस हद हिन्दुवाने की।
कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब,
मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की॥
भोटी भई चण्डी बिन चोटी के चबाय सीस,
खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की॥
भूषण भनत दिल्ली पति दिल धक धक,
सुन सुन धाक शिवराज मरदाने की॥

हिन्दू धर्म और हिन्दू राष्ट्र के नाम पर शिवाजी महाराज ने युद्ध छेड़ा और सफलता ने उनके चरण चूमे। सम्वत् १७३१ में उनका राज्याभिषेक हुआ। वे दुर्गा के बड़े भक्त थे, प्रतिवर्ष आश्विन के दशहरा पर बड़ी धूमधाम से भगवती दशभुजा का पूजन करते थे। उन्होंने अपनी खड्ग का नाम भवानी रखा था। पर हमारी जाति के दुर्भाग्य से शिवाजी की वह भवानी-तलवार भी भारत में नहीं है। हम लोगों की अकर्मण्यता से वह लन्दन चली गई और आजकल वहीं के अजायबघर की शोभा बढ़ा रही है।

काव्य शक्ति का एक और नमूना—

"स्वाधीनता की देवी बलिदान मांगती है,—है कोई पवित्र आत्मा !" आनन्दपुर साहिब के भरे दरबार में गुरु तेगबहादुर ने बलिदान मांगा। चारों ओर सन्नाटा था। थोड़ी ही देर पश्चात् नौ वर्ष का बालक उठा और मेघ के समान गरजता हुआ बोला,—

"आप से बढ़कर पवित्र आत्मा दूसरी कौन

होगी ।" वह बालक था...गोविन्द ।

धर्म युद्ध में गुरुदेव के चारों पुत्र शहीद हो चुके थे । सभासदों की आंखों में आँसू देख गुरुदेव ने इसका कारण पूछा । "महाराज ! आपके चार पुत्र थे और चारों ही......" गुरुदेव ने उस समय एक शब्द पढ़ा –

इन पुत्रन के कारणे, वार दिये सुत चार ।
चार गये तो क्या हुआ, जीवित कई हजार ॥

मलतान के नवाब मीर मन्नू के अत्याचार बहुत बढ़ चुके थे । जीवित सिक्ख का मूल्य ३) और जो कोई किसी सिख का सर काट कर लाये उसे ५) रु० । गरुदेव ने अकाल परुष की सेना सजानी थी । लग गया दरबार—दुर्गा बलिदान मांगती है । एक के पश्चात् दूसरा, तीसरा, चौथा पांचवां सूरमा पेश हो गया । गुरुदेव ने तो अपने भक्तों की परीक्षा लेनी थी । ऐसे ही सर-फरोशों से कौमों की शान बढ़ती है । उन पांचों प्यारों को गुरुदेव ने अकाल सेना का सरदार बनाया ।

चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊं ।
लाख लाख से एक भिड़ाऊं ॥
तो गोविन्दसिंह नाम कहाऊं ।
यही देई आज्ञा तुरक गहि खपाऊं ।
गऊ-घात का दोख जग में मिटाऊं ॥
छतर तख्त मुगलन करऊं मार दूरे ।
धुरी सब जगत महि फतह धर्म तूरे ॥
तेरे दर खड़ा दास करता पुकारा ।
तुरक्कन मिटा कीजे जग में उजारा ॥

यह था गुरु के अवतार का रहस्य । ऐसे ही सूरमाओं की सहायता से तो उन्होंने नदी का प्रवाह पूर्व से पश्चिम की ओर बदल दिया । उनके प्रयत्न से पश्चिम के आक्रमण रुक ही नहीं गये बल्कि पूर्व से पश्चिम अर्थात् पंजाब से अफगानिस्तान और काबुल पर आक्रमण होने लगे । इन आक्रमणों के करने वाले वही हिन्दू थे जो इतने वर्षों तक उसी बर्बर शक्ति से शताब्दियों तक पिटते आ रहे थे । गुरुदेव के पास वह कौन सा जादू था, विचार-शक्ति । उन्होंने वेदान्त की चोथी शिक्षा को इन के दिमाग से निकाला और उसके स्थान पर एक जीती जागती विचारधारा से उन्हें विभूषित किया । औरों के मोतीलाल, सिखां दे मोतासिंह औरों के हजारीलाल, सिखां दे हजारासिंह । मुन्शीराम, बाबूराम, घसीटामल, बुद्धूमल को उन्होंने मुन्शासिंह, सिंघाड़ासिंह, धन्नासिंह बना दिया ।

एक बार गुरुदेव को एक दादू पन्थी साधू से भेंट हो गई । उसने गुरु देव से कहा—

दादू दावा दूर कर, बिन दावे दिन कट्ट ।
केती सौदा कर गईं, इस पंसारी की हट्ट ॥

गुरु देव ने इसके उत्तर में तत्काल कहा—

दादू दावा बानरे, सबनू लइये लुट्ट ।
एको रहसी खालसा, और मरणे सब मुट्ट ॥

दादू पन्थी फिर बोला—

दादू समय विचार के, कल का कीजे भाऊ ।
जो कोई मारे ठाव इट्ट, वीजे शीश नवाऊ ॥

योगेश्वर कृष्ण की नीति को मानने वाले गुरुदेव बोले—

दादू समा विचार के कल का कीजे भाऊ
जो कोऊ मारे ठाय इट्ट पत्थर इन्हें बिखाऊ ।

कृष्ण भगवान की नीति भी शठे शाठ्यम् की ही नीति थी । जात-पांत और ऊंच-नीच का भेद जब तक रहेगा तब तक एकता कभी नहीं हो सकती और एकता के बिना कार्य-सिद्धि असम्भव है । अतः अपने पांच प्यारों को सर्व-

प्रथम गुरु का यही आदेश था ।

गुरुघर जन्म तुम्हारे होए।
पिछले जाति बरण सब खोए ।।
जन्म केसगढ़, वासी आनन्दपुर।
होए पूत जाति तुम सतगुर ।।
चार बरण को एको भाई।
धर्म खालसा पदवी पाई ।।
हिन्दू तुर्क ते आदि न्यारा।
सहिं मजब अब तुमने धारा।

रामचरित मानस की रचना कर गोस्वामी तुलसीदास जी ने इस आर्यवर्तः पर एक महान् उपकार किया। उस समय हमारा देश म्लच्छाक्रांत से पीड़ित था । राजपूतों की पराजय से देश में सर्वत्र निराशा छा रही थी। सीमान्तपार से आई हुई यहूदी संस्कृति हिंदुत्व पर स्वरूपणखा बन कर टूट रही थी । राजनैतिक सत्ता विधर्मियों के हाथ होने के कारण हिंदू जनता के हृदय पर हीनता (inferiority Complex) की भावना घर कर चुकी थी । अयोध्या का जन्मस्थान बाबर की मस्जिद का रूप धारण कर चुका था। सरयू का तट नौ-नौ गज लम्बी कबरों से अटा पड़ा था आश्रयहीन, आदर्श हीन, नेता हीन, हिंदू न जाने किस अज्ञात शक्ति के सहारे गिन-गिन कर दिन काट रहे थे । ऐसा प्रतीत होता था कि हिंदू जाति की नैया अब डूबी अभी डूबी—परन्तु भगवान को इस जाति का भविष्य उज्ज्वल बनाना था । उसने एक दिव्य पुरुष में अपनी ज्योति जगाई। परमात्मा की अपार शक्ति प्राप्त कर वह महापुरुष हाथ में राम नाम का चप्पू ले आगे बढ़ा—"मिलकर बोलो—श्रीराम ! जयराम ! जयजयराम ! उसने भंवर से उस नैया को निकाला और ले चला उसे तट की ओर ! यात्रियों के चेहरे चमक उठे । सभी बोले—"श्रीराम ! जयराम !! जय जयराम !!" उस जमाने के लिए जयराम की शक्ति जयहिंद की शक्ति से कुछ कम न थी।

वह खिवैया था तुलसीदास। उन्होंने देश के कण २ को जयराम की ध्वनि से ध्वनित कर दिया। तुलसीदास का आदर्श ही देश को अपनी खोई हुई स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए तैयार करना था। भारत के प्रत्येक आर्यपुत्र को राम बना कर नवाबों के हाथ में गई हुई भारतीय स्वाधीनता रूपी सीता को पुनः प्राप्त करना था। इसीलिये तो उन्होंने वीरता के गीत गाये। कहते हैं एक बार तुलसीदास अपने सखा नाभा जी को मिलने वृन्दावन गये । तब उन्हें वहां सर्वत्र कृष्ण ही का नाम सुनकर आश्चर्य हुआ । कृष्ण की मूर्ति को देखते ही उन्होंने यह दोहा पढ़ा —

कहा कहौं छबि आप की, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवँ, धनुष-बान लो हाथ ।।

बांसुरी वाले कृष्ण को वे नमस्कार कैसे कर सकते थे। उस समय देश को बांसुरी नहीं बल्कि मिल्टरी बैन्ड की आवश्यकता थी। कहते हैं मोहन-मूर्ति ने तत्काल वीर रूप धारण कर लिया। कोई भी राष्ट्र अपने चरित्र-बल के सहारे ही जीवित है। सदाचार जीवन है और दुराचार मृत्यु है। राष्ट्रीय सदाचार के कर्णधार साहित्यिक ही हैं, —वे चाहें तो देश को उठा दें। और चाहें तो "घर हमने लेलिया है, तेरे घर के सामने" गा-गा कर राष्ट्र का सत्यानाश कर दें। तुलसी दास ने राष्ट्र के सदाचार को तिलमात्र भी गिरने नहीं दिया।

राम का बालवर्णन उन्होंने बिल्कुल छोड़ दिया।

जनकपुरी में राम और सीता के रूप का वर्णन करने में वे कितने सावधान रहे हैं। वाटिका में राम सीता को देखते हैं, सीता के स्वरूप का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं :—

कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥
मानहु मदन दुन्दुभि दीन्हीं ।
मनसा विश्व विजय कर लीन्हीं ॥
देखि सीय शोभा सुख पावा ।
हृदय सराहत बचन न आवा ॥
जनु विरंचि सब निज निपुणाई ।
विरचि विश्व कहं प्रगट दिखाई ॥
सुन्दरता कहं सुन्दर करई ।
छविगृह दीप शिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी ।
केहि पट तरिय विदेह कुमारी ॥

सीय शोभा हिय बरणि प्रभु, आपनि दशा विचारि ।
बोले शुचि मन अनुज सों, बचन समय अनुहारि ॥

तात जनक तनया यह सोई ।
धनुष यज्ञ जेहि कारण होई ॥
पूजन गौरी सखी लै आई ।
करत प्रकाश फिरति फुलवाई ॥
जासु विलोकि अलौकिक शोभा ।
सहज पुनीत मोर मन छोभा ॥
रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ ।
मन कुपथ पग धरै न काऊ ॥
मोंहि अतिशय प्रतीत जियकेरी ।
जेहि स्वप्नेहु परनारि न हेरी ॥

राम लक्ष्मण मखशाला में प्रवेश करते हैं उस समय राम का रूप कवि वर्णन करता है।

हरिभक्तन देखउ दोउ भ्राता ।
इष्टदेव इव सब सुखदाता ।
सहज मनोहर मूरति दोऊ ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ ॥

राजत राज समाज महं, कौशल राजकिशोर ।
सुन्दर श्यामल गौर तन, विश्व विलोचन चोर ॥

सिय शोभा नहिं जाई बखानी ।
जगदम्बिका रूप गुण खानी ।
उपमा सकल मोहि लघु लागी ।
प्राकृत नारि अंग अनुरागी ॥
सीय वरणि तेहि उपमा देई ।
को कवि कै अपयश को लेई ॥
जो छवि सुधा पयो निधि होई ।
परम रूप मय कच्छप सोई ॥
शोभा रजु मन्दर शृंगारू ।
मथै पाणि पंकज निज मारू ।

इहि विधि उपजै लक्ष्मी जब, सुन्दरता सुखमूल ।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल ॥

राम लक्ष्मण जनकपुर के बाजारों में जा रहे हैं कवि उनके रूप का वर्णन करता है।

मुख छवि कहि न जाय मोहिं पाहीं ।
जो विलोकि बहु काम लजाहीं ॥
श्याम गौर किमि कहौं बखानी ।
गिरा अनयन नयन बिनु वानी ॥
जाकी रही भावना जैसी ।
प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ॥
वर्णत छवि जहं तहं सब लोगू ।
अवश्य देखिये देखन योगू ॥
देखहिं रूप महा रणधीरा ।
मनहुं वीर रस धरे शरीरा ॥
पुरवासिन देखे दोऊ भाई ।
नर भूषण लोचन सुखदाई ॥

नारि विलोकहिं हर्षि हिय, निज निज रुचि अनुरूप ।
जनु सोहत शृंगार धरि मूरति परम अनूप ॥

ऐसे थे तहान् कवि रामचारित मानस के रचनाकार सन्त तुलसी दास।

रामचरितमानस इह नामा

(२)

रामायणं काव्यमनन्तपुण्यं श्री शङ्करेणाभिहितं भवान्यै ।
भक्त्या पठेद्य: श्रृणुयात्स पापैर्विमुच्यते जन्मशतोद्भवैश्च ।

देवियो एवं भद्र पुरुषो—

वन्दौं तुलसी दास !!!

इस महान् देश का नि:सन्देह यह सौभाग्य था। कि गोस्वामी जी महाराज ने अपनी कविता का चमत्कार दिखाने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र जैसा आदर्श नायक चुना और राम का भी यह पुरा-पुण्य था कि उन्हें वाल्मीकि के लक्षावधि वर्षों के अनन्तर तुलसी सा सुकवि मिला। वाल्मीकि के ऐतिहासिक महापुरुष राम को भगवान् मर्यादा पुरुषोत्तम की पदवी पर प्रतिष्ठित कर देश के तोते और मैना तक के मुख से राम-नाम की रट लगवा देना यह श्रेय गोस्वामी तुलसीदास जी को ही प्राप्त हुआ।

गोस्वामी जी को अनेकों लोग शतप्रतिशत पौराणिक मानते हैं, परन्तु वेद-मार्ग के प्रति तुलसीदास जी की निष्ठा कुछ कम न थी। गोस्वामी जी के समय में आर्य जाति नाना प्रकार के मत मतान्तरों और सम्प्रदायों में विभक्त हो कर निर्बल हो चुकी थी, गोस्वामी जी को इस बात का हार्दिक संताप था। वेद मार्ग पर चलने से ही राष्ट्र का कल्याण हो सकता है, ऐसी तुलसी की दृढ़ धारणा थी। अपने इस भव्य भाव को प्रकट करते हुए वे लिखते हैं:—

श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ,
संयुत ज्ञान विवेक ॥
ते न चलहिं कर मोहवश,
कल्पहिं पन्थ अनेक ॥
द्विज श्रुति वंचक भूप प्रजासन।
कोउ नहिं माननिगम अनुशासन॥
निराचार जो श्रुति पथ त्यागी।
कलियुग सोइ ज्ञानी वैरागी॥
मारग सोई जाकहँ जो भावा।
पण्डित सोइ जो गाल बजावा॥
वर्ण धर्म नहिं आश्रम चारी।
श्रुति विरोध रत सब नरनारी॥

गोस्वामी जी ने महापुरुषों के चरित्रों को वेदों के आदर्श से एक इंच भी विचलित होने नहीं दिया। जात कर्म सब कीन्ह, नामकरण कर अवसर जानी, गुरुगृह गये पढ़न रघुराई, पढ़हिं वेद मुनि मंगल बानी,—वेद मन्त्र मुनिवर उच्चरहीं,निरत वेद पथ लोग—चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।—गोस्वामी जी के एक-एक शब्द से वेदों के प्रति असीम श्रद्धा पायी जाती है।

अतुलित महिमा वेद की,
तुलसी किए विचार।
जो निन्दत निन्दित भयो,
बिदित बुद्ध अवतार॥

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज राजनीति के भी प्रौढ़ पण्डित थे। यद्यपि अपने ग्रंथ में उन्होंने किसी प्रकार की शासन प्रणाली का समर्थन नहीं किया तथापि स्वराज्यवाद की अपेक्षा सुराज्यवाद को वे कहीं अच्छा समझते थे A good government is a far better subs. titute for a party-governmeut. सो बात भी नहीं कि गोस्वामीजी विदेशी शासन के पक्षपाती हों। उन जैसा देशभक्त और कौन होगा, जिन्होंने अपनी वाणी के प्रबल प्रताप द्वारा मुगलिया वंश को समूल नष्ट कर देने के लिए दो धनुर्धारी राम भक्तों को जन्म दिया—दक्षिण भारत में सामर्थ्य श्रीरामदास तथा उत्तर भारत में वीर बन्दा वैरागी। परन्तु गोस्वामी जी महाराज की दृष्टि में स्वराज्य का अर्थ अपनों द्वारा प्रजा शोषण नहीं। राज्य अपना हो परन्तु सुराज्य हो।A good and fair Self-Government.

वास्तव में राज्य किसी व्यक्ति विशेष की निजि सम्पत्ति नहीं। प्रजा के प्रत्येक वर्ग का, प्रत्येक व्यक्ति का राष्ट्र की सम्पत्ति पर समान अधिकार है। राजा राज्य का मालिक नहीं है, केवल सेवक मात्र है। राजा के पास राज्य प्रजा की एक धरोहर है जो राजा के सन्निकट सुरक्षा के भाव से धरा है। राजा की स्थिति केवल प्रवन्धक (Trustee) की है श्री रामचरितमानस में राजा का आसन वहुत ही उच्च और उत्तरदायत्वपूर्ण है।

मुखिया मुख सों चाहिए,
खान पान कहँ एक।
पालै पोसै सकल अँग,
तुलसी सहित विवेक॥

इस पद्य मंजुषा में गोस्वामी जी ने सारे राज्य-शासन-तत्व को भर दिया है।

तुलसी दास जी प्रत्येक दृष्टि से सुकवि किंवा महाकवि थे। उनकी रचना के सन्मुख भारतवर्ष के ही नहीं बल्कि विश्व भर के कवियों की सूझ नतमस्तक हो जाती है। केवल हिन्दी के कवियों की तुलना में ही नहीं, कवि-कुल-कमल कालिदास, भवभूति, दण्डी, माघ—से भी वे कहीं अधिक ऊँचे प्रतीत देते हैं।

अभी कुछ दिन पूर्व हेग में संसार भर के कवियों की एक सभा हुई, जिसमें इस बात का निर्णय होना था कि आज तक जितने भी कवि इस धरती पर हुए उन सब में से श्रेष्ठतम कवि कौन है। एक स्वर में गोस्वामी तुलसी दास को यह उच्चतम आसन प्रदान किया गया। शेक्सपीयर आदि विदेशी कवियों के साथ गोस्वामी जी की तुलना करते हुए मिश्रबन्धुओं ने एक स्थान पर लिखा है।

'संसार के किसी भी कवि के विषय में यह निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता कि उसने तुलसीदास जी से श्रेष्ठतर कविता की है, अंग्रेज़ी कविताचूड़ामणि महाकवि शेक्सपीयर की उपमा प्रायः इनसे दी जाती है और कतिपय अंग्रेज लेखकों ने ममतावश उसे इनसे भी कुछ बड़ा माना है। इसमें सन्देह नहीं कि उसके हैमलेट, मैकवेथ,विंटर्सटेल, आथेलो, किंगलियर, जूलियस सीज़र, वेनिस का सौदागर इत्यादि नाटक नामी और प्रशंसनीय हैं, परन्तु कुल बातों पर ध्यान देने से गोस्वामी जी में उससे चमत्कार पाया जाता है, विंटर्सटेल में प्रेम और उसकी जाँच का अच्छा चित्र खींचा गया है, पर सीताजी के प्रेम वर्णन के सामने वह फीका पड़ जाता है, आथेलो में उसका सन्देह एवं आयगो की धूर्तताबाला भाग मुख्यांश है, जो भानुप्रताप कथान्तर्गत कपटी मुनि के वर्णन से पीछे छूट जावेगा। किंगलियर में कार्नीलिया का पितृ-प्रेम एवं गान-

रिल और रीगन की चालाकी तथा लियर पर उन का प्रभाव अच्छा वर्णित हुआ है, परन्तु कैकेयी की कुटिलता पर दशरथ की दशा एवं श्रीराम का पितृ-प्रेम वाले वर्णनों के सामने बरवस कहना पड़ेगा कि किंगलियर किसी लड़के की रचना है। जूलियस सीजर का परम पुरुषार्थ, ब्रूट्स की मूर्खता एवं ऐन्टनीकी वक्तृता अच्छी है, पर इनकी प्रभा अयोध्याकांड के अनेकानेक व्याख्यानों के सामने एकदम मन्द पड़ जाती है।

मर्चेन्ट आफ वेनिस में सन्दूक खोलने में प्रणयी लोगों के विचार एवं न्यायालय का दृश्य अच्छा है। इनके सामने स्वयम्वर में राम द्वारा धनुष टूटने के समय सीता व उनकी माता के विचार एवं अन्य अनेक वर्णन कहीं-कहीं बढ़ेचढ़े हैं। हैंमलेट और मैकवेथ परम प्रशंसनीय ग्रन्थ हैं; पर रामायण में अयोध्याकांड के वर्णन उनसे कम कदापि नहीं हो सकते। शेक्सपियर ने कुल मिलाकर आकार में गोस्वामीजी से प्रायःड्योढ़ी कविता की है, जिसमें प्रायः आधा गद्य है। ग्रंथों में मानुषीय प्रकृति और नैसर्गिक पदार्थों के ऐसे ऐसे और मनोहर चित्र खींचे गये हैं, कि उन्हें पढ़कर अवाक् रहजाना और उक्त कविकुलमुकुट के सन्मुख शिर नीचा करना पड़ता है। उसने प्रायः सभी प्रकारके मनुष्यों की प्रकृतियों, विविध दशाओं, श्रृंगार एवं हास्यरसों और अन्य कई तरह के चमत्कारी विषयों के चित्ताकर्षक वर्णन किए हैं, तथा कथानक संगठन में अच्छी सफलता पाई है। शांत, वीर और भयानक रसों को छोड़ अन्य रसों के भी बड़े ही उत्तम उदाहरण उसमें पाये जाते हैं। सबसे बढ़कर बात यह है कि मानुषीय प्रकृति का वर्णन शेक्सपियर ने अद्वितीय किया है। पर गोस्वामीजी ने मानुषीय प्रकृति, का अत्यन्त सच्चा और मनोहर वर्णन करके जो ईश्वरीय प्रकृति, शान्तरस, काव्यांगों और भक्ति भाव की अटूट तरंगें प्रवाहित की हैं, जिनमें निमग्न होकर वे इस स्वार्थी संसार के बहुत परे उठ गये हैं, उनका स्वाद साधारण संसारी जातियों के विद्वानों तक को पूर्णरीति से अनुभूत नहीं हो सकता। गोस्वामी जी के वर्णन को पढ़ मनुष्यनीच और उच्च सभी प्रकार की प्रकृतियों को भली-भाँति जानकर उत्तम मार्ग की ओर ही प्रवृत्त होगा। भक्तिरस का जो गम्भीर और हृदयद्रावक भाव इनकी रचनाओं में हर स्थान पर वर्तमान रहता है. उसके सामने शेक्सपियर कुछ भी उपस्थित नहीं कर सकता।"

राष्ट्र-निर्माण में कवियों, सन्तों और योद्धाओं का समान भाग है, राष्ट्र रूपी रथ के योद्धा घोड़े हैं, कवि पहिये हैं और सन्त सारथी हैं। कोई भी राष्ट्र चरित्र-बल के सहारे ही जीवित है। सदाचार जीवन है और दुराचार मृत्यु। तुलसीदास ने राष्ट्र के सदाचार को तिल मात्र भी गिरने नहीं दिया।

गोस्वामी तुलसीदास ने अपना कोई मत नहीं चलाया, किसी सम्प्रदाय के वे आचार्य्य नहीं बने। यदि वह चाहते तो बन सकते थे। उन्होंने देश में विशुद्धराष्ट्र-धर्म का प्रचार किया, उन्होंने श्रीराम को आदर्श पुरुष के रूप में राष्ट्र के सन्मुख उपस्थित किया। राम की धर्म-निष्ठा उनका स्त्रीव्रत, ब्रह्मचर्य, सत्यपरायणता, पितृ-भक्ति, भ्रातृस्नेह, पतितोद्धारण और प्रजावात्सल्य आज हमारा पथ-प्रदर्शन कर रहा है।

राम के इन्हीं पावन गुणों को स्मरण कर और रामनामामृतका पानकर आज हिन्दू जाति जीवित है। इस सुधारस को राज-प्रासाद से ले कर पर्णकुटीर पर्यन्त पहुँचाने का श्रेय गोस्वामी

तुलसी दास जी के रामचरितमानस को है। राम की पवित्र कथाओं को पढ़-पढ़ कर ही आज करोड़ों हिन्दू, हिन्दू-जाति की गोद में आमोद-प्रमोद से जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

परन्तु तुलसी के राम अतीत की वस्तु होते हुए भी भविष्य की आशा किरण थे—आज से चार सौ वर्ष पहले जो समस्यायें देश के सामने थीं,—देश गुलाम था, स्वतन्त्रता संग्राम के सेनानी हिम्मत हार चुके थे,—कौन था आज़ादी की लड़ाई लड़ने वाला सिवाय एक महाराणा प्रताप के। उस समय का वर्णन करते हुए किसी कवि ने कहा है :—

जब सब राजे राज़ी खुशी हाथों हाथ बेच,
अपनी रहे थे शान दिल्ली दरबार में।
जब हिन्दु देवियों के प्राणन से प्यारी लाज,
लुटती थी रोज़ नव रोज़ के त्योहारों में।
अस्त हो चुका था जब हिन्दुओं का भाग्य भानु,
जंग सा लगा था क्षत्रियों की तलवार में।
तब भी प्रताप के प्रताप से ही मातृ भूमि,
भारत का मान रहा ऊंचा संसार में॥
चीखते थे हाथी हय्य हींसते थे बार बार,
वैरियों में रल्ला सुन हल्ला मच जाता था।
कट्टट कट्टट रुण्ड मुण्ड गिरते तुरक्कन के,
झट्टट पट्टट वीरता का झंडा गड़ जाता था।
हेकड़ों की हेकड़ी दबा के दुम भागती थी,
वैरियों का सारा मद मान भग जाता था।
लेकर स्वतन्त्रता की तेज़ तलवार जब,
प्रणवीर प्रबल प्रताप अड़ जाता था॥

तुलसी के सम्बन्ध में वेणी कवि लिखते हैं—

बेद मत सोधि सोधि, सोधि कै पुराण सबै,
संत और असंतन को भेद को बतावतो।
कपटी कुराही कूर कलि के कुचाली जीव,
कौन राम नामहूं की चर्चा चलावतो।
"वेणी" कवि कहैं मानो मानो हो प्रतीति यह,
पाहन हिय में कौन प्रेम उपजावतो।
भारी भवसागर उतारतो कवन पार,
जो पै दास तुलसी रामायण न गावतो॥

उस समय जबकि देश में चारों ओर निराशा छा चुकी थी, राजनीतिक पराधीनता का युग शुरू हो चुका था और 'राजनीतिक पराधीनता के साथ नैतिक पराधीनता भी धीरे-धीरे छाया के समान पीछे-पीछे आ रही थी,—जब अकबरी दीने-इलाही का सैक्यूलरइज्म धर्म को खा रहा था, हिन्दुत्व की भावना मिटती जा रही थी, ऐसी अवस्था में कलिपावनावतार राष्ट्र-निर्माता गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरितमानस की रचना रची।

निज संदेह मोह भ्रम हरनी।
करउँ कथा भव सरिता तरनी॥
बुध विश्राम सकल जन रंजनि।
रामकथा कलि कलुष विभंजनि॥
रामकथा कलि कामद गाइ।
सुजन सजीवन मूरि सुहाइ॥
संत समाज पयोधि रमा सी।
विस्व भार भर अचल छमा सी॥
सिवप्रिय मेकल सैल सुता सी।
सकल सिद्धि सुख संपति रासी॥
रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग स्नेह बन सिय रघुबीर बिहारु॥

अपने समय की अवस्था का वर्णन स्वयं जो तुलसी दास जी ने किया है, वह तुलसी के ही शब्दों में सुनिये।

बेखत भीमरूप सब पापी।
निसिचर निकर देव परितापी॥
करहिं उपद्रव असुर निकाया।
नाना रूप धरहिं करि माया॥

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला ।
सो सब करहिं वेद प्रतिकूला ॥
जेहिं जेहिं देस धेनु द्विज पावहिं ।
नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं ॥
सुभ आचरण कतहुँ नहिं होई ।
देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरिभगति जग्य तप ग्याना ।
सपनेहुँ सुनिअ न वेद पुराना ॥
जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा ।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा ॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना ।
तेहिं बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना ॥
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं ।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ॥
बाढ़े खल बहु चोर जुआरा ।
जे लंपट परधन परदारा ॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा ।
साधुन्ह सन करवावहिं सेवा ॥
जिन्ह के यह आचरण भवानी ।
ते जानेहु निसिचर सब प्रानी ॥

यह वर्णन रावण के ज़माने का नहीं, आज से चार सौ वर्ष पूर्व मुगल राज्य के समय का है। बालमीकि के राम जो कर चुके थे, तुलसी चाहते थे उन के राम धरती पर प्रकट हो एक बार वैसी ही लीला फिर करें।

गोस्वामी जी महाराज ने अपने रामचरित मानस का श्री गणेश गुरुदेव की वन्दना से किया है—

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिन्धु नररूप हरि ।
महामोह तम पुंज जासु वचन रविकर निकर ॥
बंदउँ गुरु पद पदुम परागा ।
सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू ।
समन सकल भव रुज परिवारू ॥
सुकृति संभु तन विमल बिभूति ।
मंजुल मंगल मोद प्रसूति ॥
जन मन मंजु मुकुर मल हरनी ।
किएँ तिलक गुन गन बस करनी ॥
श्रीगुर पद नख मनि गन जोती ।
सुमिरत दिब्य दृष्टि हियं होती ॥
दलन मोह तम सो सप्रकासू ।
बड़े भाग उर आवइ जासू ॥
उघरहिं बिमल बिलोचन ही के ।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के ॥
सूझहिं राम चरित मनि मानिक ।
गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक ॥
जथा सुअंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान ।
कौतुक देखत सैल बन भूतल भूरि निधान ॥
गुरु पद रज मृदु मंजुल अंजन ।
नयन अमिअ दृग दोष विभंजन ॥
तेहिं करि बिमल बिबेक बिलोचन ।
बरनउँ राम चरित भव मोचन ॥

रामचरितमानस में सर्वप्रथम स्थान है गुरु बन्दना का—

हमारी संस्कृति में गुरु का स्थान बहुत ऊंचा है, किन्हीं अवस्थाओं में तो माता और पिता से भी ऊंचा है,—सिकन्दर को किसी ने पूछा, तुम अपने माता पिता से भी बढ़ कर गुरु का मान क्यों करते हो, सिकन्दर ने कहा—मेरे माता-पिता तो मुझे घसीट कर आकाश से पृथ्वी तल पर लाए, परन्तु मेरे सद्‌गुरु ने अपने सदुपदेशों द्वारा मुझे धरती से ऊंचा उठा कर एक बार पुनः आकाश तक पहुंचा दिया। शास्त्र ने भी यद्यपि गुरु को माता पिता से ऊँचा स्थान तो नहीं दिया, परन्तु माता-पिता के बराबर का दर्जा अवश्य दिया है। मातृमान् पितृमान् आचार्यवान्, पुरुषो वेद। जहां वेद मातृ देवो भव, पितृ देवो भव का उपदेश देता है, वहां साथ ही साथ

आचार्य देवोभव का आदेश भी है।

प्राचीन काल में, हमारे देश में प्रत्येक व्यक्ति के लिये गुरु का होना बहुत ज़रूरी था— जिस प्रकार माता का होना जरूरी है, पिता का होना ज़रूरी है उसी प्रकार गुरु का होना भी ज़रुरी है। आप किसी को पूछें,—आप के पिता का नाम? वह कहे,—मुझे पता नहीं। आप उस पर हंसेंगे। आप पूछें, आपकी माता का नाम? वह कहे, मुझे पता नहीं, आप उस पर हंसेंगे। इसी प्रकार इस देश में ऐसा समय भी था, जब आप किसी से प्रश्न करें, आप के गुरु का नाम,— वह कहे मुझे पता नहीं,—आप उस पर हंसेंगे और उसे निगोड़ा (निर्गु रा) कहेंगे।

हमारे इस देश में प्रत्येक व्यक्ति के तीन गुरु थे—शिक्षा गुरु, दीक्षा गुरु, कल गुरु। महामुनि वाल्मीकि प्रभु रामचन्द्र के शिक्षा गुरु थे, महामुनि विश्वामित्र उनके दीक्षा गुरु थे और महामुनि वसिष्ठ उन के कुल गुरु थे।—श्री राम ने स्वयं कहा है—गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। भगवान् कृष्ण के सम्बन्ध में ऐसी ही बात है। सांदीपनि कृष्ण के शिक्षा गुरु थे, घोर अंगीरस उनके दीक्षा गुरु थे और गर्ग जी उन के कुल गुरु थे।

वीर वैरागी के दीक्षा गुरु गोबिन्द सिंह।
शिवा जी के दीक्षा गुरु स्वामी रामदास।
विवेकानन्द के दीक्षा गुरु रामकृष्णपरमहंस।
इन्दिरा के दीक्षा गुरु जवाहरलाल।
जवाहर लाल के दीक्षा गुरु गान्धी।
गांधी जी के दीक्षा गुरु गोखले।
गोखले के दीक्षा गुरु राणाडे
राणाडे के दीक्षा गुरु ऋषि दयानन्द।
दयानन्द के दीक्षा गुरु विरजानन्द।
विरजानन्द के दीक्षा गुरु पूर्णानन्द।

शास्त्र में गुरु को भवरोग वैद्य कहा गया है, प्रभु के भवन की कुन्जी सद्‌गुरु के हाथ में है। गुरु देव ही जड़-चेतन की गांठ खोलने में सर्व सामर्थ्य हैं। जब सद्‌गुरु देव की कृपा हो जाती है तो उजड़े बाग हरे हो जाते हैं। सदगुरु भव सागर के खेवट हैं—मन की चादर काम, क्रोध, मोह, अहंकार के बुरे दाग लग कर मैली हो गई है। यह गुरु के घाट पर ही जाकर धोई जा सकती है। सद्‌गुरु देव ज्ञान रूपी साबुन लगा कर इन बुरे धब्बों को मन से निकाल देते हैं।

गुरु धोबी शिष्य कापड़ा, साबुन सरजनहार।
सुरत शिला पर धोइए निकसे रंग अपार॥

गुरु की महिमा गाते हुए तुलसी दास जी फरमाते हैं—

नरतन भववारिधि कहं बेरो।
सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो॥
करणधार सद्‌गुरु दृढ़नावा।
दुर्लभ साज सहज सो पावा॥

प्रभु ने भवसागर से पार होने को हमें यह शरीर रूपी नाव दी है। नाव ऊपर से कितनी भी सुन्दर क्यों न हो परन्तु नाव की तह में छोटा सा छिद्र भी नाव को डुबो देता है।

इसी प्रकार चरित्र का छोटा सा दोष भी मनुष्य को ले डूबता है। सद्‌गुरु ऐसा शिल्पकार है, विश्व कर्मा का प्रतिनिधि है—वह नाव में पानी भरने से पूर्व ही चरित्र के दोष रूपी छिद्र को बन्द कर देता है।

सुनो! एक बात कहता हूँ, ध्यान से सुनो— खटमलों से भरे पलंग में शरीर को नींद भले ही आ जाय, परन्तु खटमलों से भरे शरीर में आत्मा को नींद कभी नहीं आ सकती। और जानते हो पलंग से खटमल कैसे भगाये जाते हैं। पलंग को धूप में डालो। पलंग पर खौलता

गरम पानी डालो—इसी प्रकार से शरीर को तपस्या की अग्नि में डालो। मैं कहता हूँ शरीर को आराम तलबी की आदत मत डालो, तपस्वी बनो। मन के पीछे मत लगो, मन को अपने पीछे लगाओ। करके देख लो एक तजुर्बा। चारपाई को डाल दो ठंडी जगह और फिर देखो खटमलों की बहार। शरीर को कोकाकोला पिलाना, गरमी में इसे शिमला मसूरी की सैर कराना—मानों शरीर के षटमलों—काम, क्रोध, लाभ, मोह, मत्सरता, अहंकार को टी-पारटी देना है—इन्हीं षटमलों का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी महाराज लिखते हैं—

सुनहु तात अब मानस रोगा।
जिन्ह ते दुख पावहिं सब लोगा॥
मोह सकल ब्याधिन्ह कर मूला।
तिन्ह ते पुनि उपजहिंसब सूला॥
काम बात कफ लोभ अपारा।
क्रोध पित्त नित छाती जारा॥
प्रीति करहिं जो तीनिउ भाई।
उपजइ सन्निपात दुखदाई॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना।
ते सब सूल नाम को जाना॥
ममता दादु कंडु इरषाई।
हरष बिषाद गरह बहुताई॥
पर सुख देखि जरनि-सोई छई।
कुष्ट दुष्टता मन कुटलई॥
अहंकार अति दुखद डमरुआ।
दंभ कपट मद मान नेहरुआ॥
तृस्ना उदरबृद्धि अति भारी।
त्रिबिधि ईषना तरुन तिजारी॥
जुग बिधि ज्वर मत्सर अबिबेका।
कहं लगि कहौं कुरोग अनेका॥

एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि।
पीड़हिं संतत जीव कहुं सो किमि लहै समाधि॥
नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥

एहि बिधि सकल जीव जग रोगी।
सोक हरष भय प्रीति बियोगी॥

पीली पाती खाय जो उन्हें सतावे काम।
कोका कोला जो पीयें उनकी जाने राम॥

जिस प्रकार वैद्य लोग रोग का निदान और पथ्य बतलाते हैं, उसी प्रकार सद्गुरु आध्यात्मिक रोग का नुसखा तथा पथ्य बतलाते हैं और ज्ञान देकर मुक्ति का मार्ग बतलाते हैं, जिस प्रकार दही का जामन लगाने से दूध जमता है, जोगियों से मन्त्र सीखे बिना नाग वश में नहीं आता, इसी प्रकार पूर्ण गुरु के ज्ञान के बिना चंचल मन बमें नहीं आता और हृदय का अंधकार दूर नहीं होता। दीपक के बिना जैसे अन्धेरा दूर नहीं होता, इसी प्रकार गुरु के ज्ञान के बिना मन का अन्धेरा दूर नहीं होता। खोटे सोने का खोट तो सुनार की भट्टी में ही दूर होगा।

इन रोगों का इलाज क्या है, यह भी गोस्वामी जी के श्रीमुख से सुनिये—

मानस रोग कछुक मैं गाए।
हंहि सब के लखि बिरलेन्ह पाए॥
जाने ते छीजहिं कछु पापी।
नास न पावहिं जन परितापी॥
राम कृपां नासहिं सब रोगा।
जौं एहि भांति बनै संयोगा॥
सद्गुर बैद बचन बिस्वासा।
संजम यह न विषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी।
अनु पान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधिभलेहिं सो रोग नसाहीं।
नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥
जानिअ तब मन बिरुज गोसाईं।
जब उर बल बिराग अधिकाई॥

सिव अज सुक सनकादिक नारद ।
जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ॥
सब कर मत खगनायक एहा ।
करिअ राम पद पंकज नेहा ॥
श्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं ।
रघुपति भगति बिना सुख नाहीं ॥
अन्धकार बरु रबिहि नसावै ।
राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई ।
बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥
बारि मथे घृत होइ बरु सिकता ते बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिअ यह सिद्धांत अपेल ॥

आओ, जरा विचारें तो ! !!

हम जो हम हैं, आखिर हम हैं क्या। हमारा "अहम" दो वस्तुओं का मेल है, आत्मा और शरीर का । दोनों के मिलाप से ही हमारी यह सत्ता स्थिर है । इस लिए इस जीवन यात्रा को सफल बनाने के लिए हमें यह जानना जरूरी है कि हमारा शरीर और हमारी आत्मा किस प्रकार परिपूर्णता का प्राप्त हो । मुकद्दमे में हम योग्य वकील का परामर्श लेते हैं, रासता भूल जाने पर बड़े-बड़े शास्त्रार्थ महारथी भी राह जाते अपढ़ गंवार से रासता पूछते हैं, बीमारी में वैद्य के पास जाना पड़ता है । मुहल्ला में पहुँच कर भी किसान को किसी न किसी से अपने मित्र के घर का पता पूछना पड़ता है—जिस प्रकार तीर्थ स्नान के लिए पंडे की आवश्यकता है, जिस पकार किले को, अदभुतालय को अथवा चिड़िया घर को समझने के लिए गाईड Guide की आवश्यकता है, उसी प्रकार संसार को समझने के लिये गुरु की आवश्यकता है ।

जब कच्चा और खट्टा फल सूर्य के सम्मुख होता है, और उसकी धूप को सहता है तो वह मीठा बन जाता है। इसी प्रकार जीव का सहज रूप सूर्य के सदुपदेश रूपी धूप से परिपक्वावस्था को प्राप्त कर जाता है ।

गुर सांचे का सिर पर छाया ।
तिसने गुप्त खजाना पाया ॥

गुरु ब्रह्मनिष्ठ होते हैं । वे शिष्य में भक्ति की रुचि पैदा कर देते हैं, ज्योति से ही ज्योति जगती है । गुरु ने नाम की कमाइ की होती है और रासता देखा होता है । जिस प्रकार पुत्र, केवल पुत्र होने के नाते ही अपने पिता की सम्पत्ति का अधिकारी बन जाता है उसी प्रकार शिष्य भी शिष्य बनते ही अपने सद्गुरु देव की आध्यात्मिक निधि में भागीदार बन जाता है ।

गुरु दो शब्दों से मिल कर बना है—गु का अर्थ है अन्धेरा, रु का अर्थ है दूर करने वाला । गुरु का अर्थ है, अज्ञान रूपी अन्धेरे को दूर करने वाला । सत् है वह परमात्मा—इसी लिये उस परमात्मा की प्राप्ति का जो मार्गहै उसे सद्मार्ग कहते हैं । उस सन्मार्ग दर्शक का नाम है गुरु । इस लिये सद्गुरु वही है जो प्रभु तक पहुँचने का मार्ग दिखाये, साधक के साधना पथ को जो प्रकाशमान कर दे, जो साधक के मन की प्रत्येक शंका को मिटा दे, जड़-चेतन गांठ को खोले और घर में घर दिखलाए, जो हमें सत् में स्थिति कराए और मिथ्या से बचाये , वही सद्गुरु है ।

सत् का मार्ग वही बतायेगा, जिसने स्वयं सत् का मार्ग देखा होगा । साध्य से भी साधन बड़ा होता है । जैसे धन से भी धन-प्राप्ति का साधन बड़ा है । इसी भाव को लेकर गुरु को भगवान् से भी बड़ा कहा है ।

सद्गुरु की दूसरी पहचान यह है कि वह

शिष्य की शंकाओं का समाधान करे, उसे सच्चा ज्ञान दे। केवल मन्त्र फूंकने वाले का नाम गुरु नहीं है। गुरु वह है जो अज्ञान के कार्य जन्म, मरण रूपी संसार से आत्म-ज्ञान का उपदेश करके छुड़ा देवे और चित्त के संशय दूर कर देवे—सद्गुरु का अपनी जिह्वा पर काबू हो—जो धन और स्त्री की ओर आंख उठा कर भी न देखे।

जीभ के स्वाद पर काबू जिसने पा लिया हो, जिसे क्रोध न आता हो, वह वीतराग हो, शान्ति, भक्ति, सन्तोष का खजाना हो, ईश्वरीय इच्छा को ही अपनी इच्छा मानने वाला हो। आठों पहर राम-नाम में लीन रहे और प्रेम की मूर्ति हो।

श्रद्धा गुरु में करनी चाहिए—प्रेम भगवान् में, गुरु के बताये हुए साधन को अपने जीवन म ढाल लेना और तदनुसार अपना जीवन बना लेना ही गुरु से उऋण होना है। हाड़ मांस का शरीर ही गुरु नहीं, शब्द ही गुरु है। गुरु में जो दिव्य ज्ञान है वही गुरु है—

गुरु महिमा के साथ-साथ गोस्वामी जी ने सत्संग की महिमा गाई है—सत्संग एक निराला अमृत है। यह एक अमृत का प्याला है, जो इसे पीता है अमर हो जाता है, सत् का अर्थ है परमात्मा, उस परमात्मा को जानने वाले जो महापुरुष हैं उनको सत्पुरुष कहते हैं। सन्मार्ग, सत्कथा, सत्संग—जिस सम्मेलन में प्रभु चरचा हो उसे सत्संग कहते हैं।

नवधा भक्ति में पहली भक्ति सन्तों का सत्संग है। सत्संग में भ्रमों का नाश होता है, ज्ञान की प्राप्ति होती है, मन का मैल धुल जाता है, मन रूपी काग हंस बन जाता है और गन्दगी छोड़ कर मोती चुगने लग जाता है।

सत्संग की महिमा गाते हुए तुलसी दास जी महाराज कहते हैं—

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई।
पारस परस कुधातु सुहाई॥
सत संगति दुर्लभ संसारा।
निमिष दंड भरि एकउ बारा॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा।
धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा॥
बिधि हरि हर कबि कोविद बानी।
कहत साधु महिमा सकुचानी॥
मुद मंगल मय सन्त समाजू।
जो जग जंगम तीरथ राजू॥
राम भक्ति जहं सुरसरी धारा।
सरसई ब्रह्म विचार प्रचारा॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू।
लोकहुं बेद बिदित सब काहू॥
गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा।
कीचहि मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं।
सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥
धूम कुसंगति कारिख होई।
लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता।
होइ जलद जग जीवन दाता॥
ग्रह भेषज जल पवन पट पाई कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥

सन्तों का समाज आनन्द और मङ्गल रूप है। सन्त का शरीर चलता फिरता प्रयाग है। सन्त के श्रीमुख से निकला एक-एक अक्षर सरस्वती की धारा है।

आग के पास बैठने से गरमी लगती है।
पानी के पास बैठने से ठंडक लगती है।
धन के साथ मन लगाने से लोभ बढ़ता है।
स्त्री के साथ मन लगाने से काम बढ़ता है।
परिवार के साथ मन लगाने से मोह बढ़ता है।

विद्वानों को संगत से विद्या की प्राप्ति होती है।
ज्ञानियों की संगत से ज्ञान पैदा होता है।
सन्तों के सत्संग से शाँति प्राप्त होती है।
संगत को रंगत जरूर चढ़ती है।

महापुरुषों के शरीर से हर समय पवित्र किरणें छूटती रहती हैं, जो कि समीप में रहने वाले पुरुष पर अपना प्रभाव अवश्य दिखाती हैं।

महापुरुषों के सत्संग से मनुष्य को अपने बुरे कर्मों पर पश्चाताप होता है। पश्चाताप से वैराग्य होता है, वैराग्य का पिता है पश्चाताप, वैराग्य का पुत्र है त्याग, त्याग का पुत्र है सुख और स्त्री है शान्ति, त्याग के बिना सुख और शान्ति की प्राप्ति नहीं होती परन्तु इनका पिता है सत्संग।

गुरु की महिमा, एवं सत्संग की महिमा गाने के पश्चात् गोस्वामीजी ने नाम की महिमा गाई है। निःसन्देह सबसे बड़ा धनवान् वही है जिसके पास नाम धन है।—सन्त कबीर फरमाते हैं।

कबीरा सब जग निर्धना धनवन्ता नहीं कोय।
धनवन्ता सो जानिये जो प्रभु नाम धन होय।।

नाम की खड्ग जिसके हाथ में है वह निर्भय है। उसे यम का अथवा मृत्यु का कोई भय नहीं। जैसे अग्नि तिनकों के ढेर को जला कर राख बना देती है उसी प्रकार नाम का एटम बम जब पापों के पुंज पर टूटता है, फक्का नहीं छोड़ता-गोस्वामी जी कहते हैं।

राम नाम मनिदीप धरु, जीह देहरि द्वार।
तुलसी भीतर बाहरो, जौं चाहत उज्यार।

जिस प्रकार ड्योढ़ी में दीपक रखने से घर में अन्दर-बाहर प्रकाश हो जाता है इसी प्रकार जिह्वा पर राम नाम रूपी मणि दीपक रखने से मनुष्य के अन्दर-बाहर प्रकाश हो जायगा।

सुख मणि साहिब में गुरु जी महाराज फरमाते हैं—

प्रभु के सिमरन तृष्णा बूझे।।
प्रभु के सिमरण सब कुछ सूझे।।
प्रभु के सिमरन नाहीं यम त्रासा।
प्रभु के सिमरन पूर्ण आसा।।

सत्संग मानो बैंक की बिल्डिंग है, गुरु देव बैंक के मैनेजर हैं, नाम बैंक की पूंजी है, Cash deposit है। वह बाग बाग नहीं जिस में फूल और फल न हों, वह घर घर नहीं जिस में सन्तान की चहल-पहल न हो, वह बैंक बैंक नहीं जिस में रिज़र्व कैश डिपौज़िट न हो, वह जीवन-जीवन नहीं जिस में नाम रूपी जीवन ज्योति न हो।

नाम की महिमा गाते हुए गोस्वामी जी लिखते हैं—

नाम प्रसाव संभु अबिनासी।
साजु अमंगल मंगल रासी।।
सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी।
नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी।।
नारद जानेउ नाम प्रतापू।
जग प्रिय हरि हरि हरप्रिय आपू।।
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।।
भगत सिरोमनि मे प्रह्लादू।।
ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊं।
पायउ अचल अनूपम ठाऊं।।
सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने बस करि राखे रामू।।
अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ।
भए मुकुत हरि नाम प्रभाऊ।।
कहौं कहां लगि नाम बड़ाई।
रामु न सकहिं नाम गुन गाई।।
चहुं जग तीनि काल तिहुं लोका।
भए नाम जपि जीव बिसोका।।
बेद पुरान संत मत एहू।

सकल सुकृत फल राम सनेहू ।।
ध्याम प्रथम जुग मखबिधि दूजें ।
द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ।।
कलि केवल मल मूल मलीना ।
पाप पयोनिधि जन मन मीना ।।
नाम कामतरु काल कराला ।
सुमिरत समन सकल जग जाला ।।
राम नाम कलि अभिमत दाता ।
हित परलोक लोक पितु माता ।।
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू ।
राम नाम अवलंबन एकू ।।
कालनेमि कलि कपट निधानू ।
नाम सुमति समरथ हनुमानू ।।
राम नाम नरकेसरी कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि पालिहि दलि सुरसाल ।।

सियाराम सरूप अगाध अनूप
बिलोचन मीनन को जलु है ।
श्रुति राम कथा मुख राम को नाम
हिये पुनि रामहिं को थलु है ।
मति रामहिं सों गति रामहिसों
रति रामसों रामहिं को बलु है ।
सब की न कहै तुलसी के मते
इतनो जग जीवन को फलु है ।

भक्तों का हृदय कमल के समान है । प्रभु-सच्चे सूर्य हैं जिस की किरणें पड़ने से कमल खिल जाता है, भक्त के लिये राम नाम तो ऐसा है जैसे रंक को धन निधि मिली हो । जैसे डूबते को किनारा मिल जाय । जैसे सूखे धान पर जल पड़ा हो या जैसे प्यासी चातकनी को वर्षा में स्वाति की बून्द मिल गई हो । जैसा आनन्द मीन को अथाह सागर में है, चन्द्रमा के सामने चकोर को, वैसे ही आनन्द भक्त को प्रभु की शरण में है ।

जीभा तो तब ही भली, जपे हरि का नाम,
नहीं तो काट निकालिए मुख में भलो न चाम ।।

निगुण और सगुण के बीच में नाम सुन्दर साक्षी है और दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है ।

ममता ही दुःख का कारण है । यदि हमारी सूनी ममता और मिथ्या अहंकार मिट जाए तो तब ही हमें शान्ति प्राप्त होगी । एक ईश्वर ही सदा रहने वालो वस्तु है । उस की शरण में जाने से और उस के चरणों में ध्यान लगाने से ही सच्चा सुख मिल सकता है । नाशवान चीजों से सुख की आशा छोड़ दो । सच्चा सुख वैराग्य में है । सत्संग से ही मनुष्य को अपने कुकर्मों पर पश्चाताप होता है । वैराग्य से त्याग और त्याग से शान्ति मिलती है । मन की बागडोर अन्दर की ओर मोड़ो । इसे बाहर मुखी न होने दो । जब सौ प्रतिशत मन संसार से हटा कर परमात्मा को देखोगे तो साक्षात्कार होगा, पहले नहीं । संसार रूपी सांप से काटे हुए के लिये एक ही औषधि है सतसंग, प्रभु-उपासना ।

आप ने न्योले और सर्प का युद्ध देखा होगा । न्योला बार-बार भागता है, फिर लौटता है, फिर भागता है थोड़ी देर में आकर फिर मैदान में जम जाता है । जानते हो वह बार-बार ऐसा क्यों करता है । उसे एक औषधी का ज्ञान है । सर्पदंश का जब न्योले पर विष चढ़ता है तो न्योला भाग जाता है । और एक बूटी विशेष के साथ अपने शरीर को रगड़ता है, सर्पदंश के प्रभाव को समाप्त कर फिर सर्प के साथ युद्ध में आ डटता है इसी प्रकार अंत में सर्प को मार डालता है । हमारी दशा भी उस न्योले के समान है । संसार के विषय वासना रूपी सर्पदंश जब हमारे शरीर में अपना कुप्रभाव जमाने लगते हैं, हम भागते हैं सतसंग में । २३ घंटे विषय वासनाओं से संग्राम लड़ते जो विष

हमारे शरीर में समा गया, एक घड़ी का सत्संग उस विष के प्रभाव को दूर कर देता है। और सच्चा सत्संगी इसी प्रकार आत्म-विजयी हो जाता है।

यह मन बड़ा दुष्ट है, पता नहीं कब धोखा दे दे, The deadliest enemy of mankind is his own disturbed mind इस लिये गीता में भगवान् ने कहा है—

आत्मैव आत्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मना।

मैं फिर कहता हूँ मन बड़ा धोखेबाज़ है। जो मनमानी करता है वह दुःख उठाता है। बिगड़ा हुआ मन मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। भर्तृहरि राजपाट को लातमारकर बन को चला गया। पूर्णमासी का दिन था, रास्ते में किसी ने पान खाकर थूका हुआ था। चन्द्रमा की किरणें उस थूक पर पड़ रही थीं। भर्तृहरि का मन ललचा गया, समझा ये कोई हीरा पड़ा है, उठाने लगे तो हाथ थूक से भर गया। गांधी के चेले सन् ४७ के पहले त्याग और तपस्या की मूर्ति थे। पन्द्रह अगस्त सन् ४७ के दिन खजाने की चाबियाँ हाथ में आते ही मन बदल गया। त्यागी महात्मा अवध के नवाब वाजिद अली शाह बन बैठे। हमारी और आपकी गिनती ही क्या! इतने बड़े नारद बाबा उनका मन भी उन को धोखा दे गया, कब धोखा दे गया, कैसे धोखा दे गया। सुनाता हूं कहानी, तुलसीदास जी की जवानी।

एक बार करतल बर बीना।
गावत हरि गुन गान प्रबीना॥
छीरसिंधु गवने मुनि नाथा।
जहं बस श्रीनिवास श्रुतिमाथा॥
हरषि मिले उठि रमानिकेता।
बैठे आसन रिषिहि समेता॥
बोले बिहसि चराचर राया।
बहुते दिनन कीन्हि मुनि दाया॥
काम चरित नारद सब भाषे।
जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया।
जेहि न मोह अस को जग जाया॥
रूख बदन करि बचन मृदु बोले श्रीभगवान्।
तुम्हरे सुमिरन तें मिटहिं मोह मार मद मान॥
सुनु मुनि मोह होइ मन ताकें।
ग्यान बिराग हृदय नहिं जाकें॥
ब्रह्मचरज ब्रत रत मतिधीरा।
तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा॥
नारद कहेउ सहित अभिमाना।
कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख बिचारी।
उर अंकुरेउ गरब तरु भारी॥
बेगि सो मैं डारिहउं उखारी।
पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई।
अवसि उपाय करबि मैं सोई॥
तब नारद हरि पद सिर नाई।
चले हृदयं अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी।
सुनहु कठिन करनी तेहि केरी॥
बिरचेउ मग महुं नगर तेहिं सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवासपुर तें अधिक रचना विविध प्रकार॥

एक समय देवर्षि नारद वीणा बजाते हरिगुण गाते बैकुण्ठ पहुंच गये। भगवान् बैकुण्ठ नाथ ने देवर्षि का यथोचित स्वागत किया, देवर्षि लगे अपनी प्रशंसा के पुल बांधने— मैंने यह किया, मैंने वह किया। प्रभु ने देखा, बाबा को अहंकार आ गया, जरा इस का इलाज कर दें—प्रभु ने माया रची श्री निवासपुरी बसा दी, वहां के राजा शील निधि की अत्यन्त स्वरूप वती पुत्री का स्वयंवर था। देवर्षि श्री निवास

पुरी पधारे, महाराज शीलनिधि आदर एवं सत्कार के साथ बाबा को राजमहल में ले गये। पुत्री को सादर ऋषि के सामने उपस्थित किया—इस का भाग्य देखिये—

आनि देखाई नारदहि भूपति राजकुमारी।
कहहु नाथ गुन दोष सब एहि के हृदयँ बिचारि ॥

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी।
बड़ी बार लगि रहे निहारी॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने।
हृदयं हरष नहिं प्रगट बखाने॥
जो एहि बरइ अमर सोइ होई।
समरभूमि तेहि जीत न कोई॥
सेवहिं सकल चराचर ताही।
बरइ सीलनिधि कन्या जाही॥
लच्छन सब बिचारि उर राखे।
कछुक बनाई भूप सन भाषे॥
सुता सुलच्छन कहि नृप पाहीं।
नारद चले सोच मन माहीं॥
करौं जाइ सोइ जतन बिचारी।
जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी॥
जप तप कछु न होइ एहि काला।
हे बिधि मिलइ कवन बिधि बाला॥

एहि अवसर चाहिअ परम सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि तब मेलै जयमाल॥

नारद का मन वदल गया। वृद्धावस्था में जवानी का भूत कंधे पर नाचने लगा, सोचा मुझ बढ़े को चाहेगी कौन? सोचा—हरि सन मांगौं सुन्दरताई। बस जा धमके बैकुण्ठ नाथ के दरबार में। घट-घट वासी अन्तर्यामी बड़े प्रसन्न हुए। उनका जादू कामयाब रहा।

पहुंचा-पहुंचा सब कहे, पहुंचे बिरला कोय।
एक कनक एक कामिनी, दुर्गम घाटी दोय।

फकीरा फकीरी दूर है, जितनी लंबी खजूर।
चढ़े तो पीवे प्रेम रस, गिरे तो चकनाचूर॥

नारद बाबा फिसल गये, बोले—

आपन रूप देहु प्रभु मोही।
आन भाँति नहिं पावौं ओही॥

भगवान् वैकुण्ठनाथ सब कुछ समझ गये। बूढ़े को धीरज बंधाते हुए बोले—महामुने! जो कुछ भी मुझ से हो सकेगा, मैं तुम्हारी भलाई के लिये वह सब कुछ अवश्य करूंगा।

कथा वहुत लंबी है थोड़े में ही कहेंगे, प्रसंग चला था पापी मन का। भगवान् ने कहा, नारद! जो तुम्हारे लिये हितकारी होगा वही करेंगे—जासु तुम्हार परम हित होई॥

यद् भद्रं तन्न आसुव।

रोगी जलेबी खाना चाहता है, परन्तु वैद्य उसे कड़वी दवाई देता है। ये तो वैद्य के लिये है, वह सोचे कि रोगी का हित किस में है। रसगुल्ला खाने में है अथवा कुनैन की गोली, फैन्टा पीने में है अथवा नीम का रस। भगवान् ने सोचा ये बूढ़ा विवाह करना चाहता है, इसका बुढ़ापा तबाह हो जायेगा। बुढ़ापे में जवान स्त्री पुरुष को श्मशान भूमि तक पहुँचाने में फ्रन्टियर मेल का काम करती है। भगवान बैकुण्ठनाथ ने बड़ी कृपा की, नारद बाबा को बन्दर का मुंह दे दिया। आगें की कथा तो फिर कभी सुनायेंगे अभी तो आप को मुझे यही दर्शाना था, मन बड़ा पापी है, धोखे बाज है। इस पापी मन ने नारद जैसे महापुरुष को भी स्त्री के चक्कर में डाल दिया। फिर आपकी और हमारी गिनती ही क्या—इसी लिये हम आप के सामने राम कथा कहते हैं। कोल्ड़ स्टोरेज है—राम-कथा। गोस्वामी जी महाराज स्वयं लिखते हैं।

रामचरितमानस एहि नामा।
सुनत श्रवण पायउ विश्रामा॥
मन करि विषय अनल बन जरहीं
होइ सुखि जो इह सर परहीं॥

(३)

रामावतार

श्री रामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गती
रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः ।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे
रामे भक्तिरखण्डिा भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः ।।

देवियो एवं भद्र पुरुषो !

रामावतार का एक मात्र लक्ष्य था—रावण वध। हम ने रावण को इस लिये नहीं मारा, क्योंकि रावण सीता जी को ले गया था, हम ने रावण को इस लिए मारा क्योंकि रावण को हमने मारना ही था। यदि हम रावण को न मारते निःसन्देह रावण हम को मार देता। आज भी तो मेरे देश में यही राम-रावण की लीला हो रही है। हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच शिमला और मरी में बैठ समझौते कितने ही हो जायें परन्तु हिन्दुस्थान और पाकिस्तान दोनों देश एक साथ इस धरती पर नहीं रह सकते। परमात्मा ने जिसे एक बनाया मनुष्य उसे दो कैसे बना सकता है। दो देशों के बीच में कोई प्राकृतिक सीमा होनी चाहिए, कोई नदी, कोई पर्वत, कोई समुद्र, कोई बहुत बड़ी लम्बी चौड़ी दीवार होनी चाहिए दोनों देशों के निवासियों की शक्लो सूरत में, वेश-भूषा में, रहने-सहने के तौर तरीकों में, बोल चाल में, रीति-रिवाज में—संस्कृति एवं सभ्यता में कोई विशेष अन्तर होना चाहिए, उन दो देशों के निवासी देखते ही पहचान लिये जाय,—देखने वाला झट कह दे यह अंग्रेज़ है, यह पठान है, यह चीनी है, यह जापानी है, यह नीग्रो है, यह हिन्दू है। परन्तु लाहौर के मुसलमान और अमृतसर के हिन्दू को आप एक लाईन में खड़े कर दीजिए, आप पहचान नहीं सकते हिन्दू कौन है, मुसलमान कौन है। शिमला सम्मेलन में, मरी सम्मेलन में, नई दिल्ली एवं रावलपिंडी के लोग एक ही टेबल पर बैठे, उनमें दुर्गाप्रसाद धर भी हैं, अज़ीज़ अहमद भी हैं। जब तक कोई आप को यह न बताय कि धर कौन है, अहमद कौन है आप स्वयं बता नहीं सकते।

अखण्ड भारत में जितने भी निवासी हैं दोनों के माता-पिता हिन्दु ही थे। सुविख्यात फिलम स्टार मीना कुमारी के नाना का नाम था—प्यारे लाल शाकिर, ज़ुल्फिकार अली खां के नाना का नाम था नारायण दास, इसी प्रकार रावण के दादा का नाम था पुलस्त्य :—मैं नहीं कहता स्वयं तुलसीदास कहते हैं—

भरद्वाज सुनु जाहि जब होइ बिधाता बाम ।
धूरि मेरुसम जनक जम ताहि ब्यालसम दाम ।

काल पाइ मुनि सुन सोइ राजा।
भयउ निसाचर सहित समाजा॥
दस सिर ताहि बीस भुजदंडा।
रावण नाम बीर बरिबंडा॥
भूप अनुज अरिमर्दन नामा।
भयउ सो कुंभकरन बलधामा॥
सचिव जो रहा धरमरुचि जासू।
भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
नाम बिभीषण जेहि जग जाना।
बिष्नुभगत बिग्यान निधाना॥

उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर श्राप बस भए सकल अघरूप।

अब सुनिये रावण जन्म की कहानी, महर्षि बाल्मीकी की जबानी।

एक बार मुनिवर पुलस्त्य धर्माचरण के प्रसङ्ग से महागिरि मेरु के निकटवर्ती राजर्षि तृण बिन्दु के आश्रम में गये और वहीं रहने लगे। उनका मन सदा धर्म में ही लगा रहता था। वे इन्द्रियों को संयम में रखते हुए प्रतिदिन वेदों का स्वाध्याय करते और तपस्या में लगे रहते थे। कुछ कन्यायें उन के आश्रम में जाकर उनकी तपस्या में बिघ्न डालने लगीं। ये कन्यायें प्रतिदिन वहाँ आकर गाती, बजाती तथा नाचती थीं। इससे वे महातेजस्वी पुलस्त्य कुछ रुष्ट हो गये और बोले—"कल से जो लड़की यहाँ मेरे दृष्टि पथ में आयगी" वह निश्चय ही गर्भ धारण कर लेगी। उन महात्मा की यह बात सुनकर वे सब कन्यायें डर गईं, और उन्होंने उस स्थान पर आना छोड़ दिया। परन्तु राजर्षि तृणबिन्दु की कन्या ने इस शाप को नहीं सुना था, इस लिये वे दूसरे दिन भी बेखटके आकर उस आश्रम में विचरने लगी।

सारांश यह कि राजर्षि तृणबिन्दु ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी कन्या का विवाह पुलस्त्य से कर दिया। उस कन्या के द्वारा एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिस का नाम था, पौलस्त्य—विश्रवा, विश्रवण अर्थात् वेद पाठ को दत्त चित्त होकर सुनने वाला।

ज्ञात्वा तस्य तु तद्वृत्तं भरद्वाजो महामुनिः।
ददौ विश्रवसे भार्यां स्वसुतां देववर्णिनीम्॥

विश्रवा के गुणों पर रीझ कर महामुनि भरद्वाज ने अपनी कन्या का विवाह विश्रवा के साथ कर दिया। भरद्वाज की कन्या से विश्रवा के एक पुत्र का जन्म हुआ, जिस का नाम रखा गया कुबेर, धनाध्यक्ष, वैश्रवण—लङ्का का राज्य उस समय शिथिल पड़ गया था,—परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए कुबेर ने लंका पर अधिकार जमा लिया—ब्रह्मा जी ने प्रसन्न होकर कुबेर को पुष्पक विमान दिया। लंका का राजा सुमाली भाग कर रसातल की ओर चला गया।

कुछ काल के पश्चात् नील मेघ के समान श्याम वर्णवाला राक्षस सुमाली अपनी सुन्दर कन्या को लेकर सारे मर्त्यलोक में विचरने लगा। सुमाली बड़ा बुद्धिमान था। वह सोचने लगा, क्या करने से हम राक्षसों का भला होगा? कैसे हम लोग उन्नति कर सकेंगे। विचार पूर्वक सोचने के पश्चात् वे अपनी पुत्री से बोले—बेटी! तुम प्रजापति के कुल में उत्पन्न, श्रेष्ठ गुण सम्पन्न, पुलस्त्यनन्दन मुनिवर विश्रवा का स्वयं चल कर पति रूप में वरण करो और उन की सेवा में रहो। पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख तथा सुन्दर कटि प्रदेशवाली उस सुन्दरी को देखकर उस परम उदार महर्षि ने पूछा—भद्रे! तुम किस की कन्या हो। कहाँ से यहाँ आई हो, मुझ से तुम्हारा क्या काम है अथवा किस उद्देश्य से यहाँ तुम्हारा आना हुआ है? शोभने! ये सब

बातें मुझे ठीक-ठीक बताओ।

विश्रवा के इस प्रकार पूछने पर उस कन्या ने हाथ जोड़ कर कहा,—मुने! आप अपने ही प्रभाव से मेरे मनोभाव को समझ सकते हैं, किन्तु ब्रह्मर्षे! मेरे मुख से इतना अवश्य जान लें कि मैं अपने पिता की आज्ञा से आप की सेवा में आई हूं और मेरा नाम कैकसी है। बाकी सब बातें आप को स्वतः जान लेनी चाहिएं मुझ से न कहलावें। इसी कैकसी के गर्भ से रावण, दशग्रीव का जन्म हुआ।

इस प्रकार से मानों पौलस्त्यवध रूपी रचना का बीजारोपण हुआ। इतिहास इस बात का साक्षी है कि औरत के प्रेम ने बड़े-बड़े साम्राज्यों को नष्ट-भ्रष्ट करके भस्मीभूत कर दिया। कुबेर और रावण दो सगे भाई थे, पिता एक था, माताएं दो थीं। यही बात रामायणी गाथा की पृष्ठ भूमि है।

कुछ समय वीतने पर धन के स्वामी कुबेर पुष्पक विमान पर आरुढ़ हो अपने पिता के दर्शन करने के लिए वहां आये। वे अपने तेज से प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें देखकर राक्षस कन्या कैकसी अपने पुत्र दशग्रीव के पास आई और बोली—"पुत्र! अपने भाई वैश्रवण की ओर तो देखो। वे कैसे तेजस्वी जान पड़ते हैं। भाई होने के नाते तुम इन्हीं के समान हो—परन्तु अपनी अवस्था देखो, कैसी है। अमित पराक्रमी दशग्रीव, मेरे बेटे! तुम भी कोई ऐसा यत्न करो, जिससे वैश्रवण की ही भांति तेज और वैभव से सम्पन्न हो जाओ।'—

माता की यह बात सुन कर प्रतापी दशग्रीव को अनुपम अमर्ष हुआ। उस ने तत्काल प्रतिज्ञा की—

सत्यं ते प्रतिजानामि भ्रातृतुल्योऽधिकोऽपि वा,
भविष्याम्योजसा चैव संतापं त्यज हृद्गतम् ॥

मां! तुम अपने हृदय की चिन्ता छोड़ो। मैं तुम से सच्ची प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूं कि अपने पराक्रम से भाई वैश्रवण के समान ही नहीं बल्कि उन से भी बढ़ कर हो जाऊंगा।

रावण, कुम्भकरण अब काफी बड़े हो गये थे—अपनी घोर तपस्या द्वारा दोनों ने गोकर्ण में जा कर ब्रह्मा से वरदान भी प्राप्त किये थे—

कीन्ह विविध तप तीनिहुं भाई।
परम उग्र नांहि बरनी सो जाई ॥
गयउ निकट तप देखि विधाता।
मागहु बर प्रसन्न मैं ताता ॥
करि बिनती पद गहि दससीसा।
बोलेउ बचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहिं न मारें।
बानर मनुज जाति दुइ बारें ॥
एवमस्तु तुम्ह बड़ तप कीन्हा!
मैं ब्रह्मां मिलि तेहि बर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुम्भकरन पहिं गयऊ।
तेहि विलोकि मन बिसमय भयऊ
जौं एहिं खल नित करब अहारू।
होइहि सब उजारि संसारू ॥
सारद प्रेरि तासु मति फेरी।
मागेसि नीद मास षट केरी ॥
गए बिभीषन पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु ॥
तिन्हहि देइ बर ब्रह्म सिधाए।
हरषित ते अपने गृह आए ॥

परिस्थितियों को अपने अनुकूल देख सुमालि रसातल से निकला, साथ ही मारीच, प्रहस्त, विरुपाक्ष और महोदर--ये उस राक्षस के चार मन्त्री भी रसातल से ऊपर को उठे। वे सब के सब रोषावेश से भरे हुए थे। श्रेष्ठ राक्षसों से घिरा हुआ सुमाली अपने सचिवों के

साथ दशग्रीव के पास गया और उसे छाती से लगा कर इस प्रकार बोला,—"वत्स ! बड़े सौभाग्य की बात है कि तुमने त्रिभुवन श्रेष्ठ ब्रह्मा से उत्तम वर प्राप्त किया। जिस से तुम्हें यह चिरकाल से चिन्तित मनोरथ उपलब्ध हो गया।

यत्कृते च वयं लङ्कां त्यक्त्वा. याता रसातलम् ।
तद्गतं नो महावाहो महद्विष्णुकृत भयम् ॥

महावाहो ! जिस महान भय के कारण हम सब राक्षस लङ्का छोड़ कर रसातल में चले गये थे। भगवान् विष्णु से प्राप्त होने वाला हमारा यह महान् भय दूर हो गया। हम सब लोग बार-बार भगवान् विष्णु के भय से पीड़ित होने के कारण अपना घर छोड़ भाग निकले और सब के सब एक साथ ही रसातल में प्रविष्ट हो गये।

अस्मदीया च लङ्केयं नगरी राक्षसपोषिता।

यह लङ्का नगरी जिस में तुम्हारा बुद्धिमान भाई धनाध्यक्ष कुबेर निवास करता है, हम लोगों की है। पहले इस में राक्षस ही रहा करते थे। निष्पाप महावाहो ! यदि साम, दान अथवा बल प्रयोग के द्वारा भी पुनः लङ्का को वापिस लिया जा सके तो हम लोगों का काम बन जाए।

त्वं च लंकेश्वरस्तात भविष्यसि न संशयः ।
त्वया राक्षस वंशोऽयं निमग्नोऽति, समुद् धृतः ॥

तात ! तुम्हीं लंका के स्वामी होओगे, इस में संशय नहीं है ; क्योंकि तुम ने इस राक्षसवंश का जो रसातल में डूब गया था, उद्धार किया है। महाबली वीर ! तुम्हीं हम सब के राजा होओगे।" यह सुन कर दशग्रीव ने पास खड़े हुए अपने पितामह से कहा—नाना जी धनाध्यक्ष कुबेर हमारे बड़े भाई हैं, अतः उन के सम्बन्ध में आप को मुझ से ऐसी बात नहीं कहनी चाहिए।

उस श्रेष्ठ राक्षस के द्वारा शान्त भाव से ही ऐसा कोरा उत्तर पाकर सुमाली समझ गया कि रावण क्या करना चाहता है। इसलिये वह राक्षस चुप हो गया। फिर कुछ कहने का साहस न कर सका। तदनन्तर कुछ काल व्यतीत होने पर अपने स्थान पर निवास करते हुए दशग्रीव रावण से जो सुमाली को पहले पूर्वोक्त उत्तर दे चुका था, निशाचर प्रहस्त ने विनय-पूर्वक यह युक्तियुक्त बात कही—महावाहो दशग्रीव : आप ने अपने नाना से जो कुछ कहा है, वैसा नहां कहना चाहिए। क्योंकि वीरों में इस तरह का भ्रातृभाव का निर्वाह होता नहीं देखा जाता। आप मेरी यह बात मानिये। लंका का राज्य वास्तव में हमारा है। विष्णु भगवान् ने बल-पूर्वक हम से छीन वह कुबेर को दे दिया है।

प्रहस्त का जादू काम कर गया—रावण अपने बड़े भाई कुबेर को मार भगाने के लिए रजामन्द हो गया।—उस ने प्रहस्त द्वारा अपने बड़े भाई को अल्टीमेटम भेजा,—राजन् ! यह लंकापुरी महामना राक्षसों की है, जिसमें आप निवास कर रहे हैं। सौम्य ! निष्पाप यक्ष राज ! यह आप के लिए उचित नहीं है। अतुल पराक्रमी धनेश्वर ! यदि आप हमें यह लंका पुरी लौटा दें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी और आप के द्वारा धर्म का पालन हुआ समझा जाएगा।

प्रहस्त के मुख से यह बात सनकर वाणी का मर्म समझने वालों में श्रेष्ठ भगवान् वैश्रवण ने प्रहस्त को इस प्रकार उत्तर दिया—

"राक्षस ! यह लंका पहले निशाचरों से सूनी थी, उस समय पिता जी ने मुझे इस में रहने की आज्ञा दी और मैंने इस में दान, मान, आदि गुणों द्वारा प्रजाजनों को बसाया। दूत ! तुम जा कर दशग्रीव से कहो—महाबाहो ! यह

पुरी तथा निष्कण्टक राज्य जो कुछ भी मेरे पास है, वह सब तुम्हारा भी है। तुम इस का उपभोग करो। मेरा राज्य तथा सारा धन तुम से बंटा नहीं है। ऐसा कह कर धनाध्यक्ष कुबेर अपने पिता विश्रवा मुनि के पास चले गये। वहां पिता को प्रणाम करके उन्होंने रावण की जो इच्छा थी, उसे इस प्रकार बताया—तात ' आज दशग्रीव ने मेरे पास दूत भेजा और कहलाया है कि इस लंका नगरी में तो पहले राक्षस रहा करते थे, अतः इसे राक्षसों को लौटा दीजिये। सुव्रत ! अब मुझे इस विषय में क्या-क्या करना चाहिये, बताने की कृपा करें। उनके ऐसा कहने पर ब्रह्मर्षि विश्रवा हाथ जोड़ कर खड़े हुए धनद से बोले,—बेटा ! मेरी बात सुनो—महाबाहु दशग्रीव ने मेरे निकट भी यह बात कही थी। इस के लिये मैंने उस दुर्बुद्धि को बहुत फटकारा, डांट बताई और बारम्बार क्रोधपूर्वक कहा,—"अरे ! ऐसा करने से तेरा पतन हो जायेगा, किन्तु इस का कुछ फल नहीं हुआ। बेटा ! अब तुम्हीं मेरे धर्मानुकूल एवं कल्याणकारी वचन को ध्यान देकर सुनो। रावण की बुद्धि बहुत ही खोटी है। वह वर पाकर मदमत्त हो उठा है—विवेक खो बैठा है। मेरे शाप के कारण भी उसकी प्रकृति क्रूर हो गई है। इस लिये, महाबाहो ! अब तुम अनुचरों सहित लंका छोड़ कर कैलास पर्वत पर चले जाओ और अपने रहने के लिए वहां दूसरा नगर बसाओ। मुनि के ऐसा कहने पर कुबेर ने पिता का मान रखते हुए उनकी बात मान ली और स्त्री, पुत्र, मन्त्री वाहन तथा धन साथ ले कर वे लंका से कैलास को चले गये।

कुबेर द्वारा लंका खाली कर देने पर दशग्रीव अपनी सेना, अनुचर, भाईयों सहित उस नगरी में दाखिल हुआ। जैसे देवराज इन्द्रस्वर्ग के सिंहासन पर आरूढ़ हुए थे, उसी प्रकार देव द्रोही रावण ने लंका में पदार्पण किया।

पाकिस्तान को प्राप्त करते ही जिस प्रकार जिन्ना ने पाकिस्तान की धरती पर कत्लोगारत का बाज़ार गर्म कर दिया, दशग्रीव ने ज्योंहि लंका का राज्य प्राप्त किया, चुन-चुन कर उसने कुबेर के आदमियों को मारना, काटना, लंका की धरती से भगाना, उन का नामोनिशान तक मिटाना शुरू कर दिया, न केवल पाकिस्तान की धरती पर ही बल्कि आर्यावर्त की धरती पर भी उसने आक्रमण शुरू कर दिये—

हंस कर लिया लंका धाम।
अब हम लेंगे हिन्दुस्थान ।।

रावण के अत्याचार की कथायें जब कुबेर के कानों तक पहुंची, अपने छोटे भाई को समझाने के लिए, उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए उसने अपने विशेष दूत को सन्देश देकर लंका भेजा। लंका में जाकर दूत सर्व प्रथम विभीषण से मिला—दूत को साथ लेकर विभीषण राज सभा में हाजिर हुआ—अपने राजा को सन्देश देते हुए दूत बोला—वीर महाराज ! आपके भ्राता धनाध्यक्ष कुबेर ने आप के पास जो सन्देश भेजा है, वह माता पिता दोनों के कुल तथा सदाचार के अनुरूप है। उसे पूर्ण रूप से आप के सामने कहता हूं—

साधु पर्याप्तमेतावत् कृत्यश्चारित्रसंग्रहः ।
साधु धर्मे व्यवस्थानं क्रियतां यदि शक्यते ।।

दशग्रीव ! तुमने अब तक जो कुछ कुकृत्य किया है इतना ही बहुत है। अब तो तुम्हें भली भांति सदाचार का संग्रह करना चाहिए। यदि हो सके तो धर्म के मार्ग पर स्थित रहो, यही तुम्हारे लिए अच्छा है। तुमने नन्दन वन को उजाड़ दिया। यह मैंने अपनी आंखों देखा है, तुम्हारे द्वारा बहुत से ऋषियों का वध हुआ है,

यह भी मेरे सुनने में आया है—

देवतानां समुद्योगस्त्वया राजन् मया श्रुतः ।

तंग आकर देवता तुम से बदला लेना चाहते हैं और तुम्हारे सर्वनाश के लिए देवी शक्तियों ने एक होकर संयुक्त मोर्चा तैयार कर लिया है। अतः अब तुम अपने कुल में कलंक लगाने वाले पाप कर्म के संसर्ग से दूर हट जाओ क्योंकि ऋषि समुदाय सहित देवता तुम्हारे वध का उपाय सोच रहे हैं।

चिन्त्यते हि वधोपायः सर्षिभिः सुरैस्तव ।

दूत के मुँह से ऐसी बात सुन कर दशग्रीव रावण के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वह हाथ मलता हुआ दांत पीस कर बोला—"दूत! तू जो कुछ कह रहा है, उस का अभिप्राय मैं ने समझ लिया है। अब तो न तू जीवित रह सकता है और न वह भाई ही, जिस ने तुझे यहां भेजा है।

नैव त्वमसि नैवासौ भ्रात्रा येनासि चोदित ।

दूत! तूने जो बातें यहां कही हैं, यह मेरे लिये सहन करने योग्य नहीं हैं, कुबेर मेरे बड़े भाई हैं, अतः उनका वध करना उचित नहीं है—ऐसा समझ कर मैंने आज तक उन्हें क्षमा किया है, किन्तु इस समय उनकी बात सुन कर मैंने यह निश्चय किया है कि मैं अपने बाहुबल का भरोसा कर के तीनों लोकों को जीतूंगा इसी मुहूर्त में मैं एक के ही अपराध में उन चारों लोकपालों को यम लोक पहुंचा दूंगा—ऐसा कह कर लंकेश रावण ने तलवार से उस दूत के दो टुकड़े कर डाले।

ततः कृतस्वस्त्ययनो रथमारुह्य रावणः
त्रैलोक्यविजयाकांक्षी ययौ यत्र धनेश्वरः ।

बहुत से नगरों, नदियों, पर्वतों, वनों और उपवनों को लांघ कर वह दो ही घड़ी में कैलाश पर्वत पर जा पहुंचा—यक्षों एवं राक्षसों में भयानक युद्ध छिड़ गया। पर यक्ष रावणीय सत्ता के सामने टिक न सके। कुबेर ने पराजय स्वीकार की—रावण ने जीत की खुशी में कुबेर का पुष्पक अपने अधिकार में कर लिया और अपने साथ लंका में ले आया।

एक बार कुबेर पर धावा।
पुष्प जान जीति लै आवा ।।

कौतुकहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाई।
मनहुं तौलि निज बाहुबल चला बहुत सुख पाई ।।
क्षुधा छीन बलहीन सुर सहजेहि मिलिहहिं आई।
तब मारिहउं कि छाडिहउं भली भाँति अपनाई ।।

चलत दसानन डोलति अवनी।
गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी ।।
रावण आवत सुनेउ सकोहा।
देवन्ह तके मेरु गिरि खोहा ।।
दिगपालन्ह के लोक सुहाए।
सूने सकल दसानन पाए ।।
पुनिपुनि सिंघनाद करि भारी।
देइ देवतन्ह गारि पचारी ।।
रनमदमत्त फिरइ जग धावा।
प्रतिभट खोजत कतहुं न पावा ।।
ब्रह्मसृष्टि जह लगि तनुधारी।
दसमुख बसवर्ती नर नारी ।।
सकल धर्म देखइ विपरीता।
कहि न सकइ रावन भय भीता ।।
धेनु रूप धरि हृदयं बिचारी।
गई तहां जहं सुर मुनि झारी।
निज संताप सुनाएसि रोई।
काहू तें कछु काज न होई ।।

सुर मुनि गंधर्वा मिलि करि सर्बा गे बिरंचि के लोका।
संग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका ।।
ब्रह्मां सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जा करि तैं दासी सो अबिनासी हमरेउ तोर सहाई ।।

धरनि धरहि मन धीर कह बिरंचि हरिपद सुमिरु ।
जानत जन की पीर प्रभु भंजिहि दारुन विपति ॥

बैठे सुर सब करहिं बिचारा ।
कहं पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई ।
कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥
जाके हृदयं भगति जसि प्रीती ।
प्रभु तहं प्रगट सदा तेहिं रीती ॥
तेहिं समाज गिरिजा मैं रहेऊं ।
अवसर पाइ बचन एक कहेऊं ॥
हरि व्यापक सर्बत्र समाना ।
प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं ।
कहहु सो कहां जहां प्रभु नाहीं ॥
अग जगमय सब रहित विरागी ।
प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर बचन सब के मन माना ।
साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥

सुनि बिरंचि मन हरष तन पुलकि नयन बह नीर ।
अस्तुति करत जोरि कर सावधान मतिधीर ॥

जय जय सुरनायक जन सुखदायक प्रनतपाल भगवंता ।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंता ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई ।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥
जय जय अबिनासी सब घट बासी व्यापक परमानंदा ।
अविगत गोतीतं चरित पुनीतं मायारहित मुकुंदा ॥
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंदा ।
निसि बासर ध्यावहिं गुन गन गावहिं जयति सच्चिदानंदा ।
जेहि सृष्टि उपाई त्रिबिधि बनाई संग सहाय न दूजा ।
सो करउ अघारी चिंत हमारी जानिअ भगति न पूजा ॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन गंजन बिपति बरूथा ।
मन बच क्रम बानी छाड़ि सयानी सरन सकल सुरजूथा ॥
सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुं कोउ नहिं जाना ।
जेहि दीन पिआरे बेद पुकारे द्रवउ सो श्रीभगवाना ॥
भव बारिधि मंदर सब बिधि सुन्दर गुनमंदिर सुखपुंजा ।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पद कंजा ।

उसी अवसर पर देवताओं ने परम पिता जगदीश्वर की सेवा में आराधना की—इसे हम राष्ट्रीय प्राथना भी कह सकते हैं। इस प्रार्थना को मैं आप के सामने कहता हूं—मैं चाहता हूं भारत का प्रत्येक नर-नारी आज भी सायं प्रातः इस प्रार्थना को करे। उस प्रार्थना के परिणाम स्वरूप ही भगवान् का प्रादुर्भाव हुआ था। आज भी सम्भव है, हमारी और आपकी सम्मिलित प्रार्थना भगवान् सुनें और वर्तमान युग के रावण का नाश करने भारत में कहीं अवतरित हो जावें।

जानि सभय सुर भूमि सुनि बचन समेत सनेह ।
गगन गिरा गम्भीर भइ हरनि सोक सन्देह ।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा ।
तुम्हहिलागि धरिहउं नर बेषा ॥
अंसन्ह सहित मनुज अवतारा ।
लेहउं दिनकर बंस उदारा ॥
कस्यप अदिति महा तप कीन्हा ।
तिन्ह कहुं मैं पूरब बर दीन्हा ॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा ।
कोसलपुरीं प्रगट नरभूपा ॥
तिन्ह कें गृह अवतरिहउँ आई ।
रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥
नारद बचन सत्य सब करिहउं ।
परम सक्ति समेत अवतरिउं ॥
हरिहउं सकल भूमि गरुआई ।
निर्भय होहु देव समुदाई ॥
गगन ब्रह्मबानी सुनि काना ।
तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥
तब ब्रह्मां धरनिहि समुझावा ।
अभय भई भरोस जियं आवा ।

यह थी पृष्ठ भूमि रावण-वध की—रावण की शक्ति का वर्णन करते हुए गोस्वामी जी महाराज लिखते हैं।

अति बल कुंभकरन अस भ्राता।
जेहि कहु नहि प्रति भट जग जाता॥
समरधीर नहिं जाइ बखाना।
तेहि सम अमित बीर बलवाना॥
बारिदनाद जेठ सुत तासू।
भट महुं प्रथम लोक जग जासू॥
जेहि न होइ रन सनमुख कोई।
सुरपुर नितहि परावन होई॥
कुमुख अकंपन कुलिसरद धूमकेतु अतिकाय।
एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय॥
कामरूप जानहि सब माया।
सपनेहुं जिन्ह के धरम न दाया॥
दसमुख बैठ सभां एक बारा।
देखि अमित आपन परिवारा॥
सुत समूह जन परिजन नाती।
गनै को पार निसाचर जाती॥

ऐसी अवस्था में पुत्र प्राप्ति के लिये महाराजाधिराज दशरथ ने अथर्व वेद के मन्त्रों से पुत्रेष्टि नामक यज्ञ किया। तब देवता, सिद्ध, गन्धर्व, और महर्षिगण विधि के अनुसार अपना अपना भाग ग्रहण करने के लिये यज्ञ में एकत्र हुए। उस यज्ञ सभा में क्रमशः एकत्र होकर सब देवता लोककर्त्ता ब्रह्माजी से इस प्रकार बोले—

भगवन् रावणो नाम पौलस्त्यतनयो महान्।
राक्षसानामधिपतिर्मद्दत्तवरदर्पितः॥
त्रिलोकीं लोकपालांश्च बाधते विश्वबाधकः।
मानुषेण मृतिस्तस्य मया कल्याण कल्पितां॥
अतस्त्वं मानुषो भूत्वा जहि देवरिपुं प्रभो॥

श्री भगवानुवाच

इस प्रकार स्तुति करते हुए ब्रह्मासे भगवान् हरिने कहा, "मैंतुम्हारा क्या कार्य करूँ?" तब ब्रह्मांने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनसे कहा। "भगवन्! पुलस्त्यनन्दन विश्रवाका पुत्र रावण राक्षसोंका राजा है। वह मेरे वरके प्रभावसे अत्यन्त अभिमानी हो गया है। वह सम्पूर्ण विश्वका बाधक तीनों लोकों और लोकपालोंको पीड़ा पहुँचाता है। हे कल्याणरूप! मैंने उसकी मृत्यु मनुष्यके हाथ रखी है। इसलिए हे प्रभो! आप मनुष्यरूप धारणकर उस देवशत्रु का वध कीजिये"।

भगवन्! रावण नामक राक्षस आप का कृपा प्रसाद पाकर अपने बल से हम सब लोगों को बड़ा कष्ट दे रहा है। हम में इतनी शक्ति नहीं है कि अपने पराक्रम से उसको दबा सकें। प्रभो! आपने प्रसन्न होकर उसे वर दे दिया है तब से हम लोग उस वर का सदा समादर करते हुए उसके सारे अपराधों को सहते चले आ रहे हैं। उसने तीनों लोकों के प्राणियों का नाकों दम कर रखा है। वह दुष्टात्मा जिनको कुछ ऊँची स्थिति में देखता है, उन्हीं के साथ द्वेष करने लगता है। देवराज इन्द्र को परास्त करने की अभिलाषा रखता है। आपके वरदान से मोहित होकर वह इतना उद्दण्ड हो गया है कि ऋषियों यक्षों, गन्धर्वों, असुरों तथा ब्राह्मणों को पीड़ा देता और उनका अपमान करता फिरता है। सूर्य उसको ताप नहीं पहुँचा सकते। वायु उस के पास ज़ोरसे नहीं चलती तथा समुद्र भी रावण को देखकर भय के मारे स्तब्ध सा हो जाता है। उसमें कम्पन नहीं होता। वह राक्षस देखने में बड़ा भयंकर है, उससे हमें महान् भय प्राप्त हो रहा है, अतः

वधार्थं तस्य भगवन्नुपायं कर्तुमर्हसि॥

उसके वध के लिए आपको कोई न कोई

उपाय अवश्य करना चाहिये।

त्वं गति परमा देव सर्वेषां नः परंतप।
वधाय देव शत्रुणां नृणां लोके मनःकुरु ॥

शत्रुओं को सन्ताप देने वाले देव ! आप ही सब लोगों की परमगति हैं, अतः इन देव-द्रोहियों को वश में करने के लिये आप मनुष्य कल्पो में अवतार लेने का निश्चय कीजिये। उस समय उस स्थल पर ब्रह्मा जी के साथ भगवान् विष्णु भी उपस्थित थे। उस समय सर्वलोकवन्दित देव प्रवर देवाधिदेव भगवान् विष्णु ने वहाँ एकत्र हुए उन समस्त ब्रह्मा आदि धर्मपरायण देवताओं से कहा, देवगण ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम भय को त्याग दो। मैं तुम्हारा हित करने केलिए रावण को पुत्र, पौत्र, अमात्य, मन्त्री और बन्धु बान्धवों सहित युद्ध में मार डालूँगा। इसके बाद कमल नयन श्री हरि ने अपने को चार स्वरूपों में प्रकट करके राजादशरथ को पिता बनाने का निश्चय किया।—तब प्रसन्न होकर देवता, ऋषि, गन्धर्व, रुद्र तथा अप्सराओं ने दिव्य स्तुतियों के द्वारा भगवान् मधु सूदन का स्तवन किया।

तमुद्धत रावण मुग्रतेजसं,
प्रवृद्धदर्पं त्रिदशेश्वरद्विषम्,
विरावणं साधु तपस्विकण्टकं।
तपस्विनामुद्धर तं भयावहम् ॥

प्रभो ! रावण बड़ा उद्दण्ड है, उसका तेज अत्यन्त उग्र और घमंड बहुत बढ़ा-चढ़ा है। वह देवराज इन्द्र से सदैव द्वेष रखता है, अतः आप उस पापी को जड़ से उखाड़ डालिये।

श्रीभगवान् बोले—मैंने कश्यप की तपस्यासे सन्तुष्ट होकर उन्हें वर दिया था। उन्होंने मुझे पुत्ररूप में उत्पन्न होनेकी प्रार्थना की थी, तब मैंने 'बहुत अच्छा' कह उसे स्वीकार कर लिया था। इस समय वे पृथ्वीपर राजा दशरथ होकर विद्यमान् हैं। उन्हीं के यहाँ पुत्र रूपसे पृथक्-पृथक् चार अंशों से प्रकट होकर मैं शुभ दिनों में कौसल्याके और अन्य दो माताओं के गर्भसे जन्म लूँगा। उसी समय मेरी योगमाया भी जनकजी के घर में सीतारूपसे उत्पन्न होगी, उसको साथ लेकर मैं तुम्हारा सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करूंगा। ऐसा कह भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गए।

आदि कवि ने भी रामचरित्र आरम्भ करने से पूर्व गीध, वानर, रीछ, जटायु, हनुमान, आदि का वर्णन किया है। रामायण का अभ्यांतरिक रूप से पाठ करने पर ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ता है कि भारत के तत्कालीन ऋषि-महर्षियों ने देश भर में रावण वध की योजना का विस्तार कर दिया था। अयोध्या से लेकर पञ्चवटी तक सन्तों के जितने भी आश्रम थे, वे मानों हमारे युद्ध कैम्प थे। जिस ऋषि के आश्रम पर राम पधारे, उस ऋषि ने महाराज श्री का इतना बढ़-चढ़ कर स्वागत किया, न जाने कितने वर्षों से सन्त राम के स्वागत की तैयारियां कर रहे थे, जब राम शबरी के आश्रम में पहुँचे, शबरी बोली, भगवन् ! जिस समय आप चित्रकूट पधारे थे, मेरे आश्रम के सन्त सीमान्त पर आप का स्वागत करने पधारे थे, उस समय उन्होंने मुझे कहा था—माई तू बड़ी भाग्यशालिनी है, राम लक्ष्मण तेरे आश्रम पर पधार रहे हैं।--

चित्रकूटं त्वयि प्राप्ते विमानै रतुल प्रभैः।
इतस्ते दिवमारूढ़ा यानहं पर्यचारिषम् ॥
तैश्चाहमुक्ता धर्मज्ञ र्महाभागै महर्षिभिः।
आगमिष्यतिते रामःसुपुण्यमिममाश्रमम् ॥

आदि कवि ने इस समूचे प्रसंग को जिन शब्दों में हमारे सामने उपस्थित किया है, उस का दिग्दर्शन भी मैं आपको करा देना चाहता हूँ—

जब भगवान् विष्णु महामनस्वी राजा दशरथ के पुत्रभाव को प्राप्त हो गये, तब भगवान् ब्रह्मा जी ने सम्पूर्ण देवताओं से इस प्रकार कहा, देवगण-भगवान् विष्णु सब लोगों के हित के लिये धरती पर अवतरित हो रहे हैं— तुम सब धरती पर जाओ और इस पवित्र कार्य में विष्णु की सहायता करो। रीछ वानर तथा गृद्ध जाति के वीर शीघ्र हो उत्पन्न हो गये।

ब्रह्माजी बोले—भगवान् विष्णु रघुकुलमें मनुष्यरूप से अवतार लेंगे। तुमलोग भी सब अपने-अपने अंशसे वानरवंशमें पुत्र उत्पन्न करो तथा जब तक श्रीविष्णु भगवान् भूलोकमें रहें तबतक उनकी सहायता करते रहो। इस प्रकार देवताओंको आज्ञा दे और पृथ्वीको ढाढस बँधा ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये और वहाँ निश्चिन्त होकर सुखपूर्वक रहने लगे। इधर समस्त देवगण पर्वत और वृक्षोंद्वारा लड़नेवाले महाबलवान् वानरोंका रूपधारणकर भगवान् की सहायताके लिए उनकी प्रतीक्षा करते हुए जहाँ-तहाँ रहने लगे।

विष्णुर्मानुषरूपेण भविष्यति रघोः कुले।
यूयं सृजध्वं सर्वेऽपि वानरेष्वं शसम्भवान्।
विष्णोः सहायं कुरुत यावत्स्थास्यतिभूतले।
देवाश्च सर्वे हरिरूप धारिणः
स्थिताः सहायार्थं मितस्ततो हरेः।
महाबलाः पर्वत वृक्षयोधिनः
प्रतीक्षमाणा भगवन्तमीश्वरम्॥
तैर्मेघवृन्दाचल कूटसंनिभैः।
मेहाबलैर्वानरयूथपाधिपैः।
वभूव भूर्भीमशरीर रूपैः।
समावृता राम सहायहेतोः॥

वे वानरयूथपति मेघसमूह तथा पर्वत शिखर के समान विशालकाय थे। उनका बल महान् था, उनके शरीर और रूप भयंकर थे भगवान् श्रीराम की सहायता के लिये प्रकट हुए उन वानर वीरों से यह सारी पृथ्वी भर गयो थी।

निज लोकहि बिरचि गे देवन्ह इहइ सिखाइ।
बानर तनु धरिधरि महि हरि पद सेवहु जाइ।
गए देव सब निज निज धामा।
भूमि सहित मन कहुँ विश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्माँ दीन्हा।
हरषे देव विलम्ब न कीन्हा॥
बनचर देह धरी छिति माहीं।
अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाहीं॥
गिरि तरु नख आयध सब बीरा।
हरि मारग चितवहिं मति धीरा॥
गिरि कानन जहँ तहँ भरी पूरी।
रहे निज निज अनीक रचिरूरी॥
यह सब रुचिर चरित मैं भाषा।
अब सो सुनहु जो बीचहि राखा॥
अवधपुरी रघुकुलमनि राऊ।
बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी।
हृदयँ भगति मति सारँगपानी॥
कौसल्यादि नारि प्रिय सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ़ हरि पर कमल बिनीत॥
एक बार भूपति मन माहीं।
भै गलानि मोरें सुत नाहीं॥

यह तो प्रत्यक्ष प्रमाणित है, रामायणकाल में रावणीय सत्ता मेरे देश के कोने-कोने में छाई हुई थी। गंगा के उस पार विदेह राज जनक का शासन था तो गंगा जी के इस पार रावण के एजन्ट ताटका सुबाहु मारीच बैठे थे।—विराध, कबन्ध, खर, दूषण, त्रिशिरा सभी रावण के लैफ्टीनैंट थे। हमारे ही देश के दो प्रबल सर्व-

तन्त्र स्वतन्त्र शासक बाली एवं सहस्रार्जुन रावण के ऐसे ही अभिन्न मित्र थे जैसे हमारे युग में चीन और अमेरिका पाकिस्तान के साथी-संगी हैं हालात इतने खराब हो चुके थे कि प्रभु को एक ही समय में दो स्वरूपों में धरती पर अवतरित होना पड़ा। संसार को चलाने के लिए, सूर्य-चन्द्र, गंगा-यमुना, ब्रह्मपुत्र की गतियों को नियन्त्रण में रखने के लिये, समुद्र की सीमाओं को अपनी सीमित मर्यादाओं के भीतर ही मर्यादित रखने के लिए, एक ही ईश्वर काफी है, परन्तु रामायण काल में एक ही साथ दो ईश्वर धरती पर प्रकट हुए—केवल एक हाड़-माँस के बने साधारण से व्यक्ति रावण को मारने के लिए। बड़े से बड़े सूरमा हार्टफेल से मर गए, परन्तु रावण का हार्ट न जाने किस धातु का बना हुआ था, जिसे सर्वशक्तिमान् भगवान् भी फेल करने में अपने को सामर्थ्य शाली न पा सका।— पर्वतीय प्रदेश में जब रिक्शा चलती है, कुछ मजदूर रिक्शा को आगे से खींचते हैं: दो चार पीछे से धकेलते हैं—ऐसी ही दुरवस्था थी रामायण के समय, जबकि प्रभु को परशुराम और राम के रूप में एक साथ अवतरित होना पड़ा।

अध्यात्मरामायण में भगवान् शंकर पार्वती से कहते हैं—

हे पार्वति ! एक दिन जब सर्वालंकार-विभूषित श्रीरामचन्द्रजी अपने अन्तःपुरके आँगन में एक रत्नसिंहासन पर सुखपूर्वक बैठे हुए थे तथा जिस समय नीलोत्पलदलश्याम कौस्तुभ-मणिमण्डित उन रघुनाथजी पर श्रीसीताजी रत्नखण्डयुक्त चँवर डुला रही थीं और वे आदर-पूर्वक दिए ताम्बूल-चर्वणादिसे आनन्दित हो रहे थे, उसी समय उन्हें देखने के लिये देवर्षि नारद जी आकाश से उतरे। शुद्ध स्फटिक मणिके समान स्वच्छ और शरच्चन्द्रके समान निर्मल दिव्यमूर्ति श्रीनारदजीको इस प्रकार अचानक आते देख भगवान् राम सहसा उठ खड़े हुए और सीताजी के सहित प्रेम और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ कर पृथ्वीपर शिर रखकर उन्हें प्रणाम किया।

फिर भगवान् रामने परम प्रीतिपूर्वक नारद जी से कहा—"हे मुनिश्रेष्ठ ! हम जैसे विषयासक्त संसारी मनुष्यों के लिये आपका दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। हे मुने ! आज अपने पूर्वजन्म-कृत पुण्य-पुञ्ज के उदय होने से ही मुझे आप का दर्शन हुआ है, क्योंकि हे मुने ! पुण्योदय होने पर संसारी पुरुषको भी सत्संग प्राप्त हो जाता है अतः हे मुनीश्वर ! आज आपके दर्शन से ही मैं कृतार्थ हो गया, अब मुझे आपका क्या कार्य करना होगा सो कहिये, उसे मैं (इस समय) पूर्ण करूँ"

तब नारदजी ने भक्तवत्सल भगवान्‌रामसे कहा—"हे राम ! आप सामान्य मनुष्यों के से इन वाक्यों से मुझे क्यों मोहित कर रहे हैं ! हे विभो ! आपने जो यह कहाकि 'मैं संसारी हूं' सो ठीक है, क्योंकि सम्पूर्ण संसारकी जो आदि कारण है वह माया आपकी सन्निधिमात्रसे ही उस मायासे ब्रह्मा आदि सब प्रजाएं उत्पन्न होती हैं, वह सत्व-रज-तमोमयी त्रिगुणात्मिका माया सदा आपके आश्रित होकर ही भासमान होती है तथा स्वगुणानुरूप शुक्ल, लोहित और कृष्णवर्ण प्रजा उत्पन्न करती है। इस त्रिलोकीरूप महा-गृह के आप गृहस्थ कहे गये हैं। आप भगवान् विष्णु हैं और जानकीजी लक्ष्मीजी हैं, आप शिव हैं और जानकीजी पार्वती हैं। आप ब्रह्मा हैं और जानकीजी सरस्वती हैं तथा आप सूर्यदेव हैं और जानकीजी प्रभा हैं। आप चन्द्रमा हैं, सीताजी रोहिणी हैं, आप इन्द्र हैं और सीताजी शची हैं।

पुलोम-कन्या शची है तथा आप अग्नि हैं और सीताजी स्वाहा हैं। हे प्रभो! आप सबके कालरूप यम हैं और सीता संयमिनी हैं, हे जगन्नाथ! आप निर्ऋति हैं और सीताजी तापसी हैं। हे राम! आप अरुण हैं और शुभलक्षणा जानकी भृगु-कन्या वारुणी हैं, आप वायु हैं तथा सीताजी सदागति हैं। हे राम! आप कुबेर हैं और सीता जी उनकी सब सम्पत्ति हैं तथा आप लोकसंहार कारी रुद्र हैं और सीताजी रुद्राणी कहलाती हैं। हे राघव! निःसन्देह संसारमें जो कुछ पुरुष-वाचक है वह सब आप हैं और स्त्रीवाचक सब श्रीजानकी जी हैं, अतः हे देव! त्रिलोकीमें आप दोनों से अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। आप ही के आभास से प्रकट हुआ अज्ञान अव्याकृत कहलाता है, उससे महत्तत्व, महत्तत्वसे सूत्रात्मा (हिरण्यगर्भ) और सूत्रात्मासे सर्वात्मक लिंगदेह उत्पन्न होता है। अहंकार, बुद्धि, पञ्चप्राण और दस इन्द्रियाँ इनके समूह को ही प्राज्ञजन जन्म, मृत्युऔर सुख-दुःखादि धर्मोवाला लिंगदेह बताते हैं। लिंगदेहाभिमानी चेतनाभास ही जगत् में तन्मय हुआ जीव नामसे विख्यात है। अनिर्वचनीय अनादि अविद्या ही इस जीवकी कारण-उपाधि कही जाती है। शुद्ध चेतनकी स्थूल,सूक्ष्म और कारण—ये तीन उपाधियाँ हैं। इन उपाधियों से युक्त होनेसे वह जीव कहलाता है और इससे रहित होनेसे परमेश्वर कहा जाता है। हे रघुश्रेष्ठ! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ऐसी जो तीन प्रकारकी सृष्टि है उससे आप विलक्षण हैं और उसके चेतनामात्र साक्षी हैं। यह सम्पूर्ण जगत् आपही से उत्पन्न हुआ है, आपहीमें स्थित है और आपहीमें लीन होता है। इसलिये आपही सबके कारण हैं। रज्जुमें सर्प भ्रमके समान अपने को जीव माननेसे मनुष्यको भय होता है, परवही जब यह समझ लेता है कि 'मैं परमात्मा हूं' तो सम्पूर्ण भय और दुःखोंसे छूट जाता है। क्योंकि चिन्मात्र ज्योतिःस्वरूप आप ही सबके शरीरोंमें स्थित होकर उनकी बुद्धियोंको प्रकाशित कर रहे हैं। इसलिये आप ही सबके आत्मा हैं। रज्जूमें सर्प-भ्रमके समान अज्ञानसे ही आपमें सम्पूर्ण जगत् की कल्पना की जाती है सो आपका ज्ञान होनेसे वह सज लीन हो जाती है। सुतरां मनुष्य को सदा ज्ञानका अभ्यास करना चाहिए। आपके चरण-कमलोंकी भक्तिसे युक्त पुरुषों को ही क्रमशः ज्ञानकी प्राप्ति होती है अतः जो पुरुष आपकी भक्तिसे युक्त हैं वे ही वास्तव में मक्ति के पात्र हैं। हे प्रभो! मैं आपके भक्तोंके भक्त और उनके भी भक्तोंका दास हूं अतः आप मुझे मोहित न कर मुझपर अनुग्रह कीजिये। हे प्रभो आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अतः मैं आपका पौत्र हूं। हे राघव। आप मुझ भक्तकी रक्षा कीजिये"।

इस प्रकार कहकर और बारम्बार प्रणाम कर श्रीनारदजी ने नेत्रोमें आनन्दाश्रु भर कर कहा—"हे रघुश्रेष्ठ। मुझे ब्रह्माजीने आपकेपास भेजा है, आपका अवतार रावणका वध करने के लिये हुआ है, किन्तु अब पिता दशरथ आपको राज्यशासन के लिये अभिषिक्त करनेवाले हैं। हे राम। यदि राज्यमें आसक्त होकर आप रावण को न मारेंगे तो पृथ्वी का भार उतारने के लिये जो आपने प्रतिज्ञा की थी उसका क्या होगा। हे राजेन्द्र! आप उसे सत्य कीजिये, क्योंकि आप सत्यप्रतिज्ञ ही हैं।"

रावणस्य विनाशार्थं श्वो गन्ता दण्डकाननम्।
चतुर्दशं समास्तत्र ह्युषित्वा मुनिवेषधृक् ॥
सीतामिषेण तं दुष्टं सकुलं नाशयाम्यहम्।
एवं रामे प्रतिज्ञाते नारदः प्रमुमोद ह ॥

नारदजी के ये वचन सुनकर श्रीरामचन्द्र जी ने मुसकराकर कहा—"नारदजी ! सुनिये, क्या कोई ऐसी बात भी है जिसे मैं न जानता होऊँ । मैंने पहले जो कुछ प्रतिज्ञा की है वह मैं निःसन्देह पूर्ण करूँगा। किन्तु कालक्रम से जिन-जिनका प्रारब्ध क्षीण होता जावेगा उन-उन दैत्यों को ही मारकर मैं क्रमशः पृथ्वीका भार उतारूँगा। रावणका वध करने के लिये मैं कल दण्डकारण्यको जाऊँगा और वहाँ चौदह वर्ष मुनिवेष धारणकर रहूँगा,उस दुष्टको सीताहरण के मिषसे मैं कुटुम्बके सहित नष्टकर दूँगा।"

रामचन्द्रजीके इसप्रकार प्रतिज्ञा करनेपर नारदजी अति प्रसन्न हुए। तदनन्तर उन्होंने राम जी की तीन परिक्रमाएँ कीं और उन्हें दण्डवत् प्रणामकर उनकी आज्ञा ले आकाश-मार्गसे देव-लोकको चले गये। जो मनुष्य नारद और राम-चन्द्रजी के इस सम्वाद को नित्य भक्तिपूर्वक पढ़ता, सुनता या स्मरण करता है वह वैराग्य-पूर्वक क्रमशः देवताओं के अत्यन्त दुर्लभ कैवल्य मोक्ष-पद प्राप्त कर लेता है।

प्राचीन भारतीय आर्य कवि थे। उनकी दृष्टि में असीम की भी चरम सीमा तक देखने की शक्ति थी। "मांग रहा है हिन्दुस्तान, रोटी कपडा और मकान" उन सौभाग्यशाली महा-पुरुषों के सामने इस प्रकार की कोई भी समस्या न थी। रोटी के ही चक्कर में न पड़ कर इस संसार-चक्र को समझने में ही उन महानुभावों ने अपने बुद्धि-वैभव का सदुपयोग किया। उनका यह बुद्धि-वैभव सर्वांग सम्पूर्ण था। विचार-शक्ति के प्रसार में उन्होंने एकांगी उन्नति ही नहीं की उनके ज्ञान-बल का वैभव-विस्तार सर्वांगी था। जहां उन लोगों के दिमाग आध्या-त्मिक दृष्टि से परिपूर्ण थे, वहां भौतिकवादी दृष्टिकोण से भी पे सर्वथा कोरे नहीं थे। उनकी विचारशक्ति इतनी उन्नत तथा इतनी परिमा-र्जित थी कि उन्होंने जहां अनेक में एक को देखा वहां एक में भी उन्होंने अनेक का दिग्दर्शन किया। एक ही वस्तु का उन्होंने आध्यात्मिक, आधि-भौतिक तीनों प्रकार के स्वरूप का वर्णन किया।

इन्द्र जहां एक स्थान पर इन्द्रियों का स्वामी महामानव है वहां दूसरे स्थान पर वह स्वर्ग लोक त्रिविष्टप का राजा भी है। ब्रह्मा, और महेश—जन्म देने वाला, स्थापित रखने वाला तथा समाप्त करने वाला जहां एक ही परमात्मा के तीन गुणों का बखान करते हैं, वहां भौतिकवाद की दृष्टि से भी वे अपने राष्ट्र के प्रतीक हैं। उन तत्ववेत्ता महर्षियों ने अपने देश का कितना सुन्दर चित्र खींचा, उन्होंने अपने प्यारे देश को शिव के रूप में चित्रित कर उसे हमारीं आंखों के सामने मूर्तिमान् बिठा दिया। उन्हों ने कहा, यह शिव तुम्हारा देश है, हिमालय इस की जटाएँ हैं। इस हिमालय रूपी जटाओं से गंगा निकलती है और शिव की जटाओं से निकल कर यह गंगा सीधी रामेश्वरम् की ओर नहीं वह जातीं, उत्तर प्रदेश तथा बिहार में होती हुई, अर्द्धमण्डलाकार रूप में वह शिव के गले में हार बन कर शोभायमान हो जाती हैं। यह देश खेती बाड़ी का देश है, खेती बैल पर निर्भर है अतः भोलानाथ बैल की सवारी करते हैं। यह त्रिलोचन महादेव हैं।—दो आंखों से यह इस संसार को देखते हैं, माथे पर जो तीसरा नेत्र है, वह ज्ञान का नेत्र है। वह ज्ञान का नेत्र परमात्मा के संसार को देखने के लिए है। शिव के उस तीसरे नेत्र में कामदेव तक को जला कर भस्म कर देने की शक्ति है। तभी तो इस देश का आदर्श सन्त और महात्मा हैं। इस देश ने राजाओं महाराजाओं की पूजा नहीं की, सन्तों को ही इस ने महाराज मान कर उन के सामने

सिर झुकाया । जिन्होंने संसार को जीता वे योद्धा हमारे लिए आदर्श नहीं, हमारा आदर्श तो वे महात्मा हैं संसार को जीतने से पूर्व जिन्होंने अपने आप को जीता । हमारा आदर्श तो वे नेता और वक्ता नहीं हैं जिन्होंने संसार को समझाया, हमारे देश का आदर्श तो वे महात्मा हैं संसार को समझाने से पहले 'जिन्हों ने अपने आप को समझाया । इसीलिए तो शिव कामारि, कामरिपु कहाते हैं । यह महादेव हैं, क्योंकि यह दाताओं के भी दाता हैं । जो हमें देते हैं, उन को यह मेरा देश देता है । यही देश तो प्रतिवर्ष अन्न, कपास, गन्ना, पैदा करता है । यह देवताओं का भी देवता है ।

भोला नाथ इस का परम प्रिय नाम है क्योंकि वह परायों की अधिक पालना करता है, अपनों की इसे इतनी चिन्ता नहीं ।—यह शिव है—पार्वती, उमा और दुर्गा इस की तीन धर्म-पत्नियां हैं । पार्वती इस देश की संस्कृति है । यह पार्वती हिमालय की बेटी है, क्योंक्रि इस का निर्माण करने वाले वे ऋषि-मुनि थे जो स्वयं हिमालय पर्वत में रहते थे । भारत की संस्कृति बम्बई और कलकत्ता की संस्कृति नहीं, ब्रह्मा और केदार की संस्कृति है । आज भी बड़े २ सेठ इसी संस्कृति की खोज में बम्बई कलकत्ता के ऐशो आराम को छोड़ कर गंगोत्तारी-यमनोत्तारी की घाटियों में भटकते फिरते हैं ।

दुर्गा इस देश की शक्ति है । यह देश, परमात्मा ने इसे दुर्ग के रूप में बनाया । जिस के तीन ओर महार्णव है चौथी ओर हिमाद्रि गिरिराज है । कितना सुन्दर, सुदृढ़ और सुरक्षित दुर्ग है यह उस विश्वकर्मा का बनाया हुआ । इसी भारत रूपी दुर्ग की रक्षा करने वाली देवी है—दुर्गा । भारत की नीति हमेशा सिंह-नीति रही है, इसी लिये दुर्गा सिंह वाहिनी है । दुर्गा की दस भुजायें दस दिशायें हैं । हमारा देश अपनी स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिए सदैव जागरूक रहा है ।

गणेश शिव का पुत्र होने के कारण हमारे देश का राष्ट्र-पति है । गणेश का शब्दार्थ ही राष्ट्रपति है । गण+ईश, गण+पति । गणेश गणपति है, प्रजातंत्र का स्वामी है, गणराज्य का प्रमुख है । २६ जनवरी १९५० से हमारे देश में गणराज्य की स्थापना हुई है, राष्ट्रपति राजेन्द्र-प्रसाद इसके गणेश थे । राष्ट्रपति पार्वती और शिव के पुत्र हैं, शिव और पार्वती के पुत्र नहीं हैं । पार्वती ने गणेश को पैदा किया और उसे द्वारपाल बनाकर बाहर दरवाजे पर खड़ा कर दिया । शिव को पता भी नहीं था, यह द्वार पर कौन खड़ा है । भारत का राष्ट्रपति पहले पार्वती का पुत्र है पीछे शिव का । सर्वप्रथम वह अपनी संस्कृति का भक्त है, देश का भक्त पीछे है । शिव का पुत्र बनना कठिन नहीं, कठिन तो है पार्वती का पुत्र बनना । शिव का पुत्र बनने के लिये चार आने को टोपी चाहिये और थोड़ा खद्दर चाहिये, परन्तु पार्वती का पुत्र बनने के लिये तो जीवन में त्याग और तपस्या चाहिये । खद्दर तो जितना भी चाहो बाजार में मिल सकता है परन्तु त्याग और तपस्या तो बाजार में नहीं मिल सकते । शिव का पुत्र तो एक बहुरूपिया भी बन सकता है, परन्तु पार्वती का पुत्र बहुरूपिया कदापि नहीं बन सकता ।

राष्ट्रपति का सर है हाथी का, धड़ है आदमी का और सवारी है चूहे की । हाथी कभी अकेला नहीं चलता, अपने साथियों को साथ ले कर चलता है इसी प्रकार राष्ट्रपति को भी अपने राष्ट्र को साथ लेकर चलना चाहिए । प्रजा की इच्छाओं, आकांक्षाओं और भावनाओं को साथ लेकर चलना चाहिये । हाथी कभी जोश में

नहीं आता, परन्तु यदि कदापि जोश में आ जाता है तो उसका यह आया हुआ जोश व्यर्थ कभी नहीं जाता। इसी प्रकार राष्ट्रपति को भी गम्भीर होना चाहिए । परन्तु जब कभी वह जोश में आ जाये तो उस का यह जोश वृथा न जाये।

गणेश जी का वाहन है चूहा। जिस प्रकार चूहा किसी भी वस्तु को नष्ट करने से पहले उस की जड़ें खोदता है, उसी प्रकार राष्ट्रपति को भी अपने शत्रु का विनाश करने के लिये पहले उसकी जन-मर्यादा (Public opinion) को भंग करना चाहिए। शत्रु पर सेनाओं द्वारा आक्रमण करने के पूर्व प्रचार द्वारा उसकी अन्तः राष्ट्रीय स्थिति को निर्बल बनाना चाहिए।

राष्ट्रपति की दो धर्म पत्नियां हैं—बुद्धि और सिद्धि। इन दोनों धर्म पत्नियों को साथ लेकर जब राष्ट्रपति चलते हैं तो विजय और श्री रूपी दो कन्यायें उन्हें प्राप्त होती हैं।

ब्रह्मा—

ब्रह्मा इस देश के प्रधान मन्त्री हैं। प्रधान मन्त्री वेद-वेदांग के ज्ञाता होने चाहियें, इसी लिए ब्रह्मा के चार मुंह चारों वेदों के प्रतीक हैं। प्रधान मन्त्री की आयु ५० वर्ष के ऊपर होनी चाहिए इसी लिए ब्रह्मा की दाढ़ी सफेद है। प्रधान मन्त्री का सम्बन्ध किसी भी पोलिटीकल पारटी के साथ नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह किसी दल विशेष का प्रधानमन्त्री नहीं, समूचे देश का प्रधान मन्त्री है इसी लिए प्रधान मन्त्री का चोला सफेद है। ब्रह्मा के एक हाथ में लठ है दूसरे में कमंडल—लठ का अर्थ है देश की रक्षा (Defence) करने की शक्ति और कमंडल है प्रधान मन्त्री के नम्र स्वभाव का प्रतीक।

ब्रह्मा का वाहन है हंस। जिस प्रकार हंस नीर-क्षीर अलग कर देता है, उसी प्रकार प्रधान मन्त्री को भी सब के साथ न्याय करना चाहिए।

सावित्री और गायत्री ब्रह्मा की पत्नियां हैं सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री है।

विष्णु—

विष्णु इस देश का सम्राट है। सम्राट का काम है अपने देश की रक्षा करना। रक्षा बल से होती है, इसी लिए विष्णु भगवान् अपने सर्वरूपों में सदैव नवयुवक दिखाये जाते हैं। चारों दिशायें विष्णु भगवान् के चार हाथ हैं। इन चारों में विष्णु भगवान् क्रम से शंख (Propaganda) चक्र (Marching of the forces) गदा (Controlling power) पद्म (Lotus) धारण किये हैं। आर्यावर्तः का सम्राट जब शत्रु का विनाश करने के लिये आगे बढ़ता है, सर्व प्रथम वह प्रौपेगंडा करता है, फिर अपनी सेनाओं को आगे बढ़ने की आज्ञा देता है, शत्रु को जीत कर उसे अपने नियंत्रण में लाता है। परन्तु इतना ऐश्वर्य पाकर भी वह उस एश्वर्य की चका-चौंध में अपने को भूल नहीं जाता। जल में कमल के समान वह सर्वथा अलिप्त ही रहता है।

ब्रह्मा, विष्णु, महादेव भारतीय कथा-शास्त्र में त्रीदेव (Triad) के नाम से विख्यात हैं। यह भी कितनी विचित्र बात है कि यह तीनों महा पुरुष एक साथ कभी मिल कर नहीं बैठे। यदि विष्णु भगवान् किसी दुष्ट को उसकी दुष्टता का दण्ड देने के लिए शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण करके धरती पर अवतरित हुए तो ब्रह्मा और शिव भी झट पट उस दुष्ट को वरदान देने के लिए अपने २ लोक से दौड़ पड़े। वरदान देने

का महकमा ब्रह्मा और महादेव का है और उस दिए हुए वरदान के फल भोगने का महकमा है विष्णु भगवान् का।

कथा-शास्त्र में शाप और वरदान की समस्या भी एक जटिल समस्या है। जितने भी वरदान मिले वे सब दुष्टों को और जितने भी शाप मिले सब भद्र पुरुषों को। रावण, मेघनाद, कुम्भकरण, कालयवन, भस्मासुर, वाणासुर को तो वरदान और आहिल्या, सीता, शकुन्तला को शाप। शापों के सब से बड़े एक्सपर्ट दुर्वासा गये श्री राम से भेंट करने। द्वार पर लक्ष्मण ने रोका, बस हो गये आपे से बाहर, बोले—'राम से जाकर कह दो मुझे तत्क्षण आ कर मिलें, नहीं तो शाप देकर समूची अयोध्या को विध्वंस कर दूंगा। आज कहीं दुर्वासा जी मुझे मिल जायें तो ऋषिवर के चरण छूकर बड़े हो आदर से एक बात तो उन्हें अवश्य पूछ लूं—भगवन्! अयोध्या क्या कागज की बनी हुई थी और लंका क्या फौलाद की बनी थी। जिस शाप के बल पर आप अयोध्या को जला कर राख का ढ़ेर कर रहे थे उसी शाप के बल पर आप ने लंका को सहज में ही राख का ढ़ेर क्यों न बना दिया। अंगद तथा हनुमान् के समान आप जाते रावण के पास और अल्टीमेटम देते हुए साफ २ कह देते—रावण! चौबीस घंटे के भीतर २ सीता जी को लेकर श्री राम की सेवा में उपस्थित हो जाओ नहीं तो शाप रूपी एटम बम से लंका को विध्वंस कर दूंगा। परन्तु समूचे भारतीय इतिहास में एक भी दुष्ट ने शाप लेना स्वीकार नहीं किया और एक भी वरदान देवताओं को प्राप्त न हो सका।

और यदि भूले भटके से देवताओं को एकाध वरदान मिला भी तो वह शाप से भी बदतर। दुर्वासा जी कुन्ती को बिना मांगे ही वरदान दे आये। कुमारी कन्या को पुत्रवती का वरदान! जा धमके शकुन्तला के पास। बेचारी दुष्यन्त की याद में बैठी थी। सर्वज्ञ तो थी नहीं, बस ऋषिवर तो एक दम आग-आग हो गये और दे दिया बेचारी को शाप। द्रौपदी के पास जा धमके—'हम सब को भोजन कराओ। इतना नहीं सोचा, यह बनवासी कहां से भोजन करायें। भोजन की तैयारी में थोड़ी सी देरी हो गई, झट शाप। बेचारे अम्बरीष ने कितना कष्ट सहन किया। व्रत खोलने के समय आ धमके—हम भी हैं। बहुत अच्छा। हम स्नान करने जाते हैं। गए और लौट कर नहीं आये। बहुत प्रतीक्षा की अम्बरीश ने। आखिर लोगों के आग्रह पर महाराज ने थोड़ा सा जल-पान कर लिया, बस इतने में ही आ धमके और चला दिया—वी नम्बर टू।

आखिर यह शाप और वरदान की समस्या है क्या? सभी वरदान असुरों को ही क्यों मिले? सब शाप देवताओं के ही पल्ले क्यों पड़े? क्या इन वरों की वर्षा करने वाले ब्रह्मा, शिव कभी सशरीर इस धरती पर विराजमान थे भी। यदि वास्तव में इस धरती पर किसी युग में ब्रह्मा, विष्णु, महादेव इत्यादि देवतागण हाड़मांस से युक्त शरीर के साथ विराजमान थे तो आज उन का एक भी वंशज इस समूची धरती पर उपलब्ध क्यों नहीं होता। कहां हैं आज सूंड वाले गणेशजी? कहां हैं आज चार मुख वाले ब्रह्माजी? और कहां हैं मोर पर बैठे हुए छः मुख वाले कार्त्तिकेय जी? जो शिव और जो ब्रह्मा और जो गणेश रामायण के समय से लेकर महाभारत के समय तक जी सकते थे, महाभारत के तत्काल पश्चात् क्या एक साथ ही

वे सब अन्तर्ध्यान हो गये। वास्तव में सत्य तो यह है कि किसी युग में किसी विशेष व्यक्ति का नाम ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेव भले ही रहा हो, परन्तु जिस व्यक्ति के सिर से गंगा बहती हो, चार मुँह वाला ब्रह्मा, चार हाथ वाला विष्णु ऐसा प्राणी सशरीर इस धरती पर आज तक कभी उत्पन्न नहीं हुआ।

तो फिर यह वरदान और शाप देने वाले ब्रह्मा, शिव कौन थे। शिव हमारा देश है, ब्रह्मा हमारे देश का मन्त्रीमन्डल है। मन्त्री मन्डल की निर्बलता ब्रह्मा का वरदान है और देश की जनता की उदासीनता शिव का वरदान है। हमारे अपने युग में भी जिन्ना को ब्रह्मा के वरदान से ही पाकिस्तान की प्राप्ति हुई।

किसी समय देश की जनता तो शत्रु के साथ युद्ध चाहती है, परन्तु भारत का मन्त्री-मंडल ऐसा पग उठाना नहीं चाहता, जैसा कि आज पाक और काशमीर के प्रश्न की अवस्था है। देश की जनता पाक और काश्मीर के प्रश्न पर शत्रु के साथ युद्ध छेड़ना चाहती है, परन्तु भारत का मन्त्री-मंडल युद्ध नहीं चाहता। ऐसी अवस्था में पुर्तगाल और पाकिस्तान को मानो ब्रह्मा से वरदान प्राप्त हो गया। विपरीत इस के एक दूसरी अवस्था भी है, देश की जनता तो संघर्ष नहीं चाहती परन्त भारत का मन्त्री-मंडल संघर्ष चाहता है, जैसा कि १९४८ में राष्ट्रीय स्वयं-सेवक संघ की अवस्था में था। देश की जनता संघ के साथ थी, परन्तु मन्त्री-मंडल संघ को समाप्त कर देना चाहता था ऐसी अवस्था में R. S. S. संघ शिव के वरदान से ही अपने जीवन को बनाये रख सका।

शाप और वरदान के सम्बन्ध में एक प्राचीन कथा है। भगवान् श्रीराम जब रावण-वध के लिये लंका की ओर चले, समुद्र पार करने के लिए वे सागर तट पर डेरा डाले पड़े थे। नारद जी उनसे बोले, रावण कदापि मर नहीं सकता। "क्यों" रघुनाथ जी ने पूछा। "क्योंकि उसे शिव का वरदान प्राप्त है", नारद जी ने उत्तर दिया—"जब तक शिव का वह वरदान बना हुआ है तब तक रावण को कोई शक्ति मार नहीं सकती। हां, यदि भोले बाबा अपना वरदान वापस ले लेवें तो भले ही रावण का वध हो सकता है।"

नारद जी का ऐसा वचन सुन कर रघुनाथ जी शिष्टमंडल सहित भगवान् आशुतोष की सेवा में उपस्थित हुए।—परन्तु सात दिन तक तो भोले बाबा ने रघुनाथ जी के साथ इन्टरव्यू (भेंट) तक करना स्वीकार नहीं किया। लाचार हो कर आठवें दिन रघुनाथ जी ने दुर्गा का आवाहन किया। सिंह-वाहिनी दुर्गा श्रीराम की सेवा में उपस्थित हुईं। "आज्ञा"—श्रीराम ने आद्योपान्त पूरा वृत्तान्त कह सुनाया। पूरी कथा सुनकर दुर्गा स्वयं शिव के पास जा कर बोलीं, "भगवन्! आप रघुनाथ जी को साक्षात्कार का समय क्यों नहीं देते। रघुनाथ जी इतनी दूर से चल कर आये हैं, सात दिन से यहां पड़े हैं। भस्मासुर को वरदान देते समय आपने आशुतोष का रूप धारण कर लिया और अब राघवेन्द्र सरकार स्वयं चल कर आप की सेवा में पहुंचे हैं तो आप के पास भेंट के लिए समय नहीं हैं"।

"मैं अभी श्री राम से भेंट नहीं कर सकूंगा", भोले बाबा बोले।

"क्यों नहीं कर सकोगे।"

"अभी मेरे पास समय नहीं।"

"कब समय होगा?"

भोले बाबा ने तत्काल रौद्र रूप धारण कर लिया।—"दुर्गे ! तू मेरी पत्नी है, औफिसर नहीं है। तू प्रार्थना कर सकती है, आदेशात्मक निर्देश नहीं दे सकती। मैंने कह दिया अभी श्रीराम से भेंट करने को मेरे पास समय नहीं"।

दुर्गा भी उस समय स्वाभिमान की मूर्ति बन कर बोली-तो मैं भी शिव की शक्ति नहीं हूं, आज ब्रह्मांड इस मेरी शक्ति का चमत्कार देखेगा। राम के पास आकर दुर्गा ने कहा— भगवन् ! भोले बाबा तो कहते हैं कि उन के पास भेंट के लिए समय नहीं, न सही। शिव की शक्ति तो मैं हूं। मैं आप के साथ हूं। चलिये, मैं आप के साथ चलती हूं और में स्वयं रावण का वध करूंगी। आगे २ दुर्गा चली, पीछे २ राम। रावण का वध दुर्गा ने किया था, तभी तो विजय दशमी के दिनों में दुर्गा पूजा का उत्सव मनाया जाता।

इस समूचे अलंकारिक वर्णन में ऐतिहासिक तत्त्व इतना ही है कि उस समय श्री रघुनाथ जी रावण से युद्ध कर रहे थे उस समय हमारे देश की जनता (शिव)ने तो राम का साथ बिल्कुल नहीं दिया,परन्तु शिव की शक्ति तो प्रतिक्षण श्रीराम के साथ थी। श्रीराम की सहायतार्थ जाने के लिये अयोध्या में सेनायें प्रतिक्षण तैयार थीं। ऋषि-मुनि भी राम के साथ थे। महर्षि भरद्वाज से लेकर देवराज इन्द्र तक भारत की समूची शक्ति रावण के वधार्थ श्री राम की सहायता पर थी।

हमारे देश में पुरुष वर्ग की अपेक्षा स्त्री का कितना अधिक सन्मान् है। शिव की केवल एक रात, दुर्गा की १८ रातें। शिवरात्रि वर्षभर में केवल एक ही बार आती है—परन्तु नवरात्र वर्ष भर में दो बार आते हैं, चत्र में एवं आश्विन में। श्री राम जन्म के साथ भी दर्गा का सम्बन्ध और रावण वध के साथ भी दुर्गा का सम्बन्ध। मुसलमानों में जी शबेरात मनाने का रिवाज है, शबेरात वास्तव में शिवकी ही रात है। मक्कामें जो संगे अस्वद यानी अश्वेत-काला पत्थर है वास्तव में वह शिवलिंग ही है,—हज पर जाने वाले मुसलमान जिसकी परिक्रमा करते हैं, जिसे सजदा करते हैं, जिसे चूमते हैं,—भारत में तो वे मूर्ति पूजा नहीं कर सकते, मक्का जाकर, मक्केश्वर भगवान् की आराधना, अर्चना करके वे अपने स्वभाविक मूर्ति पूजा बुत परस्ती। Idol worship के शौक को पूरा करते हैं।

दुर्गा शिव की शक्ति है, इसी शक्ति के बल पर तो भोले बाबा ने महादेव, देवादिदेव की पदवी पाई है।—काली, दुर्गा ही का दूसरा रूप है—समर भूमि में शत्रुओं का सर्व संहार करती हुई दुर्गा ही काली कहाती है, और घनघोर युद्ध में चण्डी का रूप धारण करने वाली दर्गा ही महाकाली कहाती है।

छत्रपति शिवाजी महाराज ने जब यवन दल के सर्व संहार का व्रत लिया वे तुलजा भवानी की सेवा में उपस्थित हुए—मां ! धर्म की रक्षा के लिये, गो ब्राह्मण की रक्षा के लिये मुझे तलवार दे—दशमेश पिता गुरु गोविन्दसिंह ने भी खालसा का सिरजन करते समय नैनादेवी के पर्वत पर सहस्रचण्डी यज्ञ किया। भारतीय इतिहास का दिन परम सौभाग्यशाली दिन था जिस दिन पूर्ण पुरुष गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा का निर्माण किया। नयना देवी का वह पहाड़ "वाह गुरु जी का खालसा, श्री वाहेगुरु जी की फतह" की जय ध्वनि से गूंज उठा—शिवबालक की वे कन्दरायें आज भी उस वीर पुरुष की सिंह गर्जना से प्रतिध्वनित हो रही हैं।

नमो उग्रदन्ती अनन्ती सवैया।
नमो जोग जोगेश्वरी जोग मैया।,
नमो केहरी वाहनी शत्रु हन्त्री।
नमो शारदा ब्रह्मा विद्या पठन्ती॥
नमो ऋद्धिदा सिद्धिदा वृद्धिदैनी।
नमो कालके कालको कालछैनी॥
नमो ज्योतिज्वाला तुम्हेवेदगावे।
सुरासुर ऋषीश्वर नहीं भेदपावे॥

अवतार रहस्य

भारतीय कथा-शास्त्र में कहीं भी ऐसा वर्णन नहीं मिलता जहां ईश्वर का अवतारमाना गया हों। ईश्वर को तो सर्वत्र अजर, अमर, अनादि, निर्विकार ही माना गया है। अवतार-वाद के सबसे प्रमुख प्रवक्ता गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज ने भी जहां कहीं ईश्वर का वर्णन किया है, उन्होंने हाड मांस के बने ईश्वर का वर्णन कहीं भी नहीं किया।

आदि अन्त कोउ जासु न पावा।
मति अनुमानि निगम असगावा॥
बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना।
कारबिनु करब करइ बिधिनाना॥
आनन रहित सकल रसभोगी।
बिनु बानी बकता बड़ जोगी॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा।
ग्रहइ घ्रान बिनु बास असेषा॥

और यदि उन्होंने परिस्थितियों से विवश होकर अवतार माना भी तो भी ऐसा मानते हुए स्वयं ही चकित होकर वे स्वयं अपने से ही शंका करते हैं।

ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज,
अकल अनीहि अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर,
जाहि न जानत बेद॥

अवतार ईश्वर का नहीं होता, अवतार विष्णु भगवान् का होता है। भारतीय कथा-शास्त्र में स्थान स्थानपर जिन दशावतार अथवा चाबीस अवतार का वर्णन आता है वे अवतार ईश्वर के अवतार नहीं, विष्णु भगवान् के अव-तार हैं। Ten incarnations not of God, but of god-Vishnu. विष्णु वह शक्ति है अन्याय और अत्याचार का नाश करने के लिये जिसका प्रादुर्भाव हमीं में से होता है। विष्णु का अर्थ है, विजेता के रूप में प्रवेश करने काला। One who enters in a warrior spirit. सूर्यको भी विष्णु इसलिए कहा गया है। अन्याय और अत्याचार का विनाश करने वाली शक्ति को भी इसी लिये विष्णु की उपाधि दी गई है।

कोई भी महापुरुष पैदा होने के साथ ही अवतार नहीं बन जाता। अवतार जन्म नहीं लिया करते। जन्म लेने के पश्चात् जब कोई महापुरुष बहुत बड़े २ दुष्कर कार्य करता है, जिन कार्यों का कर सकना संसार असम्भव मानता है और वह महापुरुष अपने कार्यों में कृतकार्य हो जाता है तो जनता प्रसन्न होकर उस महापुरुष को "अवतार" की उपाधि से विभूषित करती है, "अवतार" एक ऐसा सन्मान सूचक उपाधि (Honorary degree) है जो जनता जनार्दन की ओर से अपने आदर्श को प्रदान की जाती है, Avataras are not born, but they are made. नेता जी सुभाष चन्द्र बोस भी हमारे युग के अवतार ही थे। गुरु गोविन्द सिंह, छत्र-पति शिवाजी महाराज, वीर वन्दा वैरागी के रूप में समय २ पर इस देश में अवतार होते ही रहे हैं।

विष्णु के जो दशावतार माने गये हैं, उनके पीछे अनेक ऐतिहासिक परम्परायें हैं। मत्स्याव-

ार, कूर्मावतार, वाराह अवतार, वामन, नृसिंह अवतार, परशुराम, रामावतार, कृष्णावतार, बुद्धावतार-यह सभी महानुभाव युग पुरुष के रूप में माने गये, जिन्होंने अतीव भयंकर अवस्था में इस देश को बचाया। किसी महाप्रलय से,अथवा देश में ही बढ़ती हुई अनैतिकता को दूर करके, अथवा प्रबल शत्रु की सत्ता को छिन्न-भिन्न कर के जिन्होंने चमत्कार पूर्ण मर्यादा को स्थापित किया।

अवतारवाद रूपी मन्तव्य के पीछे एक दूसरी भावना भी है—यह है माता के गर्भ में मानव शरीरके विकास से लेकर मृत्यु के अंतिम दिन तक की इस मानव शरीर की एक सचित्र राम कहानी। जिस समय पहले पहल बच्चा माता के गर्भ में आता है वह मच्छी के समान होता है, धीरे २ वह मच्छ, कच्छ,वाराह का रूप धारण करता है, जन्म लेता है, धीरे २ चलना सीखता है तो वामनावतार बन जाता है। बड़ा होता है नृसिंह बन जाता है। फिर राम और कृष्ण के समान तेजस्वी बनकर अन्त में बुद्ध-गति को प्राप्त होता है।

सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी, सर्वनियन्ता, घटघट वासी, असीम सत्ताधारी ईश्वर को हाड़ मांस युक्त ससीम नाशवान् शरीर में बन्द कर देने की भावना भारतीय संस्कृति की भावना नहीं। यह भावना हमारे देश में ईसाइयों और मुसलमानों के साथ आई। और उस भावना का सामना करने के लिये हमें भी विवश होकर अपने में ऐसी ही भावनाओं को कृत्रिम रूप से जागृत करना पड़ा। ईसाइयों ने कहा—ईसा ईश्वर का बेटा है, मुसलमानों ने कहा—मुहम्मद ईश्वर का पैगम्बर है—लोहे से लोहा कटता है, शीशे को शीशा काटता है। भारतीय विद्वानों ने कहा, तुम्हारा ईसा तो ईश्वर का बेटा है, हमारा राम तो साक्षात् ईश्वर ही है।

इस प्रकार की विशेष परिस्थिति का सामना करने के लिये इस देश में "अवतारवाद" की सृष्टि हुई। आदि कवि बाल्मीकि ने तो श्रीराम को ऐतिहासिक महापुरुष ही माना है, परन्तु गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज ने ईश्वर को मानते हुए भी श्रीराम को ईश्वर के स्थान पर ईश्वर के बराबर बिठाने का अवश्य ही भरसक प्रयत्न किया है, और उन्हें अपने इस प्रयास में पूरी २ सफलता भी प्राप्त हुई है। परन्तु हमें एक बात को भूलना नहीं चाहिए; जिस युग में आदि कवि हुए उस युग में श्रीराम को एक ऐतिहासिक महापुरुष के रूप में मानना ही उचित था, परन्तु जिन दिनों में गोस्वामी जी महाराज का जन्म हुआ उन दिनों में श्रीराम को अवतार के रूप में मानने में ही भारतीय समाज का कल्याण था।

गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज का जन्म सम्वत् १५८९ में हुआ, अर्थात् आज से पूरे ५२४ वर्ष पूर्व। जिन दिनों इस देश में मुगल वंश की जड़ें जम रही थीं, शासन सत्ता आर्यों के हाथों से निकल चुकी थी, राणा संग्राम सिंह की पराजय के पश्चात् राजपूतों ने विदेशी आक्रमणकारियों से जम कर लोहा नहीं लिया। भारतीय क्षात्र-शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी। इस देश में सर्वत्र अल्लाहुअकबर की सदायें गूंजने लगीं। सर्व साधारण में अपने धर्म और अपने समाज के प्रति एक प्रकार की हीनता की भावना समा गयी—एक कुरान, एक मुहम्मद और एक मदीना को लेकर मुसलमान अपने इस्लामी मत का प्रचार करने के लिए नगर-नगर ग्राम-ग्राम में फैल गये—मुसलमान वह जो कुरान को माने, मुहम्मद को माने, मक्का और मदीना को माने. बताओ हिन्दुओ हिन्दु कौन?

हिन्दू की तो हमारे हां व्याख्या ही बिगड़ चुकी थी। न हमारा धर्म स्थान एक, न हमारा धर्म ग्रन्थ एक, न हमारा धर्म गुरु एक। इस अवस्था में गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज ने समय की आवश्यकता को पहचाना। यदि उस समय हिन्दू समाज को एक सूत्र में बांधा नहीं जाता तो सर्वनाश अवश्यम्भावी था। उस समय गोस्वामी जी महाराज ने भी जय घोष पुकारा —हिन्दू वह जो राम को माने, हिन्दू वह जो रामायण को माने, हिन्दु वह जो अयोध्या को माने। आज भले ही हिन्दु की यह परिभाषा हमारे लिये इतनी लाभदायक न हो परन्तु आज से ५०० वर्ष पूर्व तो तुलसी की "परिभाषा" ने इस जाति को सर्वनाश से बचा ही लिया।

सम्पूर्ण अयोध्या मुसलमान बन गई थी। भगवान् राम के जन्म स्थान को मुसलमानों ने बाबरी मस्जिद का रूप दे दिया था। अयोध्या को मुस्लिम नवाबों ने अपना मक्का-मदीना बना लिया था। कोई बड़ा मुसलमान कहीं मरा अयोध्या में लाकर दफनाया जाता। गोस्वामी जी महाराज ने फिर से अयोध्या को पवित्रता प्रदान की। मुसलमानों के कलमें की तुलना में उन्होंने भारतपुत्रों को "राम नाम" का गुरु-मन्त्र दिया। मुसलमान बन गये हिन्दुओं को पुनः शुद्ध और पवित्र करने के लिए उन्होंने उन भारतपुत्रों को नाभी तक सरयू के जल में खड़ा किया। गले में कंठी, हाथ में माला. मुख में तुलसी, अंजली में गंगा जल और कहा, बोलो—

श्री राम ! जय राम !! जय, जय राम !!!

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥

बाल्मीकि के ऐतिहासिक राम को तुलसी ने चौदह कला सम्पूर्ण सच्चिदानन्द स्वरूप अजर अमर का अवतार बना दिया। विदेशी आक्रान्ता रूपी रावणों को देश से मार भगा देने के लिए उस समय इसी बात की परम आवश्यकता थी।

त्रेता काव्य निबन्ध करी सत कोटि रमायन।
इक अच्छर उद्धरे ब्रह्म हत्यादि परायन॥
सब भक्तन सुख देन बहुरि लीला विस्तारी।
राम-चरण-रसमत्त रहत अह निसि व्रतधारी॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नौका लयो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो।

प्रभु ने श्री अवध को अपने प्रादुर्भाव-क्षेत्र के लिए चुना। भगवान् के जितने भी अवतार हुए भारतवर्ष में ही हुए। प्रभु हैं तो सर्वदेशीय, परन्तु भारतवर्ष के प्रति उनका विशेष स्नेह है। धरती के अन्य क्षेत्रों में कहीं प्रभु ने अपने पुत्र को भेजा, कहीं अपने दूत को परन्तु जब भी भारत में पधारने की आवश्यकता प्रभु ने समझी, वे स्वयं आए।

अयोध्या, जहां भगवान् का अवतार हुआ अपने समय की सर्व-श्रेष्ठ नगरी थी। —Capital International। आदि कवि ने अयोध्या की महिमा गाते हुए कहा है—

सर्वा पूर्वमियं येषामासीत् कृत्स्ना वसुंधरा।
प्रजापतिमुपादाय नृपाणां जय शालिनाम्॥

यह सारी पृथ्वी पूर्वकाल में प्रजापति मनु से लेकर अब तक जिस वंश के विजयशाली नरेशों के अधिकार में रही है, सुनो ! अय भारत के वीर सपूतो ! मैं आज उन्हीं शूरवीरों की कथा आप को सुनाने बैठा हूं। वे हम सब के पूर्वज अन्याय एवं अत्याचार का विनाश करने के लिए आगे बढ़े। वे आगे ही बढ़ते गये, पीछे मुड़कर उन्होंने कभी देखा नहीं। —यह रामायण

उन्हीं राजाओं की कुल परम्परा में अवतरित हुई।

अयोध्या नगरी को स्वयं महाराज मनु ने बसाया था। बड़े-बड़े फाटकों और किवाड़ों से यह पुरी सुशोभित थी। वहां सब प्रकार के यन्त्र और अस्त्र-शस्त्र संचित थे —

सर्वयन्त्रायुधवतीम् शतघ्नी शतसंकुलाम्।

सैंकड़ों तोपें उस नगरी की रक्षा कर रही थीं। उस के चारों ओर गहरी खाई खुदी थी, जिसे लांघना अत्यन्त कठिन था।

कर देने वाले सामन्त नरेशों के समुदाय उसे सदा घेरे रहते थे, विभिन्न देशों के निवासी वैश्य उस पुरी की शोभा बढ़ाते थे। उस की शोभा विचित्र थी, वह सब प्रकार के रत्नों से भरी पूरी तथा सात महले प्रासादों से सुशोभित थी। उसे समतल भूमि पर बसाया गया था। वहां जल इतना मीठा था, मानो ईख का रस हो। अग्निहोत्री, शम-दम आदि गुणों से सम्पन्न, छहों अंगों सहित सम्पूर्ण वेदों के पारंगत विद्वान् श्रेष्ठ ब्राह्मण उस पुरी को सदा घेरे रहते थे।

नगर एवं जनपद की प्रजा अपने राजा से बहुत प्रेम करती थी। अयोध्या में कहीं भी कोई कामी, कृपण, क्रूर, मूर्ख और नास्तिक मनुष्य देखने को भी नहीं मिलता था। वहां कहीं एक भी ऐसा द्विज नहीं था, जो नास्तिक असत्यवादी अनेक शास्त्रों के ज्ञान से रहित दूसरों के दोष ढूंढने वाला, साधन में असमर्थ और विद्याहीन हो।

महाराज दशरथ के आठ मन्त्री थे, जो मन्त्र के तत्व को जानने वाले और बाहरी चेष्टा देखकर ही मन के भाव को समझ लेने वाले थे—वे सदा सर्वदा राजा के प्रिय एवं हित में लगे रहते थे। इसी लिये उन का यश बहुत फैला हुआ था। वे सभी शुद्ध आचार विचार संयुक्त थे और राजकीय कार्यों में निरन्तर संलग्न रहते थे।

धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और आठवें सुमन्त्र, जो अर्थ शास्त्र के ज्ञाता थे,—ऋषियों में श्रेष्ठतम वसिष्ठ और वामदेव—ये दो महर्षि राजा के पुरोहित थे—इस के सिवाय सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्घायु, मार्कण्डेय और विप्रवर कात्यायन भी महाराज के मन्त्री थे।

तेषामविदितं किंचित् स्वेषु नास्ति परेषु वा,
क्रियमाणं कृतं वापि चारेणापि चिकीर्षितम्।
कुशला व्यवहारेषु सौहृदेषु परीक्षिताः,
प्राप्त कालं यथा दण्डं धारयेयुः सुतेष्वपि।

अपने अथवा शत्रुपक्ष के राजाओं की कोई भी बात उनसे छिपी नहीं थी। दूसरे राजा क्या करते हैं, क्या कर चुके हैं और क्या करना चाहते हैं—ये सभी बातें गुप्तचरों द्वारा उन्हें मालूम रहती थीं। वे सभी व्यवहार कुशल थे। उनके सौहार्द की अनेक अवसरों पर परीक्षा ली जा चुकी थी। वे मौका पड़ने पर अपने पुत्र को भी उचित दण्ड देने में भी नहीं हिचकते थे। कोष के संचय तथा चतरंगिनी सेना के संग्रह में सदा लगे रहते थे। उन में सदा शौर्य और उत्साह भरा रहता था, वे राजनीति के अनुसार कार्य करते तथा अपने राज्य के भीतर रहने वाले सत्पुरुषों की रक्षा करते थे।

प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न पहुंचा कर न्यायोचित धन से राजा का खजाना भरते सम्पूर्ण राष्ट्र और नगर में पूर्ण शान्ति छाई रहती थी, उन सब के भाव शुद्ध और विचार

एक थे। वे उत्तम वृत का पालन करने वाले तथा राजा के हितैषी थे। नीति रूपी नेत्रों से देखते हुए सदा सजग रहते थे। "जाग्रतो नय-चक्षुषा"—अपने पदाक्रमों के कारण उन की सर्वत्र ख्याति थी। विदेशेष्वपि विज्ञाताः सर्वतो बुद्धिनिश्चयाः ॥ विदेशों में सब लोग उन्हें जानते थे। समस्त देशों और कालों में वे गुणवान् ही सिद्ध होते थे, गुणहीन नहीं। संधि और विग्रह के उपयोग और अवसर का उन्हें अच्छी तरह ज्ञान था। वे स्वभाव से ही दैवी सम्पत्ति से युक्त थे।

उन में राजकीय मन्त्रणा को गुप्त रखने की पूर्ण शक्ति थी। वे सूक्ष्म विषय का विचार करने में कुशल थे। नीति-शास्त्र में उन की विशेष जानकारी थी। वे गुप्तचरों द्वारा अपने और शत्रु राज्य के वृत्तान्तों पर दृष्टि रखते थे। प्रजा पालन करते हुए अधर्म से सर्वथा दूर ही रहते थे।

उन की तीनों लोकों में प्रसिद्धि थी। उन के मित्रों की संख्या बहुत थी। सभी सामन्त उन के चरणों में मस्तक झुकाते थे। जैसे सूर्य अपनी तेजोमयी किरणों के साथ उदित होकर प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार राजा दशरथ उन तेजस्वी मन्त्रियों से घिरे रहकर बड़ी शोभा पाते थे।... ऐसी थी हमारी अयोध्या और ऐसे थे हमारे अयोध्यापति।

राम जन्म से पूर्व श्रीमन्महाराजाधिराज दशरथ की जीवन लीला पर न तो गोस्वामी तुलसीदास ने ही कोई प्रकाश डाला है और न ही आदि कवि ने। एकदम अयोध्या का, मन्त्री-मण्डल का वर्णन करने के पश्चात् दशरथ जी महाराज को सन्तान न होने की चिन्ता व्याप्त हो जाती है। क्योंकि महाकवि का उद्देश्य केवल श्रीराम द्वारा रावण वध का **ही वर्णन** करना था, जो ग्रन्थ उन्हों ने लिखा उस का नाम था पौलस्त्यवध अर्थात् इस मेरे ग्रन्थ में न तो रघुवंश का ही विस्तृत वर्णन है, न महाराज दशरथ का; इस ग्रन्थ में श्रीराम सम्बन्धी केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन है जिन का सीधा सम्बन्ध राम द्वारा रावण की मृत्यु के साथ है।

पुत्रोत्पत्ति के लिये महाराज श्री ने पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया। श्रीराम की उत्पत्ति यज्ञ द्वारा हुई, सीता जी की उत्पत्ति धरती से। यह कवियों की अलंकारिक भाषा है, अर्थात् धरती की रक्षा के लिए ऋषियों ने एक महान् योजना बनाई, जिस की पूर्ति के लिये "रामजन्म" हुआ। राम का सम्पूर्ण जीवन यज्ञमय जीवन था। देश की स्वतन्त्रता के लिए जो भी प्रयास किया जाता है, कथा एवं नाटक में उसे यज्ञ के रूप में ही वर्णित किया जाता है। अंग्रेज़ को भारतवर्ष से निकालने के लिए हमने अपने समय में जो कुछ किया, वह भी एक यज्ञ था, "स्वातन्त्र्य यज्ञ" ऐसा ही यज्ञ अपने समय में मराठों ने भी रचा था, पंजाब के सिंह सूरमाओं ने भी रचा था—शिवा जी महाराज एवं दशमेश पिता की छत्र छाया में।

यज्ञ-समाप्ति के पश्चात् जब छः ऋतुयें बीत गयीं, तब बारहवें मास में चैत्र के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को पुनर्वसु नक्षत्र एवं कर्क लग्न में कौशल्या देवी ने दिव्य लक्षणों से युक्त, सर्वलोकवन्दित जगदीश्वर श्रीराम को जन्म दिया। उस समय सूर्य, मंगल, शनि, गुरू और शुक्र—ये पांच ग्रह अपने अपने उच्च स्थान में विद्यमान थे तथा लग्न में चन्द्रमा के साथ

वृहस्पति विराजमान थे।

राजा दशरथ के चारों पुत्र सर्वगुण सम्पन्न थे।

चारिउ सील रूप गुण धामा।
तदपि अधिक सुख सागर रामा॥
नौमी तिथि मधु मास पुनीता।
सुकुल पच्छ अभिजित हरि प्रीता॥
मध्यदिवस अति सीत न घामा।
पावन काल लोक बिश्रामा॥
सीतल मंद सुरभि बह बाऊ।
हरषित सुर संतन मन चाऊ॥
वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा।
स्रवहिं सकल सरिताऽमृतधारा॥
सो अवसर बिरंचि जब जाना।
चले सकल सुर साजि बिमाना॥
गगन बिमल संकुल सुर जूथा।
गावहिं गुन गंधर्व बरूथा॥
बरषहिं सुमन सुअंजुलि साजी।
गहगहि गगन दुंदुभि बाजी॥
अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा।
बहुविधि लावहिं निज निज सेवा॥

सुर समूह बिनती करि पहुंचे निज निज धाम।
जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक विश्राम॥

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप विचारी॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा
निज आयुध भुज चारी।
भूषण बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी
केहि बिधि करौं अनंता।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनंता।
करुना सुख सागर सब गुन आगर
जेहि गावहिं श्रुति संता।
सो मम हित लागी जन अनुरागी
भयउ प्रगट श्रीकंता॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया
रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी
सुनत धीर मति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना
चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा
कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला वह सुख परम अनूपा॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहिं भवकूपा॥

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार॥

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना।
मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई।
मोरें गृह आवा प्रभु सोई॥
परमानंद पूरि मन राजा।
कहा बोलाइ बजावहु बाजा।

गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रगटे सुषमा कंद।
हरषवंत सब जहँ तहँ, नगर नारि नर बृंद॥

वह सुख संपति समय समाजा।
कहि न सकइ सारद अहिराजा॥
अवध पुरी सोहइ एहि भांति।
प्रभुहि मिलन आई जनु राती॥
भवन वेद धुनि अति मृदु बानी।
जनु खग मुखर समयं जनु सानी॥
कौतुक देखि पतंग भुलाना॥
एक मास तेइँ जात न जाना॥

मास दिवस कर दिवस भा मरम न जानइ कोई।
रथ समेत रबि थाकेउ निसा कवन बिधि होइ॥

यह रहस्य काहूँ नहिं जाना।
दिनमनि चले करत गुनगाना ।।
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा।
चले भवन बरनत निज भागा ।।

ग्यारह दिन बीतने पर महाराज श्री ने पुत्रों का नामकरण संस्कार किया।

जो आनन्द सिंधु सुख रासी ।
सीकर तें त्रैलोक सुपासी ।।
सो सुख धाम राम अस नामा।
अखिल लोकदायक विश्रामा ।।
बिस्व भरण पोषन कर जोई।
ताकर नाम भरत अस होई ।।
जाके सुमिरन तें रिपु नासा।
नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ।।
लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार।
गुरु बसिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार ।।

चारों भ्राताओं के बालपन के सम्बन्ध में न तो आदि कवि ही हमें कुछ बताते हैं, न ही तुलसी दास—रामकथा सम्बन्धी और भी जितने ग्रन्थ हैं वे भी कुछ नहीं बताते,—यद्यपि भगवान् कृष्ण की बाल-लीला पर १८ पुराण लिखे गये, परन्तु चारों भाईओं की बाल लीला के सम्बन्ध में गोस्वामी जी महाराज केवल इतना ही लिखते हैं।

बालचरित हरि बहुबिधि कीन्हा।
अति आनन्द दासन्ह कहँ दीन्हा ।।
कछुक काल बीतें सब भाई।
बड़े भए परिजन सुखदाई ।।
चूड़ाकरन कीन्ह गुरु जाई।
बिप्रन्ह पुनि दछिना बहु पाई ।।
परम मनोहर चरित अपारा।
करत फिरत चारिउ सुकुमारा ।।
मन क्रम बचन अगोचर जोई।
दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई।
भोजन करत बोल जब राजा।
नहि आवत तजि बाल समाजा ।।
कौसल्या जब बोलन जाई।
ठुमक ठुमक प्रभु चलहि पराई ।।
निगम नेति सिव अंत न पावा।
ताहि धरैं जननी हठि धावा ।।
धूसर धूरि भरें तनु आए।
भूपति बिहसि गोद बैठाए ।।
भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ ।।
बालचरित अति सरल सुहाए।
सारद सेष संभु श्रुति गाए ।।
जिन्ह कर मन इह सन नहि राता।
ते जन बंचित किए बिधाता ।।
भए कुमार जबहि सब भ्राता।
दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता ।।
गुरगृहँ गए पढ़न रघुराई।
अलप काल विद्या सब आई ।।
जाकी सहज स्वास श्रुति चारी।
सो हरि पढ़ यह कौतुक भारी ।।
विद्या विनय निपुन गुन सीला।
खेलहि खेल सकल नृपलीला ।।
करतल बान धनुष अति सोहा।
देखत रूप चराचर मोहा ।।
कोसलपुर बासी नर नारि बृद्ध अरु बाल।
प्रानहु ते प्रिय लागत सब कहुँ राम कृपाल ।।
अनुज सखा संग भोजन करहीं।
मातु पिता अग्या अनुसरहीं ।।
जेहि बिधि सुखी होहि पुर लोगा।
करहि कृपानिधि सोई संजोगा ।।
बेद पुरान सुनहि मन लाई।
आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ।।
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मातु पिता गुरु नावहि माथा ।।
आयसु मागि करहि पुर काजा।
देखि चरित हरषइ मन राजा ।।
ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप ।।

(४)

विश्वामित्र तपो धन राम

भूमिर्भारेण मग्ना दशवदनमुखा शेषरक्षोगणानां धत्वा गोरूपमादौ विजिमुनिजनैः साकमब्जासनस्य।
गत्वा लोकं रुदन्ती व्यसनमुपगतं ब्रह्मणे प्राह सर्वं ब्रह्मा ध्यात्वा मुहूर्तं सकलमपि हृदावेदशेषात्मकत्वात्
तस्मात्क्षीरसमुद्रतीरमगमद् ब्रह्माथ देवैर्वृतो देव्या चाखिललोकहृत्स्थमजरं सर्वज्ञमीशं हरिम्।
अस्तौषीच्छ्रुतिसिद्ध निर्मलपदैः स्तोत्रैः पुराणोद्भवैर्भक्त्या गद्गदया गिरातिविमलैरानन्दवाष्पैर्वृतः।
ततः स्फुरत्सहस्रांशुसहस्रसदृशप्रभः। आविरासीद्धरिः प्राच्यां दिशां व्यपनयंस्तमः

देवियो एवं भद्र पुरुषो

क्योंकि आदि कवि का लक्ष्य केवल पौलस्त्य वध सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन करना था इसी लिए किसी भी रामायण में श्रीराम की बाल-लीला का विस्तृत वर्णन नहीं है।

एकाएक महामुनि विश्वामित्र जी अवध में पधार जाते हैं।

यह सब चरित कहा मैं गाई।
आगिलि कथा सुनहु मन लाई॥
बिस्वामित्र महामुनि ग्यानि।
बसहि बिपिन सुभ आश्रम जानी॥
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं।
अति मारीच सुबाहुहि डरहीं॥
देखत जग्य निसाचर धावहि।
करहि उपद्रव मुनि दुख पावहि॥
गाधितनय मन चिन्ता ब्यापी।
हरि बिनु मरहि न निसिचर पापी॥
तब मुनिबर मन कीन्ही बिचारा।
प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥

बहुबिधि करत मनोरथ जात लागि नहि बार।
करि मज्जन सरऊ जल गए भूप दरबार॥

एक दिन धर्मात्मा राजा दशरथ पुरोहित तथा बन्धु बान्धवों के साथ बैठकर पुत्रों के विवाह के विषय में विचार कर रहे थे, उस समय सहसा महा तेजस्वी महामुनि विश्वामित्र वहां पधारे। वे राजा से मिलना चाहते थे: उन्होंने द्वारपालों से कहा,—"तुम लोग शीघ्र जाकर महाराज को सूचना दो कि कुशिक वंशी गाधिपुत्र विश्वामित्र आये हैं।

महामुनि के शुभागमन का समाचार सुनते ही महाराज श्री सावधान हो गये। उन्हों ने पुरोहित को साथ लेकर बड़े हर्ष के साथ उन की आगवानी की, मानो देवराज इन्द्र ब्रह्मा जी का स्वागत कर रहे हों।

विश्वामित्र जी कठोर ब्रत का पालन करने वाले तपस्वी थे। वे अपने प्रबल तेज से प्रज्वलित हो रहे थे। उनका दर्शन करके राजा का मुख प्रसन्नता से खिल उठा और उन्होंने महर्षि को अर्घ्य निवेदन किया। बोले—"महामुने! जैसे

किसी मरणधर्मी मनुष्य को अमृत की प्राप्ति हो जाये, निर्जल प्रदेश में पानी बरस जाए, किसी सन्तानहीन को अपने अनुरूप पत्नि के गर्भ से पुत्र प्राप्त हो जाये, खोयी हुई निधि मिल जाए। उसी प्रकार आप का यहां शुभागमन हुआ है। आप का स्वागत है। आप के मन में कौन सी उत्तम कामना है, जिस को मैं हर्ष के साथ पूर्ण करूं। मेरा अहोभाग्य है, जो आपने यहां तक पधारने का कष्ट उठाया। आज मेरा जन्म सफल और जीवन धन्य हो गया।

प्रभो! आप के दर्शन से आज मेरा घर तीर्थ हो गया। अपने आप को पुण्यक्षेत्रों की यात्रा करके आया मानता हूं। बताइये, आप क्या चाहते हैं? आप के शुभागमन का शुभ उद्देश्य क्या है?

महामुनि विश्वामित्र बोले,—राजन! मैं सिद्धि के लिये एक नियम का अनुष्ठान करता हूं। इस नियम का अधिकांश कार्य पूर्ण हो चुका है। अब उसकी समाप्ति के समय वे दो राक्षस मारीच और सुबाहू आ धमके हैं। वे दोनों बलवान् और सुशिक्षित हैं —मेरे इस यज्ञ की रक्षा के लिये—"काक पक्षधरं वीरं ज्येष्ठं मे दातुमर्हसि"। मुझे राम को प्रदान कीजिए। ये मुझ से सुरक्षित रहकर अपने दिव्य तेज से उन विघ्नकारी राक्षसों का नाश करने में समर्थ हैं। इन के सामने वे दोनों राक्षस कदापि ठहर नहीं सकते। इन रघुनन्दन के सिवाय दूसरा कोई पुरुष उन्हें मारने का साहस भी नहीं कर सकता।

अहं वेद्मि महात्मानं रामं सत्यपराक्रमम्।
वसिष्ठोऽपि महातेजा ये चेमे तपसि स्थिता।

राम क्या हैं यह तो मैं जानता हूं। महातेजस्वी वसिष्ठ तथा ये अन्य तपस्वी भी जानते हैं। राजेन्द्र! यदि आप इस भूमण्डल में धर्म लाभ और उत्तम यश को स्थिर रखना चाहते हैं तो श्रीराम को मुझे दे दीजिए।

आप यज्ञ के अवशिष्ट दस दिनों के लिये अपने पुत्र कमलनयन श्रीराम को मुझे दे दीजिये।

महाराज श्री बोले,—यह मेरी अक्षौहिणी सेना है, जिस का मैं पालक और स्वामी हूं इस सेना के साथ मैं स्वयं ही चलकर उन निशाचरों के साथ युद्ध करूंगा।

मैं स्वयं सब से आगे चलूंगा ओर जब तक इस शरीर में प्राण रहेंगे तब तक निशाचरों के साथ लड़ता रहूंगा।

परन्तु विश्वामित्र के मन में तो बात ही कुछ और थी— बोले, राजन! यह कार्य आपके करने का नहीं—सेना साथ ले कर जाने से तो काम बिगड़ जायेगा—war before war—सुबाहु मारीच के पीछे रावण की ताकत है—रावण का नाम सुनते ही महाराज दशरथ बोले, "नहि शक्तोऽस्मि संग्रामे स्थातुं तस्य दुरात्मना।" मुनिवर! मैं उस दुरात्मा रावण के सामने युद्ध में ठहर नहीं सकता। युद्ध में रावण का वेग तो देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष. गरुड़ और नाग भी नहीं सह सकते। फिर मनष्य की तो बात ही क्या है।

इस पर महामुनि विश्वामित्र क्रोधित हो उठे महामुनि के क्रोधित होते ही समूची धरती कांप उठी और देवताओं के मन में महान् भय समा गया। उस समय परिस्थिति को सम्भालते हुए महामुनि वसिष्ठ बोले, राजन! आप को धर्म का परित्याग नहीं करना चाहिए। राम

शस्त्र विद्या जानते हों, राक्षस इन का सामना नहीं कर सकते। जैसे प्रज्वलित अग्नि द्वारा सुरक्षित अमृत पर कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार कुशिकनन्दन विश्वामित्र से सरक्षित हुए श्री राम का वे राक्षस कुछ भी बिगाड़ नहीं सकते। ये श्री राम तथा विश्वामित्र साक्षात् धर्म की मूर्ति हैं। ये बलवानों में श्रेष्ठ हैं। विद्या के द्वारा ही ये संसार में सब से बढ़े चढ़े हैं। तपस्या के तो ये विशाल भण्डार हैं ही। चराचर प्राणियों सहित जो नाना प्रकार के अस्त्र हैं, उन सब को ये जानते हैं। इन मुनिश्रेष्ठ धर्मज्ञ महात्मा विश्वामित्र से भूत या भविष्य की कोई बात छिपी नहीं है।

महामुनि वसिष्ठ एवं महर्षि विश्वामित्र के सम्बन्ध में एक बात अवश्य जान लेनी चाहिये—व्यक्तिगत जीवन में दोनों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे, परन्तु राष्ट्र के लिए दोनों एक थे। आज के नेता पार्टी-बाजी से ऊपर उठकर कभी किसी भी समस्या पर विचार करने को कोई तैयार नहीं है। पार्टी ही उन के लिये देश है, परन्तु वाह रे वसिष्ठ,--एक विरोधी दल का सन्त आया है दरबार में—वसिष्ठ जी अपने व्यक्तिगत मतभेद को भुला कर उन का समर्थन कर रहे हैं,—दोनों परम सन्तों में वैमनस्य की कहानी भी आप को सुना दूं।

राजर्षि और ब्रह्मर्षि

महाराज विश्वामित्र एक दिन जंगल में विहार करते-करते महर्षि वसिष्ठ के आश्रम में जा पहुंचे। त्याग और करुणा की मूर्ति वशिष्ठ जी ने राजा की बड़ी आवभगत की। वशिष्ठ जी के पास एक नन्दिनी गाय थी। वह मन वांछित फलों को प्रदान करने वाली थी। विश्वामित्र के मन में लोभ समा गया। उन्होंने ऋषि वसिष्ठ से गाय मांगी, महामुनि वशिष्ठ ने उस गाय को देना स्वीकार न किया। किन्तु राजसत्ता! इसी के सहारे विश्वामित्र ने ऋषि की गाय छीनने का साहस किया, परन्तु ब्रह्मतेज के आगे राजसत्ता विफल ही रही। विश्वामित्र गाय न ले सके।

अब विश्वामित्र के सिर पर ब्रह्मर्षि बनने का भूत सवार हुआ। इसके लिए उन्होंने अपना राजपाट सब कुछ छोड़ दिया! वे बहुंत दिनों तक तपस्या में लगे रहे। उनकी तपस्या से प्रसन्न हो देवताओं ने उन्हें ब्रह्मर्षि का पद दे दिया। विश्वामित्र जी की प्रसन्नता की सीमा न रही। परन्तु अभी उस सरटिफिकेट पर ब्रह्मर्षि-मण्डल के प्रधान के हस्ताक्षर होने थे, मण्डल के प्रधान थे वशिष्ठ। अभिमान से भरे हुए विश्वामित्र अपने ब्रह्मर्षि के पद के प्रमाण पत्र पर हस्ताक्षर करवाने वशिष्ठ के पास पहुंचे, परन्तु वसिष्ठ ने उन्हें राजर्षि ही कह कर सम्बोधित किया। विश्वामित्र इस अपमान को सहार न सके। अब उनके सिर पर एक ही धुन सवार थी, जैसे भी हो सके अपने इस अपमान का बदला वसिष्ठ से लिया जाए।

अयोध्या के राजा त्रिशंकु सदेह स्वर्ग जाना चाहते थे। वशिष्ठ तथा उनके शिष्यों ने महाराज को स्वर्ग का पासपोर्ट देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। विश्वामित्र को इस बात का अवसर मिला कि वह जैसे भी हो वसिष्ठ को नीचा दिखायगा—अतः उसने त्रिशंकु को स्वर्ग का परमिट दे दिया। त्रिशंकु का माल बुक तो विश्वामित्र ने कर दिया, परन्तु देवताओं ने उसे स्वीकार नहीं किया। भेजा हुंआ माल बीच में ही लटकने लगा। अब क्या किया जाये।

विश्वामित्र ने यह सब कुछ वसिष्ठ का ही षडयन्त्र समझा। अब तो वे वसिष्ठ के प्राण ही लेने को तैयार हो गये। बस फिर क्या था, एक दिन रात में विश्वामित्र जी वसिष्ठ जी के आश्रम के पास ही जा पहुंचे और छिप कर उनके प्राण-संहार का मनसूबा बांधने लगे।

पूर्णिमा की रात थी। चांदनी पृथ्वी पर छिटक कर संसार को शीतल कर रही थी। वसिष्ठ जी लेटे हुए थे। उनकी धर्म-पत्नी अरुन्धती उनके पास बैठी थी। अरुन्धती को चन्द्रमा की यह रात बड़ी सुखद प्रतीत दी। उन्होंने वशिष्ठ जी से पूछा—महाराज! क्या कोई ऐसा तपस्वी है, जिसकी तपस्या चन्द्रमा के प्रकाश के समान सुखदायिनी है।

हां! वसिष्ठ जी ने उत्तर दिया। ऐसे तपस्वी श्री विश्वामित्र जी हैं। विश्वामित्र जी ऐसा साधक संसार में कहीं खोजने पर भी न मिलेगा।

फिर आप उन्हें ब्रह्मर्षि क्यों नहीं मानते! अरुन्धती ने पूछा।

विश्वामित्र सब से बड़े तपस्वी तो हैं—वशिष्ठ ने उत्तर दिया—किन्तु उनके हृदय से अभी तक क्षत्रियपन दूर नहीं हुआ है। इसी से वे कभी-कभी भयंकर क्रोध कर बैठते हैं। ब्रह्मर्षि बनने के लिये तो क्षमा और दया की आवश्यकता है।

आश्रम के बाहर बैठते हुए विश्वामित्र के कानों में यह शब्द पड़े। वे सहसा चेत गये—ओह! कहां मैं और कहां वसिष्ठ। मैं यहां बैठा उनके प्राणों का ग्राहक हूं और वे वहां बैठे मेरे गीत गा रहे हैं। विश्वामित्र का हृदय लज्जा से भर गया। अपना हथियार फेंक वे कुटी में दाखिल हुए। वशिष्ठ जी के सामने जा श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया।

विश्वामित्र जी को देखते ही वसिष्ठ जी उठ बैठे। उन्होंने विश्वामित्र का हाथ पकड़ा और अपने साथ ही बिठाते हुए बोले, आइये! ब्रह्मर्षि विराजिये।

... ...

महामुनि वसिष्ठ बोले, राजन्! महर्षि विश्वामित्र स्वयं भी उन राक्षसों का संहार करने में समर्थ हैं, किन्तु यह आप के पुत्रों का कल्याण करना चाहते हैं। उस समय एकान्त में ले जाकर महामुनि वसिष्ठ ने महाराज श्री को एक बात कही—

श्रृणु राजन्देवगुह्यं गोपनीयं प्रयत्नतः
रामो न मानुषो जातः परमात्मा सनातनः॥
भूमेर्भारावताराय ब्रह्मणा प्रार्थितः पुरा।
स एव जातो भवने कौसल्यायां तवानघ॥
त्वं तु प्रजापतिः पूर्वं कश्यपो ब्रह्मणः सुतः।
कौसल्या चादितिर्देवमाता पूर्वं यशस्विनी।
शेषस्तु लक्ष्मणो राजन् राममेवानुपद्यते॥
जातौ भरतशत्रुघ्नौ शङ्खचक्रगदाभृतः।
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी॥
विश्वामित्रोऽपि रामाय तां योजयितुमागतः।
एतद्गुह्यतमं राजन्न वक्तव्यं कदाचन॥

राजन्! देवताओं से भी गुप्त रखने योग्य बात सुनो, इसे किसी प्रकार प्रकट न होने देना चाहिये। ये राम मनुष्य नहीं हैं, साक्षात् पुराण पुरुष परमात्मा ही अपनी माया से इस रूपमें प्रकट हुए हैं। हे अनघ! पूर्वकाल में पृथ्वी का भार उतारने के लिये ब्रह्माजीने भगवान् से प्रार्थना की थी, उसे पूर्ण करने के लिये उन परमेश्वरने तुम्हारे यहां कौसल्या के गर्भ से जन्म लिया है। पूर्व जन्म में तुम ब्रह्मा जी के

पुत्र प्रजापति कश्यप थे और यशस्विनी कौसल्या देव माता अदिति थीं। उस समय तुम दोनों ने बहुत वर्षों तक ग्राम्य विषयों से रहित और एकमात्र भगवान् विष्णु की पूजा तथा ध्यान में तत्पर रहकर बड़ा उग्र तप किया। तब कालान्तर में भक्तवत्सल वरदायक भगवान् ने तुम दोनों पर प्रसन्न होकर कहा कि 'वर माँगो' तो तुमने भगवान् से यही माँगा कि 'हे निरञ्जन! आप हमारे पुत्र हों' तब भूतभावन भगवान् ने कहा कि 'ऐसा ही हो।' इसलिये वे ही विष्णु भगवान् इस समय रामरूप से तुम्हारे पुत्र हुए हैं और उनकी सेवा करने के लिये शेष जी लक्ष्मण के रूप में प्रकट होकर उनके अनुयायी हुए हैं। भगवान् गदाधर के शङ्ख और चक्र ने भरत और शत्रुघ्न के रूप से अवतार लिया है तथा योग माया जनक दुलारी सीता जी होकर प्रकट हुई हैं। इस समय विश्वामित्र जी राम से सीता का संयोग कराने के लिये ही आये हैं। राजन्! यह रहस्य अत्यन्त गुह्य है. इसे कभी प्रकाशित मत करना। अब सम्पूर्ण रहस्य तुमको मालूम हो गया है इसलिये अब तम प्रसन्न चित्त से श्री विश्वामित्र जी का सत्कार करके लक्ष्मी पति श्री रघुनाथ जी को लक्ष्मण सहित इनके साथ भेज दो।

देहु भूप मन हरषित तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभ तुम्ह को इन्ह कहं अति कल्यान॥

वसिष्ठ जी के इस प्रकार कहने पर राजा दशरथ ने उस समय अपने को कृतकृत्य माना और प्रसन्न चित्त से आदर पूर्वक 'हे राम! हे राम! हे लक्ष्मण!" ऐसा कहकर पुकारा तथा उन दोनों भाइयों के आने पर उन्हें हृदय से लगा कर और सिर सूंघ कर श्री विश्वामित्र जी को सौंप दिया।

सौंपे भूप रिषिहि सुत बहुबिधि देइ असीस।
जननी भवन गये प्रभु चले नाइ पद सीस॥
पुरुष सिह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरण।
कृपा सिन्धु मति धीर अखिल बिस्व कारन करन॥

आगे—आगे विश्वामित्र, उनके पीछे यशस्वी राम तथा उनके पीछे लक्ष्मण जा रहे थे। वे महातेजस्वी श्रेष्ठ वीर अद्भुत कांति से उद्भासित हो सब ओर अपनी शोभा फैलाते हुए कुशिक पुत्र विश्वामित्र का अनुकरण कर रहे थे। उस समय वे दोनों वीर अचिन्त्य शक्ति शाली स्थाणु देव के पीछे चलने वाले दो अग्नि कुमार स्कन्द और विशाख की भाँति शोभा पा रहे थे।

अयोध्या से ड़ेढ़ योजन दूर जा कर सरयू के दक्षिण तट पर विश्वामित्र ने मधुर वाणी में श्री राम को सम्बोधित किया और कहा—"वत्स राम! अब सरयू के जल से आचमन करो। इस आवश्यक कार्य में विलम्ब न करो। बला और अतिबला नाम से प्रसिद्ध इन मन्त्र समुदाय को ग्रहण करो। इस के प्रभाव से तुम्हें कभी श्रम का अनुभव नहीं होगा। रोग अथवा चिन्ता-जनक कष्ट भी नहीं होगा। तुम्हारे रूप में किसी प्रकार का विकार या उलट फेर नहीं होने पायगा। सोते समय अथवा असावधानी की अवस्था में भी राक्षस तुम्हारे ऊपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। इस भूतल पर बाहुबल में तुम्हारी समानता करने वाला कोई न होगा। नर श्रेष्ठ राम! बला-अतिबला का अभ्यास कर लेने पर तुम्हें भूख प्यास का भी कष्ट नहीं होगा। तुम सम्पूर्ण जगत की रक्षा के लिये इन दोनों विद्याओं को ग्रहण करो। इन दोनों विद्याओं का अध्ययन कर लेने पर इस भूतल पर तुम्हारे यश का विस्तार

होगा। ये दोनों विद्यायें ब्रह्मा जी की तेजस्विनी पुत्रियाँ हैं।

शत्रुदमन! मेरी आज्ञा से इस प्रदेश को पुनः निष्कण्टक बना दो। ताटका ने इस भू-भाग को उजाड़ बना दिया है। मारीच और सुबाहू दो उसके पुत्र इन्द्र के समान पराक्रमी हैं। रघुनन्दन! यद्यपि आर्य वीर के लिये स्त्री पर हाथ उठाना वर्जित है, परन्तु इस समय तुम्हें राष्ट्र धर्म का पालन करना होगा। जब गौ ब्राह्मण का जीवन संकटमय हो उस समय राजा का यही कर्त्तव्य है कि शत्रु पर दया कदापि न दिखाय। चारों वर्णों के हित के लिये स्त्री हत्या भी करनी पड़े तो उस से मुंह नहीं मोड़ना चाहिये। यही सनातन धर्म है।

श्री राम ने गुरु चरणों में सर झुका दिया बोले, जब मैं श्री अवध से चला था; पिता श्री एवं कुल गुरु ने मुझे आदेश दिया था,—महामुनी विश्वामित्र का वचन ही धर्म शास्त्र है अतः मैं आप के आदेश का पालन करता हुआ ताटका वध को उत्तम मान कर यह कार्य अवश्य करूंगा।

गोब्राह्मण हितार्थाय देशस्य च हिताय च,
तव चैवाप्रमेयस्य वचनं कर्तुमुद्यतः ॥

ऐसा कह कर शत्रुदमनकारी श्री रामचन्द्र ने धनुष के मध्य भाग में मुठ्ठी बाँध कर उसे जोर से पकड़ा और उस की प्रत्यञ्चा पर तीव्र टङ्कार दी। आवाज से सम्पूर्ण दिशायें गूंज उठी। ताटका खत्म, सुबाहू भी खत्म—मारीच ही एक ऐसा सौभाग्यशाली था, जो वहां से बच निकला।

उस भयंकर राक्षसी को मारी गयी देख देव राज इन्द्र तथा देवताओं ने श्री राम को साधु वाद देते हुए उनकी सराहना की, उस समय सहस्रलोचन इन्द्र तथा समस्त देवताओं ने अत्यन्त प्रसन्न एवं हर्षोत्फुल्ल होकर विश्वामित्र से कहा—मुनेः कुशिक नन्दन! आप का कल्याण हो! आप ने इस कार्य से इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं को संतुष्ट किया। अब रघुकुल तिलक श्री राम पर अपना स्नेह प्रकट कीजिये। ब्रह्मन् प्रजापति कृशाश्व के अस्त्र रूपधारी पुत्रों को जो सत्य पराक्रमो तथा तपोवल से सम्पन्न हैं, श्री राम को समर्पित कीजिये।

विप्रवर! ये आप के अस्त्रदान के सुयोग्य पात्र हैं, तथा आप के अनुसरण में तत्पर रहते हैं। राजकुमार श्री राम के द्वारा देवताओं का महान् कार्य सम्पन्न होने वाला है। ऐसा कह कर सभी देवता विश्वामित्र जी की प्रशंसा करते हुए प्रसन्नतापूर्वक आकाश मार्ग से चले गये।

ताड़का वध के पश्चात् चाहिये तो यह था कि महामुनि राम और लक्ष्मण को श्री अवध पहुंचा देते। जिस उद्देश्य-पूर्ति के लिये वे यगल सरकार को मांग कर लाए थे, वह उद्देश्य पूरा हो गया। परन्तु ऐसा प्रतीत देता है ताड़का वध तो बहाना मात्र था, महामुनि का वास्तविक उद्देश्य तो रावण वध के लिए देश की दो बड़ी शक्तियों को प्रणय बन्धन में बांध कर एक करना था। इसीलिये ताड़का वध के अगले ही दिन प्रातः काल श्री चरणों में उपस्थित हो जब श्री राम ने प्रार्थना की—मुनिवर! हम दोनों किंकर आप की सेवा में उपस्थित हैं। आज्ञा दीजिए, हम क्या सेवा करें। उस समय महर्षि विश्वामित्र बोले, नरश्रेष्ठ! मिथिला के राजा जनक का परम धर्ममय यज्ञ प्रारम्भ होने वाला है, उसमें हम सब लोग जायेंगे। पुरुषसिंह! तुम्हें भी हमारे साथ वहां चलना है। वहां एक बड़ा ही अद्भुत धनुषरत्न है। तुम्हें उसे देखना

चाहिए।

तदनन्तर लक्ष्मण सहित श्रीराम विश्वामित्र जी को आगे कर मिथिलानरेश के यज्ञ मण्डप में जा पहुंचे। ज्योंहि महाराज जनक को मुनिवर के पधारने का समाचार मिला, वे तुरंत अपने पुरोहित शतानन्द को आगे करके अर्घ्य लिये विनीतभाव से उनका स्वागत करने को चले। महाराज ने विनीत भाव से सहसा आगे बढ़ कर महर्षि की अगवानी की तथा धर्म शास्त्र के अनुसार विश्वामित्र को धर्म युक्त अर्घ्य समर्पित किया। महाराज जनक की वह पूजा ग्रहण करके मुनि ने उनका कुशल समाचार पूछा तथा उनके यज्ञ की निर्विघ्न स्थिति के विषय में जिज्ञासा की—महाराज जनक हाथ जोड़ विनीत भाव में बोले,—भगवन्! आज देवताओं ने मेरे यज्ञ की आयोजना सफल कर दी। आज पूज्य चरणों के दर्शन से मैं ने यज्ञ का फल पा लिया। ब्रह्मन्! आप मुनियों में श्रेष्ठ हैं। आप के पधारने से यज्ञ मण्डप शोभायमान हो गया—यह मेरे ऊपर आप का बहुत बड़ा अनुग्रह है। ब्रह्मर्षे! मनीषी ऋत्विजों का कहना है कि मेरी यज्ञ दीक्षा के बारह दिन ही शेष रह गये हैं। अतः कुशिकनन्दन! बारह दिनों के पश्चात् यहां भाग ग्रहण करने के लिये आये हुए देवताओं का दर्शन कीजियेगा—मुनिवर विश्वामित्र से ऐसा कह कर उस प्रसन्नमुख हुए राजा जनक ने पुनः उनसे हाथ जोड़ कर पूछा—महामुने! आप का कल्याण हो। देवता के समान पराक्रमी और सुन्दर आयुध धारण करने वाले ये दोनों वीर राजकुमार जो अपने मनोहर स्वरूप से अश्विनी कुमारों को भी लज्जित कर रहे हैं, किस के पुत्र हैं। और यहां कैसे, किस लिये अथवा किस उद्देश्य से पैदल ही पधारे हैं। मैं इन दोनों वीरों का परिचय एवं वृत्तान्त पूर्ण रूप से सुनना चाहता हूं।

प्रेम मगन मनु जानि नृपु करि बिबेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु गदगद गिरा गभीर।

कहहु नाथ सुन्दर दोउ बालक।
मुनिकुल तिलक की नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।
उभय बेष धरि की सोइ आवा॥

महात्मा जनक का यह प्रश्न सुन कर विश्वामित्र ने कहा—"राजन्! ये दोनों महाराज दशरथ के पुत्र हैं। ये आप के यहां रखे हुए महान् धनुष के सम्बन्ध में कुछ जानने की इच्छा से यहां आये हैं, उस समय गद्-गद् हो महाराज जनक के परोहित शतानन्द जो बोले—श्रीराम! इस पृथ्वी पर आप से बढ़ कर धन्यातिधन्य पुरुष दूसरा कोई नहीं है, क्योंकि कुशिक नन्दन विश्वामित्र आप के रक्षक हैं, जिन्होंने बड़ी भारी तपस्या की है।

अगले दिन फिर स्वयं महाराज जनक श्री चरणों में उपस्थित हुए—"मेरे योग्य सेवा" महामुनि ने पुनः यह शब्द कहे—यह वीर आप के यहां रखे श्रेष्ठ धनुष को देखना चाहते हैं। आप का कल्याण हो, वह धनुष इन्हें दिखा दीजिए।"

धनुष की महिमा वर्णन करते हुए महाराज जनक बोले—महामुने! मेरे पूर्वजों को यह धनुष देवाधिदेव महादेव का दिया हुआ है। मैंने अपनी पुत्री के सम्बन्ध में यह निश्चय किया कि जो अपने पराक्रम से इस धनुष को चढ़ा देगा, उसी के साथ मैं अपनी पत्री का विवाह कर दूंगा। इस प्रकार इसे वीर्य शुल्का बना कर मैंने अपने घर में रखा हुआ है—अनेकों राजा यहां आये परन्तु उनमें से एक भी इसे हिला न सका

अथवा उठाने में सफल नहीं हो सका—महामुने! उन पराक्रमी नरेशों की शक्ति थोड़ी जानकर मैंने उन्हें कन्या देने से इन्कार कर दिया। मेरे इन्कार कर देने पर राजा कुपित हो उठे, उन्होंने मिथिला को चारों ओर से घेर लिया। यह घेरा पूरे एक वर्ष तक पड़ा रहा,—तत्पश्चात् वे स्वयंमेव निराश होकर वहां से हट गये। मैं वह धनुष श्री राम को अभी दिखाता हूं। यदि श्री राम इस धनुष की प्रत्यञ्चा चढ़ा दें तो मैं अपनी कन्या सीता को इन दशरथ कुमार के हाथों में दे दूंगा।

तब राजा जनक ने मन्त्रियों को आज्ञा दी—चन्दन और मालाओं से सुशोभित यह दिव्य धनुष यहां ले आओ। राजा जनक की आज्ञा पाकर वे अमित तेजस्वी मन्त्री नगर में गये और उस धनुष को आगे करके पुरी से बाहर निकले। लोहे का वह संदूक जिस में धनुष रखा था, लाकर उन मन्त्रियों ने राजा के सामने उपस्थित कर दिया।

उस समय महाराज जनक बोले, मुनि प्रवर! यह श्रेष्ठ धनुष इन दोनों राजकुमारों को दिखाइये। श्री राम सहित विश्वामित्र ने जनक का वह कथन सुनकर रघुनन्दन से कहा—"वत्स राम! इस धनुष को देखो।" महर्षि की आज्ञा से श्री राम ने सन्दूक खोलकर धनुष को देखा—बोले, अच्छा, अब मैं इस दिव्य एवं श्रेष्ठ धनुष को हाथ लगाता हूं, मैं इसे उठाने और चढ़ाने का प्रयत्न करूंगा। तब राजा और मुनि ने एक स्वर से कहा,—"हां" ऐसा ही करो" मुनि की आज्ञा से रघुकुल नन्दन राम ने उस धनुष को बीच से पकड़ कर लीला पूर्वक उठा लिया और खेल सा करते हुए उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। उस समय कई हजार मनुष्यों की दृष्टि उस पर लगी थी। प्रत्यञ्चा चढ़ा कर महायशस्वी नरश्रेष्ठ श्री राम ने ज्योंही उस धनुष को कान तक खींचा त्यों ही वह बीच से ही टूट गया। उस समय महाराज जनक बोले,—भगवन्! मैंने दशरथ नन्दन श्री राम का पराक्रम आज अपनी आंखों देख लिया। महादेव जी के धनुष को चढ़ाना—यह अत्यन्त अद्भुत, अचिन्त्य और अतर्कित घटना है। मेरी पुत्री सीता दशरथकुमार श्री राम को पति रूप में प्राप्त करके जनकवंश की कीर्ति का विस्तार करेगी।

भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः।
अत्यद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया॥
मम सत्य प्रतिज्ञा सा वीर्यशुल्केति कौशिक।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता॥

यह था वर्णन आदिकवि की लेखनी द्वारा, अब गोस्वामी तुलसी दास जिस प्रकार धनुष भंग करवाते हैं, इस शैली का भी रसास्वादन कर लीजिये।

पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला।
देखन चले धनुषमखसाला॥
रंग भूमि आए दोउ भाई।
असि सुधि सब पुरबासिन्ह पाई।
चले सकल गृह काज बिसारी।
बाल जुवान जरठ नर नारी॥
गुन सागर नागर बर बीरा।
सुन्दर स्यामल गौर सरीरा।
पुरब सिन्ह देखे दोउ भाई।
नर भूषन लोचन सुखदाई॥
सहज मनोहर मूरति दोऊ।
कोटि काम उपमा लघु सोऊ॥
राजत राज समाज महुं कोसलराज किसोर।
सुन्दर स्यामल गौर तन बिस्व बिलोचन चोर॥
देखि लोग सब भए सुखारे।

एकटक लोचन चलत न तारे ।।
हरष जनकु देखि दोउ भाई ।
मुनि पद कमल गहे तब जाई ।
सब मंचन्ह ते मंचु एक सुन्दर बिसद बिसाल ।
मुनि समेत दोउ बंधु तंह बैठारे महिपाल ।।
प्रभुहि देखि सब नृप हियं हारे ।
जमु राकेस उदय भए तारे ।।
असि प्रीति सब के मन माहीं ।
राम चाप तोरब सके नाहीं ।।
बिनु भंजेहु भव धनुषु बिकाला ।
मेलहि सीय राम उर माला ।।
रंग भूमि जब सिय पग धारी ।
देखि रूप मोहे नर नारी ।।
सोह नवल तनु सुन्दर सारी ।
जगत जननी अतुलित छबि भारी ।
श्रीहत भए हारि हिय राजा ।
बैठे निज निज जाइ समाजा ।।
नृपन्ह बिलोकि जनकु अकुलाने ।
बोले बचन रोष जनु साने ।।
दीप दीप के भूपति नाना ।
आए सुनि हम जो पनु ठाना ।।
देब दनुज धरि मनुज सरीरा ।
बिपुल वीर आए रनधीरा ।
कुअँरि मनोहर बिजय बड़ि कीरति अति कमनीय ।
पावनिहार बिरंचि जनु रचेउ न धनु दमनीय ।।
कहहु काहि यहु लाभु न भावा ।
काहुँ न संकर चाप चढ़ावा ।।
रहउ चढ़ाउव तोरब भाई ।
तिलु भरि भूमि न सके छुड़ाई ।।
अब जनि कोउ माखै भटमानी ।
बीर बिहीन मही मैं जानी ।।
तजहु आस निज निज गृह जाहू ।
लिखा न विधि बैदेहि बिबाहू ।।

जनक वचन सुनि सब नर नारी ।
देखि जानकिहि भए दुखारी ।।
माखे लखन कुटिल भई भौहें ।
रदपट फरकत नयन रिसौहें ।।
कहि न सकत रघुवीर डर लगे बचन जनु बान ।
नाइ राम पद कमल सिरु बोले गिरा प्रमान ।।
रघुबंसिन्ह महुँ जहँ कोउ होई ।
तेहि समाज अस कहइ न कोई ।।
कही जनक जसि अनुचित बानी ।
बिद्यमान रघुकुल मनि जानी ।।
सुनहु भानुकुल पंकज भानू ।
कहउं सुभाउ न कछु अभिमानू ।।
जौं तुम्हारि अनुसासन पावौं ।।
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ।
काचे घट जिमि डारौं फोरी ।
सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ।।
तव प्रताप महिमा भगवाना ।
को बापुरो पिनाक पुराना ।।
तोरौं छत्रक दंड जिमि तव प्रताप बल नाथ ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ कर न धरौं धनु भाथ ।।
लखन सकोप बचन जे बोले ।
डगमगानि महि दिग्गज डोले ।।
सकल लोग सब भूप डेराने ।
सिय हियं हरषु जनकु सकुचाने ।।
गुर रघुपति सब मुनि मन माहीं ।
मुदित भए पुनि पुनि पुलकाहीं ।।
सयनहिं रघुपति लखनु नेवारे ।
प्रेम समेत निकट बैठारे ।।
बिस्वामित्र समय सुभ जानी ।
बोले अति सनेहमय बानी ।।
उठहु राम भंजहु भव चापा ।
मेटहु तात जनक परितापा ।।
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा ।
हरषु बिषादु न कछु उर आवा ।।

उदित उदयगिरि मंच पर रघुबर बालपतंग ।
बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग ।।
गुर पद बंदि सहित अनुरागा ।
राम मुनिन्ह सन आयसु मागा ।।
सहजहिं चले सकल जग स्वामी ।
मत्त मंजु बर कुंजर गामी ।।
चलत राम सब पुर नर नारी ।
पुलक पूरि तन भए सुखारी ।।
बंदि पितर सुर सुकृत संभारे ।
जौं कछु पुन्य प्रभाउ हमारे ।।
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं ।
तोरहुं रामु गनेस गोसाईं ।।
तब रामहिं बिलोकि बैदेही ।
सभय हृदयं बिनवति जेहि तेही ।।
मनहीं मन मनाव अकुलानी ।
होहु प्रसन्न महेस भवानी ।।
करहु सफल आपनि सेवकाई ।
करि हितु हरहु चाप गरुआई ।।
गननायक बरदायक देवा ।
आजु लगें कीन्हिउं तुअ सेवा ।।
बार बार बिनती सुनि मोरी ।
करहु चाप गुरुता अति थोरी ।।
देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर ।
भरे बिलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर ।।
अति परिताप सीय मन माहीं ।
लव निमेष जुग सय सम जाहीं ।।
प्रभहि चितइ पुनि चितव महि राजत लोचन लोल ।
खेलत मनसिज मीन जुग जनु बिधु मंडल डोल ।।
तन मन बचन मोर पनु साचा ।
रघुपति पद सरोज चितु राचा ।।
तौ भगवानु सकल उर बासी ।
करिहि मोहि रघुबर कै दासी ।।
चाप समीप रामु जब आए ।
नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ।।

सीता सर्वस्व भगवान् राम ने अपने दायें हाथ से उस धनुष को थोड़ा-सा खींचा और दसों दिशाओं को गुञ्जायमान करते हुए तोड़ डाला। दिशा, विदिशा, स्वर्गलोक, मर्त्यलोक और रसातल आदि समस्त पातालों में वह शब्द गूंज उठा। स्वर्गलोक से देवगणों के देखते-देखते यह एक बड़ा आश्चर्य-सा हो गया। देवताओं ने पुष्प बरसा कर भगवान् को ढंक दिया और दुन्दुभि आदि बाजे बजाते हुए उनकी स्तुति की तथा अप्सराएं नृत्य करने लगीं।

धनुष के दो खण्ड हुए देख महाराज जनक ने रघुनाथ जी का आलिंगन किया और अन्तःपुर के आंगन में स्थित सीता जी की माताएं अत्यन्त विस्मित हुईं। तत्पश्चात् सर्वालंकार-विभूषिता, सुवर्णवर्णा श्रीसीताजी अपने दाहिने हाथ में स्वर्णमयी माला लिये मन्द-मन्द मुसकाती हुई वहां आयीं। वे मुक्ताहार, कर्णफूल और झमझमाते हुए पायेजेब आदि आभूषणों से विभूषिता थीं तथा शरीर में अति उत्तम साड़ी पहने हुए थीं।

सीता जी नम्रतापूर्वक मुसकाते हुए वह जयमाल रामचन्द्र जी के ऊपर डालकर प्रसन्न हुईं। उधर श्रीरामचन्द्र जी के सर्वालंकार-विभूषित भुवनमोहन रूप को झरोखों में से देख कर समस्त रानियां अति आनन्दित हुईं। फिर सर्वशास्त्रज्ञ महाराज जनक ने मुनिवर विश्वामित्र से कहा—"मुनिवर कौशिक जी! आप तुरंत ही महाराज दशरथ के पास पत्र भेजिये, वे कुमारों के विवाहोत्सव के लिये शीघ्र ही पुत्र, महर्षियों और मन्त्रियों के साथ यहां पधारें।" तब विश्वामित्र जी ने 'बहुत अच्छा' कह शीघ्रगामी दूतों को भेजा।

भाग्य विभव अवधेस कर—

राजा जनक की आज्ञा पाकर उनके दूत अयोध्या के लिये प्रस्थित हुए। रास्ते में वाहनों के थक जाने के कारण तीन रात विश्राम करके चौथे दिन वे अयोध्यापुरी पहुंचे। राजा की आज्ञा से उनका राजमहल में प्रवेश हुआ। वहां जाकर उन्होंने देव तुल्य बढ़े, महाराज दशरथ का दर्शन किया। उन सभी दूतों ने दोनों हाथ जोड़ निर्भय हो राजा से मधुर वाणी में यह विनययुक्त बात कही—"महाराज ! मिथिलापति राजा जनक ने अग्निहोत्र की अग्नि को सामने रख कर स्नेह-युक्त मधुर वाणी में सेवकों सहित आप का तथा आप के उपाध्याय और पुरोहितों का बारंबार कुशल-मंगल पूछा है और आप को यह सन्देश दिया है—राजन् ! आप को मेरी पहले की हुई प्रतिज्ञा का हाल मालूम होगा। मैं ने अपनी पुत्री के विवाह के लिये पराक्रम का ही शुल्क नियत किया था—नरेश्वर ! मेरी इस कन्या को विश्वामित्रजीके साथ अकस्मात् घूमते-फिरते आये हुए आप के पुत्र राम ने अपने पराक्रम से जीत लिया है, महात्मा श्रीराम ने महान् जनसमुदाय के मध्य मेरे यहां रखे धनुष को बीच में तोड़ डाला है, अतः मैं अपनी वीर्य-शुल्का कन्या राम को प्रदान करूंगा आप इसके लिए मुझे आज्ञा देने की कृपा करें। महाराज आप अपने गुरु एवं पुरोहित सहित यहां शीघ्र पधारें। यहां पधार कर आप मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण करें।

सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम्ह समान न कोउ।
राम लखनु जिन्ह के तनय बिस्व बिभूषन दोउ॥

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे।
पुरुष सिंघ तिहु पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप कें आगे।
ससि मलीन रबि सीतल लागे॥
सीय स्वयंबर भूप अनेका।
समिटे सुभट एक ते एका॥
संभु सरासन काहुं न टारा।
हारे सकल बीर बरिआरा॥

तहां राम रघुबंस मनि सुनिअ महा महिपाल।
भंजेउ चाप प्रयास बिनु जिमि गज पंकज नाल।

राजन रामु अतुलबल जैसें।
तेज निधान लखनु पुनि तैसें॥
दूत वचन रचना प्रिय लागी।
प्रेम प्रताप बीर रस पागी॥

सन्देश वाहक मन्त्रियों का यह वचन सुन कर राजा दशरथ बड़े प्रसन्न हुए—उन्होंने वशिष्ठ, वामदेव तथा अन्य मन्त्रियों से कहा,—कुशिक नन्दन विश्वामित्र से सुरक्षित हो कौसल्या का आनन्द वर्धन करने वाले श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ विदेह-देश में निवास कर रहे हैं।

वहां महात्मा जनक ने श्रीराम के पराक्रम को प्रत्यक्ष देखा है। इस लिये वे अपनी पुत्री सीता का विवाह राम के साथ करना चाहते हैं। यदि आप लोगों की रुचि एवं सम्मति हो तो हम लोग शीघ्र ही महात्मा जनक की मिथिलापुरी को चलें। यह सुनकर समस्त महर्षियों सहित मन्त्रियों ने बहुत अच्छा कह कर एक स्वर से चलने की सम्मति दी। राजा बड़े प्रसन्न हुए। और मन्त्रियों से बोले,—"कल सवेरे ही यात्रा शुरू कर देनी चाहिए।

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, मार्कण्डेय, कात्यायन—ये सभी ब्रह्म ऋषि आगे-आगे चलें। मेरा रथ भी तैयार करो। यात्रा आरम्भ हुई। चार दिन में वे सभी लोग विदेह देश में जा पहुंचे। अयोध्या नरेश के शुभ आगमन का समाचार सुन महाराज

जनक बड़े ही प्रसन्न हुए और राजधानी में अवध नरेश के स्वागत सत्कार की तैयारी करने लगे।

राजन्! आप का स्वागत है। मेरे परम सौभाग्य की बात है जो आप यहां पधारे हैं, महातेजस्वी भगवान् वसिष्ठ मुनि ने भी हमारे सौभाग्य से यहां पदार्पण किया है, सौभाग्य से मेरी सभी विघ्न वाधायें दूर हो चुकीं। रघुकुल के पुरुष महान् वल से सम्पन्न और पराक्रम में सब से श्रेष्ठ होते हैं। इस कुल के साथ सम्बन्ध होने के कारण आज मेरे कुल का सम्मान बढ़ गया। नरश्रेष्ठ नरेन्द्र! कल प्रातः ही इन सभी महर्षियों के साथ उपस्थित हो मेरे यज्ञ की समाप्ति के पश्चात् श्रीराम के विवाह का शुभ कार्य सम्पन्न करें।

ऋषियों की मंडली में राजा जनक की यह बात सुन कर महाराज दशरथ बोले,—धर्मज्ञ! मैं ने पहले से यह सुन रखा है कि प्रतिग्रह दाता के अधीन होता है। अतः आप जैसा कहेंगे, हम वैसा ही करेंगे।

प्रतिग्रहो दातृवशः श्रुतमेतन्मया पुरा।
यथा वक्ष्यसि धर्मज्ञ तत करिष्यामहे वयम्॥

सत्यवादी राजा दशरथ का वह समयानुकूल तथा यशोवर्धक वचन सुन कर विदेह राजा जनक को बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर सभी महर्षि एक दूसरे से मिल कर बहुत प्रसन्न हुए और सब ने बड़े सुख से वह रात बितायी। इधर महातेजस्वी श्रीराम विश्वामित्र जी को आगे करके लक्ष्मण के साथ पिता जी के पास गये और उनके चरणों का स्पर्श किया। उसी महाराज जनक ने अपने भाई कुशध्वज को भी बुला लिया। अपने छोटे भाई का परिचय देते हुए महाराज जनक बोले—महामुने! ये मेरे छोटे भाई कुशध्वज हैं और मैं इन का बड़ा भाई हूं। मुनिवर! मैं बड़ी प्रसन्नता के साथ आप को दो बहुएं प्रदान करता हूं। मैं सीता को राम के लिये और उर्मिला को लक्ष्मण के लिये समर्पित करता हूं। राजन्! अब आप श्रीराम और लक्ष्मण के मंडप के लिये इनसे गोदान करवाइये, आप का कल्याण हो। नन्दीमुख श्राद्ध का कार्य भी सम्पन्न कीजिये, इस के वाद विवाह का कार्य आरम्भ कीजिये। महावाहो! प्रभो! आज मघा नक्षत्र है। राजन्! आज के तीसरे दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में वैवाहिक कार्य कीजियेगा।

विदेह राजा जनक जब अपनी बात समाप्त कर चुके, तब वसिष्ठ सहित महामुनि विश्वामित्र उन वीर नरेश से इस प्रकार बोले,—नरश्रेष्ठ! इक्ष्वाकु और विदेह दोनों ही राजाओं के वंश अचिन्तनीय हैं। दोनों के ही प्रभाव की कोई सीमा नहीं है। राजन्! इन दोनों कुलों में जो यह धर्म सम्बन्ध स्थापित होने जा रहा है, सर्वथा एक दूसरे के योग्य है—नरश्रेष्ठ! इस के बाद मुझे भी कुछ कहना है—राजन्! आपके छोटे भाई जो ये धर्मज्ञ कुशध्वज बैठे हैं, इन धर्मात्मा नरेश के भी दो कन्यायें हैं। महाराज जनक! मैं आपकी उन दोनों कन्याओं का कुमार भरत और शत्रुघ्न के लिये इनकी धर्म पत्नी बनाने के लिए याचना करता हूं।

वसिष्ठ जी की सम्मति के अनुसार विश्वामित्र जी का यह वचन सुन कर महाराज जनक हाथ जोड़ कर बोले,—मुनिपुंगवो! मैं अपने इस कुल को धन्य मानता हूँ। जिसे आप दोनों इक्ष्वाकु वंश के योग्य समझ कर इस के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिये स्वयं आज्ञा दे रहे हैं। आप जैसा कहते हैं वैसा ही हो। भरत और शत्रुघ्न कुशध्वज की इन दोनों कन्याओं में से एक-एक को अपनी-अपनी धर्म पत्नी के रूप में

ग्रहण करें। महामुने ! ये चारों महाबली राजकुमार एक ही दिन हमारी चारों राजकुमारियों का पाणिग्रहण करें।

इस प्रकार सौम्य वचन कह कर राजा जनक उठ कर खड़े हो गये और उन दोनों मुनिवरों से हाथ जोड़ कर बोले,—आप लोगों ने कन्याओं का विवाह निश्चित करके मेरे लिये महान् धर्म का सम्पादन कर दिया—मैं आप दोनों का शिष्य हूं, मुनिवरो ! इन श्रेष्ठ आसनों पर आप दोनों विराजमान् हों। आप के लिये जैसी राजा दशरथ की अयोध्या है, वैसी ही यह मेरी मिथिलापुरी भी है। आप का इस पर पूरा अधिकार है।

तत्पश्चात् विवाह के योग्य विजय नामक मुहूर्त आने पर दूल्हे के अनुरूप समस्त वेष-भूषा से अलंकृत हुए भाइयों के साथ श्री रामचन्द्र जी भी वहाँ आये। वे विवाह का समयोचित मङ्गलाचार पूर्ण कर चुके थे तथा मुनी वसिष्ठ एवं अन्य महर्षियों को आगे करके उस मण्डप में पधारे थे। उस समय भगवान् वसिष्ठ ने विदेहराज जनक के पास जा कर इस प्रकार कहा—राजन् ! महाराज दशरथ अपने पुत्रों का वैवाहिक सूत्र-बन्धन रूप मंगलाचार सम्पन्न कर के उन सब के साथ पधारे हैं और भीतर आने के लिए दाता के आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

राजा दशरथो राजन् कृतक तुक मंगलैः।
पुत्रैनरवरैश्रेष्ठो दातारमभिकाङ्क्षते ॥

क्योंकि दाता और प्रतिगृहीता का संयोग होने पर ही समस्त दान-धर्मों का सम्पादन सम्भव होता है। अतः आप विवाह-कालोपयोगी शुभ-कर्मों का अनुष्ठान करके उन्हें बुलाइये और कन्यादान रूप स्वधर्म का पालन कीजिये। महात्मा वसिष्ठ के ऐसा कहने पर परम उदार, परम धर्मज्ञ और महान तेजस्वी राजा जनक ने इस प्रकार उत्तर दिया, मुनिश्रेष्ठ महाराज के लिये मेरे यहां कौन सा पहरेदार खड़ा है, वे जिसके आदेश की प्रतीक्षा करते हैं। अपने घर में आने के लिये कैसा सोच विचार है ? यह जैसा मेरा राज्य है, वैसे ही आपका है। मेरी कन्याओं का वैवाहिक सूत्र-बन्धन रूप मंगलकृत्य सम्पन्न हो चुका है। अब वे अक्ष वेदी के पास आकर बैठी हैं।

इस समय तो मैं आप की ही प्रतीक्षा में वेदी पर बैठा हूँ। आप निर्विघ्नता पूर्वक सब कार्य पूर्ण कीजिये ! विलम्ब किस लिये करते हैं। वसिष्ठ जी के मुख से राजा जनक की कही हुई बात सुनकर महाराज दशरथ उस समय अपने पुत्रों और सम्पूर्ण महर्षियों को महल के भीतर ले आये। तदनन्तर विदेह राज ने वसिष्ठ जी से इस प्रकार कहा,—धर्मात्मा महर्षे ! प्रभो ! आप ऋषियों को साथ लेकर लोकाभिराम श्री राम के विवाह की सम्पूर्ण क्रिया कराइये। महामुनि वसिष्ठ द्वारा सब विधि विधान पूरा हो जाने पर, महाराज जनक सीता जी को लाये और उन्हें अग्नि के समक्ष रामचन्द्र जी के सामने बिठा दिया।

इयं सीता मम सुता सहधर्मचरी तव।
प्रतीच्छ चैनां भद्रं ते पाणिं गृहणीश्वं पाणिना ॥
पतिव्रता महाभागा छायेवानुगता सदा ॥

रघुनन्दन ! तुम्हारा कल्याण हो। यह मेरी पुत्री सीता तुम्हारी सहधर्म चारिणी के रूप में उपस्थित है। इसे स्वीकार करो और इस का हाथ अपने हाथ में लो। यह परम पतिव्रता महान् सौभाग्यवती, और छाया की भाँति सदा तुम्हारे पीछे चलने वाली होगी।

भगवान् परशुराम

भगवान् परशुराम के श्री चरणों में श्रद्धांजली अर्पित किये बिना राम-विवाह का प्रसंग अधूरा ही रहेगा। इस शुभ अवसर पर नवोदित राष्ट्रनायक को अपने शुभाशीर्वाद से कृतार्थ करने के लिये मिथिला पुरी में युग पुरुष का पधारना दोनों महापुरुषों ने स्वीकार किया है, आदिकवि ने भी, गोस्वामी जी महाराज ने भी। इतना अन्तर अवश्य है, जहाँ बाल्मीकि जी परशुराम को विवाह के पश्चात् बुलाते हैं, वहाँ तुलसी के परशुराम धनुष भंग होने के तत्काल पश्चात् जनकपुरी में प्रकट हो जाते हैं।

परशुराम जी महाराज ने धरती को २१ वार क्षत्रिय हीन किया—परन्तु स्वयं दशरथ जी महाराज क्षत्री थे, जनक जी क्षत्री थे। कैकयी के पिता एवं भ्राता क्षत्री थे—यदि परशुराम ने धरती को सर्वथा क्षत्री-हीन कर दिया था तो यह सभी क्षत्री कैसे बचे रहे?—बात असल में यह है, परशुराम जी महाराज ने देश को रावण के साथ लड़ने के लिये तैयार किया। उस समय देश में हजारों राजा थे, सब की अपनी-अपनी नीति थी—परशुराम जी महाराज ने एक-एक राजा की स्थिति का अध्ययन किया जिन राजाओं के सम्बन्ध में उन्हें सन्देह हुआ—राम-रावण युद्ध में यह रावण का साथ देंगे, ऐसे देश द्रोही क्षत्रियों को परशुराम ने चुन चुन कर खत्म किया।

परशुराम जी महाराज युग-पुरुष थे। जहां से परशुराम जी ने अपना कार्य समाप्त किया प्रभु रामचन्द्र ने वहां से अपना कार्य आरम्भ किया। किम्वदन्ति है, परशुराम ने धरती को इक्कीस बार क्षत्रिय हीन किया। इक्कीस की संख्या से घबराने की एवं आश्चर्यमय वातावरण में घिर जाने की आवश्यकता नहीं—भारतीय इतिहास के मध्य कालीन युग में भी तो महमूद गजनवी ने भारत पर सत्रह आक्रमण किये—मुहम्मद गौरी ने भी तो आठ हमले किये। सैवन यीयर्ज वार, हन्डरड यीयर्ज वार ऐसी कितनी ही लड़ाईओं का इतिहास में वर्णन मिलता है।

परशुराम जी के भुज-बल का प्रताप तो देखिये—श्रीराम की परीक्षा लेने के लिए वे एक धनुष अपने साथ लाये थे। इस धनुष के सम्बन्ध में वे स्वयं कहते हैं—नरश्रेष्ठ! ये दो धनुष सब से श्रेष्ठ और दिव्य थे। सारा संसार इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखता था। एक धनुष वह था जो तुमने तोड़ा है। दूसरा दुर्धर्ष यह है जो मेरे हाथ में है।

जिस पहले धनुष का परशुराम जी ने वर्णन किया है वह धनुष इतना भारी था कि वह आठ पहियों पर आश्रित था और उसे अपने स्थान से घसीट कर यज्ञमण्डप तक लाने के लिए पांच हज़ार शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों ने अपनी शक्ति का प्रयोग किया। धन्य हैं परशुराम जी महाराज जो उस धनुष से भी एक वड़े धनुष को छाते के समान उठाये लिए फिर रहे थे।

परशुराम जी का वर्णन आदि कवि ने इस प्रकार किया है।

तदनन्तर जब रात बीती और सवेरा हुआ तो महामुनि विश्वामित्र राजा जनक और महाराज दशरथ से पूछकर उनकी स्वीकृति ले उत्तरपर्वतपर चले गये। फिर महाराज दशरथ भी जाने को तैयार हुए। अयोध्यानरेश सम्पूर्ण महर्षियों को आगे कर के अपने पुत्रों और सैनिकों के साथ राजधानी की ओर प्रस्थित

हुए। उस समय मार्ग में उनके चारों ओर भयंकर बोलो बोलने वाले पक्षी चहचहाने लगे और भूमि पर विचरने वाले मृग उन्हें दाहिने रखकर जाने लगे। उन सब को देखकर राजा ने वसिष्ठ जी से पूछा—'मुनिवर! एक ओर तो ये भयंकर पक्षी बोल रहे हैं और दूसरी ओर ये मृग हमें दाहिनी ओर रख कर जा रहे हैं। यह अशुभ और शुभ—दो प्रकार का शकुन कैसा? मेरा हृदय काँपता है, मन खिन्न हो रहा है।' उनके इस प्रकार पूछने पर वसिष्ठ जी ने मधुर वाणी में कहा—राजन्! सुनिये, पक्षियों के मुँह से यह बात निकल रही है कि इस समय कोई भारी भय उपस्थित होने वाला है, किन्तु हमें दाहिने रख कर जाने वाले मृग यह सूचित करते हैं कि आया हुआ संकट टल जायेगा, इस लिये आप चिन्ता छोड़िये।' इन लोगों में इस प्रकार बातें हो ही रही थीं कि बड़े जोरों की आँधी चली। सारी पृथ्वी काँप उठी। बड़े-बड़े वृक्ष उखड़ कर गिर पड़े। सूर्य अन्धकार से आच्छन्न हो गया। किसी को दिशाओं का भान न रहा। उस समय केवल वसिष्ठ आदि ऋषि तथा पुत्रों सहित राजा दशरथ को ही चेत रह गया था। उस घोर अन्धकार में राजा दशरथ ने देखा क्षत्रियों का मान मर्दन करने वाले भृगुनन्दन परशुराम कंधे पर फरसा रक्खे और हाथों में धनुष एवं भयंकर बाण लिये विकट वेश धारण किये सामने से आ रहे हैं। उनके मस्तक पर बड़ी-बड़ी जटाए दिखायी पड़ रही थीं तथा वे अपने तेज से जाज्वल्यमान हो रहे थे। प्रज्वलित अग्नि के समान भयंकर परशुराम को उपस्थित देख वसिष्ठ आदि महर्षियों ने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया। ऋषियों की दी हुई उस पूजा को स्वीकार करके उन महाप्रतापी जमदग्नि कुमार ने रामचन्द्र जी से कहा—'राम! सुना जाता है तुम्हारा पराक्रम अद्भुत हैं। तुम्हारे द्वारा धनुष टूटने का सारा समाचार भी मेरे कानों में पड़ चुका है। उस धनुष का तोड़ना अद्भुत और अचिन्त्य है। इस बात को सुनकर मैं एक दूसरा उत्तम धनुष लेकर आया हूँ। यह है वह भयंकर और विशाल धनुष। तुम इसे खींचकर इसके ऊपर बाण चढ़ाओ और मेरे सामने अपने बल का प्रदर्शन करो। तुम्हारा बल देखकर मैं तुमसे द्वन्द्वयुद्ध करूँगा।'

परशुराम जी के वचन सुनकर राजा दशरथ दीन भाव से हाथ जोड़कर बोले—माननीय 'महामुने! आप स्वाध्याय वृत्त से शोभा पाने वाले भार्गव-कुल में उत्पन्न हुये हैं और स्वयं भी महान् तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी हैं, इस लिये मेरे बालक पुत्रों को आप अभयदान देने की कृपा करें।' राजा दशरथ इस प्रकार कहते ही रह गये, परन्तु प्रतापी परशुराम ने उनके वचनों की अवहेलना करके राम से ही बातचीत जारी रखी। वे बोले—'नरश्रेष्ठ! ये दो धनुष सबसे श्रेष्ठ और दिव्य थे। सारा संसार इन्हें सम्मान की दृष्टि से देखता था। साक्षात् भगवान् विश्वकर्मा ने इन्हें बनाया था, ये बड़े ही प्रबल और दृढ़ थे। इनमें से एक को देवताओं ने त्रिपुरासुर से युद्ध करने के लिए भगवान शंकर को दे दिया था, जिस धनुष को तुमने तोड़ा है, जो मेरे हाथ में है, उसी से त्रिपुरासुर का वध हुआ था। और दूसरा दुर्धर्ष धनुष यह है, जो मेरे हाथ में है, इसे देवताओं ने भगवान विष्णु को दिया था। यह भी वैसा ही प्रबल है जैसा शिवजी का धनुष था। भगवान शंकर ने बाण सहित अपना धनुष राजर्षि देवरात के हाथ में दे दिया था और विष्णु ने अपने धनुष को भृगुवंशी ऋषीक मुनि के यहां धरोहर के रूप में रखा था। इस प्रकार यह

महान वैष्णव धनुष मेरे पिता-पितामहों के अधिकार में रहता चला आया है। अब तुम इसे हाथ में लेकर इसके ऊपर बाण चढ़ाओ। यदि ऐसा कर सकोगे तो मैं तुम्हारे साथ द्वन्द्वयुद्ध करूंगा।'

दशरथ कुमार रामचन्द्र जी अपने पिता के गौरव का ख्याल करके संकोचवश कुछ बोल नहीं रहे थे, किन्तु परशुराम जी की उपर्युक्त बात सुनकर वे मौन न रह सके। उन्होंने कहा—'भृगुनन्दन! मैं क्षत्रिय-धर्म से युक्त हूं, तो भी आप मुझे पराक्रमहीन और असमर्थ मानकर मेरे तेज का तिरस्कार कर रहे हैं। अच्छा, अब मेरा पराक्रम देखिये।' ऐसा कहकर रामचन्द्र जी ने क्रोध में भरकर परशुराम जी के हाथ से वह उत्तम धनुष और बाण ले लिया तथा धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा कर उस पर बाण का सन्धान किया। इस के बाद वह परशुराम से बोले—'भृगुनन्दन! आप ब्राह्मण होने के नाते मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्र जी के साथ आपका सम्बन्ध है—इन सब कारणों से मैं इस प्राण-संहारक बाण को आपके शरीर पर नहीं छोड़ सकता। मेरा विचार है कि आपको अपने तपो बल से जो सर्वत्र शीघ्रता पूर्वक आने जाने की शक्ति प्राप्त हुई है, उसी को इस बाण से नष्ट कर डालूं, क्योंकि यह दिव्य वैष्णव बाण कभी निष्फल नहीं जाता।

उस समय उस उत्तम धनुष और बाण को धारण किये हुए श्रीरामचन्द्र जी को देखने के लिये सम्पूर्ण देवता और ऋषि ब्रह्मा जी को आगे कर के वहां एकत्रित हो गये। जमदग्नि कुमार परशुराम निर्वीर्य एवं जडवत् हो गये थे। उन्होंने रामचन्द्र जी की ओर देख कर धीरे-धीरे कहा—रघुनन्दन! तुम ने इस धनुष को लेकर चढ़ा दिया इससे मुझे निश्चित हो गया कि तुम मधु दैत्य को मारने वाले अविनाशी देवेश्वर विष्णु हो। तुम्हारा कल्याण हो। ये सब देवता यहां एकत्रित हो कर तुम्हारी ओर देख रहे हैं। तुम्हारे कर्म अनुपम हैं। युद्ध में कोई भी तुम्हारा मुकाबला नहीं कर सकता। तुम्हारे द्वारा जो आज मुझे परास्त होना पड़ा है, इसके कारण मुझे तनिक भी संकोच नहीं होगा, क्योंकि तुम त्रिलोकी नाथ हो। मैं तुम्हारे तेज प्रताप को देख कर प्रसन्न हूँ इतना कह कर वे महेन्द्र पर्वत पर चले गये। उनके जाते ही समस्त दिशा का अन्धकार दूर हो गया।

गोस्वामी जी महाराज ने परशुराम जी की घटना को अपने ही अनूठे ढंग से वर्णन किया है। यह वर्णन श्री गोस्वामी जी महाराज के शब्दों में ही पढ़ने योग्य है।

तेहि अवसर सुनि सिवधनु भंगा।
आयउ भृगुकुल कमल पतंगा॥
देखि महीप सकल सकुचाने।
बाज झपट जनु लवा लुकाने॥
गौरि सरीर भूति भल भ्राजा।
भाल बिसाल त्रिपुण्ड्र बिराजा॥
सीस जटा ससिबदनु सुहावा।
रिसबस कछुक अरुन होइ आवा॥
बृषभ कन्ध उर बाहु बिसाला।
चारु जनेउ माल मृगछाला॥
सांत बेषु करनी कठिन बरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितनु जनु बीर रसु आयउ जहँ सब भूप।
बहुरि बिलोकि बिदेह सन कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि ब्यापेउ कोपु सरीर।
समाचार कहि जनक सुनाए।
जेहि कारन महीप सब आए॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे।
देखे चापखण्ड महि डारे॥

अति रिस बोले बचन कठोरा ।
कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा ॥
बेगि देखाउ मूढ़ न त आजू ।
उलटउं महि जहं लहि तब राजू ॥
अति डरु उतरु देत नृपु नाहीं ।
कुटिल भूप हरषे मन माहीं ॥
सभय बिलोके लोग सब जानि जानकी भीरु ।
हृदयं न हरषु बिषादु कछु बोले श्रीरघुबीरु ॥
नाथ सम्भुधनु भंजनिहारा ।
होइहि केउ एक दास तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही ।
सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥
सुनहु राम जेहि सिवधनु तोरा ।
सहसबाहु सम सो रिपु मोरा ।
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने ।
बोले परसुधरहि अपमाने ॥
बहु धनुहीं तोरीं लरिकाईं ।
कबहुं न असिरिस कीन्हि गोसाईं ॥
लखन कहा हंसि हमरें जाना ।
सुनहु देव सब धनुष समाना ॥
छुअत टूट रघुपतिहु न दोसू ।
मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू ॥
बोले चितइ परसु की ओरा ।
रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥
बालकु बोलि बधउं नहिं तोही ।
केवल मुनि जड़ जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही ।
बिस्व बिदित छत्रियकुल द्रोही ॥
भुजबल भूमि भूप बिन कीन्ही ।
बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ।
सहसबाहु भुज छेदनिहारा ।
परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥
मातु पितहि जनि सोचबस करसि महीसकिसोर ।
गर्भन्ह के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर ॥

बिहसि लखनु बोले मृदु बानी ।
अहा मुनीसु महा भटमानी ॥
तुम्ह तौ कालु हांक जनु लावा ।
बार बार मोहि लागि बुलावा ॥
सुनत लखन के बचन कठोरा ।
परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥
अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू ।
कटुबादी बालकु बध जोगू ॥
बाल बिलोकि बहुत मैं बांचा ।
अब यहु मरनिहार भा सांचा ॥
कौसिक कहा छमिअ अपराधू ।
बाल दोष गुन गनहिं न साधू ।
लखन उतर आहुति सरिस भृगुबर कोपु कृसानु ।
बढ़त देखि जल सम बचन बोले रघुकुलभानु ॥
नाथ करहु बालक पर छोहू ।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥
जौं पै प्रभु प्रभाउ कछु जाना ।
तौ कि बराबरि करत अयाना ।
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं ।
गुर पितु मातु मोद मन भरहीं ।
मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया ।
परिहरि कोपु करिअ अब दाया ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना ।
बालक बचनु करिअ नहिं काना ॥
तेहिं नाहीं कछु काज बिगारा ।
अपराधी मैं नाथ तुम्हारा ॥
कृपा कोपु बधु बंधब गोसाईं ।
मो पर करिअ दास की नाईं ॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई ।
मुनिनायक सोइ करौं उपाई ॥
परसुरामु तब राम प्रति बोले उर अति क्रोधु ।
संभु सरासनु तोरि सठ करसि हमार प्रबोधु ।
राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा ।

कर कुठारु आगें यह सीसा ॥
जेहिं रिस जाइ करिअ सोई स्वामी ।
मोहि जानिअ आपन अनुगामी ॥
छमहु चूक अनजानत केरी ।
चहिअ बिप्र उर कृपा घनेरी ॥
हमहि तुम्हहि सरिबरि कसि नाथा
कहहु न कहाँ चरण कहं माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा ।
परसु सहित बड़ नाम तोहारा ॥
देव एक गुनु धनुष हमारें ।
नव गुन परम पुनीत तुम्हारें ॥
सब प्रकार हम तुम्ह सन हारे ।
छमहु बिप्र अपराध हमारे ॥

बार बार मुनि बिप्रबर कहा राम सन राम ।
बोले भृगुपति सरुष हसि तहूं बंधु सम बाम ॥

मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरें ।
बोलसि निदरि बिप्र के भोरें ॥
भंजेउ चाप दापु बड़ बाढ़ा ।
अहमिति मनहु जीति जगु ठाढ़ा ॥
राम कहा मुनि कहहु बिचारी ।
रिस अति बढ़ि लघु चूक हमारी ।
छुअतहिं टूट पिनाक पुराना ॥
मैं केहि हेतु करौं अभिमान ॥

जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ ।
तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ ॥

छत्रिय तनु धरि समर सकाना ।
कुल कलंकु तेहिं पावँर आना ॥
कहउं सुभाउ न कुलहि प्रसंसी ।
कालहु डरहिं न रन रघुबंसी ॥
बिप्रबंस कै असि प्रभुताई ।
अभय होई जो तुम्हहि डेराई ॥
सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के ।
उघरे पटल परसुधर मति के ।

राम रमापति कर धनु लेहू ।
खैंचहु मिटै मोर संदेहू ॥
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ ।
परसुराम मन बिसमय भयऊ ॥

जाना राम प्रभाउ तब पुलक प्रफुल्लित गात ।
जोरि पानि बोले बचन हृदयं न प्रेमु अमात ॥

जय रघुबंस बनज बन भानू ।
गहन दनुज कुल दहन कृसानू ॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी ।
जय मद मोह कोह भ्रम हारी ॥
बिनय सील करुना गुन सागर ।
जयति बचन रचना अति नागर ॥
सेबक सुखद सुभग सब अंगा ।
जय सरीर छवि कोटि अनंगा ॥
करौं काह मुख एक प्रसंसा ।
जय महेस मन मानस हंसा ।
अनुचित बहुत कहेउं अग्याता ।
छमहु छमा मंदिर दोउ भ्राता ॥
कहि जय जय जय रघुकुलकेतू ।
भृगुपति गए बनहि तप हेतू ।

देवन्ह दीन्हीं दुंदुभी प्रभु पर बरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर नारि सब मिटी मोहमय सूल ॥

बारात डेढ़ महीना तक जनकपुर में रही —आज के बारातियों को यह बात विचित्र सी लगती होगी । आज तो सुबह जाना, शाम को वापस आ जाना । विवाह न हुआ, निकाह हो गया । । खैर ! बिदाई के समय का तुलसीदास ने बड़ा सुन्दर वर्णन किया है—जनक जी ने महामुनि विश्वामित्र जी के चरण छुए, हाथ जोड़ते हुए बोले—

तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा ।
भयउं आजु मैं पूरन काजा ॥

बार-बार कौसिक चरन सीसु नाइ कह राउ ।
यह सबु सुखु मुनिराज तब कृपा कटाच्छ पसाउ ।।
सुर प्रसून बरषहिं हरषि करहिं अपछरा गान ।
चले अवधपति अवधपुर मुदितबजाइ निसान ।।
तब बिदेह बोले कर जोरी ।
बचन सनेह सुधां जनु बोरी ।।
सबहि भांति मोहि दीन्हि बड़ाई ।
निज जन जानि लीन्ह अपनाई ।।
जनक गहे कौसिक पद जाई ।
चरन रेनु सिर नयनन्ह लाई ।।
सुनु मुनीस बर दरसन तोरें ।
अगमु न कछु प्रतीति मन मोरें ।।
चली बरात निसान बजाई ।
मुदित छोट बड़ सब समुदाई ।।
बिबिध भांति मंगल कलस गृह गृह रचे संवारि ।
सुर ब्रह्मादि सिहाहि सब रघुबर पुरी निहारि ।।
एहि बिधि सबही देत सुखु आए राजदुआर ।
मुदित मातु परिछनि करहि बधुन्ह समेत कुमार ।।
करहि आरती बारहि बारा ।
प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा ।।
बधुन्ह समेत देखि सुत चारी ।
परमानन्द मगन महतारी ।।
जो बसिष्ठ अनुसासन दीन्ही ।
लोक बेद बिधि सादर कीन्ही ।।
बहु बिधि कीन्हि गाधिसुत पूजा ।
नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ।।
कीन्हि प्रसंसा भूपति भूरी ।
रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी ।।
पूजे गुर पद कमल बहोरी ।
कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ।।

बधुन्ह समेत कुमार सब रानिन्ह सहित महीसु ।
पुनि पुनि बंदत गुर चरण देत असीस मुनीसु ।।
कहेउ भूप जिमि भयउ बिबाहू ।
सुनि सुनि हरषु होत सब काहू ।।
जनक राज गुन सीलु बड़ाई ।
प्रीति रीति संपदा सुहाई ।।
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी ।
रानी सब प्रमुदित सुनि करनी ।।
प्रेम प्रमोदु बिनोदु बड़ाई ।
समउ समाजु मनोहरताई ।।
कहि न सकहि सत सारद सेसू ।
बेद बिरंचि महेस गनेसू ।।
सो मैं कहौं कवन बिधि बरनी ।
भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी ।।
सकल अमानुष करम तुम्हारे ।
केबल कौशिक कृपां सुधारे ।।
मंगल मोद उछाह नित जाहिं दिवस एहि भांति ।
उमगी अवध अनंद भरि अधिक अधिक अधिकाति ।।
बिस्वामित्रु चलन नित चहहीं ।
राम सप्रेम बिनय बस रहहीं ।।
मांगत बिदा राउ अनुरागे ।
सुतन्ह समेत ठाढ़ भे आगे ।।
नाथ सकल संपदा तुम्हारी ।
मैं सेवकु समेत सुत नारी ।।
करब सदा लरिकन्ह पर छोहू ।
दरसनु देत रहब मुनि मोहू ।।
अस कहि राउ सहित सुत रानी ।
परेउ चरण मुख आव न बानी ।।
राम रूपु भूपति भगति ब्याह उछाह अनंदु ।
जात सराहत मनहिं मन मुदित गाधिकुलचंदु ।।



(५)

राम वनवास

यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः संप्रार्थितश्चिन्मयः
संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः ।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरा
कीर्ति पापहरा विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥

देवियो एवं भद्र पुरुषो !

आदि कवि अयोध्या काण्ड का श्री गणेश इस श्लोक से करते हैं :—

गच्छता मातुलकुलं भरतेन तदानघः ।
शत्रुघ्नो नित्यशत्रुघ्नो नीतः प्रीति पुरस्कृतः ॥

अर्थात् ! भरत अपने मामा के यहां जाते समय काम आदि शत्रुओं को सदा के लिये नष्ट कर देने वाले निष्पाप शत्रघ्न को भी प्रेमवश अपने साथ लेते गये थे । गोस्वामी तुलसीदास तो इस सम्बन्व में बिल्कुल खामोश हैं,—परन्तु आदि कवि ने भी अपनी लेखनी द्वारा इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया —कि यह दोनों महानुभाव भरत एवं शत्रुघ्न अपनी-अपनी पत्नियों, माण्डवी एवं श्रुत कीर्त्ति को अपने साथ लेकर क्यों नहीं गए । विवाह के तत्काल पश्चात् इतने लम्बे अर्से के लिये अपनी पत्नियों को मायके भेज देना और काश्मीर जैसी सुन्दर रम्य रंगस्थली में जाते समय भी उन्हें अपने साथ न ले जाना, आखिर इस में कुछ न कुछ रहस्य तो होना चाहिए ।

आदि कवि कोई कारण नहीं बताते । विवाह के शुभ अवसर पर मामा का आना, शुभ माना जाता है—परन्तु महाराज श्री ने भरत के मामा-नाना को भानजे के विवाह पर नहीं बुलाया । ...क्यों ?

कुछ महानुभाव बारह वर्ष कहते हैं, परन्तु सत्य तो यह है कि श्री राम विवाह को दो वर्ष हो चुके थे, जब महाराज श्री ने श्रीराम को अपने ही जीवन में युवराज पद पर प्रतिष्ठित करने का विचार किया । प्रश्न यह है वे दो वर्ष श्री राम ने किस प्रकार व्यतीत किये । क्या इस बीच में वे हर्म्य के सुखों में ही उलझे रहे,—विवाहित जीवन के इन दो वर्षों में श्रीराम को सन्तान की प्राप्ति क्यों नहीं हुई ? हमारा समाधान यह है कि विवाह के पश्चात् राम विवाहित जीवन में बिल्कुल नहीं उलझें । इस बीच में उन्होंने समूचे देश का भ्रमण किया ।—रावण के साथ युद्ध छिड़ने वाला है, क्या आप तैयार हैं ? इन दो वर्षों की अवधि में उन्होंने अच्छी प्रकार से परखा, कौन राजा हमारे साथ है और

कौन पाकिस्तान के साथ। महाराजा दशरथ युद्ध से घबराते थे, वे अमन के ख्वाहां थे। Peace at any cost.—NO WAR PACT। परन्तु सन्त जानते थे रावण के साथ NO WAR PACT कभी हो ही नहीं सकता,और यदि कभी हो भी गया, तो यह बनने से पहले ही टूट जायेगा। स्वयं न भी टूटेगा तो रावण आक्रमण की पहल करके स्वयं इसे तोड़ देगा।

आदि कवि लिखते हैं—

अथ राज्ञो बभवैव वृद्धस्य चिरजीविनः।
प्रीतिरेषा कथं रामो राजा स्यान्मयि जीवति॥

महाराज दशरथ राम को राजा बनाना चाहते थे और वसिष्ठादि ऋषि राम को बनवास में भेजना चाहते थे—परन्तु ऋषि अपना काम चुपचाप करना चाहते थे। यदि वे शोर मचाते, संसार में यह बात फैल जाती कि राम को बनवास में भेजना ऋषियों की कूट नीति है। हो सकता था इस से अन्तर्राष्ट्रीय संसार में आर्यावर्त की स्थिति कुछ कमज़ोर हो जाती। ऋषि राम को जंगल में भेजना तो चाहते थे परन्तु राम बनवास की जिम्मेदारी स्वयं अपने पर लेने को तैयार नहीं थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि राम वनवास के साथ किसी प्रकार की भी राजनीति को सम्बन्धित न किया जाए। वे चाहते थे कि संसार को केवल यही बताया जाए कि रामबनवास का मुख्य कारण महाराज द्वारा कैकयी को दिये गये वरदान ही हैं।

जहां तक राम का सम्बन्ध था, राम तो बनों में जाने के लिए तैयार ही थे। कितने आश्चर्य की बात है राम चौदह वर्ष के लिए बनों में जायें, साथ में लक्ष्मण और सीता भी जाने को सहसा तैयार हो जायें, परन्तु इतने लम्बे प्रयास के लिये तैयारी कुछ भी न की जाय। रात में राम को बनवास का हुक्म मिला, प्रातः राम बनों की ओर चल भी दिये। रथ भी तैयार, रथवान् भी तैयार, सब कुछ तैयार।

ऋषि यदि चाहते तो महाराज की प्राण रक्षा सहज में कर सकते थे। वे राम बनबास भी सहज में ही रोक सकते थे। मन्त्री पुरोहित यह कह सकते थे, कैकयी! राम अवश्यमेव जंगल में चले जायेंगे, भरत अवश्यमेव राजा बनेंगे। परन्तु इस समय स्थिति यह है कि पिता श्री का देहान्त हो रहा है, ऐसी अवस्था में बड़ी से बड़ी अत्याचारी सरकारें भी अन्त्येष्ठि के लिए ज्येष्ठ पुत्र को पैरोल पर छोड़ देती हैं। तू राम को कुछ दिन के लिये यहां रहने दे। प्रधानमन्त्री की जमानत पर कैकयी श्री राम को दो चार दिन के लिए अयोध्या में रहने की सुविधा दे देती। इस बीच में भरत को शीघ्राति-शीघ्र बुलवा लेते। भरत अपनी मां को आ कर समझा लेते। सब कुछ ठीक हो सकता था। महाराज के प्राण भी बच जाते, दशरथ जी की सत्यवादिता पर भी आंच न आने पाती, राम बनवास भी रुक जाता। परन्तु कुलपुरोहित ने तो इस से सर्वथा विपरीत किया। महाराज की उन्होंने कुछ भी चिन्ता नहीं की। राम को बनों में ले जाने के लिए उन्हों ने किसी साधारण से ड्राईवर को नहीं भेजा।—स्वयं अर्थ मन्त्री सुमन्त्र रथवान् बने।

यह सत्य है कि शीघ्रातिशीघ्र स्वेच्छापूर्वक रामराज्याभिषेक का समय निश्चित् किया,—महाराज ने जानबूझ कर भरत-शत्रुघ्न को अयोध्या से बाहर भेज दिया। जानबूझ कर राज्याभिषेक पर भरत-शत्रुघ्न को नहीं बुलाया।

कितनी अद्भुत बात है, इस शुभ वेला पर जनक जी महाराज को बुलाया तक नहीं गया,—क्योंकि महाराज श्री भरत के मामा-नाना को बुलाना चाहते नहीं थे ।—क्योंकि वे वचन दे चुके थे कैकयी के पिता को,—महाराज श्री के पश्चात् कैकयी के पुत्र को ही राज्य का उत्तराधिकार प्राप्त होगा । अतः महाराज श्री चाहते थे, प्रधान मन्त्री भरे दरबार में राज्याभिषेक का प्रस्ताव उपस्थित करें और "कैकयी" भरे दरबार में राम को आशीर्वाद दे दे । No objection ।

तिभुवन तीनि काल जगमाहीं ।
भूरि भाग दशरथ सम नाहीं ॥
मंगल मूल राम सुत जासू ।
जो कुछ कहिश्र थोर सबु तासू ॥
कहउ भुश्रालु सुनिश्र मुनिनायक ।
भए राम सब बिधि सब लायक ॥
नाथ रामु करिश्रहि जुबराजू ।
सुनि मुनि दशरथ बचन सुहाए ॥
मंगल मोद मूल मन भाए ॥
बेगि बिलंबु न करिश्र नृप साजिश्र सबहु समाजु ।
सुदिन सुमंगलु तबहि जब रामु होहिं जुबराजु ॥
सुनत राम श्रभिषेक सुहावा ।
बाज गहागह श्रवध बधावा ॥
रामराज श्रभिषेकु सुनि हियँ हरषे नर नारि ।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि श्रनुकूल बिचारि ॥

उस समय राज सभा में बैठे हुए सब लोगों को सम्बोधित कर महाराज दशरथ ने बड़े मधुर स्वर से सब के आनन्द को बढ़ाने वाली यह हितकारक बात कही—'सज्जनो ! आप लोगों को मालूम होगा कि मेरे पूर्वज राजाओं ने इस राज्य की प्रजा का किस प्रकार पुत्र की भांति पालन किया था । अब मैं भी सम्पूर्ण जगत् को कल्याण का भागी बनाना चाहता हूं, इसलिये यहां बैठे हुए सम्पूर्ण द्विजातियों की अनुमति ले कर मेरा प्रजाजनों के हित के कार्य पर अपने पुत्र राम को नियुक्त करने का विचार हो रहा है, और ऐसा करके मैं इस राज्यभार से मुक्त हो विश्राम लेना चाहता हूं । राम धर्मात्माओं में श्रेष्ठ हैं । वे आप लोगों के लिये योग्य स्वामी सिद्ध होंगे । उनके जैसे स्वामी को पाकर तो सम्पूर्ण त्रिलोकी भी अपने को सनाथ समझेगी वे कल्याण स्वरूप हैं । मैं शीघ्र ही उनका अभिषेक करके इस पृथ्वी का उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करूंगा—भूमण्डल को कल्याण का भागी बनाऊंगा । अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य सौंप कर सर्वथा निश्चिन्त हो जाऊंगा यदि मेरा यह प्रस्ताव आप लोगों को अनुकूल जान पड़े तथा यदि मैंने यह अच्छी बात सोची हो तो आप इस के लिये मुझे सहर्ष अनुमति दें ।' राजा दशरथ के ऐसा कहने पर वहाँ उपस्थित राजाओं ने अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी बात का अभिनन्दन किया ।' तत्पश्चात् समस्त जनसमुदाय के स्नेहमयी हर्षध्वनि सुनायी पड़ी । वह ध्वनि इतनी प्रबल थी कि समस्त पृथ्वी को कंपाती हुई सी जान पड़ी ।

धर्म और अर्थ के ज्ञाता महाराज दशरथ के अभिप्राय को जान कर सम्पूर्ण ब्राह्मण, सेनापति तथा नगर और राज्य के प्रधान-व्यक्ति परस्पर विचार करने के लिये एकत्रित हुए और जब वे एक निश्चय पर पहुंच गये तो राजा दशरथ से बोले महाराज ! अपने पुत्र राम का अवश्य ही युवराज के पद पर अभिषेक कीजिये । रघुवीर रामचन्द्र जी महान् गजराज पर बैठे हों और उन के ऊपर श्वेत छत्र तना हो—इस रूप में हम उन की झांकी के दर्शन करना चाहते हैं । आप के राम में बहुत-से

सद्‌गुण हैं। वे सत्यवादी, सत्यपरायण एवं सत्पुरुष हैं। साक्षात् राम ने ही अर्थ के साथ धर्म को प्रतिष्ठित किया है। जैसे चन्द्रमा सब को आह्लादित करते हैं, उसी प्रकार राम भी प्रजाजनों को सुख एवं आनन्द प्रदान करते हैं। वे धर्मज्ञ, सत्य प्रतिज्ञ, शीलवान्, दोषदृष्टि से रहित, क्षमाशील, दूसरों को सान्त्वना देने वाले, प्रिय वचन बोलने वाले, कृतज्ञ, जितेन्द्रिय, कोमल स्वभाव वाले, स्थिर-बुद्धि, सदा कल्याण-कारी तथा प्रियवादी होने के साथ-साथ सत्य-वादी भी हैं। देवता, असुर और मनुष्यों के सम्पूर्ण अस्त्रों का उन्हें विशेष रूप से ज्ञान है। वे साङ्ग वेद के विद्वान् और सम्पूर्ण विद्याओं में निष्णात हैं। कल्याण की तो वे जन्म-भूमि ही हैं। प्रजा के घर उत्सव देख कर उन्हें पिता की भाँति प्रसन्नता होती है। वे महान् धनुर्धर, वृद्ध पुरुषों के सेवक और हंसकर बात करने वाले हैं। उन्होंने धर्म का पूर्ण रूप से आश्रय लिया है। वे साक्षात् विष्णु की भाँति शोभा पाते हैं। सम्पूर्ण लोकों को आनन्दित करने वाले श्री रामचन्द्र जी शूरता, वीरता और पराक्रम आदि के द्वारा सदा प्रजाका पालन करने में लगे रहते हैं। उनकी इन्द्रियों पर राग आदि दोषों का प्रभाव नहीं पड़ता। इस पृथ्वी की तो बात ही क्या, वे सम्पूर्ण त्रिलोकीकी भी रक्षा कर सकते हैं। ऐसे सर्वगुण सम्पन्न लोक पालों के समान प्रभावशाली एवं सत्यपराक्रमी राम को इस पृथ्वी की जनता अपना स्वामी बनाना चाहती है। अयोध्यापुरी में तथा गांवों और नगरों में जितने मनुष्य रहते हैं, वे स्त्री हों या पुरुष सभी राम के बल, आरोग्य तथा आयु की शुभ-कामना करते हैं। इस पुरी की बूढ़ी और युवती—सब तरह की स्त्रियाँ सवेरे और सायंकाल में एकाग्रचित हो कर परम उदार श्री रामचन्द्र जी के युवराज होने के लिये देवताओं से प्रार्थना किया करती हैं। महाराज! उनकी वह योजना आप की कृपा से पूर्ण होनी चाहिये। हम आप के ज्येष्ठ पुत्र राम को युवराज पद पर विराजमान देखना चाहते हैं। अतः आप देवाधिदेव श्री विष्णु के समान पराक्रमी, सम्पूर्ण लोकों के हित में संलग्न रहने वाले और महापुरुषों द्वारा सेवित अपने प्रिय श्री रामचन्द्र जी का जितना शीघ्र हो सके प्रसन्नता पूर्वक राज्याभिषेक कीजिये। इसी में हम लोगों का हित है।

मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी।
अभिमत बिरबें परेउ जनु पानी।।
बिनती सचिव करहिं कर जोरी।
जिअहु जगतपति बरिस करोरी।।
जगमंगल भल काजु बिचारा।
बेगिअ नाथ न लाइऊ बारा।
राम राज अभिषेकु सुनि हियें हरसे नर नारी।
लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारी।।

सभासदों ने हाथ जोड़ कर महाराज के प्रस्ताव का समर्थन किया, उसे सुनकर राजा दशरथ उन सब से प्रिय और हितकारी वचन बोले—'अहा! आप लोग मेरे परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र राम को युवराज के पद पर विराजमान देखना चाहते हैं, इस से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। इस प्रकार की बातों से पुरवासी का सत्कार करके महाराज दशरथ ने उन के सुनते हुए ही वाम देव और वसिष्ठ आदि ब्राह्मणों से कहा—विप्रवरो! यह चैत्र मास बड़ा सुन्दर और पवित्र है। इस में राम का युवराज-पद पर अभिषेक करने के लिये सब सामग्री एकत्रित कराईये।

तदनन्तर राजा ने सुमन्त्र से कहा—पवित्रात्मा राम को तुम शीघ्र यहाँ बुलाओ। 'जो आज्ञा' कह कर सुमन्त्र गये और राजा के कथनानुसार रथियों में श्रेष्ठ राम को रथ पर बिठा कर ले आये। रथ से उतर कर जब राम पिता जी के पास चले तो सुमन्त्र उन के पीछे पीछे हाथ जोड़े हुए गये। उन के साथ ऊँचे प्रासाद पर चढ़ कर रामचन्द्र जी ने पिता के निकट जा उन के चरणों में प्रणाम किया और अपना नाम सुनाकर परिचय दिया। प्रिय पुत्र को प्रणाम करते देख राजा ने उन के दोनों हाथ पकड़कर अपने पास खींच लिया और बड़े प्रेम के साथ छाती से लगाया। फिर उन्हें मणिजटित सुवर्ण से भूषित सुन्दर सिंहासन पर बैठने की आज्ञा दी। राम उस पर विराजमान होकर अपने ही प्रतिबिम्ब की भाँति शोभा पाने वाले पुत्र को देखकर राजाको बड़ा सुख मिला। वे राम को सम्बोधित कर के बोले—पुत्र! तुम्हारा जन्म मेरी बड़ी महारानी कौशल्या के गर्भ से हुआ है। तुम अपनी माता के अनुरूप ही उत्पन्न हुए हो। तुम ने अपने गुणों से समस्त प्रजा को प्रसन्न कर लिया है। अतः पुष्य नक्षत्र के योग में युवराज पद स्वीकार करो।

राजा की बातें सुन कर रामचन्द्र जी ने महाराज को प्रणाम किया और रथ पर बैठे और प्रजा जनों से सम्मानित होते हुए अपने शोभा शाली भवन में चले गये।

परन्तु महाराज का मन अशांत था। यद्यपि कैकेयी उन के प्रस्ताव से प्रसन्न थी। श्री राम के राज्याभिषेक पर उसे कुछ भी आपत्ति न थी। भरत को महाराज ननहाल भेज ही चुके थे, परन्तु फिर भी उन के मन में खटका बराबर बना हुआ था। एक एक क्षण उन के लिये वर्ष भर जा रहा था। उन्हें इस बात का भय था कहीं भरत के मामा नाना रामराज्याभिषेक में बाधक न बन जायें। अतः महाराज ने अन्तःपुर में जाकर सूत को बुलाया और आज्ञा दी—'जाओ, राम को एक बार फिर यहाँ बुला लाओ।' उन की आज्ञा शिरोधार्य कर सूत राम को शीघ्र बुला ले आने के लिये पुनः उनके महल में गये। और कहा—'महाराज आप से मिलना चाहते हैं'। सूत की बात सुन कर राम पिता श्री के दर्शन करने के लिये तुरंत उनके महल की ओर चल दिये। भीतर प्रवेश करते ही उन्होंने पिता जी को देखा और दूर से ही हाथ जोड़कर उन के चरणों में पड़ गये। महाराज ने राम को उठाकर छाती से लगा लिया और उन्हें आसन पर बिठा कर पुनः इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

सुहृदश्चाप्रमत्तास्त्वः रक्षन्त्वद्य समन्ततः।
भवन्ति बहुविघ्नानि कार्याण्येवं विधानि हि॥
विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥
कामं खलु सतां वृत्ते भ्राता ते भरतः स्थिरः।
ज्येष्ठानुवर्ती धर्मात्मा सानुक्रोशो जितेन्द्रियः॥
किं नु चित्तं मनुष्याणामनित्यमिति मे मतम्।
सतां च धर्मनित्यानां कृतशोभि च राघव॥

राम! अब मैं बढ़ा हो गया हूँ। सब प्रकार के मनोवाञ्छित भोग भोग चुका हूँ। देवता, ऋषि, पितर और ब्राह्मणों के तथा अपने ऋण से उऋण हो गया। अब तुम्हें युवराज पद पर अभिषिक्त करने के सिवा और कोई कर्त्तव्य मेरे लिये शेष नहीं रह गया है। इस समय सारी प्रजा तुम्हें राजा बनाना चाहती है। ज्योतिषियों का कहना है कि आज चन्द्रमा

पुष्य से एक नक्षत्र पहले पुनर्वसु पर विराजमान है। अतः कल निश्चय ही वे पुष्य नक्षत्र पर रहेंगे। इसलिये पुष्य में ही अपना अभिषेक करा लो। तत्पश्चात् महाराज अपने हृदय का वास्तविक भय प्रकट करते हुए बोले, राम! शुभ कार्यों में अनेक विघ्न् उपस्थित हो जाया करते हैं। जब तक भरत राजधानी से बाहर है तब तक यदि तुम्हारा अभिषेक सम्पन्न हो जाय तो ठीक होगा।

श्री राम ने तथास्तु कह पिता के चरणों में प्रणाम किया; फिर वहां से चल कर वे सीधे माता कौशल्या के पास पहुंचे। उन्होंने देखा माता कौशल्या आंख बन्द किये ध्यान लगाये बैठी थीं और सुमित्रा, सीता तथा लक्ष्मण उनकी सेवा में खड़े थे। पुष्य नक्षत्र के योग में पुत्र के युवराज-पद पर अभिषिक्त होने की बात सन कर वे उस की मङ्गल-कामना से प्राणायाम के द्वारा परम पुरुष नारायण का ध्यान कर रही थीं। उसी अवस्था में निकट जाकर राम ने माता को प्रणाम किया और उन्हें आनन्दित करते हुए कहा—"माँ, पिता श्री ने मुझ से कहा है—'कल तुम्हारा अभिषेक होगा। तथा उन्होंने उपाध्यायों की कही हुई यह बात भी बतायी है कि 'तुम को और सीता को आज रात में उपवास करना होगा।' अतः कल होने वाले अभिषेक के निमित्त से आज मेरे और सीता के लिये जो-जो मङ्गल कार्य आवश्यक हों, वे सब हम से कराओ।' यह सुन कर कौशल्या ने आनन्द के आँसू बहाते हुए गद्गद कण्ठ से कहा—बेटा! चिरञ्जीवी हो, तुम राजलक्ष्मी से युक्त होकर मेरे और सुमित्रा के बन्धु-बन्धवों को आनन्दित करो।

रामराज्याभिषेक सम्बन्धी सभी प्रकार की तैयारियां करने का आदेश देकर कुल पुरोहित रामधाम की ओर चले।

तब नरनाहं वसिष्ठु बोलाए।
रामधाम सिख देन पठाए॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा।
द्वार आइ पद नायउ माथा॥
सादर अरघ देइ घर आने।
सोरह भांति पूजि सनमाने॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी।
बोले रामु कमल कर जोरी॥
सेवक सदन स्वामि आगमनू।
मंगल मूल अमंगल दमनू॥
प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू।
भयउ पुनीत आजु यहु गेहू॥
आयसु होइ सो करौं गोसाईं।
सेवकु लहइ स्वामि सेवकाईं॥

सुनि सनेह साने बचन मुनि रघुबरहि प्रसंस।
राम कस न तुम्ह कहहु अस हंस बंस अवतंस॥

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ।
बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू।
चाहत देन तुम्हहि जुबराजू॥
राम करहु सब संजम आजू।
जौं बिधि कुशल निबाहै काजू॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयऊ।
राम हृदयं अस बिसमउ भयऊ॥
जनमे एक संग सब भाई।
भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा।
संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू।
बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

कितना ऊंचा था राम का चरित्र। तुलना कीजिए इस चरित्र की वर्तमान् स्कूलों कालिजों की हुडदंगबाजी के साथ, और दो सगे भाइयों में चल रही दस गज भूमि की खातिर मुकद्मा-

बाजी के साथ।

तब रघुनाथ जी ने गुरु जी को रत्नसिंहासन पर बैठा कर उनके चरण धोये और सीता जी के सहित उस चरणोदक को भक्ति-पूर्वक अपने शिर पर रख कर कहा—'हे मुने ! आपके चरणोदक को धारण कर आज मैं कृतकृत्य हो गया।" भगवान् राम के इस प्रकार कहने पर मुनिवर वसिष्ठ ने हंस कर कहा—"हे राम! आपके पादोदक को मस्तक पर धारण कर पार्वती-वल्लभ भगवान् शंकर धन्य-धन्य हो गये तथा मेरे पिता ब्रह्मा जी भी आपके पादतीर्थ का सेवन करने से ही निष्पाप हो गये हैं। इस समय केवल संसार को यह उपदेश करने के लिए ही कि 'गुरु के साथ किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये' आप इस प्रकार सम्भाषण कर रहे हैं। मैं भली प्रकार जानता हूं, आप लक्ष्मी के सहित प्रकट हुए साक्षात् परमात्मा विष्णु हैं। हे राघव! मैं जानता हूं, आपने देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये, भक्तों की भक्ति सफल करने के लिये और रावण का वध करने के लिये ही अवतार लिया है।

रावणस्य वधार्थाय जातं जानामि राघव।
तथापि देवकार्यार्थं गुह्यं नोद्घाटयाम्यहम्।

तथापि देवताओं की कार्य-सिद्धि के लिये मैं इस गुप्त रहस्य को प्रकट नही करता। हे रघुनन्दन ! इस प्रकार माया के आश्रय से आप सब कार्य करेंगे उसी प्रकार मैं भी 'तुम शिष्य हो और मैं गुरु हूं' इस सम्बन्ध के अनुकूल व्यवहार करूंगा। किन्तु हे देव ! वास्तव में तो आप ही गुरुओं के गुरु और पितृगणों के भी पितामह हैं। आप अन्तर्यामी, जगद्व्यवहार के प्रवर्त्तक और मन-वाणी के अविषय हैं, और स्वेच्छा से यह शुद्ध सत्त्वमय शरीर धारण कर इस लोक में अपनी योगमाया से मनुष्य के समान प्रतीत होते हैं।

हे रघुश्रेष्ठ ! इस समय प्रसंगवश मैं ने ये सब बातें आप से कह दी हैं—हे राघव ! महाराज दशरथ ने इस बात की सूचना देने के लिए कि कल वे आप को राजपद पर अभिषिक्त करेंगे—मुझे आप के पास भेजा है। आज आप सीता के सहित विधि पूर्वक उपास और शुद्धता तथा इन्द्रियजय पूर्वक पृथिवी पर शयन करें। अब मैं राजा के पास जाता हूं, आप कल प्रातः काल वहां पधारें !" ऐसा कह कर पुरोहित वसिष्ठ जी रथ पर चढ़ कर तुरन्त ही चले गये, तब राम चन्द्र जी ने लक्ष्मण की ओर देख कर हंसते हुए कहा—

सौमित्रे यौवराज्ये मे श्वोऽभिषेको भविष्यति।
निमित्तमात्रमेवाह कर्ता भोक्ता त्वमेवहि॥
मम त्वं हि बहिः प्राणो नात्र कार्यं विचारिणा॥

हे सुमित्रानन्दन ! कल मेरा युवराजपद पर अभिषेक होगा, सो मैं तो केवल निमित्तमात्र ही होऊंगा, उस के कर्त्ता भोक्ता तो तुम्हीं होगे। क्योंकि मेरे बाह्यप्राण तो तुम्ही हो। इस में कोई विशेष सोच विचार की आवश्यकता नहीं है। तदनन्तर वसिष्ठ जी जैसा कह गये थे रघुनाथजी ने वैसा ही किया।

इधर रामराज्याभिषेक की तैयारियां हो रही थीं उधर देवता भी ताक लगाये बैठे थे—यदि राम राजा बन गये, वे राजमहल में ही बन्द हो जायेंगे, फिर तो रामावतार का उद्देश्य ही समाप्त।

Rama in the jungles will be more valuable to the cause of Aryavarta than Rama on the throne of Ayodha.

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन्।
गच्छ देविभुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नः॥
रामाभिषेक विघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः।
मन्थरा प्रविशस्वादौ कैकयी चततः परम्॥

इसी समय देवताओं ने सरस्वती देवी से आग्रह किया कि "हे देवि ! तुम यत्न पूर्वक भूलोक में अयोध्यापुरी में जाओ और ब्रह्मा जी की आज्ञा से रामचन्द्र जी के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित करने के लिये यत्न करो । प्रथम तो तुम मन्थरा में प्रवेश करना और फिर कैकयी में । हे शुभे ! इस प्रकार विघ्न उपस्थित हो जाने पर तुम स्वर्ग लोक को लौट आना । इस पर सरस्वती ने बहुत अच्छा कह कर वैसे ही किया और प्रथम मन्थरा में प्रवेश किया ।

सुनि सुर बिनय ठाढ़ि पछिताती ।
भइउँ सरोज विपिन हिमराती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी ।
मातु तोहि नहिं थोरिउ खोरी ॥
बिसमय हरष रहित रघुराऊ ।
तुम्ह जानहु सब राम प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी ।
जाइअ अवध देव हित लागी ॥
नामु मन्थरा मंदमति चेरी कैकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरी ॥

मन्थरा महाराज काश्मीर की ओर से अयोध्या में कैकयी के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा के लिये एक प्रकार से राजदूत थी । सो बात नहीं कि एकाएक अभिषेकोत्सव को देखकर मन ही मन कुढ़ उठी हो । मन्थरा काफी दिन पहले से जानती थी कि राम को यौवराज्यपद प्राप्त होगा । कैकयी भी जानती थी । परन्तु रामजी का कैकयी के प्रति इतना सुन्दर ब्यवहार था कि कैकयी भरत के लिये राज्य चाहती ही न थी, जब स्वयं ककयी को श्री राम राज्याभिषेक में कोई आपत्ति न थी तो मन्थरा को सड़ने-कुढ़ने की क्या आवश्यकता थी ।

ठीक अन्तिम क्षणों में ऋषियों ने मन्थरा की स्थिति का सदुपयोग किया । उन्हों ने उस के हृदय में यह विचार जागृत किया कि इस समय उसे कैकयी के राजनीतिक अधिकारों की रक्षा करके अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिये । यदि भरत उस समय अयोध्या में होते तो मन्थरा का कुचक्र कदापि सफल न हो पाता । परन्तु राम राज्याभिषेक के समय भरत का अयोध्या से बाहर रहना यह कैकयी का मन बदलने के लिये अमोघ अस्त्र का काम कर गया—मन्थरा क्रोध से जलती हुई कैकयी के महल में गई और बोलीं —रानी ! तुझ पर बड़ा भारी भय आ रहा है, अरी ! तेरे ऊपर दुःख का पहाड़ टूट पड़ा है, देवी ! कल महाराज दशरथ श्रीराम को युवराज-पद पर अभिषिक्त करेंगे । यह समाचार पाकर मैं दुःख और अगाध भय में डूबी जा रही हूं । क्योंकि यदि तुम्हारे ऊपर दुःख आया तो मुझे भी बड़े-बड़े भारी दुःख में पड़ना होगा । तुम्हारी उन्नति में ही मेरी भी उन्नति है । तुम्हारे स्वामी धर्म बहुत बघारते हैं परन्तु है बड़े धूर्त । बातें तो चिकनी चुपड़ी करते हैं किन्तु हृदय के बड़े क्रूर हैं । तुम समझती हो कि वे सारी बातें शुद्ध भाव से करते हैं, इसी लिए आज तू उनके द्वारा ठगी गई है । उनका हृदय इतना दूषित है कि भरत को तो उन्होंने तुम्हारे भाई के घर भेज दिया और कल सवेरे ही अवध के निष्कण्टक राज्य पर राम का अभिषेक होगा ।

मन्थरा के वचन सुन कर रानी कैकयी के मुख पर प्रसन्नता दौड़ गई । वह तुरंत ही पलंग से उठ बैठी और अत्यन्त हर्ष से भर कर एक परम सुन्दर दिव्य आभूषण मन्थरा को पुरस्कार के रूप में देती हुई बोली—

"मन्थरे ! यह तो तूने बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया। मैं राम और भरत में कोई भेद नहीं समझती; अतः यह जानकर कि राजा राम का अभिषेक करने वाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है। ऐसा प्रिय वचन सुनाने के उपलक्ष में मैं तुझे कोई उत्तम वर देना चाहती हूँ; तेरी जो इच्छा हो मांग ले।' यह सुनकर मन्थरा ने कैकयी को अनखभरी दृष्टि से देखा और वह आभूषण फेंक कर क्रोध और दुःख से भर कर बोली—देवि ! तुम्हें शोक के स्थान पर हर्ष हा रहा है, तुम बहुत बड़ी विपत्ति को पाकर सन्तोष मानती हो—यह देखकर मुझे मन ही मन बड़ा क्लेश सहन करना पड़ता है। मैं दुःख से व्याकुल हो रही हूं। तुम्हारी मूर्खता देखकर ही मुझे अधिक शोक होता है। अरे! सौतेला बेटा शत्रु होता है। वह साक्षात् मृत्यु के समान है। भला, उसका अभ्युदय देख कर कौन समझदार स्त्री हर्ष माने गी। इस राज्य पर राम और भरत का समान अधिकार है, इसलिये राम को भरत से भी भय की आशंका हो सकती है। लक्ष्मण और शत्रुघ्न छोटे हैं, अतः उन्हें राज्य पाने का अधिकार नहीं है। राम के बाद भरत ही उसके अधिकारी हैं, इस लिये तुम्हारे पुत्र को मुझे राम से खतरा जान पड़ता है और यही सोच कर मैं भय से कांप उठती हूं। वास्तव में कौशल्या ही सौभाग्यवती है; क्योंकि उनके पुत्र का अभिषेक होने जा रहा है। वे भूमण्डल का निष्कण्टक राज्य पाकर प्रसन्न होंगी और तुम दासी की भाँति उनकी सेवा में हाथ जोड़ खड़ी रहेगी। इस प्रकार हम लोगों के साथ तुम भी कौशल्या की दासी बनोगी और तम्हारे पुत्र भरत को राम की गुलामी करनी पड़ेगी।'

मन्थरा को अप्रसन्नता के कारण इस प्रकार बहकी-बहकी बातें करते देख कर देवी कैकेयी ने राम के ही गुणों की प्रशंसा करते हुए कहा—'कुब्जे ! राम धर्म के ज्ञाता, गुणवान्, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और परम पवित्र होने के साथ ही महाराज के ज्येष्ठ भी हैं। अतः युवराज होने का अधिकार उन्हीं को है। वे दीर्घजीवी हो कर अपने भाइयों और भृत्यों का पिता की भाँति पालन करेंगे। भला, उनके अभिषेक की बात सुनकर तू इतनी जल क्यों रही है। राम की राज्य-प्राप्ति के सौ वर्ष बाद भरत को भी अपने पिता पितामहों का राज्य मिलेगा। ऐसे अभ्युदय के समय, जब कि भविष्य में कल्याण ही कल्याण दिखाई दे रहा है, तुझे इतना दुःख क्यों होना है ? मेरे लिये जैसे भरत आदर के पात्र हैं वैसे ही, बल्कि उन से भी बढ़ कर राम हैं। वे कौसल्या से भी अधिक मेरी सेवा करते हैं। यदि राम को राज्य मिल रहा है, तो उसे भरत को ही मिला समझो; क्योंकि रामचन्द्र अपने ही समान अपने भाइयों को भी समझते हैं।'

कैकेयी की बातें सुनकर मन्थरा को बहुत दुःख हुआ। वह लम्बी और गरम सांस खींच कर कैकयी से बोली—"तुम मूर्खता वश अनर्थ को हो अर्थ समझ रही हो, तुम्हें अपनी स्थिति का भी पता नहीं है। जब राम चन्द्र राजा बन जायेंगे, तो फिर उनके पुत्र को ही राज्य मिलेगा। भरत राज्य परम्परा से अलग समझे जायेंगे। राजा के सभी लड़कों को राज्य का अधिकारी नहीं बनाया जाता, अतः तुम्हारा पुत्र राजवंश से तो अलग होगा ही, साथ ही साथ अनाथ की भांति वह समस्त सुखों से भी वंचित हो जायेगा; इस लिये मैं तुम्हारे हित की बात सुझाने के लिये यहाँ आयी हूं। किन्तु, तुम मेरा अभिप्राय तो समझती नहीं, उल्टे सौत का

अभ्युदय सुन कर पारितोषिक देने चली हो। याद रखो, यदि राम को निष्कण्टक राज्य मिल गया, तो भरत को अवश्य ही इस देश से निकाल बाहर करेंगे। सुमित्रा कुमार लक्ष्मण राम की रक्षा करते हैं और राम उनकी। उन दोनों का भ्रातृप्रेम अश्विनी कुमारों की भांति सारे जगत् में प्रसिद्ध है। इस लिये राम लक्ष्मण का किंचित् भी अनिष्ट नहीं करेंगे, किन्तु भरत का अनिष्ट किये बिना रह नहीं सकते– इस में तनिक भी सन्देह न मानना। अतः रामचन्द्र महाराज के महलसे ही सीधे बन को चले जाएं—मुझे तो यही अच्छा जान पड़ता है और इसी में तुम्हारा हित है। यदि भरत धर्मानुसार अपने पिता का राज्य प्राप्त कर लेंगे तो तुम्हारा और तुम्हारे पक्ष के सब लोगों का कल्याण होगा। अतः ऐसा कोई उपाय सोचो, जिस में तुम्हारे पुत्र को तो राज्य मिले और राम चन्द्र वन में चले जायँ।

मन्थरा के कहने पर कैकयी का मुख क्रोध से तमतमा उठा। वह लंबी और गरम सांस खींच कर उस से बोली—"कुब्जे! अब मैं राम को शीघ्रही यहां से बन में भेजूंगी और युवराज के पद पर भरत का अभिषेक कराऊँगी। यह सब कार्य जितना जल्दी ही सके करना है। परन्तु इस समय यह तो सोचो, काम बनेगा कैसे? भरत को राज्य मिले और राम को नहीं। यह कैसे सम्भव हो सकेगा। उस समय मन्थरा बोली!

"कैकयी! तुम्हारे विवाह के समय जो वचन तुम्हारे पिता को महाराज ने दिये थे, अर्थात् तेरे पुत्र को राज्य वह अब तू याद कर और वह वर मांग। चौदह वर्ष तक राम को बनों में भेज, इतनी अवधि में भरत का राज्य सुदृढ़ हो जाएगा। प्रजा राम को भूल जाएगी। अतः तू अब शीघ्र ही महाराज को बुला कर उस वरदान की उन्हें याद दिला—और अपने पुत्र को राज्य और श्रीराम को चौदह वर्ष का वनवास मांग।"

उस समय मन्थरा के मुख से जो कुछ कहलाना था देवताओं ने इस का निश्चय तो पहले ही कर लिया था। मन्थरा स्वयं ने तो कुछ बोलना नहीं था, मन्थरा के रूप में स्वयं देवगण बोल रहे थे। रावण को मिटाने का जो अनुमान ऋषियों ने लगाया था उसे ध्यान में रखते हुए यह सम्पूर्ण रावण वध का कार्यक्रम चौदह वर्ष में पूरा होना था, अतः इतनी ही देर तक ऋषियों ने श्रीराम को बनों में रखना था।

मन्थरा का मिशन सफल हुआ। मन्थरा के रूप में मानो महामुनि वसिष्ठ का मनोरथ पूर्ण हुआ। कैकयी का मन बदल गया। विवाह के समय महाराज द्वारा दिये गये दोनों वरदान मांगने को वह तैयार हो गयी। भरत के लिए राज्य और श्रीराम के लिये चौदह वर्ष का बनवास और वह भी दक्षिण दिशा के वनों में जिस दिशा में रावण की लंका थी।

महाराज के मन में जिस बात की आशंका थी वह मूर्तिमान् उन के सन्मुख आ उपस्थित हुई। महाराज तक यह समाचार पहुंचा कि कैकयी उन्हें याद करती है। महाराज को यह आशा थी कि वे कैकयी को समझाने में सफल हो जावेंगे। वे कैकयी के महल में पहुंचे—पता लगा कि श्रीमती जी कोप भवन में हैं। महाराज वहां भी पहुंचे। उन्होंने कैकयी को प्रसन्न करने की पूरी पूरी चेष्टा की परन्तु कैकयी का मन तो स्वार्थ सिद्धि में ही लगा हुआ था। महाराज बोले, मानिनि! मैं तुम्हारी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करूंगा—प्रसन्न हो, बता तू चाहती क्या है। अपने अभिप्राय को प्रकट करने का उपयुक्त

अवसर जानकर वह हर्ष से भर गई और उस ने कहने योग्य बात को भी कहने लगी, राजन्! यह जो राम के राज्याभिषेक की तैयारी की गयी है, इसके द्वारा मेरे पुत्र भरत का अभिषेक कीजिये और राम तपस्वी के वेष में बिल्कुल मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षों तक दण्डकारण्य में जा कर रहें। भरत को आज निष्कण्टक युवराज पद प्राप्त हो जाना चाहिये। आप ऐसी व्यवस्था करें, जिस से मैं रामचन्द्र को आज ही बन की ओर जाते देखूं।

नव पंच च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः।
चीराजिनधरो धीरो रामो भवतु तापसः॥
अद्य चैव हि पश्येयं प्रयान्तं राघवं बने॥

यदि बात कैकयी की ही होती तो महाराज सहज में ही इसे टाल सकते थे—कैकयी! मैंने तुम्हें दो वर देने का वचन अवश्य दिया था परन्तु जो कुछ तू मांग रही है यह दे सकना मेरी शक्ति में नहीं, क्योंकि मैं कल ही तो प्रजा को यह वचन दे चुका हूं कि आज श्रीराम का राज्यभिषेक हो। प्रजा को दिया हुआ वचन मैं भंग नहीं कर सकता और मानववंश की परम्परा भी यही है कि ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का स्वामी बनता है। महाराज यौवराज्यपद के प्रश्न को भारतीय परम्परा का प्रश्न बता कर समूचा उत्तरदायित्व जनपद (Parliament) पर डाल सकते थे। उस अवस्था में उन पर वचन भंग का आरोप कदापि लागू न हो पाता।

परन्तु महाराज के सन्मुख सब से बड़ी कठिनाई यह थी कि वे स्वयं कैकयी के साथ विवाह करते समय कैकयी के पिता और भाई को यह वचन दे चुके थे कि कैकयी का पुत्र ही अयोध्या के राज्य का उत्तराधिकारी होगा, इस लिए महाराज के लिए कैकयी की बात टालना सहज न था।

कैकयी अकेली न थी। उसके पीछे देवताओं की बहुत बड़ी शक्ति काम कर रही थी। महामुनि वसिष्ठ उस अवस्था में यदि महाराज की सहायता को आते निःसन्देह वे सब कुछ ठीक ठाक कर सकते थे। वे शीघ्र ही भरत को कैकय देश से बुला लेते। श्रीराम को दो चार दिन के लिये अयोध्या में ठहरा लेते। भरत आकर स्वयं अपनी माता को समझा लेते। परन्तु प्रधान मन्त्री ने ऐसा नहीं किया। यदि उस अवसर पर भरत को बुलाना होता तब तो वह राम राज्याभिषेक से पूर्व भी भरत को बुला सकते थे। कितनी अद्भुत बात है कि श्रीराम का राज्याभिषेक होने जा रहा है भरत शत्रुघ्न को किसी ने बुलाया तक नहीं। श्रीराम और भरत का इतना स्नेह था परन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम ने भी अपने राज्याभिषेक पर भरत जैसे श्रद्धानिष्ठ भाई को बुलाना उचित नहीं समझा।

महाराज कैकयी के रहम पर थे। उस समय उनकी रक्षा को न तो वसिष्ठ आये, न सुमन्त्र, न विश्वामित्र। उस निःसहाय अवस्था में महाराज संतप्त हो इस प्रकार विलाप करने लगे—पापिनी! तू बड़ी क्रूर और इस कुल का विनाश करने वाली है, अरी! राम तो तेरे साथ सगी माता का सा बर्ताव करते आये हैं, फिर तू किस लिये उनका अनिष्ट करने पर उतारू हो चुकी है। सारा संसार जिनके गुणों की प्रशंसा करता है, उन्हीं अपने प्यारे पुत्र राम को मैं किस अपराध से त्याग दूं? कौसल्या, सुमित्रा, राजलक्ष्मी तथा अपने प्राणों का भी परित्याग कर सकता हूं किन्तु पितृ भक्त राम को नहीं छोड़ सकता। उन्हें देखते ही मेरे हृदय में अनन्त प्रेम उमड़ आता है। सूर्य के बिना कदाचित् यह संसार रह सकता है, पानी के बिना खेती बनी रह सकती है, किन्तु [illegible]

शरीर में प्राण नहीं रह सकते।

तेरे प्रथम वर के अनुसार मैं भरत का राज्याभिषेक स्वीकार करता हूं। परन्तु राम का चौदह वर्षों तक भयंकर बन में रहना मुझे क्यों कर उचित जान पड़ेगा। नरश्रेष्ठ राम से बढ़ कर गुरु जनों की सेवा करने वाला, उनको गौरव प्रदान करने वाला दूसरा कौन है। सत्य, दान, जप, त्याग, मैत्री, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरू शुश्रूषा ये सभी गुण राम में स्थिर रूप से रहते हैं। महाऋषियों के समान तेजस्वी उस सीधे सादे देव तुल्य राम का तू क्यों अनिष्ट करना चाहती है।"

एक ओर राजा दशरथ की यह अवस्था थी और दूसरी ओर परम गुणवान् महर्षि वसिष्ठ अभिषेक का पुण्य मुहूर्त्त आया जान कर शिष्यों के साथ आवश्यक सामग्रियों का संग्रह करके नगर में आये। उस समय सड़कें झाड़ कर बुहार कर साफ की गयी थीं, जिन पर जल का छिड़काव हुआ था। समूची अयोध्या पुरी पताकाओं से सुशोभित हो रही थी। बाजार और दूकानें खूब सजायी गयी थीं, हर्ष से भरे हुए मनुष्य झुंड-के-झुंड इधर-उधर विचर रहे थे। चारों ओर चन्दन, अगर और धूप की सुगन्ध व्याप्त हो रही थी। अमरावती के समान शोभा पाने वाली उस पुरी को पार करके वसिष्ठ जी राजा दशरथ के अन्तः पुर के द्वार पर पहुंचे, जहां सहस्रों ध्वजाएं फहरा रही थीं। वहां जाने पर उन्हें महाराज के सचिव सुमन्त्र दिखाई पड़े। वसिष्ठ जी ने उन से कहा—'सूत ! तुम महाराज को शीघ्र ही मेरे आगमन की सूचना दो। राम का राज्याभिषेक करने के लिये सब सामान एकत्रित कर लिया गया है। ये गंगा जल से भरे हुए कलश रक्खे हैं। इन सुवर्णमय कलशों में समुद्र का जल भरा है। गूलर की लकड़ी का भद्र पीठ भी लेता आया हूं। इसी पर बिठा कर अभिषेक होगा। सब प्रकार के बीज, गन्ध, भांति-भांति के रत्न, मधु, दही, दूध, घी, लावा, कुश, फूल, फल, मत्त गजराज, चार घोड़ों वाला रथ, चमकता हुआ खड्ग, उत्तम धनुष, मनुष्य से ढोयी जाने वाली सवारी पालकी आदि, सुवर्ण की रस्सी में बंधा हुआ ऊंचे डील वाला पीला सांड, चार दाढ़ों वाला सिंह, बलवान् घोड़ा, सिंहासन, व्याघ्रचर्म, समिधा, सब प्रकार के बाजे, आचार्य, ब्राह्मण, गौ, पवित्र पशु-पक्षी, नगर और प्रान्त के श्रेष्ठ पुरुष अपने सेवकों सहित प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यापारी—ये तथा और भी बहुत से प्रिय वादी मनुष्य एवं राजा लोग राम के अभिषेक के लिये यहां उपस्थित हैं। तुम महाराज से शीघ्रता करने के लिये कहो, जिस से सूर्योदय होते ही पुष्य नक्षत्र के योग में राम के राज्याभिषेक का कार्य सम्पन्न हो जाए।'

वसिष्ठजी के वचन सुन कर सुमन्त्र राजा की स्तुति करते हुए महल के भीतर गये। बूढ़े सचिव को भीतर जाते देख द्वारपालों ने रोक टोक नहीं की, क्योंकि उनके लिए पहले से ही राजा की आज्ञा थी कि ये किसी समय भीतर आने से रोके न जायं। सुमन्त्र राजा के पास चले गये। उन्हें उनकी अवस्था का पता न था, इस लिये वे हाथ जोड़ कर प्रसन्नता बढ़ाने वाले वचनों से उनकी स्तुति करने लगे। तत्पश्चात् बोले— महाराज ! राम के राज्याभिषेक की सब सामग्री एकत्रित हो गयी है। नगर और प्रान्त के लोग तथा व्यापारी समाज भी उपस्थित हैं। महर्षि वसिष्ठ जी भी ब्राह्मणों के साथ द्वार पर विराजमान हैं। अतः अब अभिषेक का कार्य आरम्भ करने की शीघ्र आज्ञा दीजिये।' सुमन्त्र के विवेकपूर्ण एवं सान्त्वनापूर्ण एवं सार्थक

वचन सुन कर महाराज पुनः शोक से ग्रस्त हो गये। पुत्र के वियोग की सम्भावना से उनकी प्रसन्नता नष्ट हो चुकी थी। शोक के कारण उन के नेत्र लाल हो गये थे। उन्होंने एक दृष्टि उठा कर सुमन्त्र की ओर देखा और कहा—'तुम ऐसी बातें सुना कर मेरे मर्म पर अधिक आघात क्यों कर रहे हो ?' राजा के ये करुण वचन सुनकर और उनकी दीन दशा पर दृष्टि पात कर के सुमन्त्र उस स्थान से कुछ दूर पीछे हट कर हाथ जोड़ खड़े हो गये। तब कैकयी बोली—'सुमन्त्र ! तुम कोई विचार न करो। जाओ, राजकुमार राम को शीघ्र यहां बुला लाओ।' सुमन्त्र ने कहा—'देवि ! महाराज की आज्ञा सुने बिना मैं कैसे जा सकता हूं ?' मन्त्री की बात सुन कर राजा ने कहा—'सुमन्त्र ! मैं राम को देखना चाहता हूं। तुम शीघ्र उन्हें यहां ले आओ।

राम भवन में उपस्थित हो सुमन्त्र ने श्रीराम से पिता की इच्छा प्रकट की। राम शीघ्र ही पिता की सेवा में उपस्थित हुए—वहां जाकर उन्होंने देखा, पिता जी का चेहरा उतरा हुआ था, मूंह सूख गया था और वे बड़ी दयनीय स्थिति में दिखायी देते थे। निकट पहुंचने पर राम ने विनीत भाव से पहले अपने पिता के चरणों में प्रणाम किया, उसके पश्चात् उन्होंने सावधानी के साथ कैकयी के चरणों में भी मस्तक झुकाया और पूछा—मां ! मुझ से अनजान में कोई अपराध तो नहीं हो गया, आज पिता जी अप्रसन्न क्यों हैं, इनका चेहरा उतरा हुआ क्यों है।

महात्मा राम के इस प्रकार पूछने पर निर्लज्ज कैकयी बड़ी ढिठाई के साथ अपने मतलब की बात बोली—राम !

सुनहु राम सबु कारनु एहू।
राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना।
मांगेउ जो कछु मोहहि सोहाना॥
सो सुनि भयऊ भूप उर सोचू।
छाँड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू॥

कैकयी की बात सुनकर राम को बड़ी व्यथा हुई। उन्होंने राजा के सामने ही उससे कहा—'अहो मुझे धिक्कार है। देवि ! तुम्हें मेरे प्रति ऐसी बात मुंह से नहीं निकालनी चाहिये। मैं महाराज के कहने से आग में भी कूद सकता हूं और समुद्र में भी गिर सकता हूं। राम दो प्रकार की बात नहीं करता, मैं प्रतिज्ञा करता हूं आपकी आज्ञा का पालन करूंगा।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू।
रामु सहज आनन्द निधानू॥
बोले बचन बिगत सब दूषन।
मृदु मंजुल जनु बाग विभूषन॥
सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी।
जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा।
दुर्लभ जननी सकल संसारा॥
मुनिगन मिलनु बिसेषि बन सबहि भांति हित मोर।
तेहि महं पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर॥
अंब एक दुखु मोहि बिसेषी।
निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहिं बात पितहि दुखभारी।
होति प्रतीति न मोहि महतारी॥
राउधीर गुन उदधि अगाधू।
भा मोहि तें कछु बड़ अपराधू॥

राम सरल और सत्यवादी थे, उनकी बात सुनकर कैकयी ने अत्यन्त दारुण वचन कहना आरम्भ किया—राम ! यदि चाहते हो कि

तुम्हारे पिता सत्यप्रतिज्ञ बने रहें और तुम भी सत्यवादी कहलाओ तो मेरी यह बात सुनो - राजा ने तुम्हारे अभिषेक की जो तैयारी की है, उसी के द्वारा यहां भरत का अभिषेक किया जाये। और तुम इस अभिषेक को त्याग कर जटा और चीर धारण कर के चौदह वर्षों तक दण्डकारण्य में रहो।

कैकयी के इस कठोर वचन को सुनकर भी राम के हृदय में शोकनहीं हुआ। वे बोले—

अति लघु बात लागि दुख पावा॥
काहुं न मोहि कहि प्रथम जनावा॥

मां! मैं केवल तुम्हारे कहने से भी अपने भाई भरत के लिये सीता को, राज्य को, अपने प्यारे प्राणों को तथा सारी सम्पत्ति को भी प्रसन्नता पूर्वक दे सकता हूँ फिर यदि स्वयं महाराज—मेरे पिता जी आज्ञा दें और वह भी तुम्हारा प्रिय करने के लिये, तो मैं प्रतिज्ञा का पालन करते हुए उस कार्य को क्यों नहीं करूंगा आज ही महाराज की आज्ञा से दूत शीघ्र गामी, घोड़ों पर सवार हो भरत को मामा के यहां से बुलाने के लिये चले जायें। मैं अभी दण्ड कारण्य को जाता हूँ। राम की बात सुनकर कैकयी बहुत प्रसन्न हुई और बोली -'राम! तुम ठीक कहते हो, ऐसा ही होना चाहिये। भरत को मामा के यहां से बुलाने के लिये तेज चलने वाले घोड़ों पर सवार होकर दूत तो जायेंगे ही, किन्तु तुम बन में जाने के लिये विशेष उत्सुक जान पड़ते हो। अतः तुम्हारा विलम्ब करना मैं ठीक नहीं समझती। तुम जितना शीघ्र हो सके बन को चले जाओ।

उस समय राम ने राजा को उठा कर बैठा दिया और कैकेयी से कहा—देवि! मैं धनका उपासक हो कर संसार में नहीं रहना चाहता, तुम विश्वास रक्खो। मैंने भी ऋषियों की ही भांति निर्मल धर्म का आश्रय ले रक्खा है। पूज्य पिता जी का जो भी प्रिय कार्य मैं कर सकता हूँ उसे प्राण देकर भी करूँगा। उसे तुम मेरे द्वारा किया हुआ ही जानो। यद्यपि पिता जी ने मुझ से स्वयं कुछ नहीं कहा है, तथापि मैं तुम्हारे ही कहने से चौदह वर्षों तक निर्जन वन में निवास करूँगा। कैकेयी! तुम्हारा मुझ पर पूरा अधिकार है—मैं तुम्हारी हर एक आज्ञा का पालन कर सकता हूँ, फिर भी तुमने स्वयं न कह कर इस कार्य के लिये पिता जी को कष्ट दिया। इससे जान पड़ता है तुम मुझ में कोई गुण नहीं देखती। अच्छा, अब मैं माता कौसल्या से पूछ लूँ और सीता को समझा-बुझा लूँ। उस के बाद आज ही घोर दण्ड कारण्य की यात्रा करुंगा। तुम ऐसा प्रयत्न करना, जिससे भरत इस राज्य का पालन और पिता जी की सेवा करते रहें, क्योंकि यही सनातन धर्म है। राम की बात सुनकर पिता को बहुत दुःख हुआ, वे शोक आवेग से कुछ बोल न सके, फूट-फूट कर रोने लगे। राम ने अचेत पड़े हुए पिता के चरणों पर मस्तक रखा और कैकेयी को भी प्रणाम किया, फिर पिता और कैकेयी की प्रदक्षिणा करके वे उस अन्तः पुरसे बाहर निकले और अपने मित्रों से मिले। सुमित्राकुमार लक्ष्मण इस अन्याय को देख कर अत्यन्त क्रोध में भर गये थे। वे दोनों आँखों से आँसू बहाते हुए चुपचाप श्री रामचन्द्र जी के पीछे-पीछे चले गये। श्री राम के हृदय में अब वन जाने की आकांक्षा का उदय हो गया था, अतः अभिषेक के लिये रखी हुई सामग्रियों की प्रदक्षिणा करते हुए वे धीरे-धीरे आगे बढ़ गये। उनकी ओर उन्होंने दृष्टि तक नहीं डाली। उस समय राज्य का न मिलना लोक-कमनीय राम की शोभा में कोई अन्तर न डाल सका।

वे बन में जाने को तैयार थे और सारी पृथ्वी का राज्य छोड़ रहे थे, फिर भी उन के चित्त में लोकातीत जीवन्मुक्त महात्मा की भांति कोई विकार नहीं देखा गया। श्री राम ने छत्र लगानें वाले को मना कर दिया, चवंर डलाने वालों को भी रोक दिया, रथ को लौटा दिया और परिजनों तथा पुरवासी मनुष्यों को भी विदा कर दिया तथा अपने मन को स्थिर करके माता को यह अप्रिय समाचार सुनाने के लिये उनके महल में प्रवेश किया। जो लोग सदा सत्यवादी राम के निकट रहा करते थे, उन्होंने उन के मुख पर किसी प्रकार के विकार का चिन्ह नहीं देखा। श्री राम ने अपनी स्वाभाविक प्रसन्नता नहीं छोड़ी थी।

जानकी और लक्ष्मण के सहित श्री रामचन्द्र जी को मार्ग में आते देख और कैकेयी के वरदानादि का समाचार सुन समस्त नगरवासी दुःखातुर होकर आपस में कहने लगे—'हाय! कामवश राजा दशरथ ने अपने सत्यपरायण प्रिय पुत्रको स्त्री के कारण छोड़ दिया! उसकी सत्यपरायणता कैसे रही? और दुष्टा कैकेयी ने भी सत्यवादी और प्रियकारी राम को वनवास दिया? वह ऐसी क्रूरकर्मा और हतबुद्धि क्यों हो गयी? भाइयो! अब हमें यहां न रहना चाहिये, हम भी आज ही वन को चलेंगे, जहाँ स्त्री और छोटे भाई के सहित श्री राम जाना चाहते हैं। देखो तो आज जानकी जी पैदल चल रही हैं। हाय! जिस त्रिलोक सुन्दरी जानकी को पहले कभी किसी पुरुष ने शायद ही देखा हो, वही आज बिना किसी परदे के जन समूह में पैदल चल रही हैं। भाइयो! इन सर्वलोकसुन्दर भगवान् राम की ओर भी देखो, ये भी आज बिना हाथी-घोड़े के पैदल ही जा रहे हैं। यह कैकेयी नाम की राक्षसी सबका नाश करने के लिये उत्पन्न हुई हैं। भाई! इन सीता जी के पैदल चलने से राम जी को भी तो बड़ा दुःख होता होगा। किन्तु किया क्या जाय? इसमें दैव ही प्रबल है. पुरुष का प्रयत्न सर्वथा असमर्थ है।''

इस प्रकार साधु समाज को दुःखातुर देख मुनिवर वामदेव उनके बीच में आकर कहने लगे—"मैं आप लोगों को वास्तविक बात बताता हूँ, आप इन राम और सीता के लिये किसी प्रकार की चिन्ता न करें।

एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता॥
असौ शेषस्तमन्वेति लक्ष्मणाख्यश्च साम्प्रतम्।
एब मायागुणैर्युक्तस्तदाकारवानिव॥

ये राम आदिनारायण भगवान् विष्णु हैं और ये जानकी जी भी योगमाया नामसे श्री लक्ष्मी जी हैं। इस समय जो लक्ष्मण नाम धारण कर इनका अनुगमन कर रहे हैं, ये शेष जी हैं। ये पुरुषोत्तम भगवान् ही माया के गुणों से युक्त होकर विभिन्न आकार वाले से प्रतीत हुआ करते हैं। रजोगुण से युक्त होकर ये ही विश्वरचयिता ब्रह्मा जी हुए हैं और सत्व गुण विशिष्ट होने पर ये ही त्रिलोक रक्षक भगवान् विष्णु होते हैं। तथा कल्पान्त में तमोगुण का आश्रय ले कर ये ही जगत् का प्रलय करने वाले रुद्र होते हैं। पूर्वकाल में इन्हीं रघुनाथ जी ने मत्स्यरूप होकर अपने भक्त वैवस्वत मनुको नाव में बैठकर प्रलय काल के समय उनकी रक्षा की थी। समुद्र-मन्थन के समय, जब मन्दराचल पाताललोक को जाने लगा, तब इन्हीं रघुनाथ जीने कूर्मरूप होकर उसे अपनी पीठ पर धारण किया था। प्रलयकाल में जब पृथ्वी रसातल को

चली गई तो ये शूकर रूप हुए और उस पृथ्वी को अपनी दाढ़ों पर उठा लिया। इसी प्रकार एक बार प्रह्लाद को वर देने के लिए इन्होंने नृसिंहरूप धारण किया और तीनों लोकों के कण्टकरूप दैत्यराज हिरण्यकशिपु को अपने नखों से फाड़ डाला। एक बार अपने पुत्र इन्द्र का राज्य गया हुआ देख जब अदिति ने इन से प्रार्थना की तब इन्होंने वामनरूप धारण कर याचना करके उसे फिर लौटा लिया। इन्होंने पृथ्वी के भाररूप दुष्ट क्षत्रियगणों को नष्ट करने के लिये भृगुपुत्र परशुराम का रूप धारण किया था। वे ही जगत्प्रभु इस समय राम रुप से प्रकट हुए हैं, अब ये रावण आदि करोड़ों राक्षसों का वध करेंगे। उस दुरात्मा की मृत्यु मनुष्य के हाथ ही बदी है। महाराज दशरथ ने अपने पूर्वजन्म में तपस्या द्वारा भगवान् विष्णु की इस लिये अराधना की थी कि वे उनके यहां पुत्र-रूप से अवतार लें, इसीलिये भगवान् इनके पुत्र हुए हैं। वे विष्णु भगवान् ही रामचन्द्र जी हैं। अब ये रावण के वध के लिये आज ही लक्ष्मण-सहित वन को जायेंगे। ये सीता जी जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करने वाली साक्षात् भगवान् की माया है। इनके वन-गमन में राजा या कैकयी अणुमात्र भी कारण नहीं हैं। कल ही इन से नारद जी ने पृथ्वी का भार उतारने के लिये प्रार्थना की थी। उस समय स्वयं राम ने भी उन से यही कहा था कि कल मैं वन को जाऊँगा। अतः भोले भाइयो! आप लोग राम के लिये कोई चिन्ता न करें।

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा।
मुदित मातु पद नायउ माथा।।
बार बार मुख चुंबति माता।
नयन नेह जलु पुलकित गाता।।
धरम धुरीन धरम गति जानी।
कहेउ मातु सन अति मृदु बानी।।
पितां दीन्ह मोहि कानन राजू।
जहँ सब भांति मोर बड़ काजू।।
आयसु देहि मुदित मन माता।
जेहिं मुद मंगल कानन जाता।।
बरष चारिदस बिपिन बसि करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहउँ मनु जनि करसि मलान।।
सरल सुभाउ राम महतारी।
बोली बचन धीर धरि भारी।।
तात जाऊँ बलि कीन्हेह नीका।
पितु आयसु सब धरमक टीका।।
राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु।।
जौं केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाह जानि बड़ी माता।।
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना।
तौ कानन सत अवध समाना।।
बड़ भागी बनु अवध अभागी।
जो रघुवंसतिलक तुम्ह त्यागी।।

उस दिन देवी कौसल्या पुत्र की मंगल-कामना से एकाग्रचित्त हो सवेरे ही भगवान् विष्णु की पूजा में लगी थीं और मांगलिक कार्य पूरा करके मन्त्रयुक्त अग्नि-होत्र करा रही थीं। राम ने माता के मनोहर अन्तःपुर में प्रवेश करके देखा, वे जलसे देवता का तर्पन करती ऋत्विजों के द्वारा अग्नि में हवन करा रही हैं। अपने आनन्द बढ़ाने वाले प्रिय पुत्र को बहुत देर के बाद सामने उपस्थित देख माता कौसल्या झपट कर उनकी ओर चली। राम ने निकट आई हुई माता के चरणों में प्रणाम किया और माता कौसल्या ने उन्हें दोनों भुजाओं से कसकर छाती से लगा लिया और बड़े प्यार से उनका मस्तक सूंघा। फिर वे स्नेह वश प्रिय एवं हितकर बात

करने लगी —बेटा ! तुम्हारे धर्मात्मा पिता आज ही तुम्हें युवराज के पद पर अभिषिक्त करेंगे ।' यह कह कर माता ने बैठने के लिये उत्तम आसन दिया और भोजन करने को कहा। श्री राम चन्द्र जी स्वभाव से ही विनीत थे। उन्होंने माता का गौरव रखने के लिये उनके दिये हुए आसन का हाथ से स्पर्श मात्र कर लिया। फिर दोनों हाथ जोड़ कर दण्डकारण्य की ओर जाने के सम्बन्ध में आज्ञा लेने के लिये इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'माँ ! शायद तुम्हें मालूम नहीं है। अब मुझे ऐसे उत्तम आसनों की आवश्यकता नहीं रही। मेरे लिये कुश की चटाई पर बैठने का समय आया है। महाराज युवराज का पद भरत को दे रहे हैं और मुझे तपस्वी के वेष में दण्डकारण्य भेजते हैं; अतः अब मैं चौदह वर्षों तक उस निर्जन वन में निवास करूँगा और जंगल में सुलभता से मिलने वाले वल्कल आदि को धारण करके फल-मूल के आहार से ही जीवन निर्वाह करूँगा।'

तब लक्ष्मण अत्यन्त दुखी होकर उस समय के योग्य बचन बोले—'आर्ये ! मुझे भी यह अच्छा नहीं लगता कि श्री राम चन्द्र राज्य-लक्ष्मी का परित्याग करके वन में जायें। महां राज श्री इस समय स्त्री की बात में आ गये हैं। बढ़े होने के कारण उनकी बुद्धि उल्टी हो गई हैं, अतः काम के वश में होकर वे कैकयी की प्रेरणा से क्या नहीं कह सकते ? मैं तो ऐसा कोई अपराध या दोष नहीं देखता, जिस के कारण श्री राम को राज्य से निकाल कर वन में रहने के लिये विवश किया जाए। संसार में एक भी मनुष्य ऐसा नहीं दिखाई देता, जो परोक्ष में भी उनका कोई दोष बतलाता हो। धर्म पर दृष्टि रखने वाला ऐसा कौन राजा होगा जो देवता के समान सरल, जितेन्द्रिय और शत्रु पर भी दया करने वाले राम जैसे पुत्र का अकारण परित्याग करेगा ? रघुनन्दन ! जब तक यह बात लोगों में फैले नहीं, तब तक आप मेरी सहायता से राज्य को अपने अधिकार में कर लें। आप स्वयं यमराज के समान हैं और जब मैं धनुष लिये आप के पास रह कर आप की रक्षा करूँगा, उस समय ऐसा कौन है जो आप से बढ़ कर पौरुष दिखाने का साहस कर सके ? यदि नगर के लोग विरोध में खड़े होंगे, तो मैं अपने तीखे बाणों से सारी अयोध्या को मनुष्यों से सूनी कर दूंगा। जो-जो भरत का पक्ष लेंगे, उन सब को मौत के घाट उतार दूंगा। राजा किस बल पर अथवा किस कारण से आप को न्यायतः प्राप्त यह राज्य कैकयी को देना चाहते हैं ? यदि पिता कैकयी के प्रोत्साहन देने पर उस के ऊपर सन्तुष्ट हो हमारे साथ शत्रु का सा बर्ताव करते हैं तो हमें भी मोह-ममता छोड़ कर उन्हें कैद कर लेना या मार डालना चाहिए। यदि गुरु भी अभिमान में आकर कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का ज्ञान खो बैठे और कुमार्ग पर चलने लगे तो उसे भी दण्ड देना आवश्यक हो जाता है। देवि ! मैं सत्य, धनुष, दान तथा यज्ञ आदि की शपथ खा कर तुमसे हृदय की सच्ची बात कहता हूँ कि मेरा पूज्य भ्राता श्री राम के चरणों में हार्दिक अनुराग है। आप विश्वास रक्खें—यदि राम जलती हुई आग में या घोर जंगल में प्रवेश करने वाले हों तो मैं उन से भी पहले उस में प्रविष्ट हो जाऊंगा। इस समय आप और राम चन्द्र जी मेरे पराक्रम को देखें। जैसे सूर्य उदय हो कर अन्धकार का नाश कर देता है, उसी प्रकार मैं भी अपनी शक्ति से आप के दुःख दूर कर दूंगा।'

लक्ष्मण द्वारा ऐसा कहने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ श्री राम जी ने लक्ष्मण से कहा—'सुमित्रा-नन्दन मेरे प्रति जो तुम्हारा अत्यन्त उत्तम प्रेम है, उसे मैं जानता हूं। तुम्हारे पराक्रम, धैर्य और दुर्घर्ष तेज से भी मैं अपरिचित नहीं हूं ! शुभलक्षण ! मेरी माता को जो महान् दुःख हो रहा है, यह सत्य और शम के विषय में मेरा अभिप्राय न समझने के कारण है। संसार में धर्म ही सब से श्रेष्ठ है। धर्म में ही सत्य की प्रतिष्ठा है। पिता जी का यह वचन भी धर्म से युक्त होने के कारण श्रेष्ठ है। धर्म का आश्रय ले कर रहने वाले पुरुष को पिता, माता अथवा ब्राह्मण के वचनों का पालन करने की प्रतिज्ञा करके उसे मिथ्या नहीं करना चाहिये; अतः मैं पिता जी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता। क्योंकि पिता जी के कहने से कैकयी ने मुझे वन जाने की आज्ञा दी है। इस लिए केवल क्षत्रिय धर्म का अवलम्बन करने वाली इस ओछी बुद्धि का त्याग करो। धर्म का आश्रय लो और मेरे विचार के अनुसार चलो।'

"रघुश्रेष्ठ ! तुम बड़े शूरवीर और मेरे परम हितकारी हो। तुम जो कुछ कहते हो वह मैं सब सत्य मानता हूं, किन्तु यह उसका समय नहीं हैं। यह जो कुछ राज्य और देह आदि दिखाई देता है वह सब यदि सत्य होता तो अवश्य तुम्हारा परिश्रम सफल होता किन्तु ये भोग तो मेघरूपी वितान में चमकती हुई बिजली के समान चंचल हैं और आयु अग्नि में तपाये हुए लोहे पर पड़ी हुई जल की बूंद के समान क्षणिक है। जिस प्रकार सर्प के मुंह में पड़ा हुआ भी मेढक मच्छरों को ताकता रहता है उसी प्रकार लोग कालरूप सर्प से ग्रस्त हुए भी अनित्य भोगों को चाहते रहते हैं।

करोति दुःखेन हि कर्मतन्त्रं
शरीरभोगार्थमहर्निशं नरः।
देहस्तु भिन्नः पुरुषात्समीक्ष्यते
को वात्र भोगः पुरुषेण भुज्यते ॥
पितृमातृसुतभ्रातृदारबन्धवादिसंगमः ।
प्रपायामिव जन्तूनां नद्यां काष्ठौघवच्चजः
छायेव लक्ष्मीश्चपला प्रतीता
तारुण्यमम्बुर्मिवदध्रुवं स्मृतं ।
स्वप्नोपमं स्त्रीसुखमायुरल्पं
तथापि जन्तोरभिमान एषः ॥

कैसा आश्चर्य है कि शरीर के भोगों के लिये ही मनुष्य रात-दिन अति कष्ट सहकर नाना प्रकार की क्रियायें करता रहता है। यदि यह समझ ले कि शरीर आत्मा से भिन्न है तो फिर भला पुरुष कैसे किसी भोग को भोग सकता है ! पिता, माता, पुत्र, भाई, स्त्री और बन्धु-बान्धवों का संयोग प्याऊ पर एकत्रित हुए जीवों अथवा नदी-प्रवाह से इकट्ठी हुई लकड़ियों के समान चंचल है। निःसन्देह दिखाई पड़ता है कि लक्ष्मी छाया के समान चंचल, यौवन जल-तरंग के समान अनित्य है, स्त्री-सुख स्वप्न के समान मिथ्या और आयु अत्यन्त अल्प है तथापि प्राणियों का इन में कितना अभिमान है। यह संसार सदा रोगादि संबुल तथा स्वप्न और गन्धर्वनगर के समान मिथ्या है, मूढ़-जन ही इसको सत्य मान कर इसका अनुकरण करते हैं। नित्य सूर्य के उदय और अस्त होने से आयु छीण हो रही है—तथा नित्य हो दूसरों को वृद्धा-वस्था और मृत्यु होती देखी जाती है तो भी मढ़ पुरुष को किसी प्रकार चेत नहीं होता। नित्यप्रति उसी प्रकार दिन और रात होते हैं, किन्तु मूढ़मति पुरुष भोगों के पीछे ही दौड़ता है, काल की गति को नहीं देखता। कच्चे घड़े

में भरे हुए जल के समान आयु प्रतिक्षण क्षीण हो रही है और रोग-समूह शत्रुओं के समान शरीर को नष्ट करते हैं। वृद्धावस्था सिंहिनी के समान डराती हुई सामने खड़ी है और यह मृत्यु भी उसके साथ ही चलती हुई अन्त समय की प्रतीक्षा कर रही है। किन्तु देह में अहं भावना करने वाला जीव इस कृमि, विष्ठा और भस्मरूप शरीर को ही 'मैं लोक-प्रसिद्ध राजा हूं' ऐसा मानता है। हे लक्ष्मण ! तुम कुछ सोचकर बताओ कि जिसके आश्रय से तुम संसार को दग्ध करना चाहते हो वह त्वचा, अस्थि, मांस, विष्ठा, मूत्र, शुक्र और रुधिर आदि से बना हुआ विकारी और परिणामी देह आत्मा किस प्रकार हो सकता है ? हे भाई ! इस देहाभिमान से युक्त पुरुष में ही सम्पूर्ण दोष प्रकट हुआ करते हैं। 'मैं देह हूं' इस बुद्धि का नाम ही अविद्या है और 'मैं देह नहीं, चेतन आत्मा हूं, इसी को विद्या कहते हैं। अविद्या जन्म-मरणरूप संसार की कारण है और विद्या उसको निवृत करने वाली है,अतः मोक्षकामियों को सदा विद्योपार्जन का प्रयत्न करना चाहिये। हे शत्रु-दमन ! काम-क्रोध आदि इस साधना में विघ्न करने वाले शत्रु हैं। उनमें भी मोक्ष में विघ्न उपस्थित करने के लिए तो एकमात्र क्रोध ही पर्याप्त है, जिसका आवेश होने से पुरुष पिता माता, सुहृद् और बन्धुओं का भी वध कर डालता है। मनके सन्तापका मूल क्रोध ही है और क्रोध ही संसार का बन्धन तथा धर्मका क्षय करने वाला है। इसलिये तुम क्रोध को छोड़ दो।

क्रोधमूलो मनस्तापः क्रोधः संसारबन्धनम्।
धर्मक्षयकरः क्रोधस्तस्मात्क्रोध परित्यज।
क्रोध एष महान् शत्रुस्तृष्णा वैतरणी नदी।
सन्तोषो नन्दनवन शान्तिरेव हि कामधुक ॥

यह क्रोध महान् शत्रु है, तृष्णा वैतरणी नदी है, सन्तोष नन्दनवन है और शान्ति ही **कामधेनु** है। इसलिये तुम शान्ति धारण करो, इससे क्रोधरूपी शत्र का तुम पर प्रभाव न होगा। आत्मा देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और बुद्धि आदि से पृथक् तथा शुद्ध, स्वयंप्रकाश, अविकारी और निराकार है। जब तक मनुष्य देह, इन्द्रिय और प्राण आदि से आत्मा की भिन्नता नहीं जानते तब तक वे मृत्युपाश में बंधकर सांसारिक दुःख-समूह से पीड़ित होते रहते हैं। इसलिये तुम सर्वदा अपने हृदय में बुद्धि आदि से आत्मा को भिन्न अनुभव करो, इस सम्पूर्ण बाह्य व्यवहार का अनुवर्तन करो, और सुख अथवा दुःखरूप जैसा प्रारब्ध हो उसीको भोगते हुए चित में खेद न मानो। हे रघुपुत्र ! बाहर **से** इन्द्रिय आदि द्वारा कर्तृव्य प्रकट करते हुए जो कार्य प्रारब्धवश उपस्थित हो उसे करते रहने से तुम बन्धन में नहीं पड़ोगे। भीतर से रागद्वेषरहित और शुद्धस्वभाव रहने के कारण तुम कर्मों से लिप्त न होगे। मेरे इस सम्पूर्ण कथनपर तुम सर्वदा अपने हृदय में विचार करो। ऐसा करने से तुम सम्पूर्ण सांसारिक दुःखों से कभी बाधित न होगे। हे माता ! तुम भी मेरे इस कथन पर नित्य विचार करना और मेरे फिर मिलने की प्रतीक्षा करती रहना। तुम्हें अधिक काल दुःख न होगा। कर्मबन्धन में बंधे हुए जीवों का सदा एक ही साथ रहना सहना नहीं हुआ करता। जैसे नदी के प्रवाह में पड़कर बहती हुई डोंगियां सदा साथ-साथ ही नहीं चलती। माता ! यह चौदह वर्ष की अवधि आधे क्षण के समान बीत जायेगी। आप अब दुःख को दूर करके हमें वन जाने की अनुमति दीजिये। आपके ऐसा करने से मैं वन में सुख पूर्वक रह सकूंगा।

ऐसा कह श्रीराम चन्द्र जी बहुत देर तक दण्ड के समान माता के चरणों में पड़े रहे। तदनन्तर माता ने उन्हें उठाकर गोद में बैठा लिया और आशीर्वाद देकर उनकी प्रशंसा की। वे बोली—"तुम्हारे चलते, बैठते अथवा सोते समय गन्धर्वोंसहित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिक सम्पूर्ण देवगण तुम्हारी सर्वदा रक्षा करें"।

सर्वे देवाः सगन्धर्वा ब्रह्माविष्णुशिवादयः ।
रक्षन्तु त्वां सदा यान्तं तिष्ठन्त निश्यायुतम् ।
येभ्यः प्रणमसे पुत्र देवेष्वायतनेषु च ।
ते च त्वामभिरक्षन्तु वने सह महर्षिभिः ।
यानि दत्तानि तेऽस्त्राणि विश्वामित्रेण धीमता ।
तानि त्वामभिरक्षन्तु गुणैः समुदितं सदा ॥
पितृशुश्रषया पुत्र मातृशुश्रूषया तथा ।
सत्येन च महाबाहो चिरं जीवाभिरक्षितः ॥
समित्कुशपवित्राणि वेद्यश्चायतनानि च ।
स्थण्डिलानि च विप्राणां शैला वृक्षाः क्षुपा ह्रदाः
पतङ्गाः पन्नगाः सिंहास्त्वां रक्षन्तु नरोत्तम ॥
स्वस्ति साध्याश्च विश्वे च मरुतश्च महर्षिभिः ।
स्वस्ति धाता विधाता च स्वस्ति पूषा भगोऽर्यमा ॥
लोकपालाश्च ते सर्वे वासवप्रमुखास्तथा ।
ऋतवः षट् च ते सर्वे मासाः संवत्सराः क्षपाः ॥
दिनानि च मुहूर्ताश्च स्वस्ति कुर्वन्तु ते सदा ।
श्रुतिः स्मृतिश्च धर्मश्च पातु त्वां पुत्र सर्वतः ॥
स्कन्दश्च भगवान् देवः सोमश्च सबृहस्पतिः ।
सप्तर्षयो नारदश्च ते त्वां रक्षन्तु सर्वतः ॥
ते चापि सर्वतः सिद्धा दिशश्च सदिगीश्वराः ।
स्तुता मया वने तस्मिन् पान्तुं पुत्र त्व नित्यशः ॥
शैलाः सर्वे समुद्राश्च राजा वरुण एव च ।
द्यौरन्तरिक्षं पृथिवी वायुश्च सचराचरः ॥
नक्षत्राणि च सर्वाणि ग्रहाश्च सह दैवतैः ।
अहोरात्रे तथा संध्ये पान्तु त्वाँ बनमाश्रितम् ॥
ऋतवश्चापि षट् चान्ये मासाः संवत्सरास्तथा ।
कलाश्च काष्टाश्च तथा तव शर्म दिशन्तु ते ॥
महावनेऽपि चरतो मुनिवेषस्य धीमतः ।
तथा देवाश्च दैत्याश्च भवन्तु सुखदाः सदा ॥
राक्षसानां पिशाचानां रौद्राणां क्रूरकर्मणाम् ।
क्रव्यादीनां च सर्वेषां मा भूत पुत्रक ते भयम् ॥
आगमास्ते शिवाः सन्तु सिध्यन्तु च पराक्रमाः ।
सर्वसम्पत्तयो राम स्वस्तिमान् गच्छ पत्रक ॥
स्वस्ति तेऽस्त्वान्तरिक्षेभ्यः पार्थिवेभ्यः पनः पुनः ।
सर्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो ये च ते परिपन्थिनः ॥
शुक्रः सोमश्च सूर्यश्च धनदोऽथ यमस्तथा ।
पान्तु त्वामर्चिता राम दण्डकारण्यवासिनम् ॥
अग्निर्वायुस्तथा धूमो मन्त्राश्चर्षिमुखच्युताः ।
उपस्पर्शनकाले तु पान्तु त्वां रघुनन्दन ॥
सर्वलोकप्रभुर्ब्रह्मा भूतकर्तृ तथर्षयः ।
ये च शेषाः सुरास्ते तु रक्षन्तु वनवासिनम् ॥
यन्मङ्गलं सहस्राक्षे सर्वदेवनमस्कृते ।
वृत्रनाशे समभवत् तत् ते भवतु मङ्गलम् ।
यन्मङ्गलं सुपर्णस्य विनताकल्पयत् पुरा ।
अमृतं प्रार्थयानस्य तत् ते भवतु मङ्गलम् ॥
अमृतोत्पादने दैत्यान् घ्नतो वज्रधरस्य यत् ।
अदितिर्मङ्गलं प्रादात् तत् ते भवतु मङ्गलम् ॥
त्रिविक्रमास् प्रक्रमतो विष्णोरतुलतेजसः ।
यदासीन्मङ्गलं राम तत् ते भवतु मङ्गलम् ॥

श्रीराम! तीन पगोंको बढ़ाते हुए अनुपम तेजस्वी भगवान् विष्णु के लिये जो मङ्गलाशंसा की गयी थी, वही मङ्गल तुम्हारे लिये भी प्राप्त हो।

ऋषयः सागारा द्वीपा वेदा लोका दिशश्च ते ।
मङ्गलानि महाबाहो दिशन्तु शुभमङ्गलम् ॥

महाबाहो? ऋषि, समद्र, द्वीप, वेद, समस्त लोक और दिशाएं तुम्हें मङ्गल प्रदान करें। तुम्हारा सदा शुभ मङ्गल हो।

इस प्रकार आशीर्वाद देकर विशाललोचना भामिनी कौसल्याने पुत्र के मस्तक पर अक्षत रख कर चन्दन और रोली लगायी तथा सब मनोरथों को सिद्ध करने वाली विशल्यकारी नामक शुभ ओषधि लेकर रक्षा के उद्देश्य से मन्त्र पढ़ते हुए उसको श्री राम के हाथ में बांध दिया, फिर उसमें उत्कर्ष लाने के लिये मन्त्र का जप भी किया।

इसके बाद उनके मस्तक को कुछ झुका कर यशस्विनी माताने सूंघा और बेटे को हृदय से लगाकर कहा—वत्स राम ! तुम सफल मनोरथ होकर सुखपूर्वक वन को जाओ। जब पूर्ण काम होकर रोग रहित सकुशल अयोध्या में लौटोगे, उस समय तुम्हें राज मार्ग पर स्थित देखकर सुखी हो ऊंगी।

उस समय मेरे दुःख पूर्ण संकल्प मिट जायंगे, मुख पर हर्ष जनित उल्लास छा जायगा और मैं वन से आये हुए तुमको पूर्णिमा की रात में उदित हुए पूर्ण चन्द्रमा की भांति देखूंगी।

श्री राम! वनवास से यहां आकर पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण करके जब तुम राज सिंहासन पर बैठोगे, उस समय मैं पुनः प्रसन्नता पूर्वक तुम्हारा दर्शन करूंगी!

अब जाओ और वनवास से यहां लौटकर राजोचित मङ्गलमय वस्त्राभूषणों से विभूषित हो तुम सदा मेरी बहु सीता की समस्त कामनाएं पूर्ण करते रहो।

रघुनन्दन ? मैंने सदा जिनका पूजन और सम्मान किया है, वे शिव आदि देवता, महर्षि, भूतगण, देवोपम, नाग और सम्पूर्ण दिशाएं—ये सब-के-सब वन में जाने पर चिरकाल तक तुम्हारे हित-साधन की कामना करते रहें।

इस प्रकार माता ने नेत्रों में अत्यन्त आंसू भर कर विधि पूर्वक वह स्वस्तिवाचन कर्म पू[illegible] किया। फिर श्री राम की परिक्रमा की औ[illegible] बारंबार उनकी ओर देखकर उन्हें छाती [illegible] गलाया।

तया हि देव्या च कृतप्रदक्षिणो।
निपीडय मातुश्च रणौ पुनः पुनः।
जगाम सीतानिलयं महायशाः
स राघवः प्रज्वलितस्तया श्रिया।

देवी कौसल्या ने जब श्री राम की प्रदक्षिणा कर ली, तब महायशस्वी रघुनाथ जी बारबार माता के चरणों को दबाकर प्रणाम करके माता को मङ्गलकामनाजनित उत्कृष्ट शोभा से सम्पन्न हो सीता जी के महलकी ओर चल दिये।

तदनन्तर सीतापति भगवान् राम सीता जी को समझाने के लिये चले और अपने महल में पहुंचे और जाते ही बोले—हे शुभे ! पिता जी ने मुझे दण्ड कारण्य का सम्पूर्ण राज्य दिया है। अतः हे भामिनि ! मैं शीघ्र ही उसका पालन करने के लिये वहां जाऊंगा। मैं आज ही वन को जाऊंगा। तुम अपनी सास के पास जाकर उनकी सेवा-शुषा में रहो। रामचन्द्र जी के ऐसे वचन सुनकर सीता जी ने प्रसन्नता पूर्वक कहा—"पहले मैं वन को जाऊंगी, उसके पीछे आप आना। हे राघव ! मुझे छोड़ कर आप को वन में जाना उचित नहीं है।

अहमग्रे गमिष्यामि वनं पश्चात्वमेष्यसि।

श्रीराम बोले, मेरी आज्ञा है. इसका पालन करना होगा। सीता बोली—जब मैं पिता के घर पर थी, मुझे ज्योतिषी ने तभी बता दिया था, मुझे पति के साथ बनों में जाना है,—ज्योतिषी की बात झूठी नहीं हो सकती। मिथिला में हमारे कुलगुरु शतानन्द ने मुझे

बताया था--मेरी पांच मातायें हैं—(१) जननी माता (२) गौमाता (३) वेदमाता (४) भारत माता (५) गंगा माता—बनों में मैं आप के साथ जाऊंगी—जननी माता से भी बड़ी माता—भारत माता की सेवा के लिये। गोस्वामी तुलसी दास द्वारा वर्णित सीता जी के सम्बन्ध में वह प्रकरण अतीव सुन्दर है। उस अमृतवाणी का थोड़ा सा रसास्वादन कर लीजिये।

तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी।
सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी॥
दिबस जात नहिं लागिहि बारा।
सुंदरि सिखवनु सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेम बस बामा।
तो तुम्ह दुखु पाउब परिनामा॥
काननु कठिन भयंकरु भारी।
घोर घामु हिम बारि बयारी॥
कुस कंटक मग कांकर नाना।
चलब पयादेहिं बिनु पदत्राना॥
चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे।
मारग अगम भूमिधर भारे॥
कंदर खोह नदीं नद नारे।
अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा।
करहिं नाद सुनि धीरजु भागा॥
भूमि सयन बलकल बसन असनु कंद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहिं सबुइ समय अनुकूल॥
नर अहार रजनीचर चरहीं।
कपट बेष बिधि कोटिक करहीं॥
हंसगवनि तुम्ह नहिं बन जोगू।
सुनु अपजसु मोहि देइहि लोगू॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी।
चंदबदनि दुखु कानन भारी॥
सहज सुहृद गुर स्वामि सिख जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर अवसि होइ हित हानि॥

उतरु न आव बिकल बैदेही।
तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं।
मो कहुं सुखद कतहुं कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदीं बिनु बारी।
तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें।
सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे।
भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना।
सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी।
करुनामय उर अंतरयामी॥
राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।
दीनबंधु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान॥
मोहि मग चलत न होइहि हारी।
छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भांति पिय सेबा करिहौं।
मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं।
करिहउं बाउ मुदित मन माहीं॥
बार बार मृदु मूरति जोही।
लागिहि तात बयारि न मोही॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू।
तुम्हहि उचित तप मो कहूं भोगू॥
ऐसेउ बचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु बिषम बियोग दुख सहिहहिं पांवर प्रान॥
अस कहि सीय बिकल भइ भारी।
बचन बियोगु न सकी संभारी॥
देखि दसा रघुपति जियं जाना।
हठि राखें नहिं राखिहि प्राना॥

कहेउ कृपाल भानुकुलनाथा।
परिहरि सोचु चलहु बन साथा।

जिस समय श्रीराम और जनकनन्दनी सीता में इस प्रकार वार्तालाप हो रहा था, लक्ष्मण वहां पहले से ही उपस्थित थे। भाई के विरह का शोक अब जोर से उन के लिए भी असह्य हो उठा। उन्होंने श्रीरामचन्द्र जी के दोनों पैर पकड़ लिए और यशस्विनी सीता और महान् व्रत का पालन करने वाले श्रीराम से कहा--आर्य ! यदि आपने बन में जाने का निश्चय कर ही लिया है, तो मैं भी धनुष-बान ले कर आपके आगे चलूंगा। आपके बिना मैं स्वर्ग में जाना, अमर होना तथा सम्पूर्ण लोकों का एश्वर्य प्राप्त करना भी नहीं चाहता।' यह सुन कर श्रीराम ने अनेकों सांत्वनापूर्ण वचनों से लक्ष्मण को समझाया और उन्हें बन में जाने से रोका। तब लक्ष्मण ने कहा—भैया आपने तो पहले ही से मुझे अपने साथ रहने की आज्ञा दे रखी है, फिर इस समय मुझे क्यों रोकते हो।

लक्ष्मण की इस बात से श्रीरामचन्द्र जी को बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्हों ने कहा—'सुमित्रानन्दन ! जाओ ! माता आदि सभी सुहृदों से चलने की आज्ञा ले लो। राजा जनक के महान् यज्ञ में स्वयं महात्मा वरुण ने उन्हें दो दिव्य धनुष दिये थे, जो देखने में बड़े भयंकर हैं, साथ ही दो अभेद्य कवच, दो तरकस जिसके वाण कभी समाप्त नहीं होते, और सूर्य की तरह देदीप्यमान दो खड्ग जिनकी मूठ पर सोना मढ़ा हुआ है, वे सब आचार्य वसिष्ठ के घर में सम्भाल कर रखे हुए हैं, उन सब को शीघ्र ले आओ।

करुनासिन्धु सुबन्धु के सुनि मृदु बचन विनीत।
समुझाए उर लाई प्रभु जानि सनेहँ सभीत।।

मागहु बिदा मातु सन जाई।
आवहु बेगि चलहु बन भाई।।
मुदित भए सुनि रघुवर बानी।
भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी।।
हरषित हृदय मातु पहिं आए।
मनहुं अन्ध फिरि लोचन पाए।।
धीरजु धरेउ कुअवसर जानी।
सहज सुहृद बोली मृदु बानी।।
तात तुम्हारी मातु वैदेही।
पिता रामु सब भाँति सनेही।।
अवध तहाँ जहं राम निवासु।
तहंइं दिवसु जहं भानु प्रकासू।।
जौं पै सीय रामु बन जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं।।
गुर पितु मातु बन्धु सुर साईं।
सेइअहिं सकल प्रान की नाईं।।
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के।
स्वारथ रहित सखा सबही के।।
अस जियँ जानि संग बन जाहू।
लेहू तात जग जीवन लाहू।।
पुत्रवती जुवती जग सोई।
रघुपति भगतु जासु सुतु होई।।
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी।
रामविमुख सुत तें हित जानि।।
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं।।
सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू।
राम सीय पद सहज सनेहू।।
तुम्ह कहं बन सब भाँति सुपासू।
संग पितु मातु रामु सिय जासू।।
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू।।

राजा दशरथ एक तो सत्य के बन्धन में

बन्धे थे, दूसरे कैकेयी श्रीराम को तुरन्त बन में भेजने के लिये बाध्य कर रही थी, इस अवस्था में वे आर्त भाव से रोकर अपने प्यारे पुत्र राम से बोले—पुत्र ! तुम कल्याण के लिए, वृद्धि के लिये और फिर लौट आने के लिये शान्त भाव से जाओ, तुम्हारा मार्ग विघ्न बाधाओं से रहित और निर्भय हो। रघुनन्दन ! तुम सर्वथा दुष्कर कार्य कर रहे हो, मेरा प्रिय करने के लिये ही तुमने इस प्रकार बन में रहने का निश्चय किया है, किन्तु मैं सत्य की शपथ खा कर कहता हूं—मुझे तुम्हारा बन में जाना अच्छा नहीं लगता, कुलोचित आचार पर पानी फेर देने वाली इस कैकयी ने मुझे वरदान के लिए प्रेरित करके मेरे साथ बहुत बड़ा धोखा किया है। तुम अपने पिता को सत्यवादी बनाना चाहते हो, तुम्हारे लिए यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि तुम गुण और अवस्था दोनों ही दृष्टियों में मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो।

शोकाकुल पिता की यह बात सुनकर लक्ष्मण सहित श्रीराम ने कहा—'महाराज ! आप प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से पालिए। मैं राज्य, सुख, पृथ्वी, भोग सामग्री, स्वर्ग, तथा इस जीवन की भी इच्छा नहीं रखता। मेरे मन में यदि कोई इच्छा है तो यही कि आप सत्यवादी बनें, आप का वचन मिथ्या न होने पावे। अब मैं एक क्षण भी यहां रुक नहीं सकता। पिता देवताओं के भी देवता माने गए हैं, अतः मैं पिता की आज्ञा का पालन करूंगा।

तात ! अब यह सन्ताप छोड़िए, चौदह वर्ष बीतने पर फिर मुझे देख सकेंगे। आप तो सब पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। यहां जितने लोग आंसू बहा रहे हैं, इन सबको धैर्य बंधाना आपका कर्त्तव्य है। फिर आप स्वयं इतने व्याकुल कैसे हो रहे हैं ? अब मैं दीर्घ काल तक वन में निवास करने के लिए यात्रा करता हूं। आपकी सत्पुरुषों द्वारा अनुमोदित आज्ञा का पालन करने में मेरा मन जैसा लगता है वैसा बड़े-बड़े भोगों में तथा अपने किसी प्रिय पदार्थ में भी नहीं लगता। अतः मेरे लिए आपके मन में जो दुःख है, उसे दूर कर दीजिए। आपको मिथ्यावादी बना कर अक्षय राज्य, सब प्रकार के भोग के सुधाका अधिपत्य, मिथिलेश कुमारी सीता अन्य किसी अभिलाषित पदार्थं को भी मैं स्वीकार नहीं कर सकता। मेरी एक मात्र इच्छा यही है कि आपकी प्रतिज्ञा सत्य हो। वन में प्रवेश करके फल मूल का भोजन करूंगा और पर्वतों, नदियों, सरोवरों तथा विचित्र-विचित्र वृक्षों को देख कर सुखी होऊँगा। इस लिए आप अपने मन को शान्त कीजिए।'

राम के ऐसा कहने पर राजा ने दुःख और सन्ताप से पीड़ित हो उन्हें छाती से लगाया और फिर अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

उस समय माता कौशल्या के दुःख का पारावार न था। कौशल्या को धीरज देती हुई सुमित्रा बोली—

माता सुमित्रा

रामायण में माता सुमित्रा का चरित्र अपने में एक विशेषता लिये है। कुछ लोगों का यह विचार है कि माता सुमित्रा एक महान् राजनीतिज्ञ थी, उस ने अपना एक पुत्र राम के साथ लगा दिया, दूसरा पुत्र भरत के साथ,—राजा कोई भी बने, प्रैक्टीकली शासन सूत्र या तो लक्ष्मण के हाथ में होगा अथवा शत्रुघ्न के। परन्तु यह तो मानना ही होगा, माता सुमित्रा के रोम-रोम में देश भक्ति, साहस, तेज, वीरत्व का संचार था। पुत्र के वनवास चलते समय

कौशल्या शोक संतप्त हुई, सुमित्रा का पुत्र भी जा रहा था, परन्तु सुमित्रा शोक से अधीर नहीं हुई।

राम-माता को सान्त्वना देते समय सुमित्रा ने जो शब्द कहें, वे मनन योग्य हैं।

नारियों में श्रेष्ठ कौसल्या को इस प्रकार विलाप करती देख धर्म परायना सुमित्रा यह धर्म युक्त बात बोली—आर्ये ? तुम्हारे पुत्र श्री राम उत्तम गुणों से युक्त और पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। उनके लिये इस प्रकार विलाप करना और दीनता पूर्वक रोना व्यर्थ है, इस तरह रोने धोने से क्या लाभ ! बहिन, जो राज्य छोड़कर अपने महात्मा पिता को भली भांति सत्यवादी बनाने के लिये वन में चले गये हैं, वे तुम्हारे महाबली श्रेष्ठ पुत्र श्री राम उस उत्तम धर्म में स्थित थे, जिस का सत्पुरुषों ने सर्वदा और सम्यक् प्रकार से पालन किया है तथा जो परलोक में भी सुखमय फल प्रदान करने वाला है। ऐसे धर्मात्मा के लिये कदापि शोक नहीं करना चाहिये। जो प्रभु संसार म अपनी कीर्तिमयी पताका फहराते हैं और सदा सत्य व्रत के पालन में तत्पर रहते हैं, उन धर्म स्वरूप तुम्हारे पुत्र श्री राम को कौन सा श्रेय प्राप्त नहीं हुआ है। श्री राम की पवित्रता और उत्तम माहात्म्य को जानकर निश्चय ही सूर्य अपनी किरनों द्वारा उनके शरीर को संतप्त नहीं कर सकते। सभी समयों में वनों से निकली हुई उचित सरदी और गरमी से युक्त सुखद एवं मंगलमय वायु श्री रघुनाथ जी की सेवा करेगी। रात्रि काल में धूप का कष्ट दूर करने वाले शीतल चन्द्रमा सोते हुए निष्पाप श्री राम का अपने किरण रूपी करों से आलिंगन और स्पर्श करके उन्हें आशीर्वाद प्रदान करेंगे। वे पुरुष सिंह श्री राम बड़े शूरवीर हैं। वे अपने ही बाहुबल का आश्रय लेकर जैसे महल में रहते थे उसी तरह वन में भी निडर होकर रहेंगे।

सर्यस्यापि भवेद् सर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभो प्रभुः।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा
दैवतं देवतानां च भूतानां भूतसत्तमः।
तस्य के ह्यगुणा देवि वने वाप्यथवा पुरे ॥

देवि ! श्री सूर्य के भी सूर्य (प्रकाशक) और अग्नि के भी अग्नि (दाहक) हैं। वे प्रभु के भी प्रभु लक्ष्मी की भी उत्तम लक्ष्मी और क्षमा की भी क्षमा हैं ! इतना ही नहीं—वे देवताओं के भी देवता तथा भूतों के भी उत्तम भूत है ! वे वन में रहें या नगर में उनके लिये कौन से चराचर प्राणी दोषावह हो सकते हैं। पुरुष शिरोमणि श्री राम शीघ्र ही पृथ्वी, सीता और लक्ष्मी इन तीनों के साथ राज्य पर अभिषिक्त होंगे। जिनको नगर से निकलते देख अयोध्या का सारा जन समुदाय शोक के वेग से आहत हो नेत्रों से दुःख के आँसू बहा रहा है। कुश और चीर धारण करके वन को जाते हुए जिन अपराजित नित्य विजयी वीर के पीछे पीछे सीता के रूप में साक्षात् लक्ष्मी ही गयी है, उनके लिये क्या दुर्लभ है ?

धनुर्ग्रहवरो यस्य बाणखड्गास्त्रभृत् स्वयम्।
लक्ष्मणो व्रजति ह्यग्रे तस्य किं नाम दुर्लभम् ॥

जिनके आगे में धनुर्धारियों में श्रेष्ठ लक्ष्मण स्वयं वाण और खड्ग आदि अस्त्र लिये जा रहें हैं, उनके लिये जगत् में कौन सी वस्तु दुर्लभ है ?

निवृत्तवनवासं तं द्रष्टासि पुनरागतम्।
जहि शोकं च मोहं च देवि सत्यं ब्रवीमि ते ॥

देवि ! मैं तुम से सत्य कहती हूं, तुम वनवास की अवधि पूर्ण होने पर यहां लौटे हुए

श्री राम को फिर देखोगी, इसलिये तुम शोक और मोह छोड़ दो ! कल्याणि ! अनिन्दिते ! तुम नवोदित चन्द्रमा के समान अपने पुत्र को पुनः अपने इन चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम करते देखोगी। चौदह वर्ष के पश्चात् बनों से लौटने पर राज भवन में प्रविष्ट होकर पुनः राजपद पर अभिषिक्त हुए अपने पुत्र को बड़ी भारी राज लक्ष्मी से सम्पन्न देखकर तुम शीघ्र ही अपने नेत्रों से आनन्द के आंसू बहाओगी।

मा शोको देवि दुःखं वा न रामे दृश्यतेऽशिवम् ।
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि पुत्रं त्वं ससीतं सलक्ष्मणम् ॥
नाही त्वं शोचितुं देवि यस्यास्ते राघवः सुतः ।
नहि तस्मात् परो लोके विद्यते सत्पथे स्थितः ॥

देवि ! तुम्हें शोक नहीं करना चाहिये, क्योंकि तुम्हें रघुकुल नन्दन राम जैसा बेटा मिला है। श्रीराम से बढ़कर सन्मार्ग में स्थिर रहने वाला मनुष्य संसार में दूसरा कोई नहीं है।

पुत्रस्ते वरदः क्षिप्रमयोध्यां पुनरागतः ।
कराभ्यां मृदुपीनाभ्यां चरणौ पीडयिष्यति ॥
अभिवाद्य नमस्यन्तं शूरं ससुहृदयं सुतम् ।
मुद्रास्त्रैः प्रोक्षसे पुत्रं मेघराजिरिवाचलम् ॥

जैसे मेघमाला पर्वत को नहलाती है, उसी प्रकार तुम अभिवादन करके नमस्कार करते हुए सुहृदों सहित अपने शूरवीर पुत्र का आनन्द के आंसुओं से अभिषेक करोगी।

निशम्य तल्लक्ष्मणमातृ वाक्यं
रामस्य मातुर्नरदेवपत्न्याः ।
सद्यः शरीरे विननाश शोकः
शरद्गतो मेघ इवाल्पतोयः ॥

लक्ष्मण की माता का वह वचन सुनकर महाराज दशरथ की पत्नी तथा श्रीराम की माता कौसल्या का सारा शोक उनके शरीर एवं मन में ही तत्काल विलीन हो गया, ठीक उसी तरह जैसे शरद् ऋतु का थोड़े जल वाला बादल शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो जाता है।

रामु तुरत मुनि बेषु बनाई।
चले जनक जननिहि सिरु नाई।।
सजि बन साजु समाजु सबु बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुर चरन प्रभु चले करि सबहि अचेत।।
बारहिं बार जोरि जुग पानी।
कहत राम सब सन मृदु बानी।।
सोइ सब भांति मोर हितकारी।
जेहि तें रहै भुआल सुखारी।।
मातु सकल मोरे बिरहं जेहिं न होंहि दुख दीन।
सोई उपाउ तुम्ह करेहु सब पुर जन परम प्रबीन।।
एहि बिधि राम सबहिं समुझावा।
गुर पद पदुम हरषि सिरु नावा।।
गनपति गौरी गिरीसु मनाई।
चले असीस पाइ रघुराई।।
कुसगुन लंक अवध अति सोकू।
हरष बिषाद बिबस सुरलोकू।।
चढ़ि रथ सीय सहित दोउ भाई।
चले हृदयं अवधहि सिरु नाई।।
चलत रामु लखि अवध अनाथा।
बिकल लोग सब लागे साथा।।
कृपा सिन्धु बहुबिधि समुझावहिं।
फिरहिं प्रेमबस पुनि फिरि आवहिं
लागति अवध भयावनि भारी।।
मानहुं कालराति अंधिआरी।।
सबहिं बिचारु कीन्ह मन माहीं।
राम लखन सिय बिनु सुख नाहीं।।
जहां रामु तहं सबुइ समाजू।
बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू।।
चले साथ अस मंजु बृढ़ाई।
सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।।

सत्यपराक्रमी महात्मा श्रीराम जब बन की ओर जाने लगे, उस समय उनके प्रति अनुराग रखने वाले अनेकों अयोध्यावासी वन में निवास करने के लिये उनके पीछे-पीछे चले। जिसके जल्दी लौटने की कामना की जाय, उस स्वजन को दूर तक नहीं पहुंचाना चाहिये'—इत्यादि रूप से बताए गये सुहृद धर्म के अनुसार जब राजा दशरथ बलपूर्वक लौटा दिये गये, तब भी श्रीराम के रथ के पीछे पीछे लगे हुए अयोध्या वासी अपने घर की ओर नहीं लौटे। उस समय श्रीराम ने अपनी सन्तान के समान प्रिय उन प्रजाजनों से स्नेह पूर्वक कहा—अयोध्या निवासियों का मेरे प्रति जो प्रेम और आदर है, वह मेरी ही प्रसन्नता के लिये भरत के प्रति और अधिक रूप में होना चाहिये।

इनका चरित्र बड़ा ही सुन्दर और सब का कल्याण करने वाला है। कैकयी का आनन्द वढ़ाने वाले भरत आप लोगों का यथावत् प्रिय और हित करेंगे, वे अवस्था में छोटे होने पर भी ज्ञान में बड़े हैं। पराक्रमोचित गुणों से सम्पन्न होने पर भी स्वभाव के बड़े कोमल हैं। वे मुझ से भी अधिक राजोचित गुणों से युक्त हैं, इसी लिये महाराज श्री ने उन्हें युवराज बनाने का निश्चय किया है, अतः आप लोगों को अपने स्वामी भरत का आज्ञा का सदा पालन करना चाहिए।

उस रात सभी लोग तमसा नदी तक पहुंच गये। रात वहां सभी ने विश्राम करना था—श्रीराम को वृद्ध माता-पिता का दुःख बहुत दुखी कर रहा था—लक्ष्मण से बोले, रघुनाथ! परन्तु भरत बड़े धर्मात्मा हैं—अवश्य ही वे मेरी माता को सान्त्वना देंगे। महावाहो जब मैं भरत के कोमल स्वभाव का बार-बार स्मरण करता हूं, तब मुझे माता-पिता के लिये अधिक चिन्ता नहीं होती।

नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! तुमने मेरे साथ आकर बड़ा ही महत्त्वपूर्ण कार्य किया है, क्योंकि तुम न आते तो सीता को मुझे सदैव चिन्ता रहती। सुमित्रानन्दन! यद्यपि यहां नाना प्रकार के जंगली फल मूल मिल सकते हैं तथापि आज की यह रात मैं केवल जल पीकर ही बिताऊंगा, यही मुझे अच्छा जान पड़ता है,—सुमन्त्र और लक्ष्मण तमसा के किनारे श्रीराम के गुणों की चर्चा करते हुए रात भर जागते रहे। इतने में सूर्योदय का समय निकट आ गया श्रीराम बोले, लक्ष्मण! हमें इसी समय आगे चल देना चाहिये। ये अयोध्यावासी जाग उठेंगे, हमारा पीछा नहीं छोड़ेंगे। बहुत अच्छा कहते सुमन्त्र ने रथ हांका। चलते-चलते रथ गंगा जी के तट श्रृंगवेर पुर पहुंच गया।

राम लखन सिय जान चढ़ि संभु चरण सिरु नाई।
सचिवँ चलायउ तुरत रथु इत उत खोज दुराई॥
बालक बृद्ध बिहाइ गृह लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किये प्रथम दिवस रघुनाथ॥

श्रृङ्गवेरपुर में गुहनाम का राजा राज्य करता था। वह श्रीराम चन्द्र जी का प्राणों के समान प्रिय मित्र था। उसने जब सुना पुरुषसिंह श्रीराम मेरे राज्य में पधारे हैं, तब वह अपने मन्त्रियों एवं बन्धु-बांधवों सहित राम जी का स्वागत करने आया। श्रीराम चन्द्र जी को बलकल धारण किये देख गुह को बड़ा दुःख हुआ उसने श्री रघुनाथ जी को हृदय से लगा कर कहा—"श्रीराम! आपके लिये जैसे अयोध्या का राज्य है, उसी प्रकार यह राज्य भी है। बताइये मैं आपको क्या सेवा करूं? महाबाहो! आप-जैसा प्रिय अतिथि किस को सुलभ होगा।

आपका स्वागत है। यह सारी भूमि जो मेरे अधिकार में है आपकी ही है। हम आपके सेवक हैं और आप हमारे स्वामी!—यह उत्तम खाद्य पदार्थ, उत्तमोत्तम शय्याएं हैं, तथा आपके घोड़ों के खाने के लिये चने और घास आदि प्रस्तुत हैं—इन्हें स्वीकार करें।

श्रीराम ने निषाद राज का धन्यवाद किया, बोले—मित्रवर तुमने प्रेमवश जो यह सामग्री प्रस्तुत की है, इसे स्वीकार करके मैं तुम्हें वापस ले जाने की आज्ञा देता हूं, क्योंकि इस समय दूसरों की दी हुई कोई भी वस्तु मैं ग्रहण नहीं करता। बल्कल और मृगचर्म धारण करके फल मूल का आहार करता हूं और धर्म में स्थित रह कर तापस वेश में वन के भीतर ही विचरता हूं। इन इन सामग्रियों में जो घोड़ों के खाने की वस्तुएं हैं उसी की इस समय मुझे आवश्यकता है दूसरी किसी वस्तु की नहीं। घोड़ों को खिला-पिला देने मात्र से तुम्हारे द्वारा मेरा पूर्ण सत्कार हो जायगा। तत्पश्चात् सायंकाल की सन्ध्योपासना करके भोजन के नाम पर स्वयं लक्ष्मण का लाया हुआ केवल जलमात्र पी लिया।

सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु॥

निषादराज ने करबद्ध प्रार्थना की, -प्रभो! दास के गृह को पवित्र कीजिये, ग्राम में पधारिये।

देव धरनि धनु धामु तुम्हारा।
मैं जनु नीचु सहित परिवारा॥
कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ।
थापिय जनु सबु लोग सिहाऊ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना।
मोहि दीन्ह पितु आयसु आना॥

श्रीराम बोले—मित्रवर! आपकी इस सहानुभूति के लिये आपका धन्यवाद, परन्तु पिता जी की आज्ञानुसार मैं चौदह वर्ष तक किसी नगर अथवा ग्राम में जाकर रह नहीं सकता।

वर्ष चारिदस बासु बन मुनि ब्रत बेषु हारु।
गाव बासु नहिं उचित सुनि गुहहि भयउ दुखु भारु॥
सुख स्वरूप रघुवंशमनि मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डासि महि विधि गति अति बलबान॥
सिय सुमन्त्र भ्राता सहित कंद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुवंशमनि पाय पलोटत भाइ॥

पिता जनक जग विदित प्रभाऊ।
ससुर सुरेश सखा रघुराऊ॥
रामचंदु पति सो बैदेही।
सोवत महि विधि बाम न केही॥
सिय रघुबीर की कानन जोगू।
करम प्रधान सत्य कह लोगू॥

भगत भूमि भूसुर सुरभि सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु सुनत मिटहिं जग जाल॥

प्रातः काल श्रीराम निषादराज से बोले,—इस समय मेरे लिये ऐसे स्थान में रहना उचित नहीं है जहां जनपद के निवासियों का आना जाना इतना सहज हो। पिता जी की आज्ञानुसार अब मुझे जटा धारण करना होगा, विरक्त वेष में रहना होगा—आप वट वृक्ष के दूध का प्रबन्ध करें, जिससे जटा-बन्धन का कार्य पूरा हो सके। गूह ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। श्रीराम ने उसके द्वारा लक्ष्मण की तथा अपनी जटाएं बनायीं। उस समय दोनों भाई ऋषियों के समान शोभा पा रहे थे।

सकल सौच करि राम नहावा।
सुचि सुजान बट छीर मंगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाए।
देखि सुमन्त्र नयन जल छाए॥

उस समय सुमन्त्र को सान्त्वना देते हुए श्रीराम बोले, सुमन्त्र जी ! मेरी दृष्टि में इक्ष्वाकु वंशियों का हित करने वाला सुहृद आपके समान दूसरा कोई नहीं है । आप ऐसा प्रयत्न करें जिससे महाराज श्री को मेरे लिये शोक न हो। माता कौशल्या को कहियेगा,—तुम्हारा पुत्र स्वस्थ एवं प्रसन्न है । तदनन्तर मेरी ओर से यह निवेदन कीजियेगा भरत को शीघ्र ही बुलवा लें और जब वे आ जायें तब अपने अभीष्ट युवराज पद पर उनका अभिषेक कर दें।

तत्पश्चात् श्रीराम गुह से बोले,—अब हम गंगा जी के पार जाना चाहते हैं. इसका प्रबन्ध कर दीजिये—गुह ने तुरन्त आज्ञा का पालन किया। सर्वप्रथम लक्ष्मण ने सीता को आदर सहित नाव में बिठाया, फिर आप बैठे पश्चात् स्वयं श्रीराम भी नाव पर सवार हुए--नाव चली।

महातेजस्वी राम उस नाव पर आरूढ़ होने के पश्चात् अपने हित के उद्देश्य से ब्राह्मण और क्षत्रिय के पढ़ने योग्य "दैवी नाव" इत्यादि वैदिक मन्त्र का जाप करने लगे । फिर शास्त्र के अनुसार आचमन करके सीता के साथ उन्होंने प्रसन्नचित होकर गंगा जी को प्रणाम किया, महारथी लक्ष्मन ने भी उन्हें मस्तक झुकाया। इसके बाद श्रीराम ने सुमन्त्र को तथा सेना सहित गुह को भी जाने की आज्ञा दे नाव पर भली भांति बैठकर मल्लाहों को उसे चलाने का आदेश दिया । भागीरथी के बीच धारा में पहुंच कर सती साध्वी सीता ने हाथ जोड़ कर गङ्गाजी से प्रार्थना की, देवि गङ्गे ये परम बुद्धिमान् महाराज दशरथ के पुत्र हैं और पिता की आज्ञा का पालन करने के लिये **वन में जा रहे हैं**। ये आप से सुरक्षित होकर पिता की इस आज्ञा का पालन कर सकें—ऐसी कृपा कीजिये। निष्पाप गङ्गे ! ये महाबाहु पापरहित मेरे पतिदेव मेरे तथा अपने भाई के साथ बनवास से लौट कर पुनः अयोध्या नगर में प्रवेश करें।

आदि कबि ने श्री राम जी को गंगा के उस पार पहुंचाने में कुछ भी देर नहीं लगाई, न ही कोई आडम्बर रचा—परन्तु गोस्वामी जी का केवट तो बढ़ा विचित्र महापुरुष निकला। श्री राम जी ने इस से पूर्व भी न जाने कितनी नदियों को पार किया होगा और उस घटना के पश्चात् भी निश्चित् रूप से कितनी ही बार यमुना जी को पार किया, श्री गंगा जी को भी पार किया, नर्मदा, कृष्णा, कावेरी—जिन सब का महत्व अपने-अपने स्थान पर गंगा जी के समान ही है सब को पार किया होगा, परन्तु ऐसा विचित्र पार लगैया तो तुलसी जी महाराज को भी बस एक ही मिला।—कराता हूं आप को रसास्वादन तुलसी की वर्णन शैली का भक्ति रस का प्रवाह बहा दिया है तुलसी ने—इस अमृत का पान कीजिये।

मागी नाव न केवटु आना ।
कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना ॥
चरन कमल रज कहुं सबु कहई ।
मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥
छुअत सिला भइ नारि सुहाई ।
पाहन तें न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई ।
बाट परइ मोरि नाव उड़ाई ॥
एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू ।
नहि जानउं कछु अउर कबारू ॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू ।
मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥
पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं ।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं ॥

बरु तीर मारहुं लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तव लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥
सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥
कृपासिंधु बोले मुसुकाई।
सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू।
होत बिलंबु उतारहि पारू॥
जासु नाम सुमिरत एक बारा।
उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा।
जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥
केवट राम रजायसु पावा।
पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनन्द उमगि अनुरागा।
चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं।
एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥
पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥
उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता।
सीय रामु गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा।
प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा
पिय हिय की सिय जाननिहारी।
मनि मुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई।
केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा।
मिटे दोष दुख दारिद दावा॥
बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी।
आजु दीन्ह विधि बनि भलि भूरी
अब कुछु नाथ न चाहिअ मोरें।
दीन दयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा।
सो प्रसादु मैं सिर धिर लेबा॥

बनवास जाते समय केवट का प्रकरण भले ही स्वयं गोस्वामी तुलसीदास जी की सूझ-बूझ का परम सुन्दर चमत्कार हो, परन्तु भक्ति माग का अनुसरन करने वाले साधकों के लिये तो यह प्रकरण मानवता के प्रति गोस्वामी जी की एक स्वर्गीय देन है। केवट की निष्काम भावना परम प्रशंसनीय है और किसी संस्कृत के कवि ने तो केवट की श्रद्धा भक्ति का वर्णन करते हुए कमाल ही कर दिया—केवट बोला, आप मेरे घाट पर आए मैं ने आप को पार कर दिया, प्रभो ! जब मैं आप के घाट पर आऊंगा भूल मत जाना, नजरें मत फेर लेना, कृपा दृष्टि वनाते हुए मुझे भी उस पार लगा देना

अहं तु नद्या परिपार कर्त्ता।
त्वं वै भवाब्धि परिपार कर्त्ता॥
इत्थं प्रकारेण मया त्वया च।
धर्म व्यवस्था परिपालनीया॥

गंगा जी के दक्षिण तट पर पहुँच कर श्री राम ने सीता जी एवं लक्ष्मण के साथ आगे को प्रस्थान किया—जहां भागीरथी गंगा से जमुना मिलती है। उस स्थान पर जाने के लिये वे महान वन के भीतर से होकर यात्रा करने लगे। इस प्रकार वे सूर्यास्त होते-होते गंगा यमुना के सङ्गम के समीप श्री मुनिवर भरद्वाज के आश्रम पर जा पहुंचे। वहां उन्होंने तपस्या के प्रभाव से तीनों कालों की सारी बातें देखने की दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लेने वाले एकाग्रचित्त तथा तीक्ष्ण व्रतधारी महात्मा भरद्वाज ऋषि का दर्शन किया।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आए।
करत दंडवत् मुनि उर लाए ॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई।
ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई ॥
दीन्हि असीस मुनीस उर अति अनंदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल मनहुं किए विधि आनि ॥
भए बिगतश्रम राम सुखारे।
भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥
आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू।
आजु सुफल जप जोग विरागू ॥
सफल सकल सुभ साधन साजू।
राम तुम्हहि अवलोकत आजू ॥
लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी।
तुम्हरें दरस आस सब पूजी ॥
अब करि कृपा देहु बर एहु।
निज पद सरसिज सहज सनेहु ॥
करम बचन मन छांड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुं नहीं किएं कोटि उपचार ॥
सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने।
भाव भगति आनन्द अघाने ॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा।
कोटि भांति कहि सबहि सुनावा ॥
सो बड़ सो सब गुन गन गेहू।
जेहि मुनीस तुम्ह आदर देहू ॥
राम कीन्ह विश्राम निसि प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥

प्रातः काल श्री राम ने अपनी बन यात्रा पर आगे जाने की इच्छा प्रकट की—महर्षि भरद्वाज ने आशीर्वाद देते हुए कहा, मैं जानता हूं तुम्हारा आगे जाना ही यथार्थ है।

दशक्रोश इतस्तात गिरिर्यस्मिन् निवत्स्यसि।
महर्षि सेवितः पुण्यः पर्वतः शुभ दर्शनः ॥

यहां से लगभग ३० मील पर चित्रकूट है, बड़ा सुन्दर स्थान है।—आप का अगला पड़ाव वहीं रहेगा।—महामुनि के श्री चरणों में सादर मस्तक झुका तीनों चित्रकूट के मार्ग पर चलने को उद्यत हुए। उन तीनों को प्रस्थान करते देख महर्षि ने उनके लिये उसी प्रकार स्वस्ति-वाचन किया जैसे पिता अपने पुत्रों को यात्रा करते देख उन के लिये मङ्गलसूचक आशीर्वाद देता है।

आगें राम लखनु बने पाछें।
तापस वेष बिराजत काछें ॥
उभय बीच सिय सोहति कैसें।
ब्रह्मजीव बिच माया जैसें ॥
गांव गांव अस होइ अनन्दु।
देखि भानुकुल कैरव चन्दु ॥
एहि विधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन्ह सुख देत।
जाहिं चले देखत बिपिन सिय सौमित्रि समेत ॥
देखत बन सर सैल सुहाए।
बालमीकि आश्रम प्रभु आए ॥
सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउलेन ॥
मुनि कहुं राम दण्डवत कीन्हा।
आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा ॥
बालमीकि मन आनंदु भारी।
मंगल मूरति नयन निहारी ॥
तब कर कमल जोरि रघुराई।
बोले बचन श्रवण सुखदाई ॥
तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा।
बिस्व बदर जिमि तुम्हरे हाथा ॥
तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ।
मो कहुं दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ ॥
देखि पाय मुनि राय तुम्हारे।
भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
बोल सिया-पति राम चन्द्र की जय !!!

(६)

परम पुनीत भरत आचरनू

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम् ।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः-पुनः ॥

देवियो एवं भद्र पुरुषो

श्री रघुनाथ जी के इस प्रकार कहने पर मुनिवर ने मुस्करा कर कहा—"हे राम! सम्पूर्ण प्राणियों का एकमात्र आप ही उत्तम निवास स्थान हैं और सब जीव भी आप के निवास-गृह हैं,—आप मुझ से पूछते हैं मैं कहाँ रहूं,—वह भी बताता हूं।

इतिहास एवं अध्यात्म का गोस्वामी जी ने कितना सुन्दर समन्वय किया है—ऐतिहासिक राम चित्रकूट में रहे, वह चित्रकूट जो उत्तर प्रदेश के बाँदा ज़िले में आज भी है।—परन्तु ईश्वर स्वरूप भगवान् वह भी चित्रकूट में ही रहता है, वह चित्रकूट मानव शरीर के भीतर है। This body of man is the Temple of God-God isCharacter-A pure mind and a pure brain form the capital-seat of that Supreme most Celestial Power. Peep inside,O Man ! and you shall behold a spark, a light—Divine Light.

सुनहु राम अब कहउँ निकेता ।
जहाँ बसहु सिय लखन समेता ॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना ।
कथा तुम्हारि सुभग सरिनाना ।
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे ।
तिन्ह के हिय तुम्ह कहुं गृहरूरे ॥
जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु ।
मुकताहल गन खन चुनइ राम बसहु हियं तासु ॥
तुम्हहि निबेदित भोजन करहिं ।
प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहिं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी ।
प्रीति सहित करि विनय बिसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा ।
राम भरोस हृदयं नहिं दूजा ॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।
काम कोह मद मान न मोहा ।
लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया ।
जिन्ह के हृदय बसहु रघुराया ।
सब के प्रिय सब के हितकारी ।
दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी ।
जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाड़ी गति दूसरि नाहीं ।
राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ।,
जननी सम जानहिं परनारी ।
धनु पराव बिष ते विष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी ।
दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥

जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपियारे।
तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह कें सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह के बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं।
बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका।
घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई।
प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई।
तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए।
बचन सप्रेम राम मन भाए॥
कह मुनि सुनहु भानुकुल नायक।
आश्रम कहउं समय सुखदायक॥
चित्रकूट गिरि करहु निवासू।
तहं तुम्हार सब भांति सुपासू॥

ततस्तौ पादचारेण गच्छन्तौ सहसीतया।
रम्यमासेदतुः शैलं चित्रकूटं मनोरमम्॥

अयोध्या वासियों के नेत्र निरन्तर श्री गंगा जी की ओर लगे थे, हो सकता है सुमन्त्र जी श्री राम को समझा बुझा कर गंगा जी का दर्शन कराअवध वापस लौटा लायें परन्तुअवध वासियों की आशा सर्वथा निराशा में बदल गई, जब सुमन्त्र जी खाली रथ लिये अवध लौटे। सुमन्त्र जी सीधे महाराज श्री के चरणों में उपस्थित हुए,—उन्हें प्रणाम किया और श्रीराम द्वारा कही हुई सभी बातें उन्हें ज्यों की त्यों कह दीं। महाराज श्री की अन्तिम आशायें छिन्न भिन्न हो गयीं। सुमन्त्र द्वारा सन्देश सुनते ही वे मूर्च्छित हो अचेत गिर गये।

महाराज श्री के मूर्च्छित हो जाने पर सारा अन्तःपुर दुःख से व्यथित हो उठा। राजा के पृथ्वी पर गिरते ही सब लोग दोनों बाहें उठा कर ज़ोर-ज़ोर से चीत्कार करने लगे। उस समय कौशल्या ने सुमित्रा की सहायता से अपने गिरे हुए पति को उठाया और इस प्रकार कहा,—महाभाग! ये सुमन्त्र जी दुष्कर कर्म करने वाले श्री राम के दूत हो कर—उन का सन्देश ले कर बनवास से लौटे हैं। आप इन से बात क्यों नहीं करते, देव! आप जिस के भय से सुमन्त्र जी से श्रीराम का समाचार नहीं पूछते रहे हैं, वह कैकयी यहाँ मौजूद नहीं है, अतः निर्भय होकर बात कीजिये।

राम राम कह राम सनेही।
पुनि कह राम लखन बैदेही॥

देखि सचिवं जय जीव कहि कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ ब्याकुल नृपति कहु सुमन्त्र कहं रामु॥

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाई।
बूड़त कछु अधार जनु पाई॥
सहित सनेह निकट बैठारी।
पूंछत राउ नयन भरि बारी॥
राम कुसल कहु सखा सनेही।
कहँ रघुनाथु लखनु बैदेही॥
आने फेरि कि बनहि सिधाए।
सुनत सचिव लोचन जल छाए॥
सोक बिकल पुनि पूंछ नरेसू।
कहु सिय राम लखन संदेसू॥

सखा रामु सिय लखनु जहं तहां मोहि पहुंचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब प्रान कहउं सतिभाउ॥

पुनि पुनि पूंछत मंत्रिहि राऊ।
प्रियतम सुअन संदेस सुनाऊ॥

करहि सखा सोई बेगि उपाऊ ।
रामु लखनु सिय नयन देखाऊ ॥
सचिव धीर धरि कह मृदु बानी ।
महाराज तुम्ह पंडित ग्यानी ॥
धीरज धरहु बिबेकु बिचारी ।
छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥
बरबस राति दिवस की नाईं ॥
सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं ।
दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं ॥
धीरज धरहु बिबेक बिचारी ।
छाड़िअ सोच सकल हितकारी ॥
प्रथम बासु तमसा भयउ दूसर सुरसरि तीर ।
न्हाइ रहे जलपानु करि सिय समेत दोउ बीर ॥
केवट कीन्हि बहुत सेवकाई ।
सो जामिनि सिंगरौर गंवाई ॥
होत प्रात बट छीरु मगावा ।
जटा मुकुट निज सीस बनावा ॥
राम सखां तब नाव मगाई ।
प्रिया चढाइ चढ़े रघुराई ॥
लखन बान धनु धरे बनाई ।
आपु चढ़े प्रभु आयसु पाई ॥
बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा ।
बोले मधुर बचन धरि धीरा ॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू ।
बार बार पद पंकज गहेहू ॥
करबि पायं परि बिनय बहोरी ।
तात करिअ जनि चिंता मोरी ॥
बन मग मंगल कुसल हमारें ।
कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारें ॥
तुम्हरें अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं ।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं ॥
जननीं सकल परितोषि परि परि पायं करि बिनती घनी ।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहिं कुसली रहहिं कोसल धनी ।
गुर सन कहब संदेसु बार बार पद पदुम गहि ।
करब सोइ उपदेसु जेहिं न सोच मोहि अवधपति ॥
पुरजन परिजन सकल निहोरी ।
तात सुनाएहु बिनती मोरी ॥
सूत वचन सुनतहिं नरनाहू ।
परेउ धरनि उर दारुन दाहू ।
भयउ कोलाहलु अवध अति सुनि नृप राउर सोरू ।
बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहुं कुलिस कठोरु ॥
बिलपत राउ बिकल बहु भान्ति ।
भइ जुग सरिस सिराति न राती
हा रघुनन्दन प्रान पिरीते ।
तुम्ह बिनु जिअत बहुत दिन बीते
हा जानकी लखन हा रघुवर ।
हा पितु हित चित चातक जलधर ॥
राम राम कहि राम कहि राम राम कहि राम
तनु परिहरि रघुवर बिरहं राउ गयउ सुरधाम ।
सोक बिकल सब रोवहिं रानी ।
रूप सील, बलु तेजु बखानी ।
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी ।
घर घर रुदनु करहिं पुरबासी ॥
तब वसिष्ठ मुनि समय सम
कहि अनेक इतिहास ।
सोक नेवारेउ सबहि कर
निज बिग्यान प्रकास ॥
ऋते तु पुत्राद् दहनं महीपते
र्नारोचयंस्ते सुहृदः समागताः ।
इतीव तस्मिञ्शयने न्यवेशयन्
विचिन्त्य राजानमचिन्त्यदर्शनम् ॥
वहां पधारे हुए सुहृदों ने किसी भी पुत्र के बिना राजा का दाह संस्कार होना पसन्द नहीं किया । अब राजा का दर्शन अचिन्त्य हो गया यह सोचते हुए उन सबने उस तैलपूर्ण कड़ाहे में उनके शव को सुरक्षित रख दिया ।

गतप्रभा द्यौरिव भास्करं बिना
व्यपेतनक्षत्रगणेव शर्वरी।
पुरी बभासे रहिता महात्मना
कण्ठासुकण्ठाकुलमार्गचत्वरा ॥

सूर्य के बिना प्रभाहीन आकाश तथा नक्षत्रों के बिना शोभाहीन रात्रि की भांति अयोध्यापुरी महात्मा राजा दशरथ से रहित हो श्रीहीन प्रतीत होती थी। उस को सड़कों और चौराहों पर आंसुओं से अवरुद्ध कण्ठवाले मनुष्यों की भीड़ एकत्र हो गयी थी।

अयोध्या में लोगों की वह रात रोते-कल्पते ही बीती। जब रात बीत गई और सूर्योदय हुआ, तब राज्य का प्रबन्ध करने वाले ब्राह्मण लोग एकत्र हो दरबार में आये। मार्कण्डेय, मोदगल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, गौतम और महायशस्वी जाबालि—ये सभी ब्राह्मण श्रेष्ठ राज पुरोहित वसिष्ठ जी के सामने बैठ-कर विचार करने लगे—महाराज दशरथ स्वर्ग सिधारे, श्रीराम और लक्ष्मण वनों में चले गये, भरत-शत्रुघ्न नाना के हैं—इक्ष्वाकुवंशो राजकुल में राजा किस को बनाया जाये। जहाँ कोई राजा नहीं होता किसी की निजी सम्पत्ति सुर-क्षित नहीं, धन भी सुरक्षित नहीं, यहां तक कि धर्मपत्नी तक सुरक्षित नहीं।

राजा रहित देश में सदैव महान् भय बना रहता है। बिना राजा के राज्य के मनुष्य कोई पञ्चायत-भवन नहीं बनवाते, रमणीय उद्यान का भी निर्माण नहीं कर पाते, तथा हर्ष और उत्साह के साथ धर्मशाला, गौशाला, पाठशाला, देवशाला भी नहीं बनवाते। अराजक देश में तीर्थ-तप नही होता, कथा-वार्ता नहीं होती, उत्सव महोत्सव नहीं होते, दूसरे-दूसरे राष्ट्र-हितकारी संघ भी पनपने नहीं पाते। बिना राजा के राज्य में किसी से न्याय नहीं मिलता, व्या-पार की स्थिति अनिश्चित सी होती है। राजा रहित राष्ट्र में सोने के आभूषणों से विभूषित हुई कुमारियां एक साथ मिलकर सन्ध्या के समय उद्यानों में क्रीड़ा करने के लिये नहीं जातीं।

जहां कोई राजा न हो वहां अपने अन्तः करण के द्वारा परमात्मा का ध्यान करने वाला, अकेला विचरने वाला जितेन्द्रिय मुनि नहीं घूमता फिरता। जैसे जल के बिना नदियां, घास के बिना वन और ग्वालों के बिना गौओं की शोभा नहीं होती, उसी प्रकार राजा के बिना राज्य शोभा नहीं पाता।

नाराजके जनपदे स्वकं भवति कस्यचित।
मत्स्या इव जना नित्य भक्षयन्ति परस्परम् ॥

राजा के न रहने पर किसी भी मनुष्य की कोई भी वस्तु अपनी नहीं रह जाती। जैसे मत्स्य एक दूसरे को खा जाते हैं, उसी प्रकार अराजक देश के लोग एक-दूसरे को खाते-लूटते खसोटते रहते हैं।

राजा सत्यं च धर्मश्च राजा कुलवतां कुलम्।
राजा माता पिता चैव राजा हितकरो नृणाम् ॥

राजा ही सत्य और धर्म है, राजा ही कुलवानों का कुल है, राजा ही माता और पिता है तथा राजा ही मनुष्यों का हित करने वाला है। राजा ही वर्णाश्रम धर्म का प्रतिपालक है, यदि संसार में भले-बुरे का बिभाग करने वाला राजा न हो तो यह सारा जगत् अन्धकार से आच्छन्न सा हो जाये।

अतः विप्रवर! इस समय हमारे व्यवहार को देखकर तथा राजा के अभाव में जंगल बने हुए इस देश पर दृष्टिपात करके आप ही किसी इक्ष्वाकुवंशी राजकुमार को अथवा दूसरे किसी

योग्य पुरुष को राजा के पद पर अभिषिक्त कीजिए। मार्कण्डेय आदि के ऐसे वचन सुनकर महर्षि वसिष्ठ ने मित्रों, मन्त्रियों, और उन समस्त ब्राह्मणों को इस प्रकार उत्तर दिया—राजा दशरथ ने जिन को राज्य दिया है, वे भरत इस समय अपने भाई शत्रुघ्न के साथ मामा के यहां बड़े सुख और प्रसन्नता के साथ निवास करते हैं। उन दोनों वीर बन्धुओं को बुलाने के लिये शीघ्र ही तेज चलने वाले दूत घोड़ोंपर सवार होकर यहाँसे जायें, इसके बिना हम लोग और क्या विचार कर सकते हैं। इस पर सब ने वसिष्ठ जी से कहा, 'हां, दूत अवश्य भेजे जाये।' तब वसिष्ठ जी ने दूतों को बुला कर कहा, सिद्धार्थ! विजय! अशोक! जयन्त और नन्दन। तुम सब यहां आओ और तुम्हें जो काम करना है, उसे सुनो। तुम लोग शीघ्रगामी घोड़ों पर सवार होकर तुरन्त ही राजगृह नगर को जाओ और शोक भाव न प्रकट करते हुए मेरी आज्ञा के अनुसार भरत से इस प्रकार कहो—'कुमार! पुरोहित जी तथा समस्त मन्त्रियों ने आपसे कुशल-मङ्गल कहा है। अब आप यहाँ से शीघ्र ही चलिये। अयोध्या में आप से अत्यन्त आवश्यक कार्य है, ।

मा चास्मै शोषित राम मा चास्मै पितरं मृतम्
भवन्तः शंसिषुर्गत्वा राघवाणामित क्षमम्।

भरत को श्रीराम चन्द्र के वनबास और पिता की मृत्यु का हाल मत बताना, और इन परिस्थितियों के कारण रघुवंशियों में यहाँ जो कुहराम मचा है, इस को चर्चा भी नहीं करना।

तदनन्तर यात्रा-सम्बन्धी शेष तैयारी पूरी करके वसिष्ठ जी की आज्ञा ले सभी दूत तुरन्त वहां से प्रस्थित हो गये। राजगृह पहुंचते ही वे दूत केकय नरेश एवं राजकुमार से मिले। फिर वे भावी राजा भरत के चरणों का स्पर्श करके उन से इस प्रकार बोले—'कुमार! पुरोहित जी तथा समस्त मन्त्रियों ने आप से कुशल मंगल कहा है। अब आप यहां से शीघ्र चलिये! अयोध्या में आप से अत्यन्त आवश्यक कार्य है। कुछ तो गत रात्रि बुरे बुरे स्वप्नों के कारण भरत पहले ही सशंकित थे, फिर एकदम जल्दी चलो, जल्दी चलो की बात सुन भरत जी ने दूतों से पूछा—मेरे पिता जी एवं भाई-मातायें सब ठीक से तो हैं।

महात्मा भरत के इस प्रकार पूछने पर उस समय दूतों ने विनयपूर्वक उन से यह बात कही—

कुशलास्ते नरव्याघ्र येषां कुशलमिच्छसि ।
श्रीश्च त्वा वृणुते पदमा युज्यतां चापि ते रथः ॥

पुरुषसिंह! आप को जिन का कुशल-मंगल अभिप्रेत है, वे सकुशल हैं। हाथ में कमल लिये रहने वाली लक्ष्मी आप का वरण कर रही है। अब यात्रा के लिये शीघ्र ही आप का रथ जुत कर तैयार हो जाना चाहिये।

उन दूतों के ऐसा कहने पर भरत ने उन से कहा,—"अच्छा, मैं महाराज से पूछता हूं कि दूत मुझे शीघ्र अयोध्या चलने के लिये कह रहे हैं,—आप की क्या आज्ञा है। दूतों से ऐसा कह कर राजकुमार भरत उन से प्रेरित हो नाना के पास जाकर बोले, राजन् मैं दूतों के कहने से इस समय पिता जी के पास जा रहा हूं। पुनः जब आप मुझे याद करेंगे, यहां आ जाऊँगा।—भरत के ऐसा कहने पर केकय नरेश ने उस समय भरत का मस्तक सूंघ कर यह शुभ वचन कहा—तात्! जाओ, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं। तुम्हें पाकर कैकयी उत्तम संतान वाली हो गई। शत्रुओं को संताप देने वाले वीर! तुम अपनी

माता और पिता से यहां का कुशल समाचार कहना।

पुरुष सिंह भरत मार्ग में सात रातें व्यतीत करके आठवें दिन अयोध्यापुरी पहुंचे, कुछ मानसिक संस्कारों के कारण भरत मन-ही मन पहले ही खिन्न थे। चलते समय उन्हें भयानक स्वप्न दिखायी दिये थे। भरत लाल सर्वप्रथम दशरथ-प्रासाद पधारे, वहां पिता श्री को न पा कर माता का दर्शन करने वे कनक भवन की ओर चले। भरत को देखते ही कैकयी गद् गद् हो गयी। अपने यशस्वी पुत्र को छाती से लगा कर कैकयी ने उनका मस्तक सूंधा और उन्हें गोद में बिठा कर पूछना आरम्भ किया—बेटा तुम्हें नाना के घर से चले कितने दिन हो गये, नाना सकुशल से तो हैं ? मामा कुशल से तो हैं ?

अपने नाना मामा का कुशल समाचार बताते हुए भरत बोले--माँ पिता जी कहां हैं भ्राता राम कहां हैं ? लक्ष्मण कहां हैं।

कहु कहं तात कहा सब माता।
कहं सिय राम लखन प्रिय भ्राता।।

कैकयी राज्य के लोभ से मोहित हो रही थी, बोली, बेटा; तुम्हारे पिता वहीं गये, जहां एक दिन सभी ने जाना है।

पिता श्री के सम्बन्ध में ऐसे शब्द सुनकर भरत मूर्च्छित हो गिर पड़े। "हाय, मैं मारा गया।"

तात तात हा तात पुकारी
परे भूमि तल व्याकुल भारी।।

अभी पितृ शोक का भार भरत सह भी न पाये थे कि राम लक्ष्मण सीता के बन गमन का समाचार भी उन्हें सुनना पड़ा ! पिता के परलोकवास, एवं दोनों भाइयों के वनवास का समाचार सुनकर भरत दःख से संतप्त हो उठे और इस प्रकार बोले,—हाय ! तू ने मुझे मार डाला। मैं पिता से सदा के लिये बिछुड़ गया और पितृ तुल्य बड़े भाई से भी विलग हो गया। श्री राम किसी की बुराई नहीं देखते वे शूरवीर पवित्रात्मा और यशस्वी हैं। उन्हें चीर पहना कर वनवास दे देने में तू कौन सा लाभ देख रही है।

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन।
हेतु अपनपउ जानि जियं थकित रहे धरि मौन।।
हंस बंसु दसरथु जनकु राम लखन से भाई।
जननी तूं जननी भई बिधि सन कछु न बसाई।।

भरत लाल माता कौशल्या के श्री चरणों में उपस्थित हुए।

माता कौसल्या को देखते ही भरत माता कौसल्या की गोदी में लग गये और फूट-फूट कर रोने लगे—उस समय उनके चित्त में बड़ी घबराहट थी।

देखत भरतु बिकल भए भारी।
परे चरन तन दसा बिसारी।।
मातु तात कहं देहि देखाई।
कहं सिय रामु लखनु दोउ भाई।।
कैकइ कत जनमी जग माझा।
जौं जनमि त भइ काहे न बांझा।।
कुल कलंकु जेहिं जनमेउ मोही।
अपजस भाजन प्रियजन द्रोही।।
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी।
गति असि तोरि मातु जेहि लागी।।
पितु सुरपुर बन रघुबर केतू।
मैं केवल सब अनरथ हेतू।।
धिग मोहि भयउं बेनु बन आगी।
दुसह दाह दुख दूषन भागी।।
मातु भरत के बचन मृदु सुनि पुनि उठी संभारि
लिए उठाइ लगाइ उर लोचन मोचति बारि।।
सरल सुभायं मायं हियं लाए।

अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई।
सोकु सनेहु न हृदयं समाई ॥
मातां भरतु गोद बैठारे ।
आँसु पोंछि मृदु बचन उचारे ॥
अजहुं बच्छ बलि धीरज धरहू ॥
कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हियं हानि गलानी।
काल करम गति अघटित जानी ॥

पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयं कछु पहिरे बलकल चीर ॥
कौसल्या के बचन सुनि भरत सहित रनिवासु ।
ब्याकुल बिलपत राजगृह मानहुं सोक नेवासु ॥

बिलपहिं बिकल भरत दोउ भाई ।
कौसल्यां लिए हृदयं लगाई ॥
भांति अनेक भरतु समुझाए ।
कहि बिबेकमय बचन सुनाए ॥
भरतहुं मातु सकल समुझाई ।
कहि पुरान श्रुति कथा सुहाई ।
छल बिहीन सुचि सरल सुबानी ।
बोले भरत जोरि जुग पानी ॥
जे अघ मातु पिता सुत मारें ।
गाइ गोठ महिसुर पुर जारें ॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हें ।
मीत महीपति माहुर दीन्हें ॥
जे पातक उपपातक अहहीं ।
करम बचन मन भव कवि कहहीं ॥
ते पातक मोहि होहुं बिधाता ।
जौं यहु होइ मोर मत माता ॥

जे परिहरि हरि हर चरन भजहिं भूतगन घोर ।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि जौं जननी मत मोर ॥

बेचहिं बेदु धरमु दुहि हीं ले ।
पिसुन पराय पाप कहि देहीं ॥
कपटी कुटिल कलहप्रिय क्रोधी ।
बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ॥
लोभी लंपट लोलुपचारा ।
जे ताकहिं परधनु परदारा ॥
पावौं मैं तिन्ह कै गति घोरा ।
जौं जननी यहु संमत मोरा ॥
जे नहिं साधुसंग अनुरागे ।
परमारथ पथ बिमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नरतनु पाई ।
जिन्हहि न हरि हर सुजसु सोहाई
तजि श्रुतिपंथु बाम पथ चलहीं ।
बंचक बिरचि बेष जगु छलहीं ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ ।
जननी जौं यहु जानौं भेऊ ॥

माता कौसल्या के चरण पकड़ कर भरत लाल आंखों से अश्रुधारा बहाते हुए बोले ।

आर्ये ! मैं सर्वथा निरपराध हूं, मां ! यदि श्रीराम को बनों में भेजने में मेरा हाथ हो तो मुझे वही पाप लगे जो दोनों संध्याओं के समय सोये हुए पुरुष को प्राप्त होता है । आग लगाने वाले मनुष्य को जो पाप लगता है, गुरु पत्नी गामी को जिस पाप की प्राप्ति होती है तथा मित्र द्रोह करने से जो पाप प्राप्त होता है,— जिस की सम्मति से आर्य श्रीराम को वन में जाना पड़ा है, वह देवताओं, पितरों और माता-पिता की सेवा कभी न करे, पानी को गन्दा करने वाले तथा दूसरों को ज़हर देने वाले मनुष्य को जो पाप लगता है, वह सारा पाप अकेला वही प्राप्त करे, जिसकी अनुमति से विवश होकर आर्य श्रीराम का वन में जाना पड़ा ।

प्रैष्यं पापीयसां यातु सूर्यं च प्रति मेहतु ।
हन्तु पादेन गाः सुप्ता यस्यार्योऽनुमते गतः ॥
बलि षड भागमुद्धृत्य नृपस्यारक्षितुः प्रजाः ।
अधर्मो योऽस्य सोऽस्यास्तु यस्यार्योऽनुमतेगतः ॥

संश्रुत्य च तपस्विभ्यः सत्रं वै यज्ञ दक्षिणाम्।
तां चापलतां पापं यस्यार्योऽनुमते गतः॥
उभे सन्ध्ये शयानस्य यत् पापं परिकल्प्ते।
तच्च पापं भवेत् तस्य यस्यार्योऽनुमते गतः॥
धर्मदारान् परित्यज्य परदारान् निषेवताम्।
त्यक्त धर्मरतिमूढो यस्यार्योऽनुमते गतः॥
गां स्पृशतु पादेन गुरुन् परिवदेत् च।
मित्रे द्रुह्येत सोऽत्यर्थं यस्यार्योऽनुमते गतः॥
देवतानां पितृणां च मातापित्रो स्तथैव च।
मा स्म कार्षीत् सु शुश्रूषां यस्यार्योऽनुमते गतः॥

इधर भरत लाल माता कौशल्या के समीप बैठे जब इस प्रकार अपने को धिक्कार रहे थे, और सजल नेत्रों से अश्रुओं की धारा बहा रहे थे, महामुनि वसिष्ठ भी वहाँ पधार गये—बोले, महायशस्वी राजकुमार! तुम्हारा कल्याण हो। यह शोक छोड़ो, क्योंकि इस से कुछ होने-हवाने का नहीं—

भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे।
नीति धरममय बचन उचारे॥
प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी।
कैकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥
भूप धरम ब्रतु सत्य सराहा।
जेहिं तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥
कहत राम गुन सील सुभाऊ।
सजल नयन पुलकित मुनि राऊ॥
सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु जसु अपजसु बिधि हाथ॥
तात बिचारु करहु मन माहीं।
सोच जोगु दसरथु नृपु नाहीं॥
सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना।
तजि निज धरमु बिषय लयलीना॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना।
जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना॥
सोचिअ बयसु कृपन धनवानू।
जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ पुनि पति बंचक नारी।
कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई।
जो नहिं गुर आयसु अनुसरई॥
सोचिअ गृही जो मोह बस करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत बिगत बिबेक बिराग॥
बैखानस सोइ सोचै जोगू।
तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी।
जननि जनक गुर बंधु बिरोधी॥
सब बिधि सोचिअ पर अपकारी।
निज तनुपोषक निरदय भारी॥
सोचनीय सबहीं बिधि सोई।
जो न छाड़ि छलु हरि जन होई॥
सोचनीय नहिं कोसलराऊ।
भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा।
भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥
बिधि हरि हरु सुरपति दिसि नाथा
बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥
कहहु तात केहि भांति कोउ करिहि बड़ाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु॥

"महाराज दशरथ वृद्ध, ज्ञानी और सत्य-पराक्रमी थे। वे मनुष्य जन्म के समस्त सुख भोगकर, बहुत-सी दक्षिणा के सहित अश्वमेधादि यज्ञों द्वारा भगवान् का भजन कर और रामचन्द्र के रूप में साक्षात् विष्णु भगवान को पुत्र रूप से पाकर अन्त में स्वर्गलोक में जाकर देवराज इन्द्र के आधे आसन के अधिकारी हुए हैं। वे सर्वथा अशोचनीय और मोक्ष के पात्र हैं, उनके लिये तुम वृथा ही शोक करते हो।

आत्मा तो नित्य-अविनाशी,शुद्ध और जन्म नाशादि से रहित है और शरीर जड़,अत्यन्त अपवित्र और नाशवान् है। इस प्रकार विचार करने पर शोक के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। यदि कोई पिता या पत्र मर जाता है तो मूढजन ही उसके लिये छाती पीटकर रोते हैं। किन्तु इस असार संसार में यदि ज्ञानियों को किसी से वियोग होता है तो वह उनके लिये वैराग्य का कारण होता है और सुख और शान्ति का विस्तार करता है। यदि किसी ने इस लोक में जन्म लिया है तो मृत्यु भी अवश्य ही उसके साथ लगी हुई है। अतः जन्म लेने वालों के लिये मृत्यु सर्वदा अनिवार्य है। 'अपने कर्मानुसार ही' सब प्राणियों के जन्म-मरण होते हैं' यह जानकर भी देखो मूढ़ लोग अपने बन्धु-बान्धवों के लिये कैसे शोक करते हैं। करोड़ों ब्रह्माण्ड नष्ट हो गये, अनेकों सृष्टियां बीत गयीं, ये सम्पूर्ण समुद्र एक दिन सूख जायंगे; फिर इस क्षणिक जीवन में भला क्या आस्था की जाय ? यह आयु हिलते हुए पत्ते की नोक पर लटकती हुई जल की बूंद के समान क्षणभंगुर है, असमय ही छोड़कर चली जाती है, उसका तुम क्या विश्वास करते हो ? इस जीवात्मा ने अपने पूर्व-देह-कृत कर्मों से यह शरीर धारण किया है और फिर इस देह के कर्मों से यह और शरीर धारण करेगा। इसी प्रकार आत्मा को सदा पुनः-पुनः देह की प्राप्ति होती रहती है। मनुष्य जिस प्रकार पुराने वस्त्रों को उतार कर फिर नये वस्त्र पहन लेता है उसी प्रकार देहधारी जीव पुराने शरीर को छोड़कर नवीन शरीर धारण कर लेता है। अतः इस में शोक का क्या कारण है ? क्योंकि आत्मा न तो कभी मरता है, न जन्मता है और न बढ़ता ही है। वह षड्-भाव विकारों से रहित, अनन्त, सच्चित्स्वरूप, आनन्दरूप, बुद्धि आदि का साक्षी और अविनाशी है। वह परमात्मा एक, अद्वितीय और समभाव से स्थित है। इस प्रकार तुम आत्मा का दृढ़ ज्ञान प्राप्त कर शोक रहित हो समस्त कार्य करो। कुलनन्दन भरत ! अपने पिता का शरीर तैल की नाव में से निकाल कर मन्त्रियों और हम सब ऋषियों के साथ उसका विधिपूर्वक अन्त्येष्टि-संस्कार करो।"

तब "बहुत अच्छा" कह कर भरत नें वसिष्ठ जी की आज्ञा शिरोधार्य की तथा ऋत्विक्, पुरोहित और आचार्य—सब को इस कार्य के लिये जल्दी करने को कहा। राजा दशरथ का शव तेल के कड़ाहे से निकाल कर भूमि पर रखा गया। चन्दन की चित्ता तैयार की गई। ऋत्विजों ने वेदोक्त मन्त्रों का जप किया। भरत के साथ रानियों, मन्त्रियों, और पुरोहितों ने भी राजा को जलान्जलि दी—फिर सब-के-सब नेत्रों से आंसू बहाते हुए नगर में आये और दस दिनों तक भूमि पर शयन करते हुए उन्होंने बड़े दुःख से अपना समय व्यतीत किया। तदनन्तर दशाह व्यतीत हो जाने पर राजकुमार भरत ने ग्यारहवें दिन आत्मशुद्धि के लिये स्नान और एकादशाह श्राद्ध का अनुदान किया, फिर बारहवाँ दिन आने पर उन्होंने अन्य श्राद्धकर्म किये।

तदनन्तर चौहदवें दिन प्रातःकाल समस्त राज कर्मचारी मिल कर भरत से इस प्रकार बोले—"महायशस्वी राजकुमार ! महाराज दशरथ तो स्वर्गलोक को चले गये। अब इस राज्य का कोई स्वामी नहीं है। इस लिये अब आप ही हमारे राजा हो। रघुनन्दन ! ये मन्त्री आदि स्वजन, पुरवासी तथा सेठ लोग अभिषेक की सब सामग्री लेकर आप की राह देख रहे हैं।

अपने पिता-पितामहों के इस राज्य को आप अवश्य ग्रहण कीजिये। नरश्रेष्ठ ! राजा के पद पर अपना अभिषेक कराइये और हम लोगों की रक्षा कीजिये।

रायं राजपदु तुम्ह कहुं दीन्हा।
पिता बचनु फुर चाहिग्र कीन्हा ।।
करहु सीस धरि भूप रजाई।
हइ तुम्ह कहं सब भांति भलाई ।।
परसुराम पितु अग्या राखी।
मारी मातु लोक सब साखी ।।
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ।
पितु अग्याँ अघ अजसु न भयऊ ।।
अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन ।।
अवसि नरेस बचन फुर करहू।
पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ।।
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू।
तुम्ह कहुं सुकृतु सुजसु नहिं दोषू ।।
बेद विदित संमत सबही का।
जेहि पितु देइ सा पावइ टीका।
करहु राजु परिहरहु गलानी।
मानहु मोर बचन हित जानी ।।
सौंपिहु राजु राम के आएं।
सेवा करेहु सनेह सुहाएं ।।
कीजिअ गुर आयसु अवसि कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आएं उचित जस तस तब करब बहोरि ।।

यह सुनकर उत्तम व्रत को धारण करने वाले भरत ने अभिषेक के लिये रखी हुई कलश आदि सब सामग्री की प्रदक्षिणा की और वहां उपस्थित सब लोगों को इस प्रकार उत्तर दिया—सज्जनों ! आप लोग बुद्धिमान् हैं, आप को मुझ से ऐसी बातें नहीं करनी चाहियें। हमारे कुल में सदा ज्येष्ठ पुत्र ही राज्य का अधिकारी होता आया है और यही उचित भी है।

अस्मिन्कुले ही सर्वेषां ज्येष्ठो राज्येऽभिषिच्यते।
अपरे भ्रातरस्तस्मिन् प्रवर्तन्ते समाहिताः ।।
सततं राजपुत्रेषु ज्येष्ठो राज्याभिषिच्यते।
राज्ञामेतत् समं तत्स्य त्इक्ष्वाकूणां विशेषतः ।।

इस कुल में जो सब से बड़ा होता है, उसी का राज्याभिषेक होता है, दूसरे भाई सावधानी के साथ बड़े की आज्ञा के अधीन रह कर कार्य करते हैं,—मन्त्रीवरो ! मैं राज्य नहीं चाहता, और न ही कभी मैं ने अपनी माता से इस सम्बन्ध में बात ही की। महाराज ने जिस अभिषेक का निश्चय किया था मुझे उसका पता तक नहीं था। महात्मा श्रीराम के बनवास तथा सीता जी एवं लक्ष्मण के निर्वासन का मुझे ज्ञान नहीं है कि वह कब और कैसे हुआ।

श्री राम चन्द्र जी हम लोगों के बड़े भाई हैं, अतः वे ही राजा होंगे। उन के बदले मैं ही चौदह वर्ष तक वन में निवास करूंगा।—अभिषेक के लिये संचित हुई इस सारी सामग्री को आगे करके मैं श्री राम से मिलने वन में चलूंगा और उन नरश्रेष्ठ श्री राम जी का वहीं अभिषेक करके यज्ञ से लाई जाने वाली अग्नि के समान उन्हें आगे करके अयोध्या में ले आऊंगा। अपनी माता कहलाने वाली कैकयी को मैं कदापि सफल मनोरथ नहीं होने दूंगा।

पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु ।।
हित हमार सियपति सेवकाई।
सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ।।
जाउं राम पहिं आयसु देहू।
कैकेई सुअ कुटिलमति राम बिमुख गत लाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोह बस मोहिं से अधम के राज ।।

मोहि राजु हठि देइहहु जबहीं ।
रसा रसातल जाइहि तबहीं ॥
मोहि समान को पाप निवासू ।
जेहि लगि सीय राम बनबासू ॥
मैं सठु सब अनरथ कर हेतू ।
बैठ बात सब सुनउं सचेतू ॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अबासू ।
रहे प्रान सहि जग उपहासू ॥
जीवन लाहु लखन भल पावा ।
सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥
मोर जनम रघुबर बन लागी ।
झूठ काह पछिताउं अभागी ॥
आपनि दारुन दीनता कहउं सबहि सिरु नाइ ।
देखें बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ ॥
आन उपाउ मोहि नहिं सूझा ।
को जिय कै रघुबर बिनु बूझा ॥
एकहिं आंक इहइ मन माहीं ।
प्रात काल चलिहउं प्रभु पाहीं ॥
जद्यपि मैं अनभल अपराधी ।
भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी ।
छमि सब करिहहिं कृपा बिसेषी ॥

जद्यपि जनमु कमातु तें मैं सठु सदा सदोस ।
आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस ॥
भरत बचन सब कहं प्रिय लागे ।
राम सनेह सुधां जनु पागे ॥
मातु सचिव गुर पुर नर नारी ।
सकल सनेहं बिकल भए भारी ॥
भरतहि करहिं सराहि सराही ।
राम प्रेम मूरति तनु आही ॥
अवसि चलिअ बन रामु जहं भरत मन्त्रु भल कीन्ह ।
सोक सिंधु बूड़त सबहि तुम्ह अवलंबनु दीन्ह ॥
भा सब कें मन मोद न थोरा ।
जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके ।
भरतु प्रानप्रिय भे सबही के ॥
धन्य भरत जीवनु जग माही ।
सीलु सनेहु सराहत जाहीं ॥
संपति सब रघुपति कै आही ।
जौं बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
बिप्र बृन्द चढ़ि बाहन नाना ।
चले सकल तप तेज निधाना ॥
नगर लोग सब सजि सजि जाना ।
चित्रकूट कहं कीन्ह पयाना ॥
सौंपि नगर सुचि सेवकनि सादर सकल चलाइ ।
सुमिरि राम सिय चरन तब चले भरत दोउ भाइ ॥
पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग ।
करत राम हित नेम ब्रत परिहरि भूषन भोग ॥
चलत पयादें खात फल पिता दीन्ह तजि राजु ।
जात मनावन रघुबरहि भरत सरिस को आजु ॥
अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउं निरबान ।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन ॥

निषाद राज की राम भक्ति परम प्रशंसनीय है । उन्होंने भरत की नीयत पर शक किया । ऐसा तो नहीं कि भरत श्री राम को सदा के लिये समाप्त करने जा रहे हों ।

कारन कवन भरतु बन जाहीं ।
है कछु कपट भाउ मन माहीं ॥

परन्तु अल्प समय में ही निषाद राज का यह अज्ञान दूर हो गया । भरत राम से लड़ने नहीं जा रहे हैं, वे उन्हें मनाने जा रहे हैं ।—
रामहि भरतु मनावन जाहीं ।

देखि भरत कर सीलु सनेहू ।
भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥
एहि बिधि भरत सेनु सबु संगा ।
दीखि जाइ जग पावनि गंगा ॥

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू ।
सकल सुखद सेवक सुरधेनू ॥
जोरि पानि वर मागउं एहू ।
सीय राम पद सहज सनेहू ॥

श्री राम चरित मानस में भरत चरित्र बड़ा ही सुन्दर है—यदि आज के नेतागण उस से शिक्षा प्राप्त करें तो निःसन्देह राष्ट्र की सभी समस्याओं का सहज में ही निदान मिल सकता है। हमारे अपने जमाने के कांग्रेसी राजा—महाराजा—लंगोटी वाले गान्धी बाबा के चेले यदि अपने जीवन को अपने दादा गुरु लंगोटी वाले फकीर के सांचे में ढ़ाल लें, अपनी कहनी और करनी को एक बना लें, आकाश का स्वर्ग सहज में ही धरती पर उतर आए—भरत लाल ने गंगा जी को पार किया । सेवकों ने घोड़े सामने लाकर खड़े कर दिये,—आगे सौ सवासौ मील की यात्रा है, सवारी के लिये घोड़े तैयार हैं—भरत लाल बोले—घोड़ों पर चढ़ कर चलने में मुझे कोई आपत्ति नहीं परन्तु मैं केवल इतना जानना चाहता हूं मेरे स्वामी श्री राम जब यहां से गगे थे, वे कैसे गये थे—? वे ता पैदल गये थे। भरत लाल बोले,—जब मेरा स्वामी पैदल चला,—मैं उन का सेवक !!! मैं घोडों की सवारी पर जाऊ ?—

रामु पयादेहि पायं सिधाए ।
हम कहं रथ गज बाजि बनाए ॥
सिर भर जाउं उचित अस मोरा ।
सब तें सेवक धरमु कठोरा ॥

भरत तीसरे पहर कहं कीन्ह प्रबेसु प्रयाग ।
कहत राम सिय राम सिय उमगि उमगि अनुराग ॥

इस प्रकार शीघ्र ही गंगा जी को पार कर सभी लोग महामुनी भरद्वाज के आश्रम की ओर चले। वहां अपने साथी संगियों को पीछे छोड़ कर भाई शत्रुघ्न् एवं महामुनि वसिष्ठ के साथ भरत जी आश्रम पर गये और प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी मुनिवर भरद्वाज को आश्रम में बैठे देख उन्हें अति भक्ति पूर्वक साष्टाङ्ग प्रणाम किया । मुनीश्वर को जब मालूम हुआ कि वे दशरथनन्दन भरत हैं, तब उन्होंने प्रीतिपूर्वक उनकी पूजा की और उन्हें जटा वल्कलादि धारण किये देख कुशल प्रश्न के अनन्तर पूछा—भाई भरत राज्य शासन करते हुए तुमने आज यह वल्कलादि कैसे धारण कर लिये और इस मुनिजन सेवित तपोवन में तुम किस लिये आये हो ।

भरद्वाज के ये वचन सुनकर भरत ने नेत्रों में जल भर कर कहा—"भगवन् ! आप सब जानते हैं, क्योंकि आप सर्वान्तर्यामी हैं । फिर भी आप जो पूछ रहे हैं, वह मेरे ऊपर आपकी कुछ कृपा ही है । कैकयी ने श्रीरामचन्द्रजी के राज्याभिषेक में विघ्न उपस्थित करने वाला और वनवासादि विषयक जो कुछ कार्य किया है, हे मुनिश्रेष्ठ ! आपके चरणों की साक्षी करके कहता हूं, मुझे उसके विषय में कुछ भी पता नहीं था" ऐसा कह उन्होंने अति आर्त्तचित्त हो मुनि के चरण-युगल पकड़कर कहा—"भगवन् ! आप स्वयं जान सकते हैं कि मैं दोषी हूं या निर्दोष । हे स्वामिन् ! महाराज राम के रहते हुए मुझे राज्य से क्या प्रयोजन है ? हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं तो सदा से ही श्रीरामचन्द्र जी का दास हूं । अतः हे मुनिनाथ ! मैं श्रीरामचन्द्रजी के पास जाकर उनके चरण-कमलों में पड़कर यह सारी राजपाट की सामग्री उन्हें यहीं सौंप दूंगा । तथा वसिष्ठ आदि पुरजन और जनपदवासियों के साथ मिलकर उनका राज्याभिषेक कर अयोध्या ले जाऊंगा और अति तुच्छ दास के

समान उन लक्ष्मीपति की सेवा करूंगा।

मुनीश्वर ने भरत के ये उद्गार सुनकर उन्हें हृदय से लगा लिया और विस्मयपूर्वक सिर सूंघकर उनकी प्रशंसा करने लगे। वे बोले—"बेटा! अपने ज्ञान चक्षुओं से मैंने पहले ही ये होने वाली बातें जान ली थीं। तुम शोक न करो तुम तो लक्ष्मण की अपेक्षा भी राम के परम भक्त हो।

भरत बचन सुनि माझ त्रिबेनी।
भइ मृदु बानि सुमंगल देनी॥
तात भरन तुम्ह सब बिधि साधू।
राम चरन अनुराग अगाधू॥
बादि गलानि करहु मन माहीं।
तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाहीं॥
तनु पुलकेउ हियं हरषु सुनि बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर हरषित बरषहिं फूल॥
प्रमुदित तीरथराज निवासी।
बैखानस बटु गृही उदासी॥
कहहिं परसपर मिलि दस पांचा।
भरत सनेहु सीलु सुचि सांचा॥
सुनत राम गुन ग्राम सुहाए।
भरद्वाज मुनिबर पहिं आए॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे।
मूरतिमंत भाग्य निज लेखे॥
धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे।
दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे।
चहत सकुच गृहं जनु भजि पैठे॥
मुनि पूंछब कछु यह बड़ सोचू।
बोले रिषि लखि सीलु संकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई।
बिधि करतब पर कछु न बसाई॥
तुम्ह गलानि जियं जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥

न दोषेणावगन्तव्या कैकयी भरत त्वया।
राम प्रवाजनं तु ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति॥
देवानां दानवानाँ च ऋषीणाँ भवितात्मनाम।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्रजनादिह॥

भरत! तुम कैकयी के प्रति दोष दृष्टि न करो। श्रीराम का यह वनवास भविष्य में बड़ा ही सुखद होगा। श्रीराम के वन में जाने से देवताओं दानवों तथा परमात्मा का चिन्तन करने वाले महर्षियों का इस जगत में हित होने वाला है।

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं।
पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं।
उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा।
लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु बरस तुम्हारा।
सहित पयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जसु जगु जयऊ।
कहि अस पेम मगन मुनि भयऊ॥

हे भरत! सुनो, श्री राम चन्द्र के मन में तुम्हारे समान प्रेम पात्र दूसरा कोई नहीं है। लक्ष्मण, श्री राम और सीता तीनों को रात्रि भर उस दिन अत्यन्त प्रेम के साथ तुम्हारी सराहना करते ही बीती! प्रयाग राज में जब वे स्नान कर रहे थे, उस समय मैं ने उन का यह मर्म जाना कि वे तुम्हारे प्रेम में मग्न हो रहे थे। हे भरत, मेरा तो मत यह है कि तुम तो मानोशरीर धारी श्रीराम जी के प्रेम ही हो।—हे भरत! सुनो, हम झूठ नहीं कहते। हम उदासीन हैं, तपस्वी हैं, और वन में रहते हैं। सब साधनों का उत्तम फल हमें लक्ष्मण जी, श्री राम जी और सीता जी का दर्शन प्राप्त हुआ। उस महान् फल का परम फल यह तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराज

समेत हमारा बड़ा भाग्य है। भरत, तुम धन्य हो, तुम ने अपने यश से जगत् को जीत लिया है।

भरद्वाज मुनि के वचन सुन कर सभासद हर्षित हो गये। साधु-साधु कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाये।

अब सम्पूर्ण समाज ने चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। चित्रकूट में चित्त को लगा भरत लाल ऐसे चले मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किये हुए हो।

तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥
नहि पद त्रान सीस नहिं छाया॥
पेमु नेमु ब्रत धरमु अमाया॥

न तो उन के पैरों में जूते हैं, और न सिर पर छाया है। श्रीराम चन्द्र जी के ठहरने की जगहों और वृक्षों को देख कर उन के हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। भरत जी की यह दशा देख कर देवता फूल बरसाने लगे, पृथ्वी कोमल हो गई और मार्ग मंगल का मूल बन गया;बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देने वाली सुन्दर वायु बह रहा है।

किएं जाहि छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहं जस भा भरतहि जात।
देखि दसा सुर बरिसहि फूला।
भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥
देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू।
जगु भल भलेहि पोच कहुं पोचू॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई।
रामहि भरतहि भेंट न होई॥
रामु संकोची प्रेम बस भरत सपेम पयोधि।
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥

इस प्रकार भरत लाल को चित्रकूट जाते देख, देवता थर्रा उठे। यदि श्री राम भरत के आगे प्रेम वश झुक गये और श्री अवध वापस लौट गये तो ?—उस समय देवराज अपने गुरु वृहस्पति से बोले, प्रभो ? वही उपाय कीजिये जिस से श्री राम चन्द्र जी और भरत की भेंट ही न हो।

श्री राम संकोची और प्रेम के वश हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं। बनी-बनाई बात बिगड़ने लगी है, इस लिये कुछ छल ढूंढ कर इस का उपाय कीजिये।

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने।
सहसनयन बिनु लोचन जाने॥
मायापति सेवक सन माया।
करइ त उलटि परइ सुरराया॥
सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी।
भरत राम आयस अनुसारी॥

देवगुरु ने इन्द्र को समझाया। तीव्र वेग से बह रही भरत रूपी भक्ति-धारा को रोकना कठिन ही नहीं असम्भव ही है। इस लिये अब ऐसा प्रयास मत कीजिये।

साधारण वेष में भरत-शत्रुघ्न पैदल चल रहे हैं। लक्ष्मण, सीता जी तथा श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते जा रहे हैं। जहां-जहां श्री राम जी ने निवास किया और विश्राम किया था, वहां वहां वे प्रेम सहित प्रणाम करते हैं:—मार्ग में गांवों की स्त्रियां दोनों राजकमारों को देख-देख कर आश्चर्य से कह रही हैं, सखी ! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं। इन की अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है। शील, स्नेह उन्हीं के सदृश है और चाल भी उन्हीं की है परन्तु सीता जी संग नहीं हैं और साथ में सेना चल रही है, फिर इनके चेहरों पर वैसी प्रसन्नता भी नहीं है।

जहं जहं राम बास बिश्रामा।
तहं तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा॥
नगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ॥
कहहिं सपेम एक एक पाहीं।
रामु लखनु सखि होंहि कि नाहीं॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली।
सीलु सनेहु सरिस सम चाली॥
बेषु न सो सखि सीय न संगा।
आगें अनी चली चतुरंगा॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा।
सखि संदेह होइ एहिं भेदा॥
मनहीं मन मागहिं बरु एहू।
सीय राम पद पदुम सनेहू॥

भरत लाल के शुभागमन की बात अब चित्रकूट के दिव्य-पुरुषों के लिये कोई लुकी-छिपी बात नहीं थी। —लक्ष्मण थे शेषावतार गोस्वामी जी महाराज एक बार यहां भी लखन लाल के रौद्ररूप का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन करते हैं। भरत सेना सहित आ रहे हैं, इस लिये ताकि चौदह वर्ष के पश्चात् भी श्री राम अपना अधिकार प्राप्त न कर सकें:—बस फिर क्या था, बोले—

आजु राम सेवक जसु लेऊँ।
भरतहि समर सिखावन देऊं॥
अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान॥

उस समय लक्ष्मण जी को शांत करते हुए श्रीराम बोले—लक्ष्मण! निसन्देह तुमने बड़ी सुन्दर बात कही है। हे भाई! राज्य का मद सब से कठिन मद है। जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया वे ही राजा राजमद रूपी मदिरा का आचमन करते हैं, मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है, अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य मद नहीं होने का क्या कभी कांजी की बूंदों से क्षीर समुद्र नष्ट हो सकता है, अन्धकार भले ही सूर्य को निगल जाय, आकाश भले ही बादलों में समाकर मिल जाय, गौ के खुर इतने जल में अगस्त्य जी डूब जायं और पृथ्वी चाहे अपनी स्वभाविक क्षमा को छोड़ दे. मच्छर की फूंक से चाहे सुमेरु उड़ जाय, परन्तु हे भाई! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिता जी की सौगंध खाकर कहता हूं, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है। हे तात! गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिला कर विधाता इस अदृश जगत् को रचता है, परन्तु भरत ने सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस रूप जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया। गुण रूप दूध को ग्रहण कर और अवगुण रूपी जल को त्याग कर भरत ने अपने यश से जगत् में उजियाला कर दिया है।

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ।
पेम पयोधि मगन रघुराऊ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
बिधि प्रपंच महं सुना न दीसा॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥
भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ॥
सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपा निकेत॥

समेत हमारा बड़ा भाग्य है। भरत, तुम धन्य हो, तुम ने अपने यश से जगत् को जीत लिया है।

भरद्वाज मुनि के वचन सुन कर सभासद हर्षित हो गये। साधु-साधु कहकर सराहना करते हुए देवताओं ने फूल बरसाये।

अब सम्पूर्ण समाज ने चित्रकूट की ओर प्रस्थान किया। चित्रकूट में चित्त को लगा भरत लाल ऐसे चले मानो साक्षात् प्रेम ही शरीर धारण किये हुए हो।

तेहि बासर बसि प्रातहीं चले सुमरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा भरत सरिस सब साथ॥
नहि पद त्रान सीस नहिं छाया॥
पेमु नेमु व्रत धरमु अमाया॥

न तो उन के पैरों में जूते हैं, और न सिर पर छाया है। श्रीराम चन्द्र जी के ठहरने की जगहों और वृक्षों को देख कर उन के हृदय में प्रेम रोके नहीं रुकता। भरत जी की यह दशा देख कर देवता फूल बरसाने लगे, पृथ्वी कोमल हो गई और मार्ग मंगल का मूल बन गया;बादल छाया किये जा रहे हैं, सुख देने वाली सुन्दर वायु बह रहा है।

किएं जाहि छाया जलद सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहं जस भा भरतहि जात।
देखि दसा सुर बरिसहि फूला।
भइ मृदु महि मगु मंगल मूला॥
देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू।
जगु भल भलेहि पोच कहुं पोचू॥
गुर सन कहेउ करिअ प्रभु सोई।
रामहि भरतहि भेंट न होई॥
रामु संकोची प्रेम बस भरत सपेम पयोधि।
बनी बात बेगरन चहति करिअ जतनु छलु सोधि॥

इस प्रकार भरत लाल को चित्रकूट जाते देख, देवता थर्रा उठे। यदि श्री राम भरत के आगे प्रेम वश झुक गये और श्री अवध वापस लौट गये तो ?—उस समय देवराज अपने गुरु बृहस्पति से बोले, प्रभो ? वही उपाय कीजिये जिस से श्री राम चन्द्र जी और भरत की भेंट ही न हो।

श्री राम संकोची और प्रेम के वश हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं। बनी-बनाई बात बिगड़ने लगी है, इस लिये कुछ छल ढूंढ कर इस का उपाय कीजिये।

बचन सुनत सुरगुरु मुसुकाने।
सहसनयन बिनु लोचन जाने॥
मायापति सेवक सन माया।
करइ त उलटि परइ सुरराया॥
सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी।
भरत राम आयस अनुसारी॥

देवगुरु ने इन्द्र को समझाया। तीव्र वेग से बह रही भरत रूपी भक्ति-धारा को रोकना कठिन ही नहीं असम्भव ही है। इस लिये अब ऐसा प्रयास मत कीजिये।

साधारण वेष में भरत-शत्रुघ्न पैदल चल रहे हैं। लक्ष्मण, सीता जी तथा श्री रघुनाथ जी का स्मरण करते जा रहे हैं। जहां-जहाँ श्री राम जी ने निवास किया और विश्राम किया था, वहां वे प्रेम सहित प्रणाम करते हैं:—मार्ग में गांवों की स्त्रियां दोनों राजकमारों को देख-देख कर आश्चर्य से कह रही हैं, सखी ! ये राम-लक्ष्मण हैं कि नहीं। इन की अवस्था, शरीर और रंग-रूप तो वही है। शील, स्नेह उन्हीं के सदृश है और चाल भी उन्हीं की है परन्तु सीता जी संग नहीं हैं और साथ में सेना चल रही है, फिर इनके चेहरों पर वैसी प्रसन्नता भी नहीं है।

जहं जहं राम बास बिश्रामा।
तहं तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥
नगबासी नर नारि सुनि धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब मुदित जनम फलु पाइ ॥
कहहिं सपेम एक एक पाहीं।
रामु लखनु सखि होंहि कि नाहीं ॥
बय बपु बरन रूपु सोइ आली।
सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥
बेषु न सो सखि सीय न संगा।
आगें अनी चली चतुरंगा ॥
नहिं प्रसन्न मुख मानस खेदा।
सखि संदेह होइ रहिं भेदा ॥
मनहीं मन मागहिं बरु एहू।
सीय राम पद पदुम सनेहू ॥

भरत लाल के शुभागमन की बात अब चित्रकूट के दिव्य-पुरुषों के लिये कोई लुकी-छिपी बात नहीं थी। —लक्ष्मण थे शेषावतार गोस्वामी जी महाराज एक बार यहां भी लखन लाल के रौद्ररूप का सार्वजनिक रूप से प्रदर्शन करते हैं। भरत सेना सहित आ रहे हैं, इस लिये ताकि चौदह वर्ष के पश्चात् भी श्री राम अपना अधिकार प्राप्त न कर सकें:—बस फिर क्या था, बोले—

आजु राम सेवक जसु लेऊँ।
भरतहि समर सिखावन देऊं ॥
अति सरोष माखे लखनु लखि सुनि सपथ प्रवान।
सभय लोक सब लोकपति चाहत भभरि भगान ॥

उस समय लक्ष्मण जी को शांत करते हुए श्रीराम बोले—लक्ष्मण! निसन्देह तुमने बड़ी सुन्दर बात कही है। हे भाई! राज्य का मद सब से कठिन मद है। जिन्होंने साधुओं की सभा का सेवन नहीं किया वे ही राजा राजमद रूपी मदिरा का आचमन करते हैं, मतवाले हो जाते हैं। हे लक्ष्मण सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है, अयोध्या के राज्य की तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का पद पाकर भी भरत को राज्य मद नहीं होने का क्या कभी कांजी की बूंदों से क्षीर समुद्र नष्ट हो सकता है, अन्धकार भले ही सूर्य को निगल जाय, आकाश भले ही बादलों में समाकर मिल जाय, गौ के खुर इतने जल में अगस्त्य जी डूब जायं और पृथ्वी चाहे अपनी स्वभाविक क्षमा को छोड़ दे, मच्छर की फूंक से चाहे सुमेरु उड़ जाय, परन्तु हे भाई! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता। हे लक्ष्मण! मैं तुम्हारी शपथ और पिता जी की सौगंध खाकर कहता हूं, भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है। हे तात! गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल को मिला कर विधाता इस अदृश जगत् को रचता है, परन्तु भरत ने सूर्यवंश रूपी तालाब में हंस रूप जन्म लेकर गुण और दोष का विभाग कर दिया। गुण रूप दूध को ग्रहण कर और अवगुण रूपी जल को त्याग कर भरत ने अपने यश से जगत् में उजियाला कर दिया है।

कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ।
पेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा।
विधि प्रपंच महं सुना न दीसा ॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना।
सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना ॥
भरतहि होइ न राजमदु विधि हरिहर पद पाइ।
कबहुं कि कांजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ ॥
सुनि रघुबर बानी बिबुध देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो प्रभु को कृपा निकेत ॥

जौं न होत जग जन्म भरत को।
सकल धरमधुर धरनि धरत को॥
कबिकुल अगम भरत गुन गाथा।
को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा॥

चलते-चलते यह समूचा समाज मन्दाकिनी पहुँचा। स्नान के पश्चात् सब को नदी के समीप ठहरा कर तथा माता, गुरु और मन्त्री की आज्ञा मांग कर निषादराज और शत्रुघ्न को साथ लेकर भरत जी वहां को चले जहां श्री सीता जी और श्रीरघुनाथ जी थे। इस समय भरत की दशा कैसी है? जैसा जल के प्रवाह में जल के भौंरे की होती है।

राम सैल सोभा निरखि भरत हृदयं अति पेमु।
तापस तप फलु पाइ जिमि सुखी सिराने नेमु।
जहां बैठि मुनि गन सहित नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई।
कहत प्रीति सारद सकुचाई॥
पेय अमिय मंदरु बिरहु भरत पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित कृपासिन्धु रघुबीर॥

आगे बढ़ने पर भरत जी ने दूर ही से राम का मुनिजन सेवित अति सुन्दर और भासमान सुन्दर भवन देखा जिस में वृक्ष की शाखा पर बल्कल वस्त्र और मृगचर्म टंगे हुए थे और श्री राम चन्द्र जी के वास करने के कारण जो परम रमणीक था। तदनन्तर श्री भरत जी अति मग्न मन से सीता और राम के चरण चिन्हों से सुशोभित आश्रम के समीप अति सुन्दर और पवित्र स्थल पर पहुंचे, वहां उन्होंने सब ओर भगवान् रामचन्द्र के वज्र, अंकुश, कमल और ध्वजा आदि के चिन्हों से सुशोभित चरण चिन्ह देखे।

इस प्रकार जिनका हृदय अद्भुत प्रेम रस से भरा हुआ है, मन रघुनाथ जी की भावना में डूबा हुआ है तथा वक्षःस्थल आनन्दाश्रुओं से भीगा हुआ है, वे भरत जी धीरे-धीरे श्री हरि के आश्रम के निकट पहुँचे। कुटिया के निकट पहुंच भरतने एक पवित्र एवं विशाल वेदी देखी, जहां अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। पर्णशाला की ओर थोड़ी देर तक देख कर भरत ने कुटिया में बैठे हुए अपने पूजनीय भ्राता श्रीराम को देखा, जो सिर पर जटा-मण्डल धारण किये हुए थे। उन्होंने अपने अंगों में कृष्ण मृगचर्म तथा चीर एवं बल्कल वस्त्र धारण कर रखे थे। समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के स्वामी, धर्मात्मा, महाबाहु श्री राम सनातन ब्रह्म की भांति कुश बिछी वेदी पर बैठे थे। उन्हें देखते ही भरत जी ने दौड़ कर हर्ष और शोक युक्त होकर तुरन्त उनके चरण युगल पकड़ लिये।

अत्यन्त दुःख से संतप्त होकर महाबली राजकुमार भरत ने एक बार दीन वाणी में "आर्य" कह कर पुकारा। फिर वे कुछ बोल न सके।

उक्तवाऽऽर्येति सकृद्दीनं पुनर्वाचो न किंचन्।

आंसुओं से उनका गला रुंध गया था। यशस्वी श्रीराम की ओर देखकर वे "हा आर्य" कहकर चीख उठे। इससे आगे उन से कुछ बोला न जा सका। फिर शत्रुघ्न ने भी रोते-रोते श्री राम के चरणों में प्रणाम किया। श्रीराम ने उन दोनों को उठा कर छाती से लगा लिया, फिर वे भी नेत्रों से आंसुओं की धारा बहाने लगे। तत्पश्चात् राम और लक्ष्मण शत्रुघ्न और निषादराज से मिले, मानो आकाश में सूर्य और चन्द्रमा, शुक्र और बृहस्पति मिल रहे हों।

भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन।
सकल सुमंगल सदनु सुहावन ॥
करत प्रबेस मिटे दुख दावा।
जनु जोगीं परमारथु पावा ॥
बेदी पर मुनि साधु समाजु।
सीय सहित राजत रघुराजू ॥
बलकल बसन जटिल तनु स्यामा ॥
जनु मुनि बेष कीन्ह रति कामा।
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाईं।
भूतल परे लकुट की नाईं ॥
बरबस लिये उठाई उर लाए कृपानिधान।
भरत राम की मिलनि लखि बिसरे सबहि अपान ॥

जटा और चीर वस्त्र धारण किये भरत हाथ जोड़ कर पृथ्वी पर पड़े थे, मानो प्रलय काल में सूर्य देव धरती पर गिर गये हों। श्री राम ने भाई सहित भरत को अपने हाथ से पकड़ कर उठाया और उनका मस्तक सूंघ कर उन्हें हृदय से लगा लिया। इसके पश्चात् रघुकुल भूषण भरत को गोद में बिठा कर श्रीराम ने बड़े आदर से पूछा—

क्व न तेऽभूत् पिता तात यदरण्यं त्वमागता।
न हि त्वं जीवतस्तस्य वनमागन्तु मर्हसि ॥
कच्चिन्न धरते तात राजा यत् त्वमिहागतः।
कच्चिन्नदीनः सहसा राजा लोकान्तरं गतः ॥

भाई! पिता जी कहां थे कि तुम इस बन में आये हो। उनके जीते जी तो तुम बन में नहीं आ सकते थे।

तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि।
जोरि पानि बिनवत प्रणामु करि ॥
नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुर लोगु।
सेवक सेनप सचिव सब आए बिकल बियोगु ॥

उस समय निषादराज हाथ जोड़ कर बोले—हे नाथ! मुनिनाथ वशिष्ठ के साथ सब माताएं, नगर निवासी, सेवक, सेनापति, मन्त्री सब आपके वियोग से व्याकुल होकर आये हैं।

चले सबेग रामु तेहि काला।
धीर धरम धुर दीनदयाला ॥
गुरहि देखि सानुज अनुरागे।
दंड प्रणाम करन प्रभु लागे ॥
मंगल मूरति लोचन भरि भरि।
निरखहिं हरषि दंडवत करिकरि ॥

फिर प्यासी गौएँ जिस प्रकार जल की ओर दौड़ती हैं उसी प्रकार कौशल्या आदि समस्त माताएं रघुनाथ जी को देखने के लिये बड़ी शीघ्रता से चलीं। रामजी ने अपनी माता को देखते ही शीघ्रता से उठकर उनका चरण बन्दन किया और उन्होंने अत्यन्त दुःख से नेत्रों में जल भर कर पुत्र को हृदय से लगाया। फिर रघुनाथ जी ने उसी प्रकार अन्य माताओं को भी प्रणाम किया। तदनन्तर मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ जी को आते देख उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम कर बारम्बार कहने लगे—"मैं धन्य हूं, मैं धन्य हूं।"

गुरु जी के दर्शन कर लक्ष्मण सहित श्री रामचन्द्र जी प्रेम में भर गये। दण्डवत प्रणाम किया। मुनिश्रेष्ठ ने श्री राम को हृदय से लगा लिया।

भेंटी रघुबर मातु सब करि प्रबोध परितोष।
अंब ईस आधीन जगु काहु न देइअ दोषु।
सानुज मिलि पल महुँ सब काहू।
कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाहीं।
जिमि घट कोटि एक रबि छाहीं ॥

दया की खान, सुजान भगवान् श्री राम जी ने सब लोगों को दुखी जाना। तब जो जिस भाव से मिलने को अभिलाषी था, उस उसका उस-उस प्रकार को रुख रखते हुए उन्हों ने लक्ष्मण सहित

पल भर में सब किसी से मिलकर उनके दुःख और कठिन संताप को दूर किया। भगवान् शंकर बोले, पार्वती! श्री राम जी के लिये यह कोई बड़ी बात नहीं है, जैसे करोड़ों घड़ों में एक ही सूर्य के पृथक-पृथक छाया प्रतिबिम्ब एक साथ ही दिखाई देता है।

महिसुर मन्त्री मातु गुर गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय भरत लखन रघुनाथ।
सीय आइ मुनिबर पग लागी।
उचित असीस लही मन भागी॥
सासु सकल जब सीयँ निहारीं।
मूदे नयन सहमि सुकुमारीं॥
लागि लागि पग सबनिसिय भेंटति अति अनुराग हृदय असीसहि पेम बस रहिअहु भरी सोहाग।
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा।
कहे कछुक परमारथ गाथा॥
नृप कर सुरपुर गवन सुनावा।
सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
सोक विकल अति सकल समाजू।
मानहुँ राजु अकाजेउ आजु॥

पिता जी की मृत्यु का समाचार जान कर राम जी को परम दुःख हुआ। उस दिन शोक संतप्त सभी ने जल तक का पान नहीं किया।

दूसरे दिन सवेरा होने पर मुनि वशिष्ठ जी ने श्री रघुनाथ जी को जो-जो आज्ञा दी वह सब कार्य प्रभु रामचन्द्र जी ने श्रद्धा भक्ति सहित आदर के साथ किये। वेदों में जैसा कहा गया है, उस के अनुसार पिता की क्रिया की। वह दूसरा दिन भी बिना भोजन के ही पिताश्री के शोक में व्यतीत हुआ—उस दिन दोनों भाई भरत एवं श्रीराम को वार्तालाप का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ—श्री राम बोले, भरत लाल! तुम वनों में क्यों आये। भरत लाल बोले, यह तो मैं आप से पूछने आया हूं आप मेरे आने की प्रतीक्षा किये बिना इतनी जल्दी जंगल में क्यों आए। श्री राम बोले, पिता श्री ने माता कैकयी को यह वरदान दिया था कि श्री अवध के राज्य का उत्तराधिकार कैकयी के पुत्र को प्राप्त होगा। भरत जी बोले, आर्य! पिताजी ने वरदान देकर मेरी माता को संतुष्ट कर दिया और माता ने यह राज्य मुझे दे दिया, अब मैं अपनी ओर से इसे आपकी ही सेवा में समर्पित करता हूं, आप ही इसका पालन कीजिए। अयोध्या के इस विशाल साम्राज्य का पालन आपके सिवा और किसी से होना कठिन है। जैसे अन्य साधारण पक्षी गरुड़ की चाल नहीं चल सकते, उसी प्रकार मुझ में आपकी गति का—आपकी पालन-पद्धति का अनुकरण करने की शक्ति नहीं है। आप सब से श्रेष्ठ हैं, सब का पालन करने की शक्ति रखने वाले स्वामी हैं।' इस प्रकार श्री राम से राज्य-ग्रहण करने के लिए प्रार्थना करते हुए भरतजी की बात सुनकर नगर के भिन्न भिन्न मनुष्यों ने उसका भलीभांति अनुमोदन किया। तब अत्यन्त धीर एवं पवित्र अन्तःकरणवाले भगवान् श्रीराम ने भरत को दुःखी देखकर इस प्रकार समझाया—भाई! मनुष्य अपनी इच्छा के अनुसार कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि यह पराधीन होने के कारण असमर्थ है। काल इसे इधर-उधर खींचता रहता है। संयोग का अन्त वियोग, जीवन का अन्त मरण है। जिस प्रकार मजबूत खम्भेवाला मकान भी पुराना होने पर गिर जाता है, उसी प्रकार जरा मृत्यु के वश में पड़े हुए मनुष्य भी नष्ट हो जाते हैं। दिन-रात लगातार बीत रहे हैं और संसार में सभी प्राणियों की आयु का तीव्र गति से नाश कर रहे

हैं। लोग सूर्योदय होने पर प्रसन्न होते हैं, सूर्यास्त होने पर भी खुश होते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि प्रतिदिन अपने जीवन का नाश हो रहा है। जैसे महासागर में बहते हुए दो काठ कभी एक दूसरे से मिल जाते हैं और कुछ काल के वाद अलग भी हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्री, पुत्र कटुम्ब और धन भी मिलकर बिछुड़ जाते हैं। इनका वियोग अवश्यंभावी है। इस जगत् में कोई भी प्राणी भावीवश प्राप्त होने वाले जन्म-मरण का उल्लङ्घन नहीं कर सकता। हमारे पूर्वज पिता-पितामह आदि जिस मार्ग से गये हैं, उस पर जाना अनिवार्य है। जिसको लाँघने का कोई उपाय नहीं है, उस मार्ग पर स्थित हुआ मनुष्य किसी के लिए शोक क्यों करें? अवस्था दिन-दिन ढल रही है, वह लौट कर आ नहीं सकती—यह सोच कर आतमा को कल्याण के साधन धर्म में लगाना चाहिये, क्योंकि सभी लोग अपना कल्याण चाहते हैं। तात,हमारे पिता धर्मात्मा थे, उन्होंने बड़ी-बड़ी दक्षिणाएं देकर अनेकों श्रेष्ठ यज्ञों का अनुष्ठान किया था। वे सत्पुरुषों द्वारा सम्मानित थे, अतः स्वर्गवासी हो जाने पर भी वे शोक करने के योग्य नहीं हैं। उन्होंने जराजीर्ण मानव शरीर का परित्याग करके दैवी सम्पत्ति प्राप्त की है जिससे ब्रह्मलोक में बिहार कर रहे हैं। कोई भी विद्वान, जो तुम्हारे या मेरे समान शास्त्रों का ज्ञाता और बुद्धिमान् है, वह पिता जी के लिए शोक नहीं कर सकता। धीर एवं प्रज्ञावान् पुरुष को प्रत्येक अवस्था में यह नाना प्रकार के शोक, विलाप तथा रोदन त्याग देने चाहियें। इस लिए तुम शान्त हो जाओ, शोक न करो और यहां से जा कर अयोध्या में निवास करो, क्योंकि तुम्हारे लिए पिताजी की ऐसी ही आज्ञा है। पुण्यकर्मा पिता जी ने मुझे भी जहाँ रहने का आदेश दिया है, वहीं रहकर मैं उनकी आज्ञा का पालन करूंगा।

तब धर्मात्मा भरत ने धर्म परायण श्री राम से अद्भुत वचन कहा—'रघुनन्दन! इस जगत् में आपकी बराबरी करने वाला कौन है? कोई भी दुःख आपको व्यथित नहीं कर सकता। कितनी ही प्रिय बात हो जाये, आप हर्ष से फूल नहीं उठते। वृद्ध पुरुषों के सम्माननीय होकर भी आप उनसे सन्देह की बात पूछते हैं। जैसे मरे हुए जीव का अपने शरीर आदि से कोई सम्बन्ध नहीं रहता उसी प्रकार जीते जी भी वह उस के सम्बन्ध से रहित है, जैसे वस्तु के अभाव से उसके प्रति राग द्वेष नहीं होता, वैसे ही उसके रहने पर भी मनुष्य राग-द्वेष से शून्य होना चाहिये। जिसे ऐसी विवेकयुक्त बुद्धि प्राप्त हो गयी उसको संताप क्या होगा? जिसे आपके समान आत्मा और अनात्मा का ज्ञान है, वह संकट पड़ने पर भी विषाद नहीं कर सकता। आप देवताओं की भांति सत्त्वगुण से युक्त, सत्यप्रतिज्ञ, सर्वज्ञ, सब के साक्षी और बुद्धिमान हैं, ऐसे उत्तम गुणों से युक्त और जन्म-मरण के रहस्य को जानने वाले आपके पास असह्य दुःख नहीं आ सकता। मैं जब परदेश में था, उस समय नीच विचार रखने वाली मेरी माता ने मेरे लिये जो पाप कर डाला, वह मुझे अभिष्ट नहीं है। अतः आप उसे क्षमा करके मुझ पर प्रसन्न हों। मैं धर्म के बन्धन में बंधा हुआ हूं, इसी लिये इस पाप करने वाली एवं दण्डनीय माता को मैं कठोर दण्ड देकर मार नहीं डालता। कौन ऐसा मनुष्य है, जो धर्म को जानते हुए भी स्त्री का प्रिय करने की इच्छा से ऐसा निन्दित कर्म कर सकता है? लोक में एक प्राचीन

किंवदन्ती है कि अन्त काल में सब प्राणी मोहित हो जाते हैं—उनकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। राजा दशरथ ने ऐसा कठोर कर्म करके उस किंवदन्ता को सत्य कर दिया। पिता जी ने क्रोध, मोह और साहस के कारण ठीक समझ कर धर्म का उल्लङ्घण किया है, उसे आप पलट दें—उस का संशोधन कर दें। आप पिता के सत्पुत्र हैं। अतः उनके अनुचित कर्म का समर्थन न कीजिये। उन्होंने उस समय जो कुछ किया है, वह धर्म की सीमा से बाहर हैं, संसार में धीर पुरुष उसकी निन्दा करते हैं। कैकयी, मैं, पिता जी, मित्रगण, बन्धु बन्धव, पुरवासी तथा राष्ट्र की प्रजा—इन सब की रक्षा के लिये आप मेरी प्रार्थना स्वीकार करें। कहाँ वनवास और कहाँ क्षात्र-धर्म, कहाँ जटा धारण और कहाँ प्रजा का पालन। ऐसे परस्पर विरोधी कर्म आपको नहीं करने चाहियें। क्षत्रिय के लिये पहला धर्म यह है कि उसका राज्य पर अभिषेक हो, जिससे वह प्रजा की भली भांति रक्षा कर सके। यदि आप क्लेशसाध्य धर्म का आचरण करना चाहते हैं,—तो धर्मानुसार चारों वर्णों का पालन करते हुए ही कष्ट उठाइये। धर्मज्ञ पुरुष चारों आश्रमों में गार्हस्थ्य को ही श्रेष्ठ और उत्तम बतलाते हैं, फिर आप उसे क्यों त्यागना चाहते हैं ? मैं बुद्धि और गुण दोनों से हीन हूं तथा मेरा स्थान आप से बहुत छोटा है, आपके बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। पिता के इस समूचे श्रेष्ठ राज्य का आप बन्धु-बान्धवों के साथ धर्मानुसार पालन कीजिये। मन्त्रों के ज्ञाता महर्षि वसिष्ठ आदि ऋत्विज तथा मन्त्री, सेना और प्रजा आदि समस्त प्रकृतियाँ भी यहाँ उपस्थित हैं। ये सब लोग यहीं आपका राज्याभिषेक करें और आप अयोध्या को लौट चलें। वहाँ देवता, ऋषि और पितरों का ऋण चकायें, दुष्टों का भली भांति दमन करें तथा मित्रों की इच्छाएँ पूर्ण करते हुए मुझे धर्म की शिक्षा देते रहें। भैया ! आप पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, मेरा और मेरी माता का कलंक धोकर पूज्य पिता जी को भी निन्दा से बचाइये। मैं आपके चरणों में माथा टेककर याचना करता हूं, मुझ पर दया कीजिये। जैसे महादेवजी सब प्राणियों पर अनुग्रह करते हैं, उसी प्रकार आप भी अपने बन्ध-बान्धवों पर कृपा कीजिये। यदि आप मेरी प्रार्थना ठुकरा कर यहां से बनको ही जायँगे तो मैं भी आपके साथ चलूँगा।

गुरु पद कमल प्रनामु करि बैठे आयसु पाइ।
बिप्र महाजन सचिब सब जुरे सभासद आइ ॥

तीसरे दिन परम पवित्र चित्रकूट में सार्वजनिक सभा जुटी। उस सभा में महामुनि अत्रि, महामुनि विश्वामित्र, महामुनि बाल्मीकि,—महामुनि वशिष्ठ, सुमन्त्र,जावाली सभी महापुरुष उपस्थित थे। थोड़े समय के लिये सभास्थल पर नितान्त खामोशी छायी रही – अन्ततोगत्वा महामुनि वशिष्ठ खड़े हुए, बोले ! आज के इस समागम का उद्देश्य आप सभी को विदित है। जो घटनाचक्र चला, उस की यहां पर पुनरावृत्ति करना न आवश्यक ही है, न उस के विस्तार में जाने का समय ही है। घटना चक्र जितनी तीव्र गति से घूमा, हम सब लोग स्वयं सोच में हैं, यह हो कैसे गया। ..जो कुछ हुआ निःसन्देह उसे टाला जा सकता था, परन्तु होनी टल न सकी। सूर्य कुल के सूर्य महाराज श्री राम चन्द्र आज भी हमारे राजा हैं,—श्री राम सत्यप्रतिज्ञ हैं वेद की मर्यादा के रक्षक हैं, धर्म धुरन्धर मानों स्वतन्त्र भगवान् हैं। उन का प्रकाश जगत् के कल्याण के लिये हुआ है। वे गुरु, पिता और माता के वचनों के अनुसार चलने वाले हैं। दुष्टों के दल का नाश करने वाले और देवताओं के

परम हितकारी हैं। नीति, प्रेम, परमार्थ, स्वार्थ को श्री राम के समान यथार्य तत्व से कोई नहीं जानता।—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, सभी कर्म और काल, पृथ्वी एवं पाताल के भूमिपाल—जहां तक इन सब की प्रभुता का प्रश्न है और योग की सिद्धियां जो वेद और शास्त्र में गायी गई हैं,—मैं निष्ठा-पूर्वक कह सकता हूं श्री राम जी की आज्ञा इन सभी के सिर पर है। आप इसे मेरी अन्धश्रद्धा कहिये, राम जी के प्रति अनन्य निष्ठा कहिये परन्तु श्री राम को जैसा मैं देखता हूँ, जैसा में समझा हूँ वैसे ही मैं अपने शब्दों में उन का वर्णन कर रहा हूं। इस लिये मैं समझता हूं कि, यद्यपि हमें यह अधिकार है कि अपना विचार निर्भयता के साथ प्रकट करें, परन्तु "राखें राम रजाइ रुख हम सब कर हित होइ।" जो श्री राम जी की इच्छा होगी उसी इच्छा को नत-मस्तक होकर स्वीकार कर लेने में हम सब का भला होगा। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, श्री राम जी के राज्याभिषेक को मैं सभी के लिये परम सुखदायक समझता हूँ :—

सब कहुँ सुखद राम अभिषेकू।
मंगल मोद मूल मग एकू॥

हम सभी लोग यहां एक ही बात पर विचार करने के लिये उपस्थित हुए हैं "केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ।" श्री रघुनाथ जी वापस अयोध्या किस प्रकार चलें।

उस समय अपने प्रस्ताव की व्याख्या को बढ़ाते हुए वशिष्ठ बोले—यह समस्या जिस का आज सामना करना पड़ रहा है एक परिवार की व्यक्तिगत समस्या नहीं—इस समस्या के साथ समूचे राष्ट्र के भविष्य का सम्बन्ध है। जितनी गम्भीर यह समस्या है उस पर विचार भी उसी गम्भीरता से करना होगा, और इस समस्या को सुलझाने का कोई न कोई मार्ग निकालना ही होगा।

हम कुछ सन्तों ने मिल कर एक रास्ता निकाला है। वह फार्मूला यह है—"श्री राम लक्ष्मण सीता श्रीअवध लौट चले और पिता श्री के वचनों को सत्य सिद्ध करने के लिये, बदले में Exchange में भरत-शत्रुघ्न बनों में रहें—

कुलगुरु का यह प्रस्ताव सुन कर दोनों भाई भरत एवं शत्रुघ्न गद-गद हो गये।

सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता।
भे प्रमोद परिपूरन गाता॥
मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा॥
जनु जिय राउ रामु भए राजा॥

भरत लाल का चेहरा खिल उठा। उन्हें इतनी प्रसन्नता हुई मानों राजा दशरथ जी उठे हों, मानों श्री रामचन्द्र राजा हो गये हों।—भरत लाल बोले,—महामुनि ने जो प्रस्ताव उपस्थित किया है; मैं हृदय से उस प्रस्ताव का समर्थन करता हूँ—परन्तु इस प्रस्ताव में मैं एक संशोधन चाहता हूं।

कानन करउँ जनम भरि बासू।
एहि तें अधिक न मोर सुपासू॥

चौदह वर्ष नहीं, बल्कि मैं जीवन पर्यन्त बन में रहूंगा। जीवन भर नहीं जन्म-जन्मान्तर में मुझे वनों में ही रहना पड़े मैं यह प्रस्ताव स्वीकार करता हूं।—मेरे लिये इस से बढ़ कर सुख सौभाग्य की दूसरी बात नहीं है। अब शीघ्रातिशीघ्र इस प्रस्ताव को कार्यरूप में लाइये।

अन्तरजामी रामु सिय तुम्ह सरबग्य सुजान।
जौं फुर कहहु त नाथ निज कीजिअ बचन प्रवान॥

But the Prime-minister was playing a double-game.

ऊपर से वे अन्तःराष्ट्रीय संसार में भारत की एवं भरत की स्थिति को सुदृढ़ बना रहे थे, परन्तु अन्दर से वे श्री राम को बनों में ही रखना चाहते थे उस समय महामुनि ने सहज में ही अपनी बातचीत के प्रवाह को बदला, बोले—

बोले मुनिवरु बचन बिचारी।
देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहु राम सरबग्य सुजाना।
धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥
सब के उर अंतर बसहू जानहू भाउ कुभाउ॥
पुरजन जननी भरत हित होउ सो कहिअ उपाउ॥

मैं समझता हूं, स्वयं श्री राम इस सम्बन्ध में अपना निर्णय दें तो हम सब के लिये श्रेयस्कर हो, केवल अपने निजी स्वार्थ को ध्यान में रखने वाला प्राणी कभी उचित निर्णय पर पहुंच नहीं सकता। आरत लोग कभी विचार कर ही नहीं सकते। जुआरी को अपना ही दांव सूझता है।—जहां तक मेरा अपना सम्बन्ध है, ठीक-ठाक निर्णय पर पहुंच सकना मेरे लिये भी दुष्कर है, क्योंकि "मोरे जान भरत रुचि राखी"—मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वशोभूत हो गई है।—मेरा यह विचार है कि भरत लाल जी को एक और अवसर प्रदान किया जाये। उनसे प्रार्थना की जाय, वे अपने हृदय की बात खुल कर सभा के सामने उपस्थित करें।

पहले भरत जी का पक्ष आदर पूर्वक हम सुन लें, पीछे—"करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।" इन सब कसौटियों पर कसकर सर्वश्रेष्ठ निर्णय किया जायगा।

शरीर से पलकित होकर भरत जी सभा में खड़े हो गये। कमल से नेत्रों में प्रेमाश्रुओं की एक प्रकार से बाढ़ आ गयी—वे बोले, मेरे हृदय की बात स्वयं मुनिनाथ ने कह दी—मेरे लिये कहने को कुछ शेष रह नहीं गया। अपने स्वामी का स्वभाव मैं जानता हूं। मेरे स्वामी, मेरे गुरु मेरे प्रभु, मेरे सब कुछ—इतने दयालु हैं, कृपालु हैं कि वे अपराधी पर भी कभी क्रोध नहीं करते, मुझ पर तो उनकी विशेष कृपा और स्नेह है, मैं ने खेल में भी कभी उनकी अप्रसन्नता नहीं देखी, बचपन से ही मैं ने उनका साथ नहीं छोड़ा और उन्होंने भी मेरे मन को कभी नहीं तोड़ा। मैं ने प्रभु की कृपा की रीति को हृदय में भली भांति देखा है, अनुभव किया है। मेरे हारने पर भी खेल में प्रभु मुझे जिता देते रहे हैं। मैं ने भी प्रेम और संकोच वश कभी सामने मुंह नहीं खोला। प्रेम के प्यासे मेरे नेत्र आज तक प्रभु के दर्शन से तृप्त नहीं हुए। परन्तु विधाता मेरा दलार सह न सका। विवाह के तुरन्त पश्चात् मुझे कैकय देश मामा-नाना के यहां भेज दिया गया। मेरी अनुपस्थिति में जान बूझ कर एक भयानक ड्रामा खेला गया।

मेरी माता को निमित्त बना कर मेरे और मेरे स्वामी के बीच अन्तर डाल दिया, दोनों के बीच की प्रेम की जंजीरों को तोड़ कर घृणा की एक दीवार खड़ी कर दी। परन्तु मैं किसी पर दोषारोपण क्यों करूं। मेरा अभाग्य ही अथाह समुद्र है—आप ने मुझे कहा है मैं अपने विचार प्रकट करूं, मैं अपने हृदय में सब ओर खोज कर हार गया। अपनी भलाई का कोई साधन मुझे नज़र नहीं आता। मेरे गुरु महाराज सर्व समर्थ हैं और श्री सीता राम मेरे स्वामी हैं। सन्तों की उपस्थिति में गुरु जी और स्वामी के समीप इस पवित्र तीर्थ-स्थान में मैं सत्य भाव से कहता हूं, मेरे अन्तःकरण की बात को परम पूज्य गुरुदेव भी जानते हैं और स्वामी भी।

परिस्थिति यह है कि प्रजा व्याकुल है, राम जी के वियोग को वह सह नहीं सकती। मातायें और भी अधिक व्याकुल हैं और मैं इस समूचे अनर्थ की जड़ हूं।

अब करुनाकर कीजिअ सोई।
जन हित प्रभु चित छोभु न होई।

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
न तरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥

हे नाथ! आप के लौटने में सभी का स्वार्थ है और आपकी आज्ञा पालन में करोड़ों प्रकार से कल्याण है। राजतिलक की सारी सामग्री सजा कर लायी गयी है। जो प्रभु का मनमाने तो इस का उपयोग कीजिये। छोटे भाई शत्रुघ्न समेत मुझे वन में भेज दीजिये और स्वयं अवध लौट कर अपना अभिषेक करवाये।

इधर जब यह चर्चा चल रही थी, एकाएक सभा स्थल पर समाचार पहुंचा, जिसने बात चीत के प्रवाह की दिशा को ही बदल दिया—"मिथिलाधिपति महाराज जनक सपरिवार समस्त राजदरबार सहित चित्रकूट पधारने ही वाले हैं—रामायण का इतिहास भी कितना रहस्य पूर्ण है। चौदह वर्ष के लिए सीता जी वनों में जा रही हैं, पिता जी से मिल कर जाना तो क्या, जानकी जी ने इस सम्बन्ध में अपने माता-पिता को सूचना तक नहीं दी। दो टके की चिट्ठी तक नहीं लिखी और चौदह वर्ष का वियोग, पुत्री का माता-पिता से। यह समाचार जनक जी महाराज से क्यों छिपा कर रखा गया? चाहिये तो यह था कि जिस दिन राम वनवास की रचना रची जा रही थी, तत्काल जनक जी को, विश्वामित्र एवं परशुराम जी को अयोध्या जी में लाया जाता। यदि तत्काल अयोध्या को छोड़ना आवश्यक ही था तो सर्व-प्रथम जनकपुर जाकर वहां अपने प्रिय जनों को मिलकर पश्चात् जनकपुर से भी प्रयाग जाया जा सकता था।

परन्तु न तो श्रीराम जी ने जनक जी को सूचित किया, न जानकी जी ने, न कुल गुरु वशिष्ठ ने और स्वयं भरत जी ने भी अयोध्या पहुंच कर जनक जी को सूचित नहीं किया। महाराज दशरथ की अन्त्येष्टी में भी जनक जी नहीं पधारे।

परन्तु महाराज जनक की दृष्टि बराबर अयोध्या की ओर लगी थी।

रामायण का ही प्रसंग है :—

इधर श्री अवध में यह लीला हो रही थी, उधर मिथिला पुरी भी शांत न थी। अयोध्या में इतनी बड़ी घटना धट जाय और जनकपुरी तक यह समाचार न पहुंचे यह तो कल्पना की ही बात हो सकती है। उस समय जनक जी ने अपने चार गुप्तचर अयोध्या भेजे—जाओ! अवध में जाकर इस बात का अध्ययन करो, भविष्य के बारे में भरत के दिमाग में क्या कल्पनाएं हैं—

नृपहिं धीर धरि हृदयं बिचारी।
पठए अवध चतुर चर चारी॥
बूझि भरत सति भाउ कुभाउ।
आएहु बेगि न होइ लखाउ॥

गए अवध चर भरत गति बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत चार चले तेरहूति॥

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी।
जनक समाज जथामति बरनी॥

विश्वसनीय दूतों से जनक जी ने श्री अवध की वास्तविक स्थिति का अध्ययन किया। भरत श्रीराम को लौटाने जा रहे हैं, यदि ऐसा हो गया तो मामला कैसे सरेगा—विना स्वयं चित्र-

कूट गये यह कार्य बनेगा नहीं । जनक जी को चित्रकूट पहुंचने में कितनी जल्दी थी—non stop run—

घरी साधि चले ततकाला।
किए बिश्रामु न मग महिपाला॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा।
चले जमुन उतरन सबु लागा॥
सुनत जनक आगवनु सबु हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़ सोच बिबस सुरराजु।

मिथिलाधिपति को आते देख सूर्य कल-कमल श्रीराम सभा सहित जल्दी से उठ खड़े हुए। सभी लोग जनक जी की अगवानी में चले। सर्वप्रथम जनक जी ने महामुनि वसिष्ठ के चरण छुए, श्रीराम ने भी शतानन्द आदि जनकपुर वासी ऋषियों को प्रणाम किया । भ्राताओं सहित राम जी राजा जनक जी से मिल कर उन्हें समाज सहित आश्रम पर लाये । सीता जी ने माता सुनयना को प्रणाम किया।

वह दृश्य बड़ा ही रोमांचकारी था, जिस समय महाराजाधिराज मिथिलेश्वर ने अपनी प्राणों से प्यारी पुत्री को तपस्विनी के वेष में देखा—

तापस वेष जनक सिय देखी।
भयउ पेमु परितोष विसेषी॥
पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ।
सुजस धवल जगु कह सबुकोऊ॥
जिति सुरसरी कीरति सरि तोरी।
गवनु कीन्हु बिधि अंड करोरी॥
गंग अवनि थल तीनि बडेरे॥
एहिं किए साधु समाज घनेरे॥

महाराज जनक के शुभागमन ने समूचे वातावरण को ही वदल दिया। अयोध्या वासियों को आशा की किरणें दिखायी देने लगीं, श्रीराम जनक जी का कहना तो कभी मोड़ ही नहीं सकते।

चौथे दिन प्रातः सीता जी की माता सुनयना कौशल्या, सुमित्रा एवं कैकयी को मिलने उन के स्थान पहुंची—माता कौशल्या बोलीं—दुःख- सुख हानि-लाभ सब काल के अधीन है, कर्म की गति कठिन है, उसे विधाता ही जानता है, जो शुभ-अशुभ सब प्रकार के फलों का देने वाला है। ईश्वर की आज्ञा सभी के सिर पर है। श्री राम, लक्ष्मण और सीता के वन जाने परिणाम अच्छा ही होगा—बुरा नहीं—मुझे राम की इतनी चिन्ता नहीं जितनी चिन्ता भरत की है।

लखनु रामु सिय जाहुँ भल परिनाम न पोचु।
गहवरि हियं कह कौसिला मोहि भरत कर सोचु।

ईश्वर के अनुग्रह एवं आप के आशीर्वाद से मेरे चारों पुत्र और चारों बहुएं गंगा जी के जल के समान पवित्र हैं। हे सखी ! मैं ने आज तक कभी श्रीराम जी की सौगन्ध नहीं खाई। आज मैं श्रीराम जी की शपथ करके सत्य भाव से कहती हूं भरत के शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वती जी की बुद्धि भी हिचकती है—मैं भरत को सदा कुल का दीपक जानती हूं। महाराज श्री ने भी मुझे अनेकों बार ऐसा कहा था। फिर कौशल्या सुनयना से बोली—महारानी जी! मेरा यह विचार है आप जनक जी को कहिये, वे ऐसा कोई मार्ग निकालें जिस से लक्ष्मण जी तो अयोध्या में रह जायें और लक्ष्मण के स्थान पर भरत लाल बनों में श्री राम जी के साथ रहें। मुझे भरत का अत्यधिक सोच है। भरत के मन में गूढ़ प्रेम है । उनके घर में रहने में मुझे भलाई जान नहीं पड़ती।

कौशल्या जी का स्वभाव देखकर और उनकी सरल और उत्तम वाणी को सुनकर रानियां करुण रस में निमग्न हो गयीं। आकाश से पुष्प वर्षा की झड़ी लग गयी और धन्य धन्य की ध्वनि होने लगी। सिद्ध, मुनि, योगी स्नेह से शिथिल हो गये—रात्री बहुत बीत गयी थी, उस समय माता सुमित्रा जी बोलीं—अब विश्राम करना चाहिए। उस समय माता कौशल्या प्रेम सहित सद्भाव से बोली—अच्छा अब आप पधारिये, हमारे तो अब ईश्वर ही गति है, अथवा मिथिलेश्वर जनक ही सहायक हैं—'हमरे तो अब ईस गति कै मिथिलेश सहाय' कौशल्या जी के प्रेम को देखकर और उनके विनम्र वचनों को सुनकर जनक जी की प्रिय पत्नी ने उनके पवित्र चरण पकड़ लिये और कहा—हे देवि! आप राजा दशरथ की बड़ी रानी और श्री राम जी की माता हैं आप के लिये ऐसी नम्रता उचित ही है। प्रभु अपने नीच जनों का भी आदर करते हैं। अग्नि धूएं को और पर्वत तृण को अपने सिर पर धारण करते हैं। हमारे राजा तो कर्म, मन और वाणी से आपके सेवक हैं और सदा सहायक तो श्री महादेव—पार्वती जी हैं। आप का सहायक होने योग्य जगत् में कौन है? दीपक सूर्य की सहायता करने जा कर कोई शोभा पा सकता है?

रामु जाइ बन करि सुर काजू।
अचल अवध पुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहुबल।
सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा।
देबि न होइ मुधा मुनि भाषा॥

श्री राम चन्द्र जी वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे। देवता, नाग, और मनुष्य सब रामचन्द्र जी की भुजाओं के बल पर—अपने अपने स्थानों में सुखपूर्वक बसेंगे। यह सब याज्ञवलक्य मुनि ने पहले ही से कह रक्खा है। हे देवि! मुनि का कथन व्यर्थ नहीं हो सकता।

उधर मातायें विचार मग्न थीं, इधर महापुरुष भी चुप-चाप नहीं थे। राजर्षि एवं ब्रह्मर्षि के मध्य निरन्तर विचार-परामर्श चल रहा था। महाराज जनक ने एक सुझाव पेश किया।—"लक्ष्मण जी से प्रार्थना की जाये वे श्री राम के प्रतिनिधि के रूप में श्री अवध लौट कर शासन-सूत्र सम्भालें और इन के स्थान पर भरत लाल, श्री राम जी के साथ वनों में रहें।"

प्रातः काल श्री रघुनाथ जी स्नान करके गुरु वशिष्ठ एवं जनक जी के चरणों में उपस्थित हुए—हाथ जोड़ बोले—भरत, अवधपुरवासी तथा मातायें शोक से व्याकुल हैं, बनवास से दुखी हैं, मिथिला से पधारने वाले महापुरुषों को भी विशेष क्लेश सहना पड़ रहा है इस लिये, हे नाथ जो उचित हो, शीघ्र इस बात का निर्णय किया जाय। आप के हाथ सभी का हित है।

महाराज अब कीजिय सोई।
सब कर धरम सहित हित होई॥

ग्यान निधान सुजान सुचि धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल॥

उस समय महाराज जनक एवं महामुनि वशिष्ठ भरत कुटि पर पधारे। भरत जी ने आकर उन्हें आगे होकर लिया और समयानुकूल शुभ आसन दिये। महाराज जनक बोले, भरत! तुम को श्री राम जी का स्वभाव मालूम ही है। राम जी सत्यव्रती एवं धर्म परायण हैं, सब का शील और स्नेह रखने वाले हैं। इसी लिए वे

संकोचवश संकट सह रहे हैं। अब तुम जो आज्ञा दो, वह उन से कही जाये।

जनक जी ने अपना फारमूला पेश किया— Replacing Bharat for Lakshman— लक्ष्मण अयोध्या लौटें उन के स्थान पर भरत वनों में रहें। परन्तु भरत जी इस के साथ सहमत नहीं हुए, लक्ष्मण के लौटने का अर्थ ही कुछ नहीं, बनवास तो राम को हुआ था।"

जनक जी के आ जाने से अयोध्यावासियों के हौसले बुलन्द हो गये थे। उन सब की एक ही आवाज़ थी।

राजा रामु जानकी रानी।
आनंद अवधि अवध रजधानी॥
सुबस बसउ फिरि सहित समाजा।
भरतहि रामु करहुं जुबराजा॥
एहि सुख सुधां सींचि सब काहू।
देव देहु जग जीवन लाहू॥
गुर समाज भाइन्ह सहित रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माग सबु कोउ॥

स्थिति बड़ी विचित्र थी। अन्त में राजा जनक, भरत एवं वशिष्ठ तीनों पुनः श्री राम जी की सेवा में उपस्थित हुए। देवता घबरा से गए। सर्वप्रथम उन्हों ने वशिष्ठ जी की दशा देखी, फिर विदेह जी के विशेष स्नेह को देखा. तब रामभक्ति से ओत-प्रोत भरत जी को देखा। इन सब को देख कर देवता हृदय में हार मान गये। देवराज इन्द्र चिन्तित हो गये, हो सकता है बना बनाया खेल बिगड़ जाय।

देवं प्रथम कुलगुरु गति बेखी।
निरखि बिदेह सनेह बिसेषी॥
राम भगतिमय भरतु निहारे।
सुर स्वारथी हहरि हिंयं हारे॥
सब कोउ राम पेममय पेखा।
भए अलेख सोच बस लेखा॥
रामु सनेह सकोच बस कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि नांहि तो भयउ अकाजु॥
सुरगन सहित सभय सुरराजू।
सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत कछु नाहीं।
राम सरन सब गे मन माहीं॥
लगि-लगि कान कहहिं मुनि नाथा।
अब सुर काज भरत के हाथा॥

उस समय देवगणों सहित देवराज इन्द्र भयभीत होकर सोचने लगे,—बना बनाया काम बिगड़ना चाहता है। कुछ उपाय करते नहीं बनता। तब वे अपने मन ही मन राम की शरण में गये। सब देवता परस्पर कानों में लग-लग कर और सिर धुन-धुन कर कहने लगे—अब देवताओं का काम केवल मात्र भरतजी के हाथ में है।

सुरन्ह सुमिरि सरदा सराही।
देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया।
पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥

देवताओं ने सरस्वती का स्मरण कर उनकी सराहना की और कहा, हे देवि! देवता आप के शरणागत हैं, उन की रक्षा कीजिये। अपनी माया रच कर भरत जी की बुद्धि को फेर दीजिये।

चित्रकूट के उस महामिलन का आज सातवां दिन था,—भरत किसी मूल्य पर भी अवध लौटने के लिये तैयार नहीं थे। अवध की प्रजा भरत के साथ श्री राम को भी अवध वापस ले जाने के लिये कटिबद्ध थी। जनक जी एवं वशिष्ठ जी इस पक्ष में थे कि राम वनों में अवश्य जायें। राम कुटी के बाहर कुम्भ का मेला सा लग गया। उस समय जावालि बीच में पड़ते

हुए बोले,—राम ! आप भरत लाल की बात मान लें।

श्री राम बोले, जावालि जी ! राजा एक ऐसा दर्पन होता है, जिस के प्रकाश में जनता अपना प्रतिबिम्ब देखती है। "यथा राजा तथा प्रजा।" यदि मैं ही अपने प्रतिज्ञा पालन से मुंह मोड़ लूंगा तो साधारण प्रजा का क्या बनेगा। पिता श्री ने मुझे जो आज्ञा दी है, मैं कोई कारण नहीं समझ पाता कि मैं उस आज्ञा का उल्लंघण करूं।

प्रभु रामचन्द्र के इन शब्दों को सुन कर जावालि तो चुप हो गया, आगे कुछ बोला नहीं।

परन्तु भरत का सारा शरीर थर्रा उठा। वे लड़खड़ाती हुई जबान से हाथ जोड़ कर श्री रामचन्द्र जी से बोले,—महाप्राज्ञ ! आप इस राज्य को स्वीकार करके दूसरे किसी को इस के पालन का भार सौंप दीजिये। मैं अकेला इस विशाल साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सकता तथा आप के चरणों में अनुराग रखने वाले इन पुरवासी तथा जनपदवासी लोगों को भी आप के बिना प्रसन्न नहीं रख सकता।

ऐसा कहकर भरत अपने भाई के चरणों पर गिर पड़े। उस समय उन्हों ने श्री रघुनाथ जी से अत्यन्त प्रिय वचन बोल कर उन से राज्य ग्रहण करने के लिये पुनः प्रार्थना की—

तब श्रीराम ने भाई भरत को उठा कर गोद में बिठा लिया और मदमत्त हंस के समान मधुर स्वर में स्वयं ही बात की—

तात, भरत ! तुम्हें जो यह स्वाभाविक विनयशील बुद्धि प्राप्त हुई है इस बुद्धि के द्वारा तुम समस्त भूमण्डल की रक्षा करने में भी पूर्ण रूप से समर्थ हो सकते हो। शत्रुघ्न तुम्हारी दक्षिण भुजा बनेगा—महामुनि वशिष्ठ, वामदेव सरीखे सन्त तुम्हारे मार्ग-दर्शक हैं, तुम्हें चिन्ता किस बात की है। चन्द्रमा से उसकी प्रभा अलग हो जाये, हिमालय हिम का परित्याग कर दे, अथवा समुद्र अपनी सीमा को लांघ कर आगे बढ़ जाए, किन्तु मैं पिता की प्रतिज्ञा तोड़ नहीं सकता।

कृपा सिन्धु श्री राम ने सुन्दर बाणी से भरत जी का सम्मान करके हाथ पकड़ कर उन को अपने पास बिठा लिया। भरत जी की बिनती सुन कर और उनका स्वभाव देख कर सारी सभा स्नेह से शिथिल हो गयी।

धरम धुरीन धीर नय नागर।
सत्य सनेह सील सुख सागर॥
देस कालु लखि समय समाजू।
नीति प्रीति पालक रघुराजू॥
बोले बचन बानि सरबसु से।
हित परिनाम सुनत ससि रसु से॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना॥
लोक वेद बिद प्रेम प्रबीना॥

करम बचन मानस बिमल तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुर समाज लघु बंधु गुन कुसमयँ किमि कहि जात॥

धर्म धुरन्धर, धीर, नीति में चतुर, सत्य, स्नेह शील और सुख के समुद्र, नीति और प्रीति के पालक रघुनाथ जी, देश, काल अवसर और समाज को देख कर बोले—बड़े भाई को यह शोभा नहीं देता कि छोटे भाई के मुँह पर उस की प्रशंसा करे, परन्तु रघुवंश का यह परम सौभाग्य है कि उसे भरत जैसा नर रत्न मिला। भरत जैसे भाई को अपने उत्तराधिकारी के रूप में पाकर मुझे आज जितनी प्रसन्नता हो रही है, शब्द नहीं मेरे पास जिन के द्वारा मैं अपने हृदय की भावना को व्यक्त करूं। यह सब महामुनि गुरुदेव की तपस्या का पुण्य प्रताप है और

मिथिलेश के पावन आशीर्वाद का फल है कि आज पिताश्री की छत्रछाया सिर पर से उठ जाने पर भी हम अपने को अनाथ नहीं समझ रहे। गुरुजनों के आशीर्वाद से हम सनाथ हैं।

नाथ सपथ पितु चरन दुहाई।
भयो न भुवन भरत सम भाई॥

गुरुदेव के पदारविन्द की सौगंध और पिता जी के चरणों की दुहाई है। मैं सत्य कहता हूं भरत के समान कोई भाई विश्व भर में न हुआ न होगा। तात भरत ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ही ग्लानि करते हो। जीव की गति को ईश्वर के अधीन जानो। तुम सरीखे पवित्र आत्मा वाले के प्रति हृदय में भी कुटिलता का आरोप करने से यह लोक बिगड़ जाता है और परलोक भी नष्ट हो जाता है।

हे लाल ! तुम्हारी, मेरी, परिवार की, घर की और वन की सारी चिन्ता गुरु वसिष्ठ जी और महाराज जनक जी को है। हमारे सिर पर जब गुरुजी, मुनि विश्वामित्र जी और मिथिलापति जनक जी हैं, तब हमें और तुम्हें स्वप्न में भी क्लेश नहीं है। मेरा और तुम्हारा तो परम पुरुषार्थ, स्वार्थ, सुयश, धर्म और परमार्थ इसी में है कि हम दोनों भाई पिता जी की आज्ञा का पालन करें। राजा की भलाई इसी में है। उनके व्रत की रक्षा से ही लोक और वेद दोनों में भला है गुरु,पिता,माता और स्वामी की शिक्षा का पालन करने से कुमार्ग पर भी चलने से पर गड्ढे में नहीं पड़ता। ऐसा विचार कर सब सोच छोड़कर अवध जाकर अवधि भर उसका पालन करो। देश, खजाना, कुटुम्ब, परिवार आदि सबकी जिम्मेदारी तो गुरु जी की चरणरज पर है। तुम तो मुनि वशिष्ठ जी माताओं और मंत्रियों की शिक्षा मानकर तदनुसार पृथ्वी, प्रजा और राजधानी का पालन भर करते रहना।...परन्तु भरत नहीं माने,

अन्ततोगत्वा निराश हो कर सारथी से बोले—सारथे ! आप इस वेदी पर बहुत से कुशा बिछा दीजिये। जब तक आर्य मुझ पर प्रसन्न नहीं होते तब तक यहीं इन के द्वार पर अन्न शन्न करूंगा। जब तक मेरी बात नहीं मानी जायेगी तब तक मैं इसी तरह पड़ा रहूंगा (FAST unto DEATH) भूख हड़ताल !!! यह सुनकर सुमन्त्र राम जी का मुंह ताकने लगे। उन्हें इस अवस्था में देखकर भरत के मन में बड़ा दुःख हुआ और वे स्वयं ही कुश की चटाई बिछा कर जमीन पर बैठ गये।

उस समय महामुनि वशिष्ठ बोले—दुश्मन सिर पर बैठा है और आप चारों भाई यहाँ साधु महात्मा बन कर बैठ गये, देश को कौन संभालेगा ? भरत लाल ! एक बात मैं आप से पूछता हूं—आप ने जो अन्न शन्न की धमकी दी है, यह तुम्हारा अन्न शन्न चलेगा दो-सौ,अढ़ाई सौ दिन। सभी संसद सदस्य यहाँ हैं, सभी राज्याधिकारी यहाँ हैं,—राज परिवार के सभी सदस्य यहाँ हैं, आप के इस अन्न शन्न की बात सुनकर अयोध्या जी में जो लोग पीछे हैं भी, वे भी यहाँ आ जायेंगे इस प्रकार एक महान् देश की राजधानी को अरक्षित समझ यदि रावण के किसी मित्र ने अयोध्या पर पीछे हिमालय की दिशा से आक्रमण कर दिया, राजधानी के उस पतन का अपराधी कौन ?

ततस्त्वृषिगणः क्षिप्रं दशग्रीव वधैषिणः।
भरतं राजशार्दूलमित्यूचुः संगता वचः॥
कुले जात महाप्राज्ञ महावृत्त महायशः।
ग्राह्यं रामस्य वाक्यं ते पितरं यद्यवेक्षसे॥

तदनन्तर दशग्रीव रावण के वध की

अभिलाषा रखने वाले ऋषियों ने मिलकर राजसिंह भरत से तुरंत ही यह बात कही—महाप्राज्ञ ! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न हुए हो। तुम्हारा आचरण बहुत उत्तम और यश महान् है। यदि तुम अपने स्वर्गीय पिता की आत्मा को सुख पहुंचाना चाहते हो तो तुम्हें श्री राम चन्द्र जी की बात मान लेनी चाहिये।

जिन के दर्शनों से जगत् का कल्याण हो जाता है, वे भगवान् श्री राम महर्षियों के वचन से बहुत प्रसन्न हुए। उन का मुख हर्षोल्लास से खिल उठा, इस से उनकी बड़ी शोभा हुई और उन्होंने उन महर्षियों की सादर प्रशंसा की—उस समय कुलगुरु एक बार पुनः भरत को एक ओर ले जाकर उन्हें बाले—

एकान्ते भरतं प्राह वसिष्ठो ज्ञानिनां वरः ।
वत्स गुह्य शृणुष्वेदं मम वाक्यात्सुनिश्चितम् ॥
रामो नारायणः साक्षाद्ब्रह्मणा याचितः पुरा ।
रावणस्य वधार्थाय जातो दशरथात्मजः ॥
योगमायापि सीतेति जाता जनकनन्दिनी ।
शेषोऽपि लक्ष्मणो जातो राममन्वेति सर्वदा ॥
रावणं हन्तुकामास्ते गमिष्यन्ति न संशयः ।
कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम् ॥
सर्वं देवकृतं नोचेदेवं सा भाषयेत्कथम् ।
तस्मात्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥
निवर्तस्व महासैन्यैर्मातृभिः सहितः पुरम् ।
रावणं सकुलं हत्वा शीघ्रमेवागमिष्यति ॥

तब ज्ञानियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ जी ने भरत को एकान्त में ले जाकर कहा, "वत्स ! मैं जो कहता हूं यह सुनिश्चित गुह्य रहस्य की बात सुनो। भगवान् राम साक्षात नारायण हैं। पूर्व काल में ब्रह्माजी के प्रार्थना करने पर उन्होंने रावण को मारने के लिये दशरथ के यहाँ पुत्र रूप से जन्म लिया है। इसी प्रकार योगमाया ने जनकनन्दिनी सीता के रूप से अवतार लिया है और शेष जी लक्ष्मण के रूप से उत्पन्न होकर उनका अनुगमन कर रहे हैं। वे रावण को मारना चाहते हैं इसलिये निस्सन्देह वन को ही जायेंगे। कैकेयी के जो कुछ वरदान आदि और निष्ठुर भाषण आदि कार्य हैं वे सब देवताओं की प्रेरणा से ही हुए हैं, नहीं तो वह ऐसे वचन कैसे बोल सकती थी ? इसलिये हे तात ! तुम राम को लौटाने का आग्रह छोड़ दो। और माताओं तथा महती सेना के सहित अयोध्या को लौट चलो, राम भी कुलसहित रावण का संहार करके वहाँ शीघ्र ही आ जायँगे।"

भरत लाल ने गुरुदेव के चरण पकड़ लिये :—

सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा ।
मुनिपद कमल मुदित सिरु नावा ॥
भरत राम संवाद सनि सकल सुमंगल मूल ।
सुर स्वारथी सराहि कुल बरषत सुरतरुफूल ॥

तब भरत लाल ने दो स्वर्ण पादुकाएँ राम जी के सामने उपस्थित कर दीं। प्रभो ! यह आप की प्रतिनिधि हैं, इन्हें एक बार पहन लीजिये फिर मुझे दे दें। यही चरणपादुकायें चौदह वर्ष तक राज्य का शासन करेंगी।

राष्ट्र गुरु की कृपा ने सारी उलझन सुधार दी। देवताओं की मनो कामना पूर्ण हुई।

श्री राम जी भुजाओं में भरकर भाई भरत से मिल रहे हैं। श्री राम जी के प्रेम का वह आनन्द कहते नहीं बनता। मुनिगण, गुरु वशिष्ठ जी और जनक जी-सरीखे धीर धुरन्धर जो अपने मनों को ज्ञान रूपी अग्नि में सोने के समान कस चुके थे, जिनको ब्रह्मा जी ने निर्लेप ही रचा और जगत-रूपी जल में कमल के पत्ते की तरह ही जगत में रहते हुए भी जगत से

अनासक्त पैदा हुए। वे भी श्री राम जी और भरत जी के उस उपमा रहित अपार प्रेम को देखकर वैराग्य और विवेक सहित तन मन वचन से प्रेम मग्न हो गये।

अधिरोहार्य पादाभ्यां पादुके हेमभूषिते।
एते हि सर्वलोकस्य योगक्षेम विधास्यतः॥

प्रभु करि कृपा पांवरी दीन्हीं।
सादर भरत सीस धरि लीन्हीं॥
चरन पीठ करुणा निधान के।
जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के॥

मागउ बिदा प्रनामु करि राम लिए उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति कुटिल कुअवसर पाइ॥

उन पादुकाओं को प्रणाम करके भरत ने श्री राम से कहा,—रघुनन्दन! मैं भी चौदह वर्षों तक जटा और चीर धारण करके फल मूल का भोजन करता हुआ आप के आगमन की प्रतीक्षा में नगर से बाहर ही रहूंगा। परंतप! इतने दिनों तक राज्य का सारा भार आपकी इन चरण पादुकाओं पर ही रख कर मैं आप की बाट जोहता रहूंगा। रघुवंश शिरोमणे! यदि चौदहवें वर्ष पूर्ण होने पर नूतन वर्ष के प्रथम दिन ही मुझे आप के दर्शन नहीं मिलेंगा तो मैं जलती हुई आग में प्रवेश कर जाऊंगा। श्रीराम चन्द्र जी ने अच्छा कहकर स्वीकृति दे दी और बड़े आदर के साथ भरत को हृदय से लगाया। तत्पश्चात् शत्रुघ्न को भी छाती से लगा कर यह बात कही—

रघुनन्दन! मैं तुम्हें अपनी और माता सीता की शपथ दिला कर कहता हूं कि तुम माता कैकयी की रक्षा करना, उन के प्रति कभी क्रोध न करना—इतना कहते कहते उन की आंखों में आंसू उमड़ आये। उन्होंने व्यथित हृदय से भाई शत्रुघ्न को विदा किया। धर्मज्ञ भरत ने भलीभांति अलंकृत की हुई उन परम उज्जवल चरण पादुकायों को लेकर श्री रामचन्द्र जी की परिक्रमा की तथा उन पादुकाओं को राजा की सवारी में आने वाले सर्वश्रेष्ठ गजराज के मस्तक पर स्थापित किया।

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परम कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर॥

प्रभु गुन ग्राम गनत मन माहीं।
सब चुप चाप चले मग जाहीं॥
जमुना उतरि पार सबु भयउ।
सो बासरु बिनु भोजन गयऊ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू।
रामसखां सब कीन्ह सुपासू॥
सई उतरि गोमतीं नहाए।
चौथे दिवस अवधपुर आए॥
जनकु रहे पुर बासर चारी।
राज काज सब साज संभारी॥

राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपबास।
तजि तजि भूषण भोग सुख जिअत अवधि कीं आस॥

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई।
चले सीस धरि राम रजाई॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने।
बिदा किए हरि हर सम जाने॥
सासु समीप गए दोउ भाई।
फिरे बंदि पग आसिष पाई॥
कौसिक बामदेव जाबाली।
पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥
बथा जोगु करि बिनय प्रनामा।
बिदा किए सब सानुज रामा॥

कुछ दिन तक अयोध्या में ठहर शासन की व्यवस्था कर महाराज जनक मिथिलापुरी चले गये। स्वयं भरत राजधानी से सात मील दूर श्रीराम की तरह पर्णकुटी बना कर रहने लगे।



(७)

निसिचर हीन करउँ मही

त्यक्तवा सुदुस्त्यजसुरेप्सित राज्यलक्ष्मीम् धर्मिष्ठ आर्य वचसा यदगादररायम्।
मायामृगं दयितयेप्सित योऽन्वधावत वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ।।

देवियो एवं भद्र पुरुषो ! !

भरत लाल के लौट जाने पर चित्रकूट निावसी संत राम की सेवा में उपस्थित हुए। उनके चेहरों पर भय और निराशा छाई हुई प्रत्यक्ष दिखाई दे रही थी। विनय एवं नम्रता की साक्षात् प्रतिमूर्ति श्री राम ने बड़े ही अच्छे ढ़ंग से उनकी बात जानना चाही। वे हाथ जोड़ कर वहाँ के कुलपति महर्षि से इस प्रकार बोले— भगवान् ! क्या मुझ में आपको कोई विकृत भाव दृष्टिगोचर हो रहा है अथवा जनकनन्दिनी एवं लक्ष्मण से कोई अपराध हो गया है जिससे यहाँ के तपस्वी मुनि विकार को प्राप्त हो रहे हैं।श्रीराम द्वारा इस प्रकार पूछने पर काँपते हुए कुलपति बोले—

त्वन्निमित्तमिदं तावत् तापसान् प्रतिवर्तते ।
रक्षोभ्यस्तेन संविग्नाः कथयन्ति मिथः कथाः ।।

राम ! आप ही के कारण राक्षसों की ओर से भय उपस्थित होने वाला है, उसी के सम्बन्ध में मुनिमण्डल में यह अर्न्तद्वन्द चल रहा है। तात ! यहाँ बन प्रान्त में रावण का छोटा भाई खर नामक राक्षस है, जिसने जनस्थान में रहने वाले समस्त भारतीयों को उखाड़ डाला है, शरणार्थी बना दिया है। वह बड़ा ही घमण्डी विजयोन्मत्त, क्रूर है। वह आप का नाम सुनते ही उछल पड़ता है।

त्वं यदाप्रभृति ह्यस्मिन्नाश्रमे तात वर्तसे ।
तदा प्रभृति रक्षाँसि विप्रकुर्वन्ति तापसान् ।।

तात ! जब से आप इस आश्रम में रह रहे हैं, तब से राक्षस तापसों को विशेष रूप से सताने लगे हैं। वे दुष्ट राक्षस तपस्वियों की शारीरिक हिंसा का प्रदर्शन करें, इस के पहले ही हम इस आश्रम को त्याग दें।

भगवन् ! खर आपके प्रति भी कोई अनुचित व्यवहार कर बैठे इसके पूर्व ही यदि आप भी यहाँ से चलें जाएं तो अच्छा हो। रघुनन्दन ! यद्यपि आप सदा सावधान रहने वाले तथा राक्षसों के शमन में समर्थ हैं तथापि सीता जी के साथ यहाँ आपका रहना खतरे से खाली नहीं। यद्यपि श्री राम ने उनको बहुत कुछ दिलासा दिया, उनका हौसला बढ़ाया परन्तु वे सन्त माने नहीं चले गये। उन सब ऋषियों

के चले जाने पर श्री रामचन्द्र जी ने इस समस्या पर बारम्बार गम्भीरता-पूर्वक विचार किया तब उन्हें बहुत से ऐसे कारण ज्ञात हुए जिनसे उन्होंने स्वयं भी वहाँ रहना उचित न समझा। उन्होंने मन-ही-मन सोचा, इस आश्रम में मैं भरत से, माताओं से तथा पुरवासी मनुष्यों से मिल चुका हूं। वह समृति मुझे बराबर बनी रहती है और मैं उन लोगों का चिन्तन करके शोकमग्न हो जाता हूँ। अतः स्वयं श्री राम ने उस स्थान को छोड़ देने का निश्चय किया।

सोऽत्रेराश्रममासाद्य तं वन्दे महायशाः।
तं चापि भगवानत्रिः पुत्रवत् प्रत्यपद्यत॥

वहाँ से अत्रि के आश्रम पर पहुँच कर महायशस्वी श्री राम ने उन्हें प्रणाम किया तथा भगवान् अत्रि ने भी उन्हें अपने पुत्र की भांति स्नेह पूर्वक अपनाया।

रघुपति चित्रकूट बसि नाना।
चरित किए श्रुति सुधा समाना॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना।
होइहि भीर सबहिं मोहि जाना।
सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई।
सीता सहित चले द्वौ भाई॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ।
सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाए।
देखि राम आतुर चलि आए॥
करत दंडवत मुनि उर लाए।
प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने।
सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए।
दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥

नमामि भक्त वत्सलं।
कृपालु शील कोमलं॥
भजामि ते पदांबुजं।
अकामिनां स्वधामदं॥
निकाम श्याम सुंदरं।
भवाम्बुनाथ मंदरं॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं।
मदादि दोष मोचनं॥
प्रलंब बाहु विक्रमं।
प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥
निषंग चाप सायकं।
धरं त्रिलोक नायकं॥
दिनेश वंश मंडनं।
महेश चाप खंडनं॥
मुनींद्र संत रंजनं।
सुरारि वृंद भंजनं॥
मनोज वैरि वंदितं।
अजादि देव सेवितं॥
विशुद्ध बोध विग्रहं।
समस्त दूषणापहं॥
नमामि इंदिरा पतिं।
सुखाकरं सतां गतिं॥
भजे सशक्ति सानुजं।
शची पति प्रियानुजं॥
त्वदंघ्रि मूल ये नराः।
भजंति हीन मत्सराः।
पतंति नो भवार्णवे।
वितर्क वीचि संकुले॥
विविक्त वासिनः सदा।
भजंति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इंद्रियादिकं।

प्रयांति ते गतिं स्वकं ॥
तमेकमद्भुतं प्रभुं ।
निरीहमीश्वरं विभुं ॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं ।
तुरीयमेव केवलं ॥
भजामि भाव वल्लभं ।
कुयोगिनां सुदुर्लभं ॥
स्वभक्त कल्प पादपं ।
समं सुसेव्यमन्वहं ॥
अनूप रूप भूपतिं ।
नतोऽहमुर्विजा पतिं ॥
प्रसीद मे नमामि ते ।
पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥

महामुनि अत्रि के आश्रम पर श्री राम जी रात्रि भर रहे सीता जी अनुसुइया जी से मिलीं । गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज ने अनुसुइया के द्वारा जिस पतिव्रत धर्म का वर्णन किया है वह भारतीय संस्कृति की अनुपम देन है । लीजिये उस अमृत वाणी का रसास्वादन कीजिये ।

अनुसुइया के पद गहि सीता ।
मिली बहोरि सुसील बिनीता ॥
रिषिपतिनी मन सुख अधिकाई ।
आसिष देइ निकट बैठाई ॥
दिव्य बसन भूषन पहिराए ।
जे नित नूतन अमल सुहाए ॥
कह रिषिबधू सरस मृदु बानी ।
नारिधर्म कछु ब्याज बखानी ॥
मातु पिता भ्राता हितकारी ।
मितप्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बयदेही ।
अधम सो नारि जो सेव न तेही ॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी ।
आपद काल परिखिअहिं चारी ॥

एकइ धर्म एक ब्रत नेमा ।
कायँ बचन मन पति पद प्रेमा ॥
पति बंचक परपति रति करई ।
रौरव नरक कल्प सत परई ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं ।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित ॥
नगरस्थो बनस्थो वा शुभो वा यदि वाशुभः ।
यासां स्त्रीणां प्रियो भर्ता तासां लोका महोदयाः ॥
दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः ॥

अपने स्वामी नगर में रहें या वन में, भले हों या बुरे, जिन स्त्रियों को वे प्रिय होते हैं, उन्हें महान् अभ्युदयशाली लोकों की प्राप्ति होती है । पति बुरे स्वभाव का मनमाना बर्ताव करने वाला अथवा धनहीन ही क्यों न हो, वह उत्तम स्वभाव वाली नारियों के लिये श्रेष्ठ देवता के समान है ।

जो स्त्री अपने पति पर शासन करती है, मिथिलेश कुमारी ! ऐसी नारियाँ अवश्य ही अनुचित कर्म में फँस कर धर्म से भ्रष्ट हो जाती हैं और संसार में उन्हें अपयश की प्राप्ति होती है, किन्तु जो तुम्हारे समान लोक परलोक को जानने वाली साध्वी स्त्रियाँ हैं, वे उत्तम गुणों से युक्त होकर पुण्यकर्मों में संलग्न रहती हैं. अतः वे दूसरे पुण्यात्माओं की भाँति स्वर्ग लोक में विचरण करेंगी ।

निःसन्देह पतिव्रत धर्म विश्व को भारतीय संस्कृति की देन है, परन्त भारतीय संस्कृति में पत्नीव्रत धर्म का भी उतना ही महत्त्व है । पत्नी के कर्त्तव्य अवश्य हैं परन्तु साथ में अधिकार भी हैं और पुरुष के केवल अधिकार ही नहीं कुछ कर्त्तव्य भी हैं, गाड़ी एक पहिये से नहीं चलती । पति एवं पत्नी गृहस्थ रूपी गाड़ी के दो

पहिये हैं। यह रथ उसी अवस्था में चलेगा जब पत्नी पति की सेवा करे और पति भी पत्नी के प्रति अपने सभी कर्त्तव्यों का पालन करे।

उस दिन अत्रि मुनि के आश्रम में ही रह कर दूसरे दिन प्रातः काल स्नान करने के अनन्तर श्री रघुनाथजी ने मुनिवर की सम्मति से चलने की तैयारी की। स्वयं महामुनि कुछ दूर तक श्री राम के साथ गये और फिर उनके प्रीति-पूर्वक मना करने पर अपने आश्रम को लौट आये। कुछ वटुक श्री राम के साथ कुछ दूरी तक गये। एक कोश जाने पर एक बहुत बड़ी नदी थी, वटुकों ने स्वयं नौका का प्रबन्ध किया और उस नौका द्वारा त्रीमूर्ति को नदी के पार पहुंचा दिया।—आगे घोर जंगल था, श्री राम उस समय लक्ष्मण से बोले, यहां से हम दोनों को बहुत सावधान हो कर चलना है। - राक्षस कोई न कोई शरारत अवश्य करेंगे।

इस प्रकार आपस में बातचीत करते वे डेढ़ योजन, लगभग बारह मील निकल गये। आगे एक ठंडे सुमधुर जल से भरी झील थी, विश्राम के लिये अभी श्रीराम वहां बैठे ही थे उसी समय उन्हों ने महां बलवान् और भयानक राक्षस अपनी ओर आते देखा। राम जी की ओर क्रोध भरे नेत्रों से देख कर वह राक्षस, जिस का नाम विराध था, पृथ्वी को कम्पायमान करता हुआ, प्राणान्तकारी काल के समान आगे बढ़ता हुआ, सीता जी की ओर लपका और बोला—

इयं नारी वरारोहा मम भार्या भविष्यति।
युवयो : पापयोश्चाहं पास्यामि रुधिरं मृधे॥

वह विदेह नन्दिनी सीता को गोद में ले कुछ दूर जाकर खड़ा हो गया। बोला—तुम दोनों तपस्वी जान पड़ते हो, फिर तुम्हारा युवती स्त्री के साथ रहना कैसे सम्भव हुआ ?-तदनन्तर विराध ने उस बन को गुंजाते हुए कहा—"अरे! मैं पूछता हूं, मुझे बताओ, तुम दोनों कौन हो और कहां जाओगे ?

तब काल, अन्तक और यमराज के समान उस भयंकर राक्षस विराध के ऊपर उन दोनों भाइयों ने प्रज्वलित वाणों की घोर वर्षा आरम्भ कर दी। सीता जी को किसी स्थान पर छिपा कर वह राक्षस फिर राम-लक्ष्मण के सामने आया और राम-लक्ष्मण दोनों को कन्धों पर बिठा कर भागा। सुमित्राकुमार लक्ष्मण ने उस राक्षस की बायीं और श्री राम ने उस की दाहिनी बांहें बड़े वेग से तोड़ डालीं।

इस प्रकार उस राक्षस का वध करके मिथिलेशकुमारी सीता को साथ ले वे दोनों भाई आकाश में स्थित चन्द्र और सूर्य की भांति उन महान् वन में आनन्द मग्न हो विचरण करने लगे।

इस थल पर एक बात पर विचार करना आवश्यक है। हम इसकी विशेष चर्चा करेंगे क्योंकि इस चर्चा का हिन्दू समाज के वर्तमान सामाजिक ढांचे के साथ सम्बन्ध है। विराध सीता जी को अपनी गोद में उठा कर ले गया। राम ने इस दृश्य को देखा। आदि कवि लिखते हैं—

परस्पर्शात् तु वैदेह्या न दुःखतरमस्ति मे।
पितुर्विनाशात् सौमित्रे स्वराज्यहरणात् तथा॥

निदेहनन्दिनी का दूसरा कोई स्पर्श कर ले, इससे बढ़कर दुःख की बात मेरे लिये दूसरी कोई नहीं है। सुमित्रानन्दन ! पिता जी की मृत्यु से भी उतना कष्ट मुझे नहीं हुआ जितना अब हुआ है। विराध के मरने के पश्चात् राम ने सीता को ठुकराया नहीं। हमारे अपने युग में ढाका, खुलना,

राजशाही, रावलपिंडी में भी तो यही कुछ हुआ था। हज़ारों सीताएं पाकिस्तानी पिशाचों के कब्ज़ों में चली गईं, श्रीराम ने विराध के चंगुल से सीता को छुड़ाकर सीता का सम्मान किया परन्तु जब भारतीय विजय वाहनी ने बंगला देश में एवं पश्चिमी पाकिस्तान में पाकिस्तानी दरिन्दों से भारतीय ललनाओं का उद्धार किया। हिन्दू समाज, नित्य रामायण का पाठ करने वाला, रामलीला मनाने वाला हिन्दू समाज, अपनी सीताओं एवं द्रौपदियों का सम्मान न कर सका।

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा।
चले बनहि सुर नर मुनि ईसा॥
आगें राम अनुज पुनि पाछें।
मुनिबर वेष बने अति काछें॥
उभय बीच श्री सोहइ कैसी।
ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा।
पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥
जहं जहं जाहि देव रघुराया।
करहिं मेघ तहं- तहं नभ छाया॥
मिला असुर विराध मग जाता।
आवतहीं रघुबीर निपाता॥
तुरतहिं रुचिर रूप तेहिं पावा।
देखि दुखी निज धाम पठावा॥
पुनि आए जहं मुनि सरभंगा।
सुंदर अनुज जानकी संगा॥

वन में उस भयंकर बलशाली राक्षस विराध का वध करके पराक्रमी श्री राम ने सीता को हृदय से लगा कर साँत्वना दी और उद्दीप्त तेज वाले भाई लक्ष्मण से इस प्रकार बोले—सुमित्रानन्दन ! हम लोग अब शीघ्र ही तपोधन शरभङ्ग के पास चलें।—देवताओं के तुल्य प्रभावशाली तथा तपस्या से शुद्ध अन्तःकरण वाले शरभंग मुनि के समीप जाने पर श्रीराम ने एक बड़ा अद्भुत दृश्य देखा—वहां उन्हों ने आकाश में एक श्रेष्ठ रथ पर बैठे हुए देवताओं के स्वामी इन्द्रदेव का दर्शन किया, जो पृथ्वी का स्पर्श नहीं कर रहे थे। उनके पीछे और भी बहुत देवता थे—उन सबका रथ आकाश में खड़ा था और उस में हरे रंग के घोड़े जुते हुए थे।

देवराज इन्द्र शरभंग मुनि से बात कर रहे थे। उस समय इन्द्र की ओर इशारा करके श्री राम लक्ष्मण से बोले,—लक्ष्मण, आकाश में वह अद्भुत रथ तो देखो उस से तेज लपटें निकल रही हैं वह सूर्य के समान तप रहा है—

लक्ष्मण ! जब तक कि मैं स्पष्ट रूप से यह पता न लगा लूं कि रथ पर बैठे हुए ये तेजस्वी पुरुष कौन हैं, तब तक तुम विदेहनन्दिनी सीता के साथ एक मुहूर्त तक यहीं ठहरो। इस प्रकार सुमित्रा कुमार को वहीं ठहरने का आदेश देकर श्री राम चन्द्र जी टहलते हुए शरभङ्ग मुनि के आश्रम पर गये। श्री राम को आते देख शचीपति इन्द्र ने शरभङ्ग मुनि से विदा ले देवताओं से इस प्रकार कहा—श्री राम चन्द्र जी यहां आ रहे हैं। वे जब तक मुझसे कोई बात न करें, उस के पहले ही तुम लोग मुझे यहां से दूसरे स्थान में ले चलो। इस समय श्री राम से मेरी मुलाकात नहीं होनी चाहिये।

जितवन्तं कृतार्थं हि तदाहमचिरादिमम्।
कर्म ह्यनेन कर्तव्यं महदन्यैः सुदुष्करम्।।

इन्हें वह महान् कर्म करना है, जिस का सम्पादन करना दूसरों के लिए बहुत कठिन है।

जब ये रावण पर विजय पाकर अपना कर्त्तव्य पूर्ण करके कृतार्थ हो जायेंगे, तब मैं शीघ्र ही आकर इन का दर्शन करूंगा।

यह कहकर बज्रधारी शत्रुदमन इन्द्र ने तपस्वी शरभङ्ग का सत्कार किया और उनसे पूछ कर अनुमति ले वे घोड़े जुते रथ के द्वारा स्वर्गलोक को चल दिये—इन्द्र के चले जाने पर श्री राम अपनी पत्नी और भाई के साथ शरभङ्ग मुनि के पास गये।

अग्निहोत्रमुपासीनं शरभङ्गमुपागमत्।

उस समय महामुनि अग्नि के समीप बैठ अग्निहोत्र कर रहे थे। श्री राम, सीता और लक्ष्मण ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया और उनकी आज्ञा से वहाँ बैठ गये। शरभङ्गजी ने उन्हें आतिथ्य के लिये निमंत्रण दे ठहरने के लिये स्थान दिया।

समूचा भारतीय राष्ट्र रावण-वध-योजना में जटा हुआ था, जो जहाँ था वहीं पर अपना कर्त्तव्य पूरा कर रहा था। राजनीति में हमारा देश कितना बढ़-चढ़ कर था। आर्य-नेता बराबर राम का साथ दे रहे थे, परन्तु चुप-चाप अपने ढंग से। वह प्रदेश जहाँ श्रीराम जा रहे थे, वर्तमान समय के बंगला देश के ही समान था जो किसी समय भारत का ही एक अटूट अङ्ग था, परन्तु विधि वश दुश्मन के हाथों में जा पड़ा। जो सन्त शरभङ्ग के आश्रम पर एकत्रित थे वे दण्डिकारण्य के ही थे, जो एक प्रकार से उस समय के पाकिस्तानियों के कन्ट्रोल में था। श्री राम घोषणा कर चुके थे, चौदह वर्ष तक आर्य-वर्त की राजनीति के साथ उन का कोई सम्बन्ध नहीं। इस प्रकार सब कुछ होते हुए भी, रावण को अन्तः राष्ट्रीय जगत् में हमने यह प्रचार-प्रसार करने का अवसर नहीं दिया कि भारत वर्ष इस राम-रावण युद्ध की प्रस्तावना में राम का साथ दे रहा है।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला।
संकर मानस राज मराला॥
जात रहेउँ बिरंचि के धामा।
सुनेउँ श्रवन बन ऐहहिं रामा॥
चितवत पंथ रहेउँ दिन राती।
अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना।
कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी।
जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी॥
जोग जग्य जप तप ब्रत कीन्हा।
प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा॥
एहि बिधि सर रचि मुनि सरभंगा।
बैठे हृदयँ छाड़ि सब संगा॥
सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियं बसहु निरन्तर सगुनरूप श्री राम॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा।
राम कृपाँ बैकुंठ सिधारा॥
रिषि निकाय मुनिबर गति देखी।
सुखी भए निज हृदयं बिसेषी॥
अस्तुति करहिं सकल मुनि बृंदा।
जयति प्रनत हित करुनाकंदा॥

तदनन्तर दण्डकारण्यवासी समस्त मुनिगण श्रीरघुनाथ जी का दर्शन करने के लिए शरभंग मुनि के आश्रम पर आये। उस मुनि समाज को देख कर मायामानव रूप श्रीराम, सीता और लक्ष्मण ने सहसा पृथिवी पर सिर रख कर उन्हें प्रणाम किया। उन मुनीश्वरों ने सर्वान्तिर्यामी भगवान् राम का आशीर्वाद द्वारा अभिनंदन किया और फिर वे धनुर्धारी श्रीराम से हाथ जोड़ कर बोले—"आपने ब्रह्मा की

प्रार्थना से पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार लिया है। हम यह जानते हैं कि आप साक्षात् श्री हरि, जानकी जी लक्ष्मी और लक्ष्मण जी शेष जी के अंश और भरत-शत्रुघ्न भगवान् के शंख और चक्र हैं। इस लिए आप यहां सबसे पहले ऋषियों के दुख दूर करें।

ते वयं भवता रक्ष्या भवद्विषयवासिनः ।
नगरस्थो वनस्थो वा त्वं नो राजा जनेश्वरः ।।
एहि पश्य शरीराणि मुनीनां भावितात्मनाम् ।
हताना राक्षसैर्घोरैबहूनां बहुधा बने ।।
एवं वयं न मृष्यामो विप्रकार तपस्विनाम् ।
क्रियमाणा वने घोरं रक्षोभिभीमकर्मभि ।।
ततस्त्वां शरणार्थं च शरण्यं समुपस्थिताः ।
परिपालय नो राम वध्यमानान् निशाचरैः ।।

श्रीराम ! इस वन में रहने वाला वानप्रस्थ-महात्माओं का यह महान समुदाय राक्षसों के द्वारा अनाथ की तरह मारा जा रहा है। इन भयानक कर्म करने वाले राक्षसों ने इस वन के तपस्वी मुनियों का जो ऐसा भयंकर विनाश-काण्ड मचा रखा है, वह हम लोगों से सहा नहीं जाता है. अतः इन राक्षसों से बचने के लिए शरण लेने के उद्देश्य से हम आपके पास आए हैं। आप शरणागत वत्सल हैं, इस भूमण्डल में हमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई सहारा नहीं दिखता. आप इन राक्षसों से हम सबको बचाइये।

तपस्वी मुनि की ये बातें सुनकर धर्मात्मा राम उनसे बोले—

मुनिवरो ! आप लोग मुझ से इस प्रकार प्रार्थना न करें। मैं तो तपस्वी महात्माओं का आज्ञा पालक हूं। मुझे केवल अपने ही कार्य से वन में तो प्रवेश करना ही है। इसके साथ ही आप लोगों की सेवा का सौभाग्य भी मुझे प्राप्त हो जायेगा।

नैवमर्हथ मा वक्तुमाज्ञाप्योऽहं तपस्विनाम् ।
केवलेन स्वकार्येण वेष्टव्यं वनं मया ।।
विप्रकारमपाक्रष्टुं राक्षसैर्भवतामिमम् ।
पितुस्तु निर्देशकरः प्रविष्टोऽहमिदं वनम् ।।

राक्षसों के द्वारा जो आपको यह कष्ट पहुंच रहा है, इसे दूर करने के लिये ही मैं पिता के आदेश का पालन करता हुआ इस वन में आया हूं।

भवतामर्थसिद्ध्यर्थमागतोऽहं यदृच्छया ।
तस्य मेऽयं वने वासो भविष्यति महाफलः ।।

आप लोगों के प्रयोजन की सिद्धि के लिये ही मैं दैवात् यहां आ पहुंचा हूं। आपकी सेवा का अवसर मिलने से मेरे लिये यह वनवास महान् फलदायक होगा।

तपस्विनां रणे शत्रून् हन्तुमिच्छामि राक्षसान् ।
पश्यन्तु वीर्यमृषयः सभ्रातुर्मे तपोधनाः ।।

तपोधनो ! मैं तपस्वी मुनियों से शत्रुता रखने वाले उन राक्षसों का युद्ध में संहार करना चाहता हूं। आप सब महर्षि भाई सहित मेरा पराक्रम देखें।

दत्वा वरं चापि तपोधनानां
धर्मे धृतात्मा सह लक्ष्मणेन् ।
तपोधनैश्चापि सहार्यदत्तः
सुतीक्ष्णमेवाभिजगाम वीरः ।।

इस प्रकार उन तपोधनों को वर देकर धर्म में मन लगाने वाले तथा श्रेष्ठ दान देने वाले वीर रामचन्द्र जी लक्ष्मण तथा तपस्वी महात्माओं के साथ सुतीक्ष्ण मुनि के पास गये।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे ।
मुनिबर बृंद बिपुल संग लागे ।।

अस्थि समूह देखि रघुराया।
पूछी मुनिन्ह लागि अति दाया॥
जानतहू पूछिअ कस स्वामी।
सबदरसी तुम्ह अंतरजामी॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए
मुनि रघुबीर नयन जल छाए॥
निसिचर हीन करउं महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥
मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना।
नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक।
सपनेहुं आन भरोस न देवक॥
प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा।
करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबंधु रघुराया।
मो से सठ पर करिहहिं दाया॥
तब मुनि हृदयं धीर धरि गहि पद बारहिं बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि पूजा बिबिध प्रकार॥

एक रात सुतीक्षण के आश्रम में रह कर प्रातः श्रीराम मुनिवर से बोले—प्रभो ! हम आपके आश्रम में बड़े सुख से रहे हैं। अब हम यहां से जायेंगे। इसके लिये आपकी आज्ञा चाहते हैं। हम लोग दण्डकारण्य में निवास करने वाले पुण्यात्मक ऋषियों के सम्पूर्ण आश्रम मण्डल का दर्शन करने के लिये उतावले हो रहे हैं—इतना कह मुनिवर का आशीर्वाद ले रघुनन्दन वहां से चल दिये।

ज्योंहि श्रीराम राक्षस प्रदेश की ओर आगे बढ़े, स्नेह भरी वाणी में सीता जी बोलीं—प्रभो ! जहां तक हम आचुके हैं, उतना ही काफी है, मेरे ख्याल में आगे बढ़ना ठीक नहीं। क्या लाभ है, लाहौर, स्यालकोट, सक्खर की ओर बढ़ने का। भयानक इन्टरनैशनल वॉर शुरू हो जायगी।

नहि मे रोचते वीर गमनं दण्डकान् प्रति।
क्व च शस्त्रं क्व च वनं क्व च क्षात्रं तपः क्व च।
व्याविद्धमिदमस्माभिर्देशधर्मस्तु पूज्यताम्॥

नारी हृदय प्रकृति से ही कोमल होता है—सीता जी अब "सीज़ फायर" मन्त्र का जाप करने लगी।

आपने दण्डकारण्य निवासी ऋषियों की रक्षा के लिये युद्ध में राक्षसों का वध करने की प्रतिज्ञा की है। इस के लिए आप भाई के साथ धनुष बाण लेकर दण्डकारण्य की ओर प्रस्थित हुए है। अतः आपको इस घोर कर्म के लिये प्रस्थित हुआ देख मेरा चित्त चिन्ता से व्याकुल हो उठा है—वीर ! मुझे इस समय आपका दण्डकारण्य में जाना अच्छा नहीं लगता—आप हाथ में धनुष बाण लेकर अपने भाई के साथ वन में आए हैं। मेरे मन में आपके प्रति जो स्नेह और विशेष आदर है, उसके कारण मैं आप से प्रार्थना करती हूं बिना वैर के ही राक्षसों का वध नहीं करना चाहिए बिना अपराध के ही किसी को मारना संसार के लोग अच्छा नहीं समझेंगे।

अपने मन और इन्द्रियों को वश में रखने वाले क्षत्रिय वीरों के लिए वन में धनुष धारण का इतना ही प्रयोजन है कि वे संकट में पड़े हुए प्राणियों की रक्षा करें। कहां शस्त्र धारण, कहाँ वनवास ! कहां क्षत्रिय का हिंसामय कठोर कर्म और कहां सब प्राणियों पर दया करना रूप तप—ये परस्पर विरुद्ध जान पड़ते हैं। अतः हम लोगों को देश कर्म का ही आदर करना चाहिये।

उस समय श्रीराम जी ने जानकी जी को यह उत्तर दिया—सीते ! निःसन्देह तू ने मेरे लिये

हित की बात कही है । सीते ! दण्डकारण्य में रहकर कठोर व्रत का पालन करने वाले वे मुनि दुखी हैं, इसी लिये मुझे शरणागत जान वे शरणार्थी बन कर मेरे पास आये हैं । उन्होंने मुझ से प्रार्थना की—प्रभो ! हम पर अनुग्रह कीजिये । उनके मुख से इस प्रकार निकली रक्षा की पुकार सुनकर और उनकी आज्ञा पालन रूपी सेवा का विचार मन में लेकर उनसे यह बात कही—महर्षियो ! आप जैसे ब्राह्मणों की सेवा में मुझे स्वयं ही उपस्थित हो जाना चाहिए था, परन्तु आप स्वयं ही अपनी रक्षा के लिये मेरे पास आये हैं, यह मेरे लिये अनुपम लज्जा की बात है । अतः आप प्रसन्न हों। बताइये ! मैं आप लोगों की क्या सेवा करूं । यह बात मैंने उन ब्राह्मणों से कही ।

तब उन सभी ने मिलकर अपना मनोभाव इन वचनों में प्रकट किया--श्रीराम ! आप राक्षसों से हमारी रक्षा कीजिए—अतः मेरा यह परम धर्म है, सीते ! कि मैं इन की रक्षा करूं ।

संश्रुत्य च न शक्ष्यामि जीवमानः प्रतिश्रवम् ।
मुनीनामन्यथा कर्तुं सत्यमिष्टं हि मे सदा ॥

मुनियों के सामने वह प्रतिज्ञा करके अब मैं जीते जी प्रतिज्ञा को मिथ्या नहीं कर सकूंगा । क्योंकि सत्य का पालन सदा प्रिय है ।

अप्यहं जीवितं जह्यां त्वां वा सीते सलक्ष्मणाम् ।
न तु प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥

सीते ! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूं—तुम्हें और लक्ष्मण का भी परित्याग कर सकता हूं किन्तु अपनी प्रतिज्ञा को, विशेष ब्राह्मणों के लिये की गयी प्रतिज्ञा को छोड़ नहीं सकता ।

इसलिये ऋषियों की रक्षा करना मेरे लिये आवश्यक कर्त्तव्य है । विदेह नन्दिनी ! ऋषियों के बिना कहे ही उनकी मुझे रक्षा करनी चाहिये थी—फिर जब उन्होंने स्वयं कहा और मैंने प्रतिज्ञा भी कर ली तब अब उनकी रक्षा से कैसे मुंह मोड़ सकता हूं । सीते ! तुमने स्नेह सौहार्द्रवश जो मुझ से यह बातें कही है इससे मैं बहुत संतुष्ट हूं ।

इत्येवमुक्त्वा वचनं महात्मा
सीतां प्रियां मैथिलराजपुत्रीम् ।
रामो धनुष्मान् सह लक्ष्मणेन
जगाम रम्याणि तपोवनानि ॥

एवमस्तु करि रमानिवासा ।
हरषि चले कुम्भज ऋषि पासा ॥

सतीक्ष्ण मुनि से विदा लेकर श्रीराम महामुनि अगस्त्य के आश्रम की ओर चले । दूर से ही अगस्त्य-आश्रम को देख श्रीराम लक्ष्मण से बोले, सुमित्रानन्दन ! यहां के मृग और पक्षी बहुत शांत हैं, इस से जान पड़ता है शुद्ध अन्तःकरण वाले महर्षि अगस्त्य का आश्रम यहां से अधिक दूर नहीं है ।

निगृह्य तरसा मृत्युं लोकानां हितकाम्यया ।
दक्षिणा दिक्कृता येन शरण्या पुण्यकर्मणा ॥
तस्येदमाश्रमपदं प्रभावाद्यस्य राक्षसैः ।
दिगियं दक्षिणा त्रासाद् दृश्यते नोपभुज्यते ॥
यदा प्रभृति चाक्रान्ता दिगियं पुण्यकर्मणा ।
तदा प्रभृति निर्वैराः प्रशान्ता रजनीचराः ॥
एष लोकार्चितः साधुर्हितेनित्यं रतः सताम् ।
अस्मानधिगतानेष श्रेयसा योजयिष्यति ॥
आराधयिष्याम्यत्राहमगस्त्यं तं महामुनिम् ।
शेषं च वनवासस्य सौम्य वत्स्याम्यहं प्रभो ॥
अत्र देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः
अगस्त्यं नियताहाराः सततं पर्युपासते ॥
नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः ।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः ॥

यह उन्हीं का आश्रम दिखायी देता है, जो

थके-मांदे पथिकों की थकावट को दूर करने वाला है। उन पुण्यात्मा महर्षि ने जब से इस दक्षिण दिशा में पदार्पण किया है, तब से यहां के राक्षस शांत हो गए हैं। उन्होंने दूसरों से वैर विरोध करना छोड़ दिया है। महर्षि के प्रभाव से वे दक्षिण दिशा की ओर भयभीत होकर देखते हैं। यह दिशा उन्हीं महर्षि अगस्त्य के नाम से तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। यहां क्रूरकर्मा राक्षसों का जोर नहीं चलता। एक बार विन्ध्य पर्वत सूर्य का मार्ग रोकने के लिये बढ़ा था, किन्तु महर्षि अगस्त्य के कहने से वह नम्र हो गया। तब से आज तक उनके आदेश का पालन करता हुआ वह कभी नहीं बढ़ता। महात्मा अगस्त्य जी सम्पूर्ण लोकों के द्वारा पूजित और सदा सज्जनों के हित में लगे रहने वाले हैं। यहां रहकर मैं उन महामुनि की आराधना करूंगा। और वनवास के बाकी दिन यहां बिताऊंगा। देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षिगण नियमित आहार करते हुए सदा अगस्त्य की उपासना करते हैं। वे ऐसे प्रभावशाली महात्मा हैं कि उनके आश्रम में कोई झूठ बोलने वाला, क्रूर, शठ अथवा पापाचारी मनष्य जीवित नहीं रह सकता। उनके पास धर्म की आराधना करने के लिए देवता, यक्ष, नाग और पक्षी नियमित आहार करते हुए निवास करते हैं। अब हम लोग आश्रम पर आ पहुंचे। तुम आगे जाकर महर्षि को सीता सहित मेरे आगमन की सूचना दो।

लक्ष्मण ने आश्रम में प्रवेश करके अगस्त्य के शिष्य से भेंट की और उस से कहा 'मुने! राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र महाबली श्रीराम चन्द्र जी अपनी पत्नी सीता के साथ महर्षि के दर्शन करने आये हैं। मैं उनका छोटा भाई हूँ मेरा नाम लक्ष्मण है। सम्भव है, यह नाम कभी आपके कानों में पड़ा हो। हम लोग पिता की आज्ञा से इस भयंकर वन में आये हैं और भगवान् अगस्त्य जी का दर्शन करना चाहते हैं। आप उनसे यह समाचार निवेदन कीजिए। लक्ष्मण की बात सुन कर उस तपस्वी ने 'बहुत अच्छा' कह कर महर्षि को समाचार देने के लिए अग्निशाला में प्रवेश किया और लक्ष्मण की कही हुई बातें अगस्त्य जी से कह सुनायीं। भगवान् श्रीराम, लक्ष्मण और महाभागा विदेहनन्दिनी सीताजी के आगमन का समाचार पाकर महर्षि ने शिष्य से कहा—मैं तो बहुत दिनों से उनका दर्शन करना चाहता था। सौभाग्य की बात है कि आज श्रीरामचन्द्र जी स्वयं ही मुझसे मिलने आये। मेरे मन में बड़ी इच्छा थी कि वे एक बार मेरे आश्रम पर पधारते। तुम उन्हें यहां ले क्यों नहीं आये? जाओ, लक्ष्मण और सीता के साथ श्रीराम को सत्कारपूर्वक मेरे पास ले आओ।

धर्म के जानने वाले महात्मा अगस्त्य मुनि से इस प्रकार कहने पर शिष्य वहां से आया और उन तीनों का यथावत् सत्कार करके उसने आश्रम में पधारने के लिये कहा। तब श्रीराम चन्द्र जी सीता और लक्ष्मण के साथ आश्रम में गये। वहां उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, महेन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, भग, कुबेर, धाता, विधाता, वायु, वरुण, गायत्री, वसु, नागराज अनन्त, गरुड़, कार्तिकेय तथा धर्मराज के पृथक्-पृथक् स्थानों का निरीक्षण किया। इसी समय मुनिवर अगस्त्य भी शिष्यों से घिरे हुए अग्निशाला से बाहर निकले! उन्हें सामने में आते देखकर श्रीराम ने लक्ष्मण से कहा—'भगवान् अगस्त्य बाहर आ रहे हैं।' यों कह कर वे सीता और

लक्ष्मण के साथ महर्षि के चरणों में प्रणाम करके हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। महर्षि ने भगवान् श्रीराम को हृदय से लगाया और आसन तथा जल पाद्य, अर्घ्य आदि देकर उनका यथावत् सत्कार किया। 'आप सम्पूर्ण लोक के राजा और धर्म का आचरण करने वाले हैं तथा मेरे प्रिय अतिथि के रूप में इस आश्रम पर पधारे हैं, अतएव आप हम लोगों के पूजनीय एवं माननीय हैं।' यों कहकर महर्षि अगस्त्य ने फल मूल और फूलों से इच्छानुसार भगवान् श्रीराम का पूजन किया। तत्पश्चात् वे इस प्रकार बोले :—

इदं दिव्यं महच्चापं हेमवज्रविभूषितम् ।
वैष्णवं पुरुषव्याघ्र निर्मितं विश्वकर्मणा ॥
अमोघः सूर्यसंकाशो ब्रह्मदत्तः शरोत्तमः ।
दत्तो मम महेंद्रेण तूनीर चाक्षय्यसायकौ ॥
एवमुक्त्वा महातेजाः समस्तं तद्वरायुधम् ।
दत्त्वा रामाय भगवानगस्त्यः पुनरब्रवीत् ॥
अलंकृतोऽयं देशश्च यत्र सौमित्रिणा सह ।
वैदेह्या चानया राम वत्स्यसि त्वमरिंदम् ॥
विदितो ह्येष वृत्तांतो मम सर्वस्तवानघ ।
तपसश्च प्रभावेण स्नेहाद्दशरथस्य च ॥
हृदयस्थं च ते छंदो विज्ञातं तपसा मया ।
अतश्च त्वामहं ब्रूमि गच्छ पंचवटीमिति ॥

नरश्रेष्ठ ! ये महान् दिव्य धनुष विश्वकर्मा जी ने बनाया है। इस में सुवर्ण और हीरे जड़े हैं। यह भगवान् विष्णु का दिया है और यह अमोघ बाण, जो सूर्य के समान देदीप्यमान हो रहा है, ब्रह्मा जी का दिया हुआ है। इनके सिवा इन्द्र ने ये दो तरकस दिये हैं, जिनमें सदा बाण भरे रहते हैं, कभी खाली नहीं होते। इसके सिवा यह तलवार भी है, जिसकी मूठ में सोना जड़ा है, इसकी म्यान भी सोने की ही बनी हुई है। राम ! पूर्वकाल में भगवान् विष्णु ने इसी धनुष से युद्ध में बड़े-बड़े असुरों का संहार करके देवताओं की उद्दीप्त लक्ष्मी को उनके अधिकार से लौटाया था। अतः आप यह धनुष, ये दोनों तरकस, यह बाण और यह तलवार राक्षसों पर विजय पाने के लिये ग्रहण कीजिये।' ऐसा कहकर महान् तेजस्वी भगवान् अगस्त्य ने वे सभी श्रेष्ठ आयुध श्री रामचन्द्र जी को सौंप दिये।

इसके बाद उन्होंने फिर कहा—'राम ! आप दोनों भाई मुझे प्रणाम करने के लिये यहां तक आये, इससे मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। लक्ष्मण ! मैं आप पर भी बहुत संतुष्ट हूं। मिथिलेश कुमारी सीता सुकुमारी है। इससे पहले इसको ऐसे दुःखों का सामना नहीं करना पड़ा है। वन में अनेकों प्रकार के कष्ट होते हैं, फिर भी यह आपके प्रति अनुराग से प्रेरित होकर यहां आयी हैं। जिस प्रकार सीता प्रसन्न रह सके, वही कार्य आपको करना चाहिये। यह परम प्रशंसनीय और पतिव्रताओं में अरुन्धती की भांति अग्रगन्य है। आज से इस देश की शोभा बढ़ गई, जहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ आप निवास करेंगे।' मुनि जी के ऐसा कहने पर श्री रामचन्द्र जी ने हाथ जोड़कर विनीत भाव से कहा—'मुनिवर ! पत्नी और भाई सहित मेरे गुणों से आप जैसे गुरुजन को विशेष सन्तोष हुआ, इस लिये मैं अपने को धन्य और अनुगृहीत मानता हूं। अब आप मुझे ऐसा कोई स्थान बताइये, जहां अनेकों वन हों, जल की भी त्रुटि न हो तथा जहां आश्रम बनाकर मैं सुखपूर्वक रह सकूँ।'

श्री राम का कथन सुनकर मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य ने थोड़ी देर तक सोचा-विचारा। उसके बाद वे इस प्रकार बोले—'तात ! यहां से दो

योजन की दूरी पर पंचवटी नाम से विख्यात एक बहुत ही सुन्दर स्थान है, जहां फल, मूल और जल का बहुत सुभीता है। वहीं जाकर लक्ष्मण के साथ आश्रम बनाइये और पिता की आज्ञा का पालन करते हुए सुखपूर्वक निवास कीजिए। आपका सारा वृत्तान्त मुझे मालूम है। आपका हार्दिक अभिप्राय भी मैंने अपनी तपस्या से जान लिया है; इसी लिये कहता हूँ, आप पंचवटी में जाइये।

वह स्थान गोदावरी के तट पर है। वहां की वनस्थली बड़ी ही मनोरम है। वहां सीता का मन खूब लगेगा। आप सदाचारी हैं और ऋषियों की रक्षा करने की शक्ति रखते हैं; अतः वहाँ रहकर तपस्वी मुनियों का पालन कीजियेगा। सामने महुआ का बड़ा वन दिखाई दे रहा है। इसके उत्तर से होकर जाना चाहिए। आगे जाने पर एक बरगद का वृक्ष मिलेगा। उससे आगे कुछ दूर तक ऊँचा मैदान है। उसे पार करने के बाद एक पर्वत दिखायी देगा। उस पर्वत से थोड़ी ही दूर पर पंचवटी नाम से प्रसिद्ध सुन्दर वन है।' महर्षि के ऐसा कहने पर लक्ष्मण सहित श्री राम चन्द्र जीने उनका बड़ा सम्मान किया और उन सत्यवादी ऋषि से जाने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिलने पर दोनों भाई मुनि को प्रणाम करके धनुष और बाणों से भरे तरकस लिए सीता के साथ पंचवटी की ओर प्रस्थित हुए।

है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ।
पावन पंचवटी तेहि नाऊँ।।
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू।
उग्र साप मुनिवर कर हरहू।।
बास करहु तहँ रघुकुल राया।
कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया।
चले राम मुनि आयसु पाई।
तुरतहिं पंचवटी निअराई।।
जब ते राम कीन्ह तहं बासा।
सुखी भए मुनि बीती त्रासा।।
सो बन बरनि न सक अहिराजा।
जहां प्रगट रघुबीर बिराजा।।

आज की कथा का प्रसंग हम यहीं समाप्त करते हैं—आओ, आज इस प्रसंग की समाप्ति पर भरत लाल के महानतम त्याग का सम्मिलित संकीर्तन करें।

सुनि सिख पाइ असीस बड़ि गनक बोलि दिनु साधि।
सिंघासन प्रभु पादुका बैठारे निरुपाधि।।
राम मातु गुर पद सिरु नाई।
प्रभु पद पीठ रजायसु पाई।।
नंदिगांव करि परन कुटीरा।
कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा।।
जटाजूट सिर मुनिपट धारी।
महि खनि कुस सांथरी संवारी।।
असन बसन बासन ब्रत नेमा।
करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा।।
भूषन बसन भोग सुख भूरी।
मन तन बचन तजे तिन तूरी।।
अवध राजु सुर राजु सिहाई।
दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई।।
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा।
चंचरीक जिमि चंपक बागा।।
रमा बिलास राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी।।
राम पेम भाजन भरतु बड़े न एहिं करतूति।
चातक हंस सराहिअत टेंक बिबेक बिभूति।।
देह दिनहुं दिन दूबरि होई।
घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई।।
नित नव राम प्रेम पनु पीना।
बढ़त धरम दलु मनु न मलीना।
बरनत सकल सुकबि सकुचाहीं।
सेस गनेस गिरा गमु नाहीं।।

(८)

सीता हरण

नवधा भगति कहउं तोहि पाहीं । सावधान सुनु धरु मन माहीं ।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा । दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा ।।
गुर-पद-पंकज सेवा, तीसरि भगति अमान । चौथि भगति मम गुन गन, करइ कपट तजि गान ।
मंत्रजाप मम दृढ़ बिस्वासा । पंचम भजन सो बेद प्रकासा ।।
छम दम-सील बिरति बहु करमा । निरत निरन्तर सज्जन धरमा ।।
सातवं सम मोहिमय जग देखा । मोतें संत अधिक करि लेखा ।।
आठवँ जथालाभ संतोषा । सपनेहुं नहिं देखइ पर-दोषा ।।
नवम सरल सब सन छलहीना । मम भरोस हिय हरष न दीना ।।
नव महुं एकउ जिन्हकें होई । नारि पुरुष सचराचर कोई ।।
सोइ अतिसय प्रियभामिनि मोरें । सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें ।।
जोगि बृन्द दुरलभ गति जोई । तो कहं आजु सुलभ भइ सोई ।।

देवियो एवं भद्र पुरुषो ! !

जिस समय श्रीराम पञ्चवटी की ओर जा रहे थे, चौथे मील पर जटायू से उनका साक्षात्कार हुआ । श्रीराम को देखते ही जटायू बोला—

उवाच वत्स माम् विद्धि वयस्यं पितुरात्मनः ।

मैं तुम्हारे पिता का परम मित्र हूं — इस समय श्रीराम जी ने भी उन्हें पिता के समान मान कर आदर दिया —

स तं पितृसखं मत्वा पूजयामास राघवः ।।

जटायु बोला, प्रभो ! बारह वर्ष से यहां आपकी प्रतीक्षा में बैठा हूँ —

जटायुर्नाम भद्रं ते गृध्रोऽहं प्रियकृत्तव ।
पञ्चवटयामह वत्स्ये तवैव प्रियकाम्यया ।।
सीता जनक कन्या मे रक्षितव्या प्रयत्नतः ।।

मैं तुम्हारे पिता का प्रिय सखा जटायू नामक गृद्ध हूं । तम्हारी ही हितकामना से मैं पञ्चवटी में रहूंगा । जब आप कार्यवश कुटिया से बाहर जायेंगे तो मैं सीता जी की रक्षा करूंगा । उस समय श्रीराम जी बोले—

साधु गृध्र महाराज तथैव कुरु मे प्रियम् ।
अत्रैव मे समोपस्थो नातिदूरे वने वसन् ।।

पितृव्य ! ठीक है, इस पास के वन में ही रहते हुए आप समोपवर्ती होकर अवश्य हमारी प्रिय साधना कीजिये ।

प्रसन्नता पूर्वक जटायू को गले लगाकर श्रीराम जटायू के सामने नतमस्तक हो गये । फिर पिता जी के साथ उनकी जिस प्रकार मैत्री हुई थी वह प्रसंग मनस्वी राम ने जटायू के श्रीमुख से बारंबार सुना । तत्पश्चात् जटायू को अपने साथ ले सीता, लक्ष्मण सहित राम चन्द्र जी उस स्थान पर पहुंचे जो पञ्चवटी के नाम से सुप्रसिद्ध था । इस स्थान को पंचवटी इस लिये कहते थे, क्योंकि वहां एक साथ पांच वट के वृक्ष थे । वह स्थान श्रीराम को बहुत भाया । लक्ष्मण जी ने वहां कुटिया तैयार करवा दी । आश्रम को देख श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न हुए हर्ष से प्रफुल्लित होकर उन्होंने लक्ष्मण को कस कर हृदय से लगा लिया और बड़े स्नेह के साथ यह बात कही—सामर्थ्यशाली लक्ष्मण !

मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं, इसके लिये कोई समुचित पुरुस्कार न होने से मैं तुम्हें आलिंगन प्रदान करता हूं।

गीध राज सें भेंट भइ बहु बिधि प्रीति बढ़ाइ।
गोदावरी निकट प्रभु रहे परण गृह छाइ॥
जब ते राम कीन्ह तहं बासा।
सुखी भए मुनि बीती त्रासा॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा।
जहां प्रगट रघुबीर बिराजा॥

आठ मील पर सन्त विराजते थे, जिनका काम रावण वध की सम्पूर्ण योजनाओं पर विचार करना था। श्रीराम का काम था, सन्तों की आज्ञा का पालन—श्रीराम का चरित्र कितना महान् था। पञ्चवटी की ही बात है। ज्ञान-ध्यान की चरचा चल रही थी। लक्ष्मण बोले—प्रभो! प्रायः देखा जाता है, सन्तान में माता के गुण आते हैं और पिता के दोष-परन्तु भरत जी के सम्बन्ध में यह सिद्धान्त चला नहीं—भरत जैसे नम्र, सुशील, सात्विक देव-पुरुष की मां इतनी कठोर कैसे हुई।

त्यक्त्वा राज्यं च मानं च भोगानि विविधानि च।
तपस्वी नियताहारो शेते शीतं महीतले॥

सम्राट् होकर भी भरत आज तपस्वी का जीवन बिता रहे हैं—हमें तो वनवास में भेजा गया, भरत ने स्वयं वनवास अपने पर प्रसन्नता पूर्वक लादा—कैकयी सरीखी पत्थर दिल मां का पुत्र-कोमल हृदय भरत कैसे हुआ?

श्रीराम बोले, लक्ष्मण! तुम जैसे भरत लाल का गुणगान गा रहे थे वैसे ही गाते जाओ बीच में कैकयी की कथा मत छेड़ो।

न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कथञ्चन्।
तामेव इक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथाम् कुरु॥

एक दिन ज्ञान चरचा चलाते हुए रामानुज बोले—

ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ।
जाते होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ॥

हे रघुश्रेष्ठ! आप मुझे भक्ति और वैराग्य से सना हुआ विज्ञानयुक्त ज्ञान सुनाइये, संसार में आप के अतिरिक्त इस विषय का उपदेश करने वाला और कोई नहीं है।

श्री राम जी बोले वत्स! सुन, मैं तुझे गुह्य से भी गुह्य परम रहस्य सुनाता हूँ, जिस के जान लेने पर मनुष्य तुरंत ही संसार रूप भ्रम से मुक्त हो जाता है। प्रथम मैं तुम से माया का स्वरूप कहूँगा, तत्पश्चात् ज्ञान का साधन बताऊँगा और फिर विज्ञान के सहित ज्ञान का वर्णन करूंगा। इनके अतिरिक्त ज्ञेय परमात्मा का भी स्वरूप बतलाऊंगा, जिस के जान लेने पर मनुष्य संसार-भय से मुक्त हो जाता है। शरीरादि अनात्म पदार्थों में जो आत्मबुद्धि होती है उसी को माया कहते हैं। उसी के द्वारा इस संसार की कल्पना हुई है। हे कुलनन्दन! माया के पहले-पहल दो रूप माने गये हैं एक विक्षेप, दूसरा आवरण। इन में से पहली विक्षेप-शक्ति ही महत्तत्त्व से लेकर ब्रह्म तक समस्त संसार की स्थूल और सूक्ष्म भेद से कल्पना करती है और दूसरी आवरण-शक्ति सम्पूर्ण ज्ञान को आवरण करके स्थित रहती है। यह सम्पूर्ण विश्व रज्जु में सर्प-भ्रम के समान शुद्ध परमात्मा में माया से कल्पित है, विचार करने पर यह कुछ भी नहीं ठहरता। सर्वसाधारण मनुष्य जो कुछ सर्वदा सुनते, देखते और स्मरण करते हैं, वह सब स्वप्न और मनोरथों के समान असत्य है। शरीर ही इस संसाररूप वृक्ष का दृढ़ मूल है उसी के कारण पुत्र-कलत्रादिका बन्धन है, नहीं तो आत्मा का इन से क्या सम्बन्ध है। पांच स्थूल भूत, पंच तन्मात्राएं, अहंकार, बुद्धि, दश इन्द्रियां चिदाभास, मन और मूल-प्रकृति इन सब के

समूह को क्षेत्र समझना चाहिये; इसी को शरीर भी कहते हैं। निर्दोष परमात्मा-रूप जीव इन सब से पृथक हैं। अब मैं उस जीव को जानने के कुछ साधन भी बताता हूँ, सावधान होकर सुनो।

जीव और परमात्मा यह पर्यायवाची शब्द हैं—दोनों का अभिप्राय एक ही है; अतः इस में भेद-बुद्धि नहीं करनी चाहिए। अभिमान से दूर रहना, दम्भ और हिंसा आदि का त्याग करना, दूसरों के किये हुए आक्षेपादि को सहन करना, सर्वत्र सरल भाव रखना, मन, वचन और शरीर के द्वारा सच्ची भक्ति से सद्गुरु की सेवा करना, बाह्य और आन्तरिक शुद्धि रखना, सत्यकर्मों में तत्पर रहना; मन, वाणी और शरीर का संयम करना, विषयों में प्रवृत न होना, अहंकारशून्य रहना; जन्म, मृत्यु, रोग और बुढ़ापे आदि के कष्टों का विचार करना, पुत्र, स्त्री और धन आदि में आसक्ति तथा स्नेह न करना। इष्ट और अनिष्ट की प्राप्ति में चित्त को सदा समान रखना, मुझ सर्वात्मा राम में अनन्य बुद्धि रखना, जन-समह से शून्य पवित्र देश में रहना, संसारी लोगों से सर्वदा उदासीन रहना, आत्म-ज्ञान का सदा उपयोग करना तथा वेदान्त के अर्थ का विचार करना—इन उक्त साधनों से तो ज्ञान प्राप्त होता है और इनके विपरीत आचरण करने से विपरीत फल मिलता है।

जिस से ऐसा वोध होता है कि मैं बुद्धि, प्राण, मन, देह और अहंकार आदि से विलक्षण नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूं, वही ज्ञान है यह मेरा निश्चय है। जिस समय इसका साक्षात् अनुभव होता है उस समय इसी को विज्ञान कहते हैं। आत्मा सर्वत्र पूर्ण, चिदानन्दस्वरूप, अविनाशी, बुद्धि आदि उपाधियों से शून्य तथा परिणामादि से रहित है। यह अपने प्रकाश से देह आदि को प्रकाशित करता हुआ भी स्वयं आवरण शून्य, एक अद्वितीय और सत्य ज्ञान आदि स्वरूप तथा संगरहित स्वप्रकाश और सब का साक्षी है—ऐसा विज्ञान से जाना जाता है। जिस समय आचार्य और शास्त्र के उपदेश से जीवात्मा और परमात्मा की एकता का ज्ञान होता है उसी समय मूल अविद्या अपने कार्य शरीरादि तथा इन्द्रियों के सहित अर्थात् अपने स्थूल और सूक्ष्म कार्य के सहित परमात्मा में लीन हो जाती है, अविद्या की इस लयावस्था को ही मोक्ष कहते हैं; आत्मा में यह मोक्ष केवल उपचार मात्र है वास्तव में आतमा की मुक्तावस्था आगन्तुक नहीं है, वह तो सदा ही मुक्त है। हे रघुनन्दन लक्ष्मण ! तुम्हें मैंने यह ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य के सहित परमात्मास्वरूप अपना मोक्षस्वरूप सुनाया। किन्तु जो लोग मेरी भक्ति से विमुख हैं उनके लिये मैं इसे अत्यन्त दुर्लभ मानता हूं।

जिस प्रकार नेत्र होते हुए भी लोग रात्रि के समय अन्धकार में चोर आदि का चिन्ह भली प्रकार नहीं देखते, दीपक होने पर ही उस समय वह दिखाई देता है, उसी प्रकार मेरी भक्ति से युक्त पुरुषों को ही आत्मा का सम्यक् साक्षात्कार होता है। अब मैं अपनी भक्ति के कुछ वास्तविक उपाय बताता हूं, सावधान होकर सुनो।

थोरेहि महं सब कहउं बुझाई।
सुनहु तात मति मन चित लाई॥
मैं अरु मोर तोर तें माया।
जेंहि बस कीन्हे जीव निकाया॥
गो गोचर जहं लगि मन जाइ।
सो सब माया जानेहु भाई॥

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ ।
विद्या अपर अविद्या दोऊ ॥
एक दुष्ट अतिसय दुख रूपा ।
जा बस जीव परा भव कूपा ॥
एक रचइ जग गुन बस जाकें ।
प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें ॥
ग्यान मान जहँ एकउ नाहीं ।
देख ब्रह्म समान सब माहीं ॥
कहिअ तात सो परम बिरागी ।
तृन सम सिद्धि तीनि गुन त्यागी ॥
माया ईस न आपु कहुं जान कहिअ सो जीव ।
बंध मोच्छ प्रद सर्बपर माया प्रेरक सीव ॥
धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना ।
ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जातें बेगि द्रवउं मैं भाई ।
सो मम भगति भगत सुखदाई ॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना ।
तेहि आधीन ग्यान बिग्याना ॥
भगति तात अनुपम सुखमूला ।
मिलइ जो संत होइँ अनुकूला ॥
भगति कि साधन कहउं बखानी ।
सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी ॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती ।
निज निज कर्म निरत श्रुति रीती ॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा ।
तब मम धर्म उपज अनुरागा ॥
[illegible] नव भक्ति दृढ़ाहीं ।
मम लीला रति अति मन माहीं ॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा ।
मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा ॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा ।
सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा ॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा ।
गदगद गिरा नयन बह नीरा ॥
काम आदि मद दंभ न जाकें ।
तात निरंतर बस मैं ताकें ॥
बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम
तिन्ह के हृदय कमल महुं करउं सदा बिश्राम ।
भगति जोग सुनि अति सुख पावा ।
लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा ॥

रामायण से ऐसा स्पष्ट प्रतीत देता है कि पञ्चवटी में रामकुटी पर सन्तों का आना-जाना बराबर बना रहता था, राम अकेले नहीं थे, सन्त समुदाय की आंखें निरन्तर पर्णकुटी पर लगी थीं।

उवास सुखीतस्तत्र पूज्यमाना महर्षिभिः ।

अचानक ही un-expectedly वहां शूर्पणखा आ गई। शूर्पणखा का शब्दार्थ है Sharp-nailed लम्बे-लम्बे तीखे नखों वाली। हो सकता है कि उन दिनों राक्षसों में सुन्दरता का स्टैन्डर्ड नाखुनों की लम्बाई ही हो, आज भी तो कन्यायें अपने नाखुन बढ़ाना, उन्हें साफ रखना और उन पर नेल-पौलिश चढ़ाना अपने लिये प्रसन्नता की बात समझती हैं। सम्भवतया शूर्पनखा को भी ऐसा ही शौक हो—वह अकस्मात् ही उधर आ निकली अथवा जान-बूझ कर आई परन्तु गोस्वामी जी की लेखनी से ऐसा ज्ञान होता है, मानो वह जानबूझ कर राम की परीक्षा लेने वहां आई थी।

एहि बिधि गए कछुक दिन बीती ।
कहत बिराग ग्यान गुन नीती ॥
सूपनखा रावण कै बहिनी ।
दुष्ट हृदय दारुन जस अहिनी ॥
पंचवटी सो गइ एक बारा ।
देखि बिकल भइ जुगल कुमारा ॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी ।
जिमि रबिमनिद्रव रबिहिबिलोकी
रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं आई ।

बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी ।
यह संजोग बिधि रचा बिचारी ॥
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं ।
देखेउं खोजि लोक तिहु नाहीं ॥
तातें अब लगि रहिउं कुमारी ।
मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ॥
सीतहि चितइ कही प्रभु बाता ।
अहइ कुआर मोर लघु भ्राता ॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी ।
प्रभु विलोकि बोले मृदु बानी ॥
सुंदरि सुनु मैं उन्ह कर दासा ।
पराधीन नहीं तोर सुपासा ॥
पुनि फिरि राम निकट सो आई ।
प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥

यदि अनुसंधानात्मक दृष्टि से देखा जाय तो विश्व इतिहास की जितनी भी बड़ी-बड़ी घटनाएं हुई हैं वे रोकी जा सकती थीं , यदि छोटी छोटी घटनाएं न होतीं तो ...यदि शान्तनु सत्यवती से विवाह न करते तो कौरव कुल का इतिहास कुछ और ही होता। यदि महात्मा गांधी २२ जनवरी १९४८ को दिल्ली से वर्धा चले जाते तो आगे कांग्रेस की रूप रेखा कुछ और ही होती । यदि श्यामप्रसाद मुकर जी श्री नगर जाने का हठ न करते तो भारतीय जनसंघ इतनी जल्दी अनाथ न हो जाता। यदि लाल बहादुर शास्त्री ताशकंद न जाते आज पाकिस्तान का जुगराफिया दूसरे ही प्रकार का होता। यदि १६ दिसम्बर १९७१ वाला संग्राम २ दिन भी और चल जाता तो लाहौर और सियालकोट का नक्शा बदला हुआ होता। छोटी-छोटी घटनाएं विश्व इतिहास के रूप को बदल देती हैं और ऐसा पंचवटी में भी हुआ।

प्रभु रामचन्द्र पंचवटी में रहते हुए अगस्त आश्रम से फर्दर आर्डर की प्रतीक्षा में थे। ऋषि फारवर्ड एरिया में आगे बढ़ने के लिए हरी झंडी न जाने कब देते, इतने में अकस्मात् एक छोटी सी घटना घटी। रावण की छोटी बहिन शूर्पणखा घूमती फिरती पर्णकुटी की ओर आ निकली। यह उसका अपना इलाका था। उसका छोटा भाई खर-दूषण उस प्रदेश का सैनिक अधिकारी था।

शूर्पणखा राम से विवाह करने नहीं आई थी-वह उन्हें पथ-भ्रष्ट करने आई थी। श्रीराम भी शूर्पणखा के आगमन का पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहते थे—

"आप का शुभ नाम" ?

"शूर्पणखा"

"ए वैरी फाईन नेम"—कुछ और ?"

"मेरे चार भाई हैं"

"गुड—टू बी एक्स्प्लेन्ड फर्दर।"

"मेरा सब से बड़ा भाई कुबेर है, वह मेरा सौतेला भाई है—विमाता का पुत्र है।"

"नाईस"

"वह हिमालय में रहता है। हमने उसे धक्के मार-मार कर निकाल दिया, वहां वह अपनी अलकापुरी बसाए बैठा है।"

"वन्डरफुल"

"कुबेर से छोटा, मेरा सब से बड़ा भाई—दशग्रीव जो "रावण" उपाधि से प्रसिद्ध है लंका का राजा है।"

"मैगनीफिशियैन्ट"

'दूसरा भाई कुम्भकरण—छः महीने से सो रहा है। कभी दशग्रीव के गीत गाता है, कभी कुबेर के पक्ष की बात करता है।"

"बीयूटीफुल"

"सब से छोटा भाई है विभीषण–दिन रात भगवान् के भजन में लगा रहता है। खुले शब्दों में कुबेर के गण-गान करता है।"

"एक्सेलैन्ट"

"निकटतम सम्बन्धी, चचा के, ताया के, मामा के पुत्र और भी मेरे भाई हैं। खर-दूषण इसी प्रदेश के प्रबन्धक-सेनाध्यक्ष हैं। मारीच जो कभी ताटका वन में रहता था, वह रिश्ते में मेरा मामा है। उधर से भाग आया, अब वह यहीं आश्रम बनाय रहता है। —"

"ऐनी थिंग मोर टू बी ब्रौट इनटू लाईट"

अहिरावण, महीरावण, नारान्तक, -मेरे अन्य भ्राता हैं, हमारी लंका के निकट में ही जो अन्य टापू हैं—मौरेशियस, सुमालीलैंड, सोऊथ अफ्रीका,—अैबीसीनिया अफैरिकन प्रदेश वहां के शासक हैं।"

"एन्ड दैट इज़ आल"

... ...

शूर्पणखा की इन सभी बातों से रामचन्द्र जी जो जानना चाहते थे, सब कुछ उन्होंने जान लिया –"House divided"—श्रीराम ने इन सब बातों से यह सार निकाला कि चारों भाईयों के चार रास्ते हैं। लंका के राज्य का वास्तविक अधिकारी है कुबेर।—टिक्का खां, भुट्टो, याहिया, अयूब की चंडाल चौकड़ी पाश्विक शक्ति से ढाका पर अपना फौलादी पंजा जमाये हुए है। प्रजा ने मुजीब को अपना भाग्यविधाता चुना था, जिसे इन राक्षस-चतुःष्टय ने अपने अत्याचारों का शिकार बनाया है। —

नम्बर तीन कुम्भकरण Still undecided अनिश्चित् बुद्धि है, सो रहा है। चौथा विभीषण definitely he is with Ayodhya. निश्चित् रूप से हमारे साथ है।"

परन्तु हमारे देश का सदैव यह आदर्श रहा है,जिन के कन्धों पर राष्ट्र-रक्षा का भार होता है उन का क्षण-क्षण राष्ट्र के लिये होता है।

राष्ट्र पुरुष जो कुछ भी करेगा, प्रजा आँख मीच कर उस का अनुकरण करेगी।—

औरत के प्रेम ने सुकार्णो को तबाह किया। औरत के प्रेम ने रोमेल, हिटलर, याहिया खां को तबाह किया, औरत के प्रेम ने बड़ी-बड़ी सल्तनतों को तबाह किया।

स्वामी राम अमेरिका गए। अमेरिकन्ज ने वही शूर्पणखा की सी योजना रची। एक निहायत खूबसूरत लड़की को सिखा पढ़ा कर स्वामी राम के पास भेजा। वह लड़की स्वामी राम के समीप जा कर बोली—I am a graduate, only daugther of a millionair—Let us be one as husband and wife. अर्थात् मैं स्वयं ग्रैज्यूएट हूं। बहुत बड़े बाप की एकमात्र पुत्री हूं। आओ हम दोनों विवाह-सूत्र में बंध जायें और दोनों एक साथ मिल कर धर्म-प्रचार करें। -स्वामी राम तीर्थ ने जवाब दिया—"Nowhere on the surface of this earth I can see a girl where in I can look-in as you say. Wherever I see, I see unto the soul of every girl, the soul of Uma, Rukmini, Sita, Gauri, Draupadi, Damyanti and Durga—No Question of marriage for me at all --अर्थात् मैं जिधर भी देखता हूं धरती की प्रत्येक कन्या के शरीर में मुझे दुर्गा, पद्मिनी की दिव्य-आत्मा नज़र आती है। यह है भारत का आदर्श। स्वामी विवेकानन्द ने २६ मई १८९१ को शिकागो से अपने मित्र के नाम पत्र लिखा—अमेरिका ने मेरी विद्वत्ता के सामने सिर नहीं झुकाया, मेरे चरित्र के सामने सिर झुकाया है।

पाकिस्तान हमारे देश के नेताओं की कमजोरी से बना। रात के १२ बजे तक यही नेता गला फाड़-फाड़ कर कह रहे थे, पाकिस्तान नहीं बनेगा, बनेगा तो हमारी लाशों पर बनेगा। परन्तु ज्यों ही लार्ड मौउन्टवैटन, पामीला मौउन्टवैटन और लेडी मौउन्टवैटन यहां पधारे, बस श्वेतांग महां प्रभुओं के दिव्य स्वरूप का वह प्रभाव हम पर पड़ा—

न सूरज हम को ले डूबा, न तारे हम को ले डूबे।
फकत अपनी ही किस्मत के सितारे हम को ले डूबे॥
न हम घबराने वाले थे कभी साहिल की मौजों से।
मगर अपने ही दरिया के किनारे हम को ले डूबे॥
हुआ कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं कुछ भी नहीं लेकिन।
मगर आंखों ही आंखों के इशारे हम को ले डूबे॥
मिलते ही नज़र उन से हम हो गये दीवाने।
आगाज़ तो अच्छा है अंजाम खुदा जाने।

That is the story of the creation of Paklstan.

शूर्पणखा राम को गिराने आई थी, यदि एक बार राम गिर जाते रामायण आगे नहीं चल सकती थी। मैं राम को इस लिये नहीं मानता कि राम ने लंका को जीता, मैं राम को इस लिये मानता हूं कि लंका को जीतने के पहले राम ने अपने आपको जीता। यदि आज-कल के जमाने का कोई नेता होता तो वह कह सकता था, यह मेरा और शूर्पणखा का प्राइवेट एफेयर है तुम बीच में दखल देने वाले कौन हो, परन्तु राम जानते थे जिनके कंधे पर देश का भार होता है उनका प्राइवेट कुछ नहीं होता सब कुछ राष्ट्र के लिये होता है। एक बात और प्रसंगवश कह दूं, शूर्पणखा रामचन्द्र को चाहती थी और सीता को अपना शत्रु समझती थी, उसकी भी दुर्दशा हुई। दूसरी ओर रावण सीता को चाहता था और राम को अपने रास्ते का रोड़ा समझता था, वह भी मरा। उधर बजरंगबली हनुमंतलाल राम को भी चाहते थे और सीता को भी, इसीलिये भक्तों की श्रेणी में हनुमन्तलाल का नाम सर्वप्रथम है। इसलिये मैं कहता हूं माया से प्रेम करना चाहते हो भले ही करो परन्तु माया के फेर में पड़कर माया पति को कहीं भूल न जाओ।

शूर्पणखा स्वयं नहीं आई थी, उसे रावण ने खूब ट्रेनिंग देकर भेजा था। कल्पना लोक में बैठकर रामायण को न पढ़िये, धरती पर रहकर पढ़िये। रावण जानता था कि राम पंचवटी में आये हुए हैं, जनस्थान में उसके जितने भी टिक्का खां, फर्मानअली, हमीद खां थे, रावण जानता था कि राम द्वारा उनका किस्सा खतम हो चुका है। विराध आदि रावण के एजेंट आर्यावर्त की धरती पर जो दनदना रहे थे उनकी मरने की खबर रावण तक पहूँच चुकी थी। परन्तु इधर राम की राजनीति बहुत जबरदस्त थी। राम के पास कोई खजाना नहीं था, कोई फौज नहीं थी, कोई युद्ध की सामग्री नहीं थी। रावण की फौज दण्डकारण्य में डेरा डाले पड़ी ही थी परन्तु फौजी आक्रमण से पहले उसने शूर्पणखा द्वारा राम पर आक्रमण करना ठीक समझा।

इधर राम भी सब कुछ जानते थे, वे शूर्पणखा से अधिक से अधिक लाभ उठाना चाहते थे। शूर्पणखा के मुखारविन्द से निकले

हुए उन सारपूर्ण शब्दों द्वारा वे रावणीय लंकाकी आन्तरिक अवस्था का विराट रूप देख लेना चाहते थे। पुरुष और स्त्री में सबसे बड़ा भेद यही है, पुरुष पहले सोचता है स्त्री बादमें सोचती है और जो स्त्री, स्त्री होते हुए मर्द का सा पार्ट प्ले करती है वह न पहले सोचती है न बाद में सोचती है।

शूर्पणखा का षड्यन्त्र विफल रहा। राम एवं लक्ष्मण को वह अपने माया जाल में फंसा न सकी। जहां तक शूर्पणखा के नाक-कान कट जाने की बात है, वास्तव में मानवीय विचार-शक्ति के लिये यह एक समस्या है। श्रीराम ने स्वयं कितनी ही बार कहा "मुझे इन्द्रासन भी मिल जाय, मर्यादा का उल्लंघण करने के लिये मैं कदापि तैयार नहीं हूं" मातृवत् पर दारेषु की संस्कृति को मानने वाले राम एकान्त में आई अबला का अपमान किसी भी अवस्था में न स्वयं कर सकते थे और न ही अपनी मौजूदगीमें किसी दूसरे को ऐसा करने की आज्ञा दे सकते थे। शूर्पणखा अपने साथ कोई लड़ने के लिए अस्त्र-नहीं लाई थी, कोई बौडी-गार्ड भी नहीं लाई थी—जहाँ तक रामायण साक्षी है वह अकेली ही आई थी।

यदि वह सीता को खा जाना चाहती थी तो सीता कोई अमरती, जलेबी तो नहीं थी जिसे शूर्पणखा समूचा निगल जाती। सीता वह वीरांगना थी, जिस धनुष को संसार भर के योद्धा हिला तक न सके, सीता जी ने उसे सहज ही में खिलौना समझ कर उठा लिया। कितनी बड़ी शक्ति थी सीता जी के हाथों में, मानों वे हाथ हाड़ और मांस के बने हुए नहीं थे, स्टील के बने थे, वज्र के बने हुए थे। ऐसा शक्तिशाली हाथ अगर एक बार भी शूर्पणखा की गाल पर पड़ता तो गाल का भरथा बना के रख देता, यदि वे हाथ कहीं शूर्पणखा की गर्दन पर पड़ जाता तो कबूतर की गर्दन की तरह मरोड़ कर फेंक देता। आजकल के रामायणी भले ही लक्ष्मण का कितना भी डिफेन्स देते फिरें, निष्पक्ष भावना की बात तो यह है—शूर्पणखा के साथ सीता निपट लेती, राम-लक्ष्मण को बीच में इन्टर-फियर करने की कोई आवश्यकता नहीं।

लक्ष्मण यती सती थे, उनके सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्होंने निरन्तर १२ वर्ष तक किसी स्त्री का मुंह नहीं देखा। लक्ष्मण का चरित्र कितना उज्ज्वल था, सीता हरण के पश्चात् राम ने कहा, सीता के गहने तो पहचानो? लक्ष्मण ने जवाब दिया मैं पांव के गहने तो पहचान सकता हूं, चेहरे के गहने नहीं पहचान सकता, क्योंकि मैंने सीता जी के चेहरे की ओर देखा ही नहीं। इतने महान् लक्ष्मण से यह आशा किस प्रकार की जा सकती थी वे किसी स्त्री का नाक और कान काट सकते। पांव की ओर देखकर तो नाक-कान काटे जा नहीं सकते, नाक-कान काटने के लिये चेहरे की ओर देखना भी जरूरी था, और चेहरे के अंगों का आपरेशन करने के लिए चेहरे को कन्ट्रोल में रखना भी जरूरी था।

हमारा अपना विचार है, नाक और कान कटने की बात अलंकारिक भाषा में लिखी गई है। नाक चेहरे की सुन्दरता का प्रतीक है और कान शब्दों के प्रतीक हैं। शूर्पणखा ने रूप भी सुन्दर दिखाया और उसने शब्द भी सुन्दर सुनाये। आर्य वीरों ने इन दोनों प्रलोभनों को ठुकरा दिया, इसी को कवि ने अलंकारिक भाषा में नाक और कान काटने की बात कही है।

भव भूति ने एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा है, जिस का नाम है उत्तर राम चरितम्। उस में एक बड़ा ही सुन्दर दृश्य आया है, प्रभु

रामचन्द्र अश्वमेघ यज्ञ करना चाहते हैं, घोड़ा छोड़ा गया—एक चैलञ्ज था—

अयं अश्वः पताकोऽयं अयं च वीरघोषणः ।
सप्तलोकैक वीरस्य दशकंठ कुलोद्वहः ।।

अर्थात् यह घोड़ा यह पताका और यह खुला चैलेंज उस महापुरुष का है, जिसने केवल दस दिन के अन्दर रावण के वंश को खतम कर दिया ।

लव ने घोड़े को बांध लिया, घोड़ा कहीं भागता-दौड़ता बाल्मीकि के आश्रम पर जा निकला था। पीछे-पीछे आ रहे थे , चन्द्रकेतु लक्ष्मण के पुत्र, बोले—ऋषि कुमारो ! घोड़े को छोड़ दो, यह घोड़ा उस महान् पुरुष का है जिसने रावण के कुल को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया । लव हंस कर बोला—यह घोड़ा यदि उस महापुरुष का है तो हम जरूर बांधेंगे । निश्चय ही एक बहुत बड़े बहादुर का घोड़ा है, इस बहादुर की कितनी ही बहादुरियाँ हमनें पिता श्री के मुख से पहले से सुन रखी हैं ।

वृद्धास्ते न विचारणीय चरितास्तिष्ठन्तु किं वर्ण्यते
सुन्दस्त्री निधनेऽप्यकुण्ठयशसो लोके महान्तो हि ते ।
यानि त्रीणि पदान्यपिप्रतिपदान्यासन खरायोधने ।
यद्वा कौशलमिन्द्र सुनु निधने तत्राप्यभिज्ञोजनाः ।।

हे चन्द्रकेतु ! जिसकी महिमा तुम गा रहे हो, सचमुच ये बहुत बड़े बहादुर हैं। पहली बहादुरी तो इस वीर ने यह की—जो इसने ताड़का नामी एक औरत पर हाथ उठाया, दूसरी बहादुरी इसने यह दिखाई कि खरदूषण से लड़ते हुए तीन पग पीछे हटा लिये--सच्चे वीर का लक्षण यह है—मर जाये, कट जाये, पीछे मुड़ कर न देखे । तीसरी बहादुरी इसने ये दिखाई कि बाली को छिपकर मारा, बहादुर छिप कर नहीं मारा करते, मैदान में आकर सामने लड़ा करते हैं। यदि शूर्पणखा की नाक काटने की बात अलंकारिक न होकर ऐतिहासिक होती तो लव इसका भी अवश्य जिक्र करता। वह अवश्य कहता—"एक निर्दोष अबला अकस्मात् घूमती फिरती पंचवटी में आई थी, इसी वीर की प्रेरणा से और इसी वीर की मौजूदगी में इस की आंखों के सामने इसके सगे छोटे भाई ने उसके नाक-कान काट डाले ।"

विवाह किसी पर जबरदस्ती बलपूर्वक लादा नहीं जाता, विवाह शरीर का मिलन नहीं हृदयों का मिलन है। भिन्न-भिन्न प्रदेशों में विवाह के भिन्न-भिन्न तरीके हैं । आखिर विवाह का इनीशियेटिव, श्रीगणेश किसी की तरफ से तो होगा, परम्पराएं बदलती रहती हैं, हमारे ही अपने जमाने में कई परम्पराएं बदलीं। आज से ५० वर्ष पूर्व वर को वधू की खोज होती थी, परीक्षा वर महोदय की होती थी वधू की परीक्षा नहीं होती थी । स्त्री और पुरुषों में प्रणय संबंध की स्थापना का श्रीगणेश कुल पुरोहितों की ओर से हुआ करता था । धीरे-धीरे परम्परा बदली, माता-पिता प्रधान हो गये, अब फिर परम्परा बदल रही है, लड़के प्रधान हो गये । यदि कोई लड़का किसी लड़की से प्रार्थना करता है कि मैं तुम से विवाह करना चाहता हूं, समाज उसको बुरा नहीं मनाता । तो यदि किसी लड़की ने किसी लड़के को यह कह दिया कि मैं तुम से विवाह करना चाहती हूं मैं तुम से रतिदान मांगने आई हूं, निश्चय ही इस में बुरा मानने की कोई बात नहीं ।

मुझे इस स्थल पर एक घटना याद आ गई। श्याम शास्त्री अपने समय के बहुत बड़े विद्वान थे, वे पूना हाइकोर्ट के जज भी थे। एक समय वे भाषण दे रहे थे, विषय था समाज

निर्माण। भाषण के बीच में एक देवी जी खड़ी हो गई, बोलीं—शास्त्री जी ! मैं आप से एक प्रश्न पूछना चाहती हूं, जो धर्म शास्त्र पत्नी के देहान्त के पश्चात् पति को दूसरे विवाह की खुली छुट्टी देता है, वही धर्म शास्त्र पति के देहान्त के बाद पत्नी को दूसरे विवाह की इजाजत क्यों नहीं देता ? प्रश्न बड़ा विकट था, श्याम शास्त्री पहले तो सोच में पड़ गये। थोड़ी देर बाद स्थिर भाव से बोले, देवि ! धर्मशास्त्रों को बनाने वाले सबके सब पुरुष थे, स्त्री हृदय को वेदनाओं को वे समझ नहीं सके। यदि धर्मशास्त्र की निर्माता कोई स्त्री होती, निःसन्देह पति के पश्चात् पत्नी की जो दुर्दशा होती है उस दुर्दशा का उसे क्रियात्मक अनुभव होता, और उस दुर्दशा को सुदशा में बदलने के लिये धर्म-शास्त्र सहानुभूति पूर्ण हृदय से कुछ न कुछ विचार अवश्य करता।

यह भी सम्भव हो सकता है अपने प्रयास की विफलता को देखकर शूर्पणखा ने स्वयं ही प्रतिशोध की भावना से अपने चेहरे पर दो चार निशान लगा लिये हों। स्त्रियों की ये प्रकृति है यदि वे किसी से प्रेम करती हैं तो अपना सर्वस्व अपने प्रेमी के प्रति न्यौछावर करने को तैयार हैं परन्तु यदि उनके प्रणय को ठुकराया जाता है तो अपने प्रेमी के प्राण तक लेने को तैयार हो जाती हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज कहते हैं—

लछिमन अति लाघवं सो नाक कान बिनु कीन्हि।
ताके कर रावन कहं मनौ चुनौती दीन्हि॥

मैं एक बार फिर कहता हूं, राम ने अथवा लक्ष्मण ने जो कुछ किया उसे सामान्य धर्म से न देखिये राष्ट्र धर्म के दृष्टिकोण से देखिये। बनवास की अवधि समाप्त होने में थोड़े ही दिन बाकी थे, आखिर श्री राम कब तक इंतजार में बैठे रहते, युद्ध तो होना ही था, आज न होता कल होता, अच्छा था जल्दी शुरू हो जाता। यदि शूर्पणखा कोई साधारण औरत होती तो शायद इतना बड़ा कदम राम और लक्ष्मण न उठाते परन्तु शूर्पणखा शत्रु पक्ष की राजकन्या थी। विवाहिता थी अथवा अविवाहिता अथवा विधवा थी हमें इससे कोई तात्पर्य नहीं। वह प्रदेश उसकी जागीर थी जिसे रावण ने उसे भेंट स्वरूप दे रखा था, अतः शूर्पणखा पंचवटी में देवी के रूप में नहीं थी, स्त्री के रूप में भी नहीं थी, मालकिन के रूप में थी। हो सकता है उस के पीछे कोई फोर्स भी हो, क्योंकि वह श्री राम को गिराने आयी थी, इस प्रकार से अपना मनो-रथ पूरा न होते देख हो सकता है उसने अपनी force अंग रक्षकों द्वारा जो पहले कहीं छिपे हुए हों, उन को आगे कर श्रीराम से झगड़ा मोल लिया हो और ताटका के समान हो उस देवी ने भी राक्षसी का रूप धारण कर लिया हो—हो सकता है राष्ट्र धर्म का पालन करते हुए श्री राम ने लक्ष्मण को प्रेरणा दी हो कि वह उस अवस्था में आपद्कालीन धर्म की पालना करें। युद्ध तो छिड़ना ही था, चलो, इसी बहाने से छिड़ जाय। The sooner the better.

नाक कान बिनु भइ बिकरारा।
जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥
खर दूषन पहिं गइ बिलपाता।
धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥
तेहि पूछा सब कहेसि बुझाई।
जातुधान सुनि सेन बनाई॥
धाए निसिचर निकर बरूथा।
जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा॥

नाना बाहन नानाकारा।
नानायुध धर घोर अपारा॥
सूर्पनखा आगें करि लीनी।
असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥

कोदंड कठिन चढ़ाई सिर जट जूट बांधत सोह क्यों।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों॥
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै।
चितवत मनहुं मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै॥

अपनी बहिन को अंगहीन एवं खून से लथ-पथ देखकर खर क्रोध से जल उठा और बोला – "बहिन! उठो और अपना हाल बताओ। मूर्छा और घबराहट छोड़कर साफ-साफ कहो—किस ने तुम्हें इस तरह रूपहीन बनाया है? क्रोध से भरे हुए भाई के यह वचन सुनकर शूर्पणखा ने आंसू बहाते हुए कहा –"वन में दो तरुण पुरुष आये हैं, जो देखने में बड़े ही सुकुमार, रूपवान् और महाबली हैं। अपने को राजा दशरथ का पुत्र बतलाते हैं। उनके नाम राम और लक्ष्मण हैं। उन्हीं दोनोंने मिलकर ऐसी मेरी दुर्गति की है। मैं युद्ध में उन दोनों पुरुषों का रक्त पान करूँ। —यही मेरी इच्छा है; इसे तुम पूर्ण करो।'

शूर्पणखा के ऐसा कहने पर खर ने कुपित होकर अत्यन्त बलवान् चौदह राक्षसों को, जो यमराज के समान भयंकर थे, आदेश दिया – "वीरो! इस भयंकर दण्डकारण्य के भीतर चीर और काला मृगचर्म धारण किये दो शस्त्रधारी मनुष्य आये हैं। तुम लोग वहां जाकर उन दोनों मनुष्यों को मार डालो। राक्षस शूर्पणखा के साथ पंचवटी को गये। तदनन्तर भयानक राक्षसी शूर्पणखा श्रीराम चन्द्र जी के आश्रम पर आयी और अपने साथ आये हुए राक्षसों को सीता सहित उन दोनों भाईयों की पहचान करायी, राक्षसों ने देखा, महाबली राम सीता के साथ पर्णशाला में बैठे हैं और लक्ष्मण उनकी सेवा में खड़े हैं। उधर भगवान् श्री राम ने शूर्पणखा के साथ उन राक्षसों को आये देख अपने तेजस्वी भ्राता लक्ष्मण से कहा – "सुमित्रानन्दन! तुम थोड़ी देर तक सीता के पास खड़े हो जाओ। मैं इस राक्षसी के हिमायती बन कर आये हुए इन निशाचरों को अभी मारे डालता हूं।' श्री राम चन्द्र जी की बात सुनकर लक्ष्मण ने 'तथास्तु' कहकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य की। तब धर्मात्मा रघुनाथ जी ने अपने सुवर्णमण्डित धनुष पर प्रत्यन्चा चढ़ायी और उन राक्षसों से कहा— हम दोनों भाई राजा दशरथ के पुत्र राम और लक्ष्मण हैं, सीता के साथ इस दण्डकवन में रहकर तपस्या करते हैं। तुम सब-के-सब पापी और ऋषियों के अपराधी हो। उन ऋषियों की आज्ञा से ही मैं धनुष-बाण लेकर युद्ध में तुम्हें मारने के लिये आया हूँ। निशाचरो! यदि तुम्हें युद्ध से प्रेम हो, तो खड़े रहो; भाग मत जाना। और यदि प्राणों का लोभ हो तो एक क्षण के लिये भी न रुको, लौट जाओ।'

उन चौदह राक्षसों को यमलोक पहुंचाने में श्री राम को कुछ भी समय नहीं लगा, परन्तु शूर्पणखा के सिर पर तो बदले का भूत सवार था, वैसे भी औरत की यह फितरत है, जब वह किसी से स्नेह करती है, अपनी जान तक उस के लिये कुर्बान करने को तैयार है, परन्तु यदि उस के प्रेम को ठुकराया जाता है तो फिर उस के प्राण तक लेने में भी कोई कसर नहीं छोड़ती।

शूर्पणखा फिर खर के पास भागी भागी गयी, खर के पास चौदह हज़ार रीज़र्व सेना थी। दूषण की कमान में वह समूची सेना श्री राम से लोहा लेने चली। परन्तु वह सेना कर ही

क्या सकती थी, हाथ नहीं लड़ते हृदय लड़ता है। श्री राम का व्यक्तित्व कितना महान् था, सेना के साधारण सिपाही का तो कहना ही क्या, स्वयं राक्षसी सेना का स्वामी खर श्री राम के व्यक्तित्व से इतना प्रभावित हुआ—

सचिव बोलि बोले खर दूषण।
यह कोउ नृप बालक नर भूषण॥
नाग असुर सुर नर मुनि जेते।
देखे जिते हते हम केते॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई।
देखी नहिं असि सुन्दरताई॥
जद्यपि भगिनी कीन्हि करूपा।
बध लायक नहिं पुरुष अनूपा॥

परन्तु आखिर खर महोदय ने सेनाध्यक्ष के नाते अपनी डयूटी तो बजानी ही थी। उसने श्री राम के पास अल्टीमेटम भेजा,—सीता को हमारे हवाले कर दो, हम तुम्हारी जान बक्शते हैं। परन्तु साहस, वल, पुरुषत्व के अवतार राम ने कमाल का उत्तर दिया।

हम छत्री मृगया बन करहीं।
तुम्ह से खल मृग खोजत फिरहीं॥
रिपु बलवंत देखी नहिं डरहीं।
एक बार कालहु सन लरहीं।
जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक॥
मुनि पालक खल सालक बालक।
जौं न होइ बल घर फिरि जाहू।
समर बिमुख मैं हतउँ न काहू।
रन चढ़ि करिअ कपट चतुराई।
रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ।
सुनि खर दूषण उर अति दहेऊ॥
उर दहेउ कहेन्ह कि धरहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्हि धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर ब्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥
सावधान होइ धाए जानि सबल आराति।
लागे बरषन राम पर अस्त्र शस्त्र बहु भांति॥
तिन्ह के आयुध तिल सम करि काटे रघुबीर।
तानि सरासन श्रवन लगि पुनि छांड़े निज तीर॥

दण्ड़िकारण्य में खर की वैसी ही हैसियत थी जैसी मुजीब के बंगला देश में १९७१ के पहले टिक्काखां की थी। खर गरजता हुआ बोला—मैं मतवाले ऐरावत पर चलनेवाले देवराज इन्द्र को भी रणभूमि में कुपित होकर काल के गाल में डाल सकता हूं, फिर इन दो मनुष्यों की तो बात ही क्या है। इतना कह वह उन्मत्त होकर श्री राम की ओर दौड़ा। अस्त्र विद्या के ज्ञाता श्री राम चन्द्र जी ने देखा कि यह राक्षस खून से लथपथ होने पर भी कुपित होकर मेरी ही ओर बढ़ा आ रहा है, तो उसका वध करने के लिये उन्होंने एक अग्नि के समान तेजस्वी बाण हाथ में लिया, जो दूसरे ब्रह्मदण्ड के समान भयंकर था। वह बाण देवराज इन्द्र का दिया हुआ था। धर्मात्मा श्री राम ने उसे धनुष पर रखा और खर को लक्ष्य करके छोड़ दिया। उसके छूटते ही बज्रपात के समान भयानक आवाज हुई। वह महान् बाण खर की छाती में लगा और वह निशाचर उसको आग में जलता हुआ पृथ्वी पर गिर पड़ा।

एतस्मिन्नन्तरे देवाश्चारणैः सह संगताः
दुंदुभींश्चाभिनिघ्नंतः पुष्पवर्षं समंततः॥
रामस्योपरि संहृष्टा ववर्षुर्विस्मितास्तदा।
अहो बत महत्कर्म रामस्य विदितात्मनः॥
अहो वीर्यमहो दाढ्यं विष्णोरिव हि दृश्यते।
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे ययुर्देवा यथागतम्॥

ततो राजर्षयः सर्वे संगताः परमर्षयः ।
सभाज्य मुदिता रामं सागस्त्या इदमब्रुवन ।।
एतदर्थं महातेजा महेंद्रः पाकशासनः ।।
शरभगाश्रमं पुण्यमाजगाम पुरंदरः ।।
आनीतस्त्वमिमं देशमुपायेन महर्षिभिः ।
एषां वधार्थं शत्रूणाँ रक्षसां पापकर्मणाम ।।
तदिदं नः कृतं कार्यं त्वया दशरथात्मजः ।
स्वधर्मं प्रचरिष्यंति दंडकेषु महर्षयः ।।

इसी समय देवता और चारण एकत्रित होकर आये और दुन्दुभि बजाते हुए सब ओर फूलों की वर्षा करने लगे । वे आपस में बोले— अहो ! आत्मतत्व के ज्ञाता भगवान् श्री राम का यह महान् पराक्रम बड़ा ही अद्भुत है । इन्होंने इस महासंग्राम में तीन ही घड़ी के भीतर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले खर-दूषण आदि चौदह हजार राक्षसों का अपने तीखे बाणों से संहार कर डाला । इनका अद्भुत शौर्य और धैर्य भगवान् विष्णु के समान दिखायी देता है। यों कहकर सब देवता जैसे आये थे वैसे ही अपने अपने स्थान को चले । तत्पश्चात् राजर्षि और महर्षि एकत्रित हुए। उनके साथ अगस्त्य जी भी थे। उन सब ने बड़ी प्रसन्नता के साथ श्री राम चन्द्र जी का सत्कार करके कहा—रघुनन्दन ! महातेजस्वी इन्द्र इसी कार्य के लिये शरभङ्ग मुनि के पवित्र आश्रम पर आये थे। इस पापी राक्षसों का वध करने के लिये ही महर्षिगण अनेकों उपाय करके आपको इस देश में लाये हैं। दशरथनन्दन ! आपने हम लोगों का बहुत बड़ा कार्य किया है। अब दण्डकारण्य के ऋषि-मुनि बेखटके अपने धर्म का अनुष्ठान करेंगे।

तदनन्तर जनस्थान से अकम्पन नाम का राक्षस बड़ी उतावली से लंका की ओर चला और शीघ्र ही वहां पहुंचकर रावण से बोला— 'राजन् ! जन स्थान में रहने वाले बहुत से राक्षस मार डाले गये। युद्ध में खरकी भी मृत्यु हो गयी, मैं किसी तरह जान बचाकर यहां आया हूं।' अकम्पन के मुहं से ऐसी बात सुन कर दशमुख रावण क्रोध से आग बबूला हो उठा और लाल-लाल आंखें कर के बोला— कौन मौत के मुख में जाना चाहता है, किसने मेरे भयंकर जन स्थान का विनाश किया है ? मेरा अपराध करके इन्द्र, कुबेर, यम और विष्णु भी चैन से नहीं रह सकते।

उस समय रावण ने अकंपन से कहा, आप जैसी भी परिस्थिति हो ठीक-ठीक कहिये । मुझे इस समय क्या करना चाहिये। हालात सचमुच खराब दीख रहे हैं ।—उस समय अकंपन बोला—राजन्,—हालात सचमुच हमारे विपरीत जा रहे हैं। सैना के बल से हम राम को जीत नहीं सकते, यह सर्वथा सत्य है। मुझे उनके वधका जो उपाय सूझा है, वह बताता हूं, ध्यान देकर सुनिये । उनकी स्त्री सीता संसार की सर्वोत्तम सुन्दरी है, अभी उसने यौवन के मध्य में पदार्पण किया है सीता स्त्रियों में एक रत्न है। देवकन्या, गन्धर्वकन्या, अप्सरा अथवा नागकन्या—कोई भी रूप में उसकी समानता नहीं कर सकती। अतः आप उस महान् वन में श्री राम चन्द्र को धोखा देकर उनकी स्त्री का अपहरण कर लें। सीता के बिना श्री राम जीवित नहीं रह सकते।'

राक्षस राज रावण को अकम्पन की बात पसन्द आ गयी। उसने सोच कर कहा—ठीक है, कल प्रातःकाल सारथि के साथ मैं अकेला ही जाऊंगा। ऐसा कह कर रावण रथ पर सवार हो ताटका के पुत्र मारीच के आश्रम पर

गया। मारीचने अपने राजा का भली भाँति सत्कार किया। आसन और जल देकर उसकी विधिवत् पूजा की।

करि पूजा मारीच तब सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन व्यग्र अति अकसर आयहु तात॥

तत्पश्चात अर्थ पूर्ण वाणी में पूछा—राक्षस राज ! तुम्हारे राज्य में कुशल तो है ? तुम बड़ी उतावली के साथ आ रहे हो, इसी से मेरे मन में खटका हुआ है। मारीच के ऐसा कहने पर महान् तेजस्वी रावण बोला—तात ! अनायास ही महान् पराक्रम दिखाने वाले रामने मेरे राज्य की सीमा के रक्षक खर-दूषण आदि को मार डाला है अतः इसका बदला लेने के लिए मैं उनकी स्त्री का अपहरण करना चाहता हूं। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो। राक्षस राज की यह बात सुनकर मारीच बोला—किसने तुम्हें सीता का अपहरण करने की सलाह दी है ? जिसने यह बात कही है, वह मित्र के रूप में तुम्हारा घोर शत्रु है। किस ने तुम को ऐसी खोटी सम्मति देकर कुमार्ग पर पहुंचाया है। तुम युद्ध में श्री राम चन्द्र जी की ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते। लङ्केश्वर ! मेरी बात मानो और लङ्का को लौट जाओ। तुम अपनी ही स्त्रियों से अनुराग करते हुए सुखी रहो और श्री राम भी अपनी पत्नी के साथ वन में सानन्द निवास करें। मारीच के ऐसा कहने पर दशमुख रावण लङ्काको, लौट गया और अपने सुन्दर महल में जा बैठा।

इधर शूर्पणखाने जब देखा कि श्री राम ने अकेले ही चौदह हजार राक्षसों का सफाया कर डाला और दूषण, खर तथा त्रिशिराको भी मौत के घाट उतार दिया, तो वह शोक के कारण घोर चीत्कार करने लगी और अत्यन्त उद्विग्न होकर लङ्कापुरी में गयी। वहां पहुंच कर उसने महान् तेजस्वी रावण को अपने मन्त्रियों के साथ सतमहले की छत पर बैठे देखा। वह सोने के सिंहासन पर विराज मान था।

दृष्ट्वा ता रावण: प्राह भगिनी भय विह्वलाम्।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ वत्से त्वं विरूपकरण तब॥
कृतं शक्रेण वा भद्रे यमेन वरुणेन वा।
कुबेरेणाथवा ब्रूहि भस्मीकुर्या क्षणेन तम्॥

अपनी बहन को इस प्रकार भयभीत देख कर रावण बोला—अरीं वत्से उठ, खड़ी हो। बता तो सही तुझे किसने विरूपा किया है ? हे भद्रे ! यह इन्द्र का काम है अथवा यम, वरुण और कुबेर में से किसी ने किया है ? बता, एक क्षण में ही मैं उसे भस्म कर डालूंगा।

धुआं देखि खरदूषन केरा।
जाइ सूपनखां रावन प्रेरा॥
बोली बचन क्रोध करि भारी।
देस कोस कै सुरति बिसारी॥
करसि पान सोवसि दिनु राती।
सुधि नहिं तव सिर पर आराती॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा।
हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएं।
श्रम फल पढ़ें किएं अरु पाएं॥
संग तें जती कुमंत्र ते राजा।
मान ते ग्यान पान तें लाजा॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी।
नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥
रिपु रुज पावक पाप प्रभु अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप करि लागी रोदन करन॥
सभा माझ परि ब्याकुल बहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दस कंधर मोरि कि असि गति होइ॥

सुनत सभासद उठे अकुलाई ।
समुझाई गहि बांह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता ।
केइं तव नासा कान निपाता ॥
अवध नृपति दसरथ के जाए ।
पुरुष सिंघ बन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी ।
रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥
जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन ।
अभय भए बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना ।
परम धीर धन्वी गुन नाना ॥
अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता ।
खल बध रत सुर मुनि सुख दाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा ।
तिन्ह के संग नारि एक स्यामा ॥
रूप रासि बिधि नारि संवारी ।
रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे श्रुति नासा ।
सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ।
खर दूषन सुनि लगे पुकारा ।
छन महुं सकल कटक उन्ह मारा ॥
खर दूषन तिसिरा कर घाता ।
सुनि दससीस जरे सब गाता ।

सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भांति ।
गयउ भवन अति सोच बस नीद परइ नहिं राति ॥

रावण बड़ा समझदार था, अपने समय का एक महान् राजनीतिज्ञ था । उसने अपने मन्त्री मंडल को बुलाया, और शीघ्र ही उसने एक निश्चय किया । उसने अच्छी तरह समझ लिया,—समुद्र पार जा कर राम से लोहा लेना कठिन ही नहीं असम्भव ही है । बुद्धिमत्ता इसी में है कि युद्ध क्षेत्र यहीं बनाया जाय । लम्बा-चौड़ा समुद्र राम ही को पार करना पड़े । अपनी धरती पर लड़ना आसान रहेगा । ऐसा विचार करके रावण ने मारीच के सहयोग से सीता को war prisoner युद्ध बन्दी के रूप में लंका में ले आने का निश्चय कर लिया ।

गोस्वामी तुलसी दास की विचार-शक्ति के चमत्कार का भी दिग्दर्शन कर लीजिये ।

सुर नर असुर नाग खग माहीं ।
मोरे अनुचर कहं कोउ नाहीं ॥
खर दूषन मोहि सम बलवंता ।
तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता ॥
सुर रंजन भंजन महि भारा ।
जौं भगवंत लीन्ह अवतारा ॥
तौ मैं जाइ बैरु हठि करऊं ।
प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊं ॥
होइहि भजनु न तामस देहा ।
मनक्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौं नररूप भूपसुत कोऊ ।
हरिहउं नारि जीति रन दोऊ ॥
चला अकेल जान चढ़ि तहवां ।
बस मारीच सिंधु तट जहवां ॥

रावण ने सोचा, मौत तो आनी ही है । खाट पर घुल-घुल कर मरने के बजाय अच्छा है कि मैं श्री राम के वाणों से मरूं, इसी में मेरा मोक्ष है ।

आश्वास्य भगिनीं राजा प्रविवेश स्वकं गृहम् ।
तत्र चिन्तापरो भूत्वा निद्रां रात्रौ न लब्धवान् ॥
एकेन रामेण कथं मनुष्य-
मात्रेण नष्टः सबलः खरो मे ।
भ्राता कथं मे बलवीर्यदर्प-
युतो विनष्टो बत राघवेण ।

यद्वा न रामो मनुजः परेशो
मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः।
सम्प्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं
मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत्॥
वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहं
वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम्।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव
भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि॥
इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो
रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम्!
विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि
द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत्॥

यह सुनकर राक्षसराज रावण ने सुन्दर वाक्यों और दान-मानादि से बहिन शूर्पणखा को धैर्य बंधाकर अपने अन्तःपुर में प्रवेश किया, किन्तु वहां चिन्ता के कारण उस रात्रि को नींद नहीं आयी। वह सोचने लगा बड़े आश्चर्य की बात है, अकेले मनुष्यमात्र रघुवंशी राम ने बल-वीर्य और साहससम्पन्न मेरे भाई खर को सेना के सहित कैसे मार डाला। अथवा यह राम मनुष्य नहीं है, साक्षात् परमात्मा ने ही पूर्वकाल में की हुई ब्रह्माकी प्रार्थनासे मेरी सेनाके सहित मुझे वानर सेनाओं से मारने के लिये इस समय रघुवंश में मनुष्य रूप से अवतार लिया है। यदि परमात्मा द्वारा मैं मारा गया तब तो मैं वैकुण्ठ का राज्य भोगूंगा, नहीं तो चिरकालपर्यन्त राक्षसों का राज्य तो भोगूंगा ही।' इस लिये मैं अवश्य राम के पास चलूंगा।

सम्पूर्ण राक्षसों के स्वामी रावण ने इस प्रकार विचार कर भगवान् राम को साक्षात् परमात्मा हरि जानकर यह निश्चय किया कि मैं विरोध-बुद्धि से ही भगवान् के पास जाऊंगा, क्योंकि भक्ति के द्वारा भगवान् शीघ्र प्रसन्न नहीं हो सकते।

तत्पश्चात् बलाबल का निश्चय करके अन्त में रावण ने यह स्थिर कर लिया कि यह कार्य कर ही लेना चाहिए। जब इस बात पर बुद्धि जम गयी तो रथशाला में जाकर उसने सारथी को रथ जोत कर लाने की आज्ञा दी। वह रथ हवा में चलने वाला था और आवश्यकता आ पड़ने पर पानी में नाव की तरह और धरती पर बस की तरह चल सकता था।

थोड़ी ही देर में रावण मारीच-आश्रम में जा पहुंचा। अपने महाराज को पुनः आया देख मारीच बोला—

'राक्षसराज! तुम्हारी लंका में कुशल तो है? किस काम के लिये तुम पुनः इतनी जल्दी यहां आये हो?'

मारीच के इस प्रकार पूछने पर बातचीत करने में कुशल महातेजस्वी रावण ने कहा—तात मारीच! मेरी बात सुनो, मैं बहुत दुःखी हूं। तुम्हीं मुझे सबसे बढ़कर सहारा देने वाले हो, जहां मेरा भाई खर, दूषण, बहिन शूर्पणखा, महाबाहु त्रिशिरा तथा और भी बहुत से शूरवीर निशाचर रहा करते थे। इस समय वहां जितने महाबली राक्षस थे वे सभी युद्ध में राम के साथ भिड़ गये, किन्तु राम ने अकेले और पैदल होने पर भी अपने तेजस्वी बाणों से उन चौदह हजार राक्षसों का विनाश कर डाला तथा खर, दूषण और त्रिशिरा को भी मौत के घाट उतार कर समूचे दण्डक वन को निर्भय बना दिया। इतना ही नहीं, उसने बिना किसी वैर विरोध के मेरी बहिन के नाक-कान काटकर उसका भी रूप बिगाड़ दिया। अतः मैं भी बदला लेने के लिये उसकी देव कन्या के समान सुन्दरी धर्म-पत्नी सीता को जनस्थान से बलपूर्वक हर लाऊंगा। तुम इस कार्य में मेरी सहायता करो।

उस समय रावण को समझाता हुआ

मारीच बोला—तुम में इतनी शक्ति नहीं है कि सीता का अपहरण कर सको । राक्षसराज ! यह व्यर्थ का उद्योग करने से तुम्हें क्या लाभ होगा ? जिस दिन युद्ध में तुम्हारे ऊपर राम की दृष्टि पड़ जाय, उसी दिन तुम अपने जीवन का अन्त समझना । विभीषण आदि धर्मात्मा मन्त्रियों के साथ बैठकर तुम अपने जीवन, सुख और अत्यन्त दुर्लभ राज्य की रक्षा के विषय में भलीभांति सलाह कर लो तथा दोष और गुणों को, अपनी प्रबलता और बलहीनता को अच्छी तरह समझ लो । इसके बाद अपने कर्तव्य का निश्चय करो । अपने और श्रीराम चन्द्र जी के बल को ठीक-ठाक जान लेने के बाद जिस में अपना हित हो, उस उपाय का विचार करो। फिर तुम्हें जो उचित जान पड़े, वही कार्य करना चाहिये । मैं तो समझता हूं कि कोसल-राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी के साथ तुम्हारा युद्ध करना उचित नहीं है ।

मारीच की बातें मानने योग्य और उचित थीं, तो भी जैसे मृत्यु चाहने वाला मनुष्य दवा नहीं लेता, उसी प्रकार रावण ने उन्हें ग्रहण नहीं किया । उसने यथार्थ और हित की बात बताने वाले मारीच से कठोर और अनुचित वचन कहा—'मारीच ! तुम जो अनाप-शनाप बातें बक रहे हो, ये मेरे लिये बिल्कुल व्यर्थ हैं, ऊसर में बोये हुए बीज के समान हैं । इसे इन्द्र आदि देवता और असुर कोई नहीं बदल सकते । यदि इस कार्य का निर्णय करने के लिये तुमसे दोष-गुण अथवा उपाय और उनके विघ्नों के दूर करने के विषय में प्रश्न किया जाता, तो तुम्हें ऐसी बातें कहनी चाहिए थीं । जो अपना कल्याण चाहता हो, उस बुद्धिमान् मन्त्री को उचित है कि वह राजा के पूछने पर ही अपना अभिप्राय प्रकट करे और वह भी हाथ जोड़कर नम्रता के साथ। राजा के सामने ऐसी बात कहनी चाहिए, जो सर्वथा अनुकूल, मधुर, उत्तम हितकारी और आदर से युक्त हो । राजा सम्मान का भूखा होता है, उसकी बात का खण्डन करके आक्षेपपूर्ण भाषा में यदि हितकर वचन भी कहा जाय, तो वह उसे पसंद नहीं करता । अपार तेजस्वी राजा अग्नि, इन्द्र, सोम, यम और वरुण—इन पांच देवताओं के स्वरूप को धारण किये रहते हैं, इसलिये उनमें इन पांचों के गुण - प्रताप, पराक्रम, सौम्यभाव, दण्ड और प्रसन्नता—विद्यमान रहते हैं । अतः सभी अवस्थाओं का सदा सम्मान और पूजन करना चाहिये । तुम तो अपने धर्म को न जानने के कारण केवल मोह के वशीभूत हो रहे हो। मैं तुम्हारा अभ्यागत—अतिथि हूं और तुम दुष्टतावश मुझसे ऐसी कठोर बातें कह रहे हो।

मैं तुमसे अपने कर्तव्य के गुण-दोष नहीं पूछता और न ही जानना चाहता हूं कि मेरे लिये क्या उचित है । मैंने इतना ही कहा था कि तुम्हें इस कार्य में मेरी सहायता करनी चाहिए । अच्छा, अब तुम्हें जिस रूप में सहायता करनी है, उसे सुनो । तुम सोने का विचित्र मृग बनकर राम के आश्रम पर जाओ और सीता के सामने विचरो ! एक बार जानकी को लुभा कर जिधर तुम्हारी इच्छा हो, उस ओर चले जाना । सोने का मृग देख कर मिथिलेश कुमारी सीता को बड़ा आश्चर्य होगा और वह उसे पकड़ लाने के लिये राम से कहेगी । जब राम तुम्हें पकड़ने के लिये आश्रम से दूर चले जाएं तो तुम उन्हीं के स्वर में 'हा सीते ! हा लक्ष्मण !' कह कर पुकारना । इन शब्दों को सुनकर सीता की प्रेरणा से लक्ष्मण भी स्नेहवश घबराया हुआ अपने भाई

के पीछे चला जायगा। फिर तो मैं सुखपूर्वक सीता को हर लाऊंगा। बस, इसी प्रकार यह काम करके तुम्हारी जहां इच्छा हो, चले जाना। अब कार्य की सिद्धि के लिये प्रस्थान करो, तुम्हारा मार्ग मंगलमय हो। मैं रथ पर बैठकर दण्डक वन तक तुम्हारे पीछे-पीछे चलूंगा। राम को धोखा देकर बिना युद्ध किये ही सीता को अपने हाथ में करके कृतार्थ हो तुम्हारे साथ ही लंका को लौट आऊंगा। यदि तुम यह काम करने से इन्कार करोगे तो तुम्हें अभी मार डालूंगा। मेरा यह कार्य तुम्हें अवश्य करना पड़ेगा। भले ही इसके लिये मुझे तुम्हारे ऊपर बल प्रयोग करना पड़े। राम के सामने जाने पर तुम्हारे प्राण जाने का सन्देहमात्र है, किन्तु मेरे साथ विरोध करने पर तो तुम्हारी मृत्यु निश्चित है। इन सब बातों पर बुद्धि लगा कर भलीभांति विचार कर लो। उसके बाद जो हितकर जान पड़े, वैसा ही करो।'

रावण के द्वारा ऐसी प्रतिकूल आज्ञा पाकर मारीच ने निःशंक होकर उसे कहा—'निशाचर! पुत्र, राज्य और मन्त्रियों के साथ तुम्हारे विनाश का यह मार्ग किस पापी ने बतलाया है? आज यह बात साफ तौर पर मालूम हो गई कि तुम्हारे दुर्बल शत्रु तुम्हें किसी बलवान् से भिड़ा कर नष्ट होते देखना चाहते हैं। राजन्! यह निश्चित समझो कि श्रीराम के सामने पड़ते ही मैं मारा जाऊंगा और यदि तुमने सीता का हरण किया तो तुम भी नहीं रहोगे और न लंका रहने पायेगी और न वहां के निवासी राक्षस ही। मैं तुम्हारा हितैषी हूं, इसीलिए तुम्हें रोक रहा हूं, किन्तु तुम्हें मेरी बात सहन नहीं होती। सच है, जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, वे मरणासन्न पुरुष अपने मित्रों की कही हुई हितकर बातें ग्रहण नहीं करते। राजन्! मेरे वध के लिये जिनका हथियार सदा उठा ही रहता है, उन धनुष-बाण एवं तलवार धारण करने वाले श्रीरामचन्द्र जी ने यदि फिर मुझे देख लिया, तो मेरे प्राणों की खैर नहीं है। अच्छा, जो भी हो अब मैं तुम्हारे साथ चलता हूं। तुम्हारा कल्याण हो।' मारीच के इस वचन से रावण को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने उसे छाती से लगाकर कहा—'मारीच! यह रत्नों से विभूषित मेरा आकाशगामी रथ तैयार है। इसमें पिशाचों के-से मुख वाले गधे जुते हुए हैं। इस पर मेरे साथ जल्दी से बैठ जाओ। तुम्हारे जिम्मे एक ही काम है—सीता को लुभाना। उसके बाद तुम जहां चाहो, जा सकते हो। आश्रम सूना हो जाने पर मैं सीता को जबर्दस्ती उठा लाऊंगा।' मारीच ने रावण की बात मान ली। तदनन्तर वे दोनों रथ पर बैठ कर शीघ्र ही उस आश्रम से चल दिये। मार्ग में अनेक पर्वतों, नदियों, वनों और नगरों को देखते हुए दोनों ने दण्डक वन में प्रवेश किया और वहां श्रीरामचन्द्र जी का आश्रम देखा। तब उस सुवर्णभूषित रथ से उतर कर रावण ने मारीच के हाथ को अपने हाथ में लेकर कहा—'सखे! यह केलों से घिरा हुआ राम का आश्रम दिखाई दे रहा है। अब शीघ्र ही वह काम करो जिसके लिये हमारा इधर आना हुआ है।

अन्ततोगत्वा मारीच रावण की आज्ञा मानने के लिये तैयार हो गया।

उतरु देत मोहि बधब अभागें।
कस न मरौं रघुपति सर लागें॥
अस जियं जानि दसानन संगा।
चला राम पद प्रेम अभंगा॥

परन्तु रावण भी कच्ची गोलियां नहीं खेला था। वह अच्छी प्रकार से जानता था, यह डबल-

माईन्डिड महापुरुष किसी भी समय मुझे धोखा दे सकता है। Forced to act unwillingly, he can betray his cause at any moment—अतः रावण मारीच को समुद्र के तट पर ले गया,—हथेली पर समुद्र-जल रखा—प्रतिज्ञा करो—I shall be true to my king, I shall be true to my duty and I shall be true to my country—

मैं अपने राजा के प्रति, राष्ट्र के प्रति एवं कर्त्तव्य के प्रति निष्ठावान् रहूँगा।—आखिर राक्षस भी किसी न किसी आचार शास्त्र code of conduct को मानने वाले थे।—

मारीच ने पूर्ण रूपेण सत्यनिष्ठा के साथ अपनी ड्यूटी को बजाया और वह मायामृग बन कर पर्णकुटी के बाहर विचरने लगा।

शङ्कमानस्तु तं दृष्ट्वा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत्।
तमेवैनमहं मन्ये मारीचं राक्षसं मृगम्॥
मृगो ह्येवंविधो रत्नविचित्रो नास्ति राघव॥
जगत्यां जगतीनाथ मायैषा हि न संशयः॥

उस समय मारीच को देखते ही लक्ष्मण ने कहा,—भगवन्! मृग के रूप में यह मारीच नामी राक्षस है। अन्यथा इस भूतल पर कहीं भी ऐसा विचित्र रत्नमय मृग नहीं है। अतः निःसन्देह यह माया ही है।

लक्ष्मण की यह बात सुन कर श्रीराम ने कहा,—यदि यह मारीच ही है तो मैं इसे अवश्य मार डालूंगा।—मरते समय मारीच ने राम की सी आवाज़ में पुकार लगायी। बड़े आश्चर्य की बात तो यह है कि मारीच ने राम जी की आवाज़ की नकल की कैसे, क्योंकि उससे पूर्व तो कभी उस ने राम को बोलते सुना तक नहीं था, फिर वह नकल कर कैसे सकता था। हो सकता है कि वह आवाज़ स्वयं श्री राम ने ही लगायी हो—जब सीता ने लक्ष्मण को जाने के लिये विवश किया, लक्ष्मण यह भी तो कर सकते थे, कुटिया से तो चले जाते—सौ दो सौ गज़ दूर जाकर झाड़ियों में छिप कर तैयार-बर-तैयार रहते। ज्यों ही रावण आता, पीछे से जा कर रावण को जट्ट-जफ्फा डाल गिरा लेते और वहीं उस का काम समाप्त कर देते।—कितने आश्चर्य की बात है, कहां तो लक्ष्मण कुटिया से बाहर जाने तक को रज़ामन्द न थे और जब गये तो बस गये ही गये—went away, so-went-he went.

रावण एक समझदार प्राणी था। उसे समय की पहिचान भी थी। कुटिया से ज्यों ही लक्ष्मण निकल कर थोड़ी दूर गये वह तुरन्त सीता के सामने आ उपस्थित हुआ। उस समय उसने ऋषि मुनियों का सा रूप बना रखा था, ऐसा लगता था मानो वह अगस्त आश्रम का कोई संत है। सीता के सामने आते ही वह बोला, मैं अगस्त आश्रम से आया हूं, श्री रामचन्द्र महाराज ने तुम्हें जल्दी से जल्दी लिवा लाने के लिये मुझे यहां भेजा है, ये रथ भी उन्हीं का भेजा है। तुम जानती ही हो वे हिरण के पीछे भागे थे, वह हिरण भी भागता २ अगस्त आश्रम की ओर चला गया। हिरण को मारना कौन सी मुश्किल बात थी। जिन्होंने चौदह हजार सेना को एक बाण से मार डाला, हिरण उनके सामने क्या था। हिरण को मारने के पश्चात् ज्यों ही वे अगस्त आश्रम में विश्राम के लिये पहुंचे, वहां भरतलाल पहले से ही आये बैठे थे। भरतलाल को वहां देखकर राम को बड़ा आश्चर्य हुआ, बोले—भरतलाल! तुम यहां कहां? भरतलाल ने राम के चरण छुए, बोले—मैं आपको लिवा लाने के लिये आया हूँ, आज ही आपको अयोध्या

के लिये प्रस्थान करना होगा। वनों में जिस उद्देश्य-पूर्ति के लिये आप आये थे वह उद्देश्य पूरा हो गया। खर-दूषण आदि राक्षस मारे गये टिक्का खां खत्म, याह्या खां खत्म, भुट्टो खत्म। बंगला देश अब स्वतंत्र है। आपके वनागमन का लक्ष्य था आसेतु हिमालय देश को एक और अखंड बनाना। आपका मिशन पूरा हुआ। अब आप अयोध्या वापस चलिये। लाहौर और रावलपिंडी पर तो आप ने कब्जा करना नहीं। लंका, लंका वालों की है, लंका की राजधानी पर भारतीय ध्वज को फहराने का हमारा कोई ख्याल नहीं था। वनों में आपके आने का उद्देश्य पूरा हुआ। मैं आप को बिना बात के अयोध्या से बाहर रहने नहीं दूंगा। सीते! राम ने भरत की ये बातें मान ली हैं, वे सब अयोध्या जाने के लिये तैयार बैठे हैं, बस एक तुम्हारी इन्तजार है। रथ तैयार है, बैठो और चलें।" ज्योंही रावण ने दक्षिण की ओर रथ का मुंह मोड़ा, सीता बोलीं—ये क्या? अगस्त आश्रम तो उत्तर की दिशा में है। रावण बोला—"सोते! मैं साधु नहीं हूँ, अगस्त आश्रम का संत नहीं हूं, मुझे पहचान ले और अच्छी तरह जान ले, मैं कुबेर का छोटा भाई लंकापति रावण हूँ।"

उस दृश्य का वर्णन करते हुए आदिकवि बाल्मीकिजी लिखते हैं—वन में श्रीराम से रहित होकर सीता को राम-राम की रट लगाती देख उस काल के समान विकराल राक्षस ने अपने ही विनाश के लिये उनके केश पकड़ लिये। सीता का इस प्रकार तिरस्कार होने पर समस्त चराचर जगत् मर्यादा-रहित तथा अन्धकार से आच्छादित सा हो गया। वहां वायु की गति रुक गयी और सूर्य की भी प्रभा फीकी पड़ गयी।

दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो दिव्येन चक्षुषा।
कृतं कार्यमिति श्रीमान् व्याजहार पितामहा॥

श्री मान् पितामह ब्रह्मा जी दिव्य दृष्टि से विदेह नन्दिनी का वह राक्षस के द्वारा केशाकर्षण रूपी अपमान देखकर बोले—"बस, अब कार्य हो गया।"

प्रहृष्टा व्यथितश्चासन् सर्वे ते परमर्षयः।
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्यवासिनः।
रावणस्य विनाशं च प्राप्तं बुद्ध्वा यदृच्छयाः॥

सीता के केशों का खींचा जाना देख कर दण्डकारण्य में निवास करने वाले वे सब महर्षि मन-ही मन व्यथित हो उठे। साथ ही अकस्मात् रावण का विनाश निकट आया जान उनको बड़ा हर्ष हुआ।

क्रोधवंत तब रावन लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर भयं रथ हाँकि न जाइ॥
हा जग एक बीर रघुराया।
केहिं अपराध बिसारेहु दाया॥
आरति हरन सरन सुखदायक।
हा रघुकुल सरोज दिननायक॥
हा लछिमन तुम्हार नहिं दोसा।
सो फलु पायउं कीन्हेउं रोसा॥
बिबिध बिलाप करति बैदेही।
भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥
गीधराज सुनि आरत बानी।
रघुकुलतिलक नारि पहिचानी॥
अधम निसाचर लीन्हें जाई।
जिमि मलेछ बस कपिला गाई॥
सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा।
करिहउं जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवंत खग कैसें।
छूटइ पबि परबत कहुं जैसें॥

आवत देखि कृतांत समाना।
फिरि दसकंधर कर अनुमाना॥
की मैनाक कि खगपति होई।
मम बल जान सहित पति सोई॥
जाना जरठ जटायू एहा।
मम कर तीरथ छांड़िहि देहा॥
सुनत गीध क्रोधातुर धावा।
कह सुनु रावन मोर सिखावा॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू।
नाहिं त अस होइहि बहुबाहू॥
राम रोष पावक अति घोरा।
होइहिं सकल सुलभ कुल तोरा॥
उतरु न देत दसानन जोधा।
तबहि गीध धावा करि क्रोधा॥
धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा।
सीतहि राखि गीध पुनि फिरा॥
तब सक्रोध निसिचर खिसिआना।
काढ़ेसि परम कराल कृपाना॥
काटेसि पंख परा खग धरनी।
सुमिरि राम करि अदभुत करनी॥

सीता को अशोक वाटिका में स्थापित कर दशग्रीव ने भयंकर आकार वाली पिशाचनियों को बुला कर कहा,—तुम सब सावधानी के साथ सीता की देखभाल करो, कोई भी स्त्री या पुरुष मेरी आज्ञा के बिना सीता को देखने अथवा इनसे मिलने न पाये। उन्हें मोती, मणि, स्वर्ण, वस्त्र, आभूषण आदि जिस-जिस वस्तु की इच्छा हो, वह तुरंत दी जाय: इसके लिये मेरी खुली आज्ञा है। तुम लोगों में से जो जान कर या बिना जाने विदेह कुमारी सीता से कोई अप्रिय बात कहेगी, मैं समझूंगा उसे अपनी जिंदगी प्यारी नहीं है।

राक्षसियों को वैसी आज्ञा देकर प्रतापी राक्षस राज "अब आगे क्या करना चाहिये" यह सोचता हुआ अन्तःपुर से बाहर निकला और कच्चे मांस का आहार करने वाले आठ महा-पराक्रमी राक्षसों से तत्काल मिला, बोला—वीरो! तुम शीघ्र ही जनस्थान में जाओ और रामचन्द्र का समाचार जानो और वे कब क्या कर रहे हैं, इस का ठीक-ठाक पता लगाते रहो और जो कुछ मालूम हो, सूचना मेरे पास करो।

जब सीता का लंका में प्रवेश हो गया, तब पितामह ब्रह्मा जी ने संतुष्ट हुए देवराज इन्द्र से इस प्रकार कहा देवराज! तीनों लोकों के हित और राक्षसों के विनाश के लिये दुरात्मा रावण ने सीता को लंका में पहुंचा दिया।

त्रैलोकस्य हितार्थाय रक्षसामहिताय च।
लंकाँ प्रवेशिता सीता रावणेन दुरात्मना॥

पतिव्रता महाभागा जानकी सदा सुख में ही पली हैं। इस समय वे अपने पति के दर्शन से वंचित हो गई हैं और राक्षसियों से घिरी रहने के कारण सदा उन्हीं को अपने सामने देखती हैं। उनके हृदय में अपने पति के दर्शन की तीव्र लालसा बनी हुई है। लंकापुरी समुद्र के तट पर बसी हुई है। वहां रहती हुई सती साध्वी सीता का पता श्रीराम को कैसे लगेगा। सीता दुःख के साथ नाना प्रकार चिन्ताओं में डूबी रहती हैं। पति के लिये इस समय वे अत्यन्त दुर्लभ हो गई हैं। प्राणयात्रा (भोजन) नहीं करती हैं, अतः ऐसी दशा में निःसन्देह वे अपने प्राणों का परि-त्याग कर देंगी। सीता के प्राणों के भय हो जाने पर हमारे उद्देश्य की पूर्ति कठिन हो जायगी।

अतः तुम शीघ्र ही यहां से जाकर लंकापुरी में सीता से मिलो और उन्हें उत्तम हविष्य प्रदान करो। ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर भगवान् पाक-शासन इन्द्र निद्रा को साथ लेकर रावण

द्वारा पालित लंकापुरी में आये। वहां आकर इन्द्र ने निद्रा से कहा — 'तुम राक्षसों को मोहित करो।' इन्द्र से ऐसी आज्ञा पाकर देवी निद्रा बहुत प्रसन्न हुई। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिये उन्होंने राक्षसों को मोह (निद्रा) में डाल दिया।

इसी बीच सहस्र नेत्रधारी शचीपति देवराज इन्द्र अशोक वाटिका में बैठी हुई सीता के पास गये और इस प्रकार बोले—पवित्र मुस्कान वाली देवि! आपका भला हो। मैं देव राज इन्द्र यहां आपके पास आया हूँ। जनक किशोरी! मैं आपके उद्धारकार्य की सिद्धि के लिये महात्मा श्री रघुनाथ जी की सहायता करूंगा, अतः आप शोक न करें। वे मेरे प्रसाद से बड़ी भारी सेना के साथ समुद्र को पार करेंगे। शुभे! मैंने ही यहां इन राक्षसियों को अपनी माया से मोहित किया।

यह हविष्यान्न लेकर निद्रा के साथ तुम्हारे पास आया हूं। शुभ रम्भोरु! यदि मेरे हाथ से लेकर यह हविष्यान्न खा लोगी तो तुम्हें हजारों वर्षों तक भूख और प्यास नहीं सतायेगी। देवराज के ऐसा कहने पर शंकित हुए सीता ने उनसे कहा—मुझे कैसे विश्वास हो कि आप शचीपति देवराज इन्द्र ही यहां पधारे हैं! देवेन्द्र! मैंने श्री राम और लक्ष्मण के समीप देवताओं के लक्षण अपनी आखों देखे हैं, यदि साक्षात् आप देवराज हैं तो उन लक्षणों को दिखाइये। सीता की यह बात सुनकर शचीपति इन्द्र ने वैसा ही किया। उन्होंने अपने पैरों से पृथ्वी का स्पर्श नहीं किया—आकाश में निराधार खड़े रहे। उनकी आंखों की पलकें नहीं गिरती थीं। उन्होंने जो वस्त्र धारण किया था उस पर धूल का स्पर्श नहीं होता था। उनके कण्ठ में जो पुष्पमाला थी, उसके पुष्प कुम्हलाते नहीं थे। देवोचित लक्षणों से इन्द्र को पहचानकर सीता बहुत प्रसन्न हुई।

इस प्रकार उस हविष्य को खाकर सुन्दर मुख वाली जानकी ने भूख प्यास के कष्ट को त्याग दिया और इन्द्र के मुख से प्रभु श्री राम तथा लक्ष्मण का समाचार पाकर वे जनक नन्दिनी मन ही मन बहुत प्रसन्न हुई। तब निद्रा सहित महात्मा देवराज इन्द्र भी प्रसन्न हो सीता से बिदा लेकर श्री रामचन्द्र जी के कार्य की सिद्धि के लिये अपने निवास स्थान देवलोक को चले गये।

जनक नन्दिनी को कुटिया में न देख कर श्री राम को कुछ भी निराशा नहीं हुई—क्योंकि वे भली भांति जानते थे, जिस सीता को रावण ले गया है वह तो मायामयी हैं—तब महामति रघुनाथ जी मन ही मन सोचने लगे।

लक्ष्मणस्तन्न जानाति मायासीतां मया कृताम्।
ज्ञात्वाप्येनं वञ्चयित्वा शोचामि प्राकृतो यथा॥
यद्यहं विरतो भूत्वा तूष्णीं स्थास्यामि कन्दिरे।
तदा राक्षसकोटीनां वधोपायः कथं भवेत्॥

लक्ष्मण को यह पता नहीं है कि मैंने माया मयी सीता बना दी है। मैं यह जानता हूं तथापि लक्ष्मण से यह बात छिपा कर मैं साधारण मनुष्य के समान शोक करूंगा। यदि मैं उपराम होकर चुप चाप बैठ जाऊंगा तो राक्षसों के वध का उपाय कैसे होगा।

यदि मैं उसके लिये दुःखातुर होकर साधारण पुरुष के समान शोक करूंगा तो क्रमशः सीता की खोज करता हुआ राक्षसराज रावण के यहां पहुंच जाऊंगा और उसे कुल सहित मारकर अपने आप ही अग्नि में स्थापित

की हुई सीता को उस में से निकाल कर फिर तुरंत अयोध्या चला जाऊंगा।

आश्रम देखि जानकी हीना।
भए बिकल जस प्राकृत दीना॥
हा गुन खानि जानकी सीता।
रूप सील ब्रत नेम पुनीता॥
लछिमन समुझाए बहु भांती।
पूछत चले लता तरु पांती॥
हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी।
तुम्ह देखी सीता मृग नैनी॥
सुनु जानकी तोहि बिनु आजू।
हरषे सकल पाइ जनु राजू॥
किमि सहि जात अनख तोहि पाहीं।
प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाहीं॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी।
मनहुं महा बिरही अति कामी॥
पूरन काम राम सुख रासी।
मनुज चरित कर अज अबिनासी॥

वनदेव्यः कुतः सीतां ब्रूवन्तु मम वल्लभाम्॥
एवं मायामनुष्यत्वतोऽपि रघूत्तमः।
कर्तुं सीता प्रियार्थाय जानन्नपि मृगं ययौ।
अन्यथा पूर्णकामस्य रामस्य विदितात्मनः॥
मृगेण वा स्त्रिया वापि किं कार्यं परमात्मनः॥

भगवान् सब कुछ जानते थे, तथापि सीता जी को प्रसन्न करने के लिये वे मृग के पीछे गये नहीं तो पूर्णकाम आत्मज्ञ भगवान् राम को मृग अथवा स्त्री से क्या काम था।

श्री राम साधारण मनुष्य के समान विलाप करने लगे—गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज जब कोई रहस्य की बात बताना चाहते हैं तो शिव पार्वती को बीच में लाते हैं। पार्वती बोली, प्रभो! यही आप का राम है जिस की महिमा आप गाया करते हैं। एक साधारण व्यक्ति को भी सन्तोष होता है, परन्तु इन्हें देखिये और इन का विलाप देखिये। शङ्कर बोले, पार्वती! मेरे राम बहुत बड़े हैं। महान् हैं। He is over and above all these things. यह इन का रोना धोना सब कुछ ऊपर से है, पार्वती मानी नहीं, बोली, मैं परीक्षा लूंगी। शङ्कर बोले,—यह सौदा तुम्हें बहुत महंगा पड़ेगा—पार्वती अपनी बात पर अड़ी थी—अन्ततोगत्वा शङ्कर बोले, मैं यहां बट वृक्ष की छाया में बैठा हूं, जा परीक्षा ले ले, पीछे यहीं आ जाना।

"सती कीन्ह सीता कर वेषा"—बिल्कुल सीता का-सा वेष, रंग-रूप बनाकर उसी बन के एक कोने में बैठ गयी—इधर सेसीताजी की खोज लगाते-लगाते श्रीराम भी उस स्थान पर पहुंच गये, यदि श्रीराम के स्थान पर हम और आप होते तो पूछिये अपने मन से आप की क्या दुर्गति होती।

जोरि पानि प्रभु कीन्ह प्रणामू।
पिता समेत कहेउ निज नामू॥
पूछा बहोरि कहाँ वृषकेतू।
विपिन अकेली फिरहु केहि हेतू॥

श्री राम ने हाथ जोड़ दिये, बोले, माँ! तुम अकेली इस निर्जन वन में कैसे आन बैठीं। स्वयं भोले बाबा तुम्हें यहां बिठा कर आप कहां चले गये। इतना महान् चरित्र था मेरे राम का।

सीता जी की खोज में दोनों भाई आगे चले। उन्हें कुछ अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। jatayu was on duty जटायू अभी मरा नहीं था। मृत्यु के करीब था। not dead but nearing Death मौत की देवी को मानो ललकार रहा था,—जब तक सीता जी के सम्बन्ध में समाचार मैं राम तक पहुंचा न दूं तब तक प्राण नहीं छोड़ूंगा।

उवाच रावणो नाम राक्षसो भीम विक्रमः ।
आदाय मैथिली सीतां दक्षिणाभिमुखो ययौ ॥

हे राम ! महापराक्रमी राक्षसराज रावण मिथिलेश नन्दिनी साता को दक्षिण की ओर ले गया है।—इस से अधिक कहने की मुझ में शक्ति नहीं है। मैं अभी आप के सामने ही प्राण छोड़ना चाहता हूं ।

आगें परा गीधपति देखा।
सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥
कर सरोज सिर परसेउ कृपासिंधु रघुबीर।
निरखि राम छवि धाम मुख बिगत भई सब पीर।

इतना कह कर जटायू ने प्राण त्याग दिये। श्री राम में आत्म-विश्वास कितना—बोले तात ! स्वर्ग लोक में मेरे पूज्य पिताश्री आप को मिलेंगे, सीता हरण का समाचार उन्हें नहीं सुनाना। थोड़े दिनों की बात और है, स्वयं रावण अपने मंत्रीमंडल सहित वहां पहुंचेगा और वह अपनी कहानी अपनी ज़बानी सुनायेगा।

रामायण की अन्तरात्मा का ध्यान पूर्वक अवलोकन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सीताहरण का समाचार ऋषियों के लिये कोई असम्भावित समाचार नहीं था। सीता जी स्वयं अच्छी प्रकार से अपना डिफैंस कर सकती थीं।

शरभंग आश्रम में जो देवराज इन्द्र के दिये हुए धनुष श्रीराम ने प्राप्त किये थे, महामुनि सुतीक्ष्ण ने जो अस्त्र-शस्त्र श्रीराम को दिये थे, और जिन शस्त्रों का प्रदान महर्षि अगस्त्य ने श्रीराम के प्रति किया था वे अस्त्र-शस्त्र श्रीराम जी के पास पर्णकुटी में ही थे, सीता जी ने अपनी रक्षा के लिये उन अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग क्यों न किया ? रावण उस समय अकेला था उसके साथ एक भी सैनिक न था। ऐसी अवस्था में श्राराम लक्ष्मण सहज में ही एकान्त में आये हुए अकेले रावण को पकड़ कर उसकी सारी कथा ही समाप्त कर सकते थे। क्या कारण है कि सीता जी ने सिवाय हाहाकार मचाने के आत्म रक्षा के लिए और कोई भी प्रयास नहीं किया और क्या कारण है कि पर्णकुटी के बिल्कुल समीप में होते हुए भी श्रीराम-लक्ष्मण ने सीता-हरण के लिए रावण के सामने खुला मैदान छोड़ दिया।

श्रीराम अच्छी तरह से समझते थे कि जिस सम्राट् का प्रतिनिधि खर-दूषण मारा गया है, अपने प्रतिनिधि के सर्वनाश का समाचार पाते ही लंकाधिपति रावण कभी भी खामोशी के साथ बैठा नहीं रहेगा। या तो वह श्रीराम से लड़ने के लिये अपनी सेनाएँ लेकर आर्यावर्त के समुद्री तट पर उतरेगा; यदि उसने महत्तम साहस के लिए अपने को तैयार न पाया तब भी वह खामोश तो बैठा रहेगा नहीं। श्रीराम को ही लंका में ले आने के लिए, और लंका की धरती पर ही श्रीराम से युद्ध लड़ने के लिए वह सीता-हरण जैसा कोई न कोई खेल अवश्य ही खेलेगा। मायामृग को देखकर श्रीराम ने सीता जी को इसी लिए तो कहा था—

अथ रामोऽपि तत्सर्वं ज्ञात्वा रावण चेष्टितम् ।
उवाच सीतामेकांते श्रणु जानकी मे वचः ॥
रावणो भिक्ष रूपेण आगमिष्यति तेंतिकम ।
त्वंतुच्छाया त्वदाकारां स्थापयित्वोटजे विश ॥

मारीच के आने से पूर्व ही श्रीराम ने एकान्त में सीता जी से कहा—सीते ! थोड़ी ही देर में रावण आने वाला है। वह एक भिक्षु के रूप में आयेगा। उस समय तुम अपनी छाया के समान बर्ताव करना, दूसरे शब्दों में अपने आप को भुला देना आत्म रक्षा के लिए कोई प्रयास मत करना। रावण का वध हो जाने पर निश्चय

ही तुम पुनः मुझ को प्राप्त हो जाओगी। बाल्मीकि जी ने श्रीराम के कथन को अक्षरशः स्वीकार किया। नाटक के पात्र के समान ऊपर से ही मायामय व्यवहार करती हुई (Artificial minded) सीता जी ने उस समय मारीच के मायामय स्वरूप को अर्थात् उस स्वरूप को जो नाटक के पात्र के समान एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए रचा गया था, ऐसे मायामय Artificial स्वरूप को सीता जी ने भी देखा।

गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज ने इसी तथ्य को अपने राम चरित्र मानस में इस प्रकार वर्णन किया है।

इहां राम जसि जुगुति बनाई।
सुनहु उमा सो कथा सुहाई॥
लछिमन गए बनहिं जब लेन मूल फल कंद।
जनकसुता सन बोले बिहंसि कृपा सुख बृंद॥
सुनहु प्रिया ब्रत रुचिर सुसीला।
मैं कछु करबि ललित नर-लीला॥
तुम्ह पावक महुं करहु निवासा।
जौ लगि करौं निसाचर नासा॥
जबहि राम सब कहा बखानी।
प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी॥
निजप्रतिबिंब राखि तहँ सीता।
तैसइ सील रूप सुबिनीता॥
लछिमनहूं यह मरमु न जाना।
जो कछु चरित रचा भगवाना॥

एक प्रश्न अवश्य किया जा सकता है कि कौन सा ऐसा व्यक्ति होगा जो केवल राजनीतिक विजय-प्राप्ति की मनोकामना से अपनी बहन, बेटी, माता, पत्नी को शत्रु के अधिकार में भेजना स्वीकार करेगा? यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है।

प्रश्न बिलकुल ठीक है, परन्तु हमें उन परिस्थितियों को भी देखना है जिन परिस्थितियों में हम ने अपनी बहन को, पुत्री-माता को शत्रु के वश में हर्ष पूर्वक जाने दिया। दूर जाने की बात नहीं, स्वयं हमीं ने अपने ही युग में सन् १९२१-२२-३१-४२ में एक आध नहीं बल्कि १२०००से भी ऊपर अपनी माताओं-बहनों को अंग्रेज़ की जेल में भेजा। स्वयं हमीं ने भेजा। स्वयं हमीं ने उनके गले में पुष्प मालायें डाल कर, उन के जय जयकार गाकर उन्हें पुलिस की लारियों में बिठाया। यद्यपि अंग्रेज़ की जेल में हम ने बारह हज़ार देवियों को भेजा, परन्तु जब १९३९ में हैदराबाद में हमने धर्म-युद्ध छेड़ा वहाँ हमने एक भी देवी को भेजना स्वीकार नहीं किया। क्यों? क्योंकि अँग्रेज़ के चरित्र पर हमें विश्वास था परन्तु निज़ामी रज़ाकारों और खाकसारों पर हमें विश्वास बिल्कुल नहीं था। अंग्रेज़ का चरित्र ऊंचा था। वह स्त्रीजाति का सम्मान करना जानता था और उसने सम्मान किया भी।

करोड़ों पुरुषों के जीवित रहते हुए भी गान्धी जी ने देवियों को अंग्रेज़ के कारागार में भेजा—क्यों? संसार की सहानुभूति अपने पक्ष में करने के लिये, अन्तः राष्ट्रीय जगत का हृदय जीतने के लिये, अपने पक्ष को न्याय पूर्ण सिद्ध करने के लिये। सीता जी को रावण के कारागार में भेजने में भी ऋषियों का एकमात्र यही उद्देश्य था।

श्रीराम को लोकमत का इतना ध्यान था कि खर-दूषण को जीत कर भी उन्होंने खरबाड़ी में प्रवेश नहीं किया—बाली की किष्किन्धा पर विजय प्राप्त करके भी वे अपनी पर्णकुटी में रहते रहे और लंका को जीत कर भी उन्होंने लंका की ओर आंख तक उठा कर नहीं देखा ताकि संसार यह न कहे कि राम साम्राज्यवादी

था और साम्राज्य विस्तार की कामना से ही वह वनों में मारे मारे फिर रहा था।

आज हम लोग भले ही रावण को आग लगायें। लगानी भी चाहिये क्योंकि पौलीटिकली वह हमारे देशका दुःश्मन था। वह हमारे देश को गुलाम बनाना चाहता था। उस समय के सन्तों को रावण के चरित्र पर विश्वास था। और जो विश्वास हम ने रावण पर किया, रावण ने भी विश्वासघात नहीं किया। तुलसी दास ने जिस रावण का वर्णन किया वह रावण वास्तव में चौदहवीं पन्द्रहवीं शताब्दि का दिल्ली का नवाब है।

जटायू ने खुले शब्दों में बता दिया था— 'नाथ दशानन यह गति कीन्ही।' चाहिये तो यह था,श्री राम तुरन्त रावण का पीछा करते—परन्तु लङ्का की ओर न जाकर वे किष्किन्धा की ओर चले—बाली को समाप्त करने। बाली और रावण दोनों मित्र थे, जिस प्रकार की सन्धि आज चीन और पाकिस्तान के बीच है, इसी प्रकार का war alliance युद्ध का समझौता बाली और रावण के बीच में था। दोनों आपस में सम्बन्धी भी थे। दोनों की धर्मपत्नियां सगी बहनें थीं—मन्दोदरी एवं तारा पारसी कन्यायें थीं, सर्व सुन्दरी थीं।

यदि राम रावण का पीछा करते, हो सकता था बाली पीछे से आक्रमण कर देता। यह भी सम्भव था कि श्री राम को लङ्का के मोरचे पर उलझे देख वह खर-दूषण के पंजे से मुक्त प्रदेश (Liberated Areas) को अपने कन्ट्रोल में ले लेता।—यह भी हो सकता था, जब राम लङ्का को जीत अयोध्या लौट जाते, वह लङ्का पर कब्जा कर लेता। यदि वह लङ्का पर अधिकार न भी करता सम्भव था, जब राम लङ्का जीत कर थके हारे वापस आते, वह राम के मुकाबले पर आ जाता। यह भी सम्भव था लड़ायी लम्बी चलती और चौदह वर्ष पूरे हो जाने के पश्चात अयोध्या की सेनायें निर्णयात्मक युद्ध लड़ने के लिये लङ्का की ओर बढ़तीं, हो सकता था बाली हमारी सेनाओं का रासता रोक लेता।

इसलिये बाली का मारा जाना जरूरी था। प्रश्न था, बाली को मारा कैसे जाय। यदि राम बाली से खुली लड़ायी लड़ते फौजें कहां से लाते।—बाली अपने समय का सब से अधिक शक्ति शाली राजा था। यदि राम बाली से उलझ पड़ते, तो हो सकता था, पीछे रावण फौजें उतार देता। वर्षा ऋतु सिर पर थी, लड़ायी लम्बी चली जाती, वर्षों चलती। बाली के कोष का, सेना का, अस्त्रशस्त्र का जो भी अप व्यय होता एक प्रकार से वह राम का अपना अप व्यय था,—जिस शक्ति के बल पर राम रावण से लड़ना चाहते थे उस शक्ति को वह मैसूर की पहाड़ियों में ही नष्ट नहीं करना चाहते थे। इस लिये बाली को समाप्त करने का यह कार्यक्रम बनाया गया कि बाली को ऐसे ढंग से मारा जाय, बाली का कोई सैनिक न मरे, बाली के शस्त्रागार की एक भी लाठी न टूटे, बाली के खजाने से एक पैसा खर्च न हो और बाली मर जाय।

श्री राम ने जो कुछ भी किया उसे व्यक्तिगत धर्म से मत देखिये। बाली वध में राम का अपना कोई स्वार्थ न था। राम ने जो कुछ किया, अपने देश-धर्म के लिये किया। इसी लिये राम ने बाली को छुप कर मारा और बाली के पश्चात् बाली के पुत्र अंगद को किष्किन्धा का युवराज बनाया।

रामायण एक ही समय का इतिहास नहीं युग-युग का इतिहास है। अभी पिछले दिनों ३ दिसम्बर ७१ को हमारे देश में एक ही साथ रामायण भी हुई महाभारत भी। रामायण पश्चिमी मोरचे पर, महाभारत पूर्वी-मोरचे पर हुई, बंगला देश के मोरचे पर, तभी तो यह चौदह दिन हुई। रामायण हुई थी, १० दिन, महाभारत हुई थी १८ दिन दोनों का Average सम भाग निकाला तो परिणाम मिला १४ दिन।

वर्तमान समय में इस बात की बहुत बड़ी आवश्यकता है कि रामायण के रहस्यों का उद्घाटन कर दिया जाय। प्रत्येक व्यक्ति अपने कार्य का समर्थन करने के लिये रामायण के हवाले देता है। यद्यपि ये हवाले सर्वथा निराधार ही होते हैं। अभी पिछले दिनों बाबू जग जीवन राम बोले, हमने बंगला देश मुजीब को दे दिया, जिस प्रकार श्री राम ने लंका विभीषण को दे दी थी। मैंने कहा बाबू जी आपकी बात कुछ जच नहीं रही है, आपने लंका विभीषण को नहीं दी, अभी तक तो केवल किष्किन्धा सुग्रीव को दी है। रावल पिंडी रूपी लंका तो अभी तक रावण के पास है, आपने कहा था अब की बार जीते हुए इलाके पाकिस्तान को वापस नहीं करेंगे, परन्तु इतने नौजवानों का बेकार खून बहाकर जीती हुई बाजी भुट्टो के कदमों पर हार दी।

दो दिन और जो होने देते, इस बलिदानी वीर को।
लगते हाथों निपटा देते, पिंडी और लाहौर को॥

११६५ की बात है, हमारी फौजें पहली सितम्बर १९६५ के दिन दुर्गा भवानी का आशीर्वाद लेकर लाहौर की ओर बढ़ीं, दूसरे ही दिन वह लाहौर की बाहर की बस्ती में पहुंच गईं। लाहौर का हवाई अड्डा हमारी सेनाओं के अधिकार में था। बाटा कंपनी, जल्लो फेक्टरी पर हमारा कब्जा हो गया था अमेरिका ने अपने आदमी निकालने के लिये इजाजत हम से मांगी थी, पाकिस्तानी सरकार से नहीं मांगी थी। कसूर ढाई मील रह गया था स्याल कोट के ऊंचे ऊंचे मकान दिखाई दे रहे थे परन्तु एकदम हम ने सीज फायर कर दिया। यद्यपि सीज फायर के कुछ ही घंटे पहले अपने आशा राम त्यागी, सुखवीर सिंह जैसे कितने ही नौजवानों को बिना बात के बलिदान की वेदी पर चढ़ा दिया। मैंने उस दिन उर्दू की एक कविता लिखी थी।

गजब है जुस्त-जुए-दिल का यह अन्जाम हो जाए।
कि मंजिल सामने हो, और सर पै शाम हो जाए॥

विश्वज्ञान के इन्हीं पन्नों में मैंने एक कविता लिखी थी, सितम्बर १९६५ के अंक में। उस कविता की चार लाईनें आप को सुनाता हूं।

है घर जाने का वक्त आया।

वितस्ता चन्द्र भागा सिन्ध में न्हाने का वक्त आया।
अलीपुर जामपुर की रोटियां खाने का वक्त आया॥
हमें तो याद आती हैं शहर मुलतान की गलियां।
कि उन गलियों में फिर से चहचहाने का है वक्त आया।
बुलाता है हमें लाहौर पंजा और ननकाना।
उठो अब बिस्तरे बांधो कि घर जाने का वक्त आया॥

परन्तु घर जाना हमारे भाग्य में लिखा नहीं था, उस दिन लाल बहादुर शास्त्री बोले, मैंने लाहौर नहीं लिया क्योंकि राम ने लंका नहीं ली थी, मैंने कहा लाल बहादुर साहब? आपने रामायण पढ़ी तो है गुढ़ी नहीं। राम लंका में गये, लंका में जाकर उन्होंने रावण को खतम किया, मेघनाद को खतम किया,

कुंभकर्ण को खतम किया, विभीषण को गद्दी पर बैठाया। स्वयं दो दिन तक वहां रहे फिर अयोध्या में आकर घोषणा की लंका लंका वालों के पास है, मैंने किसी देश को गुलाम बनाने के लिये आक्रमण नहीं किया। मैंने कहा—लाल बहादुर साहब ! यदि आपको राम ही बनना था, लाहौर में जाते, भुट्टो को, मूसा को अयूब को खतम करते । वायुयान द्वारा खान अब्दुल गफार खाँ को काबुल से लाहौर लाते, अपने हाथों से बादशाह खान को गद्दी पर बैठाते, जे. एन. चौधरी, एयर मारशियल अर्जुन सिंह को ६ महिने के लिये लाहौर में छोड़ते, दिल्ली में आकर आल इन्डिया रेडियो से घोषणा करते—दुनियां के लोगो लाहौर, लाहौर वालों के पास है। मैंने लाहौर को गुलाम बनाने के लिये लाहौर पर आक्रमण नहीं किया था।

और यदि हम लाहौर पर कब्जा कर भी लेते इसमें बुराई ही क्या थी। लाहौर हमारा है, भगवान् राम के पुत्र लव ने इसे बसाया था, इसका नाम था लवपुर। इसी लाहौर में रावी के तट पर १९२८ के अंतिम क्षणों में हमने मुकम्मिल आजादी का, कम्पलीट इन्डिपेन्डेन्स का, पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया था। ये आखें अभी तक भी उस दृश्य को भूली नहीं जब सफेद घोड़े पर बैठा हुआ जवाहर लाल नेहरु लाहौर की अनारकली बाजार में से गुजरा था। भल्ले की दुकान पर बैठे हुए मोतीलाल नेहरु एवं जवाहर जननी स्वरूप रानी इस दृश्य को देख रहे थे। मोतीलाल की आंखों से आनन्द के आंसू बह रहे थे, न जाने इस एक-एक आंसू में कितने जवाहर छुपे हुये थे।

इसी लाहौर में हमने सेन्ट्रल जेल की दीवारों के पीछे २३ मार्च १९३१ को भगत सिंह की वह वीर वाणी सुनी थी।

मेरा रंग दे बसन्ती चोला ।
जिस रंग में वीर शिवा ने,
माँ का बन्धन खोला ।
मरते समय भी बाल हकीकत,
ओम ओम ही बोला ॥

शुकदेव राज गुरु ने इन्कलाब जिन्दाबाद का नारा लगाया था। २३ मार्च १९३१ को शाम के ६ बजे लाहौर का कण कण गूंज उठा, इन्कलाब जिन्दाबाद । शेरे पंजाब महाराजा रणजीत सिंह का दरबार इसी लाहौर में तो लगा करता था, महाराजा की समाधि आज भी लाहौर में इस बात की साक्षी है। डी० ए० वी० कालेज के मस्तक पर लिखा हुआ ओ३म्, दयाल सिंह कालेज, दयालसिंह लायब्रेरी, सर गंगाराम हास्पिटल आज भी पुकार पुकार कर कह रहे हैं—लाहौर हमारा है। हकीकतराय की समाधि आज भी पुकार-पुकार कर कह रही है लाहौर हमारा है। मेरे शरीर पर लाठी का एक-एक प्रहार भारत में बरतानवी साम्राज्य की कफन की कील हो गई।'' पंजाब केसरी लाला लाजपतराय के शब्द जो उन्होंने १७ अक्तूबर १९२८ के दिन कहे थे, मोरी गेट के बाहर मैदान में आज भी लाहौर के कण-कण में गूंज रहे हैं। जिस लाहौर की मधुर-मधुर स्मृतियों के साथ महात्मा हंसराम, पंडित लेखराम, पंडित गुरुदत्त स्वामी श्रद्धानन्द, लाला साईदास, भगवती चरण, भाई परमानन्द, गोस्वामी गणेशदत्त, महाशय कृष्ण, अजीतसिंह, हरदयाल का नाम संबन्धित है, वह लाहौर हमारे लिये विदेश कैसे हो सकता है।

हमारा सब से बड़ा शक्ति पीठ भगवती हिंगलाज आज भी कराची से ६ मील पश्चिम की ओर विराजमान है। भगवान् का सुप्रसिद्ध अवतार नरसिंह अवतार इसी पवित्र धरती के

पर हुआ जिस संबंध में यहां तक कहा गया है कि सृष्टि का प्रथम प्रकाश मुल्तान जिसका वास्तविक नाम मूलस्थान था यहीं हुआ। भगत शिरोमणो प्रहलाद इसी मुल्तान नगर में हुए थे, तो जिस पवित्र स्थान में भगवान का अवतार हुआ धर्म की रक्षा के लिये तो वह मुल्तान हमारे लिये विदेश कैसे हो सकता है। वह धरती विदेश कैसे मानी जा सकती है।

साक्षी सरोवर का वह तालाब जिसके किनारे पर यंक्ष और युधिष्ठर का सम्बाद हुआ था, जिसे आज सखी सरवर कहते हैं, इसी पाकिस्तान में तो है। हम इसे विदेश कैसे मान सकते हैं। पाणिनी मुनि कोहाट में हुए पातंजलि ऋषि हरी पुर हजारा में हुए, पाण्डवों ने अपने बनवास का अधिकांश समय पेशावर में गुजारा थे। भरत जननी के ननिहाल कोहाट में थे, तभी तो आज तक कोहाट में भरत कैकयी के नाम के श्रोत बह रहें हैं। हम इस धरती को विदेश कैसे मान सकते हैं।

पहली पादशाही सतगुरुदेव बाबा नानक देव जी का जन्म यहीं हुआ जिसे ननकाना साहब कहा जाता है। पंजा साहब जहां नानकदेव जी ने अपनी ओर लुढ़कते हुए पर्वत को रोक लिया था जिसके पत्थर पर आज भी पंजा का निशान लगा हुआ है, वह इसी धरती पर है। गुजरां वाला में महाराजा रणजीतसिह का जन्म हुआ, इसी गुजरां वाला में हरिसिंह नलवाका जन्म हुआ। गुंजरा वाला के ४ मील मुरारी वाला में स्वामी राम तीर्थ का जन्म हुआ। इसी स्यालकोट में शालिवाहन संवत् चला, पूरन भगत का जन्म हुआ। यह पवित्र धरती हमारे लिये विदेश कैसे हो सकती है।

वह तक्षशिला जिसे जनमेजय ने अपनी राजधानी बनाया था, देश का सब से बड़ा विश्वविद्यालय तक्षशिला में ही तो था। विष्णु गुप्त चाणक्य तक्षशिला में ही तो रहते थे। यहीं के संतों के सामने तो सिकन्दर ने हार मानी थी, कौटिल्य का वह तक्षशिला, पूरुराज का जेहलम, सक्खर का साधुवेला हमारे लिये विदेश कैसे हो सकता है। यदि हम लाहौर को लेते हैं तो अपनी ही खोई हुई वस्तु को पुनः प्राप्त करते हैं, यदि हम स्यालकोट और कसूर के घरों में जाकर रहते हैं तो अपने ही घर में जाकर रहते हैं।

मरते हुए बाली ने एक बड़ी शानदार बात कही थी, राम ! यदि तुम्हें सीता जी को ही लेना था तो सीधे मेरे पास आते मैं ६२ घंटे के अन्दर अन्दर सीता को यहीं मंगवा देता परन्तु सीता को लेना हमारा लक्ष्य नहीं था, हमारा लक्ष्य था लंका में जाकर लंका वालों का ही ऐसी मन्त्री मण्डल बनाना जो अयोध्या की हकूमत के साथ प्रेम और प्यार के साथ घुलमिल कर रहे।

जो लोग राम चरित मानस को केवल भक्तिरस-पूर्ण धर्म ग्रन्थ ही मानते हैं, उन का तो सम्भवतया मेरे शब्दों से सन्तोष नहीं होगा। परन्तु मेरा लक्ष्य तो यहां किसी व्यक्ति विशेष के मन बहलावे का आयोजन नहीं, मुझे तो राष्ट्र का चिन्तन करना है।

नीति राम ने भी की, नीति कृष्ण ने भी की, नीति तो हमारे धर्म का एक अंग है। नीति-धर्म और धर्म नीति हमारी राष्ट्रीयता के दो स्तम्भ हैं। कृष्ण स्वयं कहते हैं।—

नीतिरस्मि जिगीषताम्।

प्रभु रामचन्द्र जी के संबंध में स्वयं

बाल्मीकि ने कहा है—"न हि राम समो राजा पृथ्व्यां नीतिमान् अभूत्।"

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने अपने रामचरित मानस में अनेकों बार नीति धर्म की महिमा गाई है। नीति हम भी करते हैं नीति राम ने भी की, परन्तु हमारी नीति और राम की नीति में आकाश-पाताल का अन्तर है। राम ने अपनों से नीति नहीं की दूसरों से नीति की, कृष्ण ने पाण्डवों से नीति नहीं की दुर्योधन से नीति की, राम ने सुग्रीव से नीति नहीं की वाली से नीति की, भरत से नीति नहीं की रावण से नीति की परन्तु हम अपनों से नीति करते हैं और दूसरों के सामने जाकर साक्षात् धर्मराज के अवतार बन जाते हैं।

मक्तबे इश्क का वस्तूर निराला देखा।
उसको छुट्टी ना मिली, जिसने सबक याद किया।

जो हमारे बच्चे त्याग और तपस्या के प्रतीक भगवाध्वज के सामने खड़े होकर कर वृद्ध प्रार्थना करते हैं—

नमस्ते सदा वत्सले मातृभूमे।

उन सच्चे देश भक्तों के पीछे तो हम दिनरात लठ्ठ लिये घूमते हैं और जो हिन्दुस्तान में बैठे हुए पाकिस्तान के सुख स्वप्न देख रहे हैं, २५ साल से उन आस्तीन के सापों को निरन्तर दूध पिला रहे हैं। बलराज मधोक, अटल बिहारी वाजपेयी, राजनारायण को सामने देखते ही हमारा पारा २१२ फारनहीट के ऊपर चला जाता है, शेख अब्दुल्ला, जुल्फिकार अलीखां भुट्टो का नाम सुनते ही हम भीगी बिल्ली बन जाते हैं। जिन सिन्धी धर्म वीरों ने हमारी सब प्रकार से सहायता की, सिन्ध की धरती पर जिन्होंने हमारी सेनाओं का मार्ग-दर्शन किया, जिन धर्म वीरों ने भारत माता की भक्ति के वशीभूत होकर गदरा शहर; नयाछोर के अपने हरे-भरे मकानों को छोड़ दिया, आजतक वे शरणार्थी शिवरों में पड़े हुए हैं, कीड़े-मकौड़ों सा जीवन व्यतीत कर रहे हैं और जो पाकिस्तानी दरिन्दे हमारे देश को तबाह करने आये थे, वे आज भी हमारी छत्र-छाया में पड़े हुए मौज उड़ा रहे। मानों वे कैदी नहीं भुट्टो की बारात के बाराती हैं।

रामायण का सहज स्वाध्याय करने पर भी यह प्रत्यक्ष दिखायी देने लगेगा कि पंच वटी के आगे भी Forward Areas में हमारे सन्त पहुंच चुके थे। उन स्वनामधन्य सन्तों में से मतंग ऋषि भी एक थे। शबरी इन्हीं के आश्रम की एक साधका था।

शबरी का आश्रम

अब श्रीराम आगे बढ़े। मार्ग में उन्हें एक राक्षस मिला कबधं। श्रीराम ने उसे सहज में ही समाप्त कर दिया। वहां से चल कर वे शबरी के आश्रम में पधारे। शबरी राम की प्रतीक्षा में बावली हो रही थी, विलम्ब के एक-एक पल उसके लिये एक-एक कल्प से बीत रहे थे। वह एक क्षण घर में जाती और दूसरे क्षण बाहर आकर भौंहों पर हाथ धर कर राम की बाट जोहती थी। उसकी पर्णकुटी में राम-लक्ष्मण क्या आये उसके भाग्य और पुरापुण्य का उदधि उमड़ पड़ा। शबरी सिद्ध तपस्विनी थी। श्रीराम और लक्ष्मण को आश्रम पर आया देख वह हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई तथा उन दोनों के चरणों में प्रणाम किया। फिर पाद्य आदि सब सामग्री अर्पण करके उनकी विधिपूर्वक पूजा की। तत्पश्चात् श्रीरामचन्द्र जी धर्मपरायणा शबरी से बोले—'तपस्विनी! क्या तुमने सारे विघ्नों पर विजय पा ली? क्या तुम्हारी तपस्या बढ़

रही है ? तुमने जिन नियमों को स्वीकार किया है, वे निभ तो जाते हैं न ? तुम्हारे मन में सुख और शान्ति है न ? तथा तुमने जो गुरुजनों की सेवा की है, वह पूर्ण रूप से सफल हो गयी न ?'

श्रीरामचन्द्र जी के इस प्रकार पूछने पर वह जो सिद्धों के द्वारा सम्मानित थी, सामने खड़ी होकर बोली—'रघुनन्दन ! आज आपका दर्शन मिलने से ही मुझे अपनी तपस्या में सिद्धि प्राप्त हुई है। आज मेरा जन्म सफल हुआ और गुरुजनों की पूजा भी सार्थक हो गयी। सौम्य ! आज आपकी करुणा-पूर्ण दृष्टि पड़ने से मैं पवित्र हो गयी और आपके प्रसाद से ही अब मैं अक्षय लोकों में जाऊँगी, जब आप चित्रकूट पर्वत पर पधारे थे, उसी समय मेरे गुरुजन, जिनकी मैं सदा सेवा किया करती थी, अतुल तेजस्वी विमानों पर बैठकर यहां से दिव्यलोक को चले गये। धर्म के जानने वाले उन महाभाग महर्षियों ने जाते समय मुझ से कहा था कि 'तेरे इस पवित्र आश्रम पर श्रीरामचन्द्र जी पधारेंगे और लक्ष्मण के साथ तेरे आतिथि होंगे। उन दोनों का यथावत् सत्कार करना। उन का दर्शन करके तू अत्युत्तम अक्षय लोकों में जायेगी'।

रामो दाशरथिर्जातः परमात्मा सनातनः।
राक्षसानां वधार्थाय ऋषीणां रक्षणाय च॥
आगमिष्यति सैकाग्रध्याननिष्ठा स्थिरा भव।
इदानीं चित्रकूटाद्रावाश्रमे वसति प्रभुः॥
यावदागमनं तस्य तावद्रक्ष कलेवरम्।
दृष्ट्वा राघवं दग्ध्वा देहं यास्यसि तत्पदम्॥

नरश्रेष्ठ ! उन महात्माओं के मुख से जब मैंने आपके पधारने की बात सुनी, तभी से मैंने पम्पा में होने वाले नाना प्रकार के जंगली फल-फूलों का संग्रह कर रखा है, वह सब आपकी सेवा के लिये प्रस्तुत हैं।

शबरी के बेर राम को ऐसे मीठे लगे कि 'रसिक विहारी' कवि लिखते हैं :—

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु
'रसिक बिहारी' देत बंधु कहं फेर फेर।
चाखि चाखि भाखैं ये तो बहुतो महान मीठे,
लेहु तो लषन यों बखानत हैं हेर हेर।
बेर बेर देति बेर शबरी सुबेर बेर,
तऊ रघुबीर बेर बेर तेहि टेर टेर।
बेर जनि लावो बेर बेर जनि लावो बेर,
बेर जनि लावो बेर लावो कहैं बेर बेर।

यह है प्रेमिका का एक सच्चा चित्र। यही है पतितोद्धार का आदर्श उदाहरण ! आज भीलनी, शबरी कौशल्या और सुमित्रा के समान आनन्द-सरिता में अवगाहन कर रही है !!!

राम-लक्ष्मण ने शबरी का आदर माता के समान किया। 'जननि ज्यों आदरी सानुज' पद देकर गोसाईं जी ने आर्य-मर्यादा का उच्चतम आदर्श प्रकट किया है। 'रामचरित-मानस' में शबरी-सम्मेलन इस प्रकार लिखा है :—

सबरी देखि राम गृहँ आये।
मुनि के बचन समुझि जियँ भाये॥
सरसिज लोचन बाहु बिसाला।
जटा मुकुट सिर उर बनमाला॥
स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई।
सबरी परी चरन लपटाई॥
प्रेम मगन मुख बचन न आवा।
पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा॥
सादर जल लै चरन पखारे।
पुनि सुन्दर आसन बैठारे॥
कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाये बारम्बार बखानि॥
पानि जोरि आगें भइ ठाढ़ी।
प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी॥

केहि बिधि अस्तुति करउौ तुम्हारी ॥
अधम जाति मैं जड़ मति भारी ॥
अधम ते अधम अधम अति नारी।
तिन्ह महँ मैं मतिमन्द अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता।
मानउँ एक भगति कर नाता ॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई।
धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा।
बिनु जल बारिद देखिअ जैसा।

श्री रामचन्द्र जी बोले—पुरुषत्व, स्त्रीत्व का भेद अथवा जाति, नाम और आश्रम—ये कोई भी मेरे भजन के कारण नहीं हैं। उसका कारण तो एकमात्र मेरी भक्ति ही है। जो मेरी भक्ति से विमुख हैं, वे यज्ञ, दान, तप अथवा वेदाध्ययन आदि किसी भी कर्म से मुझे कभी नहीं देख सकते। अतः हे भामिनि ! मैं संक्षेप से अपनी भक्ति के साधनों का वर्णन करता हूँ। उनमें पहला साधन तो सतसंग ही है, मेरे जन्म कर्मों की कथा का कीर्तन करना दूसरा साधन है। मेरे गुणों की चर्चा करना यह तीसरा उपाय है और गीता-उपनिषदादि मेरे वाक्यों की व्याख्या करना उसका चौथा साधन है। हे भद्रे ! अपने गुरुदेव की निष्कपट होकर भगवद्-बुद्धि से सेवा करना पाँचवाँ, पवित्र स्वभाव, यम-नियमादिका पालन और मेरी पूजा में सदा प्रेम होना छठा तथा मेरे मन्त्र की साङ्गोपाङ्ग उपासना करना सातवाँ साधन कहा जाता है। मेरे भक्तों की मुझ से भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियों में मेरी भावना करना, बाह्य पदार्थों में वैराग्य करना और शम-दमादि-सम्पन्न होना—यह मेरी भक्ति का आठवाँ साधन है तथा तत्व-विचार करना नवाँ है। हे भामिनि ! इस प्रकार यह नौ प्रकार की भक्ति है। हे सुलक्षणे ! जिस किसी में ये साधन होते हैं, वह स्त्री, पुरुष अथवा पशु-पक्षी आदि कोई भी क्यों न हो, उस में प्रेम-लक्षणा-भक्ति का आविर्भाव हो जाता है। तू मेरी भक्ति से युक्त है, इसीलिये मैं तेरे पास आया हूँ। अब मेरा यह दर्शन होने से तेरी मुक्ति हो ही जायेगी—इसमें सन्देह नहीं।

श्रद्धा मूर्ति शबरी के उस भक्ति भावना-पूर्ण स्वागत से श्रीराम वहुत प्रभावित हुए और वे बोले, माई ! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया, अब तुम आनन्द पूर्वक अपने अभीष्ट लोक में जाओ।

शबरी के दिव्य लोक में चले जाने पर धर्मात्मा श्रीराम ने उन महात्मा महर्षियों के प्रभाव का चिन्तन करके अपने हित में संलग्न रहने वाले एकाग्रचित्त लक्ष्मण से कहा—"सौम्य ! अब उन पुण्यात्मा मुनियों का यह पवित्र आश्रम देखो। यहाँ अनेकों आश्चर्यजनक बातें हैं। हरिन और बाघ एक दूसरे पर विश्वास करते हैं। अब हमारे कल्याण का समय आया है, अतएव इस समय मेरा मन अधिक प्रसन्न जान पड़ता है। लक्ष्मण ! मेरे हृदय में कोई शुभ संकल्प उठने वाला है, इसलिये आओ, परम सुन्दर पम्पा सरोवर के तट पर चलें, वहाँ से ऋष्यमूक पर्वत थोड़ी ही दूर पर दिखाई देता है, यहाँ सूर्य के पुत्र धर्मात्मा सुग्रीव निवास करते हैं। बाली के भय से सदा डरे रहने के कारण वे वानरों के साथ उस पर्वत पर रहते हैं। मैं वानर श्रेष्ठ सुग्रीव से मिलने के लिये उतावला हो रहा हूँ, क्योंकि सीता को ढूँढने का कार्य उन्हीं के अधीन है।"

(९)

बाली-वध

विजेतव्या लंका चरण तरणीयो जलनिधि
विपक्षी पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्चकपयः ।
तथाप्येको रामः सकलमवधीत् राक्षसकुलम्
क्रियासिद्धि सत्त्वे भवति महतां नोऽपकरणे ॥

देवियो एवं भद्रपुरुषो!

कल हम शबरी की भक्ति का आप को रसास्वादन करवा रहे थे। शबरी ने ही प्रभु को सुग्रीव से मिलने का परामर्श दिया—

आगें चले बहुरि रघुराया
रिष्यमूक पर्वत निअराया ॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा ।
आवत देखि अतुल बल सींवा ॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना ।
पुरुष जुगल बल रूप निधाना ॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई ।
कहेसु जानि जियँ सयन बुझाई ॥
पठए बालि होहिं मन मैला ।
भागौं तुरत तजौं यह सैला ॥
बिप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ ।
माथ नाइ पूछत अस भयऊ ॥
को तुम्ह स्यामल गौर सरीरा ।
छत्री रूप फिरहु बन बीरा ॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी ।
कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुंदर गाता ।
सहत दुसह बन आतप बाता ॥

की तुम्ह तीनि देव महँ कोऊ ।
नर नारायन की तुम्ह दोऊ ॥
जग कारन तारन भव भंजन धरनी भार ।
की तुम्ह अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार ।

महात्मा श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भाईयों को श्रेष्ठ आयुध धारण किये वीर-भेष में आते देख ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे सुग्रीव के मन में बड़ी शंका हुई। वे उद्विग्न होकर चारों ओर देखने लगे। उन्होंने मन्त्रियों के साथ मिलकर अपनी दुर्बलता और शत्रुपक्ष की प्रबलता पर विचार किया। फिर श्रीराम और लक्ष्मण की ओर देखते हुए बहुत घबराकर अपने मन्त्रियों से कहा —'निश्चय ही ये दोनों वीर वाली के भेजे हुए इस दुर्गम वन में आये हैं। वानरश्रेष्ठ! तुम एक तटस्थ पुरुष की भाँति यहाँ से जाओ और उन की चेष्टाओं से, रूप से तथा बातचीत के तौर-तरीकों से उन दोनों का यथार्थ परिचय प्राप्त करो। उनके मनोभावों को समझो और यदि वे प्रसन्नचित्त जान पड़ें तो बारंबार मेरी प्रशंसा करके मेरे प्रति उनका विश्वास उत्पन्न करो। उन धनुर्धर वीरों से इस वन में आने का कारण पूछना। यदि उनका हृदय शुद्ध जान पड़े,

तो भी तरह-तरह की बातों और आकृति के द्वारा यह जानने की विशेष चेष्टा करना कि वे कोई दुर्भावना लेकर तो यहाँ नहीं आये हैं ।'

तब हनुमान् जी ने वानर रूप का परित्याग कर ब्रह्मचारी का वेष बना लिया और उन दोनों वीरों के पास जाकर उन्हें विनीत भाव से प्रणाम किया, उनकी विधिवत् पूजा और प्रशंसा की तथा स्वच्छन्दरूप से वार्तालाप किया—'वीरो ! आप दोनों सत्यपराक्रमी, राजर्षि और देवताओं के समान प्रभावशाली, तपस्वी तथा कठोर व्रत का पालन करने वाले जान पड़ते हैं। आपके शरीर की कान्ति बड़ी सुन्दर है, आप दोनों धैर्यशाली दिखायी देते हैं। बताइये, चीरवस्त्र धारण करने वाले आप लोग कौन हैं ? आपकी दृष्टि सिंह के समान है, आप में वीरता कूट-कूट कर भरी है, आपका बल और पराक्रम महान् है। इन्द्रधनुष के समान महान् शरासन धारण करके आप शत्रुओं को नष्ट करने की शक्ति रखते हैं। आप कान्तिमान् तथा रूपवान् हैं। साँड़ों के समान आपकी मस्तानी चाल है। आपकी भुजाएँ हाथी की सूँड को मात कर रही हैं। आप मनुष्यों में श्रेष्ठ और परम तेजस्वी हैं। आप दोनों की प्रभा से गिरिराज ऋष्यमूक जगमगा रहा है। आप लोग देवताओं के समान पराक्रमी और राज्य भोगने के योग्य हैं। भला, इस दुर्गम वन प्रान्त में आपका आना कैसे सम्भव हुआ ? आप दोनों वीर देवलोक से तो नहीं आये हैं ? आपको देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो चन्द्रमा और सूर्य अकस्मात् ही इस पृथ्वी पर उतर आये हों। आप मनुष्य के रूप में साक्षात् देवता से प्रतीत हो रहे हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है—आप दोनों समुद्र, वन तथा विन्ध्य एवं मेरु आदि पर्वतों से विभूषित समूची पृथ्वी की रक्षा करने में समर्थ हैं।

'यहाँ वीरवर सुग्रीव नामक एक वानर जो समस्त वानरों में श्रेष्ठ और धर्मात्मा हैं। उनके भाई वाली ने उन्हें घर से निकाल दिया है। इसीलिये वे अत्यन्त दुखी होकर मारे-मारे फिरते हैं। उन्हीं वानरराज सुग्रीव के भेजने से मैं यहाँ आया हूँ। मेरा नाम हनुमान् है, धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों से मित्रता करना चाहते हैं। मुझे आप उनका मन्त्री समझिये। मैं वायु देवता का पुत्र हूँ। मेरी जहाँ इच्छा हो, जा सकता हूँ और जैसा चाहुँ रूप धारण कर सकता हूँ। इस समय सुग्रीव का प्रिय करने के लिये भिक्षु के रूप में अपने को छिपा कर ऋष्यमूक से यहां आया हूँ।'

वीरवर श्रीराम और लक्ष्मण से ऐसा कह कर बोलने में चतुर हनुमान् चुप हो गये, फिर कुछ न बोले। उनकी बात सुनकर श्रीरामचन्द्र जी का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। वे अपने बगल में खड़े हुए छोटे भाई लक्ष्मण से इस प्रकार कहने लगे !

सचिवोऽयं कपींद्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
तमेव कांक्षमाणस्य ममांतिकमिहागतः ॥
ना नृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
न सामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रूवोस्तथा ।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥

'सुमित्रानन्दन ! ये वानरराज सुग्रीव के सचिव हैं और उन्हीं के हित की इच्छा से यहाँ मेरे पास आये हैं। तुम इनसे स्नेहपूर्वक मीठी वाणी में बातचीत करो। जिसे ऋग्वेद की शिक्षा नहीं मिली, जिसने यजुर्वेद का अभ्यास नहीं किया तथा जो सामवेद का विद्वान् नहीं है, वह

इस प्रकार सुन्दर भाषा में वार्तालाप नहीं कर सकता। इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है; क्योंकि बहुत सी बातें बोले जाने पर इनके मुँह से कोई अशुद्धि नहीं निकली। सम्भाषण के समय इनके मुख, नेत्र, ललाट, भौंह तथा अन्य अंगों से भी कोई दोष प्रकट नहीं हुआ। इन्होंने थोड़े में ही बड़ी स्पष्टता के साथ अपना अभिप्राय निवेदन किया है। रुक-रुक कर अथवा शब्दों या अक्षरों को तरोड़-मरोड़ कर किसी वाक्य का उच्चारण नहीं किया है। बोलते समय इनकी आवाज न बहुत धीमा रही है, न बहुत ऊँची। मध्यम स्वर में ही इन्होंने सब बातें कही हैं। ये संस्कार और क्रम से सम्पन्न, अद्‌भुत अविलम्बित तथा हृदय को आनन्द प्रदान करने वाली कल्याणमयी वाणी का उच्चारण करते हैं। हृदय, कण्ठ और मूर्द्धा—इन तीनों स्थानों द्वारा स्पष्टरूप से अभिव्यक्त होने वाली इनकी इस विचित्र वाणी को सुनकर किसका चित्त प्रसन्न न होगा? वध करने के लिये तलवार उठाये हुए शत्रु का हृदय भी इस अद्‌भुत वाणी से बदल सकता है। जिस राजा के पास इनके समान दूत न हो, उसके कार्यों की सिद्धि कैसे हो सकती है तथा जिसके कार्य साधक दूत ऐसे उत्तम गुणों से युक्त हों, उस राजा के सभी मनोरथ दूतों की ही बातचीत से सिद्ध हो जाते हैं।'

श्रीरामचन्द्र जी के ऐसा कहने पर सुमित्रानन्दन लक्ष्मण सुग्रीव के सचिव पवन कुमार हनुमान् जी से बोले — 'विद्वान्! सुग्रीव के गुण हमें ज्ञात हो चुके हैं। हम लोग वानरराज सुग्रीव की ही खोज में यहाँ आये हैं।

कोसलेस दसरथ के जाए।
हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई।
संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहां हरी निसिचर बैदेही।
बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई।
कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना।
सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
पुलकित तन मुख आव न बचना।
देखत रुचिर बेष कै रचना॥
पुनि धीरजु धरि अस्तुति कीन्ही।
हरष हृदयँ निज नाथहि चीन्ही॥
मोर न्याउ मैं पूछा साईं।
तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं॥
तब माया बस फिरउँ भुलाना।
ता ते मैं नहिं प्रभु पहिचाना॥
एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा।
निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥
सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ।
सेवक प्रिय अनन्य गति सोऊ॥
सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवंत॥
देखि पवनसुत पति अनुकूला।
हृदयँ हरष बीती सब सूला॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई।
सो सुग्रीव दास तव अहई॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे।
दीन जानि तेहि अभय करीजे॥
सो सीता कर खोज कराइहि।
जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥
एहि बिधि सकल कथा समुझाई।

लिए दुम्रौ जन पीठि चढ़ाई ॥
तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥
कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा।
लछिमन राम चरित सब भाषा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी।
मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा।
तजहु सोच मन ग्रानहु धीरा ॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई।
जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई ॥
सखा बचन सुनि हरषे कृपासिंधु बलसींव।
कारन कवन बसहु बन मोहि कहहु सुग्रीव ॥

उस समय सुग्रीव को बड़ा संतोष हुआ। वह हर्ष से भर कर बोले—प्रभो ! इसमें सन्देह नहीं कि देवताओं की मेरे ऊपर बड़ी कृपा है—मैं सर्वथा उनके अनुग्रहका पात्र हूँ, क्योंकि आप जैसे गुणवान् महापुरुष मेरे मित्र हैं। रघुनन्दन ! आपकी सहायता मिलने पर मुझे देवताओं का भी राज्य प्राप्त हो सकता है, फिर अपने राज्य को पाना कौनसी बड़ी बात है। अब मैं अपने सुहृदों और बन्धुओं के विशेष सम्मान का पात्र हो गया, क्योंकि आज रघुवंश के राजकुमार अग्नि को साक्षी बनाकर मेरे मित्र हुए हैं। आप आत्मज्ञानियों में श्रेष्ठ हैं। अपने चित्त को वश में रखने वाले आप-जैसे महात्मा पुरुषों का प्रेम तथा धैर्य अविचल होता है। अच्छे स्वभाववाले मित्र अपने घर के सोने, चाँदी अथवा उत्तम आभूषणों को अपने सन्मित्रों से अलग नहीं समझते। अतएव मित्र धनी हो या गरीब,सुखी हो या दुखी,अथवा निर्दोष हो या सदोष, वह मित्र के लिये सबसे बड़ा सहायक होता है। साधु पुरुष अपने मित्र का अत्यन्त उत्कृष्ट प्रेम देख आवश्यकता पड़ने पर उसके लिये धन, सुख और देशका भी परित्याग कर देते हैं। सुग्रीव ने फिर कहा 'रघुनन्दन ! मेरे भाई ने मुझे घर से निकाल दिया है और मेरी स्त्री को भी छीन लिया है। मैं अपने भाई के भय से पीड़ित एवं अत्यन्त दुखी होकर ऋष्यमूक पर्वत पर विचरता रहता हुँ। मुझे बराबर उस का त्रास बना रहता है। मैं भय में डूबा रहने के कारण व्याकुलचित्त होकर वन में भटकता फिरता हूँ। मुझे घर से निकाल देने के बाद भी बाली का वैरभाव दूर नहीं हुआ है। प्रभो! आप सम्पूर्ण लोकों को अभय देने वाले हैं। मैं बाली के भय से दुखी और अनाथ हूँ, अत: आप मुझ पर भी कृपा कीजिये। भगवान् श्रीराम धर्म के ज्ञाता, धर्म प्रेमी और तेजस्वी थे। उन्होंने सुग्रीव की बात सुन कर हँसते हुए इस प्रकार उत्तर दिया—'सखे! उपकार ही मित्रता का फल है और अपकार शत्रुता का लक्षण है, अत: मैं तुम्हारी स्त्री का अपहरण करने वाले उसी बाली का वध करूँगा।

सुनु सुग्रीव मारिहउँ बालिहि एकहिं बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत गएँ न उबरिहिं प्रान ॥

श्रीरामचन्द्र जी के वचन सुनकर सेनापति सुग्रीव को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे साधुवाद देते हुए बोले—आपने मेरे हाथ में हाथ देकर अग्निदेव के सामने मुझे अपना मित्र बनाया है। इस लिये आप मुझे अपने प्राणों से भी बढ़ कर प्रिय हैं, यह बात मैं सत्य की शपथ करके कहता हूँ। आप मेरे सखा हैं, इस लिये आप पर पूर्ण विश्वास करके अपने भीतर का दुख,जो मेरे मनको सदा व्यथित किया करता है बता रहा हूँ, श्रीराम ! पहले की बात है—बाली ने कटु वचन सुनाकर बलपूर्वक मेरा तिरस्कार किया और अपने राज्य से अलग कर दिया। इतना ही नहीं, मेरी स्त्री को भी, जो मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय है,

उसने छीन लिया और जितने मेरे सुहृद् थे, उन सब को कैद में डाल दिया। इसके बाद भी वह दुरात्मा मेरे विनाश के लिये यत्न करता रहता है।

सुग्रीव के ऐसा कहने पर धर्म के ज्ञाता परम तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी हँसते हुए यह धर्म युक्त वचन बोले--मित्र! सूर्य के समान तेजस्वी ये मेरे तीखे बाण अमोघ हैं, जो दुराचारी बाली को रोष पूर्वक अपना निशाना बनायेंगे। तुम शोक समुद्र में डूबे हुए हो, मैं तुम्हारा उद्धार करूँगा। तुम राज्य और स्त्री—सभी कुछ प्राप्त करोगे!'

उसके बाद महातेजस्वी श्री राम ने अपना धनुष हाथ में लिया और एक भयंकर बाण का सन्धान करके उसे साल वृक्ष की ओर छोड़ दिया। उस समय उनके धनुष की टंकार से समस्त दिशाएँ गूंज उठीं। महाबली भगवान् श्रीराम के द्वारा छोड़ा हुआ वह सुवर्ण भूषित बाण उन सातों साल वृक्षों को एक ही साथ बींधकर मुहूर्त्त में पुनः उनके तरकस में लौट आया। वानरराज सुग्रीव भगवान् श्री राम के एक ही बाण के वेग से उन सातों वृक्षों को विदीर्ण हुए देख कर बड़े विस्मय में पड़ गये और हाथ जोड़ बड़ी प्रसन्नता के साथ पृथ्वी पर माथा टेककर उन्होंने रघुनाथ जी को प्रणाम किया। तदनन्तर वे सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ श्री राम से बोले 'प्रभो! आप इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं को भी अपने बाणों से मार डालने की शक्ति रखते हैं, फिर बाली को मारना आप के लिये कौन बड़ी बात है? जिन्होंने सात बड़े बड़े वृक्ष पर्वत और पृथ्वी को भी एक ही बाण से विदीर्ण कर डाला, युद्ध में उनके सामने कौन ठहर सकता है? आज मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है, रघुनन्दन! मैं हाथ जोड़ता हूँ। आप आज ही मेरा प्रिय करने के लिए बाली का, जो भाई के रूप में मेरा शत्रु है, वध कर डालिये।'

श्रीराम के बल पर सुग्रीव ने बाली को ललकारा, बाली ने भी ललकार का जवाब ललकार में दिया—फिर तो बाली और सुग्रीव में भयंकर युद्ध छिड़ गया—इधर राम के लिये बड़ी कठिनायी आन पड़ी। दोनों भाई आपस में इतने मिलते जुलते थे कि श्रीराम उनमें पहचान न कर सके, पता नहीं चलता था बाली कौन है, सुग्रीव कौन है। इस विचार में श्रीराम ने अपना प्राणान्तकारी बाण छोड़ने का विचार स्थगित कर दिया— जब सुग्रीव ने यह अवस्था देखी वह मैदान से भाग निकला। जान बची सो लाखों पाये। श्रीराम ने सुग्रीव के सामने अपनी वही कठिनाई उपस्थित की—फिर पहचान के तौर पर फूलमाला सुग्रीव के गले में डाल दी। फिर सुग्रीव ने बाली को ललकारा दोनों भाई फिर से गुत्थमगुत्था हो गये। उस समय श्रीराम ने अपने धनुष पर सर्प के समान भयानक बाण रखा और उसे जोर से खींचा। फिर प्रज्वलित वज्र के समान उस बाण को बाली की छाती में मारा। उस बाण के प्रहार को बाली सह नहीं सका और धरती पर गिर पड़ा। उसके शरीर से पानी के समान खून की धारा बहने लगी।

उस समय दोनों भाई श्रीराम-लक्ष्मण मरते हुए बाली के पास गये। उन्हें देखते ही बाली बोला—

तं दृष्ट्वा राघवं वाली लक्ष्मणं च महाबलम्।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्म संहितम्॥
पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः।

किमयापकृतं राम तव येन हतोस्म्यहम् ।
राजधर्ममविज्ञाय गर्हितं कर्म ते कृतम् ॥
वृक्षखंडेतिरोभूत्वा त्वजता मयि सायकम् ।
यश: किं लप्स्यसे राम चोरवत्कृतसंगर: ॥
यदि क्षत्रिय दायादो मनोर्वंशसमुद्भव: ।
युद्धं कृत्वा समक्षं मे प्राप्स्यसे तत्फलंतदा ॥
सुग्रीवेण कृतं किं ते मया वा न कृतं किमु ।
रावणेन हृता भार्या तव राम महावने ॥
सुग्रीवं शरणं यातस्तदर्थमितिशुश्रुम ।
बत राम न जानीषे मद्बलं लोकविश्रुतम् ॥
रावणं सकुलं बद्धा ससीतं लंकयासह ।
आनयामि मुहूर्तार्धाद्यदि चेच्छामि राघव ॥
धर्मिष्ट इति लोकेऽस्मिन् कथ्यसे रघुनंदन ।
वानरं व्याधवद्धत्वा धर्मं कं लप्स्यसे वद ॥

धर्म हेतु अवतरेहु गोसाईं ।
मारेहु मोहि व्याध की नाईं ॥
मैं बैरी सुग्रीव पिआरा ।
अवगुण कवन नाथ मोहि मारा ॥

मैथिलीमहमेकाह्ना तत्रचानीतवान्भवे: ।
राक्षसं च दुरात्मानं तव भार्यापहारिणिम् ॥
कंठे बद्धवा प्रदद्यां तेऽनिहतं रावणं रणे ॥
न्यस्तां सागरतोये वा पाताले वापि मैथिलीम् ।
आनयेयं तवादेशाच्छ्वेतामश्वतरीमिव ॥

राम ! मैं आपसे युद्ध करने नहीं आया था, तो भी आपने मुझे मारकर क्या लाभ उठाया ? मैं दूसरे के साथ युद्ध में लगा था और आपके कारण मारा गया । संसार के समस्त प्राणी भूमण्डल पर आपके सुयश का इस प्रकार बखान करते हैं कि श्रीराम कुलीन, सत्त्वगुणसम्पन्न, तेजस्वी, उत्तम व्रत के पालक, करुणा का करने वाले, प्रजा के हितैषी, दयालु, महान्, उत्साही, सदाचार के ज्ञाता दृढ़प्रतिज्ञ हैं । रघुनन्दन ! इन्द्रियनिग्रह, मन का निग्रह, क्षमा, धर्म-धैर्य, वीरता, पराक्रम तथा अपराधियों को दण्ड देना– ये राजा के गुण हैं । मैं आप में इन सभी सद्गुणों का विश्वास करके तथा आपके उत्तम कुल का ख्याल करके तारा के मना करने पर भी सुग्रीव से लड़ने आ गया । मैंने आपके राज्य या नगर में कोई उपद्रव नहीं किया तथा आपका भी अपमान नहीं किया, तो भी आपने मुझ निरपराध को क्यों मारा ? मैं सदा फल-मूलका भोजन करने वाला वानर हूं और वन में ही रहता हूं। मैं आप से युद्ध नहीं करता था, दूसरे के साथ मेरी लड़ाई हो रही थी, फिर भी आपने मुझे मारा है । आप राजा के पुत्र, विश्वास के योग्य और देखने में प्रिय हैं । आप में धर्म का चिन्ह भी दिखायी दे रहा है। क्षत्रिय कुल में उत्पन्न, शास्त्र का ज्ञाता, संशयरहित तथा धार्मिक चिन्ह धारण करने वाला होकर भी कौन मनुष्य ऐसा क्रूरतापूर्ण कर्म कर सकता है ? महाराज रघु के कुल में आपका प्रादुर्भाव हुआ है । आप धर्मात्मा के नाम से प्रसिद्ध हैं तथापि बिना किसी अपराध के आपने मेरा वध किया है। इतने क्रूर होकर भी आप ऊपर से क्यों साधुका-सा रूप धारण किये फिरते हैं ? नीति और विनय, दण्ड और अनुग्रह —ये राजधर्म हैं, किन्तु इनके उपयोग के भिन्न-भिन्न अवसर हैं। अविवेक पूर्वक इनका उपयोग करना उचित नहीं है। राजाओं को स्वेच्छाचारी नहीं होना चाहिए। राम ! मैं बिल्कुल निरपराध था। मुझे बाण से मारकर निन्दा पूर्ण कार्य करके सत्पुरुषों के बीच में आप क्या कहेंगे ? राजकुमार ! यदि मेरे सामने आकर आप युद्ध करते तो अब तक मेरे द्वारा मारे जाकर सूर्य-मण्डल में प्रवेश किये होते। जैसे पाप के अधीन हुए मनुष्य को सोते में सांप काट दे, उसी प्रकार आपने छिपकर मुझे मारा है, अन्यथा मुझे परास्त करना कठिन था। आपने अपने मन में

किस उद्देश्य को रखकर सुग्रीव का प्रिय करने के लिये मेरा वध किया है, उसे यदि पहले मुझी से कहा होता तो मैं एक ही दिन में मिथिलेश-कुमारी सीता को ला देता । आपकी स्त्री का अपहरण करने वाले दुरात्मा राक्षस का गला बांधकर जीते-जी उसे आपके पास उपस्थित कर देता। समुद्र के जल अथवा पाताल में भी यदि सीता का पता लगता तो मैं वहां से भी उन्हें ले आता। मेरे स्वर्ग चले जाने पर यह राज्य सुग्रीव को मिलेगा, यह तो उचित ही हुआ। परन्तु आपने जो अधर्म पूर्वक मेरा वध किया है, यह नितान्त अनुचित हुआ । यदि आप इसे उचित समझते हों, तो मेरी बातों का उत्तर सोचकर दीजिये ।' ऐसा कह कर वानरराज वाली सूर्य के समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्र जी की ओर देखकर चुप हो गया।

वाली के इस प्रकार आक्षेप करने पर श्रीरामचन्द्र जो बोले—"वानर!

धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् ।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥
इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैलवनकानना ।
मृगपक्षिमनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः ।
धर्मकामार्थतत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥
नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् ।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ॥
तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये व पार्थिवाः ।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसंतानमिच्छवः ॥
यस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले ।
पालयत्यखिलां पृथ्वीं कश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥
ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमेस्थिताः ।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य निग्रहामो यथाविधि ॥
नहि लोकविरुद्ध च लोकावृत्तादपेयुषः ।
दंभावन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥

वाली ! धर्म, अर्थ, काम और लौकिक सदाचार का स्वयं तुम्हीं को ज्ञान नहीं है; फिर अज्ञानवश तुम मेरी निन्दा क्यों कर रहे हो ? आचार्यों द्वारा सम्मानित वृद्ध पुरुषों से पूछे बिना उनका सत्संग किये बिना तुम चंचलतावश मुझे उपदेश देना चाहते हो ? पर्वत, वन और काननों से युक्त यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की है । अतः वे यहां के पशु, पक्षी तथा मनुष्यों पर दया करने और उन्हें दण्ड देने के अधिकारी हैं। धर्मात्मा राजा भरत इस पृथ्वी का पालन करते हैं। वे सत्यवादी, सरल तथा धर्म काम और अर्थ के तत्व को जानने वाले हैं। उन में नीति, विनय, सत्य और पराक्रम आदि सभी राजोचित गुण पाये जाते हैं। वे देश-काल के तत्व को जानने वाले हैं। संसार में धर्म का प्रसार हो, इस इच्छा से हम लोग सारी पृथ्वी पर भ्रमण करते हैं। राजाओं में श्रेष्ठ भरत धर्म पर अनुराग रखने वाले हैं। उनके शासन काल में कौन धर्म के विरुद्ध आचरण कर सकता है ? सुग्रीव के साथ मेरी मित्रता हो चुकी है। उनके प्रति मेरा वही भाव है, जो लक्ष्मण के प्रति है। मैं इन्हें स्त्री और राज्य दिलाने के लिये वानरों के समीप प्रतिज्ञा कर चुका हूं तथा ये भी मेरी भलाई—मेरी सहायता करने के लिये प्रतिज्ञाबद्ध हैं। ऐसी दशा में मेरे जैसा मनुष्य अपनी प्रतिज्ञा की ओर से कैसे दृष्टि हटा सकता है ? ये सभी धर्मानुकूल महान् कारण एक साथ उपस्थित हो गये, जिन से विवश होकर तुम्हें उचित दण्ड देना पड़ा है। तुम भी इसका अनुमोदन करो। धर्म पर दृष्टि रखने वाले मनुष्य के लिये मित्र का उपकार करना धर्म ही माना गया है; अतः तुम्हें जो दण्ड दिया गया है, वह सर्वथा धर्म के अनकूल है—ऐसा ही तुम्हें समझना चाहिये। यदि राजा होकर तुम धर्म का अनुसरण करते

तो तुम्हें भी वही काम करना पड़ता, जो मैंने किया है।

उस समय वाली दोनों हाथ जोड़ कर बोला—भगवन्! मुझे अपने लिये, तारा के लिये तथा बन्धु-बान्धवों के लिये भी उतना शोक नहीं है, जितना अपने गुणवान् पुत्र अंगद के लिये है। बचपन से ही मैंने उसका बड़ा दुलार किया है, अब मुझे न देखकर वह बहुत दुखी होगा। वह अभी बालक है, उसकी बुद्धि पकी नहीं है। मेरा एकलौता बेटा होने के कारण ताराकुमार अङ्गद मुझे बड़ा प्रिय है। आप उसकी रक्षा करें। सुग्रीव और अंगद दोनों के प्रति आप सद्भाव रखें। अब आप ही इन लोगों के रक्षक तथा इन्हें कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की शिक्षा देने वाले हैं। भरत और लक्ष्मण के प्रति आपका जैसा बर्ताव है वही सुग्रीव तथा अंगद के प्रति भी होना चाहिये। बेचारी तारा की बड़ी शोचनीय अवस्था हो गयी है। मेरे ही अपराध से उसे भी अपराधिनी समझ कर सुग्रीव उसका तिरस्कार न करे—इस बात की भी व्यवस्था कीजियेगा। सुग्रीव आपका कृपापात्र होकर ही इस राज्य का यथार्थ रूप से पालन कर सकता है। आप के अधीन होकर सर्वथा आपके ही चरित्र का अनुसरण करने वाला पुरुष स्वर्ग और पृथ्वी का भी राज्य प्राप्त कर सकता है।"

इतना कहकर वानरराज वाली चुप हो गया। उस समय उसकी ज्ञान शक्ति का विकास हो गया था। श्रीरामचन्द्र जी ने धर्म के यथार्थ स्वरूप को प्रकट करने वाली साधु पुरुषों द्वारा प्रशंसित वाणी में उससे कहा—'वानरश्रेष्ठ! तुम हमारे और अपने लिये भी चिन्ता न करो, क्योंकि हम लोगों ने सदा से ही धर्मानुकूल कार्य करने का निश्चय कर रखा है। जो दण्डनीय पुरुष को दण्ड देता है तथा जो दण्ड का अधिकारी होकर उसे स्वीकार करता है. कार्य कारण से ही उन दोनों के अभीष्ट अर्थ की सिद्धि हो जाती है अतः वे दुखी नहीं होते। तुम इस दण्ड को पाकर पापरहित हुए और इस दण्ड के द्वारा ही तुम्हें अपने धर्मानुकूल शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो गयी। अब तुम शोक, मोह और हृदय का भय छोड़ दो। कुमार अंगद तुम्हारे जीवित रहने पर जैसा सुखी था, उसी तरह सुग्रीव की और मेरी देख-रेख में भी रहेगा। इस में तनिक भी सन्देह नहीं है।'

वानरों का राजा वाली बाण से पीड़ित होकर भूमि पर पड़ा था। श्रीरामचन्द्र जी के द्वारा युक्तियुक्त वचनों में अपनी बात का उत्तर पाकर वह फिर कोई जवाब न दे सका। उसकी स्त्री तारा ने सुना कि वानरश्रेष्ठ वाली श्रीराम के बाण से घायल होकर जमीन पर पड़े हैं। स्वामी के वध का भयंकर एवं अप्रिय समाचार सुनकर वह उद्विग्न हो उठी और अपने पुत्र अङ्गद को साथ ले बड़े वेग से पति के पास चली। आगे जाने पर उसने देखा, अपने तेजस्वी धनुष को धरती पर टेक कर उसके सहारे श्री रामचन्द्र जी खड़े हैं। साथ ही उनके छोटे भाई लक्ष्मण तथा अपने पति के भाई सुग्रीव पर भी उसकी दृष्टि पड़ी। उन सब को पार करके वह रणभूमि में घायल पड़े हुए पति के पास पहुंची। उन्हें देखकर उसके मन में बड़ी व्यथा हुई और वह अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, फिर मानो सो कर उठी हो—इस प्रकार 'हा आर्यपुत्र!' कहकर मृत्युपाश से बंधे हुए पति की ओर देखती विलाप करने लगी।

इस प्रकार विलाप करती हुई उस तारा को महामना राम ने दयापूर्वक तत्वज्ञान का उपदेश

देकर शान्त किया। वे बोले—"अयि भीरु! तेरा पति शोक करने योग्य नहीं है, तू उसके लिये व्यर्थ क्यों शोक करता है? तू विचार कर ठीक-ठाक बता, वास्तव में तेरा पति यह देह है या इस में रहने वाला जीव, (यदि यह देह ही तेरा पति है तो) यह जड़ पन्चभूतमय एवं त्वचा, मांस रुधिर और अस्थियों से बना हुआ है तथा काल, कर्म और गुणों से उत्पन्न हुआ है; और वह तो अब भी तेरे सामने पड़ा है। (फिर उसके लिये शोक क्यों करती है?) और यदि तू जीव को अपना पति मानती है तो भी तुझे शोक न करना चाहिये, क्योंकि वह निर्विकार है। वह न उत्पन्न होता है, न मरता है, न स्थिर रहता है और न आता-जाता है। जीव सर्वव्यापी और अव्यय है, वह स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक कुछ भी नहीं है; बल्कि अद्वितीय, आकाश के समान निर्लेप, नित्य, ज्ञानमय और शुद्ध है; फिर वह शोचनीय कैसे हो सकता है?"

तारा बोली—हे राम! देह तो काष्ठ के समान जड़ और जीव नित्य तथा चैतन्य स्वरूप है, (उसका नाश हो नहीं सकता) फिर सुख-दुःख आदि का सम्बन्ध किस से होता है, यह मुझे बतलाइये?

श्रीरामचन्द्र जी बोले—जब तक देह और इन्द्रियों के साथ 'मैं'-'मेरापन' आदि का सम्बन्ध रहता है, तब तक आत्मा और अनात्मा के विवेक से रहित जीव का सुख-दुःखादि के भोग रूप संसार से सम्बन्ध रहता है। यह संसार आत्मा में मिथ्या ही आरोपित हुआ है तथापि ज्ञानोदय के बिना यह अपने आप निवृत नहीं होता, जिस प्रकार विषयों का निरन्तर ध्यान करने वाले पुरुष को स्वप्न में अनेक पदार्थ दीखते हैं, परन्तु वे होते मिथ्या ही हैं। अनादि अविद्या और उसके कार्य अहंकार के सम्बन्ध से स्थित हुआ यह संसार निरर्थक (अत्यन्त मिथ्या) होते हुए भी राग-द्वेष आदि से पूर्ण है। हे शुभे! मन ही संसार है और मन ही बन्धन है। उस अनातम वस्तु मन के साथ (अन्योन्याध्यास से) एक हो जाने से ही यह आत्मा तद्गत सुख-दुःखादि के बन्धन में पड़ता है। जैसे स्फटिकमणि स्वभाव से शुक्लवर्ण होने पर भी लाख आदि के समीप होने पर उन्हीं के रंग की मालूम होने लगती है, परन्तु वास्तव में उस में वह रंग नहीं होता। वैसे ही बुद्धि और इन्द्रिय आदि की सन्निधि से आतमा को, बलात्कार से संसार की प्रतीति होती है।

जीव वासनाओं और कर्मों के साथ अनादि अविद्या से आच्छादित हुआ रहता है। जब नवीन सृष्टि आरम्भ होती है, तब यह विवश होकर अपनी पूर्व वासनाओं से युक्त मन के सहित घड़ी यन्त्र के समान फिर उत्पन्न हो जाता है। जिस समय किसी विशेष पुण्यपरिपाक से इसे मेरे भक्त और शान्तचित्त महात्माओं को संगति मिलती है उस समय इसका चित्त मेरी ओर लगता है। उससे मेरी कथा सुनने में इसकी श्रद्धा होती है, जो बहुत ही दुर्लभ है। मेरी कथा सुनने से इसको अनायास ही मेरे स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उस समय गुरु कृपा द्वारा तत्त्वमसि आदि महावाक्यों के अर्थ-ज्ञान से तथा स्वयं अपने अनुभव से भी यह अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप अद्वितीय आत्मा को देह, इन्द्रिय, मन, प्राण और अहंकारादि से पृथक जानकर एक क्षण में ही तुरंत मुक्त हो जाता है। हे तारे! मैंने यह वास्तविक सत्य तुझ से कह दिया। मेरे कहे हुए इस परमार्थ ज्ञान का जो अहर्निश मनन करता है उसे सांसारिक दुःख कभी स्पर्श नहीं करते। तू भी शुद्धचित्त होकर मेरे इस उपदेश का मनन कर। ऐसा करने से क्लेश-कलाप तुझे

छू भी न सकेंगे और तू कर्म-बन्धन से मुक्त हो जायेगी। हे शुभे! अपने पूर्वजन्म में तूने मेरी उत्कृष्ट भक्ति की थी, इसीलिये हे सुन्दरि! तुझे मुक्त करने के लिये मैंने अपना दर्शन दिया है। तू रात-दिन मेरे रूप का ध्यान करती हुई मेरे उपदेश का मनन कर। ऐसा करने से प्रारब्ध-कर्म से प्राप्त हुए कर्मों को करती हुई भी तू उनसे लिप्त न होगी।

भगवान् राम का यह अद्भुत उपदेश सुन कर तारा को बड़ा ही विस्मय हुआ और उसने देहाभिमानजनित शोक छोड़कर श्री रघुनाथ जी को प्रणाम किया तथा आत्मानुभव से सन्तुष्ट हो कर वह तत्काल जीवन्मुक्त हो गयी। परमात्मा राम के क्षण मात्र के सत्संग से वह अनादि अविद्या के बन्धन को काट कर निष्पाप और मुक्त हो गयी।

तारा बिकल देखि रघुराया।
दीन्ह ग्यान हरि लीन्हि माया॥
छिति जल पावक गगन समीरा।
पंच रचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगे सोवा।
जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ग्यान चरन तब लागी।
लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥

तदनन्तर भगवान् ने वानरश्रेष्ठ सुग्रीव से कहा—"हे सुग्रीव! तुम मेरी आज्ञा से बेटा अंगद के द्वारा अपने बड़े भाई का जो कुछ शास्त्रोक्त और्ध्वदैहिक कर्म हो वह सब विधि-पूर्वक करो" तब 'जो आज्ञा' कह मुख्य-मुख्य बलवान् वानरों के साथ वाली के शव को फूलों के विमान पर रखकर समस्त राजोचित उपचारों के सहित भेरी और दुन्दुभि आदि का घोष करते हुए ब्राह्मण, मन्त्रिवर्ग, यूथपति वानरगण, पुरवासी, तारा और अंगद के साथ उसे ले जाकर सुग्रीव ने बड़े प्रयत्न से शास्त्रानुकूल सब संस्कार किये और फिर स्नानादि करके मन्त्रियों के साथ राम के पास लौट आया।

वहाँ आकर सुग्रीव ने प्रसन्नचित्त से श्री रामचन्द्र जी के चरणों में प्रणाम करके कहा—"हे राजराजेश्वर! वानरों के इस समृद्धिसम्पन्न राज्य का शासन कीजिये। मैं तो आपका दास हूँ; लक्ष्मण के समान मैं भी सदा आपके चरण कमलों की सेवा करता रहूँगा।"

यह सुनकर श्री रघुनाथ जी ने सुग्रीव से मुस्कराते हुए कहा—"सुग्रीव! मैं और तू एक ही हैं—इस में किसी प्रकार का सन्देह नहीं। मेरी आज्ञा से तुम तुरंत ही जाकर किष्किन्धा के राजपद पर अपना अभिषेक कराओ। हे सखे! मैं चौदह वर्ष तक किसी भी नगर में प्रवेश नहीं कर सकता, इसलिये तुम्हारे राज्याभिषेक के समय भाई लक्ष्मण तुम्हारे नगर में आयेगा। अंगद को तुम आदरपूर्वक यौवराज्यपद पर अभिषिक्त करना। अब मैं वर्षा के दिनों में भाई लक्ष्मण के साथ यहाँ पास ही पर्वत-शिखर पर रहूँगा, सो तुम कुछ दिन नगर में रहकर फिर सीता जी की खोज कराने का प्रयत्न करना।"

तब सुग्रीव ने श्री रामचन्द्र जी के चरणों में साष्टाङ्ग दण्डवत् करके कहा—"भगवन्! आपकी जैसी आज्ञा होगी मैं वही करूँगा"। फिर भगवान् राम की आज्ञा पर सुग्रीव लक्ष्मण जी को साथ लेकर किष्किन्धापुरी में गये और जैसे श्री रामचन्द्र ने करने को कहा था वह सब काम वैसे ही किया।

तब रघुपति बोले मुसुकाई।
तुम्ह प्रिय मोहि भरत जिमि भाई॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई।
जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई॥

रामायण में जहाँ वाली का व्यक्तित्व आत्माभिमान पूर्ण है, अंगद का भक्ति-भावपूर्ण, जाम्ववान् का पाण्डित्यपूर्ण, बजरंगबली का साहस, विद्वत्ता तथा कर्त्तव्य पूर्ण है, वहां सुग्रीव का व्यक्तित्व कायरता तथा स्वार्थपूर्ण है। जहाँ हमें रामायण में हनुमान् जी के दर्शन सदा सर्वदा स्थितप्रज्ञ के रूप में होते हैं, जाम्ववान् के गम्भीर रूप में, वहाँ सुग्रीव हमेशा ही अनिश्चित सा, डावांडोल सा और संशयात्मा सा दिखाई देता है। ऐसा प्रतीत होता है, सुग्रीव की अपनी अक्ल नहीं, उसका अपना कोई सिद्धांत नहीं, जीवन का अपना कुछ भी निश्चित् ध्येय नहीं, मानों न उसका अपना हृदय है, न उसका आत्मा है, न दिल है न दिमाग है, न ही स्वतंत्र विचार-शक्ति । क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा—

वही सुग्रीव जो कुछ ही दिन पूर्व वाली के खून का प्यासा हो रहा था, जो श्रीराम पर इस बात का ज़ोर दे रहा था कि वे वाली का शीघ्रातिशीघ्र वध करें वाली की हत्या कर दिये जाने पर उसी सुग्रीव के मुँह पर आँसुओं की धारा बहने लगी। वाली की मृत्यु पर वह दहाड़ें मार मार कर रोनें लगा, मानों वाली की हत्या करवा देने का विचार जबरदस्ती उसके दिल और दिमाग में किसी ने ठूंस दिया हो, वह विचार वाली के शव को देखते ही कहीं भाग गया और उस के स्थान पर सहसा प्रेम और सहानुभूति का स्रोत फूट गया।

उस समय वह अपने आप को धिक्कारता हुआ श्री राम चन्द्र जी महाराज से कहने लगा—

"राम! भ्रातृ वध में निमित्त बनने के कारण मेरे इस जीवन को धिक्कार है। इस लिये अब मेरा मन भोगों की ओर से हट गया। राजा वाली के मरने से ये महारानी तारा अत्यंत विलाप कर रही हैं, सारा नगर दुःख से सन्तप्त होकर चीख रहा है तथा कुमार अंगद का जीवन भी सन्देह में पड़ गया है। इन सब कारणों से राज्य पर मेरी प्रीति नहीं रही। उस श्रेष्ठ-पर्वत ऋष्यमूक पर रहना ही आज मुझे अच्छा जान पड़ता है, किन्तु अपने इन भाई का वध कराकर अब मुझे स्वर्ग का राज्य भी मिल जाय, तो भी मैं उसे अच्छा नहीं समझता। बुद्धिमान् वाली ने युद्ध के समय मुझ से कहा था कि 'तुम चले जाओ, मैं तुम्हारे प्राण लेना नहीं चाहता' उनकी यह बात उन्हीं के योग्य थी और मैंने जो आप से कहकर उनका वध कराया, मेरा वह क्रूरतापूर्ण वचन और कर्म हो अनुरूप है। रघुनन्दन ! कोई कितना ही स्वार्थी क्यों न हो, यदि राज्य के सुख तथा भ्रातृवध से होने वाले दुख की प्रबलता पर वह विचार करेगा तो वह भाई होकर अपने गुणवान् भाई का वध कैसे अच्छा समझेगा ? वाली के मन में मेरे वध का विचार नहीं था, क्योंकि इस से उन्हें अपनी मान-प्रतिष्ठा में बट्टा लगने का डर था। मेरी ही बुद्धि में दुष्टता भरी थी, जिसके कारण मैंने अपने भाई के प्रति ऐसा अपराध कर डाला, जो उनके लिये घातक सिद्ध हुआ। वालीने भ्रातृभाव और धर्म की रक्षा की। किन्तु मैंने केवल क्रोध, काम तथा वानरोचित चपलता का ही परिचय दिया है। अपने कुल का नाश करने वाला ऐसा पाप पूर्ण कार्य करके मैं प्रजा के सम्मान का पात्र नहीं रहा। राज्य पाना तो दूर की बात है, मुझ में युवराज होने की भी योग्यता नहीं है। मैंने वह निन्दनीय पाप किया है, जो नीच पुरुषों के योग्य तथा सम्पूर्ण जगत् को हानि पहुंचाने वाला है। यह दुःसह पाप मेरे

हृदयस्थित सदाचार को भी नष्ट कर रहा है। मैं कुल की हत्या करने वाला और अपराधी हूं। अतः संसार में जीवन धारण करने योग्य नहीं हूँ। ऐसा जानकर मझे प्राण त्याग करने की आज्ञा दीजिये।

उस समय श्री रामचन्द्र जी ने सुग्रीव, अंगद और तारा को सान्त्वना देते हुए कहा—'शोक-सन्ताप करने से मरे हुए जीव का कल्याण नहीं होता। अब आगे जो कुछ कार्य है, उसको तुम्हें विधिपूर्वक सम्पन्न करना चाहिए। तुम सब आँसू बहा चुके, अब उसकी आवश्यकता नहीं है। लोकाचार का भी पालन होना चाहिये। मृत्यु के बाद ऐसा कोई उपाय नहीं किया जा सकता, जो मरे हुए प्राणी को जिला दे। कोई भी पुरुष न तो स्वतन्त्रतापूर्वक किसी काम को कर सकता है और न किसी दूसरे को ही उसमें लगाने की शक्ति रखता है। सारा जगत् स्वभाव के अधीन है और स्वभाव का आधार काल है। काल भी अपनी की हुई व्यवस्था का उल्लंघन नहीं कर सकता। काल का किसी के साथ भाई चारे का, मित्रता का अथवा बिरादरी का सम्बन्ध नहीं है। वह किसी जीव के वश में नहीं रहता, इस लिये उसके विधान को पलटने का न तो कोई कारण है और न उस पर किसी का कुछ जोर ही चल सकता है। अतः विवेकी पुरुष को सब कुछ काल का ही परिणाम समझना चाहिये। धर्म, अर्थ और काम भी कालक्रम से ही प्राप्त होते हैं। मेरे द्वारा मारे जाने के कारण वानर राज वाली इस शरीर से मुक्त होकर अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त हुए हैं। नीतीशास्त्र के अनुकूल साम, दान और अर्थ के समुचित प्रयोग से मिलने वाले जो पवित्र कर्म-फल हैं वे सभी उन्हें प्राप्त हो गये। अतः अब उनके लिये शोक करना व्यर्थ है। इस समय तुम लोगों के सामने जो कर्त्तव्य है उसे पूरा करना चाहिए।'

उस समय सुवर्णमय पर्वत के समान सुन्दर एवं विशाल शरीर वाले वायु पुत्र हनुमान जी दोनों हाथ जोड़कर बोले—'प्रभो! आपकी कृपा से सुग्रीव को वानरों का विशाल साम्राज्य प्राप्त हुआ, जो इनके बाप-दादों के समय से चला आ रहा है। यद्यपि इसका मिलना बहुत ही कठिन था, तो भी आपके प्रसाद से यह सुलभ हो गया। अब यदि आप आज्ञा दें तो ये अपने सुन्दर नगर में प्रवेश करके सुहृदयों के साथ अपना सब राज-कार्य सम्भालें। ये शास्त्र-विधि के अनुसार नाना प्रकार के सुगन्धित पदार्थों और औषधियों सहित जल से राज्य पर अभिषिक्त होकर मालाओं और रत्नों द्वारा आपकी विशेष पूजा करेंगे, अतः आप इस किष्किन्धापुरी में प्रवेश करें और इन्हें इस राज्य का स्वामी बनाकर वानरों को आनन्द प्रदान करें।'

हनुमान् के ऐसा कहने पर श्रीरामचन्द्र जी बोले—'सौम्य! मैं पिता की आज्ञा का पालन कर रहा हूं, इसलिये चौदह वर्षों के अन्दर किसी ग्राम या नगर में प्रवेश नहीं करूंगा। वानरश्रेष्ठ वीरवर सुग्रीव समृद्धि से पूर्ण इस दिव्य नगरी में जायं और वहां शीघ्र ही इनका राज्याभिषेक कर दिया जाये।' हनुमान् से ऐसा कहकर श्री रामचन्द्र जी सुग्रीव से बोले—'मित्र! तुम लौकिक और शास्त्रीय सभी व्यवहार जानते हो। कुमार अंगद चरित्रवान् एवं वीर हैं, इसलिये तुम इनको भी युवराज के पद पर अभिषिक्त करो। ये तुम्हारे बड़े भाई के ज्येष्ठ पुत्र हैं, पराक्रम में

उन्हीं के समान हैं तथा इनका हृदय उदार है। अतः ये युवराज बनने के सर्वथा योग्य हैं। सौम्य! जिसे वर्षा काल कहते हैं, वह चौमासा आ गया। उसका पहला महीना श्रावण आरम्भ हो गया, यह किसी पर चढ़ाई करने का समय नहीं है। अतएव तुम अपनी सुन्दर नगरी में जाओ। मैं लक्ष्मण के साथ इस पर्वत पर निवास करूंगा। कार्तिक आरम्भ होने पर तुम रावण-वध के लिये प्रयत्न करना—यही हम लोगों का निश्चय रहा। अब तुम अपने महल में जाओ और राज्य पर अभिषिक्त होकर सुहृदों को आनन्दित करो।'

जब सुग्रीव का राज्याभिषक हो गया और किष्किन्धा में जाकर रहने लगा, उस समय अपने भाई लक्ष्मण के साथ श्रीरामचन्द्र जी प्रसृवण पर्वत पर चले गये। वह पर्वत बड़ा ही पवित्र और मंगलमय था। उसी के शिखर पर एक लंबी चौड़ी गुफा देखकर उसे लक्ष्मण सहित श्रीराम ने अपने रहने के लिये पसंद किया।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा।
पुर न जाउँ दस चारि बरीसा॥
गत ग्रीषम बरषा रितु आई।
रहिहउँ निकट सैल पर छाई॥
अंगद सहित करहु तुम्ह राजू।
संतत हृदयँ धरेहु मम काजू॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आए।
रामु प्रबरषन गिरि पर छाए॥
प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखेउ रुचिर बनाइ।

कहाँ तो सुग्रीव अपने भाई की चिता के साथ दग्ध होने को तैयार था, राजपाट पर लात मार भिखारी बन कर रहने को तैयार था, कहां राज पाकर हाला प्याला में ऐसा मस्त हो गया कि उसे श्रीराम के प्रति अपने कर्त्तव्य की तो क्या स्वयं अपने शरीर तक की सुधबुध न रही। अपना मनोरथ पूरा हो जाने के कारण वह धर्म और अर्थ के संग्रह में शिथिलता दिखाने लगा। उस ने राज-कार्य का भार मन्त्रियों पर छोड़ दिया, उनके कार्यों की देख-भाल तक छोड़ दी और स्वयं दिन रात सुरा और सुन्दरी में ही गल्तान रहने लग।

उस समय श्रीराम चन्द्र जी लक्ष्मण से बोले,—

सुग्रीवहुँ सुधि मोरि बिसारी।
पावा राज कोस पुर नारी।

सुग्रीवोऽपि दयाहीनो दुःखितं मां न पश्यति।
राज्यं निष्कण्टकं प्राप्य स्त्रीभिः परिवृतोरहः॥
कृतघ्नो दृश्यते व्यक्तं पानासक्तोऽतिकामुकः।

लक्ष्मण! सुग्रीव ने सीता जी की खोज का जो समय निश्चित् किया था, वह समाप्त हो गया, परन्तु सीता जी की अभी तक कोई सुध-बुध नहीं मिली। इस मूर्ख को अपनी प्रतिज्ञा का कुछ भी ख्याल नहीं, इस लिये मेरे कहने से तुम किष्किन्धा में जाओ और सुग्रीव को इस प्रकार कहो—

"जो बल-पराक्रम से सम्पन्न तथा पहले ही उपकार करने वाले कार्यार्थी मित्रों को आशा दे कर उन का कार्य करने की प्रतिज्ञा करके पीछे उसे तोड़ देता है वह संसार के सभी पुरुषों में नीच है। जो अपने मुंह से प्रतिज्ञा के रूप में निकले हुए भले या बुरे— हर तरह के वचनों को कर्त्तव्य समझकर पालन करता है, वह वीर समस्त पुरुषों में श्रेष्ठ माना जाता है। जो अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाने पर अपने मित्रों के कार्य को पूरा करने की परवाह नहीं करते, उन कृतघ्न पुरुषों के मरने पर मांसाहारी जन्तु भी उनका मास नहीं खाते। सुग्रीव! निश्चय ही

तुम युद्ध में मेरे द्वारा चढ़ाये हुए सोने की पीठवाले धनुष का कौंधती हुई बिजली के समान रूप देखना चाहते हो। संग्राम में कुपित होकर खेंची हुई मेरी प्रत्यञ्चा की भयंकर टङ्कारको, जो वज्र की आवाजको भी मात करने वाली है, अब फिर तुम्हें सुनने की इच्छा हो रही है।

लक्ष्मण! यदि ऐसी बात भी हो जाय—सुग्रीव मेरी सहायता से मुंह मोड़ भी ले, तो भी जब तक तुम मेरे सहायक हो, मुझे कोई चिन्ता नहीं हो सकती, क्योंकि मुझे तुम्हारे और अपने पराक्रमका ज्ञान है। सीता की खोज के लिये ही वह सारा आयोजन हुआ वानर राज सुग्रीव से मैत्री और बाली का वध किया गया किन्तु उस शर्त को—सीता को खोजने की प्रतिज्ञा को इस समय वह भूल गया, क्योंकि उसका अपना काम सिद्ध हो चुका है। सुग्रीवने यह प्रतिज्ञा की थी कि वर्षा का अन्त होते ही सीता की खोज आरम्भ कर दी जायगी किन्तु वह विहार करने में इतना तन्मय हो गया कि इन बीते हुए चार महीनों का उसे कुछ पता ही नहीं है। हम लोग शोक से व्याकुल हो रहे हैं, परन्तु सुग्रीव को हम पर दया नहीं आती। वीर लक्ष्मण! तुम जाकर सुग्रीव से कहो, मेरे क्रोध का जो स्वरूप है, वह उसे बतलाओ और यह सन्देश सुनाओ—सुग्रीव! वाली मारा जाकर जिस रास्ते से गया है, वह रास्ता आज भी बन्द नहीं हुआ है। इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहो, वाली के मार्ग पर न जाओ। नरश्रेष्ठ' ऐसे अवसर पर और भी जो-जो बातें कहनी उचित हों—जिनके कहने से अपना हित हो, वे सब बातें कहना। जल्दी करो, समय बीता जा रहा है। उससे कहो—वानरराज! तुम सनातन धर्म पर दृष्टि रख कर अपनी की हुई प्रतिज्ञा को सत्य करो।'

लक्ष्मण का तेज बड़ा ही उग्र था, उन्होंने वानरराज सुग्रीव के प्रति कठोर भाव धारण किया और श्रीरामचन्द्र जी से कहा—आर्य! सुग्रीव की बुद्धि मारी गयी है, इसलिये वह विषय भोगों में आसक्त हो रहा है। आपकी कृपा से उसे राज्य मिला, किन्तु उस उपकार का बदला चुकाने की उस की नीयत नहीं है। अतः अब वह भी मारा जाकर अपने बड़े भाई वीरवर वाली का दर्शन करे। ऐसे गुण हीन को राज्य नहीं देना चाहिये। मेरा क्रोध बढ़ा हुआ है। मैं इसे रोक नहीं सकता, असत्य वादी सुग्रीव को आज ही मारे डालता हूं। अब वालि-कुमार अंगद ही राजा होकर प्रधान-प्रधान वानर वीरों के साथ राजकुमारी सीताकी खोज करेंगे। यों कह कर लक्ष्मण धनुष-वाण हाथ में लिये बड़े वेग से चल पड़े। उस समय प्रतिपक्षी वीरों का नाश करने वाले श्री राम चन्द्र जी उन्हें शान्त करने के लिये सोच-विचार कर निश्चित किये हुए वचन बोले—लक्ष्मण! तुम सदाचारी हो। तम्हें इस प्रकार सुग्रीव के मारने का निश्चय नहीं करना चाहिये उसके प्रति पहले जो तुम्हारा प्रेम था, उसका निर्वाह करो। उसके साथ जो मित्रता की गयी है, उसका भी स्मरण रखो।'

अपने बड़े भाई के इस प्रकार समझाने पर वीर लक्ष्मण किष्किन्धापुरी की ओर चल दिये। उन्होंने सुग्रीव को मारने का विचार तो छोड़ दिया, पर उनका क्रोध कम न हुआ। उनके हाथ में इन्द्र धनुष के समान भयंकर धनुष था। वे भाई की आज्ञा का पालन करने वाले

और बृहस्पति के समान बुद्धिमान् थे। उस समय भाई का क्रोध देखकर उनकी भी क्रोधाग्नि भड़क उठी थी तथा वे असन्तुष्ट हो कर वायु के समान वेग से चले जा रहे थे। किष्किंधा के बाहर उन्हें बहुत से भयंकर वानर दिखायी दिये। तदनन्तर कई श्रेष्ठ वानरों ने सुग्रीव के महल में जा कर लक्ष्मण के आगमन और क्रोध का समाचार निवेदन किया। उस समय काम के अधीन हुए वानरराज सुग्रीव तारा के साथ थे, इसलिये उन्होंने उन श्रेष्ठ वानरों की बातें नहीं सुनीं। तब सचिवकी आज्ञा से हाथी, पर्वत, और मेघ के समान विशालकाय वानर, जो रोंगटे खड़े कर देने वाले थे, नगर से बाहर निकले। लक्ष्मण प्रज्वलित कालाग्नि के समान दिखायी दे रहे थे। कुमार अंगद डरते २ उनके पास गये। वे बहुत दुखी हो रहे थे। महान् यशस्वी को मेरे आने की सूचना दो। उनसे कहना—श्रीरामचन्द्र जी के भाई लक्ष्मण अपने भ्राता के दुःख से दुखी होकर नगरद्वार पर खड़े हैं। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो उनकी आज्ञा का अच्छी तरह पालन करो। बेटा अंगद बस इतना ही कह कर तुम शीघ्र मेरे पास लौट आओ।"

लक्ष्मण की बात सुनकर अंगद चिन्ता में पड़ गये और अपने चाचा के पास जा कर बोले—सुमित्रानन्दन लक्ष्मण जी पधारे हैं। अंगद का तेज बड़ा ही उग्र था। महल में जाने पर उन्होंने पहले पिता-तुल्य सुग्रीव के और फिर अपनी माता के चरणों में प्रणाम किया। तत्पश्चात् रूमाके चरणों का स्पर्श करके लक्ष्मण का सन्देश सनाया। किन्तु सुग्रीव कामसे मोहित होकर पड़े थे, निद्राने उन के ऊपर पूरा अधिकार जमा लिया था; इसलिये वे जाग न सके। इतने में नगर के बाहर वानरों की भयंकर गर्जना हुई, इस से उन की नींद खुल गयी। अङ्गदके साथ दो मन्त्री भी आये थे, जो वानरराज सुग्रीवके सम्मानपात्र थे। उनके नाम थे प्लक्ष और प्रभाव। अर्थ और धर्मके विषय में राजाको ऊँच-नीच समझानेके लिये नियुक्त थे। उन दोनों ने सोच-विचार कर निश्चित किये हुए सार्थक वचनों के द्वारा सुग्रीव को प्रसन्न किया तथा उन्हें लक्ष्मण के आगमन की सूचना देते हुए कहा—'राजन्! महाभाग श्रीराम और लक्ष्मण—दोनों भाई सत्यप्रतिज्ञ हैं। उन दोनोंने ही आप को राज्य प्रदान किया है। उनमें से लक्ष्मण हाथमें धनुष लिये किष्किन्धा के दरवाजे पर खड़े हैं। उन्हीं के डर से कांपते हुए वानर जोर-जोर से चीख मार रहे हैं। लक्ष्मण श्रीराम चन्द्रजीकी आज्ञा से यहाँ आये हैं। उन्होंनें तारा के प्रिय पुत्र अङ्गद को बड़ी शीघ्रता के साथ आप के पास भेजा है। वे क्रोध से लाल आँखें किये नगर द्वार पर उपस्थित हैं। वानर राज! आप पुत्र और बन्धु-बान्धवों के साथ शीघ्र चल कर उनके चरणों में मस्तक नवाइये और इस प्रकार उन का क्रोध शान्त कीजिये।

मन्त्रियों और अङ्गद की बात सुन कर तथा लक्ष्मण को कुपित जानकर सुग्रीव आसन छोड़ कर खड़े हो गये। वे श्रीरामचन्द्र जी की महत्ता तथा अपनी लघुता का विचार करके मन्त्रियों से बोले—'मैंने न तो कोई अनुचित बात मुँह से निकाली है और न कोई बुरा काम ही किया है; फिर लक्ष्मण मुझ पर कुपित क्यों हैं? महात्मा श्रीराम ने मेरा जो उपकार किया है, उस का बदला चुकाने की मुझ में शक्ति है; इसलिये मैं और भी डर गया हूँ।' सुग्रीव के ऐसा कहने पर वानरों में श्रेष्ठ हनुमान् जी अपनी युक्ति का

सहारा लेकर वानर मन्त्रियों के बीच में बोले—'राजन् ! मित्र के द्वारा अत्यन्त आत्मीयभाव से किये हुए उत्तम उपकार को आप किसी तरह भूल नहीं रहे हैं, इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि अच्छे पुरुषों का ऐसा स्वभाव ही होता है। वीरवर रघुनाथ जी ने भय को दूर हटा कर आप का प्रिय करने के लिये इन्द्र-तुल्य पराक्रमी वाली का वध किया है, अतः वे वास्तव में आप पर कुपित नहीं हो सकते। इस समय उन्होंने जो क्रोध किया है उस में भी सर्वथा उनका प्रेम ही कारण है। आप तनिक भी सन्देह न करें। स्नेह के कारण ही उन्होंने अपने भाई लक्ष्मण को आप के पास भेजा है। यद्यपि आप समय का ज्ञान रखने वालों में सब से श्रेष्ठ हैं, तथापि सीता की खोज करने के लिये आप ने जो समय निश्चित किया था, उसे इन दिनों प्रमाद में पड़ जाने के कारण आप भूल गये हैं। देखिये, शरद्-ऋतु का प्रारम्भ हो गया है, आकाश में अब बादल नहीं रहे। ग्रह और नक्षत्र उज्ज्वल दिखायी देते हैं। सम्पूर्ण दिशाएँ निर्मल हो गयी हैं तथा नदियों और सरोवरों के जल पूर्ण स्वच्छ हो चुके हैं। राजाओं के लिये विजय यात्रा की तैयारी करने का समय आ गया है; किन्तु आप को कुछ पता नहीं है।

आप गफलतमें पड़े हैं; इसलिये लक्ष्मण यहां आये हैं। महात्मा श्रीराम चन्द्रजीकी धर्मपत्नीका अपहरण हुआ है, इसके कारण वे बहुत दुखी हैं। अतः यदि लक्ष्मणके मुखसे उनका कठोर वचन भी सुनना पड़े, तो आपको चुपचाप सह लेना चाहिये। आपकी ओरसे अपराध हुआ है; अतः हाथ जोड़कर लक्ष्मण को प्रसन्न करने के सिवा आपके लिये और कोई कर्त्तव्य मैं नहीं देखता। राज्यकी भलाईके कामपर नियुक्त हुए मन्त्रियों-का यह कर्त्तव्य है कि वे राजाको उसके हितकी बात अवश्य बतावे, अतएव मैं भय छोड़कर अपना निश्चित विचार बतला रहा हूं। भगवान् श्रीराम यदि क्रोध करके धनुष हाथमें ले लें तो देवता, असुर और गन्धर्वों-सहित सम्पूर्ण जगत्को अपने वश में कर सकते हैं। जिससे पीछे क्षमा माँगनी पड़े, ऐसे पुरुषको क्रोध दिलाना कदापि उचित नहीं है। विशेषतः उस पुरुषको, जो मित्रके किये हुए पहले उपकारको याद रखता हो और कृतज्ञ हो, इस बातका अधिक ध्यान रखना चाहिये। इसलिये आप पुत्र और मित्रोंके साथ मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम कीजिये और अपनी प्रतिज्ञापर अटल रहकर पतिके वशमें रहनेवाली पत्नीकी भांति सदा श्रीरामचन्द्रजीके अधीन रहिये।

धनुषकी टङ्कार सुनकर वानरराज सुग्रीव समझ गये कि लक्ष्मण यहाँ तक आ पहुँचे हैं। वे भयके मारे अपना सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये। अङ्गद के द्वारा उनके आगमन का समाचार तो उन्हें पहले ही मिल चुका था, अब धनुष की टङ्कार सुनकर उन्हें इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव हो गया। फिर तो उनका मुंह सूख गया। वे आतङ्क के कारण घबरा उठे और लक्ष्मण के सामने जाने की उन्हें हिम्मत न हुई। अतः वे किसी तरह धैर्य धारण कर परम सुन्दरी तारा से हितकी बात बोले—'कल्याणी ! तुम्हारे देखने में कुमार लक्ष्मण के रोष का क्या कारण हो सकता है? वे मनुष्यों में श्रेष्ठ हैं। अतः बिना किसी कारण के कदापि क्रोध नहीं कर सकते। यदि हम लोगों ने उनका कोई अपराध किया हो और तुम्हें उसका पता हो, तो सोचकर शीघ्र ही बताओ। अथवा तुम स्वयं ही जाकर लक्ष्मण से मिलो और सान्त्वनायुक्त बातें कहकर

उन्हें प्रसन्न करो ! उनका हृदय शुद्ध है । तुम्हारे सामने वे क्रोध नहीं करेंगे; क्योंकि महात्मा पुरुष स्त्रियों के प्रति कभी कठोर बर्ताव नहीं करते । जब तुम उनके पास जाकर मीठे वचनोंसे उन्हें शांत कर दोगे, जब उनका चित्त प्रसन्न हो जायगा, उस समय मैं कमललोचन लक्ष्मण का दर्शन करूँगा ।'

तारा उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न थी, उसका शरीर संकोच एवं विनयसे झुका हुआ था । वह लक्ष्मण के पास गयी । वानरराज की पत्नी तारा को देखते ही महात्मा लक्ष्मण मुँह नीचा करके उदासीनभाव से खड़े हो गये । यह देख तारा बोली –'राजकुमार ! आपके क्रोध का क्या कारण है ? कौन ऐसा है, जो आपकी आज्ञा का पालन नहीं करता ? कौन निडर होकर दावानल में प्रवेश कर रहा है ?' तारा की बातों में सान्त्वना भरी थी, उसमें प्रेम पूर्वक हृदयका भावप्रकट किया गया था । उसे सुनकर लक्ष्मण के हृदय की आशङ्का जाती रही, वे कहने लगे, 'अपने स्वामी के हित में संलग्न रहने वाली तारा ! तुम्हारा यह पति विषय भोग में आसक्त होकर धर्म और अर्थ की ओर से लापरवाह हो रहा है, तुम इसे समझाती क्यों नहीं ? इसे सिर्फ अपने राज्य की फिक्र लगी है । हमलोग शोक में डूबे हुए हैं, परन्तु हमारी इसे तनिक भी चिन्ता नहीं होती । यह अपने मन्त्रियों तथा राजसभा के सदस्यों सहित केवल विषय भोगों का ही सेवन कर रहा है । सुग्रीव ने चार महीनों की अवधि निश्चित की थी, वे कभी के बीत गये; पर अभी तक इसे इस बात का पता नहीं लगा । मित्र के किये हुए उपकार का यदि अवसर आने पर भी बदला न चुकाया जाय, तो धर्म की हानि तो होती ही है, साथ ही गुणवान् मित्र के साथ मित्रता का नाता टूट जाने पर स्वार्थ की भी बहुत बड़ी हानि उठानी पड़ती है । मित्र दो प्रकार के होते हैं – एक तो अपने मित्र के अर्थ साधन में तत्पर होता है और दूसरा सत्य एवं धर्म के परायण होता है । तुम्हारे स्वामी ने मित्रके इन दोनों ही गुणों का परित्याग कर दिया है ।'

तारा बोली राजकुमार! यह क्रोध करने का समय नहीं है । आत्मीय जनों पर क्रोध करना ही नहीं चाहिये । सुग्रीव के मन में सदा आपका कार्य सिद्ध करने की इच्छा बनी रहती है; अतः उनसे यदि कोई भूल हो भी जाय, तो भी क्षमा करनी चाहिये । भगवान् श्रीराम के क्रोध का कारण मैं जानती हूँ । उनके कार्य में जो विलम्ब हुआ है, उससे अपरिचित नहीं हूँ ।

नरश्रेष्ठ ! यद्यपि सुग्रीव इस समय काम के गुलाम हो रहे हैं, तथापि इन्होंने आपका कार्य सिद्ध करने के लिये बहुत पहले से उद्योग प्रारम्भ करने की आज्ञा दे रखी है, जिसके फलस्वरूप इस समय विभिन्न पर्वतों पर निवास करने वाले लाखों वानर, जो इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ तथा महान् पराक्रमी हैं, यहां उपस्थित हुए हैं ।

तारा के आग्रह और जल्दी मचाने के कारण महाबाहु लक्ष्मण सुग्रीव के अन्तःपुर में गये । वहाँ जाकर उन्होंने देखा, एक सोने के सिंहासन पर बहुमूल्य बिछौना बिछा है और वानरराज सुग्रीव सूर्यके समान तेजस्वी स्वरूप धारण किये उसके ऊपर विराजमान हैं । यशस्वी सुग्रीव दिव्य मालाओं ओर दिव्य वस्त्रों से सुशोभित थे तथा दिव्य आभूषणों और मालाओं से अलंकृत युवती स्त्रियाँ उन्हें चारों ओर से घेरे खड़ी थीं । उनकी ओर देखते ही लक्ष्मण

की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। वह बेरोक टोक भीतर घुस आये थे। उन नर-श्रेष्ठ को क्रोध से भरा देख सुग्रीव की सारी इन्द्रियां व्यथित हो उठीं, और वे सुवर्ण का सिंहासन छोड़कर कूद पड़े। उनके आसनसे उतरते ही रूमा आदि स्त्रियां भी उतरकर खड़ी हो गयीं। श्रीमान् लक्ष्मण आँखें लाल किये इधर उधर टहलने लगे। सुग्रीव हाथ जोड़े उनके निकट जाकर खड़े हो गये। तब लक्ष्मण ने सुग्रीव से कहा—'वानरराज! धैर्यवान्, कुलीन, दयालु, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ और सत्यवादी राजा का ही संसार में आदर होता है। जो राजा अधर्म में स्थित होकर उपकारी मित्रों के सामने झूठी प्रतिज्ञा करता है, उससे बढ़कर क्रूर कौन होगा। जो मित्रों के द्वारा अपने कार्य सिद्धकरके बदलेमें उनका काम नहीं करता, वह कृतघ्न एवं सब प्राणियों के लिये वध करने योग्य है। कृतघ्न को देखकर कुपित हुए ब्रह्माजीने सब लोगोंके लिये आदरणीय जो श्लोक कहा है, वह तुम्हें बता रहा हूँ, सुनो—गोहत्यारा, शराबी, चोर और व्रत भंग करने वाले के लिये सत्पुरुषों ने प्रायश्चित् का विधान किया है; किन्तु कृतघ्न के उद्धार का कोई उपाय नहीं बताया है। तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्यावादी हो। श्रीराम चन्द्र जीकी सहायता से तुमने पहले अपना काम तो बना लिया; किन्तु अब जब उनके लिये सहायता करने का अवसर आया तो तुम कुछ नहीं करते। तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो चुका है, अतः अब तुम्हें सीता की खोज के लिये प्रयत्न करना चाहिए; परन्तु तुम्हारी दशा यह है कि अपनी प्रतिज्ञा को झूठी करके विषय भोगों में लिप्त हो रहे हो, महाभाग श्री राम चन्द्र जी परम महात्मा और दयालु हैं, अतएव उन्होंने तुम को वानरों का राज्य दे दिया। यदि तुम उनके उपकार को नहीं समझोगे, तो शीघ्र ही उनके तीखे बाणों का निशाना बनकर बाली का दर्शन करोगे। सुग्रीव! बाली मारा जाकर जिस रास्ते से गया है, वह आज भी बंद नहीं हुआ है; इसलिये तुम अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहो, बाली के मार्ग पर न जाओ।'

लक्ष्मण अपने तेजके कारण प्रज्वलित-से हो रहे थे। उनके ऐसा कहने पर चन्द्रमुखी तारा बोली—'कुमार लक्ष्मण! आपको ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये। सुग्रीव वानरों के राजा हैं, अतः इनके प्रति कठोर वचन बोलना उचित नहीं है। विशेषतः आप-जैसे सुहृदके मुखसे तो ये कदापि कटु वचन सुननेके अधिकारी नहीं हैं। वीरवर! कपिराज सुग्रीव न कृतघ्न हैं न शठ हैं, न क्रूर हैं न असत्यवादी हैं, और न कुटिल ही हैं। इन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके द्वारा किए हुए उपकारको, जो युद्धमें दूसरोंके लिये सर्वथा दुष्कर है, भुलाया नहीं है। भगवान् श्रीरामजी की कृपा से सुग्रीव ने वानरों के अक्षय राज्यको, यशको और रूमा तथा मुझको भी प्राप्त किया है। पहले इन्होंने बड़ा दुःख उठाया है। अब इस उत्तम सुख को पाकर इन्हें समयका ज्ञान ही नहीं रहा। अबतक काम-भोगसे इनकी तृप्ति नहीं हुई है इसीलिये इनसे कुछ असावधानी हो गयी। अतः श्रीरामचन्द्र जीको इनका अपराध क्षमा करना चाहिये। तातलक्ष्मण! यथार्थ बातको जाने बिना साधारण मनुष्यों की भांति सहसा क्रोधके अधीन नहीं होना चाहिये। धर्मज्ञ! मैं हृदय से सुग्रीव की कृपा की याचना करती हूँ। आप क्रोध से उत्पन्न हुई इस महान् शोभा का त्याग कीजिये। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि सुग्रीव श्रीरामचन्द्र जी का प्रिय करने के

लिये रूमा का, मेरा कुमार अङ्गद का तथा धन-धान्य और पशुओं सहित सम्पूर्ण राज्य का भी परित्याग कर सकते हैं। ये उस अधम राक्षस का वध करके श्रीराम को सीता से अवश्य मिलावेंगे।

तारा की विनय युक्त धर्मानुकूल बातें सुन कर कोमल स्वभाव वाले लक्ष्मण ने उन्हें स्वीकार किया। तब वानरों के राजा सुग्रीव को लक्ष्मण की ओर से भय जाता रहा और वे उन्हें प्रसन्न करते हुए नम्रता पूर्वक बोले—जिन्होंने एक ही बाण से सात बड़े-बड़े वृक्ष, पर्वत और पृथ्वी को भी विदीर्ण कर दिया था, उन को किसी दूसरे सहाय की आवश्यकता भी क्या है? जिन के धनुष की टङ्कार से पर्वतों सहित पृथ्वी काँप उठती है, उन्हें सहायकों से क्या लेना है? मैं तो वैरी रावण का वध करनेके लिये अग्रगामी सैनिकों सहित यात्रा करने वाले महाराज राम के पीछे-पीछे चलूँगा। विश्वास अथवा प्रेम के कारण यदि इस दास से कुछ अपराध हो गया हो, तो आप उसे क्षमा करें; क्योंकि ऐसा कोई सेवक नहीं है, जिस से कभी कोई अपराध होता ही न हो।'

लक्ष्मण, महात्मा सुग्रीव के ऐसा कहने पर प्रसन्न हो गये और बड़े प्रेम से बोले—"वानर राज! तुम्हारा जो प्रभाव है और तुम्हारे हृदय में जो इतना शुद्धभाव है, इस से तुम वानरराज की उत्तम लक्ष्मी का सदा ही उपयोग करने के अधिकारी हो। परम प्रतापी भगवान् श्रीराम तुम्हारी सहायता से शीघ्र ही अपने शत्रुओं का संहार करेंगे। इस में तनिक भी सन्देह की बात नहीं है। किन्तु वीरवर! अब तुम शीघ्र ही मेरे साथ इस पुरी से बाहर निकलो। तुम्हारे मित्र अपनी पत्नी के अपहरण से बहुत दुखी हैं। उन्हें चल कर सान्त्वना दो।

तदनन्तर लक्ष्मण बानर श्रेष्ठ सुग्रीव को प्रसन्न करते हुए विनीत वचन बोले—'सौम्य! यदि तुम्हारी रुचि हो तो अब हम लोग किष्किन्धा से बाहर निकलें और श्रीराम चन्द्र जी के पास चलें। लक्ष्मण का उत्तम वचन सुन सुग्रीव अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—'अच्छा, ऐसा ही हो। चलिये; चलें; मुझे तो आप की आज्ञा का पालन करना है। शंख और भेरी की ध्वनि के साथ राजा सुग्रीव नगर से बाहर निकले और उस स्थान को चले, जहाँ श्रीराम निवास करते थे। वहां पहुँच कर वे लक्ष्मण सहित पालकी से उतरे और श्रीराम के पास जा हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। उन के अनुयायी वानरों ने भी हाथ जोड़े। बानरों की विशाल सेना को उपस्थित देख श्री रामचन्द्र जी सुग्रीव पर बहुत प्रसन्न हुए। चरणों में मस्तक रख कर पड़े हुए बानर राज को उन्होंने हाथ से पकड़ कर उठाया ओर बड़े आदर तथा प्रेम के साथ उन्हें हृदय से लगाया। तत्पश्चात धर्मात्मा श्रीराम ने उन्हें बैठने की आज्ञा दी और कहा—"बानर श्रेष्ठ! जो धर्म, अर्थ और काम का सदा उचित समय पर सेवन करता है, वही श्रेष्ठ राजा है; किन्तु जो धर्म और अर्थ का त्याग करके केवल काम का ही सेवन करता है, वह वृक्ष की शाखा पर सोये हुए मनुष्य के समान है, गिरने पर ही उस की आंख खुलती है। जो राजा शत्रुओं के वध और मित्रों के संग्रह में संलग्न रह कर योग्य समय पर धर्म, अर्थ और काम का सेवन करता है, वह धर्म फल का भागी होता है। यह हम लोगों के लिये उद्योग का समय आया है। तुम इन बानरों और मन्त्रियों के साथ इस विषय पर विचार करो।

यह सुन कर सुग्रीव ने भगवान् श्री राम से

कहा—"महाबाहो ! मेरी श्री, कीर्ति और सदा से चला आने वाला वानरों का राज्य—ये सब नष्ट हो चुके थे। आप की ही कृपा से ये पुनः मुझे प्राप्त हुए हैं। सुग्रीव के कहने पर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्री रामचन्द्र जी उन्हें दोनों भुजाओं से आलिङ्गन करके बोले—'सखे ! जैसे सहस्रों किरणों से शोभा पाने वाले सूर्यदेव आकाश का अन्धकार दूर कर देते हैं, चन्द्रमा अपनी प्रभा से अँधेरी रात को भी उज्ज्वल कर देते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे समान पुरुषभी यदि अपने मित्रों का विषाद दूर करके उन्हें प्रसन्न कर दें, तो इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मैं जानता हूं, तुम सदा प्रिय बोलने वाले हो, तुम्हारी सहायता पाकर मैं संग्राम में अपने सम्पूर्ण शत्रुओं को जीत लूंगा। तुम्हीं मेरे हितैषी मित्र हो, तुम्हीं मेरी सहायता कर सकते हो। राक्षसाधम रावण ने अपना नाश करने के लिये ही मिथिलेशकुमारी सीता का अपहरण किया है। अब शीघ्रही मैं उसे अपने तीखे बाणों का निशाना बनाऊंगा।'

तदनन्तर वानरराज सुग्रीव श्रीरामचन्द्रजी से बोले—'भगवान् ! अब इन्द्र के समान महाबली बानर-युथपति यहां आकर पड़ाव डाले बैठे हैं। ये सब-के सब इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ हैं। इन में से कई तो दैत्यों और दानवों के समान भयंकर हैं। इनके साथ अनेकों देशों में भ्रमण करने वाले, बलवान् तथा पराक्रमी बानर हैं। अनेकों युद्धों में इन बानर-वीरों की शूर-वीरता का परिचय मिल चुका है। ये बल के भंडार हैं, युद्ध से थकते ही नहीं। अपने पराक्रम के लिये प्रसिद्ध और उद्योग करने में श्रेष्ठ हैं। अनेकों पर्वतों पर निवास करने वाले ये सभी बानर आप के सेवक हैं। इनके अंदर जल और थल दोनों में समान रूप से चलने की शक्तिहै। आप इन के गुरु—स्वामी हैं। ये सब आप की आज्ञा में रह कर आप के हित का साधन करेंगे। इन में आप का मनोरथ सिद्ध करने की शक्ति है।

सुग्रीव को बानर श्रेष्ठ हनुमान् जी के द्वारा ही कार्यसिद्ध होने का दृढ़ विश्वास था, अतः वे अत्यन्त नम्र होकर परम पराक्रमी वायुपुत्र हनुमान् से बोले—कपिश्रेष्ठ ! पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश, देवलोक अथवा जल में भी तुम्हारी गति का अविरोध नहीं देखा जाता। असुर, गन्धर्व, नाग, मनुष्य, देवता, समुद्र तथा पर्वतों सहित सम्पूर्ण लोकों का तुम्हें ज्ञान है। महाकपे सर्वत्र अबाधित गति, वेग, तेज और फुर्ती—ये सभी सदगुण तुम में अपने महा पराक्रमी पिता वायु देव के ही समान हैं। इस भूमण्डल पर कोई भी प्राणी तुम्हारे तेज की समानता करने वाला नहीं है, अतः जिस प्रकार सीता का मिलना हो सके, वह उपाय तुम्ही सोच कर बताओ। हनुमान्। तुम नीति शास्त्र के पण्डित हो। एकमात्र ! तुम्हीं में बल, युद्ध, पराक्रम, देशकाल का अनुसरण तथा नीतिपूर्ण बर्ताव एक साथ देखे जाते हैं।

तत्पश्चात् जाम्बवान् जी ने कहा—'सम्पूर्ण शास्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ तथा वानर जगत् के अद्वितीय वीर हनुमान् ! तुम कैसे एकान्त में आकर चुपचाप बैठ गये? कुछ बोलते क्यों नहीं? तुम तो वानरराज सुग्रीव के समान पराक्रमी हो, तेज और बल से भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण के समान हो। गमन शक्ति में विनताके पुत्र महाबली गरुड़ की भांति विख्यात् हो। उन के पंखों में बल है, वही बल—वही पराक्रम तुम्हारी इन भुजाओं में भी है। तेज और

पुरुषार्थमें तुम किसी तरह उनसे कम नहीं हो। तुम्हारे अंदर समस्त प्राणियों से बढ़ कर बल बुद्धि, तेज और धैर्य हैं, फिर तुम इस कार्य के लिये क्यों नहीं कमर कसते ? इस समय हम लोगोंसे सम्पन्न हों, अतः महापराक्रमी वीर! तुम अपने असीम बल का विस्तार करो। छलांग मारने वालों में तुम सब से श्रेष्ठ हो। यह सारी वानर सेना तुम्हारे पराक्रम को देखना चाहती है।

वानर कटक उमा मैं देखा।
सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
अस कपि एक न सेना माहीं।
राम कुसल जेही पूछी नाहीं॥
यह कछु नहीं प्रभु कइ अधिकाई।
बिस्वरूप व्यापक रघुराई ॥
मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहू।
राम चन्द्र कर काजु सँवारेहु ॥
देह धरे कर यह फलु भाई ॥
भजिअ राम सब काम बिहाई ॥
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी।
जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥
पाछें पवन तनय सिरु नावा।
जानि काज प्रभु निकट बोलावा॥
परसा सीस सरोरुह पानी।
करमुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥
बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु।
कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आएहु॥
हनुमत जन्म सुफल करि माना।
चलेउ हृदयँ धरि कृपानिधाना ॥
यद्यपि प्रभु जानत सब बाता।
राजनीति राखत सुरत्राता ॥

"महारानी सीता रावण की अशोक वाटिका में है, "श्री राम इस रहस्य को भली भाँति जानते थे, पुनरपि राजनीति विशारद श्रीराम ने रावण के गुप्तचरों को भूल भुलैय्यों में डालने के लिये राष्ट्र रक्षा सम्मेलनोंका आडम्बर रचना आरम्भ किया—ग्रुप बना दिये गये। गयन्द तुम दल-बल सहित उत्तर की ओर जाओ,—शरभ तुम सीता जी का पता लगाने पूर्व दिशा की ओर जाओ। गवाक्ष को पश्चिम दिशा की ओर भेज दिया गया—श्रीराम जानते थे सीता जी दक्षिण दिशा में हैं। दक्षिण की ओर विशेष-सेनानायकों को भेजा गया। हनुमान, अङ्गद, नल-नील, जाम्बन्त.. जिस दल को दक्षिण की ओर भेजा गया, उस दल के नेता थे युवराज अङ्गद।

अन्य बातों की इस सम्बन्ध में अवहेलना कर भी दी जाय, तो भी इस प्रसङ्ग में एक बातकी चर्चा आवश्यक है, वह है अपने चचा सुग्रीव के सम्बन्ध में अङ्गद के निजि विचार। जब वानर दल इस सम्बन्ध में बिल्कुल निराश हो गया, दक्षिण प्रदेश का चप्पा-चप्पा छान लेनेके पश्चात् भी सीता जी के सम्बन्ध में कुछ भी जाना न जा सका,--अङ्गद बोले—"राजा सुग्रीव महान् अत्याचारी है, वह तो पहले ही मुझे अपने रास्ते का कण्टक समझता है—उसे तो कोई न कोई बहाना चाहिये, मुझे अपने रास्ते से हटा देने का वह बहाना उसे मिल गया—

"मालूम होता है इस कन्दिरा में घूमते-घूमते हमारा एक मास अवश्य पूरा हो गया परन्तु अभी तक हमें सीता जी नहीं मिलीं। हम वानर राज सुग्रीव की आज्ञा का पालन नहीं कर सके। अब यदि हम किष्किन्धापुरी को लौट चलें तो वह हमें अवश्य मार डालेगा, विशेषतः अपने शत्रु के पुत्र मुझे तो वह इस विषय से अवश्य ही मार डालेगा। मुझ में उस का प्रेम कहाँ हो सकता है? मेरी रक्षा तो श्रीरामचन्द्र जी ने ही की है अब मुझ से श्री रघुनाथ जी का कार्य

नहीं सधा, अतः मेरा वध करने के लिये उस दुरात्मा सुग्रीव को निश्चय ही यह अच्छा बहाना मिल जायगा। वह पापात्मा अपने बड़े भाई की पत्नी को, जो उस की माता के समान है, भोगता है, अतः हे वानर श्रेष्ठ? मैं अब उस के पास तो जाऊँगा नहीं, किसी-न-किसी उपाय से यहीं अपने जीवन का अन्त कर दूँगा।"

इस प्रकार उन्हें नेत्रों में जल भरे देख कर कितने ही प्रमुख वानरों को बड़ा खेद हुआ और उन्होंने आँखोंमें आँसू भर कर युवराज से कहा—"आप इतना शोक क्यों करते हैं, हम सब आप के प्राणों की रक्षा करेंगे और निर्भय होकर इस गुहा में ही रहेंगे।

सब मिलि कहहिं परस्पर बाता।
बिनु सुधि लएँ करब का भ्राता॥
कह अंगद लोचन भरि बारी।
दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई।
उहाँ गएँ मारिहि कपिराई॥
पिता बधे पर मारत मोही।
राखा राम निहोर न ओही॥
पुनि पुनि अंगद कह सब पाहीं।
मरन भयउ कछु संसय नाहीं॥

यह शब्द हनुमान जी के कानों में पड़े। उन्होंने अङ्गद को हृदय से लगाते हुए कहा—अङ्गद! तुम ऐसी-चिन्ता क्यों करते हो, तुम्हें किसी प्रकार की भी चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम तारा के अत्यन्त लाड़िले लाल हो, अतः महाराज सुग्रीव को भी तुम बहुत प्रिय हो, और श्री रामचन्द्र जी की तो तुम में नित्यप्रति लक्ष्मणजी से भी अधिक प्रीति बढ़ती जाती है,

इसके सिवा, बेटा! एक अत्यन्त गुप्त रहस्य और बताता हूं, सावधान होकर सुनो—भगवान् राम कोई साधारण मनुष्य नहीं हैं। वे साक्षात् निर्विकार नारायणदेव हैं। भगवती सीताजी जगन्मोहिनी माया हैं और लक्ष्मणजी त्रिभुवनाधार साक्षात् नागनाथ शेषजी हैं। ये सब ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे राक्षसोंका नाश करनेके लिये माया-मानवरूपसे उत्पन्न हुए हैं। इनमेंसे प्रत्येक त्रिलोकीकी रक्षा करनेमें समर्थ है। हम सब भी वैकुण्ठलोकमें रहनेवाले भगवान् विष्णुके पार्षद हैं। जब परमात्माने अपनी इच्छासे मनुष्यरूप धारण किया तो हम भी उन्हींकी शक्ति से वानररूपसे उत्पन्न हो गये। पूर्वकालमें हमने तपस्याद्वारा श्रीजगदीश्वरकी आराधना की थी; तब उन्हींकी कृपासे हम उनके पार्षद हुए थे। अब भी हम मायाकी प्रेरणासे उन्हींकी सेवा करते हुए अन्तमें फिर वैकुण्ठमें जाकर आनन्द पूर्वक उन्हींके साथ रहेंगे।"

इस प्रकार अङ्गदजीको ढाँढस बँधाकर वे सब पुनः सीताजी की खोज में जुट गये।

इस समय महेन्द्र पर्वत की कन्दरा से निकल कर एक पर्वताकार गृध्र धीरे-धीरे चल कर आया। उन बड़े-बड़े वानरों को प्रायोपवेशन (Hunger Strike) के लिये बैठे देख वह बोला—त्रीटकू पर्वत पर लंका नाम की एक नगरी है, वहाँ श्री सीता जी अशोक वन में राक्षसियों की देख रेख में रहती है। वह लङ्कापरी यहाँ से सौ योजन की दूरी पर है, समुद्र के बीच में हैं। मुझे तो वह और सीता जी यहां से दीख रही हैं। गृध्रही दृष्टि अपार १—आप में से जो कोई सूरमा सौ योजन सागर लाँघ कर जा सकता है वही सीता जी का दर्शन कर सकता है।

मैं देखउँ तुम्ह नाहीं गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयउँ न त करतेउँ कछुक सहाय तुम्हार॥

जयकारा वीर बजरंगी

प्रनवउं पवनकुमार खल बन पावक ज्ञान घन।
जासु हृदय आगार बसहि राम सर चाप धर ॥
अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपति प्रियभक्तं वातजातं नमामि ॥

देवियो एवं भद्र पुरुषो !

कल की कथा में हम सम्पाति जी की चर्चा चला रहे थे— हनुमान् जी श्री राम का गुणानुवाद गाते हुए बोले।

तात राम कहुँ नर जनि मानहु।
निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
हम सब सेवक अति बड़भागी।
संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥
निज इच्छाँ प्रभु अवतरइ सुर महि गोद्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ रहहिं मोच्छ सब त्यागि ॥
एहि बिधि कथा कहहिं बहु भाँती।
गिरी कंदराँ सुनी संपाती ॥

उस समय सम्पाति ने बताया।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका।
तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपबन जँह रहई।
सीता बैठि सोच रत अहई ॥
जो नाघइ सत जोजन सागर।
करइ सो राम काज मति आगर ॥

सम्पाति जी की ऐसी बात सुनकर जामवान् ने हनुमान् जी से कुछ कहा। जामवान् की बात सुनते ही हनुमान् जी खिल-खिला कर हँस पड़े।

जामवंत के बचन सुहाए।
सुनि हनुमंत हृदय अति भाए ॥

आप जानते हैं, क्या कहा जामवंत ने—

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना।
का चुप साधि रहेहु बलवाना ॥
पवन तनय बल पवन समाना।
बुधि बिबेक बिग्यान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं।
जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ॥
रामकाज लगि तव अवतारा।
सुनतहिं भयउ पर्बताकारा ॥
कनक बरन तन तेज बिराजा।
मानहुँ अपर गिरिन्ह कर राजा ॥

एष पर्वतसंकाशो हनुमान् मारुतात्मजः।
तितीर्षति महावेगः समुद्रं वरुणालयम् ॥
रामार्थं वानरार्थं च चिकीर्षन कर्म दुष्करम्।
समुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्तुमिच्छति ॥
यथा राघवनिर्मुक्तः शरः श्वसनविक्रमः।
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि लङ्कां रावण पालिताम् ॥
नहि द्रक्ष्यामि यदि तां लङ्कायां जनकात्मजाम्।
अनेनैव हि वेगेन गमिष्यामि सुरालयम् ॥

यदि वा त्रिदिव सीतां न द्रक्ष्यामि कृतश्रमः।
वद्ध्वा राक्षसराजानमानयिष्यामि रावणम्॥

अब परम धीर महाबली श्रीहनुमान् जी वैदूर्य-मणि और समुद्र के जलके समान हरी-हरी घास पर आनन्द से विचरने लगे। उस समय वे मतवाले सिंह के समान जान पड़ते थे। उन्होंने सूर्य, इन्द्र, पवन, ब्रह्मा तथा अन्य सब देवताओं को भी हाथ जोड़कर समुद्र के उस पार जाने का विचार किया ? फिर पूर्वाभिमुख होकर अपने पिता पवन देव को प्रणाम कर दक्षिण की ओर जाने को उद्यत हुए। उस समय वहां रहने वाले तपस्वी और विद्याधर आकाश में खड़े होकर कहने लगे—'अहा ! ये पर्वत के समान विशालकाय, महान् वेगशाली पवननन्दन हनुमान् जी समुद्र को पार कर रहे हैं। समुद्र के उस पार पहुंचना तो बहुत ही कठिन है, तथापि श्री राम और वानरों की कार्य सिद्धि के लिये दुष्कर कर्म करने की इच्छा से ये समुद्र के दूसरे तटपर पहुंचना चाहते हैं।'

उस समय हनुमान् जी अग्नि के समान जान पड़ते थे। उस समय उन में तेज, बल और पराक्रम—सभी का आवेश हुआ। उन्होंने अपने लम्बे मार्ग पर नजर दौड़ाने के लिये आंखों को ऊपर उठाया और आकाश की ओर देखते हुए प्राणों को हृदय में रोका। इस तरह कूदने की तैयारी करते हुए पैरों को अच्छी तरह जमा कर और कानों को सिकोड़कर उन्होंने अन्य वानरों से इस प्रकार कहा—जिस तरह श्री राम चन्द्र जी का छोड़ा हुआ वाण वायु-वेग से चलता है, उसी प्रकार मैं रावण द्वारा पालित लङ्का पुरी में जाऊंगा। यदि वहां मुझे श्री जानकी जी न मिलीं, तो ऐसे ही वेग से स्वर्ग लोक में जाऊंगा। इस प्रकार परिश्रम करने पर यदि स्वर्ग में भी सीता जी न मिली, तो राक्षस राज रावण को बाँध कर लाऊंगा अथवा रावण के सहित लङ्का को ही उखाड़ कर ले आऊंगा।

ऐसा कहकर वानर प्रवर श्रीहनुमान् जी ने विघ्न-बाधाओं का कोई विचार न कर बड़े जोर से छलाँग मारी।

बार बार रघुबीर संभारी।
तरकेउ पवन तनय बल भारी॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।
एही भांति चलेउ हनुमाना॥

उस समय उन्होंने अपने को साक्षात् गरुड़ के समान ही समझा। जिस समय वे कपि-केसरी समुद्र को पार कर रहे थे, उनकी बगल से निकलती हुई हवा बादल के समान गरजती थी। वे समुद्र के जिस-जिस भाग में जाते थे, वही उनके अङ्ग के वेग से उन्मत्त-सा जान पड़ता था। इस प्रकार महाकपि हनुमान् जी समुद्र को पर्वताकार तरङ्गों को तोड़ते बड़े वेग से आगे बढ़ रहे थे। उनके वेग और मेघों से उत्पन्न हुई हवा ने भीषण गर्जना करने वाले समुद्र को एकदम डावां डोल कर दिया। वे परम तेजस्वी महाकाय कपिवर आलम्वनहीन आकाश में पंख वाले पर्वत की भांति जान पड़ते थे। पक्षि समूहों के उड़ने के मार्ग में गरुड़ की भाँति जान पड़ते हुए वे वायु के समान मेघमाला को अपनी ओर खींच लेते थे। हनुमान् जी के द्वारा खींचे हुए वे सफेद, गुलाबी, नीले और गहरे लाल रंग के महामेघ बड़े ही सुन्दर लगते जान पड़ते थे। उस समय उन कपिश्रेष्ठ को ऐसी तेजी से बढ़ते हुए देखकर देवता, गन्धर्व और

ऋषि मुनि सभी सोच में पड़ गये —इतना कठिनतम कार्य क्या हनुमान् जी कर भी सकेंगे। उन्होंने हनुमान् जी की परीक्षा लेनी चाही पहले मैनाक द्वारा दूसरे सुरसा द्वारा जब हनुमान् जी मैनाक पहुंचे, मैनाक ने हनुमानजी का बड़ा आदर किया—बोला, कुछ देर यहाँ विश्राम कर लो । बजरंग बली बोले —'कार्य महान् है और एक एक क्षण मूल्यवान् है ।

इसलिये यहां बीच में ठहर नहीं सकता ।"

हनूमान तेहि परसा कर पुनि कीन्ह प्रनाम ।
राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहां बिश्राम ॥

ऐसा कह कर महाबली हनुमान् जी ने हँसते हुए मैनाक को हाथ से छू दिया और आकाश में चढ़कर चलने लगे ।

इस समय पर्वत और समुद्र दोनों ने ही बड़े आदर से उनकी ओर देखा, उन का सत्कार किया और यथोचित आशीर्वाद से उन का अभिनन्दन किया ।

हनुमानजी का यह दूसरा दुष्कर कार्य देख कर देवता, सिद्ध और महर्षिगण उनकी प्रशंसा करने लगे, सुवर्णमय मैनाक का भी यह कार्य देखकर वहाँ आये हुए देवता और देवराज इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए । फिर स्वयं शचीपति इन्द्र ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर गद्गद्कण्ठ से कहा— "पर्वतराज मैनाक ! मैं तुमपर प्रसन्न हूं और तुम्हें अभय दान करता हूं, तुम प्रसन्नता से जहाँ इच्छा हो जा सकते हो" इस प्रकार वर पा कर मैनाक जल में स्थित हो गया और हनुमान् जी पुनः समुद्र को लाँघने लगे ।

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
अब्रुवन् सूर्यसंकाशां सुरसां नाग मातरम् ॥
अयं वातात्मजः श्रीमान् प्लवते सागरोपरि ।
हनुमान् नाम तस्य त्वं मुहूर्तं विघ्नमावर ॥
बलमिच्छामहे ज्ञातुं भूयश्चास्य पराक्रमम् ।
त्वां विजेष्यत्युपायेन विषादं वा गमिष्यति ॥

जात पवनसुत देवन्ह देखा ।
जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा ॥
सुरसा नाम अहिन्ह कै माता ।
पठइन्हि आइ कही तेहिं बाता ॥
आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा ।
सुनत बचन कह पवन कुमारा ॥
राम काज करि फिरि मैं आवौं ।
सीता कइ सुधि प्रभुहि सुनावौं ॥
कवनेहुं जतन देइ नहिं जाना ।
ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना ॥

तब देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियोंके समुदाय ने तेजस्विनी नाग-माता सुरसासे कहा 'ये पवननन्दन श्रीमान् हनुमान् जी समुद्र के ऊपर होकर जा रहे हैं। तुम थोड़ी देर के लिये इनके मार्ग में विघ्न डाल दो। तुम पर्वतके समान अत्यन्त भयंकर राक्षसीका रूप धारण करो। उसमें कराल दाढ़ें, पीले नेत्र और आकाशको स्पर्श करने वाला विकट मुंह बनाओ। अभी एक बार और हमलोग इनके बलकी परीक्षा करना चाहते हैं।' देवताओं के सत्कार पूर्वक इस प्रकार कहने पर देवी सुरसा ने राक्षसी का रूप धारण किया और उनके सामने समुद्र में प्रकट हुई। उसका शरीर बड़ा ही विकट, बेडौल और भयावना था। वह समुद्र-पर जाते हुए हनुमान् जी का मार्ग रोककर इस प्रकार कहने लगी—'मैं तुम्हें खाऊंगी, तुम मेरे मुँह में चले जाओ।' सुरसाके इस प्रकार कहने पर हनुमान् जी ने प्रसन्न मुखसे कहा—

"श्रीरामचन्द्रजी अपनेभाई लक्ष्मण और धर्मपत्नी सीताजी के सहित दण्डकारण्य में आये थे। वहां राक्षसों से उनका वैर बंध गया और रावण ने

उनकी यशस्विनी भार्या सीता को हर लिया। अब श्रीरामजी की आज्ञा से उनका दूत बनकर मैं सीताजी के पास जा रहा हूं। अतः मैं सीता जी से और उनके बाद पुण्यात्मा श्रीरामचन्द्र जी से मिल कर तुम्हारे मुख में आ जाऊंगा।' हनुमान्जी के ऐसा कहने पर स्वेच्छानुसार रूप धारण करने वाली सुरसाने कहा, मुझे बीच में डाँककर कोई आगे नहीं जा सकता। इसलिये तुम एक बार मेरे मुंह में घुसकर फिर आगे जा सकते हो। ब्रह्माजीने पहले से ही मुझे ऐसा वर दे रक्खा है।' ऐसा कहकर वह अपना विशाल मुंह खोल कर हनुमान् जी के आगे खड़ी हो गयी। तब हनुमान् जी ने अपना दस योजन का विस्तार कर लिया। यह देखकर सुरसाने भी अपना मुंह बीस योजन फैला दिया। सुरसा के मुंह को इस प्रकार फैला देख तत्क्षण हनुमान् जी अंगुठे के बराबर हो गये और तुरन्त ही उस के मुंह में जाकर बाहर निकल आये। फिर उन्होंने आकाश में खड़े होकर कहा—'दक्षसुते! नमस्कार, मैं तुम्हारे मुंह में प्रवेश कर चुका। लो, तुम्हारा वर भी सत्य हो गया, अब मैं सीता के पास जाता हूं।' तब देवी सुरसा अपने असली रूप में प्रकट होकर बोली—'सौम्य! तुम श्रीराम के कार्य की सिद्धि के लिये आनन्द से जाओ और विदेहनन्दिनी को महात्मा श्रीराम से मिला दो।

देवैः सम्प्रेषिताहं ते बलं जिज्ञासुभिः कपे।
दृष्ट्वा सीतां पुनर्गत्वा एवं द्रक्ष्यसि गच्छ भो॥

मोहि सुरन्ह जेहि लागि पठावा।
बुधि बल मरमु तोर मैं पावा॥
रामु काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान्॥

हनुमान् जी का यह एक और दुष्कर कर्म देख सब प्राणि वाह-वाह कहकर उनकी प्रशंसा करने लगे, "कपिवर! तुमने बडा ही भयंकर कर्म किया है। अब तुम निर्विघ्न अपना अभीष्ट कार्य सिद्ध करो। वानरेन्द्र! जिस व्यक्ति में तुम्हारे समान धैर्य, सूझ, बुद्धि और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उसे अपने कार्य में कभी असफलता नहीं होती।

इस प्रकार अपना कार्य सिद्ध हो जाने से उन आकाश चारी प्राणियों ने श्री हनुमान् जी का बड़ा सत्कार किया और फिर वे आकाश में चढ़कर गरुड़ के समान चलने लगे। चलते चलते उन्हें अनेकों वृक्षों से सुशोभित लङ्का-दीप दीख पड़ा। उसमें चन्दन के वन थे तथा समुद्र-तट पर उगे हुए वृक्ष एवं समुद्र में गिरती हुई नदियों के मुहानों में उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी। फिर उन्होंने सोचा, मेरा यह विशाल शरीर और तीव्र वेग देखकर तो राक्षसों को बड़ा कौतूहल होगा। अतः अपने शरीर को संकुचित करके उन्होंने फिर अपना वास्तविक स्वरूप प्रकट किया। वे समुद्र के दूसरे तट पर, जहां किसी और का पहुंचना असम्भव था, पहुंचकर फल पुष्पादि से समृद्ध लम्ब पर्वत के शिखर पर उतरे।

× × × × ×

वहां पहुंच कर इन्होंने त्रिकूट पर्वत के शिखर पर बसी हुई लंकापुरी देखी। उसे देख कर वे सोचने लगे कि मुझे किस प्रकार इस नगर में जाना चाहिये।

"रात्रौ वेक्ष्यामि लङ्कामिति चिन्तापरो भवत्"

उन्होंने निश्चय किया कि मैं रात्री के समय सूक्ष्म शरीर धारण करके इस नगरी में प्रवेश करूंगा।

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदयँ राखि कोसलपुर राजा॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना।
पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥
मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा।
देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा।
हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा॥
रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ।
लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा॥
मन महुँ तरक करैं कपि लागा।
तेहीं समय बिभीषनु जागा॥
राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा॥
एहि सन हठि करिहउँ पहिचानी।
साधु ते होइ न कारज हानी।
बिप्र रूप धरि बचन सुनाए।
सुनत बिभीषन उठि तहँ आए॥
करि प्रनाम पूँछी कुसलाई।
बिप्र कहहु निज कथा बुझाई॥
की तुम्ह हरि दासन्ह महँ कोई।
मोरें हृदय प्रीति अति होई॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी।
आयहु मोहि करन बड़भागी॥
तब हनुमंत कही सब राम कथा निज नाम।
सुनत जुगल तन पुलक मन मगन सुमिरि गुन ग्राम॥
सुनहु पवनसुत रहनि हमारी।
जिमि दसनन्हि महुँजीभ बिचारी॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा।
करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा॥
तामस तनु कछु साधन नाहीं।
प्रीति न पद सरोज मन माहीं॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता।
बिनु हरि कृपा मिलहिंनहिं संता॥
जौं रघुबीर अनुग्रह कीन्हा।
तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा॥
सुनहु बिभीषन प्रभु कै रीति।
करहिं सदा सेवक पर प्रीति॥
अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुबीर।
कीन्ही कृपा सुमिरि गुण भरे बिलोचन नीर॥
जानतहूँ अस स्वामि बिसारी।
फिरहिं ते काहे न होहिं दुखारी॥
एहिबिधि कहत राम गुन ग्रामा।
पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा॥
पुनि सब कथा बिभीषन कही।
जेहि बिधि जनकसुता तहँ रही॥
तब हनुमंत कहा सुनु भ्राता।
देखी चहउँ जानकी माता॥
जुगुति बिभीषण सकल सुनाई।
चलेउ पवनसुत बिदा कराई॥

विभीषण बड़ी सावधानी के साथ फूँक-फूँक कर कदम आगे बढ़ा रहे थे। लङ्क-सरकार में उन की बहुत बड़ी पोज़ीशन थी He was the working head of Ravanian State—ऐसी अवस्था में, यदि हनुमान् जी के प्रति उन का सहयोग प्रत्यक्ष रूप से प्रकट हो जाता तो बड़ी कठिनाई उन के सामने उपस्थित हो जाती। उन के लिये यही समुचित समय आने तक उन के लिये यही उचित था कि पर्दे के पीछे ही रहते। अतः स्वयं तो हनुमान् जी को अपने साथ ले कर वे अशोक वाटिका में नहीं गये, तथापि रासता अवश्य बता दिया।

अशोक वाटिका के मुख्य द्वार पर पहुँच महावीर ने अपने प्रभु का सुमिरण किया और अपने कार्यों की सफलता के लिये प्रार्थना की।

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय
देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।

नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो
नमोऽस्तु चन्द्राग्निमरुदगणेभ्यः ।।

"लक्ष्मण सहित श्री राम को नमस्कार है। जनकनन्दिनी सीता देवी को भी नमस्कार है। रुद्र, इन्द्र, यम और वायु देवता को नमस्कार है तथा चन्द्रमा, अग्नि एवं मरुद्गणों को भी नमस्कार हैं। इस प्रकार उन सब को तथा सुग्रीव को भी नमस्कार करके पवन कुमार हनुमान् जो सम्पूर्ण दिशाओं की ओर दृष्टिपात करके अशोक वाटिका में जाने को उद्यत हुए। स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा, अन्य देवगण तपोनिष्ठ महर्षि, अग्नि देव, वायु तथा वज्रधारी इन्द्र मुझे सफलता प्रदान करं। पाशधारी वरुण, सोम, आदित्य, महात्मा अश्विनी कुमार, समस्त मरुद्गण, सम्पूर्ण भूत और भूतों के अधिपति और भी जो मार्ग में दिखने वाले तथा न दिखने वाले देवता हैं, वे सब मुझे सिद्धि प्रदान करें। मैंने श्री राम चन्द्र जो के कार्य को सिद्धि तथा रावण से अदृश्य रहने के लिये अपने शरीर को संकुचित करके छोटा बना लिया मुझे इस कार्य में ऋषियां सहित समस्त देवता सिद्धि प्रदान करें।"

तत्पश्चात् वीरवर मारुती अशोक वाटिका में प्रविष्ट हुए। अशोक वाटिका का वर्णन करते हुए आदि कवि लिखते हैं—

वह वाटिका कल्पवृक्षों से पूर्ण थी, उसकी बावड़ियों का सीढ़ियाँ रत्नजटित थीं, उसमें नाना प्रकार के पक्षी और मृगगण विचर रहे थे सुवर्णनिर्मित महलोंकी अपूर्व शोभा थी। वह वाटिका फलों के भार से झुकी हुई शाखाओं वाले वृक्षों से घिरी हुई थी। वहाँ प्रत्येक वृक्ष के नीचे जानकी जी को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते पवननन्दन हनुमान् जी ने एक अति सुन्दर देवालय देखा। वह इतना ऊँचा था कि उसके शिखर बादलों से टकराते थे। सैकड़ों मणिमय स्तम्भों से युक्त उस देवालय को देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उससे कुछ और आगे बढ़े तो उन्होंने एक अत्यन्त घने पत्तों वाला शिंशपा वृक्ष देखा उसके नीचे धूप कभी नहीं जाती थी और वह सुनहरे पक्षियों से आकीर्ण था। वीरवर हनुमान् जी ने देखा कि उस वृक्षके नीचे श्री जानकी जी पृथ्वी स्थित देवता के समान राक्षसियों से घिरी हुई बैठी हैं। उनके बालों की जुड़कर एक वेणी हो गयी है, वे अत्यन्त दुर्बल और दीन अवस्था में हैं तथा मैले-कुचैले वस्त्र धारण किये हुए हैं। ऐसी अवस्था में पृथ्वी पर पड़ी हुई वे अतिशोक-पूर्वक निरन्तर राम-राम कह रहीहैं। उन्हें अपना कोई रक्षक भी दखायी नहीं देता और वे उपवास करने से अति दुर्बल हो गयी हैं।

कपिश्रेष्ठ श्री हनुमान् जी शाखाओं के पत्तों में छिपकर उन्हें देखने लगे और मन-ही-मन कहने लगे 'आज जानकी जी को देखकर कृतार्थ हो गया, कृतार्थ हो गया। अहा! परमात्मा राम का कार्य मेरे ही द्वारा सिद्ध हुआ।'

निज पद नयन दिएँ मन राम पद कमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन ।।

उस समय हनुमान् जी सोचने लगे,—सीता जी से मुझे बात अवश्य करनी चाहिये—केवल दर्शन ही तो काफी नहीं, राघवेन्द्र सरकार यदि पूछेंगे, जानकी जी ने क्या कहा, तो उन्हें क्या उत्तर दूँगा, परन्तु इन से सम्भाषण करूं किस भाषा में? लङ्का अन्तराष्ट्रीय राजधानी है। इस में प्रत्येक देश के लोग बसते हैं, यदि मैं संस्कृत बोलता हूँ तो संस्कृत तो रावण भी बोल सकता है अतः मैं स्वदेश की भाषा में ही सीता

जी से बात करूंगा'—परन्तु बात-चीत की रूप रेखा कुछ इस प्रकार बाँधी जाय कि वार्तालाप का श्री गणेश स्वयं सीता जी की ओर से हो ।

यदि वाचं प्रदास्यामि विजातिरिवसंस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत् ।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता ॥
इक्ष्वाकूणां वरिष्ठस्य रामस्य विदितात्मनः ।
शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन ॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन गिरम् ।
श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥

सीता मन बिचार कर नाना ।
मधुर बचन बोलेउ हनुमाना ॥
रामचन्द्र गुन बरनैं लागा ।
सुनतहिं सीता कर दुख भागा ॥
लागी सुनैं श्रवन मन लाई ।
आदिहु तें सब कथा सुनाई ॥
श्रवनामृत जेहिं कथा सुहाई ।
कही सो प्रगट होति किन भाई ॥

इस प्रकार बहुत सी बातें सोच विचार कर महामति हनुमान् जी ने सीता को सुनाते हुए मधुर वाणी में इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'राजा दशरथ नाम से प्रसिद्ध एक पुण्यात्मा राजा हो गये हैं। वे अहिंसा धर्म के अनुरागी, दयालु, सत्यपराक्रमी और इक्ष्वाकु वंश की शोभा बढ़ाने वाले थे। इस भूमण्डल में चारों ओर उनकी बड़ी ख्याति थी। उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्रीराम है। वे पिता के लाडले, धनुर्धारियों में श्रेष्ठ तथा शस्त्र विद्या के विशेषज्ञ हैं। अपने सदाचार के, स्वजनों के, इस जीव जगत् के तथा धर्म के भी रक्षक हैं। वीरवर श्रीराम चन्द्र जी अपने सत्यप्रतिज्ञ बूढ़े पिता महाराज दशरथ के वचन की रक्षा के लिये पत्नी और भाई के साथ वन में आये थे, वहाँ रहकर उन्होंने अनेकों राक्षसों का वध किया। जनस्थान का विध्वंस और खर-दूषण का वध सुनकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ और वह माया से मृग बने हुए मारीच के द्वारा श्री राम चन्द्रजी को भुलावा देकर उनकी पत्नी को हर ले गया। भगवान् श्रीराम परम साध्वी सीता देवी की खोज करते हुए, मातङ्ग बन में आकर सुग्रीव नामक वानर से मिले और उन्हें अपना मित्र बना लिया। तत्पश्चात् बाली का वध करके उन्होंने वानरों का राज्य सुग्रीव को दे दिया। वानरराज सुग्रीव की आज्ञा से जानकी देवी का पता लगाने के लिये चारों दिशाओं में हजारों वानर निकले हैं। वे सब के सब मनमाना रूप धारण कर सकते हैं। उन्हीं में से एक मैं भी हूँ। सम्पाति के कहने से-बड़े बड़े नेत्रों वाली भगवती सीता का दर्शन करने के लिये सौ योजन चौड़े समुद्र को लाँघ कर यहाँ आया हूँ। मैंने रघुनाथ जी के मुख से जानकी का जैसा रूप, जैसा रंग और जैसी शोभा सुनी थी, वैसी ही इन्हें पाया है।' इतना कहकर वानर श्रेष्ठ हनुमान् जी चुप हो गये।

दुःख से पीड़ित सीता को वानरश्रेष्ठ हनुमान् जी ने सान्त्वना देते हुए कहा—

तमरिघ्नं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।
लक्ष्मणं च धनुष्पाणिं लङ्काद्वारमुपागतम् ॥
रुद मा देवि शोकेन मा भूत् ते मनसो भयम् ।
शचीव भर्त्रा शक्रेण सङ्गमेष्यसि शोभने ॥

निशम्य सीता वचनं कपेश्च
दिशश्च सर्वाः प्रदिशश्च वीक्ष्य
स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥

कपि के वचन सुनकर सीता जी को बड़ी प्रसन्नता हुई। वे सम्पूर्ण वृत्तियों से भगवान् श्रीराम का स्मरण करती हुई समस्त दिशाओं में दृष्टि दौड़ाने लगीं।

उन्होंने ऊपर-नीचे तथा इधर-उधर दृष्टि-

पात करके उन अचिन्त्य बुद्धिवाले पवन पुत्र हनुमान् जी को, जो वानरराज सुग्रीव के मन्त्री थे, उदयाचल पर विराज-मान सूर्य के समान देखा।

विदेह नन्दिनी का ध्यान अपनी ओर आकर्षित देख अपने प्रयास को सफल समझ हनुमन्त लाल बोले,—

अहं रामस्य संदेशाद् देवि दूतस्तवागतः।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥
वानरोऽहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः।
रामनामाँकितं चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥
आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वैश्रवणो यथा ॥
अचिराद् रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान्।
क्रोधप्रमुक्तैरिषुभि र्ज्वलद्भिरिव पावकैः ॥
तेनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः।
त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥
प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम्।
कृत्वा मूर्ध्नि पदन्यास रावणस्य दुरात्मनः ॥
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम्।
कपि करि हृदयँ विचार दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अँगार दीन्हि हरषि उठि कर गहेउ ॥

रामदूत मैं मातु जानकी।
सत्य सपथ करुनानिधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनि।
दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी ॥

नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि।
विशङ्का त्यज्यतामेषा श्रद्धत्स्व वदतो मम ॥
कपि के वचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास।
जाना मन क्रम बचन यह कृपा सिन्धु कर दास ॥

देखि परम बिरहाकुल सीता।
बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥
मातु कुसल प्रभु अनुज समेता।
तव दुख दुखी सुकृपा निकेता ॥

उस समय महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान् जी बोले— देवि! यह राम-नामसे अङ्कित मुन्दरी लेकर देखिए। आपको विश्वास दिलाने के लिये ही मैं इसे लेता आया हूँ। महात्मा श्रीरामचन्द्र जी ने स्वयं ही यह अंगूठी मेरे हाथ में दी थी' स्वामी के हाथ का यह आभूषण लेकर सीता उसे देखने लगीं। उस समय उन्हें इतनी खुशी हुई, मानो स्वयं भगवान् श्रीराम ही मिल गये हों। उनका मनोहर मुख प्रसन्नता से खिल उठा और वे महाकपि हनुमान्जी का आदर करके उनकी प्रशंसा करने लगीं— 'बानरश्रेष्ठ! तुम बड़े पराक्रमी, शक्तिमान् और बुद्धिमान् हो; क्योंकि तुम ने अकेले ही इस राक्षसपुरी में पैर रखा है। तुम्हारा पौरुष प्रशंसा के योग्य है; मैं तुम्हें कोई साधारण बानर नहीं समझती; क्योंकि तुम्हें रावण जैसे राक्षस से भी न भय है न घबराहट। सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्मात्मा भगवान् श्रीराम और महातेजस्वी लक्ष्मण कुशल से हैं; यह सुनकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। वे दोनों भाई देवताओं को भी दण्ड देने की शक्ति रखते हैं। अच्छा अब यह बताओ—पुरुषोत्तम श्रीराम चन्द्र जी के मनमें तो कोई व्यथा नहीं है? वे सन्तप्त तो नहीं होते? उन्हें आगे जो कुछ करना है, उसे वे करते हैं या नहीं? क्या रघुनाथजी मुझे इस सङ्कट से छुटकारा करायेंगे? क्या उन्हें माता कोसल्या, सुमित्रा तथा भरत का कुशल-समाचार मिलता रहता है? वे हृदय में धैर्य धारण किये हुए हैं? दूत! मैं तभी तक जीवित रहना चाहती हूँ, जहां तक यहां आने के संबन्ध में अपने प्रियतम की प्रवृत्ति सुन रही हूँ।' भगवती सीता बानरश्रेष्ठ हनुमान् के प्रति इस प्रकार महान् अर्थ से युक्त मधुर वचन

कहकर श्रीरामचन्द्रजी से संबन्ध रखने वाली उनकी मनोहर वाणी सुनने के लिये चुप हो गयीं।

कह कपि हृदयँ धीर धरु माता।
सुमिरु राम सेवक सुखदाता॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई।
सुनि मम बचन तजहु कदराई॥
निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु जरे निसाचर जानु॥

हनुमान्‌जीके धर्म और अर्थ से युक्त वचन सुनकर चन्द्रमुखी सीता कहने लगीं—'वानर-श्रेष्ठ! बताओ, राक्षसोंसहित रावणका वध और लङ्का का विध्वंस करके मेरे पतिदेव मुझसे कब मिलेंगे? उनसे जाकर कहना वे शीघ्रता करें। यह वर्ष जब तक पूरा नहीं हो जाता, तभी तक मेरा जीवन शेष है। यह दसवाँ महीना चल रहा है, वर्ष पूरा होने में अब दो ही मास बाकी हैं। निर्दयी रावण ने यही मेरे जीवन की अवधि निश्चित की है। उस के भाई विभीषण ने मुझे लौटा देने के लिये उससे बहुत अनुनय-विनय की है; परन्तु वह उनकी बात नहीं मानता। मेरा लौटाना रावण को अच्छा नहीं लगता, क्योंकि वह कालके अधीन हो रहा है। मौत उसे खोजती फिरती है।

कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम्।
महीं दहति कोपेन युगांताग्निरिवोत्थितः॥
अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः॥

कपि श्रेष्ठ! देश में जाकर प्रभु से यह कहना आप का बल पराक्रम और उत्साह महान् है। आप असीम, अजेय और गम्भीरता में समुद्र के समान हैं; सागरपर्यन्त समूची पृथ्वी के स्वामी हैं। इस प्रकार अस्त्रवेत्ताओं में श्रेष्ठ, बलवान् और शूरवीर होते हुए भी आप राक्षसों पर अपने अस्त्रों का प्रयोग क्यों नहीं करते?' वायुनन्दन! नाग, गन्धर्व, देवता—कोई भी युद्ध में श्रीरामचन्द्रजी का वेग नहीं सह सकते। वे महान् पराक्रमी हैं। यदि मेरे लिये उनके हृदय में कुछ व्याकुलता है, तो वे अपने तीखे सायकों से इन राक्षसों का संहार क्यों नहीं कर डालते?

विदेहकुमारी सीताने आँसू बहाते हुए जब ये करुणापूर्ण वचन कहे तब इन्हें सुनकर महा-तेजस्वी वानर-यूथपति हनुमान् ने कहा—'देवि! मैं सत्य की शपथ खा कर कहता हूं कि श्रीराम-चन्द्रजी आपके विरहसे बहुत दुखी हैं और उनके दुखी होने से लक्ष्मण के हृदय में भी बड़ा सन्ताप होता है। किसी तरह आपका पता लग गया, अब शोक करने का अवसर नहीं है। आप शीघ्र ही अपने दुखों का अन्त हुआ देखेंगी। वे राज-कुमार बड़े बलवान् हैं तथा आपको देखने के लिये उनके मनमें विशेष उत्साह है; अतः वे समस्त राक्षस जगत् को भस्म कर डालेंगे। रघुनाथजी क्रूर रावण को उसके बन्धु-बान्धवों-सहित मार कर आप को अपनी पुरी में ले जायँगे।

'देवि! वानर और भालुओं की सेना के स्वामी सुग्रीव सत्यवादी हैं, वे आपके उद्धार के लिये दृढ़ निश्चय कर चुके हैं। वे राक्षसों के संहार में समर्थ हैं और वानरों की भारी सेना लेकर शीघ्र ही लंका पर चढ़ाई करेंगे। आप समुद्र लांघने की चिन्ता न करें। सुग्रीव के पास ऐसे-ऐसे वानर हैं, जिनकी ऊपर, नीचे तथा इधर-उधर—कहीं भी गति नहीं रुकती। वे बड़े से बड़े कार्य आ पड़ने पर भी कभी हिम्मत नहीं हारते। उनका तेज महान् है, उन्होंने अत्यन्त

उत्साह से पूर्ण होकर वायु के पथ का अनुसरण करते हुए समुद्र और पर्वतों सहित इस पृथ्वी की कई बार प्रदक्षिणा की है। सुग्रीव की सेना में मेरे समान तथा मुझ से भी बढ़कर पराक्रमी वानर मौजूद हैं। जब मैं ही यहां आ गया, तब अन्य महाबली वीरों के आने में क्या सन्देह है। वानर-यूथपति एक ही छलांग में लंका में पहुंच जायेंगे। उदयाकालीन सूर्य और चन्द्रमा की भांति शोभा पाने वाले वे दोनों नरश्रेष्ठ श्रीराम और लक्ष्मण मेरी पीठ पर बैठ कर विशाल सेना के साथ आपके पास आ पहुंचेंगे और अपने वाणों से लङ्का का विध्वंस कर डालेंगे। रघुनाथ जी रावण को उसके सैनिकों सहित मारकर आपको साथ ले अपनी पुरी में पदार्पण करेंगे। आप धैर्य धारण करें। अग्नि के समान तेजस्वी श्रीरामचन्द्रजी शीघ्र ही आपको दर्शन देंगे। राक्षसों के इस भयंकर देश में आपको अधिक दिनों तक नहीं रहना पड़ेगा। आपके प्रियतम के आने में बहुत विलम्ब नहीं है। जब तक मेरी उनसे भेंट न हो, तब तक के लिये आप धैर्य धारण करें।

अबहि मातु मैं जाऊं लवाई।
प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा।
कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा॥
निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं।
तिहुं पुर नारदादि जसु गैहहिं॥

उस समय जानकी जी प्रसन्न हो पवन कुमार से बोली—

एवं बहुविधं वाच्यो रामो दाशरथिस्त्वया।
यथा मां प्राप्नुयाच्छीघ्रं हत्वा रावणमाहवे॥

पवन कुमार! तुम दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम से अनेक प्रकार से ऐसी बातें कहना, जिससे वे समराङ्गण में शीघ्र ही रावण का वध करके मुझे प्राप्त कर लें।

बलैः समग्रैर्यदि मां हत्वा रावणमाहवे।
विजयी स्वपुरीं रामो नयेत् तत् स्याद् यशस्करम्॥

यदि श्रीराम अपनी सम्पूर्ण सेना के साथ यहां आकर युद्ध में रावण को मार डालें और विजयी होकर मुझे अपनी पुरी को ले चलें तो उनके लिये यश की वृद्धि करने वाला होगा।

सीता जी को आश्वासन देते हुए बजरंग बली बोले—

हत्वा च समरे रौद्रं रावणं सहबान्धवम्।
राघवस्त्वां वरारोहे स्वपुरीं नयिता ध्रुवम्॥

वरारोहे! समरांगण में रौद्र राक्षस रावण को बन्धु बांधवों सहित मारकर रघुनाथ जी अवश्य ही आपको अपनी पुरी में ले जायेंगे।

समाश्वसिहि भद्रं ते भव त्वं कालकाङ्क्षिणी।
क्षिप्रं द्रक्ष्यसि रामेण निहतं रावणं रणे॥

इस लिये आप धैर्य धारण करें। आप का भला हो। आप समय की प्रतीक्षा करें। रावण शीघ्र ही रणभूमि में श्रीराम के हाथ से मारा जायगा, यह आप अपनी आंखों देखेंगी।

जानकी जी से उत्तम वचनों के द्वारा आदर पाकर हनुमान्जी जब जाने लगे तो उस स्थान से दूसरी जगह हटकर उन्होंने विचार किया—'मैंने सीताजी का दर्शन तो कर लिया, अब थोड़ा-सा कार्य—शत्रु के बल का पता लगाना बाकी रह गया है। इसके लिये चार उपाय हैं—साम, दान, भेद और दण्ड। यहां साम, दान, भेद—इन तीन उपायों को छोड़कर केवल दण्डरूप चौथे उपाय का प्रयोग ही उपयोगी दिखायी देता है। राक्षसों के प्रति साम नीति का प्रयोग करने से कोई लाभ नहीं होता। इनके पास धन की मात्रा भी अधिक है। अतः इन्हें दान देने का भी कोई उपयोग नहीं है। इसके सिवा ये बल के अभिमानों में चूर रहते हैं,

अतः इनके प्रति यह नीति भी काम नहीं दे सकती। ऐसी दशा में मुझे यहां पराक्रम दिखाना ही उचित जान पड़ता है। इस कार्य की सिद्धि के लिये पराक्रम के सिवा और किसी उपाय का अवलम्बन ठीक नहीं जंचता। यदि राक्षसों के मुख्य मुख्य वीर युद्ध में मारे जायं, तो ये लोग कुछ नम्र हो सकते हैं। जो पुरुष अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए अनेकों उपाय जानता हो, वही कार्य-साधन में समर्थ हो सकता है। यदि इसी यात्रा में इस बात को ठीक-ठीक समझ लूं कि अपने तथा शत्रु पक्ष में युद्ध होने पर कौन प्रबल सिद्ध होगा और कौन निर्बल, तत्पश्चात् भविष्य के कार्य का भी निश्चय करके यदि सुग्रीव के पास चलूं तो मेरे द्वारा स्वामी की आज्ञा का पूर्ण रूप से पालन हुआ समझा जायगा। आज राक्षसों के साथ बलपूर्वक युद्ध करने का अवसर मुझे सहज ही कैसे प्राप्त होगा? तथा दशमुख रावण अपनी प्रबल सेना को मेरे साथ युद्ध करने के लिए किस प्रकार ला सकेगा? उस युद्ध में मन्त्री, सेना और सहायकों-सहित रावण का सामना करके मैं उसके हार्दिक अभिप्राय तथा सैनिक शक्ति का अनायास ही पता लगा लूंगा। उसके बाद यहां से जाऊंगा। जैसे आग सूखे वन को भस्म कर डालती है, उसी प्रकार मैं भी आज इस उपवन का विध्वंस कर डालूंगा।

यह सोचकर भयानक पुरुषार्थ प्रकट करने वाले पवनकुमार हनुमान्जी क्रोध से भर गये और वायु के समान बड़े वेग से वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर फैंकने लगे। उधर, पक्षियों के कोलाहल और वृक्षों के टूटने की आवाज सुनकर प्रमदा वन में सोयी हुई विकराल मुखवाली राक्षसियों की नींद टूट गयी। उन्होंने उठने पर समूचे वन को उजड़ा हुआ पाया और उस वीर वानर को भी देखा। महाबली, महान् साहसी एवं महाबाहु हनुमान् जी ने जब उन राक्षसियों को देखा तब उन्हें डराने वाला विशाल रूप धारण कर लिया। पर्वत के समान बड़े शरीर वाले महाबली वानर को देख ये भयानक मुख वाली राक्षसियां दौड़कर रावण के पास गयीं और बोलीं—'राजन्! अशोक वाटिका में एक भयंकर शरीर वाला वानर आया है। उसने सीता से बातचीत की है। वह महान् पराक्रमी जान पड़ता है।

देव कश्चिन्महासत्वो वानराकृतिदेहभृत्।
सीतया सह सम्भाष्य ह्यशोकवनिकां क्षणात्॥
उत्पाट्य चैत्यप्रासादं बभञ्जामितविक्रमः।
प्रासादरक्षिणः सर्वान्हत्वा तत्रैव तस्थिवान्॥

सम्भव है, वह इन्द्र का, कुबेर का दूत हो अथवा राम ने ही सीता की खोज के लिये उसे भेजा हो। अद्भुत रूप धारण करने वाले उस वानर ने आपके मनोहर प्रमदा वन को, जिसमें नाना प्रकार के पशु पक्षी रहा करते थे, उजाड़ दिया। उसमें कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जिस को उसने नष्ट न कर डाला हो। केवल वह स्थान जहां जानकी देवी रहती हैं, उसने बचा दिया है। मनोहर पत्तों से भरा हुआ केवल अशोक का वृक्ष, जिसके नीचे सीता का निवास है, नष्ट होने से बचा है। हम समझती हैं, जानकी की रक्षा के लिये उसने जान बूझकर उस स्थान की रक्षा की है। उस उग्र रूपधारी वानर को आप कठोर दण्ड की आज्ञा दें। राक्षसराज! आपने जिनको अपने हृदय में स्थान दिया है, उन सीता देवी से कौन बातें कर सकता है। जिसे अपने प्राणों का मोह नहीं, वही ऐसा साहस कर सकता है।'

नाथ एक आवा कपि भारी।
तेहि असोक बाटिका उजारी॥

रावण ने अपने योधाओं को आदेश दिया, उस वानर को पकड़ लाओ—'बड़े बड़े सूरमा गये परन्तु हनुमान्‌जी के सम्मुख टिक न सके। तदनन्तर राक्षसों के स्वामी रावण ने जब सुना कि हनुमान् के द्वारा अक्षकुमार भी मारा गया, तब वह क्रोध से आग बबूला हो उठा और उसने इन्द्रजित् को आज्ञा दी– 'बेटा ! तुमने ब्रह्माजी की आराधना से अनेकों प्रकार के अस्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया है। इन्द्र के आश्रय में रहने वाले देवता भी युद्ध में तुम्हारे अस्त्र-बल के सामने नहीं ठहर सके हैं। तीनों लोकों में तुम्हारे सिवा कोई भी ऐसा नहीं है, जो युद्ध में थकता न हो। तुम देश-काल का ज्ञान रखने वालों में श्रेष्ठ और परम बुद्धिमान् हो। युद्ध में कोई भी कार्य तुम्हारे लिये असम्भव नहीं है। त्रिलोकी में एक भी ऐसा वीर नहीं है, जो तम्हारी शारीरिक शक्ति और अस्त्र बल को न जानता हो। तुम्हारा तपोबल, अस्त्र बल और पराक्रम मेरे ही समान हैं। देखो, किङ्कर नाम वाले समस्त राक्षस मारे गये। जम्बुमाली भी जीवित न रह सका। सात मन्त्रिकुमार और पांच सेनापति भी घोड़े, हाथी और रथों से युक्त बड़ी भारी सेनाओं के साथ काल के गाल में चले गये और आज अक्षकुमार भी अपने प्राणों से हाथ धो बैठा। इस प्रकार अपनी विशाल सेना का संहार देखकर वानर के प्रभाव और पराक्रम को समझ लो, फिर अपनी शक्ति का भी विचार करके तुम अपने बल के अनुसार उद्योग करो। जिस किसी उपाय से शत्रु की शक्ति क्षीण हो और वह काबु में आ सके, वही करो, क्योंकि तुम अस्त्रधारी वीरों में सब से श्रेष्ठ हो। वायु पुत्र हनुमान् के बल की कोई सीमा नहीं है। वह अग्नि के समान तेजस्वी है, उसे अस्त्र आदि साधनों से मारना असम्भव जान पड़ता है। अतः सावधान होकर जाओ और ऐसा पराक्रम करके दिखाओ, जो खाली न जाय।'

अपने पिता राक्षसराज रावण के वचन को सुन कर देवताओं के समान प्रभावशाली वीर मेघनाद ने युद्ध के लिये निश्चित विचार करके अपने पिता रावण की परिक्रमा की। इन्द्रजीत युद्ध की कला में प्रवीण था। वह धनुष और तीखे अग्रभाग वाले सायकों को लेकर हनुमान जी को लक्ष्य करके आगे बढ़ा।

चला इन्द्रजित अतुलित जोधा।
बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा।
कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥
अति बिसाल तरु एक उपारा।
बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा॥
रहे महाभट ताके संगा।
गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा॥

ब्रह्म अस्त्र तेहिं सांधा कपि मन कीन्ह विचार।
जौं न ब्रह्मसर मानउँ महिमा मिटइ अपार॥

मेघनाद बहुत बड़ा योधा था। उसने इन्द्र पर विजय प्राप्त कर इन्द्रजीत की उपाधि को प्राप्त किया था। वह रावण की सेना का प्रधान सेनापति था—मेघनाद के साथ बजरंगबली के युद्ध का वर्णन करते हुए कवि लिखता है—"तब वीर्यवान् हनुमान् जी भयंकर सिंह नाद सुन हाथ में स्तम्भ लिये गरुड़ के समान आकाश में उड़ गये। उन्हें आकाश में उड़ते देख इन्द्रजीत ने आठ बाणों से उनके हृदय और दोनों चरणों को बींध दिया। तब महाबली हनुमान् जी ने भी अति प्रसन्नता से स्तम्भ उठा कर एक क्षण में ही उसके सारथी को मार डाला और घोड़ों के सहित उसके रथ को चूर्ण कर दिया। तब महाबली मेघनाद ने दूसरे रथ पर चढ़ कर तुरन्त ही वानरश्रेष्ठ हनुमान् जी

को ब्रह्म पाश से बांध लिया ।

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित ।
निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ।।

"जिन के नाम का निरन्तर जप करने वाले भक्तजन एक क्षण में ही अज्ञानकृत बन्धन को काट कर करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान उनके परम कल्याणमय पद को तत्काल प्राप्त कर लेते हैं, उन्हीं भगवान् राम के चरण कमलों का सदा अपने हृदय कमल में धारण करने से हनुमान जी सदा ही समस्त बन्धनों से छूटे हुए हैं। उन का ब्रह्मपाश अथवा और किसी बन्धन से क्या हो सकता है ।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी ।
भव बंधन काटहिं नर ग्यानी ।।
तासु दूत कि बंध तरु आवा ।
प्रभु कारज लगि कपिहिं बँधावा ।।

तब इन्द्रजित उन्हें सभामें स्थित रावण के सामने ले गया और बोला—"मैं इस वानर को ब्रह्मा के वर के प्रभाव से बाँध लाया हूँ; इसी ने हमारे बड़े-बड़े वीर राक्षस मारे हैं । महाराज ! मन्त्रियों के साथ विचार कर इस के लिये जैसा उचित समझें वैसा विधान करें। यह कोई साधारण वानर नहीं है ।"

रावण स्फटिक मणि के बने रत्नजटित सुन्दर सिंहासन पर विराजमान था। उसके चारों ओर सुन्दर श्रृङ्गार से सजी हुई युवती स्त्रियां हाथ में चँवर लिये खड़ी थीं और निकट से उसकी सेवा कर रहीं थीं । दुर्धर, प्रहस्त, महापार्श्व और निकुम्भ—ये चार मन्त्री, जो मन्त्र-तत्त्व के ज्ञाता थे, उसे घेरकर बैठे हुए थे । यद्यपि भयंकर राक्षस हनुमान् जी को पीड़ा दे रहे थे, तो भी उन्होंने विस्मित होकर राक्षसराज को बड़े गौर से देखा। फिर उसके तेज से मोहित होकर मन-ही-मन सोचने लगे—'अहो ! इसका रूप और धैर्य अदभुत है । इसका साहस अनोखा और कान्ति निराली है। इस राक्षस में सभी राजोचित लक्षणों का होना महान् आश्चर्य की बात है। यदि इसमें अधर्म की प्रबलता न होती तो यह देवलोक और इन्द्र का भी रक्षक होता। किन्तु इसके कर्म इतने कठोर, निर्दयतापूर्ण और निन्दित हैं कि देवता और दानवोंसहित सम्पूर्ण जगत के प्राणी इस से डरते रहते हैं।' इस तरह अमित तेजस्वी राक्षसराज के प्रभाव को देख कर परम बुद्धिमान् कपिश्रेष्ठ हनुमान् जी नाना प्रकार की चिन्ताएं करने लगे।

भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनूमान्राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिंतयामास तेजसा तस्य मोहितः ।।
अहो रूपमहो धैर्यमहो सत्त्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्वलक्षणयुक्तता ।।
यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ।।

समस्त लोकों को रुलाने वाला महाबाहु रावण भूरी आंखोंवाले हनुमान्जी को सामने खड़ा देख महान् कोप से भर गया। साथ ही तरह-तरह की शङ्काओं से उसका दिल बैठ गया, अतः वह उस तेजस्वी वानरराज के विषय में विचार करने लगा'—"क्या इस वानर के रूप में साक्षात् भगवान् नन्दी यहां पधारे हुए हैं, जिन्होंने पूर्वकाल में कैलास पर्वत पर जबकि मैं ने उनका उपहास किया था, मुझे शाप दे दिया था। वे ही तो वानर का रूपधारण करके यहाँ नहीं आये हैं ? इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए राजा रावण ने क्रोध से लाल आँखें करके मन्त्रिवर प्रहस्त से समयानकूल गम्भीर एवं अर्थयुक्त बात कही—

प्रहस्त पृच्छैनमसौ किमागतः
किमत्र कार्यं कुत एव वानरः ।
वनं किमर्थं सकलं विनाशितं
हताः किमर्थं मम राक्षसाः बलात् ॥

अमात्य ! इस दुरात्मा से पूछो तो सही, यह कहाँ से आया है ? इसके आने का कारण क्या है ?प्रमदावनको उजाड़ने तथा राक्षसों को मारने में इसका उद्देश्य क्या था ? मेरी दुर्जय पुरी में जो इसका आना हुआ है इस में इसका क्या प्रयोजन है ? अथवा इसने जो राक्षसों के साथ युद्ध छेड़ दिया है, उस में इस का क्या उद्देश्य है ? यह सारी बातें इस दुर्बुद्धि बानर से पूछो ।"

ततो प्रहस्तो हनुमन्तमादरात्
पप्रच्छकेन प्रहितोऽसि वानर ।
भयं च ते मास्तु विमोक्ष्यसे मया
सत्यं वदस्वाखिल राजसन्निधौ ॥

तब प्रहस्त ने हनुमान्जी से आदर पूर्वक पूछा—"वानर ! तुम्हें किसने भेजा है ? तुम डरो मत ; राजराजेश्वर के सामने सब बात सच-सच बतला दो, फिर मैं तुम्हें छुड़ा दूंगा ।"

यदि वैश्रवणस्य त्वं यमस्य वरुणस्य च ।
चारुरूपमिदं कृत्वा प्रविष्टो नः पुरीमिमाम् ॥
विष्णुना प्रेषितोवापि दूतो विजयकाङ्क्षणा ।
न हि ते वानरं तेजो रूप मात्रं तु वानरम् ॥
तत्त्वतः कथयस्वाद्य ततो वानर मोक्ष्यसे ।
अनृतं वदतश्चापि दुर्लभं तव जीवितम् ॥
यदि तावत् त्वमिन्द्रेण प्रेषितो रावणालयम् ।
तत्वमाख्याहि मा ते भूद् भयं वानर मोक्ष्यसे ॥

वानर ! तुम यदि कुवेर, यम, वरुण के दूत हो और यह सुन्दर रूप धारण करके हमारी इस पुरी में घुस आये हो तो यह भी बता दो—क्या तुम्हें विष्णु ने भेजा है अथवा इन्द्र ने—तुम्हारा तेज वानरोंका-सा नहीं है ! केवल रूप मात्र वानर का है, इस समय सच्ची बात कह दो, फिर तुम छोड़ दिये जाओगे । यदि झूठ बोलोगे तो तुम्हारा जीना असम्भव हो जायेगा । अथवा और सब बातें छोड़ो, तुम्हारा इस रावण के नगर में आने का क्या उद्देश्य है, यह बता दो।

प्रहस्त के इस प्रकार पूछने पर उस वानर श्रेष्ठ हनुमान् ने राक्षसों के स्वामी रावण से कहा—"मैं इन्द्र यम अथवा वरुण किसी का दूत नहीं, कुबेर के साथ भी मेरी मैत्री नहीं है और भगवान् विष्णु ने भी मुझे यहां नहीं भेजा है। मैं ने जो वाटिका को उजाड़ा, राक्षस रावण से मिलनेके उद्देश्य से ही मैं ने ऐसा किया । इसके पश्चात् तुम्हारे बलवान् राक्षस युद्ध की इच्छा से मेरे पास आये और मैंने अपने शरीर की रक्षा (Self-defence) के लिये रणभूमि में उन का सामना किया। भगवान् राम चन्द्र का कुछ कार्य है जिस के लिये मैं तुम्हारे पास आया हूं। प्रभो ! मैं अमित तेजस्वी श्रीरघुनाथ जी का दूत हूँ—ऐसा समझ कर मेरे इन हितकारी वचन को अवश्य सुनो ।

राक्षस राज ! मैं सुग्रीव का सन्देश लेकर यहां तुम्हारे पास आया हूँ । वानरराज सुग्रीव तुम्हारे भाई हैं, इसी नाते उन्होंने तुम्हारा कुशल-समाचार पूछा है । अब तुम अपने भाई महात्मा सुग्रीव का सन्देश—धर्म और अर्थ युक्त वचन, जो इहलोक और परलोक में भी लाभ दायक है,सुनो ।'अभी हाल में ही दशरथ नाम से प्रसिद्ध एक राजा हो गये हैं' जो पिता की भांति प्रजा के हितैषी, इन्द्र के समान तेजस्वी तथा रथ, हाथी, घोड़े आदि से सम्पन्न थे । उन के परम प्रिय ज्येष्ठ पुत्र, महातेजस्वी, प्रभावशाली महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी पिता की आज्ञा से

धर्म मार्ग का आश्रय लेकर अपनी पत्नी सीता और भाई लक्ष्मण के साथ दण्डकारण्य में आये थे। सीता विदेहदेश के राजा महात्मा जनक की पुत्री हैं। जनस्थान में आने पर श्री राम पत्नी सीता कहीं खो गयी हैं। राजकुमार श्रीराम अपने भाई के साथ उन्हीं सीता देवी की खोज करते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर आये और सुग्रीव से मिले। सुग्रीव ने उनसे सीता को ढूंढ निकालने की प्रतिज्ञा की और श्रीराम ने सुग्रीव को वानरों का राज्य दिलाने का वचन दिया।

तत्पश्चात् राजकुमार श्रीरामचन्द्र जी ने युद्ध में बाली को मार कर सुग्रीव को किष्किन्धा के राज्य पर स्थापित कर दिया। इस समय सुग्रीव वानरों और भालुओं के समुदाय के स्वामी हैं। वानरराज! बाली को तुम पहले से ही जानते हो। उस वानर वीर को युद्धभूमि में श्री राम ने एक ही बार में एकही बाण से मार गिराया था। अब सत्यप्रतिज्ञ सुग्रीव सीता को खोज निकालने के लिये व्यग्र हो उठे हैं। उन वानरराज ने समस्त दिशाओं में वानरों को भेजा है। मेरा नाम हनुमान् है, मैं वायु देवता का औरस पुत्र हूँ। सीता का पता लगाने और तुमसे मिलने के लिये सौ योजन विस्तृत समुद्र को लाँघ कर तीव्र गति से यहाँ आया हूँ। घूमते-घूमते तुम्हारे अन्तःपुर में मैंने जनकनन्दिनी सीता को देखा है। महामते! तुम धर्म और अर्थ के तत्व को जानते हो। तुमने बड़े भारी तप का संग्रह किया है, अतः दूसरे की स्त्री को अपने घर में रोक रखना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। धर्म विरुद्ध कार्यों में बहुत से अनर्थ भरे रहते हैं, वे कर्ता का जड़-मूल से नाश कर डालते हैं। —अतः तुम जैसे बुद्धिमान् पुरुष ऐसे कार्यों में प्रवृत्त नहीं होते। देवताओं और असुरों में भी कौन ऐसा वीर है जो श्री रामचन्द्र जी के क्रोध करने के पश्चात् लक्ष्मण के छोड़े हुए बाणों के सामने ठहर सके। राजन! तीनों लोकों में कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जो भगवान श्रीराम का अपराध करके सुखी रह सके। इसलिए मेरी अर्थ और धर्म की अनुकूल बात जो तीनों कालों में हितकर है, मान लो और जानकी जी को श्री राम जी के पास पहुँचा दो। सीता तुम्हारे घर में पाँच फण वाली नागिन के समान निवास करती हैं, जिन्हें तुम नहीं जानते। जैसे अत्यन्त विषमिश्रित अन्न को खाकर कोई इसे बल पूर्वक नहीं पचा सकता उसी प्रकार सीता को अपनी शक्ति से पचा लेना देवताओं और असुरों के लिये भी असम्भव है। तुमने तपस्या का कष्ट उठाकर धर्म के फल स्वरूप जो यह ऐश्वर्य का संग्रह किया है तथा शरीर और प्राणों को चिरकाल तक धारण करने की शक्ति प्राप्त की है उसका विनाश उचित नहीं। राक्षसराज! सुग्रीव और श्रीरामचन्द्र जी न तो देवता हैं, न यक्ष हैं और न ही राक्षस हैं। श्री रघुनाथ जी मनुष्य हैं और सग्रीव वानरों के राजा। अतः उनके हाथों से तुम अपने प्राणों की रक्षा कैसे करोगे।

मानुषो राघवो राजन् सुग्रीवश्च हरीश्वरः।
तस्यांत् प्राण परित्राणं कथं राजन् करिष्यसि॥

राजन! जन स्थान के राक्षसों का संहार, वाली का वध और श्रीराम तथा सुग्रीव की मैत्री, इन कार्यों को अच्छी तरह समझ लो, उसके बाद अपने हित का विचार करो। यद्यपि मैं अकेला ही घोड़े, हाथी यान और रथों सहित समूची लंका का नाश कर सकता हूं, तथापि श्री रघुनाथ जी का ऐसा विचार नहीं हैं।

उन्होंने मुझे इस कार्य के लिये आज्ञा नहीं दी है। जिन लोगों ने सीता का तिरस्कार किया है, उन शत्रुओं का संहार करने के लिये स्वयं श्रीरामचन्द्रजी ने भालुओं और वानरों के सामने प्रतिज्ञा की है। भगवान् श्रीराम का अपराध करके साक्षात् इन्द्र भी सुख नहीं पा सकते, फिर तुम्हारे जैसे साधारण लोगों की तो बात ही क्या है। जिनको तुम सीता के नाम से जानते हो और जो इस समय तुम्हारे अन्तःपुर में मौजूद हैं, उन्हें तुम सम्पूर्ण लंका का विनाश करने वाली कालरात्रि समझो। सीता का शरीर धारण करके तुम्हारे पास काल की फाँसी आ पहुँची है, उसमें स्वयं गला फँसाना ठीक नहीं, अतः अपने कल्याण की चिंता करो। अट्टालिकाओं और गलियों सहित यह लंका पुरी सीता जी के तेज और श्रीराम की क्रोधाग्नि से जल कर भस्म होने जा रही है, इसे बचा सकते हो तो बचा लो। इन मित्रों, मन्त्रियों, कुटुम्बी जनों, भाइयों, पुत्रों, हितकारियों, स्त्रियों, सुख भोग के साधनों तथा समूची लंका को मौत के मुँह में न झोंको।

सत्यं राक्षसराजेन्द्र शृणुष्व वचनं मम।
रामदासस्य दूतस्य वानरस्य विशेषतः॥

राक्षसों के राजाधिराज ! मैं भगवान श्री राम का दास हूँ, दूत हूँ और विशेषतः वानर हूँ। मेरी सच्ची बात सुनो—महायशस्वी श्री रामचन्द्र जी में चराचर प्राणियों सहित सम्पूर्ण लोकों का संहार करके फिर उनका नये सिरे से निर्माण करने की शक्ति है।

देवासुर नरेंद्रेषु यक्षरक्षोरगेषु च।
विद्याधरेषु नागेषु गंधर्वेंद्रेषु मृगेषु च॥
सिद्धेषु किन्नरेंद्रेषु पतत्त्रिषु च सर्वतः।
सर्वत्र सर्वभूतेषु सर्वकालेषु नास्ति सः॥

यो रामं प्रति युध्येत विष्णुतुल्यपराक्रमम्।
सर्वलोकेश्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम्॥
ब्रह्मा स्वयंभूश्चतुराननो वा
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरांतको वा।
इंद्रो महेंद्रःसुरनायको वा
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥
देवाश्च दैत्याश्च निशाचरेन्द्र
गन्धर्वविद्याधरनागयक्षाः।
रामस्य लोकत्रयनायकस्य
स्थातुं न शक्ताः समरेषु सर्वे॥
त्वं ब्रह्मणो ह्युत्तमवंश सम्भवः
पौलस्त्यपुत्रोऽसि कुबेर बान्धवः।
देहात्मबुद्ध्यापि च पश्य राक्षसो
नास्यात्मबुद्ध्या किमु राक्षसो नहि॥

भगवान् श्री राम श्री विष्णु के तुल्य पराक्रमी हैं। देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, सर्प, विद्याधर, नाग, गन्धर्व, मृग, सिद्ध, किन्नर, पक्षी एवं अन्य समस्त प्राणियों में कहीं किसी समय कोई भी ऐसा नहीं है जो रघुनाथजी के साथ लोहा ले सके। राजाओं में श्रेष्ठ एवं सम्पूर्ण जगत के ईश्वर श्री राम का इतना बड़ा अपराध करके तुम्हारा जीवित रहना कठिन है। राक्षस राज ! श्रीरामचन्द्र जी तीनों लोकों के स्वामी हैं। देवता, दैत्य, गन्धर्व, विद्याधर, यक्ष, चार मुखों वाले स्वयम्भू ब्रह्मा, तीन नेत्रों वाले त्रिपुर नाशक रुद्र अथवा देवताओं के स्वामी इन्द्र भी युद्ध में उनके सामने नहीं ठहर सकते।

बिनति करउँ जोरि कर रावन।
सुनहु मान तजि मोर सिखावन॥
देखहु तुम्ह निजकुलहि बिचारी।
भ्रम तजि भजहु भगतभयहारी॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजै।
मोरे कहें जानकी दीजै॥
प्रनतपाल रघुनायक करुना सिंधु खरारि।
गएँ सरन प्रभु राखिहैं तव अपराध बिसारि॥

राम चरण पंकज उर धरहू।
लंका अचल राजु तुम्ह करहू॥
रिषि पुलस्ति जसु बिमल मयंका।
तेहि ससि महुँ जनि होहु कलंका॥
राम नाम बिनु गिरा न सोहा।
देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी।
सब भूषन भूषित बर नारी॥
राम बिमुख संपति प्रभुताई।
जाइ रही पाई बिनु पाई॥
सुनु दसकण्ठ कहउँ पन रोपी।
बिमुख राम त्राता नहिं कोपी॥
संकर सहस बिष्नु अज तोही।
सकहिं न राखि राम कर द्रोही॥
मोहमूल बहु सूल प्रद त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक कृपा सिंधु भगवान॥

यद्यपि वीर भाव से निर्भयता पूर्वक भाषण करने वाले महाकपि हनुमान् जी की बातें बड़ी सुन्दर एवं युक्ति युक्त थीं तथापि वे रावण को अप्रिय लगीं। उन्हें सुनकर अनुपम शक्तिशाली दशानन रावण ने क्रोध से आँखें तरेर कर सेवकों को उनके वध के लिये आज्ञा दी।

स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः।
आज्ञापयद् वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः॥

उस समय रावण गरज कर बोला—

कथं ममाग्रे विलपस्यभीतवत्
प्लवङ्गमानामधमोऽसि दुष्टधीः।
क एष रामः कतमो वनेचरो
निहन्मि सुग्रीवयुतं नराधमम्।
त्वां चाद्य हत्वा जनकात्मजां ततो
निहन्मि रामं सहलक्ष्मणं ततः।
सुग्रीवमग्रे बलिनं कपीश्वरं
सवानरं हन्म्यचिरेण वानर॥

श्रुत्वा दशग्रीववचः स मारुति-
र्विवृद्धकोपेन दहन्निवासुरम्।
न मे समा रावणकोटयोऽधम
रामस्य दासोऽहमपारविक्रमैः॥
श्रुत्वातिकोपेन हनूमतो वचो
दशाननो राक्षसमेवमब्रवीत्।
पार्श्वे स्थितं मारय खण्डशः कपिं
पश्यन्तु सर्वेऽसुरमित्रबान्धवाः॥
निवारयामास ततो विभीषणो
महासुरं सायुधमुद्यतं वधे।
राजन्वधार्हो न भवेत्कथञ्चन
प्रतापयुक्तैः परराजवानरः॥

यह राम और वनचर सुग्रीव हैं क्या चीज ? उस नराधम को तो सुग्रीव के सहित मैं ही मार डालूँगा। वानर! पहले तो आज तुझे ही मारूँगा, फिर जानकीका वध करूँगा, तदनन्तर लक्ष्मण के सहित राम को मारूँगा और उनसे पहले उस बड़े बली वानरराज सुग्रीव को उसकी वानर सेना के सहित कुछ ही देर में मार डालूँगा!' रावण के ये वचन सुन कर हनुमान् जी अपने बढ़े हुए क्रोध से उसे जलाते हुए से बोले—"अरे अधम! मेरी समानता तो करोड़ों रावण भी नहीं कर सकते; जानता नहीं, मैं भगवान् राम का दास हूं। मेरे पराक्रम का कोई ठिकाना नहीं है।" हनुमान् जी के ये वचन सुन कर रावण ने अत्यन्त क्रोधपूर्वक अपनी बगल में खड़े हुए एक राक्षस से कहा—"अरे! इस वानर के टुकड़े-टकड़े करके मार डाल, जिस से सब राक्षस, मित्र तथा बन्धुगण इस कौतुक को देखें।" तब विभीषण ने हथियार लेकर मारने के लिये तैयार हुए उस प्रचण्ड राक्षस को रोक कर कहा—"राजन्! प्रतापी पुरुषों को अन्य राज्य के वानर-दूत को किसी प्रकार भी

न मारना चाहिये। यदि यह वानर-दूत मारा गया तो जिनका वध करने के लिये आप उद्यत हुए हैं उन राम को यह समाचार कौन सुनावेगा? अतः इस वानर के लिये वध के समान ही कोई और दण्ड निश्चय कीजिये, जिस का चिह्न लेकर यह वानर जाय और उसे देखकर सुग्रीव के सहित राम तुरंतही आ जायें और फिर उनसे आप का युद्ध हो।"

राजन् धर्म विरुद्धं च लोकवृत्तेश्चगर्हितम ।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम ।
प्रसीद लङ्केश्वर राक्षसेन्द्र,
धर्मार्थतत्त्वं वचनं शृणुश्व ।
दूता न वध्याः समयेषु राजन्
सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः ॥

राजन्! इस वानर को मारना धर्म के विरुद्ध और लोकाचार की दृष्टि से भी निन्दित है। आप जैसे वीर के लिये तो यह कदापि उचित नहीं है। लङ्केश्वर! प्रसन्न होइये। मेरे धर्म और अर्थ तत्त्व से युक्त वचन को ध्यान देकर सुनिये। राजन्! सत्पुरुषों का कथन है कि दूत कहीं किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होते। राक्षसराज! क्षमा कीजिये, क्रोध को त्याग दीजिये, प्रसन्न होइये और यह मेरी बात सुनिये। "ऊँच-नीच का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ राजा लोग दूत का वध नहीं करते। आप धर्म के ज्ञाता, उपकार को मानने वाले और राज धर्म के विशेषज्ञ हैं, भले बुरे का ज्ञान रखने वाले और परमार्थ के ज्ञाता हैं। यदि आप जैसे विद्वान् भी रोष के वशीभूत हो जायँ तब तो समस्त शास्त्र का पाण्डित्य प्राप्त करना केवल श्रम ही होगा।"

विभीषण की बात सुन कर राक्षसों का स्वामी महान् कोप से भरकर उन्हें उत्तर देता हुआ बोला—

न पापानां वधे पापं विद्यते शत्रुसूदन ।
तस्मादिमं वधिष्यामि वानरं पापकारिणम् ॥

रावण की इस बात को सुन कर विभीषण बोला—राजन्! इसमें सन्देह नहीं कि यह बहुत बड़ा शत्रु है क्योंकि उस ने वह अपराध किया है जिस की कहीं तुलना नहीं है। यदि इस ने कोई अपराध किया ही है तो भी उस अपराध के लिये उस राजा से बदला लेना चाहिये जिस का यह दूत है।

न चाप्यस्य कपेर्घाते कंचित् पश्याम्यहं गुणम् ।
तेष्वयं पात्यतां दण्डो यैरयं प्रेषितः कपिः ॥
साधुर्वा यदि वासाधुः परैरेष समर्पितः ।
ब्रुवन् परार्थं परवान् न दूतो वधमर्हति ॥

इस वानर को मारने में मुझे कोई लाभ नहीं दिखाई देता, जिन्होंने इसे भेजा है उन्हीं को यह प्राण दण्ड दिया जाय। यह भला हो या बुरा, शत्रुओं ने इसे भेजा है। अतः यह उन्हीं के स्वार्थ की बात करता है। दूत सदा पराधीन होता है, अतः वह वध के योग्य नहीं होता है। अतः आप को उस दूत के वध के लिये यत्न नहीं करना चाहिये। आप तो इस योग्य हैं कि इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं पर चढ़ाई कर सकें। आप देवताओं और दैत्यों के लिये भी दुर्जय हैं। मेरी राय तो यह है कि उन विरह दुःख से विकलचित्त राजकुमारों को कैद करके शत्रुओं पर आप का प्रभाव डालने के लिये आप के योधा यहां से यात्रा करें।

निशाचराणामधिपोऽनुजस्य
विभीषणस्योत्तमवाक्यमिष्टम् ।
जग्राह बुद्ध्या सुरलोकशत्रु-
र्महाबलो राक्षसराजमुख्यः ॥

विभीषण के इस उत्तम और प्रिय वचन

को सुनकर निशाचरों के स्वामी तथा देवलोक के शत्रु महाबली रावणने उसे स्वीकार कर लिया।

अब हनुमान् जी सर्वतंत्र स्वतन्त्र थे। निश्चय ही रावण की यह बहुत बड़ी उदारता थी कि उस ने लङ्का की धरती को छोड़ने से पूर्व एक बार पुनः freely and frankly हनुमान् जी को सीताजी से मिलने की पूरी छूट दे दी—

रावण के दरबार से मुक्ति पा कर वजरंग बली पुनः अशोक वाटिका में जानकी जी के पास गये और उन्हें प्रणाम करके बोले,—"आर्ये! सौभाग्य की बात है कि इस समय मैं आप को सकुशल देख रहा हूं।—अब मैं शीघ्र ही अपने प्रभु के चरणों में उपस्थित होकर आप का कुशल समाचार उन तक पहुंचाऊँगा।"

इस स्थान पर कवि ने लङ्का दहन का प्रसंग खूब लिखा है। चलते-चलते वजरंग बली द्वारा लङ्का दहन के रौद्र रूप का वर्णन करते हुए कवि लिखता है। प्राणियों के समुदाय गृह और वृक्षों सहित समस्त लङ्कापुरी को सहसा दग्ध हुई देख बड़े-बड़े राक्षस झुंड एकत्र हो गये और वे सब के सब परस्पर इस प्रकार कहने लगे—

"यह देवताओं का राजा वज्रधारी इन्द्र अथवा साक्षात् यमराज तो नहीं है? वरुण वायु, रुद्र, अग्नि, सूर्य, कुबेर या चन्द्रमा में से तो कोई नहीं है? यह वानर नहीं, साक्षात् काल ही है। क्या सम्पूर्ण जगत् के पितामह चतुर्मुख ब्रह्मा जी का प्रचण्ड कोप ही वानर का रूप धारण करके राक्षसों का संहार करने के लिये यहाँ उपस्थित हुआ है, अथवा भगवान् विष्णु का महान् तेज जो अचिन्त्य, अत्यन्त, अनन्त और अद्वितीय है, अपनी माया से वानर का शरीर ग्रहण करके राक्षसों के विनाश के लिये तो इस समय नहीं आया है?

ततस्तु लंका सहसा प्रदग्धा
सराक्षसा साश्वरथा सनागा।
सपक्षिसङ्घा समृगा सवृक्षा
रुरोद दीना तुमुलं सशब्दम्॥
ततस्तु तं वानरवीरमुख्यं
महाबलं मारुततुल्यवेगम्
महामतिं वायुसुतं वरिष्ठं
प्रतुष्टुवुर्देवगणाश्च सर्वे॥
देवाश्च सर्वे मुनिपुङ्गवाश्च
गन्धर्वविद्याधरपन्नगाश्च॥
भूतानि सर्वाणि महान्ति तत्र
जग्मुः परां प्रीतिमतुल्यरूपाम्॥
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
दृष्ट्वा लंकां प्रदग्धां तां विस्मयं परमं गताः॥

तदनन्तर हनुमान् जी अशोक वृक्ष के नीचे बैठी हुई जानकी जी के पास गये और उन्हें प्रणाम कर बोले—"आर्ये! सौभाग्य की बात है कि इस समय मैं आपको सकुशल देख रहा हूं—अब मैं जा रहा हूँ।"

क्षिप्रमेष्यति काकुत्स्थो हर्यृक्षप्रवरैर्युतः।
यस्ते युधि विजित्यारीञ्छोकं व्यपनयिष्यति॥

आर्ये! वानरों और भालुओं के प्रमुख वीरों के साथ श्री राम चन्द्र जी शीघ्र ही यहाँ पधारेंगे और युद्ध में शत्रुओं को जीत कर आप का सारा शोक दूर कर देंगे।—

उस समय हनुमन्तलाल बोले।

मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा।
जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम्।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ॥

ऐसा कहकर सीता जी ने कपड़े में बंधी हुई सुन्दर दिव्य चूड़ामणि खोल कर निकाली

और इसे श्री रामचन्द्र को दे देना ऐसा कह कर हनुमान् जी के हाथ में रख दिया।

चूड़ामनि उतारि तब दयऊ।
हरष समेत पवन सुत लयऊ॥

मणि दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत्।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद् रामस्य तत्त्वतः॥

मणि देने के पश्चात् सीता हनुमान् जी से बोलीं—मेरे इस चिन्ह को भगवान् श्री रामचन्द्र जी भली-भाँति पहचानते हैं।

मणि दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च॥

इस मणि को देख कर वीर श्री राम निश्चय ही तीन व्यक्तियों का—मेरी माता का मेरा तथा महाराज दशरथ का एक साथ स्मरण करेंगे।

कहेहु तात अस मोर प्रनामा।
सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीनदयाल बिरिदु संभारी।
हरहु नाथ मम संकट भारी॥
मास दिवस महुँ नाथु न आवा।
तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥

जनकसुतहि समुझाइ करि बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिर नाइ कपि गवनु रामपहिं कीन्ह॥

विदेह नन्दिनी सीता को इस प्रकार आश्वासन देकर वहां से जाने का विचार करके पवन कुमार हनुमान् ने उन्हें प्रणाम किया। अपने स्वामी श्रीराम चन्द्र जी के दर्शनों के लिये उत्सुक हो वे शत्रुमर्दन कपिश्रेष्ठ हनुमान् पर्वतों में उत्तम अरिष्ट गिरि पर चढ़ गये।

स मारुत इवाकाशं मारुतस्यात्मसम्भवः।
प्रपेदे हरिशार्दूलो दक्षिणादुत्तरां दिशम्।

वायु देवता के औरस पुत्र कपिश्रेष्ठ हनुमान् जैसे वायु आकाश में तीव्र गति से प्रवाहित होती है, उसी प्रकार दक्षिण से उत्तर दिशा की ओर बड़े वेग से उछलकर चले।

पंख धारी पर्वत के समान महान् वेगशाली हनुमान् जी बिना थके-मांदे उस सुन्दर एवं रमणीय आकाशरूपी समुद्र को पार करने लगे, हनुमान् जी आकाश को अपना ग्रास बनाते हुए, चन्द्र-मण्डल को नखों से खरोंचते हुए, नक्षत्रों तथा सूर्य मण्डल सहित अन्तरिक्ष को समेटते हुए और बादलों के समूह को खींचते हुए-से अनायास ही अपार महासागर के पार चले जा रहे थे। जहां गरुड़ चलते हैं, उसी मार्ग पर बारंबार सिंहनाद करते हुए हनुमान् जी के गम्भीर घोष से सूर्य मण्डल सहित आकाश मानो फटा जा रहा था। उस समय वायुपुत्र हनुमान् के दर्शन की इच्छा से जो शूरवीर वानर समुद्र के उत्तर तट पर पहले ही से बैठे थे, उन्होंने वायु से टकराते हुए महान् मेघ की गर्जना के समान हनुमान् जी का जोर-जोर से सिंहनाद सुना। अनिष्ट की आशंका से जिनके मन में दीनता छा गई थी, उन समस्त वनवासी वानरों ने उन वानर श्रेष्ठ हनुमान् का मेघ गर्जना के समान सिंहनाद सुना। गर्जते हुए पवन कुमार का वह सिंहनाद सुनकर सब ओर बैठे हुए वे समस्त वानर अपने सुहृदय हनुमान् जी को देखने की अभिलाषा से उत्कण्ठित हो उठे। वानर भालुओं में श्रेष्ठ जाम्बवान् के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हर्ष से खिल उठे और सब वानरों को निकट बुलाकर इस प्रकार बोले,—इस में सन्देह नहीं कि हनुमान् जी सब प्रकार से अपना कार्य सिद्ध करके आ रहे हैं। कृतकार्य हुए बिना इनकी ऐसी गर्जना नहीं हो सकती। मेघों की घटा के समान पास आते हुए महाकपि हनुमान् को देख कर वे सब वानर उस समय हाथ जोड़ कर खड़े

हो गये। तत्पश्चात् पर्वत के समान विशाल शरीर वाले वेगशाली वीर वानर हनुमान् जो अरिष्ट पर्वत से उछल कर चले थे, वृक्षों से भरे हुए महेन्द्र गिरि के शिखर पर कूद पड़े। उन्हें देखते ही वे सभी श्रेष्ठ वानर प्रसन्नचित्त हो महात्मा हनुमान् जी को चारों ओर से घेर कर खड़े हो गये—

हनुमांस्तु गुरून् वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥

महाकपि हनुमान् जी ने जाम्बवान् आदि वृद्ध गुरुजनों तथा कुमार अंगद को प्रणाम किया। तत्पश्चात् जाम्बवान् और अंगद ने भी आदरणीय हनुमान् जी का आदर सत्कार किया तथा दूसरे-दूसरे वानरों ने भी उन का सम्मान करके उन को संतुष्ट किया।

तत्पश्चात् हनुमान् जी ने संक्षेप में निवेदन किया—"मुझे सीता देवी का दर्शन हो गया"—जनक नन्दिनी सीता लंका में अशोक वन में निवास करती हैं—वहीं मैंने उनका दर्शन किया।

"मैंने सीता जी को देखा, अशोक वन सहित लंका को विध्वंस किया और रावण से बातचीत की। उसके पश्चात् मैं यहां आया हूं। अब हम इसी समय राम और सुग्रीव के पास चलेंगे।"

उस समय "सीता का दर्शन हो गया" यह वचन वानरों को अमृत के समान प्रतीत हुआ। यह उनके महान् प्रयोजन की सिद्धि का सूचक था—हनुमान् जी के मुख से यह शुभ संवाद सुनकर वानर बड़े प्रसन्न हुए। उस समय हर्ष से प्रफुल्लित अंगद बोले, वानर श्रेष्ठ! बल और पराक्रम में तुम्हारे समान कोई नहीं है, क्योंकि तुम इस पार लौटे हो। कपिशिरोमणे! एकमात्र तुम्हीं हम लोगों के जीवनदाता हो। तुम्हारे प्रसाद से ही हम सब लोग सफल मनोरथ हो कर श्रीरामचन्द्र जी से मिलेंगे।

वायु पुत्र हनुमान् जी ने फिर कहा—'कपिवरो! श्रीरामचन्द्र जी का उद्योग और उत्साह सफल हुआ। सीता जी का पातिव्रत्य देखकर मेरा मन प्रसन्न हो गया। आर्या सीता के समान जिस नारी का शील होगा, वह अपनी तपस्या से सम्पूर्ण लोकों को धारण कर सकती है अथवा कुपित होने पर सारे जगत् को जला सकती है। हाथ से छू जाने पर आग की लपट भी वह काम नहीं कर सकती, जो क्रोध दिलाने पर जनक किशोरी सीता कर सकती है। इस कार्य में मुझे जहां तक सफलता मिली है, वह सब आप लोगों को मैंने बता दिया। अब जाम्बवान् आदि प्रमुख वानरों की सम्मति लेकर हमें सीता को साथ लेकर ही श्रीरामचन्द्र जी और लक्ष्मण के दर्शन करना चाहिये। मैं अकेला ही राक्षसों सहित लंकापुरी का विध्वंस करने और सेवकों सहित रावण को मार डालने के लिये पर्याप्त हूं; फिर यदि सम्पूर्ण अस्त्रों को जानने वाले आप जैसे वीर, बलवान् महा शक्तिशाली वानरों की सहायता मिल जाये तो कहना ही क्या है। आप लोगों की आज्ञा न होने के कारण ही मेरा पुरुषार्थ मुझे रोक रहा है। समुद्र अपनी मर्यादा को छोड़ सकता है और मन्दराचल अपने स्थान से हट सकता है, परन्तु जाम्बवान् को युद्ध में शत्रु सेना विचलित नहीं कर सकती। सम्पूर्ण राक्षसों एवं उनके पूर्वजों को भी यमलोक पहुंचाने के लिये वाली के वीर पुत्र अंगद अकेले ही काफी हैं। महात्मा नील के महान् वेग से मन्दराचल भी विदीर्ण हो सकता है, फिर युद्ध में राक्षसों का नाश करनाउनके लिये कौन सी बड़ी बात है कोई बताये तो भला—देवता, असुर,

यक्ष, गन्धर्व, नाग और पक्षियों में भी कौन ऐसा है, जो मैन्द अथवा द्विविद के साथ लोहा ले सके ? दुरात्मा रावण की अशोक-वाटिका में शिंशपा-वृक्ष के नीचे साध्वी सीता दीन-अवस्था में बैठी हुई हैं। जैसे शचीका इन्द्र में अनुराग है, उसी प्रकार विदेह-नन्दिनी सीता अनन्य चित्त से भगवान् श्रीराम में अनुरक्त हैं। वे एक वस्त्र धारण किये धूल से मलिन हो रही हैं। राक्षसियों के बीच में रहती हैं और उन्हें बारंबार धमकाया जाता है। पृथ्वी ही उनकी शय्या है। रावण की ओर से उनके हृदय में पूर्ण विरक्ति है। उन्होंने यह निश्चय कर लिया है कि मैं मर जाऊँगी, पर रावण को स्वीकार न करूंगी। श्रीराम और सुग्रीव की मित्रता का समाचार सुनकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई थी। भगवती सीता एक तो स्वभाव से ही दुबली-पतली हैं, दूसरे श्रीरामचन्द्र जी के वियोग से और भी कृश हो गई हैं। जैसे प्रतिपदा के दिन स्वाध्याय करने वाले विद्यार्थी की विद्या क्षीण हो जाती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी अत्यन्त निर्बल हो गया है। इस प्रकार सीता निरन्तर शोकमग्न रहती हैं अब इस विषय में जो कुछ करना है, वह सब आप लोग करें।'

उस समय हनुमन्त लाल को आगे कर सभी लोग राघवेन्द्र सरकार की सेवा में उपस्थित हुए।

नाथ पवन सुत कीन्हि जो करनी,
सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी ॥
पवनतनय के चरित सुहाए।
जामवन्त रघुपतिहि सुनाए ॥
सुनत कृपानिधि मन अति भाए।
पुनि हनुमान हरषि हियँ लाए ॥
जामवन्त कह सुनु रघुराया।
जा पर नाथ करहु तुम्ह दाया ॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर।
सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर ॥
सोइ बिजई बिनई गुन सागर।
तासु सुजसु त्रैलोक उजागर ॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू।
जन्म हमार सुफल भा आजू ॥

हनुमान् राघवं प्राह दृष्टा सीता निरामया।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्याग्रे रामं पश्चाद्धरीश्वरम् ॥
कुशलं प्राह राजेन्द्र जानकी त्वाँ शुचान्विता।
अशोकवनिकामध्ये शिंशपामूलमाश्रिता ॥
राक्षसीभिः परिवृता निराहारा कृशा प्रभो।
'हा राम राम रामेति' शोचन्तीम् बिनाम्बरा ॥
एकवेणी मया दृष्टा क्षनेराश्वसिता शुभा।

महाबाहु हनुमान् जी ने भगवान् श्रीराम के चरणों में मस्तक रख कर प्रणाम किया और कहा—'देवी सीता पातिव्रत्य के कठोर नियमोंका पालन करती हुई शरीर से सकुशल हैं। मैं उन का दर्शन कर आया हूँ।' हनुमान् जी के मुखसे ये अमृत के समान वचन सुनकर श्रीराम और लक्ष्मण को बड़ा हर्ष हुआ तथा उन्होंने बड़े आदर के साथ उनकी ओर देखा। तब बातचीत का ढंग जानने वाले कुमार हनुमान् जो ने पहले भगवती सीता के उद्देश्य से दक्षिण-दिशा की ओर मस्तक झुकाया तथा सीता जी का दर्शन जिस प्रकार हुआ था, वह सारा बृत्तान्त सुना कर उनकी दी हुई दिव्य मणि भगवान् को अर्पण की। वह मणि अपने तेज से दिप रही थी। उसे देने के पश्चात् हनुमान् जी ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभो! मैं उन किशोरी सीता के दर्शन की इच्छा से उनका पता लगाता हुआ सौ योजन चौड़े समुद्र को लांघ गया। वहीं दुरात्मा रावण की नगरी लङ्का है, जो समुद्र

के दक्षिण तट पर बसी हुई है। लङ्का में पहुंच कर मैंने भगवती सीता को देखा। वह अपनी सारी अभिलाषाओं को आप में ही केन्द्रित करके किसी तरह जीवन धारण कर रही है।

हनुमान् जी के यथार्थ रीति से कहे हुए वाक्यों को सुनकर भगवान् श्री राम बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने इस प्रकार कहा—

कृतं हनुमता कार्यं सुमहद् भुवि दुर्लभम्।
मनसापि यदन्येन न शक्ता धरणी तले॥

'हनुमान् ने बड़ा भारी काम किया है, संसार में ऐसा काम होना कठिन है। पृथ्वी में कोई दूसरा तो ऐसा करने की बात सोच भी नहीं सकता। गरुड़, वायु और हनुमान् को छोड़ कर मुझे ऐसा कोई नहीं दिखायी देता जो महासागर को लाँघ सके। फिर लङ्का भी रावण के द्वारा सुरक्षित है। उस पर आक्रमण करना देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इन में से किसी के भी वश की बात नहीं है। भला, उसमें किसका प्रवेश हो सकता है। समुद्र लङ्घन आदि कार्यों द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार पूरा पराक्रम करके हनुमान् ने एक सच्चे सेवक के योग्य सुग्रीव का बहुत बड़ा काम किया है। जो सेवक स्वामी के द्वारा किसी दुष्कर कार्य में नियुक्त होने पर उसे प्रेम पूर्वक करता है, वह सेवकों में श्रेष्ठ कहा जाता है। जो एक कार्य में नियुक्त होकर योग्यता और सामर्थ्य होने पर भी स्वामी के दूसरे प्रिय कार्य को नहीं करता, उस सेवक को मध्यम कोटि का कहते हैं। और जो मालिक के किसी काम में नियुक्त होकर योग्य और समर्थ होने पर भी उसे सावधानी से पूरा नहीं करता, उसे अधम सेवक कहा जाता है। हनुमान् ने स्वामीके कार्य में नियुक्त होकर उसे पूरा कर दिखाया, उसे पूरा करने में अपनी स्थिति में भी किसी प्रकार की लघुता नहीं आने दी और सुग्रीव को भी सन्तुष्ट कर दिया। आज हनुमान् ने सीता से मिलकर धर्मानुसार मेरी, रघुवंश की और महाबलि लक्ष्मण की रक्षा की है। और उन्होंने अपनी आज्ञा के पालन में सफलता पाकर लौटे हनुमान् को हृदय से लगा लिया।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी।
नहिं कोउ सुरनर मुनि तनुधारी।
प्रति उपकार करौं का तोरा।
सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥
सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाहीं।
देखेउँ करि बिचार मन माहीं॥
सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥
मद्देहे जीर्णतां यातु यत्त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्।

आज हनुमान् जी ने इतना महान् कार्य करके मेरी अथवा रघुवंश की जो सेवा की है, यह एक ऐसा महान् उपकार है, जिस का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूंगा।—मैं अपना सर्वस्व प्रदान करता हूँ, ऐसा कह श्री रामजी ने हनुमान् जी को खींच कर गाढ़ आलिङ्गन किया। उन के नेत्रों में जल भर आया और हृदय में परम प्रेम उमड़ने लगा।

यत्पादपदम युगलं तुलसीदलाद्यैः।
सम्पूज्य विष्णुपदवीमतुलां प्रयान्ति।
तेनैव किं तनुरसौ परिरब्धमूर्तो।
रामेण वायुतनयः कृतपुण्यपुंजः॥

जिनके चरणारविन्द युगल का तुलसीदल आदि से पूजन कर भक्तजन अतुलनीय विष्णुपद प्राप्त करते हैं उन्हीं राम ने जिनके शरीर का आलिङ्गन किया उन पवित्र कर्म करने वाले पवन पुत्र के भाग्य की जितना भी सराहना की जाय थोड़ी है।

श्रीराम चन्द्र जी ने फिर हनुमान् जी से कहा—'मैं तपस्या के द्वारा तो सेतु बांधने, समुद्र को सोखने और इसे पार करने में सर्वथा समर्थ हूं लंकापुरी दुर्गम सुनी जाती है सो उसमें कितने दुर्ग हैं ? मैं देखे हुए के समान उसका पूरा विवरण स्पष्ट जानना चाहता हूं। तुमने रावण की सेना का परिमान, दरवाजों को दुर्गम बनाने के साधन, लंका की रक्षा के उपाय और राक्षसों के भवन—ये सभी सावधानी से ठीक-ठीक देखे हैं, अतः तुम इन सबका वर्णन करो।' रघुनाथ जी के ये वचन सुनकर ववताओं में श्रेष्ठ हनुमान् जी ने कहा—'सुनिए, मैं लंका के दुर्ग, उसकी रक्षा के साधन और जिस प्रकार सेना के द्वारा वह सुरक्षित है, यह सब आपको सुनाता हूं। लंका के चार बहुत बड़े दरवाजे हैं। उनमें बड़े मजबूत किवाड़ लगे हैं और मोटी मोटी अर्गलाएं उन पर बड़े विशाल और प्रवल उपलयन्त्र रखे हैं, जिनसे आक्रमण करने वाली शत्रु की सेना को रोक दिया जाता है। वीर राक्षसों ने उन दरवाजों पर काले लोहे की सैकड़ों तोपें बनाकर रख दी हैं। उस पुरी के चारों ओर सोने का परकोटा है, जिसे तोड़ना बड़ा ही कठिन काम है। उसमें मणि, मूंगे, वैदूर्य और मोतियों का काम हो रहा है। फिर उसके सब ओर बड़ी भयानक और गहरी ठंडे जल की खाई है। उसमें ग्राह और मछलियां भरी हैं। उस खाई पर द्वारों तक पहुंचने के लिए चार रासते हैं। उनमें यन्त्र लगे हैं और उनके आस पास बड़े बड़े मकानों की कतारें हैं। जब शत्रु की सेना आती है, तब यन्त्रों के द्वारा उन संक्रमों की रक्षा की जाती है तथा यन्त्रों के द्वारा ही उन्हें सब ओर खाईयों में गिरा दिया जाता है। उनमें एक संक्रम तो बड़ी ही सुदृढ़ और अभेद्य है। वहां बहुत बड़ी सेना रहती है और वह सोने के अनेकों खंभों एवं चबूतरों से सुशोभित है। रघुनाथ जी ! रावण स्वयं सावधान रहकर सेना के निरीक्षण में तत्पर रहता है। लंका पर चढ़ने के लिए कोई अवलम्ब नहीं है, वह देवताओं के लिए भी दुर्गम और बड़ी ही भयावनी है। उसके चारों ओर जल समुद्र पर्वत, वन और कृत्रिम खाई परकोटा आदि—चार प्रकार के दुर्ग हैं। वह बहुत दूर तक फैले हुए समुद्र के उस पार बसी हुई है; वहां जाने के लिए नौका का भी रास्ता नहीं है, क्योंकि उसमें लक्ष्य का भी किसी प्रकार पता रहना सम्भव नहीं है। वह दुर्गम पुरी पर्वत के शिखर पर बसायी गयी है, देखने में वह देवपुरी के समान है, हाथी घोड़ों से भरी हुई तथा अत्यन्त दुर्जय है।

हनुमान् जी के वचनों को क्रमशः ध्यानपूर्वक सुनकर सत्य पराक्रमी महातेजस्वी भगवान् श्री राम ने कहा—'हनुमान् ! मैं तुमसे सच कहता हूं—तुमने उस भयानक राक्षस की जिस लंकापुरी का वर्णन किया है, उसे मैं शीघ्र ही नष्ट कर दूंगा। सुग्रीव ! तुम इस समय सेना के प्रस्थान की तैयारी करो। इस विजय मुहूर्त्त में हमारी यात्रा बहुत उपयुक्त होगी, इस समय सूर्य भी मध्य आकाश में स्थित है। आज उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है, कल चन्द्रमा हस्त-नक्षत्र पर आ जाएगा। अतः हम सम्पूर्ण सेना के साथ आज ही कूच करें। इस समय मेरे सामने जो शुभ शकुन हो रहे हैं, उससे भी निश्चय होता है कि मैं रावण को मार कर सीता को ले आऊंगा।

★★★★

(११)

सागर के उस पार

मयि विष्णुर्यथा कुप्येत्तथा कार्यं करोम्यहम्।
जानन्नेव परात्मानं स जहारावनीसुताम्।
इति निश्चित्य वैदेहीं जहार विपिनेऽसुरः॥
मातृवत्पालयामास त्वत्तः कांक्षन्वधं स्वकम्॥

"अतः मुझे ऐसा कार्य करना चाहिए जिससे भगवान् विष्णु मुझ पर कुपित हों" ऐसा सोच कर ही उस असुरने वन में श्रीजानकी जी को हर लिया था। हे राम! आपके हाथ से अपना वध कराने की इच्छा से ही रावण ने आपको परमात्मा जानते हुए भी श्रीसीता जी को चुरा लिया और उनका माता के समान पालन किया। हे राम! आप परमेश्वर हैं, आप त्रिकालदर्शी एवं विकल्प से रहित होकर अपनी ज्ञानदृष्टि से भूत, भविष्यत् और वर्तमान्—ये सब कुछ जानते हैं। हे स्वामिन्! आप अपने भक्तों को मार्ग दिखाने के लिए ही सारी लीलाएं रचते हैं तथा आप सम्पूर्ण लोकों से पूजित होकर भी मनुष्य रूप से हम जैसे मुनियों के वचन सुनते हुए दिखलायी दे रहे हैं।"

राम त्वं परमेश्वरोऽसि सकलं
जानासि विज्ञानदृग्
भूतं भव्यमिदं त्रिकालकलना-
साक्षी विकल्पोज्झितः।
भक्तानामनुवर्तनाय सकलां
कुर्वन् क्रियासंहतिं
त्वं शृण्वन्मनुजाकृतिर्मुनिवचो
भासीश लोकार्चितः॥

माताओ, बहनो एवं भद्र पुरुषो!

बजरंगबली पवनपुत्र हनुमान् जी किस प्रकार लंका में राम नाम का डंका बजा कर आए, निशाचरों के गढ़ पर किस शूरवीरता के साथ वे आर्य ध्वज फहरा कर आए यह गौरव गाथा कल हम आपको सुना रहे थे,—गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज कहते हैं—

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका।
जबतें जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृहँ सब करहिं बिचारा।
नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥
जासु दूत बल बरनि न जाई।
तेहि आएं पुर कवन भलाई॥

उधर की लीला तो आपने सुन ली, अब इधर की गाथा भी सुन लीजिए।

तब रघुपति कपिपतिहि बोलावा।
कहा चलैं कर करहु बनावा॥
अब बिलम्बु केहि कारन कीजे।
तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥

सुग्रीव ! सब सैनिकों को इसी समय कूच करने की आज्ञा दो। सूर्यदेव दिन के मध्य भाग में जा पहुंचे हैं। इसलिए इस विजय नामक मुहूर्त में हमारी यात्रा उपयुक्त होगी। रावण सीता को हर कर ले जाए, किन्तु वह जीवित बच कर कहां जाएगा। आज उत्तराफाल्गुनी नामक नक्षत्र है। कल चन्द्रमा का हस्तनक्षत्र से योग होगा। इसलिए सुग्रीव ! हम लोग आज ही सारी सेनाओं के साथ यात्रा कर दें। इस समय जो शकुन प्रकट हो रहे हैं और जिन्हें मैं देख रहा हूं, उनसे यह विश्वास होता है कि मैं अवश्य ही रावण का वध करके जनकनन्दिनी सीता को ले आऊंगा। उस समय नील की ओर देखते हुए और इन्हें सम्बोधन करते हुए प्रभु रामचन्द्र बोले—सेनापति नील ! तुम सारी सेनाओं को ऐसे मार्ग से शीघ्रतापूर्वक ले चलो, जिसमें फल-मूल की अधिकता हो, शीतल छाया से युक्त सघन वन हो, ठंडा जल मिल सके, और मधु भी उपलब्ध हो। और यह भी सम्भव हो सकता है कि दुरात्मा रावण मार्ग के फल-मूल और जल को विष आदि से दूषित कर दें, अतः तुम मार्ग में सतत सावधान रह कर उनसे इन वस्तुओं की रक्षा करना। वानरों को चाहिए कि जहां गड्ढे, दुर्गम वन और साधारण जंगल हो, वहां सब ओर यह सावधानी से देखते चलें कहीं उनमें शत्रुओं की सेना तो नहीं छिपी,—ऐसा न हो कि हम आगे निकल जाएं और पीछे से शत्रु धावा बोल दें, सेना में बाल-वृद्ध आदि के कारण कोई दुर्बलता नहीं आनी चाहिए, यदि कोई सैनिक ऐसा हो उसे यहीं रह जाना चाहिए। सर्वथा बलविक्रम सम्पन्न सेना को ही यात्रा करनी चाहिए। गज-गवय-गवाक्ष सेना के आगे चलें, ऋषभ सेना के दाहिने भाग की रक्षा करते चलें, गन्धमादन वानर वाहिनी के वाम मार्ग की सम्भाल करते चलें—जाम्बवान्, सुषेण, वेगदर्शी पृष्ठ भाग की रक्षा करेंगे।—मैं और लक्ष्मण हनुमान् एवं अंगद सहित सेना के बीच में रह कर चलेंगे।

कपिपति बेगि बोलाए आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल बानर भालु बरूथ॥
प्रभु पद पंकज नावहिं सीसा।
गर्जहिं भालु महाबल कीसा॥
देखी राम सकल कपि सेना।
चितइ कृपा करि राजिव नैना॥
राम कृपा बल पाइ कपिंदा।
भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना।
सगुन भए सुन्दर सुभ नाना॥
जासु सकल मंगलमय कीती।
तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना बैदेहीं।
फरकि बाम अँग जनु कहि देहीं॥

तत्पश्चात् सुग्रीव एवं लक्ष्मण के सादर अनुरोध करने पर सेना सहित धर्मात्मा श्रीराम चन्द्रजी दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थित हुए। श्री राम के समीप चलते हुए वानर यह कहते हुए गर्जना करते थे कि—"रावणो नो निहन्तव्यः।" हमें रावण को मार डालना चाहिये। "सर्वे च निशाचराः"—सब राक्षसों को भी मार डालना चाहिये। रामचन्द्र जी की आज्ञा थी कि रासते में कोई सैनिक किसी प्रकार का भी उपद्रव न करें—रासते के किसी खेत को उजाड़ा न जाय, मार्ग में आने वाले नगरों ग्रामों को एक तरफ छोड़ कर जाया जाय—किसी भी नागरिक को किसी प्रकार का कष्ट न हो। सर्वथा संयम में रहने वाली सेना ने अपने स्वामी की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया।

वह वानर सेना रात दिन चलती थी, कहीं एक क्षण को भी न रुकती थी । अन्त में वे लोग सब मलयाचल और सह्याद्रि के विचित्र वनों को देखते हुए उन दोनों पर्वतों को पार कर क्रमशः भयंकर गर्जना करने वाले समुद्र के तट पर पहुँच गये। सुग्रीव से सुरक्षित सभी वानर हृष्ट-पुष्ट और प्रसन्न थे। सभी बड़ी उतावली से चल रहे थे। सभी युद्ध का अभिनन्दन करने वाले थे और सभी सीता जी को रावण की कैद से छुड़ाना चाहते थे । इसलिये उन्होंने रास्ते में कहीं दो घड़ी भी विश्राम नहीं लिया।

चला कटकु को बरनै पारा ।
गर्जहिं बानर भालु अपारा ॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना ।
सगुन भए सुन्दर सुभ नाना ॥
एहि बिधि जाइ कृपा निधि उतरे सागर तीर ।
जहँ तहँ लागे खान फल भालु बिपुल कपि बीर ॥

उस समय श्रीराम बोले, सुग्रीव ! लो, हम सब लोग समुद्र के किनारे तो आ गये।— अब सेना का पड़ाव यहीं पड़ेगा और यह विचार करना होगा कि इतनी विशाल सेना समुद्र के उस पार कैसे जा सके।—अपने सैनिकों को आदेश देते हुए श्रीराम बोले,—ध्यान दीजिये ! इस समय कोई भी सेनापति किसी भी कारण से अपनी-अपनी सेना को छोड़ कर कहीं अन्यत्र न जायँ, समस्त शूरवीर वानर सेना की रक्षा के लिये यथा स्थान चले जायँ। सब को यह जान लेना चाहिये कि हम लोगों पर राक्षसोंकी माया से गुप्त भय आ सकता है। समुद्र के पास ठहरी हुई वह वानर सेना मधु के समान पिङ्गलवर्ण के जलसे भरे हुए दूसरे सागर की सी शोभा धारण कर रही थी। उस सेना के सभी वानर प्रसन्न मुख तथा वायु के समान वेगवाले थे।

केहरिनाद भालु कपि करहीं ।
डगमगाहिं दिग्गज चिक्करहीं ॥
कटकटहि मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावहीं ।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावहीं ॥

रघुनाथ जी की कार्य सिद्धि के लिये उन का पराक्रम उबला पड़ता था। वे जवानी के जोश और अभिमान, जाति-दर्प के कारण एक दूसरे को उत्साह, पराक्रम तथा नाना प्रकार के बल सम्बन्धी उत्कर्ष दिखा रहे थे ।

इधर रामा दल सागर तट पर पहुंच गया, उधर यह समाचार पाते ही राक्षसराज दशग्रीव रावण ने अपने मन्त्री मंडल का विशेष संकट कालीन अधिवेशन बुलाया। उस सभा में लगभग सभी राक्षस नेता उपस्थित थे। कुम्भकरण, मेघनाद, प्रहस्त, माल्यवान, विरूपाक्ष, नारान्तक, वज्रदंष्ट्र, कुम्भ, निकुम्भ, विभीषण सभी थे।

अपने साथियों को सम्बोधित करते हुए रावण बोला,—वह अकेला बन्दर इस दुर्घर्ष पुरी का तिरस्कार करके इसमें घुस आया और सीता से भी भेंट की। यही नहीं, उसने अनेकों अच्छे-अच्छे राक्षसों को मार गिराया और सारी लंकापुरी में खलबली मचा दी। अतः आप लोग यह विचार करें कि अब हमें क्या करना चाहिए। वीरो ! बुद्धिमानों का कहना है कि विजय का मूल सत्परामर्श है, इसी से मैं राम के विषय में आप लोगों से सलाह करना चाहता हूं, संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकार के लोग होते हैं। मैं उन सबके गुण दोषों का वर्णन करता हूं। —जो पुरुष अपने योग्य मित्रों, समान सुख-दुःख वाले बन्धुओं और इन से भी बढ़ कर अपने हितकारियों के साथ सलाह करके

कार्य को आरम्भ करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते हैं। जो अकेला ही अपने कर्तव्य का विचार करता है, अकेला ही धर्म में मन लगाता है और अकेला ही सब काम करता है, उसे मध्यम पुरुष कहते हैं तथा जो गुण-दोष का विचार न करके और दैवो आश्रय छोड़ कर केवल 'करूंगा' इसी बुद्धि से कार्य आरम्भ करता है और फिर उसकी उपेक्षा कर देता है, वह अधम पुरुष हैं। जिस प्रकार ये पुरुष उत्तम, मध्यम और अधम—भेद से तीन प्रकार के हैं; वैसे ही निश्चय भी उत्तम मध्यम और अधम—तीन प्रकार के समझने चाहियें। जिसमें शास्त्रोक्त दृष्टि से सब मन्त्री एक मत हो कर प्रवृत्त होते हैं, उसे उत्तम निश्चय कहते हैं। जो आरम्भ में कई प्रकार के मत-भेद होने पर भी अन्त में सबका एकमत हो जाय, वह मध्यम निश्चय है और जहां अपनी-अपनी बुद्धि की प्रधानता रख कर स्पर्द्धापूर्वक भाषण किया जाय और एकमत होने पर भी जिससे कल्याण की सम्भावना न हो, वह अधम निश्चय कहा जाता है, अतः आप सभी बुद्धिमान् लोग अच्छी तरह सलाह करके कोई एक कार्य निश्चित करें, उसी को मैं अपना कर्त्तव्य समझूंगा। अब किसी न किसी प्रकार का निश्चय करना आवश्यक हो गया है, क्योंकि सहस्रों धीर-वीर वानरों के साथ राम हम पर चढ़ाई करने के लिए आ रहे हैं। यह बात भी निश्चित है कि वे अपने सुयोग्य छोटे भाई और सारी सेना के सहित आसानी से समुद्र को पार कर लेंगे। वे या तो समुद्र को ही सुखा डालेंगे या अपने पराक्रम से कोई दूसरा उपाय करेंगे। ऐसी स्थिति में वानरों से विरोध आ पड़ने पर नगर और सेना के लिए जो भी हितकर हो, वैसी सलाह आप लोग दीजिए।'

परिस्थिति वास्तव में भयानक थी, और राक्षस समुदाय परिस्थिति से भली-भांति परिचित था, तथापि उनके हौसले बुलन्द थे। अपने स्वामी को धीरज बँधाते हुए मन्त्री-मंडल के अधिकांश सदस्यों का यही कहना था, अकेला इन्द्रजीत् ही समूची वानर सेना को खा जाने में सर्व सामर्थ्य है।

राजन्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताज्जनात्।
हृदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥

'देव! आपको राम से क्या शंका है? आपने तो युद्ध में समस्त लोकों को जीत लिया है। आपके पुत्र ने इन्द्र को बांध कर अपनी राजधानी में डाल लिया था और आप स्वयं भी कुबेर को जीत कर उसका पुष्पक विमान लाकर भोगते हैं। हे प्रभो! आपने यमराज को भी जीत लिया, उसके कालदण्ड से भी आपको कोई भय नहीं हुआ तथा वरुण और समस्त राक्षसों को अपने हुंकार से ही जीत लिया था। और महासुरों की तो बात ही क्या है, स्वयं मयासुर भी आपके भय से आपको अपनी कन्या देकर आज तक आपके अधीन बना हुआ है। हनुमान् ने जो हमारा तिरस्कार किया है वह तो हमारी ही उपेक्षा से हुआ है। हमने यह सोचकर कि यह वानर है इसे पुरुषार्थ दिखाने में क्या रखा है उसकी उपेक्षा कर दी थी, नहीं तो वह हमारी अवज्ञा क्या कर सकता था? अतः असावधान रहने के कारण यदि हमें हनुमान् ने ठग लिया तो इससे क्या हुआ? यदि हम सब उसे जानते तो वह जीता हुआ कैसे जा सकता था? आप हमें आज्ञा दीजिए, हम सब अभी जाकर पृथ्वी को वानर और मनुष्यों से शून्य कर आते हैं। अथवा हम में से एक-एक को ही इस कार्य के लिए नियुक्त कीजिए।"

कुम्भकर्ण भी अपनी दीर्घ निद्रा को त्याग कर जाग चुका था। वह सभा में उपस्थित था।

बोला—भाई साहब ! यद्यपि सीताहरण रूपी आपके कार्य की मैं सराहना कदापि नहीं कर सकता तथापि अब झगड़े बढ़ाने का समय नहीं,—राष्ट्र पर एक महान् संकट आ गया है, प्रत्येक राष्ट्रभक्त का यह कर्त्तव्य है कि राष्ट्रीय नीति के प्रति मतभेद रखते हुए भी राजा के प्रति पूर्णतया निष्ठावान् रहते हुए अपना सहयोग प्रदान करे, इसलिए मैं अपनी सेवाएं आपके श्रीचरणों में समर्पित करता हूं । तुम्हारे शत्रु यदि इन्द्र, सूर्य, अग्नि, वायु, कुबेर और वरुण भी हों तो मैं उनके साथ भी युद्ध करूंगा और तुम्हारे शत्रुओं को उखाड़ फैंकूंगा ।

उस समय प्रहस्त खड़ा हुआ । वह राक्षस साम्राज्य का प्रधान मन्त्री था, बोला,महाराज ! हमलोग देवता, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पक्षी और सर्प सभी को पराजित कर सकते हैं, फिर उन दो मनुष्यों को रणभूमि में हराना कौन बड़ी बात है, पहले हम लोग असावधान थे। हमारे मन में शत्रुओं की ओर से कोई खटका नहीं था । इसीलिए हम निश्चिन्त बैठे थे, यही कारण है कि हनुमान् हमें धोखा दे गया । अब हम जागरूक हैं, हमारे फौजी बानरों, भालुओं के दांत खट्टे करने को सर्वथा तैयार हैं ।

तत्पश्चात् वज्रदंष्ट्र खड़ा हुआ, बोला— "मुझ अकेले में इतनी शक्ति है कि वानर सेना में तहलका मचा दूं । अकेला ही वानर दल में घुस जाऊं और सुग्रीव तथा लक्ष्मण सहित राम को जिन्दा गरिफ्तार करके लंका में लाकर कैद कर दूं ।"

सभी राक्षसों की बोली भाषा एक ही थी—कुम्भ, निकुम्भ दुर्मुख जो भी उठा उसने एक ही बात कही—war ! war !! war !!!

जहाद-जहाद-जहाद—एक सज्जन तो यहां तक बढ़ गए,—बोले ! इच्छानुसार रूप धारण करने वाले, अत्यन्त भयानक तथा भयंकर दृष्टि वाले सहस्त्रों शूरवीर राक्षस एक सुनिश्चित पुरोग्राम के मुताबिक मनुष्य का रूप धारण कर श्री राम के पास जाएं और सब लोग विना किसी घबराहट के रामादल में शामिल हो जावें ।

इस प्रकार से हम अपने राक्षस-राष्ट्र की अधिक सेवा कर सकते हैं । हम अपनी नैशनेलिटी भारतीय बतायेंगे । अपने पाकिस्तानीपन को छिपाकर साक्षात चलते-फिरते खद्दर भंडार बन जायेंगे, गान्धी से भी बढ़ कर गान्धी के चेले बनेंगे, भारत माता की जय बोलने में सबसे आगे रहेंगे -कह देंगे ।

प्रेषिता भरतेनैव भ्रात्रा तव यवीयसा ।

"हमें आपके छोटे भाई भरत ने आपकी सहायता के लिए भेजा है । इस प्रकार जब राम पुल पार करने लगेंगे, वहीं पर पुल के बीचों-बीच हम सशस्त्र विद्रोह कर देंगे, पार कर रही बेखबर सेना पर टूट पड़ेंगे, बानर सेना की छातियों को अपनी संगीनों से छलनी कर देंगे ।"

उस सभा में विभीषण भी विराजमान् थे, बोले,—परंतप ! जब से सीता जी यहां आयी हैं, तब से हम लोगों को अनेकों अपशकुन दिखाई दे रहे हैं। मन्त्रों के द्वारा विधिवत् आहुति दिये जाने पर भी अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित नहीं होती, उससे चिनगारियां निकलने लगतीं हैं। हवन की सामग्री में चीटियां देखी जाती हैं। गौओं का दूध सूख सा गया है। गधों और खच्चरों के रौंगटे खड़े हो जाते हैं और उनकी आंखों से आंसू गिरने लगते हैं। कौवे झुण्ड के झुण्ड मिलकर बड़ा कर्कश शब्द करते और एकत्र होकर महलों पर आ बैठते हैं। गीध भी

इकट्ठे होकर नगर के ऊपर मंडराते हैं, दोनों सन्ध्याओं के समय सियारिनें नगर के समीप आ कर अमंगल शब्द करती हैं। ऐसी स्थिति में मुझे तो यह प्रायश्चित अच्छा मालूम होता है कि सीता रामचन्द्र को लौटा दी जाय। ये अप-शकुन सारी जनता तथा राक्षस, राक्षसी, नगर और अन्तःपुर—सभी के लिए हैं। यह बात आप के कानों तक पहुंचाने में सभी मन्त्री संकोच करते हैं। परन्तु जो बात मैंने देखी या सुनी है, वह मुझे तो आपके आगे निवेदन कर ही देनी चाहिए, उस पर विचार करके आप जैसा उचित समझें, वैसा करें।

तात ! जो काम साम, दान, और भेद—इन तीन उपायों से सिद्ध न हो सकें, उसी के लिए नीतिज्ञों ने बल प्रयोग करने का विधान दिया है। देखिये ! श्री रामचन्द्र जी बेखबर नहीं हैं, वे विजय की इच्छा से आ रहे हैं तो भी आप लोग उन्हें परास्त करना चाहते हैं राक्षसो ! जिन के पास अपार शक्ति और सेना हो, उन शत्रुओं की सहसा कम अवहेलना नहीं करनी चाहिए। भला यशस्वी राम ने राक्षस राज का प्रथम ऐसा कौन सा इतना बड़ा अपकार किया था,जो ये जनस्थान से उनकी स्त्री को हर लाये। खर ने पहले उन पर आक्रमण किया था, इस लिये उन्होंने उसे युद्ध में मार डाला। प्राणियों को यथाशक्ति अपने प्राणों की रक्षा तो करनी ही चाहिए। यदि इसी कारण से सीता को हर कर लाया गया हो तो उसे जल्दी ही लौटा देना चाहिए। नहीं तो सीता के कारण ही हम पर बड़ी आपत्ति आने वाली है। श्रीराम बड़े धर्मात्मा एवं पराक्रमी हैं। उन से हमें व्यर्थ वैर नहीं बढ़ाना चाहिए। जब तक हाथी, घोड़े और अनेकों रत्नों से भरी हुई लंका पुरी को श्रीराम अपने बाणों से विध्वंस नहीं करते, जब तक वानरों की भयंकर सेना इसे नष्ट नहीं करती, तभी तक उन्हें सीता वापस कर दो।

राम क्या हैं. वे क्या कुछ कर सकते हैं, यह बात अब केवल एस्टीमेट लगा कर ही देखने जानने वाली नहीं—राम की शक्ति का प्रदर्शन संसार के सामने भली भांति हो चुका है। विराध मारा गया, कबन्ध भी दुर्गति को प्राप्त हुआ, खर-दूषण-त्रिशिरा अपने को बचा न सके, बाली जैसा सूरमा भी राम के बाण की मार से बच न सका। फिर मैं आप से पूछता हूं, किस शक्ति के बलबूते पर आप इस प्रकार संग्राम, संग्राम, संग्राम का शोर मचा रहे हैं। राम कोई साधारण महापुरुष नहीं, राम के शरीर में कोई दिव्य शक्ति काम कर रही है—

तात राम नहिं नर भूपाला।
भुवनेस्वर कालहु कर काला॥
गो द्विज धेनु देव हितकारी।
कृपा सिंधु मानुष तनु धारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता।
वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥
ताहि बयरु तजि नाइअ माथा।
प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुं बैदेही।
भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥
सरन गएं प्रभु ताहु न त्यागा।
बिस्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन।
सोइ प्रभु प्रगट समुझु जियँ रावन॥
बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस॥
जो आपन चाहै कल्याना।
सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना॥
सो परनारि लिलार गोसाईं।
तजउ चउथि के चंद कि नाईं॥

काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि भजहु भजहिं जेहि संत।
सुमति कुमति सब कें उर रहहीं।
नाथ पुरान निगम अस कहहीं॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥
तात चरन गहि मागउँ राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार॥
यावन्न गृह्णन्ति शरांसि बाणा
रामेरिता राक्षसपुंगवानाम्।
वज्रोपमा वायुसमानवेगाः
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥
यावन्न लंकां समभिद्रवन्ति
बलीमुखाः पर्वतकूटमात्राः।
दंष्ट्रायुधाश्चैव नखायुधाश्च
प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥
न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजं-
स्तथा महापार्श्वमहोदरौ वा।
निकुम्भकुम्भौ च तथातिकायः
स्थातुं न शक्ता युधि राघवस्य॥
सीताभिधानेन महाग्रहेण
ग्रस्तोऽसि राजन् न च ते विमोक्षः।
तामेव सत्कृत्य महाधनेन
दत्त्वाभिरामाय सुखी भव त्वम्॥
यावन्न रामस्य शिताः शिलीमुखा
लङ्कामभिव्याप्य शिरांसि रक्षसाम्।
छिन्दन्ति तावद्रघुनायकस्य भो
तां जानकीं त्वं प्रतिदातुमर्हसि॥
यावन्नगाभाः कपयो महाबला
हरीन्द्रतुल्या नखदंष्ट्रयोधिनः।
लंका समाक्रम्य विनाशयन्ति ते
तावद्द्रुतं देहि रघूत्तमाय ताम्॥

जीवन्न रामेण विमोक्ष्यसे त्वं
गुप्तः सुरेन्द्रैरपि शंकरेण।
न देवराजाङ्कगतो न मृत्योः
पातालोकानपि सम्प्रविष्टः।

विभीषण बृहस्पति के समान बुद्धिमान् थे। उनके इन शब्दों को जैसे तैसे सुनकर इन्द्रजित ने कहा—'चाचाजी! बड़े भारी डरपोकों की तरह आप ये कैसी निरर्थक बातें कह रहे हैं। जिसने इस कुल में जन्म न लिया होगा, वह पुरुष भी ऐसी बातें तो नहीं कहेगा। हमारे वंश में तो एक ये छोटे चाचा ही बल, वीर्य, पराक्रम, धैर्य, शूरवीरता और तेज से रहित हैं।

किं नाम ते तात कनिष्ठवाक्य-
मनर्थकं वै बहुभीतवच्च।
अस्मिन्कुले योऽपि भवेन्न जातः
सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात्॥
सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण
धैर्येण शौर्येण च तेजसा च।
एकः कुलेऽस्मिन्पुरुषो विमुक्तो
विभीषणस्तात कनिष्ठ एषः॥

उन दोनों राजपुत्रों को तो हमारा कोई सामान्य राक्षस ही मार डालेगा, फिर डरपोकों के सिरताज! आप हमें क्यों डरा रहे हैं? मैंने तीनों लोकों के स्वामी महान् पराक्रमी इन्द्र को भी स्वर्ग से हटा कर कैद कर लिया था, जोर-जोर से चिन्घारते हुए ऐरावत को भी पृथ्वी पर पटक दिया था और बलात्कार से उसके दांत उखाड़कर सब देवताओं को भयभीत कर डाला था। ऐसा वीर होकर भी भला उन साधारण मानव-राजकुमारों को मैं क्यों नहीं मार सकूंगा?'

महाबली इन्द्रजित के ये वचन सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण ने ये गम्भीर

अर्थ से युक्त वचन कहे—'भैया ! अभी तुम बालक हो, तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। अतः तुम अभी कर्तव्य-अकर्तव्य का यथार्थ निर्णय नहींकर सकते। इसी से अपने नाश के लिये तुम बहुत सी निरर्थक बातें बक गये हो। इन्द्रजित् तुम पुत्र कहला कर भी वास्तव में मित्र के रूप में रावण के शत्रु ही हो, इसी से तुम रघुनाथजी के द्वारा अपने पिता के विनाश की बातें सुनकर भी अज्ञानवश उनकी हाँ-में हाँ मिला रहे हो। भगवान् श्रीराम के बाण साक्षात् ब्रह्मदण्ड, काल और यमदण्ड के समान हैं। जब वे सामने से छोड़े जायेंगे, उस समय किसकी सामर्थ्य है जो उन्हें सह सके। अतः हम लोग धन, रत्न, आभूषण, वस्त्र, दिव्य मणि और सीता जी को श्रीराम की भेंट करके ही शोकरहित होकर इस नगर में निवास कर सकते हैं।'

रावण ने विभीषण के हितकारी वचन सुनकर उससे कटुतापूर्वक कहा।

नाग्निनान्यानि शस्त्राणि नः पाशा भयावहाः।
घोराःस्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः॥
उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः।
कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं कुकष्टं विहितं च नः॥
विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम्।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः॥

"विभीषण ! शत्रु और कुपित सर्प के साथ तो रहना सम्भव है, किन्तु मित्र कहलाने वाले शत्रु के पक्षपाती का साथ निभाना सम्भव नहीं हैं। मैं सजातीय बन्धुओं का स्वभाव अच्छी तरह जानता हूं, जाति वाले सर्वदा दूसरे सजातियों की आपत्ति में ही प्रसन्न हुआ करते हैं। यदि अपना ही कुटुम्बी राज्य प्राप्त करने पर विद्वान् अथवा धर्मात्मा हो जाय तो कुटुम्बी ही उसका तिरस्कार करना चाहता है। जाति वाले बड़े ही दुष्ट होते हैं, इनका हृदय कभी साफ नहीं होता तथा उन से सर्वदा ही भय की आशंका बनी रहती है। कहते हैं, एक बार कुछ लोगों को हाथ में फंदा लिये आते देखकर हाथियों ने कहा था कि "हमें अग्नि, पाश या अन्य किसी दूसरे प्रकार के शस्त्र से कोई खटका नहीं होता, हमारे लिये तो अपने ही स्वार्थी जाति-भाई भयंकर और खतरे की चीज हैं। निःसन्देह ये ही हमारे पकड़नेका उपाय बता देते हैं। हमतो सबसे अधिक जाति भय को ही दुखदायी समझते हैं।' आज सारा संसार मेरा सम्मान करता है, मैं ऐश्वर्यवान् हूं और शत्रुओं के सिर पर स्थित हूं। अतः ये सब बातें तुम्हें नहीं सुहातीं। जिस प्रकार कमल के पत्ते पर गिरी हुई जल की बूंदें ठहरती नहीं, उसी प्रकार ज्ञानियों के चित से सुहृदयता का सम्पर्क नहीं हो सकता। जैसे हाथी पहले स्नान करके फ़िर सूंड से धूल उछाल कर अपने शरीर को गन्दला कर लेता है, उसी प्रकार दुर्जनों की मैत्री कलुषित होती है। कुलकलंक राक्षस ! तुझे धिक्कार है। यदि कोई दूसरा ऐसी बातें कहता तो इस समय तक जीता नहीं बचता।'

मजलिस का वातावरण कुछ गरमी पकड़ता जा रहा था। उस समय उस मीटिंग की कार्यवाही को स्थगित करते हुए, रावण बोला—शीघ्र ही एक सप्ताह के भीतर-भीतर राक्षस संसद का वृहदाधिवेशन बुलाया जायगा और राष्ट्र पर जो संकट आने वाला है उसी अधिवेशन में अन्तिम निर्णय किया जायगा।

अन्ततोगत्वा अपने मन्त्रिमण्डल की इच्छाओं का समादर करते हुए रावण ने स्वयं भी युद्ध को ही समयोचित कर्त्तव्य माना। बृहद् सभा के बुलाने का दिन निश्चित् हो गया। महान् मेघों की गर्जना के समान घर्घराहट पैदा करने वाले रथ पर आरूढ़ हो राक्षस शिरोमणि

दशग्रीव सभा भवन की ओर प्रस्थित हुआ। स्तुति, जय-जयकार और आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रु दमन महातेजस्वी रावण उस समय विश्व-कर्मा द्वारा निर्मित राजसभा में पहुंचा। वह सभा सदा अपनी प्रभा से उद्भासित होती रहती थी। छः सौ पिशाच उस की रक्षा करते थे। विश्वकर्मा ने उसे बहुत ही सुन्दर बनाया था।

प्रविवेश महातेजाः सुकृतां विश्वकर्मणा ॥

यथायोग्य भिन्न-भिन्न विषयों के लिये उचित सम्मति देने वाले मुख्य-मुख्य मन्त्री, कर्त्तव्य निश्चय में पाण्डित्य परिचय देने वाले सचिव, बुद्धिदर्शी, सर्वत्र सद्गुण सम्पन्न उप-मन्त्री तथा और भी शूरवीर सम्पूर्ण अर्थो के निश्चय के लिये और सुख-प्राप्ति के उपाय पर विचार करने के लिये उस सभा के भीतर सैकड़ों की संख्या में उपस्थित थे।

ततो महात्मा विपुलं सुग्युर्य
रथं वरं हेमविचित्रिताङ्गम्।
शुभं समास्थाय ययौ यशस्वी
विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥

तत्पश्चात् यशस्वी महात्मा विभीषण भी एक सुवर्णजटित सुन्दर अश्वों से युक्त, विशाल, श्रेष्ठ एवं शुभकारक रथ पर आरूढ़ हो भाई की सभा के वृहद्-अधिवेशन में जा पहुंचे। छोटे भाई विभीषण ने पहले अपना नाम बताया, फिर बड़े भाई के चरणों में मस्तक झुकाया। इसी तरह शुक और प्रहस्त ने भी किया। उस सभा में शस्त्रधारी महाबली मनस्वी वीरों का समागम होने पर उनके बीच में बैठा मनस्वी रावण अपनी प्रभा से उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा था जैसे वसुओं के बीच में वज्रधारी इन्द्र देदीप्तमान् होते हैं। शत्रुविजयी रावण ने उस सम्पूर्ण सभा की ओर दृष्टिपात करते हुए सेना-पति प्रहस्त को सर्वप्रथम इस प्रकार का आदेश दिया—"सेनापते! युद्ध सर्वथा सुनिश्चित् है, राष्ट्र-रक्षा के लिये अपनी सेनाओं को सर्वथा सुसज्जित रखो।"

तत्पश्चात् राक्षसीय संसद् को सम्बोधन करते हुए रावण बोला—"आज राक्षस-संसद् की जो यह आपद्कालीन सभा बुलाई गई है, इस का उद्देश्य आप सर्व सज्जनों को विदित ही है। अभी-अभी एक बहुत बड़ी दुर्घटना हमारे सामने आई। हमारे लिये वास्तव में यह बड़ी ही लज्जा की बात है, शत्रु पक्ष का एक साधा-रण सा व्यक्ति हमारे बीच में आये और इस प्रकार हमारी छाती पर लात मार कर फतह के डंके बजाता हुआ साफ-साफ यहां से बच कर चला जाय।—परन्तु ऐसा क्यों हुआ। इसके लिये अपराधी कौन? जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं चौबीस घंटे जागरूक (Alert) हूं। मेरे आठ दूत छाया की तरह राम के साथ हैं, एक-एक क्षण की खबर मेरे पास पहुंच रही है,—परन्तु हनुमान् के आने का समाचार समुद्र के उस पार रामादल की गतिविधियों पर नियुक्त मेरे गुप्त-चर भी मेरे पास भेज नहीं सके।—परन्तु मेरे लिये सर्वाधिक दुखदायी बात यह है कि हनुमान् विभीषण के घर तो आये,—परन्तु विभीषण ने समय पर मुझे इस भय से अवगत् नहीं किया। विभीषण का यह फर्ज था, जब हनुमान् उनके घर बैठे थे, मुझे खबर करते, पुलिस को इत्तिलाह देते—सेनापतियों को सावधान करते। हम जो एक साधारण से मनुष्य के आगे जलील हुए उस में सब से बड़ा अपराधी मैं विभीषण को सम-झता हूं।—

खैर! इस समय परिस्थिति यह है कि समुद्र पार का हमारा समूचा साम्राज्य समाप्त

अर्थ से युक्त वचन कहे—'भैया ! अभी तुम बालक हो, तुम्हारी बुद्धि कच्ची है। अतः तुम अभी कर्तव्य-अकर्तव्य का यथार्थ निर्णय नहींकर सकते। इसी से अपने नाश के लिये तुम बहुत सी निरर्थक बातें बक गये हो। इन्द्रजित् तुम पुत्र कहला कर भी वास्तव में मित्र के रूप में रावण के शत्रु ही हो, इसी से तुम रघुनाथजी के द्वारा अपने पिता के विनाश की बातें सुनकर भी अज्ञानवश उनकी हाँ-में हाँ मिला रहे हो। भगवान् श्रीराम के बाण साक्षात् ब्रह्मदण्ड, काल और यमदण्ड के समान हैं। जब वे सामने से छोड़े जायेंगे, उस समय किसकी सामर्थ्य है जो उन्हें सह सके। अतः हम लोग धन, रत्न, आभूषण, वस्त्र, दिव्य मणि और सीता जी को श्रीराम की भेंट करके ही शोकरहित होकर इस नगर में निवास कर सकते हैं।'

रावण ने विभीषण के हितकारी वचन सुनकर उससे कटुतापूर्वक कहा।

नाग्निनान्यानि शस्त्राणि नः पाशा भयावहाः।
घोराःस्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥
उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः।
कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं कुकष्टं विहितं च नः ॥
विद्यते गोषु सम्पन्नं विद्यते ज्ञातितो भयम्।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥

"विभीषण ! शत्रु और कुपित सर्प के साथ तो रहना सम्भव है, किन्तु मित्र कहलाने वाले शत्रु के पक्षपाती का साथ निभाना सम्भव नहीं हैं। मैं सजातीय बन्धुओं का स्वभाव अच्छी तरह जानता हूं, जाति वाले सर्वदा दूसरे सजातियों की आपत्ति में ही प्रसन्न हुआ करते हैं। यदि अपना ही कुटुम्बी राज्य प्राप्त करने पर विद्वान् अथवा धर्मात्मा हो जाय तो कुटुम्बी ही उसका तिरस्कार करना चाहता है। जाति वाले बड़े ही दुष्ट होते हैं, इनका हृदय कभी साफ नहीं होता तथा उन से सर्वदा ही भय की आशंका बनी रहती है। कहते हैं, एक बार कुछ लोगों को हाथ में फंदा लिये आते देखकर हाथियों ने कहा था कि "हमें अग्नि, पाश या अन्य किसी दूसरे प्रकार के शस्त्र से कोई खटका नहीं होता, हमारे लिये तो अपने ही स्वार्थी जाति-भाई भयंकर और खतरे की चीज हैं। निःसन्देह ये ही हमारे पकड़नेका उपाय बता देते हैं। हमतो सबसे अधिक जाति भय को ही दुखदायी समझते हैं।' आज सारा संसार मेरा सम्मान करता है, मैं ऐश्वर्यवान् हूं और शत्रुओं के सिर पर स्थित हूं। अतः ये सब बातें तुम्हें नहीं सुहातीं। जिस प्रकार कमल के पत्ते पर गिरी हुई जल की बूंदें ठहरती नहीं, उसी प्रकार ज्ञानियों के चित से सुहृदयता का सम्पर्क नहीं हो सकता। जैसे हाथी पहले स्नान करके फ़िर सूंड से धूल उछाल कर अपने शरीर को गन्दला कर लेता है, उसी प्रकार दुर्जनों की मैत्री कलुषित होती है। कुलकलंक राक्षस ! तुझे धिक्कार है। यदि कोई दूसरा ऐसी बातें कहता तो इस समय तक जीता नहीं बचता।'

मजलिस का वातावरण कुछ गरमी पकड़ता जा रहा था। उस समय उस मीटिंग की कार्यवाही को स्थगित करते हुए, रावण बोला—शीघ्र ही एक सप्ताह के भीतर-भीतर राक्षस संसद का वृहदाधिवेशन बुलाया जायगा और राष्ट्र पर जो संकट आने वाला है उसी अधिवेशन में अन्तिम निर्णय किया जायगा।

अन्ततोगत्वा अपने मन्त्रिमण्डल की इच्छाओं का समादर करते हुए रावण ने स्वयं भी युद्ध को ही समयोचित कर्त्तव्य माना। बृहद्-सभा के बुलाने का दिन निश्चित् हो गया। महान् मेघों की गर्जना के समान घर्घराहट पैदा करने वाले रथ पर आरूढ़ हो राक्षस शिरोमणि

दशग्रीव सभा भवन की ओर प्रस्थित हुआ। स्तुति, जय-जयकार और आशीर्वाद सुनता हुआ शत्रु दमन महातेजस्वी रावण उस समय विश्व-कर्मा द्वारा निर्मित राजसभा में पहुंचा। वह सभा सदा अपनी प्रभा से उद्‌भासित होती रहती थी। छः सौ पिशाच उस की रक्षा करते थे। विश्वकर्मा ने उसे बहुत ही सुन्दर बनाया था।

प्रविवेश महातेजाः सुकृतां विश्वकर्मणा ॥

यथायोग्य भिन्न-भिन्न विषयों के लिये उचित सम्मति देने वाले मुख्य-मुख्य मन्त्री, कर्त्तव्य निश्चय में पाण्डित्य परिचय देने वाले सचिव, बुद्धिदर्शी, सर्वत्र सद्‌गुण सम्पन्न उप-मन्त्री तथा और भी शूरवीर सम्पूर्ण अर्थों के निश्चय के लिये और सुख-प्राप्ति के उपाय पर विचार करने के लिये उस सभा के भीतर सैकड़ों की संख्या में उपस्थित थे।

ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं
रथं वरं हेमविचित्रिताङ्गम्।
शुभं समास्थाय ययौ यशस्वी
विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥

तत्पश्चात् यशस्वी महात्मा विभीषण भी एक सुवर्णजटित सुन्दर अश्वों से युक्त, विशाल, श्रेष्ठ एवं शुभकारक रथ पर आरूढ़ हो भाई की सभा के वृहद्-अधिवेशन में जा पहुंचे। छोटे भाई विभीषण ने पहले अपना नाम बताया, फिर बड़े भाई के चरणों में मस्तक झुकाया। इसी तरह शुक और प्रहस्त ने भी किया। उस सभा में शस्त्रधारी महाबली मनस्वी वीरों का समागम होने पर उनके बीच में बैठा मनस्वी रावण अपनी प्रभा से उसी प्रकार प्रकाशित हो रहा था जैसे वसुओं के बीच में वज्रधारी इन्द्र देदीप्यमान् होते हैं। शत्रुविजयी रावण ने उस सम्पूर्ण सभा की ओर दृष्टिपात करते हुए सेना-पति प्रहस्त को सर्वप्रथम इस प्रकार का आदेश दिया—"सेनापते! युद्ध सर्वथा सुनिश्चित् है, राष्ट्र-रक्षा के लिये अपनी सेनाओं को सर्वथा सुसज्जित रखो।"

तत्पश्चात् राक्षसीय संसद् को सम्बोधन करते हुए रावण बोला—"आज राक्षस-संसद् की जो यह आपद्‌कालीन सभा बुलाई गई है, इस का उद्‌देश्य आप सर्व सज्जनों को विदित ही है। अभी-अभी एक बहुत बड़ी दुर्घटना हमारे सामने आई। हमारे लिये वास्तव में यह बड़ी ही लज्जा की बात है, शत्रु पक्ष का एक साधा-रण सा व्यक्ति हमारे बीच में आये और इस प्रकार हमारी छाती पर लात मार कर फतह के डंके बजाता हुआ साफ-साफ यहां से बच कर चला जाय।—परन्तु ऐसा क्यों हुआ। इसके लिये अपराधी कौन? जहां तक मेरा प्रश्न है, मैं चौबीस घंटे जागरूक (Alert) हूं। मेरे आठ दूत छाया की तरह राम के साथ हैं, एक-एक क्षण की खबर मेरे पास पहुंच रही है,—परन्तु हनुमान् के आने का समाचार समुद्र के उस पार रामादल की गतिविधियों पर नियुक्त मेरे गुप्त-चर भी मेरे पास भेज नहीं सके।—परन्तु मेरे लिये सर्वाधिक दुखदायी बात यह है कि हनुमान् विभीषण के घर तो आये,—परन्तु विभीषण ने समय पर मुझे इस भय से अवगत् नहीं किया। विभीषण का यह फर्ज़ था, जब हनुमान् उनके घर बैठे थे, मुझे खबर करते, पुलिस को इत्तिलाह देते—सेनापतियों को सावधान करते। हम जो एक साधारण से मनुष्य के आगे जलील हुए उस में सब से बड़ा अपराधी मैं विभीषण को सम-झता हूं।—

खैर! इस समय परिस्थिति यह है कि समुद्र पार का हमारा समूचा साम्राज्य समाप्त

हो चुका है। हमारा मित्र बाली, जो आर्यावर्त की धरती पर हमारी बहुत बड़ी शक्ति था उस का वध हो चुका है। बाली के छोटे भाई ने राम के आगे घुटने टेक दिये हैं; बाली का पुत्र अंगद अपने को राम का मोस्ट-ओबिडियेन्ट सर्वेन्ट मानने में गौरव का अनुभव कर रहा है, सो प्रैक्टीकली समुद्र पार की लड़ाई हम हार चुके हैं।

आर्यावर्त की धरती पर से हमारे पाँव उखड़ चुके हैं और हमारी इस मातृभूमि लंका से भी हमें समूलें नष्ट करने के लिए राम आंधी और तूफान की तरह लंका की ओर बढ़ा चला आ रहा है। सभा सदो! धर्म अर्थ और काम विषयक संकट उपस्थित होने पर आप लोग प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, हानि-लाभ, और हिताहित का विचार करने में समर्थ हैं। आप लोगों ने सदा परस्पर विचार करके जिन-जिन कार्यों का आरम्भ किया है, वे सब के सब मेरे लिए कभी निष्फल नहीं हुए हैं। उन दिनों जब देवताओं और असुरों का युद्ध चल रहा था आप सब लोगों की सहायता से ही मैंने विजय पाई थी, आज भी आप मेरे उसी प्रकार सहायक हैं,—इस समय भी मैं आपका परामर्श चाहता हूं। आप लोग आपस में सलाह कीजिए और ऐसी सूझ-बूझ से काम लीजिए जिससे हमारी विजय हो और सीता को लौटाना न पड़े।

त्रिलोकनाथो ननु देवराजः
शक्रो मया भूमितले निविष्टः।
भयार्पिताश्चापि दिशः प्रपन्नाः
सर्वे तदा देवगणाः समग्राः॥
सोऽहं सुराणामपि वर्पहन्ता
दैत्योत्तमानामपि शोककर्त्ता।
कथं नरेन्द्रात्मजयोर्न शक्तो
मनुष्ययोः प्राकृतियो सुवीर्यः॥
निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं
स कुम्भकर्णस्य च गर्जितानि।
बिभीषणो राक्षसराजमुख्य
मुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम्॥

राक्षसराज रावण के इन वचनों और कुम्भकर्ण एवं प्रहस्त की गर्जनाओं को सुन कर विभीषण ने फिर एक बार रावण से ये सार्थक और हितकारी वचन कहे।

"राजन! सीता नामधारी विशालकाय महान् सर्प को किसने आपके गले में बाँध दिया है। उसके हृदय का भाग ही उस सर्प का शरीर है, चिन्ता ही विष है, सुन्दर मुस्कान ही तीखी दाढ़ें हैं और प्रत्येक हाथ की पांच उंगलियां ही इस सर्प के पांच सिर हैं। राजन्! ये कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, महापार्श्व, महोदर, निकुम्भ, कुम्भ, अतिकाय—कोई भी राम के सामने ठहर नहीं सकेंगे।

यदि सूर्य वा चन्द्र आपकी रक्षा करें। इन्द्र वा यम आपको गोद में छिपा लें अथवा आप आकाश या पाताल में घुस जाएं तो भी श्रीराम के हाथ से जीवित नहीं बच सकेंगे।

श्रीराम अर्थ विशारद हैं, समस्त कार्यों के साधन में सकुशल हैं।—मैं समस्त सभा सदों से, विशेष रूप से प्रधान मन्त्री महोदय प्रहस्त से निवेदन करता हूं, वे अपने महाराजा को कुमार्ग पर जाने से रोकें। ये महाराज रावण तो व्यसनों के वशीभूत हैं,—स्वभाव से ही कठोर हैं। अतः जैसे भयंकर बलशाली भूतों से गृहीत हुए पुरुष को उसके हितैषी आत्मीयजन उसके प्रति बलात्कार करके भी उसकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार आप सब लोग एकमत होकर आवश्यकता हो तो इसके केश पकड़ कर

भां इसे अनुचित मार्ग पर जाने से रोकें और सब प्रकार से इसकी रक्षा करें।"

उस समय रावण खड़ा हुआ, बोला—आप सब ने हिज होलीनेस विभीषण जो महाराज का भक्ति रस से सना उपदेश सुना। सच बात तो यह है मुझे राम से कोई भय नहीं। विष्णु और इन्द्र से भी मैं घबराने वाला नहीं, यमराज तक से टक्कर लेने की मुझ में शक्ति है। आर्यावर्त के बड़े-बडे देवता मेरे नाम से थर्राते हैं, मुझे भय है तो इस विभीषण से। मेरे दिये हुए टुकड़ों पर पलने वाला यह मेरा छोटा भाई मेरे दुश्मन का एजेन्ट बना हुआ मेरी पीठ पर छुरे मार रहा है। इसको शर्म नहीं आती। ये बच्चा था, जब इसका बाप मर गया—मैं ने पिता बन कर इस की पालना की और यह है उस का इनाम जो इस ने मुझे दिया है। भरी सभा में मेरे ऊपर कीचड़ उछालने में इस ने कोई कसर नहीं छोड़ी। आखिर हमारा भी यह बहुत बड़ा देश है। लगभग सभी देशों के राजदूत यहां पर विराजमान हैं। अन्तर राष्ट्रीय संसार में इस विभीषण ने मुझे किस कदर अपमानित किया है। बार-बार यही रट लगाये जा रहा है—"सीता को वापिस कर दो—सीता को वापिस कर दो।" इस भरे दरबार में मैं विभीषण से एक प्रश्न पूछता हूँ। मैंने सीता के साथ क्या बुराई की, क्या इस के पास कोई प्रमाण है? सीता को पञ्चवटी से उठा कर मैं यहां लाया, मैंने सीता को अपने राज महल में नहीं रखा। सीता जी की आयु मेरी पुत्रवधू से भी छोटी है। मेरी आयु उस स्टेज को पार कर चुकी है, जब मेरे ऊपर वासना-पूर्ति का दोष लगाया जा सके। मेरा पुत्र मेघनाद मेरे जीवन की एकमात्र निधि है, ऐसे सुपात्र पुत्र को पाकर मैं अपने आप को धन्य-धन्य समझता हूँ। वह माता धन्य है जिस ने मेघनाद जैसे पुत्र को जन्म दिया। निःसन्देह मेरा पुत्र मेघनाद राक्षस कुल भूषण है। इस मेरे पुत्र ने खुली लड़ाई में इन्द्र पर विजय प्राप्त करी। आर्यावर्त के बड़े-बड़े सूरमाओं ने मेरे इस वीर पुत्र को इन्द्रजीत की उपाधि से समलंकृत किया। ऐसे वीर पुत्र की मौजूदगी में क्या आप मुझ से उम्मीद कर सकते हैं जैसा कि विभीषण कह रहा है। भले ही हम राक्षस हैं परन्तु हमारी भी कुछ मर्यादायें हैं। पत्नी अपने पति के चरित्र के बारे में बहुत अच्छी राय दे सकती है। मेरे चरित्र के सम्बन्ध में आप मेघनाद को माता से पूछ लीजिये, क्या उसे कोई शिकायत है। विभीषण कहता है—सीता के सम्बन्ध में मेरी नीयत साफ नहीं। यदि संसद भी इस सम्बन्ध में ऐसा ही विचार रखती है, तो मैं आप को खुली छुट्टी देता हूँ, सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की जाँच समिति इन्क्वायरी कमीशन बिठा दीजिये, जो मेरे व्यक्तिगत चरित्र के बारे में अच्छी तरह जाँच पड़ताल करे। जज्जों की उस जाँच समिति का फैसला यदि मेरे खिलाफ जाता है, तो मैं भरी सभा में इस बात की घोषणा करता हूँ, जिस दिन मेरे खिलाफ फैसला होगा, उसी दिन मैं राजगद्दी को छोड़ दूंगा।

ये विभीषण बार-बार चिल्ला रहा है—सीता को वापस कर दो—सीता को वापस कर दो। मैं कहता हूं, मैंने सीता के पांव में बेड़ियाँ नहीं डालीं। सीता जी के हाथों को मैंने हथकड़ियों से नहीं बाँधा, एक शाही कैदी को जो सुविधायें प्राप्त होनी चाहियें वह सभी सुविधायें मैंने सीता को दी हैं। हनुमान् जी प्रातःकाल अशोक वाटिका में आये। चार घंटे तक एकांत

में निर्भयता पूर्वक वे सीता से बातें करते रहे। मैं विभीषण से पूछता हूँ, —हनुमान् जाते समय सीता को साथ लेकर क्यों नहीं गये ? जिस शक्ति के बल पर वे आये थे उसी शक्ति के बल पर वे सीता को लेकर जा सकते थे। जैसा कि मेरे पास समाचार पहुँचा है। हनुमान् जी महाराजको अशोक वाटिका की बात विभीषण ने बताई। मैं विभीषणाचार्य से पूछना चाहता हूं, हनुमान् को आपके घर का अता-पता किसने बताया। मैं राजप्रमुख हूं, मेरे पास सभी साधन हैं परन्तु हनुमान् जी के यहां आने की पूर्व सूचना मुझे भी प्राप्त नहीं हो सकी, विभीषण को कैसे सूचना मिल गई। क्या मैं यह मान लूं कि राममक्त विभीषण की रामादल के साथ बहुत दिनों से साँठ-गाँठ चल रही थी। राज-निष्ठा के साथ विभीषणने कितना बड़ा विश्वास घात किया। छोटा भाई होनें के कारण मैंने विभीषण को राज प्रबन्धकर्त्री सभा का अध्यक्ष-पद प्रदान किया, खजाने की चाबियां इसके हाथों में दे दीं। सरकारी मोहर इसके हवालेकर दी परन्तु इस भक्तशिरोमणी ने हमारे ही साधनों को हमारे ही खिलाफ इस्तेमाल किया। इस विभीषण ने इतना बड़ा अपराध किया है, यदि मैंने पिता बनकर इसकी पालना न की होती तो इसका सर इसके धड़ पर लगा हुआ इस समय दिखाई न देता।

विभीषण बार-बार मेरे ऊपर इलजाम लगाता है कि मैं रोज़ सीता के पास अशोक वाटिका में जाता हूं। भरे दरबार में मैं इस बात को स्वीकार करता हूं कि मैं सीता के पास राज जाता हूं, परन्तु मैं एकान्त में अकेला मिलने सीता को कभी नहीं गया। मैं जब भी अशोक-वाटिका में जाता हूं, दस-बीस महानुभाव मेरे साथ अवश्य होते हैं। सीता जी की देखभाल के लिए मैंने सात स्त्रियों को नियुक्त किया है। अब प्रश्न ये है कि मैं जाता क्यों हूं। मैं खुली संसद में आज इसका जवाब देता हूं। मैं कहता हूं राम वनवास का षड्यन्त्र मुझे मारने के लिए रचा गया है। मैं कहता हूं आर्यावर्त का बच्चा बच्चा राम को पीठ पर है। अन्तरराष्ट्रीय संसार में मुझे जलील करने के लिए पंचवटी निवास का यह Stunt प्रपंच रचा गया। इस विभीषण की इन्सानियत तो देखिए, शूर्पणखा केवल मेरी ही बहिन नहीं थी इसकी भी बहन थी। राम ने अथवा लक्ष्मण ने इसकी बहन का कितना अपमान किया। आर्य पुरुषों के लिए यह कोई शोभा की बात नहीं थी। सीता हरण के अपराध में इसने सौ बार मेरे ऊपर कीचड़ उछाला, तिल का ताड़ बनाया, राइ का पहाड़ बनाया, परन्तु जिस राम ने इसकी बहन का नाक काटा उस राम के प्रति इस देशद्रोही ने निन्दा का एक शब्द तक नहीं कहा।

मैं अशोक वाटिका में जाता हूं, संसार की नजरों में आर्यावर्त के इन ऋषि-मुनियों के ढोल का पोल खोलने के लिये। मैं सीता के मुंह से ये कहलाना चाहता हूं —राम, लक्ष्मण, सीता तीनों जंगल में आये, इनका लक्ष्य रावण को मारना था। ये लोग अन्तर राष्ट्रीय संसार में प्रोपैगंडा कर रहे हैं कि हमने लंका पर धावा इस लिये बोला कि सीता को रावण ले गया, मैं भरी संसद में ये कहता हूं —सीता के लिये राम को युद्ध घोषणा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी। गोलमेज कान्फ्रेन्स द्वारा अथवा शिखर सम्मेलन द्वारा भी यह समस्या हल हो सकती थी। बाली की एजेन्सी के द्वारा भी राम सीता को मंगवा सकते थे। मैं विभीषण से पूछना चाहता हूं—इसके पास इन सब प्रश्नों का उत्तर

क्या है ?

क्या ये लड़ाई केवल सीता के लिए ही लड़ी जा रही है। यदि आज ही मैं सीता जी को हवाई जहाज पर बैठा कर राम के पास भेज दूं तो क्या युद्ध को ज्वाला शान्त हो जायेगी ? क्या युद्ध का ख्याल छोड़ कर सीता को लेकर राम चुपचाप अयोध्या चला जायेगा ? मैं कहता हूं, मैं इज्जत और मान के साथ सीता को वापस कर भी दूं, राम फिर भी लड़ेगा। सीता को तो केवल लड़ाई का मोहरा मात्र ही बनाया गया है। मैं फिर कहता हूं, मेरा राम से कोई झगड़ा नहीं है। मेरा झगड़ा कुबेर के साथ है, मेरा झगड़ा इन्द्र के साथ है, मेरा झगड़ा भगवान् विष्णु के साथ है। आर्यावर्त के ये Big Three, तीन बड़े, मुझे धरती से समूल नष्ट हुआ देखना चाहते हैं और अपनी इस इच्छापूर्ति के लिये ही इन्होंने राम को आगे किया है।

परन्तु इस भरे दरबार में मैं यह घोषणा करता हूं कि मैं जो कदम आगे बढ़ा चुका हूं उसे पीछे नहीं हटाऊंगा। इस अवसर पर मुझे एक घटना याद आई, सुना दूं ? आमों का एक बागीचा था, एक दिन बागीचे के मालिकों ने फैसला किया, सर्व सम्मति से यह प्रस्ताव पास कर दिया, पेड़ों को काट दिया जाए और इस स्थान पर मौडल टाऊन बनाया जाय। छोटे पेड़ घबड़ा गये, भागे भागे बड़े पेड़ के पास पहुंचे। बड़ा पेड़ बोला—बच्चो! रो काहे को रहे हो। बच्चे बोले, दादा! बागीचेके मालिकोंने सर्वसम्मति से प्रस्ताव पास कर दिया है कि हमें काट दिया जाए। दादा बोला—बच्चो ! केवल प्रस्ताव मात्र पास कर देने से पेड़ कट नहीं जाते।

थोड़े दिनों के बाद वहाँ से कोयले की भरी हुई गाड़ियाँ निकलीं। छोटे पेड़ फिर रोने लगे। दादाबाले,—बच्चो !कोयला से पेड़ कभी भी कट नहीं सकता। कुछ दिनों के बाद लोहे से भरे हुए छकड़े गुजरे। बच्चे फिर रोने लगे। दादा बोला --रोने की बात इसमें क्या है; लोहा बर्तन बनाने के लिये लाया गया होगा, अकेला लोहा पेड़ को नहीं काट सकता। दादा की ये बात सुनकर बच्चे चुप हो गये। परन्तु कुछ दिनों के वाद ट्रकों पर लदे हुए लकड़ी के डण्डे निकले, बच्चे फिर रोने लगे। दादा,आज लकड़ी के डण्डे गुजरे। बच्चों के मुंह से डण्डे की बात सुनकर दादा स्वयं दहाड़ें मार-मार कर रोने लगा। बच्चे एकदम सहम गये। बोले—दादा! जब कोयला गुजरा था उस समय तुम नहीं रोये, जब लोहा गुजरा था उस समय तुम नहीं रोये, आज लकड़ी के डण्डे सुनते ही आप रोने लगे—ऐसा क्यों ? दादा बोला—बच्चो ! अकेला लोहा हमें नहीं काट सकता, जब तक हमारे ही जंगल की लकड़ी लोहे का हेन्डल न बने। राम तेज धार वाला लोहा है और ये हमारे ही जंगल की लकड़ी विभीषण इस लोहे का हेन्डल बनेगा। अब हमारे कट जाने में कोई सन्देह नहीं।

ये विभीषण राम के पास जा रहा है। मेरे स्थान पर कोई दूसरा राष्ट्राध्यक्ष होता, इसे पकड़ कर जेल में ठोंस देता, देशद्रोह के अपराध में इस पर मुकदमा चलाता परन्तु आप इसे मेरी कायरता कहिये या उदारता, जिस पेड़ को मैंने स्वयं अपने हाथों से सींचा उसे स्वयं उखाड़ कर फेंकना मैं नहीं चाहता।

जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर सूंड से धूल उछाल कर अपने शरीर को गन्दला कर लेता है उसी प्रकार दुर्जनों का संग होता है।

कुल कलंक निशाचर! धिक्कार है तेरे पर। जा चला जा यहां से, दूर हो जा मेरी आँखों से। देख लूंगा मैं तुझे भी और जिन के तू गीत गा रहा है उन कुबेर, इन्द्र, विष्णु को भी

और उनके शो व्वाय Show Boy राम को भी।

कहत दसानन उठा रिसाई।
खल तोहि निकट मृत्यु अब आई॥
जिअसि सदा सठ मोर जिआवा।
रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा॥
कहसि न खल अस को जग माहीं॥
भुजबल जाहि जिता मैं नाहीं।
ममपुर बसि तपसिन्ह पर प्रीती।
सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती॥

हितं महार्थं मृदु हेतुसंहितम्
व्यतीतकालायतिसम्प्रतिक्षमम्।
निशम्य तद्वाक्यमुपस्थितज्वरः
प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत्।
भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं
न राघवः प्राप्स्यति जातु मैथिलीम्।
सुरैः सहेन्द्रैरपि संगरे कथम्
ममाग्रतः स्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः॥
इत्येवमुक्त्वा सुरसैन्यनाशनो
महाबलः संयति चण्डविक्रमः।
दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं।
विसर्जयामास तदा विभीषणम्॥

परन्तु विभीषण माना नहीं। वह राम की शरण में जाने को तुला बैठा था। चार राक्षस और भी उसके साथ जाने को तैयार थे। रावण बोला—"ये मेरा शत्रु रूपी बन्धु चाहताहैकि मेरी मृत्यु के पश्चात् यह स्वयं लंका का रावण बने, कोई बात नहीं भैय्या! यदि तुले ही बैठे हो तो राम के पास जाओ। युद्ध में जीत भी हुआ करती है और हार भी। यदि मैं जीत गया तो लंका में रावण का राज्य औरप्रभु न करें यदि मैं हार गया तो मरते समय मुझे इतना तो सन्तोष होगा कि लंका में मेरे भाई का राज्य। लंका रहेगी तो आखिर लंका वालों के ही पास। मेरे देश के नर-नारी विदेशियों के हाथों अपमानित तो नहीं होंगे।"

विभीषण राम की शरण में जाने के लिये उतावला हो रहा था। उसे अपनी अन्तिम विजय पर पूरा विश्वास था कि लंका को जीतकर राम उसी को लंका का राजा बनायेंगे। इसी विश्वास पर विभीषण अपने परिवार को लंका में ही छोड़ आया था। रावण ने भी विभीषण के चले जाने के पश्चात् विभीषण के परिवार को किसी प्रकार भी परेशान नहीं किया।

सचिव संग लै नभ पथ गयऊ।
सबहि सुनाइ कहत अस भयऊ॥
रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाऊँ देहु जनि खोरि॥
अस कहि चला विभीषनु जबहि।
आयुहीन भए सब तबहीं॥
चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं।
करत मनोरथ बहु मन माहीं॥
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषि नारी।
दंडक कानन पावनकारी।
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए॥
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउं इन्ह नयनन्हि अब जाइ॥
एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा।
आयउ सपदि सिंधु एहिं पारा॥

दो ही घड़ी में विभीषण उस स्थान पर आ गये जहां लक्ष्मण सहित श्रीराम विराजमान थे।

तं मेरुशिखराकारं दीप्तामिव शतह्रदाम्।
गगनस्थं महीस्थास्ते ददृशुर्वानराधिपाः॥

विभीषण का शरीर सुमेरु पर्वत के शिखर के समान ऊंचा था। वे आकाश में चमकती हुई बिजली के समान जान पड़ते थे। पृथ्वी पर खड़े हुए वानर यूथपतियों ने उन्हें आकाश में स्थित देखा। उन के साथ जो अन्य चार सज्जन थे वे बड़े भयंकर पराक्रम करने वाले थे।

आकाश में ही स्थित रह कर विभीषण ने घोषणा की। मेरा नाम विभीषण है, मैं राक्षस-राज विभीषण का छोटा भाई हूं। मैंने दशग्रीव को सन्मार्ग पर लाने का बेहद प्रयास किया, वह माना नहीं। यही नहीं उसने मुझे बहुत सी कठोर बातें सुनायीं और दास की भाँति मेरा अपमान किया। इस लिये मैं अपने स्त्री-पुत्रों को वहीं छोड़ कर श्रीरघुनाथ जी की शरण में आया हूं।

वानरो! जो समस्त लोकों को शरण देने वाले हैं उन महात्मा श्रीरामचन्द्र जी के पास जाकर शीघ्र मेरे आगमन की सूचना दो और उन से कहो—

सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम्।

शरणार्थी विभीषण सेवा में उपस्थित हुआ है।

सुग्रीव श्रीराम की सेवा में उपस्थित हुआ-- श्री राम के समीप जाकर लक्ष्मण की उपस्थिति में ही कुछ आवेश में आकर बोला प्रभो! आज शत्रु पक्ष का एक कोई बहुत बड़ा आदमी अकस्मात् ही हमारी सेना में प्रवेश पाने के लिए आ गया है।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई।
आवा मिलन दशानन भाई॥

रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः॥

इधर राम दरबार में सुग्रीव ने आकर समाचार दिया—"भगवन्! एक ऐसा समाचार आपको सुनाने आया हूं; सम्भवतया ऐसा समाचार सुनने की आपको भी सम्भावना न होगी। लंका का राजा रावण जिसके विरुद्ध हम लड़ने जा रहे हैं, उसका छोटा भाई विभीषण आपकी शरण में आ गया है। सामरिक दृष्टिकोण से यह समाचार कोई साधारण सा समाचार नहीं है। चार साथी और साथ में लाया है। वह हवाई अड्डे पर नीचे उतरने की आज्ञा चाहता है, इस संबंध में मैं आपका आदेश चाहता हूं।"

राम जानते थे कि विभीषण अपने आप नहीं आया, स्वयं राम ने हनुमंत लाल को भेजा था, "विभीषण को मेरे पास लाओ।" राम की सफलता का सब से बड़ा कारण यह था कि राम ने अपने दिल की बात किसी को नहीं बताई। भगवान् कृष्ण की सफलता का भी यही कारण था कि उन्होंने भी अपने दिल की बात अर्जुन तक को नहीं बतायी। राम की भी सफलता का यही कारण था कि उन्होंने अपने हृदय की बात लक्ष्मण तक को, सीता तक को नहीं बताई। अपने सेनापति तक को नहीं बताई। सब कुछ जानते हुए भी राम सुग्रीव से बोले— 'सेनापते! क्या वास्तव में लंकेश्वर का भाई आ गया है? यदि यह समाचार सत्य है, तो निःसन्देह यह हमारे लिए एक विचार-णीय समस्या है। आप का क्या विचार है, हमें इस समय क्या करना चाहिए?

सुग्रीव बोला --

विश्वासार्हो ने ते राम मायावी राक्षसाधमः।
सीताहर्तुर्विशेषेण रावणस्यानुजो बली॥
मन्त्रिभिः सायुधैरस्मान् विवरे विहनिष्यति॥

इस मायावी राक्षसाधम का कुछ विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि कोई और होता तब तो कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं थी, किन्तु

यह तो सीता का हरण करने वाले रावण का ही छोटा भाई है, सर्व साधन सम्पन्न है, इसके साथ चार और राक्षस भी हैं जो सब प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित हैं।

जानि न जाइ निसाचर माया।
काम रूप केहि कारन आया॥
भेद हमार लेन सठ आवा।
राखिअ बांधि मोहि अस भावा॥

ये राक्षस लोग मन माना रूप धारण कर सकते हैं। इन में अन्तर्धान होने की भी शक्ति होती है। शूरवीर और मायावी तो ये होते ही हैं। इस लिये इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। सम्भव है यह राक्षसराज रावण का कोई गुप्तचर हो। यदि ऐसा हुआ तो हम लोगों में घुस कर यह 'फूट पैदा कर देगा, इस में सन्देह नहीं, अथवा यह बुद्धिमान् राक्षस छिद्र पाकर हमारी विश्वस्त सेना के भीतर घुस कर कभी स्वयं ही हम लोगों पर प्रहार कर बैठेगा। इस बात की भी सम्भावना है।

आप इस विभीषण को रावण का भेजा हुआ ही समझें—"तस्याहं निग्रहं मन्ये क्षमं क्षमवतां वर।" उचित व्यापार करने वालों में श्रेष्ठ रघुनन्दन ! मैं तो उस को कैद कर लेना ही उचित समझता हूं। निष्पाप राम ! मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह राक्षस रावण के कहने से ही यहां आया है। इसकी बुद्धि में कुटिलता भरी है। यह माया से छिपा रहेगा तथा जब आप इस पर पूरा विश्वास करके इसकी ओर सेनिश्चिन्त हो जायंगे,तब यह आप ही पर चोट कर बैठेगा। इसी उद्देश्य से इसका यहां आना हुआ है। यह महाक्रूर रावण का भाई है, इस लिये इसे कठोर दण्ड देकर इसके मन्त्रियों सहित मार डालना चाहिये।

बातचीत की कला जानने वाले एवं रोष में भरे हुए सेनापति सुग्रीव प्रवचनकुशल श्रीराम से ऐसी बातें कह कर चुप हो गये।

परन्तु वास्तविकता जो कुछ भी थी राम Fact and Figures अच्छी तरह जानते थे। फिर भी अपने सेनापति का सन्मान रखते हुए बोले—

सखा नीति तुम नीक बिचारी।
मम पन सरनागत भयहारी॥

हनुमन्तलाल राम के समीप में ही विराजमान थे, वे ही तो विभीषण को प्रेरणा देकर लाये थे। श्रीराम की अन्तर्भावना का दिग्दर्शन कर वे बहुत प्रसन्न हुए—

सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना।
सरनागत बच्छल भगवाना॥

उस समय हनुमन्तलाल जी ने भी अपने प्रभु की बात का समर्थन किया। शरणागति की महिमा गाते हुए हनुमान् जी बोले—

सरनागत कहुं जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पांवर पापमय तिन्हहि बिलोकत हानि॥

उस समय रामचन्द्र जी महाराज ने दरबारे आम लगाया। उस सभा को सम्बोधित करते हुए राम बोले—"अकस्मात् में एक ऐसी घटना घटी है जिस पर हमारे भविष्य का निर्माण होना है। रावण का छोटा भाई मेरी शरण में आया है। मैं आप सब को अपने साथ लेकर चलना चाहता हूं। इस सम्बन्ध में हमें क्या करना है, मैं आपका परामर्श चाहता हूं। सुग्रीव बोला – दोनों भाइयों ने हमारे सर्वनाश के लिये षड्यन्त्र रचाया है;जब हम सो रहे होंगे ये हमारे बीच में रहता हुआ हमें मार डालेगा। मेरी सम्मति में इसको कदापि शरण नहीं देनी चाहिये।" जामवन्त बोला—मेरी भी यही सम्मति है। ये बहुत बुरे समय पर आया है,

बहुत बुरे स्थान पर आया, मेरे ख्याल में इसे मान्यता प्रदान नहीं करना चाहिए। जितने भी बड़े-बड़े बानर सेना नायक वहां पर थे, सब के विचार मिलते-जुलते थे। सब का यही कहना था कि विभीषण को शरणागति प्रदान नहीं करना चाहिए। अन्त में हनुमान् जी खड़े हुए, बोले—आप सब ने जो कुछ कहा है सब ठीक है। मैं केवल एक बात कहने के लिये खड़ा हुआ हूं। जीवन में कितने ही ऐसे सुअवसर आया करते हैं, जब कि भावनाओं से ऊपर उठ कर क्रियात्मिक राजनीति के दृष्टिकोण से भी हमें विचार करना होगा। मैं कहता हूं ये बहुत अच्छे स्थान पर आया है, बहुत अच्छे समय पर आया है। आज कल हम चढ़ती कला में हैं। इस विभीषण के बारे में एक बात मैं स्पष्ट कर दूं—शुरू से ही रावण के साथ इसके अच्छे सम्बन्ध नहीं थे। शुरू से ही इसके मन का झुकाव इसके बड़े भाई कुबेर की ओर ही रहा है। दूसरी बात यह है कि ये स्वयं हमारे पास नहीं आया। आप सब को मालूम है, मैं स्वयं लंका में गया था। विभीषण के घर पर मैंने उससे बातचीत की। उस बातचीत में मैंने ये अच्छी तरह जान लिया कि ये स्वयं लंका के राज्य का अधिकारी बनना चाहता है। इसकी ऐसी लालसा प्रारम्भ से ही थी। दुनियां में सारे भाई भरत जैसे नहीं होते, जो राज्य को लेकर उस पर लात मार दे। ये संसार करनी-भरनी का एक नाटक है। रावण ने अपने बड़े भाई को धक्का देकर स्वयं राज्य लिया, अब यह रावण को धक्का देकर स्वयं राज्य लेना चाहता है। बाली की मृत्यु के पश्चात् इसको एक रोशनी नजर आई। बाली रावण से अधिक बलवान् था। प्रत्येक दृष्टिकोण से वह रावण से बढ़-चढ़कर था। जब उसने देखा कि रामचन्द्र जी ने बाली को क्षण मात्र में खतम कर दिया। इसका उत्साह बढ़ा। इसे विश्वास हो गया कि राम, रावण को भी समाप्त कर देंगे। इसलिये मेरा ये कहना है कि भावनाओं के प्रवाह में बहने के साथ-साथ जो नयी परिस्थतियां पैदा हो गई हैं, बाली की समाप्ति के पश्चात् रावण विरोधी ग्रुप को जो आशा की किरण नजर आई है, उस सब को ध्यान में रखते हुए मेरा यह विचार है कि विभीषण को मान्यता अवश्य प्रदान कर देना चाहिए।"

अन्त में स्वयं श्रीराम खड़े हुए और बोले—आप सर्व सज्जन महापुरुषों ने जो विचार प्रगट किये उन्हें सुनकर मैं गद्‌गद हो गया। देश भक्ति एवं स्वामी भक्ति से ओत-प्रोत आपके सुन्दर शब्दों को सुनकर किसका हृदय गद्‌गद न होगा। आपकी सत्यनिष्ठा ही मेरी सफलता का सब से बड़ा कारण है। मेरी सफलता आप ही की सत्यनिष्ठा का फल है। मैं भी इस संबंध में दो शब्द कहना चाहता हूं। अभी-अभी हमारे महान् नेता निष्काम कर्मयोगी महाबीर वजरंग बली ने इस समस्या की पृष्ठ भूमि पर इतना सुन्दर प्रकाश डाला है जिस से मेरा भार बहुत कम हो गया। मेरा ये विचार है कि राक्षस-प्रवर के आने का हमें पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहिये। जहां तक युद्ध का सवाल है। हम इसे मान्यता दें या न दें युद्ध तो होगा ही। मेरा अन्तरात्मा इस बात का साक्षी है कि विभीषण बुरी नजर से हमारे पास नहीं आया प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष किसी प्रकार भी वह हमारा अहित नहीं करेगा। क्रियात्मिक राजनीति यह है कि हमारे बढ़ते हुए कदमों से आशान्वित होकर अपने लिये लंका का राज्य प्राप्त करने के लिए यह हमारे पास आया है।

न वयं तत्कुलीनाश्च राज्याकांक्षिः हि राक्षसाः।
पंडिता हि भविष्यन्ति तस्मात् प्राह्यो विभीषणः॥

मैं एक बात आप लोगों को बता देना चाहता हूं—ये मेरी भक्ति के लिये नहीं आया, अपनी भक्ति के लिये आया है।

निश्चित रूप से विभीषण बहुत अच्छे [redacted] पर हमें मिला है और बहुत अच्छे समय पर हमें मिला है। विभीषण लंका का कोई साधारण नागरिक नहीं है, राज-परिवार का जगमगाता दीपक है। इसके मेरी शरण में आ जाने से मेरे दिल और दिमाग का बहुत बोझा हल्का हो गया। मैं निरन्तर ये सोच रहा था, लंका को जीतने के पश्चात् लंका का शासन सूत्र किन हाथों में जायेगा, बिना राजा के राज्य की स्थापना कैसे होगी। मैं तो यहां रहूँगा नहीं, सुग्रीव किष्किन्धा चला जायेगा। हनुमान्, अंगद, नल नील सभी किष्किन्धा लौट आयेंगे, लंका का शासन सूत्र कौन सम्भालेगा। विभीषण के यहां आ जाने पर यह समस्या हल हो गई। एक बात और आप लोगों को बता दूं; विभीषण लंका से सीधा, यहां नहीं आया। सर्व प्रथम अपने बड़े भाई कुबेर के पास गया। कुबेर के साथ अच्छी तरह परामर्श करने पर ही यह यहाँ आया है। इसे कुबेर ने स्वयं मेरे पास भेजा है, इस अवस्था में इसे कैसे ठकरा सकता हूँ।

कोटि विप्र बध लागहिं जाहू।
आएं सरन तजउं नहि ताहू॥
सनमुख होई जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥
पापवंत कर सहज सुभाऊ।
भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोई होई।
मोरें सनमुख आव कि सोई॥
निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेतदगर्हितम्॥
बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम्।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप॥
आर्तो वा यदि वा दृप्ता परेषः शरणं गतः।
अरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना॥

विभीषण के सम्बन्ध में एक बात यह भी कही गई है कि यह अपने सगे भाई को छोड़ कर आया है। जो सगे भाई का त्याग कर सकता है, निश्चय ही वह हमारा भी त्याग कर सकेगा। उस समय परम नीतिमान् श्रीराम बोले—हमारे महान नेता सुग्रीव जी ने जो भाई के परित्याग रूप दोष की उद्‌भावना की है उस विषय में मुझे एक ऐसे अत्यन्त सूक्ष्म अर्थ की प्रतीति हो रही है जो कि समस्त राजाओं में प्रत्यक्ष देखा गया है और सभी लोगों में प्रसिद्ध है एक तो उसी कुल में उत्पन्न हुए जाति भाई और दूसरे पड़ोसी देशों के निवासी। राजाओं के ये दो प्रकार के छिद्र बतलाये गये हैं। इसलिये विभीषण को अपनाने में मुझे कोई बुराई नजर नहीं आती। हो सकता है रावण विभीषण को शंका की दृष्टि से देखने लगा हो, इसलिए अपने आप को वहाँ आश्रित पाकर ये हमारी शरण में आया हो। विभीषण के संबंध में ये बात भी कही गई है कि अवसर पाकर हम पर प्रहार करेगा, परन्तु हम लोग इसके कुटुम्बी तो हैं नहीं। ये राज्य पाने का अभिलाषी है और इन राक्षसों में बड़े-बड़े विद्वान भी हुआ करते हैं। इसलिए मेरी आन्तरात्मा विभीषण को शुद्ध समझती है और हनुमान् जी ने भी अनुमान और भाव से इसकी भीतर बाहर से परीक्षा कर ली है।

अन्त में मैं एक बड़ी ही महत्त्वपूर्ण बात आप की सेवा में निवेदन कर देना चाहता हूं। मनुष्य का मन बदलते देर नहीं लगती। यदि

विभीषण हमारे बीच में रहते हुए हमारा अनिष्ट करना चाहे कर सकता है परन्तु मैं भी यहां नये-नये प्रयोग करने नहीं आया। व्यक्ति से देश बड़ा है। देश के भले के लिये मैं एक विभीषण नहीं हजारों विभीषणों का बलिदान कर सकता हूं। मैं जो इसको अपनी शरण में ले रहा हूं केवल देश के लिए। लंका के सारे रहस्य इसके पास हैं, हमारा सामना करने के लिये रावण ने जो-जो योजनाएं बनाई हैं विभीषण उन सब को जानता है। समुद्र को पार करना भी हमारे लिये बहुत आसान हो जायेगा। समुद्र को किस प्रकार पार किया जाये, यदि समुद्र पर पुल हमें बांधना है तो इसमें विभीषण का हमें मूल्यवान् सहयोग मिलेगा। हम विभीषण का यहां आने का पूरा-पूरा लाभ उठावेंगे। अन्तर-राष्ट्रीय संसार में भी विभीषण के यहां आ जाने पर हमारी स्थिति सुदृढ़ हो गई है। मैं घोषणा करता हूं कि विभीषण को शरणागति देने में और इसे मान्यता प्रदान करने में हमें लाभ ही होगा। बाकी रही बात भेद लेने की, सोते हुए छुरा मारने की, नक्शे लेकर भाग जाने की, बेतार के तार द्वारा हमारी खबरें हमारे दुश्मन तक पहुंचाने की, मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि मैंने इन सब बातों का पहले से प्रबन्ध कर लिया है। आदर्शवादी मैं जरूर हूं परन्तु मैं साथ ही साथ व्यवहारवादी भी हूं। मै जानता हूं मेरी छोटी सी भूल समूचे देश को रक्त से रंग देगी। पिछले चौदह साल में जितना मैं ने परिश्रम किया है सब पर पानी फेर देगी। राक्षसी सत्ता का प्रवाह एक बार आर्यावर्त की ओर बहने लगा तो न इसको विन्ध्याचल रोक सकेगा न हिमालय। अपने कर्तव्य पालन में यदि मैंने थोड़ी सी भी ढील कर दी, परिणाम भयंकर होगा। फिर मैं कहता हूं, मैं विभीषण को अपनाऊंगा परन्तु मर्यादा से अधिक उस पर विश्वास नहीं करूंगा।

भेद लेन पठवा दससीसा।
तबहुं न कछु भयहानि कपीसा।
जग महुं सखा निसाचर जेते।
लछिमनु हनइ निमिष महुं तेते॥

मैं ने अभी-अभी अपने भाई लछिमन को कह दिया, चौबीस घंटे विभीषण की निगरानी रखना। लक्ष्मण मनोविज्ञान का पण्डित है। चेहरे के उतार-चढ़ाव को देखते ही मनुष्य के मन की बात समझ लेने की उसमें शक्ति है। जब तक ये कर्तव्य-पालन लक्ष्मण के हाथ में है, विभीषण का अन्तरद्वन्द सफल नहीं हो सकेगा। मैं यदि चाहूं तो मैं स्वयं आधे निनिष में ही लोकपालों के सहित सम्पूर्ण लोकों को नष्ट कर सकता हूं और आधे निमेष में ही सब को रच सकता हूं।

यदीच्छामि कपिश्रेष्ठ लोकान्सर्वानमहेश्वरान्।
निमिषार्धेन संहन्यां सृजामि निमिषार्धतः॥
अतोमयाभयं दत्तं शीघ्रमानय राक्षसम्।
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते॥
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम्॥

इसलिये मैं आप से निवेदन करता हूं कि आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें। मैं विभीषण को अभयदान देता हूं। मेरा ये नियम है कि जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं तुम्हारा हूं" ऐसा कहकर मुझ से अभय माँगता है उसे मैं समस्त प्राणियों से निर्भय कर देता हूं।

उभय भाँति तेहि आनिहु हँसि कह कृपा निकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले अंगद हनू समेत॥

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीवो यदि वा रावणः स्वयम् ॥

अतः कपिश्रेष्ठ सुग्रीव ! वह विभीषण हो अथवा रावण ही आ गया हो, तुम उसे ले आओ । मैं ने उसे अभय दान दे दिया ।

प्रभु के उदारतापूर्ण वचन सुनकर सुग्रीव बोला, लोकेश्वरशिरोमणे ! आपने जो यह श्रेष्ठ धर्म की बात कही है, इस में क्या आश्चर्य है ? क्योंकि आप महान् शक्तिशाली और सन्मार्ग पर स्थित हैं । यह मेरा अन्तरात्मा भी विभीषण को शुद्ध समझती है । हनुमान् जी ने भी अनुमान भाव से उनकी भीतर-बाहर सब ओर से भली भांति परीक्षा ले ली है । अतः रघुनन्दन ! अब विभीषण शीघ्र ही यहां हमारे होकर रहें और हमारी मित्रता प्राप्त करें ।

तदनन्तर वानरराज सुग्रीव की वह बात सुनकर भगवान् राम शीघ्र आगे बढ़े विभीषण से मिलने के लिये, मानो देवराज इन्द्र पक्षी राज गरुड़ से मिलने जा रहे हों ।

राम के वचनों का पालन करते हुए सुग्रीव अति प्रसन्न होकर विभीषण को लेकर राम की सेवा में उपस्थित हुए । विभीषण ने भी रघुनाथ जी को साष्टांग प्रणाम करके हर्ष से गद-गद कंठ हो [illegible] मुद्रित पूर्वक श्री राम को दंडवत प्रणाम किया ।

प्रभो ! मैं आप की शरण में हूं । आप के लिये मैं ने लंका को छोड़ा, अपने सम्बन्धियों को, पत्नी को, पुत्री को, परिवार को, सम्पत्ति को छोड़ा – अब यह मेरा सब कुछ आप के पास मेरी अमानत है ।

दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा ।
भुज बिसाल गहि हृदयं लगावा ॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी ।
बोले बचन भगत भयहारी ॥

कहु लंकेस सहित परिवारा ।
कुसल कुठाहर बास तुम्हारा ॥

श्री रामचन्द्र ने बड़े आदर के साथ विभीषण को अपने पास बैठाया । जो प्रश्न राम ने पूछा था उसकी प्रतीक्षा नहीं की । स्वयं ही प्रश्न करने के पश्चात् श्री राम स्वयं उत्तर देते हुए बोले—

खल मंडली बसहु दिनु राती ।
सखा धरम निबहइ केहि भांती ॥

मित्रवर ! जिन्हें अपने बाप पर दया न आई, अपनी बहनों पर दया न आई उन्हें तुम पर कैसे दया आ सकती थी । दारा और मुराद जैसे भाइयों को जिन्होंने बीच बाजार के कतल किया, अपने बाप को पानी की एक-एक बूंद से तरसा कर मारा, जिनका सारा इतिहास रक्त-रंजित है । जिनको अपने दादा गुरु जिन्ना पर दया न आई । जिन्ना की लाश २७ दिन तक ज्यारत में पड़ी रही । लियाकत अली खां को भरी सभा में गोली से उड़ा दिया गया । उसके बाद ख्वाजा नाजिमुद्दीन आये । वह महीने से ज्यादा टिक न पाये, फिर आये हसन शहीद सोहरावर्दी, सात महीने के बाद उनका भी बिस्तर गोल । फिर आये मुहम्मद अली बोगरा, ८ महीने से ज्यादा वे भी टिक न पाये । उसकी जगह सम्भाली मुहम्मद अली जालन्धरी ने, वे भी कुर्सी पर बैठे ही थे कि गये । फिर आये डा० खान साहेब, वे भी गोली का शिकार बने । उनके स्थान पर बैठे फिरोज खाँ नून । उनका गला घोंटने को आ गये चुन्दरीगर । उनका भी कुर्सी का चाव पूरा नहीं हुआ था कि आ गये सिकन्दर मिरजा । मिरजा साहब की छाती पर पिस्तौल ताना अयूब ने । अयूब की छाती पर चढ़ बैठा याह्या खां और याह्या खां को पकड़ जेल में डाला भुट्टो ने । अब

देखना यही है कि भुट्टो का ताऊ कब आता है। टिक्का खां आता है कि वली खां। ये है रावणीय लंका का पिछले २५ साल का इतिहास।

रामचन्द्र जी महाराज नौ महीने तक सोचते नहीं रहे। उन्होंने तुरन्त फैसला कर लिया। विभीषण से बोले—लंकेश्वर! तुम मुझ पर विश्वास करो मैं रावण को उसके मन्त्री मंडल एवं पुत्रों सहित समाप्त करके अपने हाथों से लंका की राजगद्दी पर तुम्हारा अभिषेक करूंगा।

अहं हत्वा दशग्रीवं सप्रहस्तं सहात्मजम्।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे॥

उस समय रामचन्द्र जी महाराज लक्ष्मण से बोले—लक्ष्मण! समुद्र का जल लाओ। मैं अभी समुद्र जल से विभीषण का राज्याभिषेक करूंगा। यह मेरे दर्शनों का फल तत्काल देखे। जब तक सूर्य-चन्द्र एवं पृथ्वी की स्थिति है तथा जब तक लोक में मेरी कथा है तब तक यह लंका का राज्य करेगा।

एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा।
माँगा तुरत सिंधु कर नीरा॥
जदपि सखा तव इच्छा नाहीं।
मोर दरसु अमोघ जग माहीं॥
अस कहि रामतिलक तेहि सारा।
सुमन वृष्टि नभ भई अपारा॥

जो संपति सिव रावनहि दीन्हि दिएं दस माथ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ॥

उस समय भगवान् श्री रमापति ने स्वयं अपने कर कमलों से विभीषण का राज्याभिषेक किया। उस समय समस्त वानरसेना प्रसन्न होकर "धन्य है, धन्य है" ऐसा कहने लगे, और सुग्रीव ने विभीषण को गले लगाकर कहा—"विभीषण! हम सब परमात्मा राम के दास हैं तथापि तुम हम सब में प्रधान हो क्योंकि तुमने केवल भक्ति से ही इनकी शरण ली है। अब तुम्हें रावण का नाश करने में हमारी भरपूर सहायता करनी चाहिए। विभीषण बोला—मैं आप सब को यह विश्वास दिलाता हूं कि मुझ में जितनी भी सामर्थ्य है मैं सच्चे हृदय से भक्ति भाव से श्री राम की सेवा करता रहूंगा।

अब पद देखि कुसल रघुराया।
जौं तुम्ह कीन्ह जानि जन दाया॥
तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजन न राम कहुं सोक धाम तजि काम॥
अब मैं कुसल मिटे भय भारे।
देखि राम पद कमल तुम्हारे॥
तुम्ह कृपाल जा पर अनुकूला।
ताहि न व्याप त्रिविध भव सूला॥
मैं निसिचर अति अधम सुभाऊ।
सुभ आचरनु कीन्ह नहि काऊ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा।
तेहि प्रभु हरषि हृदयं मोहि लावा॥
अब कृपाल निज भगति पावनी।
देहु सदा भव मन भावनी॥

उस समय विभीषण हाथ जोड़ बोला—

राक्षसानां वधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम्॥

प्रभो! राक्षसों के संहार में और लंकापुरी पर आक्रमण करके उसे जीतने में मैं आपकी यथाशक्ति सहायता करूंगा।

अब प्रश्न था समुद्र के पार जाने का। वैसे तो राक्षस लोग रोज़ ही समुद्र के इधर-उधर आते जाते थे, रावण भी आया था, शूर्पणखा, अकम्पन, खर आदि कई बार आये गये, परन्तु यहाँ प्रश्न था एक सेना को समुद्र पार ले जाने का। उस समय साक्षात् समुद्र मानव रूप में राम के सामने उपस्थित हो, बोला,—

अयं सौम्य नलो नाम तनयो विश्वकर्मणः।
एष सेतुं महोत्साहः करोतु मयि वानरः।
तमहं धारयिष्यामि यथा ह्येष पिता तथा॥

सौम्य! आपकी सेना में जो यह नल नामक कान्तिमान् वानर है, साक्षात् विश्वकर्मा का पुत्र है। यह महान् उत्साही वानर अपने पिता के समान ही शिल्पकर्म में समर्थ है, अतः यह मेरे ऊपर पुल का निर्माण करे। मैं उस पुल को धारण करूंगा। यों कहकर समुद्र अदृश्य हो गया। उन वानरों ने सब ओर पत्थर गिराकर समुद्र में हलचल मचा दी। हाथी के समान विशालकाय वानर बड़े उत्साह और तेजी के साथ काम में लगे हुए थे। पहले दिन उन्होंने चौदह योजन लंबा पुल बांधा। दूसरे दिन २० योजन, तीसरे दिन २१ योजन, चौथे दिन २२ योजन, पांचवें दिन २३ योजन पूरे १२५ घंटे रात-दिन काम करके वानर सेना ने वह पुल तैयार कर दिया। उस पुल को देख कर श्रीराम बहुत प्रसन्न हुए, बोले -

परम रम्य उत्तम यह धरनी।
महिमा अमित जाइ नहिं बरनी॥
करिहहुं इहां संभु थापना।
मोरे हृदयं परम कलपना॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा।
सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
सिव द्रोही मम भगत कहावा।
सो नर सपनेहुं मोहि न पावा॥
जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं।
ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
बांधा सेतु नील नल नागर।
राम कृपां जसु भयउ उजागर।
श्री रघुबीर प्रताप ते सिंधु तरे पाषान।
ते मति मंद जे राम तजि भजहिं जाइ प्रभु आन॥

रामेश्वरम् की स्थापना से श्रीराम के वनागमन का उद्देश्य पूरा हो गया। आर्यावर्त की धरती पर से रावणीय सत्ता को समाप्त कर आर्यवीरों ने आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा पर आर्य राष्ट्रीयता का प्रतीक भगवा-ध्वज फहरा दिया।

नल के बनाये हुए सौ योजन लंबे और दस योजन चौड़े उस पुल को देवताओं और गन्धर्वों ने देखा। यह पुल बड़ा ही विशाल, सुन्दरता से बनाया हुआ, शोभा सम्पन्न, समतल और सुसम्बद्ध था। पुल तैयार हो जाने पर अपने सचिवों के साथ विभीषण गदा हाथ में लेकर समुद्र के दूसरे तट पर खड़े हो गये, जिस से शत्रुपक्षीय राक्षस यदि पुल तोड़ने के लिये आवें तो उन्हें दण्ड दिया जा सके।

फिर विभीषण और सुग्रीव के साथ वे सभी श्रेष्ठ वानर गर्जना करते हुए युद्ध का ही निश्चय रखने वाले शत्रुओं का वध करने के लिये आगे बढ़े। धीरे-धीरे वानरों की सारी सेना नल के बनाये हुए पुल से समुद्र के उस पार पहुंच गयी। राजा सुग्रीव ने फल, मूल और जल की अधिकता देख सागर के तट पर ही सेना का पड़ाव डाला। भगवान् श्री राम का वह अद्भुत और दुष्कर कर्म देख कर सिद्ध चारण और महर्षियों के साथ देवता लोग उनके पास आये तथा उन्होंने अलग-अलग पवित्र एवं शुभ जल से उनका अभिषेक किया।

जयस्व शत्रून् नरदेव मेदिनीं
ससागरां पालय शाश्वतीः समाः।
इतीव रामं नरदेवसत्कृतं
शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन्॥

फिर बोले,—नरदेव! तुम शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और समुद्र पर्यन्त सारी पृथ्वी का सदा पालन करते रहो। इस प्रकार भांति भांति के मंगल सूचक वचनों द्वारा राज-सम्मानित श्रीराम का उन्होंने अभिनन्द किया।

(१२)

हर हर महादेव

ये राममेव सततं भुवि शुद्धसत्त्वा ।
ध्यायन्ति तस्य चरितानि पठन्ति सन्तः ।
मुक्तास्त राव एव भोग महाहिपाशैः ।
सीतापतेः पद्मनन्तसुखं प्रयान्तिः ॥

माताओ बहनो एवं भद्र पुरुषो !

ततः स रामो हरिवाहिनीपति–
विभीषणेन प्रतिनन्द्य सत्कृतः ।
सलक्ष्मणो यूथपयूथसंयुतः
सुवेलपृष्ठे न्यवसद् यथा सुखम् ॥

तत्पश्चात् विभीषण द्वारा सादर सम्मानित हो वानर सेना के स्वामी श्री राम ने अपने भाई लक्ष्मण और यूथपतियों के समुदाय के साथ सुवेलपर्वत के पृष्ठ भाग पर सुख पूर्वक निवास किया।

इहां सुबेल सैल रघुबीरा ।
उतरे सेन सहित अति भीरा ॥
सिखिर एक उतंग अति देखी ।
परम रम्य सम सुभ्र बिसेषी ॥
तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए ।
लछिमन रचि निज हाथ डसाए ॥
ता पर रुचिर मृदुल मृग छाला ।
तेहिं आसन आसीन कृपाला ॥
बड़ भागी अंगद हनुमाना ।
चरन कमल चापत बिधि नाना ॥
एहि बिधि कृपा रूप गुन धाम रामु आसीन ।
धन्य ते नर एहि ध्यान जे रहत सदा लयलीन ॥

उस समय श्रीराम बोले,—जिसने न तो धर्म को जाना है, न सदाचार को भी समझा है और न कुल का ही विचार किया है, केवल राक्षसोचित नीच बुद्धि के कारण ही वह निन्दित कर्म किया है, उस नीच राक्षस का नाम लेते ही उसपर मेरा रोष जाग उठता है। केवल उसी अधम निशाचर के अपराध से मैं समस्त राक्षसों का वध करूंगा। काल के पाश में बँधा हुआ एक ही पुरुष पाप करता है, किन्तु उस नीच के अपने ही दोष से सारा कुल नष्ट हो जाता है। वहीं सुबेल पर्वत के उच्चतम शिखिर पर विराजमान प्रभु रामचन्द्र ने प्रथम बार राक्षसराज रावण की राजधानी को देखा।

उस समय जीवन में प्रथम बार श्री लङ्का के जिस स्वरूप को रामजी ने देखा, उस रूप का दिग्दर्शन कराते हुए आदिकवि लिखते हैं—

त्रिकूट शिखरे रम्ये निर्मितां विश्वकर्मणा ।
ददर्श लङ्का सुन्यस्तां रम्यकानन शोभिताम् ॥
दशयोजन विस्तीर्णा विंशद्योजनमायता ।
सा पुरी गोपुरैरुच्चैः पाण्डुराम्बुदसन्निभैः ॥
काञ्चनेन च शालेनः राजतेन च शोभते ॥

वह पुरी दस योजन चौड़ी और बीस योजन लंबी थी। सफेद बादलों के समान ऊँचे-

ऊँचे गोपुर तथा सोने और चाँदी के परकोटे उसकी शोभा बढ़ाते थे। जैसे ग्रीष्म के अन्त-काल—वर्षा ऋतु में घनीभूत बादल आकाश की शोभा बढ़ाते हैं, उसी प्रकार प्रासादों और विमानों से लङ्का अत्यन्त सुशोभित हो रही थी।

उस पुरी में सहस्र खम्भों से अलङ्कृत एक चैत्यप्रासाद था, जो कैलास-शिखर के समान दिखायी देता था। वह आकाश को मापता हुआ-सा जान पड़ता था। राक्षसराज रावण का वह चैत्यप्रासाद लङ्कापुरी का आभूषण था। कई सौ राक्षस रक्षा के सभी साधनों से सम्पन्न होकर प्रतिदिन उसकी रक्षा करते थे। इस प्रकार वह पुरी बड़ी ही मनोहर, सुवर्णमयी, अनेक उद्यानों से सुशोभित थी।

तां रत्नपूर्णां बहुसंविधानां
प्रासादमालाभिरलंकृतां च।
पुरीं महायन्त्रकपाटमुख्यां
ददर्श रामो महता बलेन॥

इस प्रकार अपनी विशाल सेना के साथ श्री रघुनाथजी ने अनेक प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण, तरह-तरह की रचनाओं से सुसज्जित, धन-धान्य से सम्पन्न, तथा सम्पूर्ण मनोवाञ्छित वस्तुओं से भरी-पूरी, ऊँचे-ऊँचे महलों की पंक्ति से अलंकृत और बड़े-बड़े यन्त्रों से युक्त मजबूत किवाडों वाली उस स्वर्गतुल्य नगरी को देखा जिसे देख कर श्रीराम बड़े विस्मित हुए'—

उस समय श्रीराम अपने लघुभ्राता लक्ष्मण से बोले—

क्षिप्रमद्य दुराधर्षां पुरीं रावणपालिताम्।
अभियाम जवेनैव सर्वतो हरिभिर्वृताः॥

लक्ष्मण! रावण के द्वारा पालित यह लङ्कापुरी शत्रुओं के लिये दुर्जय है, तथापि अब हम शीघ्र ही बानरों के साथ इसपर सब ओर से वेगपूर्वक आक्रमण करें। लक्ष्मण से ऐसा कहते हुए वीर महाबली श्रीरामचन्द्र जी उस पर्वत-शिखर से तत्काल नीचे उतर आये। उस पर्वत से उतर कर धर्मात्मा श्री रघुनाथजी ने अपनी सेना का निरीक्षण किया, तदनन्तर महाबाहु धनुर्धर श्री रघुनाथ जी उस विशाल सेना के साथ शुभ मुहूर्त में आगे-आगे लङ्कापुरी की ओर प्रस्थित हुए। उस समय विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, ऋक्षराज जाम्बवान्, नल, नील और लक्ष्मण उनके पीछे-पीछे चले।

शत्रुओं का दमन करने वाले वे दोनों भाई श्री राम और लक्ष्मण थोड़ी ही देर में लंकापुरी के पास पहुंच गये। उस पुरी के चारों ओर बड़ा ही अद्भुत और उँचा परकोटा था। उन परकोटों के कारण लंकापुरी के भीतर पहुँचना किसी के लिये भी अत्यन्त कठिनथा। यद्यपि देवताओं के लिये भी लंका पर आक्रमण करना कठिन काम था तो भी श्रीराम की आज्ञा से प्रेरित हो वानर दल ने चारों ओर से उस पुरी को घेरे में ले लिया।

पूर्व द्वार पर नील, मैन्द, और द्विविद नियुक्त हुए।

दक्षिण द्वार का उत्तरदायित्व महाबली अङ्गद, ऋषभ, गवाक्ष, गज, गवय ने सम्भाला।

पश्चिम द्वार पर स्वयं हनुमान जी थे।

उत्तर और पश्चिम के मध्य भाग में जो राक्षस सेना की छावनी थी, उस पर आक्रमण करने का भार सुग्रीव पर था।

सुषेण और जाम्बवान् बहुत सी सेना के

साथ श्री राम चन्द्र जी के पीछे थोड़ी ही दूरी पर रह कर बीच के मोर्चे की रक्षा करते रहे।

श्रीराम बोले—'दैत्यों, दानव समूहों तथा महात्मा ऋषियों का अपकार करना ही जिसे प्रिय लगता है, जिस का स्वभाव क्षुद्र है, जो वरदान की शक्ति से सम्पन्न है और प्रजाजनों को संताप देता हुआ सम्पूर्ण लोकों में घूमता रहता है, उस राक्षसराज रावण के वध का दृढ़ निश्चय लेकर स्वयं मैं सुमित्राकुमार लक्ष्मण के साथ नगर के उत्तर फाटक पर रावण पर प्रहार करूंगा।

न चैव मानुषं रूपं कार्यं हरिभिराहवे ।
एषा भवतु नः संज्ञा युद्धेऽस्मिन् वानरे बले ॥

वानरों को युद्ध में मनुष्य का रूप धारण नहीं करना चाहिए, इस युद्ध में वानरों की सेना का हमारे लिये यही संकेत या चिन्ह होगा।

वानरा एव नश्चिन्हं स्वजनेऽस्मिन् भविष्यति ।
वयं तु मानुषेणैव सप्त योत्स्यामहे परान् ॥
अहमेव सह भ्रात्रा लक्ष्मणेन महौजसा ।
आत्मना पञ्चमश्चायं सखा मम विभीषणः ॥

इस स्वजनवर्ग में वानर ही हमारे चिन्ह होंगे। केवल हम सात व्यक्ति ही मनुष्य रूप में रहकर शत्रुओं के साथ युद्ध करेंगे।

मैं, लक्ष्मण तथा विभीषण और इन के साथ आने वाले चार अन्य, केवल यही सात मनुष्य रूप में रहेंगे।

श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव से सुरक्षित वह विशाल वानर वाहिनी समस्त देवताओं और असुरों के लिये भी अत्यन्त ही दुर्जय थी।

इस प्रकार राक्षसों के वध के लिये अपनी सेना को क्रम-बद्ध खड़ी करके उसके बाद के कर्त्तव्यों को जानने की इच्छा से श्री रघुनाथ जी ने मंत्रियों के साथ बारंबार सलाह की और एक निश्चय पर पहुँचकर साम, दान आदि उपायों के क्रमशः प्रयोग से सुलभ होने वाले अर्थतत्त्व के ज्ञाता श्रीराम विभीषण की अनुमति ले राजधर्म का विचार करते हुए वालिपुत्र अंगद को बुला कर उन से इस प्रकार बोले—"सौम्य ! कपि-प्रवर ! दशमुख रावण राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट हो गया, अब उसका ऐश्वर्य समाप्त हो चला, वह मरना ही चाहता है, इसलिये उसकी विचार शक्ति नष्ट हो गई है। तुम परकोटा लांघकर लंकापुरी में भय छोड़कर जाओ और व्यथारहित हो उस से मेरी ओर से ये बातें कहो—

निशाचर ! राक्षसराज ! तुम ने मोह-वश घमंड में आकर ऋषि, देवता, गन्धर्व, अप्सरा, नाग, यक्ष और राजाओं का बड़ा अपराध किया है। ब्रह्मा जी का वरदान पाकर तुम्हें जो अभिमान हो गया, निश्चय ही उसके नष्ट होने का समय आ गया है। तुम्हारे उस पाप का दुःसह फल आज उपस्थित है। मैं अपराधियों को दण्ड देने वाला शासक हूं। तुमने जो मेरी भार्या का अपहरण किया है, इससे मुझे बड़ा कष्ट पहुँचा है, अतः तुम्हें उसका दण्ड देने के लिये लंका के द्वार पर खड़ा हूं। राक्षस ! यदि तुम युद्ध में स्थिरतापूर्वक खड़े रहे तो उन समस्त देवताओं, महर्षियों और राजर्षियों की पदवी में पहुंच जाओगे। उन्हीं की भांति तुम्हें परलोकवासी होना पड़ेगा। नीच निशाचर ! जिस बल के भरोसे तुमने मुझे धोखा देकर माया से सीता का हरण किया है, उसे आज के युद्ध के मैदान में दिखाओ।

यदि तुम मिथिलेशकुमारी को लेकर मेरी शरण में नहीं आये तो मैं अपने इन तीखे बाणों द्वारा संसार को राक्षसों से सूना कर दूंगा। राक्षसों में श्रेष्ठ विभीषण भी मेरे साथ यहां

आये हैं, निश्चय ही लंका का निष्कंटकराज्य इन्हें प्राप्त होगा। तुम पापी हो। तुम्हें अपने स्वरूप का ज्ञान नहीं है और तुम्हारे संगी साथी भी मूर्ख हैं, अतः इस प्रकार अधर्म पूर्वक अब तुम एक क्षण भी राज्य को भोग नहीं सकोगे राक्षस, शूरता का आश्रय ले धैर्य धारण करके मेरे साथ युद्ध करो। रणभूमि में मेरे बाणों से शान्त होकर तुम शुद्ध एवं निष्पाप हो जाओगे।

निशाचर! मेरे दृष्टिपथ में आने के पश्चात् यदि तुम पक्षी होकर तीनों लोकों में उड़ते और छिपते फिरो तो भी अपने घर को जीवित नहीं लौट सकोगे। अब मैं तुम्हें हित की बात बताता हूं। "तुम अपना श्राद्ध कर डालो,—परलोक में सुख देने वाले दान-पुन्य कर लो और लंका को जी भरकर देख लो; क्योंकि तुम्हारा जीवन मेरे अधीन हो चुका है।"

भगवान् श्रीराम के ऐसा कहने पर तारा कुमार अंगद मूर्तिमान् अग्नि की भांति आकाश मार्ग से चल दिये। श्रीमान् अंगद एक ही मुहूर्त में परकोटा लाँघकर रावण के राजमहल में जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने मन्त्रियों के साथ शान्त-भाव से बैठे रावण को देखा। वानरश्रेष्ठ अंगद सोने के बाजूबन्द पहने हुए थे और प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशित हो रहे थे; वे रावण के निकट पहुंचकर खड़े हो गये। उन्होंने पहले अपना परिचय दिया और मंत्रियों सहित रावण को श्रीरामचन्द्र जी की कही हुई सारी उत्तम बातें ज्यों की त्यों सुना दीं। न तो एक भी शब्द कम किया और न एक भी शब्द बढ़ाया। वे बोले,—मैं अनायास ही बड़े-बड़े उत्तम कर्म करने वाले कोशलनरेश महाराज श्रीराम का दूत और वाली का पुत्र अंगद हूं। सम्भव है मेरा नाम भी तुम्हारे कानों में कभी पड़ा हो। कौशल्या का आनन्द बढ़ाने वाले रघुकुलतिलक श्री राम ने तुम्हारे लिये यह सन्देश दिया,—नृशंस रावण! जरा मर्द बनो और घर से निकलकर युद्ध में मेरा सामना करो। मैं मन्त्री, पुत्र और बन्धु-बान्धवों सहित तुम्हारा वध करूंगा, क्योंकि तुम्हारे मारे जाने से तीनों लोकों के प्राणी निर्भय हो जायेंगे।

देवदानवयक्षाणां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
शत्रुमद्योद्धरिष्यामि त्वामृषीणां च कण्टकम्॥

तुम देवता, दानव, यक्ष, गन्धर्व, नाग और राक्षस—सभी के शत्रु हो। ऋषिओं के लिये तो कण्टकरूप होही, अतःआज तुम्हें मैं उखाड़ फेकूँगा यदि तुम मेरे चरणों में गिर कर आदरपूर्वक सीता को नहीं लौटाओगे तो मेरे हाथ से मारे जाओगे और तुम्हारे मारे जाने पर लंका का सारा ऐश्वर्य विभीषण को प्राप्त होगा।' वानर शिरोमणि अंगद के ऐसे वचन कहने पर निशाचरों का राजा रावण अत्यन्त अमर्ष से भर गया। रोष से भरे हुए रावण ने उस समय अपने मंत्रियों से बार-बार कहा,—'पकड़ लोइस दुर्बुद्धि वानर को और मार डालो।' रावण की यह बात सुन कर रावण के चार भयंकर निशाचरों ने प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी अंगद को पकड़ लिया। आत्मबल से सम्पन्न तारा कुमार अंगद ने उस समय राक्षसों को अपना बल दिखाने के लिये स्वयं ही अपने आप को पकड़ा दिया। फिर वे पक्षियों की तरह अपनी दोनों भुजाओं से जकड़े हुए चारों राक्षसों को लिये-लिये ही उछले और उस महल की छत पर, जो पर्वत शिखर के समान ऊंची थी, चढ़ गये। उनके उछलने के वेग से झटका खाकर वे सब राक्षस राक्षसराज रावण के देखते ही पृथ्वी पर गिर पड़े। तदनन्तर प्रतापी वालि-कुमार अंगद राक्षसराज के उस महल की चोटी पर, जो पर्वत शिखर के समान ऊंची थी,

पर पटकते हुए घूमने लगे। उनके पैरोंसे आक्रान्त होकर वह छत रावण के देखते देखते फट गई। ठीक उसी तरह, जैसे पूर्वकाल में वज्र के आघात से हिमालय का शिखर विदीर्ण हो गया था। इस प्रकार महल की छत तोड़कर उन्होंने नाम सुनाते हुए बड़े जोर से सिंहनाद किया और वे आकाश मार्ग से उड़ गये।

यह थी वर्णन शैली आदि कवि वाल्मीकि की। अब सुनिये गोस्वामी तुलसी दास जी महाराज का, अपना अनूठा वर्णन--

इहाँ प्रात जागे रघुराई।
पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई।
जामवंत कह पद सिरु नाई॥
सुनु सर्बग्य सकल उर बासी॥
बुधि बल तेज धर्म गुन रासी॥
मंत्र कहउँ निज मति अनुसारा।
दूत पठाइअ बालि कुमारा॥
नीक मन्त्र सब के मन माना।
अंगद सन कह कृपानिधाना॥
बालितनय बुधि बल गुनधामा।
लंका जाहु ता मम कामा॥
बहुत बुझाइ तुम्हहि का कहऊँ।
परम चतुर मैं जानत अहऊँ॥
काजु हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ।
सोई गुन सागर ईस राम कृपा जा पर करहु॥
स्वयंसिद्ध सब काज नाथ मोहि आदरु दियउ।
अस बिचारि जुबराज तन पुलकित हरषित हियउ॥

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई।
अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका।
रन बांकुरा बालिसुत बंका॥

लंका नगरी में ज्योंहि अंगद ने अपने चरण धरे, नर नारी भयभीत हो उठे। अभी कल ही तो रामा दल के एक साधारण से बन्दर ने लंका भर में त्राहि-त्राहि मचा दी थी। अब यह दूसरा नहले पर दहला आ गया। कहीं वही हनुमान् ही तो फिर से नहीं आ गया।

यो लंकां समदीदहत स च
पुनर्ह्येषोयुना वानरः।
इत्येवं पुरवासि राक्षस गणाः
कोलाहलं चक्रिरे॥

जथा मत्त गज जूथ महुँ पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन बैठे सभाँ सिरु नाइ॥

अब रावण अंगद सम्वाद शुरु हुआ।

कह दसकंध कवन तैं बन्दर।
मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥

रावण ने पूछा, तुम कौन हो? अंगद बोला, मैं श्रीरामचन्द्र का दूत हूँ। मेरे पिता से तुम्हारी घनिष्ठ मित्रता थी, इस कारण आप को हित की बात कहने आया हूँ। आप महर्षि पुलस्त्य के प्रपौत्र हैं, शिव के उपासक हैं, मेरा कहना मानिये, सीता को लौटा कर रामजी से संधि कर लीजिये। रावण संधि के लिये तैयार नहीं था,—बात बढ़ते-बढ़ते यहां तक बढ़ गयी शिष्टाचार की सीमा तक को पार कर गयी। गो स्वामी जी द्वारा वर्णित वह प्रकरण सुनने योग्य है, क्रिया-प्रतिक्रिया का दृश्य है।

मैं तव दसन तोरिबे लायक।
आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक॥
असि रिस होति दसउ मुख तोरौं।
लंका गहि समुद्र महँ बोरौं॥
गूलरि फल समान तव लंका।
बसहु मध्य तुम्ह जंतु असंका॥
मैं बानर फल खात न बारा।

आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई ।
मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई ॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा ।
मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा ॥
साँचेहुँ मैं लबार भुज बीहा ।
जौं न उपारिउँ तव दस जीहा ॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुन एक ।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक ॥
अंगद तहीं बालि कर बालक ।
उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह जायहु ।
निजमुख तापस दूत कहायहु ॥

राम दूत को रावण की यह दर्पोक्ति सहन न हो सकी—उन्हों ने तुरन्त उत्तर दिया ।

हम कुलघालक सत्य तुम्ह कुलपालक दससीस ।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस ॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी ।
कहत दसानन नयन तरेरी ॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ ।
नीति धर्म मैं जानत अहऊँ ॥
कह कपि धर्मसीलता तोरी ।
हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय चोरी ॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी ।
छमा कीन्हि तुम्ह धर्म बिचारी ॥
धर्मसीलता तव जग जागी ।
पावा दरसु हमहुँ बड़ भागी ॥

रे रे रावण दीनहीन कुमते
रामोऽपि किं मानुषः
किं गङ्गापि नदी गजः सुरगजो
प्युच्चैः श्रवा किं हयः ।
किं रंभाऽप्यबला कृतं किमु युगं
कामोऽपि धन्वी तु किं
त्रैलोक्य प्रकट प्रताप विभवः
किं रे हनुमान् कपिः ॥

बढ़ते-बढ़ते बात शक्ति संतुलन तक जा पहुँची,—रावण बोला,—

तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद ।
मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना ।
अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम्ह सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ ।
अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढ़ा ।
सो कि होई अब समरारूढ़ा ॥
सिल्पि कर्म जानहिं नल नीला ।
है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा ।
सुनत बचन कहि बालिकुमारा ॥
सत्य बचन कहु निसिचर नाहा ।
साँचेहुँ कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अल्प कपि दहई ।
सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥
जो अति सुभट सराहेहु रावन ।
सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई ।
पठवा खबरि लेन हम सोई ॥
सत्य नगरु कपि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ ॥
सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥
प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥
सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर ।
बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥
तव सोनित की प्यास तृषित राम सायक निकर ।
तजउँ तोहि तेहि त्रास कटु जल्पक निसिचर अधम ॥

अंगद—रावण सम्वाद में एक बात बड़ी मनोरंजक है, अंगद प्रश्न करता है ।

कहु रावन रावन जग केते ।
मैं जनि श्रवन सुने सुनु जेते ॥
बलिहि जितन एक गयउ पताला ।
राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला ॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई ।

दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई ।।
एक बहोरि सहसभुज देखा ।
धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा ।।
कौतुक लागि भवन लै आवा ।
सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा ।।
एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि कीं कांख ।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख ।।
सुनत बचन रावन परजरा ।
जरत महानल जनु घृतपरा ।।
सुनु सठ सोइ रावन बलसीला ।
हरगिरि जान जासु भुज लीला ।।
जान उमापति जासु सुराई ।
पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई ।।
सिर सरोज निज करन्हि उतारी ।
पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ।।
भुज बिक्रम जानहिं दिगपाला ।
सठ अजहूँ जिन्ह कें उर साला ।।
जानहिं दिग्गज उर कठिनाई ।
जब जब भिरउँ जाइ बरिआई ।।
जिन्ह के दसन कराल न फूटे ।
उर लागत मूलक इव टूटे ।।
जासु चलत डोलति इमि धरनी ।
चढ़त मत्त गज जिमि लघु तरनी ।।
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी ।
सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी ।।
तेहि रावन कहुँ लघु कहसि नर कर करसि बखान ।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान ।।
कुंभकरन अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि ।।
सठ साखामृग जोरि सहाई ।
बांधा सिंधु इहइ प्रभुताई ।।
नाघहिं खग अनेक बारीसा ।
सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा ।।
मम भुज सागर बल जल पूरा ।
जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा ।।
बीस पयोधि अगाध अपारा ।
को अस बीर जो पाइहि पारा ।।
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा ।
भूप सुजस खल मोहि सुनावा ।।
जौं पै समर सुभट तव नाथा ।
पुनि पुनि कहसि जासु गुन गाथा ।।
तौ बसीठ पठवत केहि काजा ।
रिपु सन प्रीती करत नहिं लाजा ।।
हरगिरि मथन निरखु मम बाहू ।
पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू ।।
सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस ।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस ।।

भ्राता मे कुंभकर्णः सकलरिपुकुल
व्रात संहार मूर्तिः ।
पुत्रो मे मेघनादः प्रहसितवदो
येनबद्धः सुरेन्द्रः ।।
खड्गो में चन्द्रहासो रणमुख चपलो
राक्षसा मे सहाया ।
सोऽहं वै देव शत्रु स्त्रिभुवन विजयो
रावणो नाम राजा ।।
ब्रह्मास्वयंभूश्चतुराननो वा
रुद्रस्त्रिनेत्रस्त्रिपुरान्तको वा ।
इन्द्रो महेन्द्रो सुर नायको वा
स्थातु न शक्तः युधि रावणस्य ।।

समझौता न होना था, न हुआ —
परम चतुरता श्रवन सुनि बिहँसे रामु उदार ।
समाचार पुनि सब कहे गढ़ के बालिकुमार ।।
रिपु के समाचार जब पाए ।
राम सचिव सब निकट बोलाए ।।
करि बिचार तिन्ह मन्त्र बृढ़ावा ।
चारि अनी कपि कटकु बनावा ।।
जथाजोग सेनापति कीन्हे ।
जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ।।
गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा ।
जय रघुबीर कोसलाधीसा ।
क्षिप्रमाज्ञापयद् रामो वानरान् द्विषतां वधे ।

उस समय श्री राम ने वानर सेना को आगे चलने का हुक्म दिया। अक्लिष्ट कर्मा श्री राम के इस प्रकार आज्ञा देते ही आगे बढ़ने के लिये परस्पर होड़ सी लगाने वाले वानरों ने अपने सिंहनादसे वहां की धरती और आकाश को गूंजा दिया।

प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए ।
सुनि कपि सिंघनाद करि धाए ।।

जानत परम दुर्ग अति लंका।
प्रभु प्रताप कपि चले असंका॥
जयति राम जयलछिमन जय कपीस सुग्रीव।
गर्जहि सिंघनाद कपि भालु महा बल सींव॥

जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः॥
इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः।
अभ्यधावन्त लंकायाः प्राकारं कामरूपिणः॥

बलशाली श्री रामचन्द्र जी की जय हो, महाबली लक्ष्मण की जय हो और श्री रघुनाथ जो के द्वारा सुरक्षित राजा सुग्रीव की भी जय हो, ऐसा घोषणा करते और गर्जते हुए इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानर लङ्का के परकोटे पर टूट पड़े।

मन्दोदरी एक नेक औरत थी, पारसी कन्या थी। मय दानव द्वारा प्राप्त अप्सरा हेमा की पुत्री थी।

इयं ममात्मजा राजन हेमयाप्सरसा धृता।
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम्॥

उस समय अपना परिचय देते हुए रावण ने भी कहा था।

अहं पौलस्त्यतनयो दशग्रीवश्च नामतः।
मुनेर्विश्रवसो यस्तु तृतीयो ब्रह्मणोऽभवत्॥

मैं पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा का बेटा हूं। मेरा नाम दशग्रीव है। मेरे पिताश्री विश्रवा ब्रह्मा जी की बीसवीं पीढ़ी में पैदा हुए।

मन्दोदरी को मातृपक्ष से भारतीय रक्त मिला था, वह नहीं चाहती थी कि व्यर्थ का रक्तपात हो। उस ने रावण को समझाया।

उवाच नाथ मे वाक्यं शृणु सत्यं तथा कुरु।
शक्यो न राघवोजेतुं त्वया चान्यैःकदाचन॥
रामो देववरः साक्षात्प्रधानपुरुषेश्वरः।
मत्स्यो भूत्वा पुरा कल्पे मनुं वैवस्वतं प्रभुः॥
ररक्ष सकलापद्भ्यो राघवो भक्तवत्सलः।
रामः कूर्मोऽभवत्पूर्वं लक्षयोजनविस्तृतः॥
समुद्रमथने पृष्ठे दधार कनकाचलम्।
हिरण्याक्षोऽतिदुर्वृत्तो हतोऽनेन महात्मना॥
क्रोडरूपेण वपुषाक्षोणीमुद्धरता क्वचित्।
त्रिलोककण्टकं दैत्यं हिरण्यकशिपुं पुरा॥
हतवान्नारसिंहेन वपुषा रघुनन्दनः।
विक्रमैस्त्रिभिरेवासौ बलिं बद्ध्वा जगत्त्रयम्॥
आक्रम्यादात्सुरेन्द्राय भृत्याय रघुसत्तमः।
राक्षसाः क्षत्रियाकारा जाता भूमेर्भरावहाः॥
तान्हत्वा बहुशो रामो भुवं जित्वा ह्यदान्मुनेः।
स एव साम्प्रतं जातो रघुवंशे परात्परः॥
भवदर्थे रघुश्रेष्ठो मानुषत्वमुपागतः।
तस्य भार्या किमर्थं वा हृता सीता वनाद्बलात्॥
मम पुत्रविनाशार्थं स्वस्यापि निधनाय च।
इतः परं वा वैदेहीं प्रेषयस्व रघूत्तमे॥
विभीषणाय राज्यं तु दत्वा गच्छामहे वनम्॥

"प्रभो! मैं आपसे ठीक-ठीक बात कहती हूं, आप उसे सुनकर वैसा ही कीजिये।
राम तुम से अथवा और भी किसी से कभी नहीं जीते जा सकते। देवाधिदेव भगवान् राम साक्षात् प्रकृति और पुरुषके नियामक हैं।
भक्तवत्सल रघुनाथ जी ने ही कल्प के आरम्भ में मत्स्यरूप होकर वैवस्वतमनुकी समस्त आपत्तियों से रक्षा की थी।
राम ही पूर्वकालमें एक लक्ष योजन विस्तार वाले कच्छप हुए थे और समुद्र-मन्थन के समय इन्होंने अपनी पीठ पर सुमेरु पर्वत को धारण किया था।
किसी समय वाराहरूप धारण कर पृथ्वी का उद्धार करते समय इन्हीं महात्मा ने महादुराचारी हिरण्याक्ष दैत्य को मारा था।
इन रघुनन्दन ने ही नृसिंह-शरीर से त्रिलोकी के कण्टकरूप हिरण्यकशिपु दैत्य को मारा था।
और इन्हीं रघुश्रेष्ठ ने वामन-अवतार में बलिको बांधकर सम्पूर्ण त्रिलोकी को तीन ही पगों से मापकर अपने सेवक इन्द्र को दे दिया था जिस समय राक्षसगण क्षत्रिय रूप से उत्पन्न होकर पृथ्वी के भाररूप हुए तब इन्हीं ने परशु-

राम रूप से उन्हें कई बार संग्राम में मारा और पृथ्वी को जीतकर उसे कश्यपमुनि को दे दिया। इस समय वे ही परात्पर प्रभु रघुवंशमें रामरूप से अवतीर्ण होकर आप के लिये मनुष्यरूप हुए हैं। आप ने उन की स्त्री सीता को मेरे पुत्र के नाशके लिये और अपनी भी मौत बुलाने के लिये भला, बलात्कार से तपोवन से क्यों चुरा लिया? आप अब भी जानकी को रघुनाथ जी के पास भेज दीजिये, फिर विभीषण को राज्य देकर हम वन को चलेंगे।"

जौं पिय मानहु मोर सिखावन।
सुजसु होइ तिहुँ पुर अति पावन॥
सजल नयन कह जुगकर जोरी।
सुनहु प्रानपति बिनती मोरी॥
रामहि सौंपहि जानकी नाइकमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन जाइ भजिअ रघुनाथ।
बिस्व रूप रघुबंस मनि करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर अंग अंग प्रति जासु॥
अस कहि नयन नीर भरि गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि अचल होइ अहिवात॥
पद पाताल सीस अज धामा।
अपर लोक अँग अँग विश्रामा॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला।
नयन दिवाकर कच घन माला॥
जासु घ्रान अस्विनीकुमारा।
निसि अरु दिवस निमेष अपारा॥
श्रवन दिसा दस बेद बखानी।
मारुत स्वास निगम निज बानी॥
अधर लोभ जम दसन कराला।
माया हास बाहु दिगपाला॥
आनन अनल अंबुपति जीहा।
उतपति पालन प्रलय समीहा॥
रोम राजि अष्टादस भारा।
अस्थि सैल सरिता नस जारा॥
उदर उदधि अधगो जातना।
जगमय प्रभु का बहु कलपना॥
अहंकार सिव बुद्धि अज मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर रूप राम भगवान॥
अस बिचारि सुनु प्रानपति प्रभु सन बयरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद मम अहिवात न जाइ॥

परन्तु रावण को अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा था। मन्दोदरी की बात पर उस ने ध्यान नहीं दिया।

तब रावन मयसुता उठाई।
कहै लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तै प्रिया बृथा भय माना।
जग जोधा को मोहि समाना॥
बरुन कुबेर पवन जम काला।
भुज बल जितेउँ सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरें।
कवन हेतु उपजा भय तोरें॥

बोला, अरी मुर्खा! तू घबरा काहे को रही है, मेरे बराबर धरती पर दूसरा सूरमा है कौन?

बेचारा राम एक मनुष्य ही तो है, जिस ने सहारा लिया है कुछ बन्दरों का। पिता के त्याग देने से उसने वन की शरण ली है। उसमें कौन सी ऐसी विशेषता है, जिससे तुम उसे बड़ा सामर्थ्यशाली मान रही हो। मैं राक्षसों का स्वामी तथा सभी प्रकार के पराक्रमों से सम्पन्न हूं। देवताओं के मन में भी भय उत्पन्न करता हूं, फिर किस कारण से तुम मुझे राम की अपेक्षा हीन समझती हो।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर।
रावन मातु पिता मन्त्री वर॥
बोला बचन नीति अति पावन।

सुनहु तात कछु मोर सिखावन ॥
जब ते तुम्ह सीता हरि आनी ।
असगुन होंहि न जाँहि बखानी ॥
बेद पुरान जासु जसु गायो ।
राम बिमुख काहुं न सुख पायो ॥
परिहरि बयरु देहु बैदेही ।
भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
हिरन्याच्छ भ्राता सहित मधु कैटभ बलवान ।
जेंहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान ॥
काल रूप खल बन दहन गुनागार घनबोध ।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन विरोध ॥
सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू ।
जारइ भुवन चारिदस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही ।
सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥

अपने नाना माल्यवन्त की बात भी रावण ने नहीं मानी, उसे अपनी शक्ति पर पूरा भरोसा था। राम औफैन्सिव पर थे, प्रहारात्मक युद्ध कर रहे थे, रावण डीफैन्स पर था। रामादल ने लंका नगरी को घेरे में ले लिया। उस समय रावण का प्रधान गुप्तचर शार्दूल हाथ जोड़ कर अपने महाराजाधिराज राक्षसेश्वर दशग्रीव से बोला— राक्षसेन्द्र ! मेरी एक बात मानिये। इस समय हालात बड़े भयानक दिखाई दे रहे हैं। राजन् ! वानर और भालुओं का एक प्रवाह सा लंका की ओर बढ़ा चला आ रहा है। वह दूसरे समुद्र के समान अगाध और असीम है। मैं समझता हूँ विजय प्राप्ति की ओर हमारा सर्व-सफल प्रथम प्रयास यह होगा, यदि हम राम और सुग्रीव में मनमुटाव डाल सकें, और सुग्रीव को सेना सहित राम से हटा कर अपनी ओर ला सकें। इस लिये मेरा ख्याल है किसी योग्यतम भेदिये को एक सन्देश देकर सुग्रीव के पास भेजिये।

शार्दूल की बात सुन कर रावण सहसा व्यग्र हो उठा और अपने कर्त्तव्य का निश्चय करके अर्थवेत्ताओं में श्रेष्ठ शुक नामक राक्षस से यह वचन बोला,— दूत ! तुम मेरे कहने से शीघ्र ही वानरराज सुग्रीव के पास जाओ और मधुर एवं उत्तम वाणी द्वारा निर्भीकता पूर्वक उनसे मेरा यह सन्देश कहो— वानरराज ! आप वानरों के महाराज के कुल में उत्पन्न हुए हैं। आदरणीय ऋक्षराज के पुत्र हैं और स्वयं भी बड़े बलवान् हैं। मैं आपको अपने भाई के समान समझता हूं। यदि मुझ से आपको कोई लाभ नहीं हुआ है तो मेरे द्वारा आपकी कोई हानि भी तो नहीं हुई है।

अहं यद्यहरं भार्यां राजपुत्रस्य धीमतः ।
किं तत्र तव सुग्रीव किष्किन्धां प्रति गम्यताम् ॥
त्वं वै महाराजकुलप्रसूतो
महाबलश्चर्क्षरजःसुतश्च ।
न कश्चनार्थस्तव नास्त्यनर्थ
स्तथापि मे भ्रातृसमो हरीशः॥

सुग्रीव ! यदि मैं बुद्धिमान् राजपुत्र राम की पत्नी हर लाया हूं, तो इसमें आपकी क्या हानि है। अतः आप किष्किन्धा में लौट जाइये। हो सकता है कि राम ने तुम्हें बड़े-बड़े सबज बाग दिखाए हों, मिथ्या प्रलोभन दिए हों परन्तु इस बात को ध्यान में रखो, जो गति राम के हाथों बाली की हुई वही दुर्गति तुम्हारी भी हो सकती है। मैं तुम्हारा परम हितैषी हूं। जहां तक किष्किन्धा का राज्य है वह तुम्हारा नहीं अंगद का है। अयोध्या का राज्य राम भरत को दे चुके हैं। जहां तक लंका की बात है, हमारी इस लंका में वानर लोग किसी तरह भी पहुंच नहीं सकते। यहां देवताओं और गन्धर्वों का भी प्रवेश सर्वथा असम्भव है।

फिर मनुष्यों और वानरों की तो बात ही क्या है मान लो कि राम लंका पर अधिकार करने में सफल हो भी जाए वह लंका का राज्य विभीषण को देंगे. तुम्हें नहीं देंगे।

इसलिये तुझे राज्य ही चाहिये तो बुद्धिमत्ता इसी में है कि तुम मेरे साथ आ मिलो,आओ हम दोनों मिलकर दूर से आये हुए इन लोगों को भगाएं, अयोध्या तक इन का पीछा करें, तुम मुझे सहयोग दो, मैं तुम्हें पूरे आर्यावर्त का राजा बना दूंगा।"

राक्षसराज रावण के इस प्रकार सन्देश देने पर शुक आकाश मार्ग से सुग्रीव के पास जा पहुंचा और आकाश में ही ठहर कर वायरलेस के द्वारा उसने रावण का सन्देश सुग्रीव को पहुँचाया। जिस समय शुक सुग्रीव को रावण का सन्देश सुना रहा था, वानरों ने उसको भांप लिया और उस निशाचर को बल-पूर्वक पकड़ लिया और उसे कैद करके तुरन्त आकाश से भूतल पर उतार लिया।

गगनाद भूतले चाशु प्रतिगृह्यावतारितः ॥

उस समय राम की सेना बड़ी गुस्से में थी। कुछ सैनिकों ने शुक को बेतहाशा पीटना शुरू कर दिया। परन्तु अन्तरराष्ट्रीय सिद्धान्तों के परिपालक राम ने बेचारे शुक को वानरों से बचाया और उसे सही सलामत अपने राजा के पास पहुँच जाने की सब विधि सभी प्रकार की सुविधाएं प्रदान कीं। चलते समय शुक सुग्रीव की सेवा में उपस्थित हुआ। बोला—अपने महाराज के सन्देश का आप से उत्तर चाहता हूं। उस समय सुग्रीव बोला—दूत ! तुम रावण से इस प्रकार कहना—वध के योग्य दशानन ! न तो तुम मेरे मित्र हो, न दया के पात्र हो, न मेरे उपकारी हो और न मेरे प्रिय व्यक्तियों में से कोई हो। भगवान् श्री राम के शत्रु हो, इस कारण तुम अपने सगे सम्बन्धियों के सहित बाली की तरह वध्य हो। निशाचर-राज ! मैं पुत्र, बन्धु और कुटुम्बीजनों सहित तुम्हारा संहार करूंगा और बड़ी भारी सेना के साथ आकर समस्त लङ्कापुरी को विध्वंस कर दूंगा। मूर्ख रावण ! यदि इन्द्र सहित समस्त देवता भी तुम्हारी रक्षा पर आ जायें तो भी श्री रघुनाथ जी के हाथों तुम जीवित बच नहीं सकोगे। तुम अन्तर्धान हो जाओ आकाश में चले जाओ, पाताल में छुप जाओ, अथवा महादेव जी के चरणारविंद का आश्रय लो, फिर भी अपने भाईयों सहित श्री राम जी के हाथों से अवश्य मारे जाओगे। तीनों लोकों में कोई भी पिशाच, यक्ष, अथवा राक्षस अब तुम्हें मृत्यु के मुख से नहीं बचा सकता।

न मोक्ष्यसे रावण राघवस्य
सुरैः सहेन्द्रैरपि मूढ़ गुप्तः।
अन्तर्हित सूर्यपथं गतोऽपि
तथैव पातालमनुप्रविष्टः ॥
गिरीशपादाम्बुजसंगतो वा
हतोऽसि रामेण सहानुजस्त्वम् ॥

रामादल के शिकन्जे में जकड़ा हुआ, राम जी की कृपा से ही अपने प्राण बचा कर आया शुक अपने महाराज रावण से बोला—महाराज !

राक्षसानां बलौघस्य वानरेन्द्रबलस्य च।
नैतयोर्विद्यते संधिर्देवदानवयोरिव ॥

देवता और दानवों में जैसे मेल होना असम्भव है, उसी प्रकार राक्षसों और वानरराज सुग्रीव के सैनिकों में सन्धि नहीं हो सकती। अतः जब तक वे लङ्कापुरी की चहार दिवारी पर नहीं चढ़ आते, उसके पहले ही आप शीघ्रता पूर्वक दो में से एक काम कर डालिये—या तो

तुरन्त ही उन्हें सीता को लौटा दीजिये या फिर सामने खड़े होकर युद्ध कीजिये।

शुक की यह बात सुनकर रावण की आंखें क्रोध से लाल हो गयीं। वह इस तरह घूर-घूर कर देखने लगा, मानो अपनी दृष्टि से उस को दग्ध कर देगा। वह बोला,—

यदि मां प्रति युध्येरन् देवगन्धर्वदानवाः।
नैव सीतां ऽप्रदास्यामि सर्वलोकभयादपि॥

"यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझ से युद्ध करने को तैयार हो जाएं तथा सारे संसार के लोग मुझे भय दिखाने लगें तो भी मैं सीता को नहीं लौटाऊंगा। जैसे सूर्य अपने उदय के साथ ही समस्त नक्षत्रों की प्रभा हर लेते हैं, उसी प्रकार मैं विशाल सेना के साथ रणभूमि में खड़ा हो राम की समस्त वानर-सेना को आत्मसात कर लूंगा। मेरे तरकस में सोये हुए बाण विष धर सर्पों के समान भयंकर हैं। राम ने संग्राम में उन बाणों को अभी देखा ही नहीं, इसीलिये वह मुझ से जूझना चाहता है।

न वासवेनापि सहस्रचक्षुषा
युद्धेऽस्मि शक्यो वरुणेन वा स्वयम्।
यमेन वा धर्षयितुं शराग्निना
महाहवे वैश्रवणेन वा पुनः॥

यदि महासागर में सहस्रनेत्र धारी इन्द्र अथवा साक्षात् वरुण अथवा स्वयम् यमराज अथवा मेरे बड़े भाई कुबेर ही आ जाएं तो वे भी अपनी बाणाग्नि से मुझे पराजित नहीं कर सकते।"

अगले ही दिन रावण ने फिर अपने खास गुप्तचरों को रामादल में भेजा।—शुक और सारण! तुम दोनों इस प्रकार वानर सेना में प्रवेश करो कि तुम्हें कोई पहचान न सके। वहाँ जाकर यह पता लगाओ कि वानरों की संख्या कितनी है? उन की शक्ति कैसी है? उन में मुख्य-मुख्य वानर कौन-कौन से हैं। श्रीराम और सुग्रीव के मनोऽनुकूल मन्त्री कौन-कौन हैं? अगाध जल राशि से भरे हुए समुद्र में वह पुल किस प्रकार बांधा गया? महामनस्वी वानरों की छावनी कैसे पडी है। श्रीराम और वीर लक्ष्मण का निश्चय क्या है? वे क्या करना चाहते हैं? उनके बलपराक्रम कैसे हैं। उन दोनों के पास कौन-कौन से अस्त्रशस्त्र हैं? और उन महामना वानरों का प्रधान सेनापति कौन है?

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम्॥

ऐसा आदेश पाकर दोनों वीर राक्षस शुक और सारण वानर रूप धारण करके उस वानरी सेना में घुस गये'

दोनों निशाचरों ने देखा, वह वानर वाहिनी समुद्र के समान अक्षोभ्य थी। वानर वेश में छिप कर सेना का निरीक्षण करते हुए दोनों राक्षस शुक और सारन को महातेजस्वी विभीषण ने देखा, देखते ही पहचाना और दोनों को पकड़ कर श्रीराम चन्द्र जी से कहा— शत्रु नगरी पर विजय पाने वाले नरेश्वर! ये दोनों लङ्का से आये हुए गुप्तचर एवं राक्षस राज के मन्त्री शुक और सारण हैं। वे दोनों राक्षस श्रीराम चन्द्र जी को देख कर अत्यन्त व्यथित हुए और जीवन से निराश होगये।—हाथ जोड़ कर बोले,—सौम्य रघुनन्दन! हम दोनों को रावण ने भेजा है और हम सारी सेना के विषय में आवश्यक जानकारी प्राप्त करने आये हैं। उन दोनों की वह बात सुन कर सम्पूर्ण प्राणियों के हित में लगे रहने वाले दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम हँसते हुए बोले।

यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः।

यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥

यदि तुमने सारा सेना देख ली है, हमारी सैनिक शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तथा रावण के कथनानुसार सब काम पूरा कर लिया हो तो अब तुम दोनों अपनी इच्छाके अनुसार प्रसन्नता पूर्वक लौट जाओ, अथवा यदि अभी कुछ देखना बाकी है तो फिर देख लो। विभीषण तुम्हें सब कुछ पुनः पूर्ण रूप से दिखा देंगे। इस समय जो तुम पकड़ लिये गये हो इस से तुम्हें अपने जीवन के बारे में कोई भय नहीं होना चाहिये।—न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हथः,क्योंकि शस्त्रहीन अवस्था में पकड़े गये तुम दोनों दूत वध के योग्य नहीं हो। विभीषण! यह दोनों राक्षस रावण के गुप्तचर हैं और छिप कर यहाँ का भेद लेने आये हैं। ये हमारे वानर दल में फूट डालने का प्रयास कर रहे हैं। अब तो उनका भाण्डा फूट हो गया है, अतः उन्हें छोड़ दो। शुक और सारण! जब तुम दोनों लङ्का में पहुंचो, तब कुबेर के छोटे भाई राक्षस राज रावण को मेरी ओर से सन्देश देना।

यद् बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ।
तद् दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवः ॥
श्वः काल्ये नगरीं लंकां सप्राकारां सतोरणाम् ।
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥

रावण! जिस बल के भरोसे तुम ने मेरी सीता का अपहरण किया है, उसे अब सेना और बन्धुजनों सहित आकर इच्छानुसार दिखाओ। कल प्रातःकाल ही तुम परकोटों और दरवाजों के सहित लङ्कापुरी तथा राक्षसी सेना का मेरे बाणों से विध्वंस हुआ देखना।

क्रोधं भीममहं मोक्ष्ये ससैन्ये त्वयि रावण ।
श्वः काल्ये वज्रवान् वज्रं दानवेष्विव वासवः ।

रावण! जैसे वज्रधारी इन्द्र दानवों पर अपना वज्र छोड़ते हैं, उसी प्रकार मैं कल सवेरे ही सेनासहित तुम पर अपना भयंकर क्रोध छोड़ूंगा।

भगवान् श्रीराम का यह सन्देश पाकर दोनों राक्षस शुक और सारन धर्मवत्सल श्रीरघुनाथ जी का "आप की जय "आप चिरंजीवी हों" इत्यादि वचनों द्वारा अभिनन्दन करके लङ्का पुरी में आकर राक्षस राज से बोले,—राक्षसेश्वर! हमें तो विभीषण ने बध करने के लिये पकड लिया था, किंतु जब अमित तेजस्वी धर्मात्मा श्रीराम ने देखा, तब हमें छुड़वा दिया—महाराज! श्रीराम, लक्ष्मण और सुग्रीव से सुरक्षित वह वानरों की सेना तो समस्त देवताओं और असुरों के लिये भी दुर्जय है।"

शुक और सारण के ये शब्द सुन कर रावण ने सारण से कहा—

यदि मामभियुञ्जीरन् देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतामहं दद्यां सर्वलोकभयादपि ॥

यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझ से युद्ध करने आ जायँ और समस्त लोक भय दिखाने लगें तो भी मैं सीता को नहीं दूंगा। ऐसा वचन कह कर राक्षस राज रावण वानरों की सेना का निरीक्षण करने के लिये अपनी कई ताल ऊंची और वर्फ के समान श्वेत रंग की अट्टालिका पर चढ़ गया। उसने देखा,—"जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है"—लङ्का के चारों ओर समूची धरती वानरों से भरी पड़ी है।—उस समय वानर दल का परिचय देते हुए सारण बोला, रावण!—यह जो लङ्का की ओर मुख करके खड़ा है और गरज रहा है, यह नील है।—इस के साथ में राजकुमार अङ्गद है; वानराज सुग्रीव ने इस का युवराज पद पर अभिषेक किया है। बाली का यह पुत्र अपने पिता के समान ही बलशाली है। जैसे वरुण

इन्द्र के लिये पराक्रम प्रकट करते हैं, उसी प्रकार यह श्रीरामचन्द्र जी के लिये अपना पुरुषार्थ प्रकट करने के लिये उद्यत है।

अंगद के पीछे संग्राम भूमि में जो वीर विशाल सेना से घिरा हुआ खड़ा है, इसका नाम नल है। यही सेतु—निर्माण का प्रधान हेतु है। और यह है सामने श्वेत— चांदी के समान सफेद रंग का चञ्चल वानर—यह वानरी सेना का विभाग करता और सैनिकों में हर्ष तथा उत्साह भरता है।—

कुमुद, चण्ड, रम्भ, शरभ, विहार, पनस, विनत, क्रोधन, गवय, हर, धूम्र, दम्भ, संनादन क्रथन, प्रमाथी, गवाक्ष, केसरी, शतबलि, मैन्द, द्विविद, सुषेण, गन्धमादन, ज्योतिमुख, हेमकूट, सम्पाति।

सर्वे महाराज महाप्रभावाः
सर्वे महाशैलनिकाशकायाः ।
सर्वे समर्थाः पृथिवीं क्षणेन
कर्तुं प्रविध्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥

महाराज! ये सभी वानर बड़े प्रभावशाली हैं, सभी क्षणभर में भूमण्डल के समस्त पर्वतों को चूर-चूर करके सब ओर बिखेर देने की शक्ति रखते हैं।

यं तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
यो बलात् क्षोभयेत् क्रुद्धः समुद्रमपि वानरः ॥
एषोऽभिगन्ता लङ्कायां वैदेह्यास्तव च प्रभो ।
एनं पश्य पुरा दृष्टं वानरं पुनरागतम् ॥
ज्येष्ठः केसरिणः पुत्रो वातात्मज इतिश्रुतः ।
हनूमानिति विख्यातो लङ्घितो येन सागरः ॥

इधर जिसे आप मद की धारा बहाने वाले मतवाले हाथी की भाँति खड़ा देख रहे हैं, जो वानर कुपित होने पर समुद्र को भी विक्षुब्ध कर सकता है, जो पहले भी लङ्का में आप के पास आया था और विदेह नन्दिनी सीता से भी मिल गया था—यह केसरी का बड़ा पुत्र है। पवनपुत्र के भी नाम से विख्यात है। उसे लोग हनुमान् कहते हैं—इसी ने पहले समुद्र लाँघा था। पहले का देखा वानर फिर आया है।

कामरूपो हरिश्रेष्ठो बलरूपसमन्वितः ।
अनिवार्यगतिश्चैव यथा सततगः प्रभुः ॥

बल और रूप से सम्पन्न यह श्रेष्ठ वानर अपनी इच्छा के अनुसार रूप धारण कर सकता है। इसकी गति कहीं नहीं रुक सकती। यह वायु के समान सर्वत्र जा सकता है।

राजन्! जिनकी भार्या सीता को आप जनस्थान से हर लाये हैं, वे ही ये श्री राम युद्ध के लिये सामने तैयार खड़े हैं

उनके दाहिने भाग में जो ये शुद्ध सुवर्ण के समान कान्तिमान् विशाल वक्षःस्थल से सुशोभित, कुछ-कुछ लाल नेत्र वाले तथा मस्तक पर काले-काले घूँघराले केश धारण करने वाले हैं, इन का नाम लक्ष्मण है।

राजनीति में भी और युद्ध में भी दोनों रूप से यह कुशल हैं तथा सम्पूर्ण शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ हैं।

श्री राम जी की बायीं ओर विभीषण हैं। राजाधिराज श्री राम ने इन्हें लङ्का के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया है। अब यह आप पर कुपित होकर युद्ध के लिये सामने आ गये हैं।

महाराज! यह सेना एक प्रकाशमान ग्रह के समान है, इसे उपस्थित देख आप कोई ऐसा उपाय करें, जिस से आप की विजय हो और शत्रुओं के सामने आप को नीचा न देखना पड़े।

ततः कोप परीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः ।
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत् तदा ॥

इस समय अत्यन्त क्रोध से भरे हुए राक्षस राज रावण ने अपनी सारी सेना को तुरंत ही बाहर निकलने की आज्ञा दी। रावण के मुख से बाहर निकलने का आदेश सुनते ही राक्षसों ने सहसा बड़ी भयानक गर्जना की। साथ ही भयानक राक्षसों के मुख की वायु से पूरित हो लाखों गम्भीर घोष वाले शङ्ख बजने लगे।

एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत ।
रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥

(१३)

कुम्भकर्ण पर्व

अवतारा: सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिण: ।
तेषाँ सहस्र सदृशो रामो ज्ञानमय: शिव: ।।
राम त्वया महत्कार्यं कृतं देवहितेच्छया ।
कुम्भकर्णं वधेनाद्य भूभारोऽयं गत: प्रभो ।।

देवियो एवं भद्रपुरुषो !

राक्षसी सेना एवं वानरी सेना में युद्ध छिड़ गया, वैसे यह युद्ध हमारे शरीर के भीतर भी चौबिसों घंटे छिड़ा रहता है, तथापि इन आध्यात्मिक बातों की चर्चा तो फिर कभी करेंगे, इस समय तो हम उस राम-रावण युद्ध का वर्णन करने के लिये आप के सामने उपस्थित हुए हैं, जो युद्ध आज से लगभग नौ लाख वर्ष पूर्व इस धरती पर लड़ा गया। वह एक महा भयंकर युद्ध था। वीर राक्षस घोड़ों, हाथियों और सुवर्णमय रथों पर चढ़ कर अपने शब्द से दसों दिशाओं को गूंजायमान करते हुए लड़ रहे थे, और राक्षस तथा वानर दोनों ही परस्पर एक दूसरे को जीतना चाहते थे। वानरगण राक्षसों को और राक्षस लोग वानरों को मारने लगे। विष्णु रूप भगवान् राम की दृष्टि पड़ने से देवताओं के अंश से उत्पन्न हुए वानरगण बड़े प्रबल हो गये और मानो अमृत पान कर अति हर्ष से उत्साहपूर्वक राक्षसों को मारने लगे।

तत्रासीत् सुमहद युद्धं तुमुलं रोमहर्षणम ।
रक्षसां वानराणां च वीराणां जयमिच्छताम् ।

राम प्रताप प्रबल कपिजूथा ।
मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा ।।

हाहाकार भयउ पुर भारी ।
रोवहिं बालक आतुर नारी ।।
सब मिलि देहिं रावनहि गारी ।
राज करत एहिं मृत्यु हंकारी ।।
निज दल बिचल सुनी तेहिं काना ।
फेरि सुभट लंकेस रिसाना ।।
जो रन बिमुख सुना मैं काना ।
सो मैं हतब कराल कृपाना ।।

अंगद सुना पवनसुत गढ़ पर गयउ अकेल ।
रन बाँकुरा बालिसुत तरकि चढ़ेउ कपि खेल ।।

भयउ निमिष महं अति अंधिआरा ।
बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ।।
पुनि कृपाल हँसि चाप चढ़ावा ।
पावक सायक सपदि चलावा ।।
भयउ प्रकाश कतहुँ तम नाहीं ।
ग्यान उदयँ जिमि संसय जाहीं ।।
हनूमान् अंगद रन गाजे ।
हांक सुनत रजनीचर भाजे ।।

मेघनाद सुनि श्रवन अस गढ़ पुनि छेंका आइ ।
उतर्यो बीर दुर्ग तें सम्मुख चल्यो बजाइ ।।

कहां बिभीषनु भ्राता द्रोही ।
आजु सबहि हठि मारउँ ओही ।।
अस कहि कठिन बान संधाने ।

अतिसय क्रोध श्रवन लगि ताने ॥
जासु प्रबल माया बस सिव बिरंचि बड़ छोट ।
ताहि दिखावइ निसिचर निज माया मति खोट ॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने ।
भये सभीत सकल कपि जाने ॥

इस प्रकार उन बानर और राक्षसों में युद्ध चल ही रहा था कि सूर्य देव अस्त हो गये तथा प्राणों का संहार करने वाली रात्रि का आगमन हुआ। वानरों और राक्षसों में परस्पर वैर बंध गया था। दोनों ही पक्षों के योधा बड़े भयंकर थे तथा अपनी-अपनी विजय चाहते थे अतः उस समय उन में रात्री युद्ध होने लगा। उस दौरान अन्धकार में वानर लोग अपने विपक्षी से पूछते थे, क्या तुम राक्षस हो ? और राक्षस लोग भी पूछते थे, क्या तुम वानर हो ? सेना में सब ओर मारो काटो, आओ तो कहाँ भागे जाते हो, ये भयंकर शब्द सुनायी दे रहे थे। काले-काले राक्षस सुवर्णमय कवचों से विभषित होकर उस अन्धकार में ऐसे दिखाई दे रहे थे, मानो चमकती हुई औषधियों के वन से युक्त काले पहाड़ हों।

बड़े-बड़े राक्षस कभी प्रकट होकर युद्ध करते थे और कभी अदृश्य हो जाते थे, परन्तु श्रीराम और लक्ष्मण विषधर सर्पों के समान अपने बाणों द्वारा दृश्य और अदृश्य सभी राक्षसों को मार डालते थे।

वर्तमाने तथा घोरे संग्रामे लोमहर्षणे ।
रुधिरोधा महाघोरा नद्यस्तत्र विसुस्रुवु ॥

इस प्रकार रोमाञ्चकारी भयंकर संग्राम के छिड़ जाने पर वहां रक्त के प्रवाह को बहाने वाली खून की बड़ी भयंकर नदियां बहने लगीं दूसरी ओर अंगद रणभूमि में शत्रुओं का संहार करने के लिये आगे बढ़े। उन्होंने रावणपुत्र इन्द्रजीत को घायल कर दिया तथा उसके सारथि और घोड़ों को भी यमलोक पहुंचा दिया। उस सभय अपने को इस अवस्था में पा इन्द्रजित अन्तर्धान हो गया। रावण कुमार वीर इन्द्रजित ब्रह्मा जी से वर प्राप्त कर चुका था—अतः अन्तर्धान विद्या का आश्रय ले अदृश्य हो उसने वज्र के समान तेजस्वी और तीखे बाण बरसाने आरम्भ किये। माया से आवृत हो समस्त प्राणियों के लिये अदृश्य हो कर वहां कूटयुद्ध करने वाले उस निशाचर ने युद्धस्थल में दोनों रघुवंशी बन्धु श्रीराम ओर लक्ष्मण को मोह में डालते हुए उन्हें सर्पाकार बाणों के बन्धन में बांध लिया। उस समय दस वानर वीर आकाश में दसों दिशाओं में घूम कर इन्द्रजित् की टोह पाने लगे -परन्तु अन्धकार में मेघों से ढके हुए सूर्य की भांति इन्द्रजित् को वे देख न सके। —अतः इस प्रकार वानरों की दृष्टि से सर्वथा बचा रहकर इन्द्रजित् राम और लक्ष्मण को ही बराबर निशाना बनाकर उन्हीं पर शर वृष्टि करता रहा। —जैसे झरने से जल गिरता जा रहा हो, उसी प्रकार वे दोनों भाई इच्छानुसार रूप धारण करने वाले उस क्रूर राक्षस से घायल हो तीव्र वेग से रक्त की धारा बहा रहे थे।

संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसल धनी।
श्रम बिंदु मुख राजीव लोचन अरुन तन सोनित कनी॥
भुज जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँ दिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥
निसिचर अधम मलाकर ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति जे न भजहिं श्रीराम ॥

दिन कें अंत फिरीं द्वौ अनी ॥
समर भई सुभटन्ह श्रम घनी ॥
राम कृपा कपि बल बल बाढ़ा ।
जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा ॥

छीजहिं निसिचर दिनु अरु राती ।
निज मुख कहें सुकृत जेहि भांती ।
बहु बिलाप दसकंधर करई ।
बंधु सीस पुनि पुनि उर धरई ॥
रोवहिं नारि हृदय हति पानी ।
तासु तेज बल बिपुल बखानी ॥
मेघनाद तेहि अवसर आयउ ।
कहि बहु कथा पिता समुझायउ ॥
देखेहु कालि मोरि मनुसाई ।
अबहिं बहुत का करौं बड़ाई ॥
इष्टदेव सें बल रथ पायउं ।
सो बल तात न तोहि देखायउं ॥
एहि बिधि जल्पत भयउ बिहाना ।
चहुं दुआर लागे कपि नाना ॥
इत कपि भालु काल सम बीरा ।
उत रजनीचर अति रनधीरा ॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू ।
बरनि न जाइ समर खगकेतू ॥
मेघनाद मायामय रथ चढ़ि गयउ अकास ।
गर्जेउ अट्टहास करि भइ कपि कटकहि त्रास ॥
मारुतसुत अंगद नल नीला ।
कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥
पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन ।
सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सें जूझै लागा ।
सर छांड़इ होइ लागहिं नागा ॥
ब्याल पास बस भए खरारी ।
स्वबस अनंत एक अबिकारी ।
नट इव कपट चरित कर नाना ।
सदा स्वतंत्र एक भगवाना ॥
रन सोभा लगि प्रभुहिं बंधायो ।
नागपास देवन्ह भय पायो ॥
गिरिजा जासु नाम जपि मुनि काटहिं भव पास ।
सो कि बंध तर आवइ व्यापक बिस्व निवास ॥

युगलसरकार को इस अवस्था में देख वानरदल में हाहाकार मच गया। नागपाश में बंध कर वीरशय्या पर सोये हुए उन दोनों भाइयों को चारों ओर से घेर कर सब वानर खड़े हो गये। स्वयं हनुमान् आदि मुख्य-मुख्य वानर भी व्यथित हो विषाद में पड़ गये। उस समय राम-लक्ष्मण को धरती पर निःचेष्ट पड़े देख इन्द्रजित् की प्रसन्नता का पारावार न रहा। राक्षसदल खुशी के शादियाने बजाने लगा। इन्द्रजित् बोला,-- "राक्षसो! देख लो. मैंने युद्ध के मुहाने पर भयंकर वाणों के पाश से इन दोनों भाइयों श्रीराम और लक्ष्मण को एक साथ ही बांध लिया है।

परन्तु विभीषण राक्षसी माया से खूब परिचित था। वानरदल को इस प्रकार विषाद-युक्त देख. सब को ढाढ़स बंधाता हुआ बोला— वानरो यह समय घबराने का बिल्कुल नहीं।— रामजी एवं लक्ष्मण जी केवल मूर्छित हैं,—अभी जी उठेंगे।

इधर यह लीला हो रही थी, उधर इन्द्रजित् ने इस परिस्थिति का अपने पक्ष में भरपूर लाभ उठाया। सीता जी को पुष्पक में बिठा कर रण भूमि में लाया जाय ताकि राम-लक्ष्मण के मृतक शरीर को वह अपनी आंखों देख ले।—

विमानेनापि गत्वा तु सीता त्रिजट्या सह।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥

त्रिजटा के साथ उस विमान द्वारा वहाँ जाकर सीता ने रणभूमि में जो वानरों की सेनायें मारी गयी थीं उन सब को देखा।

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ।
लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥

तदनन्तर सीता ने बाणशय्या पर सोये हुए दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण को भी देखा, जो बाणों से पीड़ित हो संज्ञा शून्य होकर पड़े

थे। उन दोनों दशरथ कुमारों को इस प्रकार संज्ञा शून्य अवस्था में देख सीता करुणाजनक स्वर में जोर-जोर से विलाप करने लगी।

परिदेवयथानां तां राक्षसो त्रिजटाब्रवीत्।
मा विषादं कृथा देवि भर्तायं तव जीवति ॥

त्रीजटा वड़ी ही नेक औरत थी, सीता जी का हौसला बढ़ाती हुई बोली—'देवि! विषाद न करो। तुम्हारे यह पतिदेव जीवित हैं। जिन के प्राण निकल जाते हैं उन की मुखाकृति बदल जाती है, परन्तु तुम्हारे पतिदेव की मुखाकृति वैसी ही है, मानों यह सो रहे हों।" सीता जी ने त्रिजटा का धन्यवाद किया, वोली बहिन! परमात्मा करे तुम्हारी यह बात सत्य हो।

कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्वति मैथिली ॥

आदि कवि लिखते हैं

एतस्मिन्नन्तरे रामः प्रत्यवुध्यत वीर्यवान्।
स्थिरत्वात् सत्त्वयोगाच्च शरैः संदानितोऽपि सन् ॥

इसी बीच में पराक्रमी श्रीराम नागपाश में बंधे होने पर भी अपने शरीर की दृढ़ता और शक्तिमत्ता के कारण मूर्छा से जाग उठे।—श्री राम तो उठ बैठे परन्तु लक्ष्मण अभी भी वैसे ही निःचेष्ट पड़े थे। राम का भ्रातृप्रेम तो देखिये,—लक्ष्मण को इस प्रकार उसी मृतप्राय अवस्था में देख कर बोले -

शक्या सीतासमा नारी मर्त्यलोके विचिन्वता।
न लक्ष्मण समे भ्राता सचिवः साम्परायिकः ॥

मर्त्य लोक में ढूंढने पर मुझे सीता जैसी दूसरी स्त्री मिल सकती है; परन्तु लक्ष्मण के समान सहायक और युद्धकुशल भाई नहीं मिल सकता।

उस समय वैद्यराज सुषेण बोले,—"रघु वंश शिरोमणे! आप चिन्ता त्यागिये। पूर्वकाल में जो देवासुर-महायुद्ध हुआ था। उस समय अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता तथा लक्ष्यवेध में कुशल देवताओं को बार-बार बाणों से आच्छादित करते हुए दानवों ने घायल कर दिया था। उस युद्ध में जो देवता अस्त्र-शस्त्रों से पीड़ित अचेत और प्राण शून्य हो जाते थे, उन सब की रक्षा के लिये बृहस्पति जी मन्त्रयुक्त विधानों तथा दिव्य औषधियों द्वारा उन की चिकित्सा करते थे। मैं उन औषधियों से भली भांति परिचित हूँ। उनमें से एक का नाम है संजोवकरणी और दूसरी का नाम है विशल्यकरणी। सागरों में उत्तम क्षीरसमुद्र के तट पर चन्द्र और द्रोण नामक दो पर्वत हैं, जहाँ पूर्व काल में अमृत का मन्थन किया गया था। उन्हीं दोनों पर्वतों पर वे श्रेष्ठ औषधियां हैं।—प्रभो! ये वायुपुत्र हनुमान्‌जी उन दिव्य औषधियों को लानेके लिये वहां जायें।

इधर यह चर्चा चल रही थी, उधर देवता भी बेखबर नहीं थे। इसी बीच में देवताओं द्वारा प्रेरित भगवान् गरुड़ उन्हीं दोनों औषधियों को लिये वहां युद्ध भूमि में उपस्थित हो गये। उन औषधिओं का स्पर्श पाते ही लक्ष्मण जाग उठे। वानरदल की प्रसन्नता का पारावार न रहा—और यह समाचार जानते ही कि राम-लक्ष्मण पुनः जीवित हो उठे हैं, राक्षसनगरी में सर्वतः शोक छा गया। उस समय राक्षस-सेना नायक धूम्राक्ष अपने ल बल सहित वानरदल पर टूट पड़ा, हनुमान् द्वारा उस का वध हो गया। धूम्राक्ष के वध का समाचार जान वज्रदंष्ट्र राक्षसराज द्वारा प्रेरित हो आगे बढ़ा, वह भी अङ्गद के हाथ से मारा गया। तत्पश्चात् अकम्पन् आगे बढ़ा, हनुमान् जी ने पन्द्रह मिनट में उसे भी धराशायी कर दियां।

कालरूप खल बन दहन गुनागार घनबोध ।
सिव बिरंचि जेहि सेवहिं तासों कवन बिरोध ॥
सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू ।
जारइ भुवन चारि दस आसू ॥
सक संग्राम जीति को ताही ।
सेवहिं सुर नर अग जग जाही ॥
यह कौतूहल जानइ सोई ।
जा पर कृपा राम कै होई ॥

सेनापति प्रहस्त

अकम्पन् के वध का समाचार पाकर राक्षसराज रावण क्रोध से पागल हो उठा। उसके मुख पर दीनता छा गयी। पहले तो दो घड़ी तक वह कुछ सोचता रहा, फिर उसने मन्त्रियों के साथ विचार किया। तत्पश्चात् दिन के पूर्व भाग में राक्षसराज रावण स्वयं लङ्का के सब मोरचों का निरीक्षण करने के लिये गया। राक्षस गणों से सुरक्षित और बहुत सी छावनियों से घिरी हुई, ध्वजा-पताकाओं से सुशोभित उस नगरी को राजा रावण ने भली प्रकार से देखा। लङ्कापुरी चारों ओर से शत्रुओं द्वारा घेर ली गयी थी। यह देख कर राक्षसराज रावण ने अपने हितैषी युद्धकलाकोविद प्रहस्त से यह समयोचित बात कही,—युद्धविशारद वीर! नगर के अत्यन्त निकट शत्रुओं की सेना छावनी डाले पड़ी है, इसी लिये सारा नगर सहसा व्यथित हो उठा है। अब मैं दूसरे किसी के युद्ध करने से इस का छुटकारा होता नहीं देखता हूँ।

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ।
इन्द्रजिद वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥

अब तो इस प्रकार के युद्ध का भार मैं, कुम्भकर्ण मेरा सेनापति तुम, पुत्र इन्द्रजित् और कुम्भकर्ण-पुत्र निकुम्भ बस यही छः उठा सकते हैं। अतः तुम शीघ्र ही सेना लेकर विजय के लिये प्रस्थान करो। "बहुत अच्छा" कह प्रहस्त ने सिर झुका दिया। दो ही घड़ी में नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये हाथी जैसे भयानक राक्षस-वीरों से लङ्कापुरी भर गयी। - प्रहस्त की वह विशाल सेना हाथियों के समूह-सी अत्यन्त भयंकर जान पड़ती थी। उस व्यूह वद्ध सेना के साथ प्रहस्त लङ्का के पूर्व द्वार के बाहर निकला। घोर-संग्राम मचा।—पृथ्वी पर वानरों और राक्षसों की लाशों के ढेर लग गये। उनसे आच्छादित हुई रणभूमि भयानक पर्वतों से ढकी हुई सी जान पड़ती थी।

मारे गये वीरों की लाशें ही जिस के दोनों तट थे। रक्त का प्रवाह ही जिस की महान् जल राशि थी, टूटे-फूटे अस्त्र-शस्त्र ही जिसके तटवर्ती विशाल वृक्षों के समान जान पड़ते थे। जो यमलोक रूपी समुद्र से मिली हुई थी। सैनिकों के यकृत् और प्लीहा जिस के महान् पंक थे। निकली हुई आँतें जहाँ सेवार का काम देती थीं। कटे हुए सिर और धड़ जहां मत्स्य से प्रतीत देते थे। शरीर के छोटे-छोटे अवयव और केश जिस में घास का भ्रम उत्पन्न करते थे जहाँ गीध ही हंस बनकर बैठे थे। कङ्करूपी सारस जिन का सेवन करते थे। मेदे ही फेन बनकर जहां सब ओर फैले थे। पीड़ितों की कराह जिस की कलकल ध्वनि थी और कायरों के लिये जिसे पार करना अत्यन्त कठिन था। उस युद्ध भूमि रूपिणी नदी को प्रवाहित करके राक्षस और श्रेष्ठ वानर वर्षा के अन्त में हंसों और सारसों से सेवित सरित की भाँति उस दुस्तर नदी को उसी तरह पार कर रहे थे, जैसे गजयूथपति कमलों के पराग से आच्छादित किसी

पुष्करिणी को पार कर रहे हों। तदनन्तर नील ने देखा, रथ पर बैठा हुआ प्रहस्त बाण समूहों की वर्षा करके वेग पूर्वक वानरों का संहार कर रहा है। नील ने प्रहस्त पर जोरदार आक्रमण किया,– नील के आक्रमण का प्रहस्त सामना न कर सका—। प्रहस्त के मरते ही राक्षसी सेना भाग खड़ी हुई। — "युद्धस्थल में प्रहस्त मारा गया" यह सुनते ही वह क्रोध से तमतमा उठा ; किंतु थोड़ी ही देर में उसका चित्त उस के लिये शोक से व्याकुल हो गया। अत: वह मुख्य-मुख्य देवताओं से बात-चीत करने वाले इन्द्र की भाँति राक्षस सेना के मुख्य अधिकारियों से बोला—शत्रुओं को नगण्य समझ कर उनकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये। मैं जिन्हें बहुत छोटा समझता था, उन्हीं शत्रुओं ने मेरे उस सेनापति को सेवकों और हाथियों सहित मार गिराया, जो इन्द्र की सेना का भी संहार करने में समर्थ था। अब मैं शत्रुओं के संहार और अपनी विजय के लिये बिना कोई विचार किये स्वयं ही उस अद्भुत युद्ध के मुहाने पर जाऊँगा। जैसे प्रज्वलित आग वन को जला देती है, उसी तरह आज अपने वाणसमूहों से वानरों की सेना तथा लक्ष्मण सहित श्री राम को मैं भस्म कर डालूँगा। आज वानरों के रक्त से मैं इस पृथ्वी को तृप्त करूंगा।

रावण के स्वयं युद्ध में उतरते ही वानर दल में हाहाकार मच गया। अकम्पन्, महोदर, इन्द्रजित् पिशाच, कुम्भ, निकुम्भ, देवान्तक, नरान्तक भी उस के साथ थे। यह प्रथम अवसर था जबकि श्रीराम ने रावण को युद्धस्थल पर नायक के रूप में देखा। रावण के व्यक्तित्व से वे बेहद प्रभावित हुए, बोले —

अहो दीप्तमहातेजा रावणो राक्षसेश्वरः।
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः॥
न व्यक्तं लक्षये ह्यस्य रूप तेजः समावृतम्॥
देवदानववीराणां वपुर्नैवंविधं भवेत्।
यादृशं राक्षसेन्द्रस्य वपुरेतद् विराजते॥

"अहो! राक्षसराज रावण का तेज तो बहुत ही बढ़ा चढ़ा और देदीप्यमान है। रावण अपनी प्रभा से सूर्य की ही भाँति ऐसी शोभा पा रहा है कि इसकी ओर देखना कठिन हो रहा है। तेजो मण्डल से व्याप्त होने के कारण इस का रूप मुझे स्पष्ट नहीं दिखायी देता। इस राक्षसराज का शरीर जैसा सुशोभित हो रहा है, ऐसा तो देवता और दानव वीरों का भी नहीं होगा।

दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसम्भवम्॥
एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्यवान्।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम्॥

सौभाग्य की बात है कि यह पापात्मा मेरी आँखों के सामने आ गया, सीता हरण के कारण मेरे मन में जो क्रोध संचित हुआ है, उसे आज इस के ऊपर छोड़ूँगा। ऐसा कह कर बल-विक्रमशाली श्रीराम धनुष लेकर उत्तमवाण निकालकर युद्ध के लिये डट गये। इस कार्य में लक्ष्मण ने भी उनका साथ दिया। उस समय लक्ष्मण बोले, प्रभो! इस दुरात्मा का वध करने के लिये तो मैं ही पर्याप्त हूँ। प्रभो! आप मुझे आज्ञा दीजिये। मैं इसका नाश करूंगा। उनकी बात सुनकर महातेजस्वी सत्यपराक्रमी श्री राम ने कहा - "अच्छा लक्ष्मण! जाओ, किन्तु संग्राम में विजय पाने के लिये पूर्ण रूपेण प्रयत्न शील रहना।

रावणो हि महावीर्यो रणेऽद्भुतपराक्रमः।
त्रैलोक्येनापि संक्रुद्धो दुष्प्रसह्यो न संशयः॥

क्योंकि रावण महान् बल-विक्रम से सम्पन्न है। यह युद्ध में अद्भुत पराक्रम दिखाता है। रावण यदि अधिक कुपित होकर युद्ध करने लगे तो तीनों लोकों के लिये इसके वेग को सहन करना कठिन हो जायगा।

तस्य छिद्राणि मार्गस्व स्वच्छिद्राणि च लक्षय।
चक्षुषा धनुषाऽऽत्मानं गोपायस्व समाहितः॥

तुम युद्ध में रावण के छिद्र देखना। उसकी कमजोरियों से लाभ उठाना और अपने छिद्रों पर भी दृष्टि रखना। एकाग्रचित्त हो पूरी सावधानी के साथ अपनी दृष्टि और धनुष से भी आत्मरक्षा करना। श्री रघुनाथ जी की यह बात जानकर सुमित्राकुमार लक्ष्मण उनके हृदय से लग गये और श्रीराम का पूजन एवं अभिवादन करके वे युद्ध के लिये चल दिये। उन्होंने देखा, रावण बाण-समहों की वर्षा करके वानरों को ढंकता तथा उनके शरीरों को छिन्न-भिन्न किये डालता है।

रावण को इस प्रकार पराक्रम करते देख महातेजस्वी पवनकुमार हनूमान् जी उस के बाण समूहों का निवारण करते हुए उस की ओर बढ़े। उसके रथ के पास पहुंच कर अपना दायां हाथ उठा बुद्धिमान हनुमान् ने रावण को भयभीत करते हुए कहा—निशाचर! तुमने देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष और राक्षसों से न मारे जाने का वर प्राप्त कर लिया है, परन्तु वानरों से तो तुम्हें भय है ही।

हनुमान् इतना ही कह पाय थे, रावण ने पवनकुमार की छाती में ज़ोर का तमाचा मारा। हनुमान् तो उसी थप्पड़ को सह गये, जवाब में उन्होंने भी रावण के एक थप्पड़ मारा। उस थप्पड़ की मार से रावण उसी प्रकार कांप उठा, जैसे भूकम्प आने पर पर्वत हिल जाता है।

संग्रामे तं तथा दृष्ट्वा रावणं तलताडितम्।
ऋषयो वानराः सिद्धा नेदुर्देवाः सहासुरैः॥

संग्राम भूमि में रावण को थप्पड़ खाते देख ऋषि, वानर, सिद्ध, देवता और असुर सभी हर्ष ध्वनि करने लगे।

अथाश्वस्य महातेजा रावणो वाक्यमब्रवीत्।
साधु वानरवीर्येण श्लाघनीयोऽसि मे रिपुः॥

तदन्तर महातेजस्वी रावण ने सम्भल कर कहा—शाबाश वानर! शाबाश, तुम पराक्रम की दृष्टि से मेरे प्रशंसनीय प्रतिद्वन्दी हो। रावण के ऐसा कहने पर पवनकुमार हनुमान् जी ने कहा—

धिगस्तु मम वीर्यस्य यत त्वं जीवसि रावण।

धिक्कार है मेरे पराक्रम को, जो मेरा थप्पड़ खाकर भी तुम जीवित हो।

इतने में सुमित्रानन्दन लक्ष्मण रावण के सामने आ ललकारे।

जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र
बलं प्रतापं च पराक्रमं च।
अवस्थितोऽहं शरचापपाणि
रागच्छ किं मोघ विकत्थनेन॥

"राक्षसराज! मैं तुम्हारे बल वीर्य, प्रताप और पराक्रम को अच्छी तरह जानता हूं। इसी लिये हाथ में धनुष-बाण लेकर सामने खड़ा हूं। आओ, युद्ध करो। व्यर्थ बातें बनाने से क्या होगा। उस समय हनुमान् जी लक्ष्मण की मदद पर आ गये और आते ही उन्होंने रावण की छाती में ज़ोर से मुक्का मारा।

तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः।
जानुभ्यामगमद् भूमौ चचाल च पपात च॥

उस मुक्के की मार से राक्षसराज रावण ने धरती पर घुटने टेक दिये। वह कांपने लगा और अन्ततोगत्वा गिर पड़ा। वह मूर्च्छित हो

अपनी सुध-बुध खो बैठा। वहां भी वह स्थिर न रह सका, तड़पता और छटपटाता रहा। समरांगन में भयंकर पराक्रमी रावण को अचेत हुआ देख ऋषि, देवता, असुर और वानर हर्षनाद करने लगे।

रावण अपनी जान बचा युद्ध से भाग गया, अथवा यूं कहिये कि श्रीराम की अपनी यह उदारता थी कि उन्होंने रावण को जीवन दान दे दिया। अब रावण को कुम्भकर्ण का ख्याल आया। कुम्भकर्ण एक बा-असूल आदमी था। यह ठीक है कि वह राक्षस था, यह भी सर्वथा सत्य है कि वह राम की सेनाओं से लड़ा, यह भी सत्य है कि वह हमारे शत्रुपक्ष का बहादुर नम्बर दो सूरमा था और मैं इस सिद्धान्त को भी स्वीकार करता हूं कि शत्रु की निन्दा ही करना चाहिये। उसे सर्वसाधारण की नज़रों में किसी प्रकार से भी उठाने का अवसर नहीं देना चाहिये, परन्तु बहादुर कौम अपने बहादुर दुश्मन की हमेशा कदर किया करती है। दुश्मन यदि जिन्दा है तब तो हो सकता है उसकी प्रशंसा दूसरे पक्ष को कुछ-कुछ महंगी पड़े परन्तु जो दुश्मन मर चुका है, उसे मरे हुए भी हजारों-लाखों वर्ष हो चुके हैं, उस का वंश तक समाप्त हो चुका है, उस की राजधानी तक धरती तल से नेस्तोनाबूद हो चुकी है, ऐसे दुश्मन की यदि हम सर्वसत्यार्थ प्रशंसा कर भी दें, तो भी यह न तो अनुचित ही है, न अप्रसाङ्गिक और न ही अवांछनीय। रावण के मरने के बाद राम ने विभीषण से कहा था, मरणान्तानि वैरानि। गान्धी ने देश की हत्या करने वाले जिन्नासुर को उस की जिन्दगी में कायदे-आज़म बनाया, मैं यदि मरने के पश्चात् हिज़ सेकंड मेजेस्ट्री औनरेबुल कुम्भकरण को "कायदेआज़म" का खिताब दूं, तो इस में कुछ भी अनुचित नहीं है।

सच बात तो यह है श्रीराम ने लड़ाई तो लंक-पयान से पहले ही जीत ली थी—रावण का मन्त्रीमंडल अधिकांशतया रावण के सर्वथा खिलाफ था, कुछ प्रत्यक्ष विरोधी थे कुछ अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष विरोधियों में विभीषण था और अप्रत्यक्ष विरोधियों में कुम्भकर्ण।

कुम्भकर्ण का हृदय राम के पक्ष में था। वह यदि रावण का साथ दे रहा था तो केवल डिसिप्लिन के नाते। कुम्भकर्ण हृदय से राम का भक्त था। जिस समय रावण ने कुम्भकरण को जगाया और अपने उस सहोदर भ्राता से अपने हृदय की बात कही—उस ने रावण को समझाया। आखिर कुम्भकरण एक आर्य पिता का पुत्र था, पितृ पक्ष से उसने आर्यत्व-रक्त को वरासत में प्राप्त किया था। वीर्य के जिस एक कण से कुबेर का शरीर बना था, उसी वीर्य के समानरूप दूसरे कण से कुम्भकरण का शरीर बना था। रावण को सन्मार्ग दर्शाते हुए कितने सुन्दर शब्द कुम्भकर्ण ने कहे—सुनो! मैं स्वयं अपनी ओर से कुछ नहीं कहता, जो रामायण में लिखा है, शब्दश: उसी को यहां उद्धृत कर देता हूं—

"तब राजा रावण ने अत्यन्त दीन-वाणी से उस अपने भाई से कहा—"कुम्भकर्ण! इस समय हमारे ऊपर बड़ा संकट है, सो तुम सुनो! रामने हमारे बड़े-बड़े वीर, पुत्र, पौत्र और बन्धु-बान्धवगण मार डाले हैं। भाई! इस समय मेरा मृत्युकाल आ गया है, अब मुझे क्या करना चाहिये। महाबली दशरथकुमार सुग्रीव के सहित दलबल के साथ समुद्र पारकर सब ओर से हमारी जड़ काट रहा है। हमारे जो मुख्य-मुख्य राक्षस थे वे सब युद्ध में वानरों के हाथ से मारे गये, किन्तु इस युद्ध में हमें वानरों का क्षय होता कभी दिखाई नहीं देता। महाबाहो! तुम

इनका नाश करो, मैंने इसीलिये तुम्हें जगाया है। हे महावीर ! अपने भाई के लिये इस दुष्कर कार्य को करो।''

राजा रावण के ये दुःखमय वचन सुनकर कुम्भकर्ण बड़े जोर से ठट्ठा मारकर हंसा और इस प्रकार कहने लगा। 'राजन्! आप ने जब पहले सम्मति की थी उस समय मैंने जो कुछ कहा था आपके पाप का यह फल आज उपस्थित हो ही गया। मैंने तो आप से पहले ही कहा था कि राम साक्षात् परब्रह्म हैं और सीताजी योगमाया हैं, किन्तु आप तो समझाने पर भी नहीं समझते। एक दिन मैं रात्रि के समय वनमें एक विशाल शिलापर बैठा था। इसी समय मैंने दिव्यमूर्ति साक्षात् नारद मुनि को देखा। उन्हें देखकर मैंने कहा—"हे महाभाग ! कहिये, इस समय आप कहां जा रहे हैं ?" मेरे इस प्रकार पूछने पर नारद जी ने कहा—"मैं अभी तक देवताओं की एक गोष्ठी में था। वहां जो कुछ हुआ वह मैं तुम्हें ज्यों का त्यों सुनाता हूं। तुम दोनों भाइयों से अत्यन्त पीड़ित होकर समस्त देवगण विष्णु भगवान् के पास गये। और उन देवदेवेश्वर की अत्यन्न भक्ति और एकाग्रता से स्तुति कर कहने लगे —'हे देव ' हम बहुत दुखी हैं। रावण हमारा सर्वनाश कर रहा है। ब्रह्मा से उस ने वर मांगा , मेरी मृत्यु मनुष्य के हाथों हो। अतः आप मनुष्य रूप में धरती पर पधारो उस समय आकाशवाणी हुई, श्रीराम रघुवंश में अवतार लेंगे ओर रावण का विनाश करेंगे।

अतो जानोहि रामं त्वं परं ब्रह्म सनातनम्।
त्यज वैरं भजस्वाद्य मायामानुष विग्रहम् ॥

सुनि दसकंधर बचन तब कुम्भकरन बिलखान।
जगदम्बा हरि आनि अब सठ चाहत कल्यान ॥

भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा।
अब मोहि आइ जगाएहि काहा ॥
अजहूं तात त्यागि अभिमाना।
भजहु राम होइहि कल्याना ॥
अहह बंधु तैं कीन्हि खोटाई।
प्रथमहिं मोहि न सुनाएहि आई ॥
हैं दससीस मनुज रघुनायक।
जाके हनुमान से पायक ॥
कीन्हेहु प्रभु विरोध तेहि देवक।
सिव बिरंचि सुर जाके सेवक ॥

कुम्भकर्ण का केवल शरीर ही लंका में था उसका हृदय तो शतप्रतिशत भगवान् श्रीराम के ही चरणों में था, मैदाने जंग का वह दृश्य महान् रोमाञ्चकारी था। जिस समय रणभूमि में कुम्भकर्ण एवं विभीषण आमने सामने आये, विभीषण को देखते ही कुम्भकर्ण की आंखों में स्नेह एवं सौहार्द के आंसू भर गये। कवि के शब्दों में उस दृश्य का वर्णन सुनिये —

"गदापाणि विभीषण को अपने सामन देख कुम्भकरण बोला,—भाई साहिब ! आप मेरे सामने से हट जाइये, मैं आप पर प्रहार नहीं करूंगा, क्योंकि तुम सब प्रकार से रक्षणीय हो।

रक्षणीयोऽसि मे वत्स सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
अस्मत्कार्यं कृतं वत्स यस्त्वं राममुपागतः ॥
संतानार्थं त्वमेवैकः कुलस्यास्य भविष्यसि।
राघवस्य प्रसादात् त्वं रक्षसां राज्यमाप्स्यसि ॥

बुद्धिमान् विभीषण ने उस अपने भ्राता के चरणों में प्रणाम किया। और कहा—हे महामते ! मैं आप का भाई विभीषण हूं, आप मुझ पर दया करें। भाई ! मैंने रावण को बारम्बार समझाया, किन्तु उन्होंने मेरी बात नहीं सुनी और मुझे मारने के लिये तलवार खींच कर कहा कि तुझे धिक्कार है, तू यहां से टल जा। पापी मन्त्रियों से घिरे हुए भाई रावण ने ऐसा कहकर मेरे लात मारी, तब मैं अपने चार मन्त्रियों के सहित भगवान् राम की शरण

में चला गया।"

ऐसा सुन कुम्भकर्ण ने विभीषण को हृदय से लगा लिया और कहा—"वत्स ! भगवान् श्रीराम के चरणों का आश्रय पाकर अपने कुल की तुमने रक्षा की। प्रभु करे राक्षसों के कल्याण के लिये तुम चिरकाल तक जीवित रहो। रावण न जीतेगा, न जीयेगा। मुझे इतना सन्तोष है कि मेरे बड़े भाई के पश्चात् लंका का राज्य आयगा तो छोटे भाई के हाथों में।

देखि विभीषनु आगे आयउ।
परेउ चरन निज नाम सुनायउ॥
अनुज उठाइ हृदयँ तेहि लायो।
रघुपति भक्त जानि मन भायो॥
तात लात रावन मोहि मारा।
कहत परम हित मन्त्र बिचारा।
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयउँ।
देखि दीन प्रभु के मन भायउं॥
सुनु सुत भयउ कालबस रावन।
सो कि मान अब परम सिखावन॥
धन्य धन्य तैं धन्य विभीषन।
भयउ तात निसिचरकुल भूषन॥
बंधु बंस तै कीन्ह उजागर।
भजेहु राम सोभा सुख सागर॥
बचन कर्म मन कपट तजि भजेहु राम रनधीर।
जाहु न निज पर सूझ मोहि भयउँ कालबस वीर॥

अब कुम्भकर्ण की लीला-कथा सुनिये—

कुम्भकरन बूझा कहु भाई।
काहे तव मुख रहे सुखाई॥
कथा कही सब तेंहि अभिमानी।
जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे।
महा महा जोधा संघारे॥
दुमुंख सुररिपु मनुज अहारी।
भट अतिकाय अकंपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा।
परे समर महि सब रणधीरा॥

कुम्भकर्ण द्वारा उपदेश भरी बातें सुनकर रावण बोला,—भाई साहिब ! तुम माननीय गुरु और आचार्य की भांति मुझे उपदेश क्यों दे रहे हो ? इस प्रकार भाषण देने का परिश्रम करने से क्य लाभ होगा इसलिये जोउचित और आवश्यक हो, वह काम करो; जो बात बीत गई, सो तो बीत गई। बुद्धिमान् लोग बीती यात के लिये बारंबार शोक नहीं करते। अब इस समय हमें क्या करना चाहिये, इस का विचार करो। यदि मुझ पर तुम्हारा स्नेह है, यदि अपने भीतर यथेष्ट पराक्रम समझते हो और यदि मेरे इस कार्य को परम कर्त्तव्य समझ कर हृदय में स्थान देते हो तो युद्ध करो। वही सुहृद है, जो सारा नष्ट हो जाने से दुखी हुए स्वजन पर अकारण अनुग्रह करता है, तथा वही बन्धु है जो अनीति के मार्ग पर चलने से संकट में पड़े हुए पुरुषों की सहायता करता है।

उस समय अपने ज्येष्ठ भ्राता को इस प्रकार बोलते देख कुम्भकर्ण अपने भाई को सान्त्वना देते हुए बोला, पृथ्वीनाथ ! मेरे जीते जी तुम्हें मन में ऐसा भाव नहीं लाना चाहिये। तुम्हें जिसके कारण संतप्त होना पड़ रहा है उसे मैं नष्ट कर दूंगा। इस समय एक भाई को स्नेहवश जो कुछ करना उचित है, वही करूंगा। अब रणभूमि में मेरे द्वारा किया जाने वाला शत्रुओं का संहार देखो।

अद्य पश्य महाबाहो मया समरमूर्धनि।
हते रामे सह भ्रात्रा द्रवन्तीं हरिवाहिनीम्॥

महाबाहो ! आज मैं संग्राम भूमि में राम का सिर काट लाउँगा। शत्रुओं को संताप देने वाले अनुपम पराक्रमी वीर ! इस समय तुम इच्छानुसार मुझे युद्ध के लिये आदेश दो। शत्रुओं

से जूझने के लिये तुम्हें दूसरे किसी को ओर देखने की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारे महाबली शत्रु यदि इन्द्र, यम, अग्नि, वायु, कुबेर, और वरुण भी हों तो मैं उनसे भी युद्ध करूँगा तथा उन सब को उखाड़ फैंकूगा। मैं समुद्र को पी जाऊंगा पर्वतों को चूर-चूर कर दूंगा। भूमण्डल को विदीर्ण कर डालूंगा। आज मेरे द्वारा खाये जाने वाले सब प्राणी दीर्घकाल तक सोकर उठे हुए मुझ कुम्भकर्ण का पराक्रम देखें। यह सारी त्रिलोकी आहार बन जाये तो भी मेरा पेट नहीं भर सकता।"

महाबली कुम्भकर्ण से ऐसी बात सुन कर महातेजस्वी राक्षसराज रावण ने अपना पुनः नया जन्म हुआ सा माना।

युद्ध की साज सज्जा में पूर्णतया सुसज्जित हो जब वह राक्षस कुम्भकर्ण आगे बढ़ा, उस समय त्रिलोकी को नापने के लिये तीन डग बढाने को उत्साहित हुए भगवान् वामन के समान जान पड़ा।

भाई को हृदय से लगाकर उसकी परिक्रमा करके उस महाबली वीर ने उसे मस्तक झुका कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह युद्ध के लिये चला। उस समय रावण ने उत्तम आशीर्वाद देकर श्रेष्ठ आयुधों से सुसज्जित सेनाओं के साथ उसे युद्ध के लिये विदा किया। यात्रा के समय उसने शङ्ख और दुन्दुभि आदि बाजे भी बजवाये।—

कुम्भकर्ण के रणक्षेत्र में आते ही वानर दल में हाहाकार मच गया। रणभूमि में रक्त और माँस की कीच मचाता हुआ वह राक्षस बढ़ी हुई प्रलयाग्नि के समान वानर सेना में विचरने लगा। जैसे ग्रीष्मऋतु में दावानल सूखे जंगलों को जला देता है, उसी प्रकार कुम्भकर्ण वानर सेना को दग्ध करने लगा।

उस समय वानर दल को त्रस्त देख अङ्गद उस महासमर में कुम्भकर्ण की ओर बड़े वेग से दौड़े,—थोड़ी ही देर में सुग्रीव भी अङ्गद की सहायता पर आ गये। सुग्रीव को आक्रमण करते देख कुम्भकर्ण अपने सारे अङ्गों को फैला कर उन वानरराज के सामने खड़ा हो गया। कुम्भकर्ण ने सुग्रीव को धरती पर दे पटका। भयानक बलशाली कुम्भकर्ण जब सुग्रीव को पृथ्वी पर रगड़ रहा था और राक्षस सभी ओर से सुग्रीव पर चोट कर रहे थे, उसी समय सुग्रीव सहसा गेंद की भाँति वेगपूर्वक आकाश में उछले।

उसी समय लक्ष्मण कुम्भकर्ण की ओर दौड़े। तब उस भयंकर राक्षस ने मेघों की गर्जना के समान स्वर से सुमित्रानन्दन लक्ष्मण का तिरस्कार करते हुए कहा, लक्ष्मण! मैं युद्ध में यमराज को भी बिना कष्ट उठाये ही जीत लेने की शक्ति रखता हूँ। तुमने मेरे साथ निर्भय होकर युद्ध करते हुए अपना अद्भुत वीरता का परिचय दिया है।

जब मैं महासमर में मृत्यु के समान हथियार ले कर युद्ध के लिये उद्यत होऊं, उस समय मेरे सामने जो खड़ा हो सके वह प्रशंसा का पात्र है। फिर जो मुझे युद्ध प्रदान कर रहा हो उसका तो कहना ही क्या? ऐरावत पर आरूढ़ हो सम्पूर्ण देवताओं से घिरे शक्तिशाली इन्द्र भी आज तक मेरे सामने युद्ध में टिक नहीं सके। परन्तु लक्ष्मण! मैं तो राम से लड़ने आया हूँ। कहाँ है राम, ज़रा उसे तो मेरे सामने लाओ। वह राक्षस जब पूर्वोक्त बात कह चुका, सुमित्रा कुमार लक्ष्मण रणभूमि में ठठा कर हँस पड़े और बोले, वीर कुम्भकर्ण! जो तुम कहते हो ठीक है। निःसन्देह तुम बड़े बहादुर हो। मैं ने स्वयं अपनी आँखों से आज तुम्हारा

पराक्रम देख लिया, ये रहे दशरथ नन्दन भगवान् श्री राम, जो पर्वत के समान अविचल भाव से खड़े हैं।—

यस्त्वं शक्रादिभिर्देवैरसह्यः प्राप्य पौरुषम।
तत् सत्यं नान्यथा वीर दृष्टस्तेऽद्य पराक्रमः॥
एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः॥

इस समय रघुवंश शिरोमणि श्रीराम ने कुम्भकर्ण को ललकारा।

आगच्छ रक्षोऽधिप मा विषाद
मवस्थितोऽहं प्रगृहीतचापः।
अवेहि मां राक्षसवंशनाशनं
यस्त्वं मूहूर्ताद् भविता विचेताः॥

राक्षसराज! आओ, विषाद न करो। मैं धनुष लेकर खड़ा हूँ। मुझे राक्षसवंश का विनाश करने वाला समझो।—"यही राम हैं" —यह जानकर वह राक्षस विकृत स्वर में अट्टहास करने लगा और अत्यन्त कुपित हो रणक्षेत्र में वानरों को भगाता हुआ उन की ओर दौड़ा।

नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो न च।
न वाली न च मारीचः कुम्भकर्णः समागतः॥

राम! मुझे विराध, कबन्ध और खर मत समझो, मैं मारीच और वाली भी नहीं हूँ। मैं कुम्भकर्ण हूं। राम ने कुम्भकर्ण पर सर्वप्रथम उन्हीं वाणों का प्रयोग किया, जिन वाणों का प्रयोग बाली पर किया था। परन्तु अपने मुग्दर के बल पर कुम्भकरण ने उन वाणों को बेकार कर दिया। तत्पश्चात् राम ने वायव्यास्त्र का प्रयोग किया,—और निशाचर की दाहिनी भुजा जो मुग्दर को सम्भाले थी काट फेंकी। पश्चात् राम ने एन्द्रास्त्र का प्रहार कर कुम्भकर्ण की दूसरी भुजा भी काट डाली। भुजविहीन होकर कुम्भकर्ण उसी अवस्था में रामजी की ओर झपटा। रामजी ने वाणवर्षा से उसके दोनों पैर भी काट डाले। अब बाकी बचा ही क्या था।

अंगदादि कपि मुरुछित करि समेत सुग्रीव।
कांख दाबि कपिराज कहुँ चला अमित बलसींव॥

उमा करत रघुपति नर लीला।
खेलत गरुड़ जिमि अहि गन मीला॥
भृकुटि भंग जो कालहि खाई।
ताहि कि सोहइ ऐसि लराई॥
कर सारंग साजि कटि भाथा।
अरि दल दलन चले रघुनाथा॥
सत्यसंध छांड़े सर लच्छा।
कालसर्प जनु चले सपच्छा॥

छन महुँ प्रभु के सायकन्हि काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषंग महुँ प्रविसे सब नाराच॥

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक।
छाडे अति कराल बहु सायक॥
समय देव करुनानिधि जान्यो।
श्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो॥
सुर दुंदुभी बजावहिं हरषहिं।
अस्तुति करहिं सुमन बहु बरषहिं॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गये।
राम समर महि सोभत भये॥

जैसे पूर्वकाल में देवराज इन्द्र ने वृत्रासुर का सिर काट डाला था, उसी प्रकार उस वाण ने महान पर्वत शिखर के समान ऊंचे, सुन्दर गोलाकार दाढ़ों से युक्त तथा हिलते हुए मनोहर कुण्डलों से अलङ्कृत राक्षसराज कुंभकर्ण मस्तक को धड़ से अलग कर दिया।

ब्राह्मण और देवताओं के शत्रु महाबली कुम्भकर्ण के युद्ध में मारे जाने से सम्पूर्ण देवता हर्षसे भरकर तुमल नाद करने लगे। उस समय आकाश में खड़े हुए देवर्षि, महर्षि, सर्व देवता, भूतगण, गरुड़, गुह्यक, यक्ष और गन्धर्व गण श्रीराम का पराक्रम देखकर बहुत प्रसन्न हुए। महाबली कुम्भकर्ण को रण में परास्त कर रघुनाथ जी को वैसी ही प्रसन्नता हुई जैसी वृत्रासुर का वध करके देवराज इन्द्र को हुई

(१४)

मेघनाद पर्व

तस्मिन हृते ब्राह्मणदेवशत्रौ महाबले संयति कुम्भकर्णे ।
चचाल भूर्भूमिधराश्च सर्वे हर्षाच्च देवास्तुमुलं प्रणेदुः ॥
ततस्तु देवर्षिमहर्षिपन्नगाः सुराश्च भूतानि सुपर्णगुह्यकाः ।
सयक्षगन्धर्वगणा नभोगताः प्रहर्षिता रामपराक्रमेण ॥

माताओ बहनों एवं भाईओ !

महाबली कुम्भकर्ण युद्धस्थल में मारा गया, यह सुनकर रावण शोक से संतप्त एवं मूर्च्छित हो तत्काल पृथ्वी पर गिर पड़ा। अपने चाचा के निधन का समाचार सुनकर देवान्तक, नरान्तक, त्रिशरा और अतिकाय दुःख से पीड़ित हो फूट-फूट कर रोने लगे। महोदर तथा पार्श्व भी शोक से व्याकुल हो गये। तब त्रिशिरा, नरान्तक, सब रावण को हौसला देने लगे—राजन्! आप निराश मत होइये, हम तीनों अभी जाते हैं और राम-लक्ष्मण की जीवन लीला समाप्त करके अभी लौटते हैं। इतना कहते ही वे तीनों युद्ध के लिये चल पड़े। वे सब के सब आकाश में विचरण करने लगे। भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। परन्तु तीनों स्वयमेव मृत्यु के ग्रास बन गये। अङ्गद द्वारा नरान्तक, हनुमान जी द्वारा देवान्तक तथा त्रिशिरा, नील के द्वारा महोदर तथा ऋषभ के द्वारा महापार्श्व मारा गया। उस समय अपने पिताश्री को धीरज बंधाते इन्द्रजित् बोला—जब तक इन्द्रजित् जीवित है आप चिन्ता मत कीजिये—

इमां प्रतिज्ञां शृणु शक्रशत्रोः
सुनिश्चितां पौरुषदैवयुक्ताम् ।
अद्यैव रामं सह लक्ष्मणेन
संतर्पयिष्यामि शरैरमोघैः ॥

अर्थात्, मेरी प्रतिज्ञा सुन लीजिये,—मैं आज ही लक्ष्मण सहित राम को अपने अमोघ बाणों से पूर्णतः तृप्त करूंगा। आज इन्द्र, यम, विष्णु, रुद्र, साध्य, अग्नि, सूर्य और चन्द्रमा बलि के महामण्डल में भगवान् विष्णु के भयंकर विक्रम की भांति मेरे अपार विक्रम को देखेंगे।

ब्रह्मास्त्र से संयुक्त हो इन्द्रजित् आकाश में अदृश्य रहते हुए नीचे धरती पर वानरदल पर अन्धाधुन्ध अग्नि वर्षा करने लगा—और उस ने पहले ही प्रहार में राम-लक्ष्मण को मुर्च्छित कर दिया। वानरदल में सर्वत्र त्रास छा गया!—प्रायः समूची वानर सेना ब्रह्मास्त्र के प्रभाव से मूर्च्छित हो गई। उस समय पवनकुमार हनुमान् विभीषण से बोले—राक्षसराज ! इस अस्त्र से घायल हुए वेगशाली वानर सैनिकों में जो-जो प्राण धारण करते हों, उन-उन को हमें चल कर आश्वासन देना चाहिये। उस समय रात हो गई थी, इस लिये हनुमान् और राक्षस प्रवर

विभीषण दोनों वीर अपने-अपने हाथ में मसाल लिये एक ही साथ रणभूमि में विचरने लगे। समुद्र के समान विशाल एवं भयंकर वानर-सेना को वाणों से पीड़ित देख विभीषण सहित हनुमान् जी जाम्बवान् को ढूंढने लगे।

ब्रह्माजी के पुत्र वीर जाम्बवान् एक तो स्वाभाविक वृद्धावस्था से युक्त थे, दूसरे उन के शरीर में सैंकड़ों बाण घंसे हुए थे, अतः वे बुझती हुई आग के समान निस्तेज दिखाई देते थे। उन्हें देखकर विभीषण तुरन्त ही उन के पास गये और बोले—आर्य! इन तीखे बाणों के प्रहार से आप के प्राण निकल तो नहीं गये। विभीषण की बात सुनकर जाम्बवान् बड़ी कठिनाई से वाक्य का उच्चारण करते हुए इस प्रकार बोले—महापराक्रमी राक्षस! मैं केवल स्वर से तुम्हें पहचान रहा हूं। मेरे सभी अङ्ग पैने बाणों से बिंधे हुए हैं, अतः मैं आंख खोलकर तुम्हें नहीं देख सकता।

अञ्जना सुप्रजा येन मातरिश्वा च सुव्रत ।
हनूमान् वानरश्रेष्ठः प्राणान् धारयते क्वचित् ॥

उत्तम व्रत के पालक विभीषण! यह तो बताओ—वानरश्रेष्ठ हनुमान् कहीं जीवित हैं?

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचेदं विभीषणः ।
आर्यपुत्रावतिक्रम्य कस्मात् पृच्छसि मारुतिम् ॥

जाम्बवान् का यह प्रश्न सुनकर विभीषण ने पूछा—ऋक्षराज! आप दोनों महाराज कुमारों को छोड़ कर केवल पवन कुमार हनुमान् को ही क्यों पूछ रहे हो। आर्य! आपने न तो महाराजा सुग्रीव पर, न अंगद पर और न श्रीराम पर ही वैसा स्नेह दिखाया है, जैसा पवन पुत्र हनुमान् जी के प्रति आपका प्रगाढ़ प्रेम लक्षित हो रहा है। विभीषण की यह बात सुनकर जाम्बवान् ने कहा—राक्षसराज! सुनो, मैं पवन कुमार हनुमान् जी को क्यों पूछता हूं? यह बता रहा हूं,—

अस्मिञ्जीवति वीरे तु हतमप्यहतं बलम् ।
हनूमत्युज्झितप्राणे जीवन्तोऽपि मृता वयम् ॥

यदि वीरवर हनुमान् जीवित हों तो यह मरी हुई सेना भी जीवित ही है। ऐसा समझना चाहिये और यदि उनके प्राण निकल गये हों तो हम लोग जीते हुए भी मृतक के ही तुल्य हैं।

तात! यदि वायु के समान वेगशाली और अग्नि के समान पराक्रमी पवन कुमार हनुमान् जीवित हैं तो हम सब के जीवित होने की संपूर्ण आशा की जा सकती है। बूढ़े जाम्बवान् के इतना कहते ही पवनपुत्र हनुमान् जी उन के पास आ गये और दोनों पैर पकड़ कर उन्होंने विनीत भाव से उन्हें प्रणाम किया। हनुमान् जी की बात सुनकर उस समय ऋक्षराज जाम्बवान् ने, जिन की सारी हड्डियां बाणों के प्रहार से पीड़ित थीं, अपना पुनर्जन्म हुआ-सा माना। फिर उन महा-तेजस्वी जाम्बवान् ने हनुमान् जी से कहा—"वानरसिंह! आओ, सम्पूर्ण वानरों की रक्षा करें महवीर! हमारी आशाओं का एकमात्र केन्द्र तुम्ही हो।

तुम्हारे सिवा दूसरा कोई पूर्ण पराक्रम संयुक्त नहीं है। तुम्हीं इन सब के परम सहायक हो। यह समय तुम्हारे ही पराक्रम का है। मैं दूसरे किसी को इसके योग्य नहीं देखता। तुम रीछों और वानरवीरों की सेनाओं को हर्ष प्रदान करो और बाणों से पीड़ित हुए इन दोनों भाई श्रीराम और लक्ष्मण के शरीर से बाण निकाल कर इन्हें स्वस्थ करो। पवनपुत्र! हिमालय में जाइये। मृतसंजीवनी, विशल्यकरणीं, सुवर्ण करणी, संधानी—नामक औषध लाइये।

नमस्कृत्वा समुद्राय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
राघवार्थे परं कर्म समीहत परंतपः ॥

शत्रुओं को संताप देने वाले भयानक पराक्रमी पवनकुमार हनुमान् जी ने समुद्र को नमस्कार करके श्रीरामचन्द्र जी के लिये महान् पुरुषार्थ करने का निश्चय किया।

सर्प के शरीर की भांति दिखाई देने वाली अपनी दोनों भुजाओं को फैलाकर गरुड़ के समान पराक्रमी पवनपुत्र हनुमान् जी सम्पूर्ण दिशाओं को खींचते हुए से श्रेष्ठ पर्वत गिरीराज हिमालय की ओर चले। उनका वेग अपने पिता वायु के समान था। वे अनेकानेक पर्वतों, पक्षियों, सरोवरों, नदियों, तालाबों, नगरों तथा समृद्धि-शाली जनपदों को देखते हुए बड़े वेग से आगे बढ़ने लगे। वीर हनुमान् अपने पिता के ही तुल्य तीव्रगामी थे। वे सूर्य के मार्ग का आश्रय ले, बिना थके-मांदे शीघ्रता पूर्वक अग्रसर हो रहे थे। महाकपि हनुमान् जी का बलविक्रम बड़ा भयंकर था। उन्होंने जाम्बवान् के वचनों का स्मरण करते हुए सहसा पहुंच कर हिमालय पर्वत का दर्शन किया।

अब आदि कवि द्वारा वर्णित हिमालय का सुन्दर वर्णन पढ़िये।

उस महापर्वतराज का सब से ऊंचा श्रेष्ठ शिखर सुवर्णमय दिखाई देता था। वहां पहुंच कर हनुमान् जी ने परमपवित्र बड़े-बड़े आश्रम देखे, जिन में देवर्षियों का श्रेष्ठ समुदाय निवास करता था। उस पर्वत पर उन्हें हिरण्यगर्भ भगवान् ब्रह्मा का स्थान, उन्हीं के दूसरे स्वरूप रजतनाभिका स्थान, इन्द्र का भवन, भगवान् हयग्रीव का वासस्थान, तथा ब्रह्मास्त्र देवता का दीप्तिमान स्थान,—ये सभी दिव्य स्थान दिखाई दिये। इसके सिवा अग्नि का, कुबेर का और द्वादश सूर्यों के समावेश का भी सूर्यतुल्य तेजस्वी स्थान उन्हें दृष्टिगोचर हुआ। चतुर्मुख ब्रह्मा शंकर जी के धनुष और वसुन्धरा की नाभि के स्थानों का भी उन्होंने दर्शन किया। तत्पश्चात् श्रेष्ठ कैलाशपर्वत, हिमालय शिला, शिव जी के वाहन वृषभ तथा सुवर्णमय श्रेष्ठ पर्वत ऋषभ को भी उन्होने देखा। इस के बाद उन की दृष्टि सम्पूर्ण ओषधियों के उत्तम पर्वत पर पड़ी। अग्निराशी के समान प्रकाशित होने वाले उस पर्वत को देखकर पवन कुमार हनुमान् जी को बड़ा विस्मय हुआ। वे कूद कर औषधियों से भरे हुए उस गिरी राज पर चढ़ गये और वहां पूर्वोक्त चारों औषधियों की खोज करने लग—आगे का अद्भुत वर्णन भी पढ़िये।

"उस उत्तम पर्वत पर रहने वाली सम्पूर्ण महौषधियां यह जानकर कि कोई हमें लेने के लिये आ रहा है, तत्काल अदृश्य हो गईं। उन औषधियों को न देखकर महात्मा हनुमान् जी कुपित हो उठे और रोष के कारण जोर-जोर से गर्जना करने लगे। औषधियों का छिपना उनके लिये असह्य हो गया। उनकी आंखें अग्नि के समान लाल हो गईं। और वे पर्वत राज से बोले—नगेन्द्र! तुम श्री रघुनाथ जी पर भी कृपा नहीं कर सके। ऐसा निश्चय तुम ने किस बल बूते पर किया है? आज मेरे बाहुबल से पराजित होकर तुम अपने-आप को सब ओर बिखरा हुआ देखो।

ऐसा कहकर उन्होंने वेग से पकड़ कर वृक्षों, हाथियों, सुवर्ण तथा अन्य सहस्र प्रकार की धातुओं से भरे हुए उस पर्वत शिखर को ही सहसा ही उखाड़ लिया। उसे उखाड़ कर साथ ले हनुमान् जी देवेश्वरों और असुरेश्वरों सहित सम्पूर्ण लोकों को भयभीत करते हुए गरुड़ के समान भयंकर वेग से आकाश में उड़ चले। उस समय बहुत से आकाश चारी प्राणी उनकी स्तुति कर रहे थे। सूर्य के समान

चमकते हुए उस पर्वत शिखर को हाथ में लेकर हनुमान् जी सूर्य के ही पथ पर जा पहुंचे थे। उस समय पवन कुमार दूसरे सूर्य के समान प्रतीत होते थे। उस समय उन्हें लौटा देख सब वानर ज़ोर-ज़ोर से गर्जना करने लगे। उन्होंने भी उन सब को देखकर बड़े हर्ष से सिंहनाद किया। उन सब के उस तुमुल नाद को सुनकर लंका वासी निशाचर और भी भयानक स्वर से चीत्कार करने लगे। तदनन्तर हनुमान् जी उस उत्तम पर्वत त्रिकूट पर कूद पड़े और वानरसेना के मध्य में आकर सभी श्रेष्ठ वानरों को प्रणाम करके विभीषण से भी गले लग कर मिले।

इसके बाद वे दोनों राष्ट्र-पुरुष राम-लक्ष्मण उन महौषधियों की सुगन्ध लेकर स्वस्थ हो गये। उन के शरीर से बाण निकल गये और घाव भर गये। इसी प्रकार जो दूसरे प्रमुख वानर वीर वहाँ हताहत हुए थे वे सब के सब उन श्रेष्ठ औषधियों की सुगन्ध से रात के अन्त में सोकर उठे हुए प्राणियों की भांति क्षण भर में नीरोग हो गये।

तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव ने हनुमान् जी से आगे कर्त्तव्य सूचित करने के लिये कहा—"कुम्भकरण मारा गया। राक्षसराज के पुत्रों का भी संहार हो गया। अब रावण सर्वथा निःशक्त है। वह लंकापुरी की रक्षा नहीं कर सकता। आज रात लंका के गढ़ पर जोरदार हमला बोल दिया जाय।' वानर सेना का सामना करने के लिये कुम्भ-निकुम्भ आगे बढ़े। यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ, कम्पन्, साथ चले। परन्तु थोड़ी ही देर में उन सब का सफाया हो गया। अङ्गद के हाथों कम्पन् और प्रजङ्घ का, द्विविद के हाथों शोणिताक्ष का, मैन्द द्वारा यूपाक्ष का, सुग्रीव द्वारा कुम्भ का, हनुमान् जी द्वारा निकुम्भ का सफाया हो गया। तब रावण ने मकराक्ष को रणभूमि में भेजा। मकराक्ष खर का पुत्र था। श्रीराम को सामने देखते ही मकराक्ष बोला—राम! ठहरो। उस दिन दण्डकारण्य से तो मेरे हाथ से बच गये। अब नहीं बच पाओगे। मकराक्ष की यह बात सुन कर भगवान् श्री राम जोर से हंसने लगे और मकराक्ष से बोले—निशाचर! क्यों व्यर्थ डींग हांकता है। संग्राम में युद्ध किये बिना कोरी बकवास के बल से विजय नहीं प्राप्त हो सकती। श्रीराम जी के ऐसा कहने पर महाबली मकराक्ष ने रणभूमि में उनके ऊपर बाण-समूहों की वर्षा आरम्भ कर दी। दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम और राक्षस खर के पुत्र मकराक्ष—इन दोनों में एक दूसरे के निकट आकर बलपूर्वक युद्ध होने लगा। देवता, गन्धर्व, दानव, किन्नर और बड़े-बड़े नाग—ये सब के सब उस अद्भुत युद्ध को देखने के लिये अन्तरिक्ष में आकर खड़े हो गये। देवताओं ने देखा, जैसे वज्र का मारा हुआ पर्वत बिखर जाता है, उसी प्रकार खर का पुत्र निशाचर मकराक्ष दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्र के बाणों के वेग से मार डाला गया।

मकराक्ष को मारा गया सुन कर समर विजयी रावण महान् रोष से भरकर दाँत पीसने लगा।—उसने क्रोध से भर कर अपने पुत्र इन्द्रजित् को युद्ध के लिये जाने की आज्ञा दी—वह बोला—'वीर! तुम महापराक्रमी राम और लक्ष्मण दोनों भाइयों को छिपकर या प्रत्यक्ष रूप से मार डालो। जिस के पराक्रम की कोई तुलना नहीं है, उस इन्द्र को भी तुम युद्ध में परास्त कर चुके हो; फिर उन दो साधारण से मनुष्यों को रणभूमि में मार देना तुम्हारे लिये कौन सा कठिन है', राक्षसराज रावण के ऐसा कहने पर इन्द्रजित् ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की और यज्ञ भूमि में जा कर

अग्नि की स्थापना करके उसमें विधिपूर्वक हवन किया। एक ही बार किये गये उस होम से अग्नि प्रज्वलित हो उठी, उसमें धुआँ नहीं था और बड़ी-बड़ी लपटें उठ रही थीं। उस अग्नि में वे सभी चिन्ह प्रकट हुए जो विजय की सूचना देते थे। उस समय तपाये हुए सुवर्ण के समान कान्तिमान् अग्निदेव ने स्वयं प्रकट होकर हविष्य ग्रहण किया। उनकी ज्वाला दक्षिणावर्त होकर निकल रही थी। अग्नि में आहुति दे आभिचारिक यज्ञ सम्बन्धी देवता, दानव पिशाच और राक्षसों को तृप्त करने के पश्चात् इन्द्रजित् अन्तर्धान होने की शक्ति से सम्पन्न सुन्दर रथ पर आरूढ़ हुआ। उस सूर्य तुल्य तेजस्वी रथ और ब्रह्मास्त्र से सुरक्षित हुआ वह महाबली रावणकुमार इन्द्रजित् दूसरों के लिये दुर्जय हो गया था।

समर विजयी इन्द्रजित् नगर से निकलकर निर्ऋति-देवता सम्बन्धी मन्त्रों से अग्नि में आहुति दे अन्तर्ध्यान की शक्ति से सम्पन्न हो इस प्रकार बोला,—

"जो व्यर्थ ही वन में आये हैं, जो झूठे ही तपस्वी का बाना धारण किये हुए हैं, उन दोनों भाई राम और लक्ष्मण को आज रण भूमि में मार कर मैं अपने पिता रावण को उत्कृष्ट जय प्रदान करूंगा। आज राम और लक्ष्मण को मारकर पृथ्वी को वानरों से सूनी करके मैं पिता को परमसंतोष दूँगा"—ऐसा कहकर वह अदृश्य हो गया। तत्पश्चात् दशमुख रावण से प्रेरित हो इन्द्रजित् कुपित हो कर रण भूमि में आया।—ये ही दोनों वे योधा हैं, ऐसा सोच कर जल की वर्षा करने वाले मेघ की भाँति अपनी वाणधाराओं से उसने सम्पूर्ण दिशाओं को भर दिया। उसका रथ आकाश में खड़ा था और श्रीराम तथा लक्ष्मण युद्ध भूमि में विराजमान थे। उन दोनों की दृष्टि से ओझल होकर वह राक्षस उन्हें पैने वाणों से बींधने लगा। उसके बाणां के वेग से व्याप्त हुए श्रीराम और लक्ष्मण ने भी अपने-अपने धनुष पर वाणों का संधान करके दिव्य अस्त्र प्रकट किये। उन महाबली बन्धुओं ने सूर्यतुल्य तेजस्वी वाण समूहों से आकाश को आच्छादित करके भी इन्द्रजित् का अपने बाणों से स्पर्श नहीं किया। उस तेजस्वी राक्षस ने माया से धूमजनित अन्धकार की सृष्टि की और आकाश को ढक दिया। साथ ही कुहरे का अन्धकार फैला कर दिशाओं को भी ढक दिया। अतिरथीवीर रावण पुत्र इन्द्रजित् अपने रथ के द्वारा सम्पूर्ण दिशाओं में दौड़ लगाता और बड़ी फुर्ती से अस्त्र चलाता था। उस ने अपने पैने बाणों द्वारा उन दोनों दशरथ कुमारों को घायल कर दिया। तब लक्ष्मण को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अपने भाई से कहा,—

ब्राह्ममस्त्रं प्रयोक्ष्यामि वधार्थं सर्व राक्षसाम्।

आर्य! अब मैं समस्त राक्षसों के संहार के लिये ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करूंगा।

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मणं शुभलक्षणम्।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि॥

उनकी यह बात सुनकर श्रीराम ने शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मण से कहा—"भाई! एक के कारण भूमण्डल के समस्त राक्षसों का वध करना तुम्हारे लिये उचित नहीं है। इन्द्रजित् महानीच है। इसने अन्तर्ध्यान शक्ति से अपने रथ को छिपा लिया है। परन्तु यदि यह पृथ्वी में समाजाय, स्वर्ग को चला जाय, रसातल में प्रवेश करे अथवा आकाश में ही स्थित रहे तथापि इस तरह छिपे होने पर भी मेरे अस्त्रों से दग्ध होकर प्राणशून्य हो भूतल पर अवश्य गिरेगा।

इस प्रकार महान् अभिप्राय से युक्त वचन कह कर वानर-शिरोमणियों से घिरे हुए रघु-कुल के प्रमुख वीर महात्मा श्रीरामचन्द्र जी उस क्रूरकर्मा भयानक राक्षस का वध करने के लिये तत्काल ही इधर-उधर दृष्टिपात करने लगे। महात्मा रघुनाथ जी के मनोभाव को समझकर इन्द्रजित् युद्ध से निवृत्त हो लंका पुरी में चला गया। परन्तु अपने पीछे तीव्रवेग से वानर सेना द्वारा राक्षस सेना का वध सुनते ही तुरन्त पुनः युद्ध भूमि को लौट गया। पुलस्त्य कुल में उत्पन्न महापराक्रमी इन्द्रजित् देवताओं के लिये कण्टकरूप था। वह राक्षसों की बहुत बड़ी सेना साथ लेकर नगर के पश्चिम द्वार से पुनः बाहर निकला। दोनों भाई वीर श्रीराम और लक्ष्मण को युद्ध के लिये उद्यत देख इन्द्रजित् ने उस समय माया प्रकट की।

इन्द्रजित् रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा।
बलेन महतावृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥

उसने माया मय सीता का निर्माण करके उसे अपने रथ पर बिठा लिया और विशाल सेना के घेरे में रखकर उस का वध करने का विचार किया।

मोहनार्थं तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुदुर्मतिः।
हन्तुं सीतां व्यवसितो वानराभिमुखो ययौ ॥

मेघनाद ने सब को भ्रम में डालने के लिये माया से बनी उस सीता को बीच मैदाने जंग के सब को दिखाते हुए सीता का वध कर दिया।

यह दृश्य अपनी आंखों के सामने देख सभी वानर वीरों को भ्रम हुआ —सीता जी का वध हो गया।—उस समय वानर सेना को सुनाते हुए, वानर वाहिनी के प्रवाह को रोकने की भावना से इन्द्रजीत बोला,—सीता को तो मैं ने समाप्त कर दिया। अब लड़ायी किस के लिये। निष्फलो वः परिश्रमः।

तथा तु सीतां विनिहत्य दुर्मतिः
प्रहृष्टचेताः स बभूव रावणिः।
तं हृष्टरूपं समुदीक्ष्य वानरा
विषण्णरूपाः समभिप्रदुद्रुवुः ॥

इस प्रकार मायामयी सीता का वध करके इन्द्रजित् को परम प्रसन्नता हुई। उसे हर्षोत्फुल्ल देख वानर विषाद ग्रस्त हो भाग खड़े हुए।

इन्द्रजित् की माया कामयाब रही। उस वानरदल को सम्बोधन करते हुए बजरंग बली बोले—अब रणभूमि में पौरुष दिखाने से कुछ लाभ नहीं। युद्ध जीत लेने पर भी हम सीता जी को ले नहीं सकते, क्योंकि दुर्मतिः इन्द्रजित् ने सीता जी को जान से मार डाला। आओ, अब हम युद्ध से विरत हो अपने स्वामी की सेवा में उपस्थित हो उन्हें यह समाचार सुनायें। पश्चात् जैसा वे चाहेंगे, वैसा करेंगे।

हनुमान् जी को युद्ध से हटते हुए देख इन्द्रजित् भी हट गया। उसे नये ढंग से अपने बल पौरुष को संग्रहीत करने का एक अवसर मिल गया। होम करने की इच्छा से वह निकुम्भिला में चला गया। इधर बजरंग बली प्रभु रामचन्द्र की सेवा में उपस्थित हो जानकी जी की हत्या का आंखों देखा समाचार सुनाते बोले,—अभी हनुमान् जी यह समाचार रामजी को सुना ही रहे थे कि उसी समय विभीषण भी वहां पधार गये। जब विभीषण ने सारी बात सुनी, वह बोला,—आप किसी प्रकार की चिन्ता मत कीजिये।

अभिप्रायं तु जानामि रावणस्य दुरात्मनः।
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥
वानरान् मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः।
मायामयी महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम् ॥

महाबाहो ! दुरात्मा रावण का सीता के प्रति क्या भाव है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। वह उनका वध कदापि नहीं करने देगा। महाबाहो ! राक्षस इन्द्रजित् वानरों को मोह में डाल कर चला गया है। जिस का उसने वध किया था वह मायामयी जानकी थी ; ऐसा निश्चित समझिये। वह इस समय निकुम्भिला में जा कर होम करेगा और जब होम करके लौटेगा, उस समय रावण कुमार को संग्राम में परास्त करना इन्द्र सहित सम्पूर्ण देवताओं के लिये कठिन होगा' जब तक उसका होम-कर्म समाप्त नहीं होता, उसके पूर्व ही हम लोग सेना सहित निकुम्भिला मन्दिर में चले चलें। नरश्रेष्ठ ! झूठे ही प्राप्त हुए इस संताप को त्याग दीजिए। नरश्रेष्ठ आप सेना सहित लक्ष्मण को भेजिये। महारथी सुमित्रा कुमार अपने पैंने वाणों मे मार कर रावण कुमार को होमकर्म त्याग देने के लिये विवश करेंगे। इस से वह मारा जा सकेगा। नरेश्वर ! शत्रु का विनाश करने में अब यह कालक्षेप करना उचित नहीं है। इस लिये आप शत्रुवध के लिये उसी प्रकार लक्ष्मण को भेजिये जिस प्रकार देवद्रोही दैत्यों के नाश के लिये देवराज इन्द्र वज्र का प्रयोग करते हैं। विभीषण के वचन सुन कर श्रीराम चन्द्र बोले,—सत्य पराक्रमी विभीषण ! मैं उस भयंकर राक्षस की माया को जानता हूं। मेरा भी यही विचार है कि लक्ष्मण इसी क्षण निकुम्भिला चले जायें। और ऐसा ही हुआ। श्रीराम बोले, लक्ष्मण अब देरी मत लगाओ। वानरराज सुग्रीव की जो भी सेना है, वह सब साथले हनुमान् आदि यूथपतियों ऋक्षराज जाम्बवान् तथा अन्य सैनिकों से घिरे रह कर तुम माया बल से सम्पन्न राक्षस राज इन्द्रजित का वध करो। ये महामना राक्षसराज विभीषण उसकी मायाओं से अच्छी तरह परिचित हैं ; अतः अपने मन्त्रियों के साथ ये भी तुम्हारे पीछे-पीछे जायेंगे। श्री रघुनाथ जी की यह बात सुन कर विभीषण सहित भयानक पराक्रमी लक्ष्मण ने अपना श्रेष्ठ धनुष हाथ में लिया। वे युद्ध की सब सामग्री लेकर तैयार हो गये। उन्हों ने कवच धारण किया, तलवार बाँध ली और उत्तम वाण तथा बायें हाथ में धनुष ले लिये तत्पश्चात् श्रीराम चन्द्र जी के चरण छूकर हर्ष से भरे हुए सुमित्रा कुमार ने कहा—आर्य ! आज मेरे धनुष से छूटे वाण रावणकुमार को विदीर्ण करके उसी तरह लंका में गिरेंगे, जैसे हंस कमलों से भरे हुए सरोवर मे उतरते हैं।

अद्यैव तस्य रौद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ।
विधमिष्यन्ति भित्वा तं महाचापगुणच्युताः ॥

इस विशाल धनुष से छूटे हुए मेरे वाण आज ही भयंकर राक्षस के शरीर को विदीर्ण करके उसे काल के गाल में डाल देंगे। इतना कह इन्द्रजित् के वध की अभिलाषा रखने वाले तेजस्वी लक्ष्मण अपने भाई के सामने ऐसी बात कह तुरन्त वहां से चल पड़े।

पहले उन्होंने अपने बड़े भाई के चरणों में प्रणाम किया ; फिर उनकी परिक्रमा करके रावण कुमार द्वारा पालित निकुम्भिला मन्दिर की ओर प्रस्थान किया। भाई श्रीराम द्वारा स्वस्तिवाचन किये जाने के पश्चात् विभीषण सहित प्रतापी राजकुमार लक्ष्मण बड़ी उतावली के साथ चले। कई हजार वानरवीरों के साथ हनुमान् और मन्त्रियों सहित विभीषण भी लक्ष्मण के पीछे शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुए।

थोड़ी ही दूर जाने पर विभीषण ने एक महान् वन में प्रवेश करके लक्ष्मण को इन्द्रजित् के कर्मानुष्ठान का स्थान दिखाया। वहां एक

बरगद का वृक्ष था, जो श्याममेघ के समान सघन और देखने में भयंकर था। रावण के उस तेजस्वी भ्राता विभीषण ने लक्ष्मण को वहां की सब वस्तुएं दिखा कर कहा, –'सुमित्रा नन्दन ! यह बलवान् रावणकुमार प्रतिदिन यहीं आता है, सर्वश्रेष्ठ बात यही है कि ज्योंहि आज वह यहां आये तत्काल उसे समाप्त कर दिया जाय।" विभीषण यह कह ही रहे थे कि तत्काल इन्द्रजित् वहां आता दिखायी दिया। उस समय विभीषण पुनः बोले. सुमित्रा कुमार ! दुरात्मा मेघनाद बड़ा ही मायावी, अधर्मी, क्रूरकर्म करने वाला, और सम्पूर्ण लोकों के लिये भयंकर है—अतः शीघ्र ही इसका वध कर दीजिये।

विभीषण की यह बात सुन कर शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मण ने इन्द्रजित् को लक्ष्य करके बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।

तत्काल वानरों एवं राक्षसों के बीच में एक भयानक संग्राम छिड़ गया। नाना प्रकार के शस्त्रों, पैने बाणों, और भयानक पर्वत शिखरों से वहां का आकाश आच्छादित हो गया।

वह दृश्य बड़ा ही मार्मिक था, लक्ष्मण के साथ इन्द्रजित् ने अपने चचा विभीषण को देखा। उस समय इन्द्रजित् कठोर शब्दों में बोला,—

राक्षसराज ! यहीं तुम्हारा जन्म हुआ और यहीं बढ़ कर तुम इतने बड़े हुए। तुम मेरे पिता के सगे भाई और मेरे चचा हो। फिर तुम अपने पुत्र से—मुझ से द्रोह क्यों करते हो । दुर्मते ! तुम में न तो कुटुम्बी जनों के प्रति अपनापन का भाव है, न आत्मीयजनों के प्रति स्नेह है और न अपनी जाति का अभिमान है । तुम में कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की मर्यादा, भ्रातृ-प्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है। तुम राक्षस धर्म को कलंकित करने वाले हो।

शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्द नीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥
नैतच्छिथिलया बुद्धया त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीच पराश्रयः ॥
गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् यः परः पर एव सः ॥

दुर्बुद्धे ! तुमने स्वजनों का परित्याग करके दूसरों की गुलामी स्वीकार की है । अतः तुम सत्पुरुषों द्वारा निन्दनीय और शोक के योग्य हो। नीच निशाचर ! तुम अपनी शिथिल बुद्धि के द्वारा इस महान् अन्तर को समझ नहीं पा रहे हो कि कहां तो स्वजनों के साथ रह कर स्वच्छन्दता का आनन्द लेना और कहां दूसरों की गुलामी करके जीना।

दूसरे लोग कितने ही गुणवान् क्यों न हों और स्वजन गुणहीन ही क्यों न हो, वह गुणहीन स्वजन दूसरों की अपेक्षा श्रेष्ठ ही है, क्योंकि दूसरा दूसरा हो होता है वह कभी अपना बन नहीं सकता । जो अपने पक्ष को छोड़ कर दूसरों के पक्ष का सेवन करता है, अपने पक्ष के नष्ट हो जाने पर फिर उन्हीं के द्वारा मार डाला जाता है। रावण के छोटे भाई निशाचर तुम ने लक्ष्मण को इस स्थान तक लाकर मेरा वध कराने के लिये प्रयत्न करके यह जैसी निर्दयता दिखायी है, ऐसा पुरुषार्थ तुम्हारे जैसा नीच स्वजन ही कर सकता है।"

उस समय विभीषण बोला —राक्षस ! यद्यपि मेरा जन्म क्रूरकर्मी राक्षसों में ही हुआ है तथापि मेरा शील स्वभाव राक्षसों सरीखा नहीं है, जिसका शील स्वभाव धर्म से भ्रष्ट हो गया हो, जिसने पाप करने का दृढ़ निश्चय कर लिया हो, ऐसे पुरुष का त्याग करके प्रत्येक

प्राणी उसी प्रकार सुखी हो जाता है जैसे हथेली पर बैठे हुए जहरीले सांप का त्याग करके मनुष्य सुखी हो जाता है । पराये धन का अपहरण, परस्त्री के साथ संसर्ग और अपने हितैषी सुहृदों पर अधिक शंका—अविश्वास ये तीन दोष विनाशकारी बताये जाते हैं।

महर्षियों का भयंकर वध, सम्पूर्ण देवताओं के साथ विरोध, अभिमान, रोष, वैर और धर्म के प्रतिकूल चलना ये दोष मेरे भाई में विराजमान हैं। जैसे बादल पर्वतों को आच्छादित कर देते हैं, उसी प्रकार इन दोषों ने मेरे भाई के सभी गुणों को ढक दिया है।

इन्हीं दोषों के कारण मैंने अपने भाई एवं तेरे पिता का त्याग किया है । अब न तो यह लंकापुरी रहेगी, न तू रहेगा, और न तेरे पिता ही रह जायेंगे । लक्ष्मण के बाणों से तू अब जीवित बच कर जा नहीं पायगा।

एक ओर पुरुष सिंह लक्ष्मण थे, दूसरी ओर राक्षस सिंह इन्द्रजित् । उन दोनों का वह तुमुल संग्राम भयंकर था। अपने चचा को लक्ष्मण की सहायता पर देखते ही इन्द्रजित् के चेहरे पर उदासी सी छा रही थी, उसी समय सुमित्रा कुमार को उत्साह देते हुए विभीषण बोले—महाबाहो! इस समय रावण पुत्र इन्द्रजित् में मुझे जो लक्षण दिखायी दे रहे हैं, उन से जान पड़ता है कि निःसन्देह इसका उत्साह भंग हो गया है, अतः आज ही आप इसका वध अवश्य कर दीजिये।

तब सुमित्रा कुमार ने विषधर सर्पों के समान भयंकर बाणों को धनुष पर चढ़ाया और उन्हें इन्द्रजित् को लक्ष्य करके चलाया। इधर से इन्द्रजित् ने भी जवाब दिया—दोनों में भीषण संग्राम छिड़ गया—लक्ष्मण और इन्द्रजित् दोनों को मदमत्त हाथियों की भांति परस्पर विजय पाने की इच्छा से युद्धासक्त हो कर जूझते देख उन दोनों के युद्ध को देखने की इच्छा से रावण के बलवान् भाई शूरवीर विभीषण सुन्दर धनुष धारण किये उस युद्ध के मुहाने पर आकर खड़े हो गये— विभीषण और उसके चारों साथी भी राक्षस दल पर प्रहार करने लगे।

उस समय सुमित्रानन्दन लक्ष्मण ने कुपित हो वारुणास्त्र उठाया, जवाब में इन्द्रजित् ने भी रौद्रास्त्र उठा लिया। इन्द्रजित् के उस रौद्रास्त्र के आगे लक्ष्मण का वारुणास्त्र शांत हो गया। तब इन्द्रजित ने आग्नेयास्त्र का संधान किया। लक्ष्मण ने मुकाबले पर सूर्यास्त्र चला दिया। तत्पश्चात् लक्ष्मण ने माहेश्वरास्त्र का प्रयोग किया।

तयाः समभवद् युद्धमद्भुतं रोम हर्षणम् ।
गगनस्थाणि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन् ।।
ऋषयः पितरो देवा गन्धर्व गरुडोरगाः ।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मणं रणे ।।

इस प्रकार उन दोनों में अत्यन्त अद्भुत और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा—आकाश में रहने वाले प्राणी लक्ष्मण को घेर कर खड़े हो गये।

ऋषि, पितर, देवता, गन्धर्व, गरुड़ और नाग भी इन्द्र को आगे करके रणभूमि में समित्रा कुमार की रक्षा करने लगे। तत्पश्चात् लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया । उस अस्त्र का प्रयोग करते समय श्री लक्ष्मण बोले—

धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ।।

यदि दशरथनन्दन राम धर्मात्मा और सत्यप्रतिज्ञ हैं तथा पुरुषार्थ में उनकी समानता करने वाला दूसरा कोई वीर नहीं, तो हे अस्त्र! तुम इस रावणपुत्र का वध कर डालो ।

समराङ्गण में ऐसा कह कर शत्रु वीरों

का संहार करने वाले वीर लक्ष्मण ने सीधे जाने वाले उस बाण को कान तक खींच कर ऐन्द्रास्त्र से जगमगाते हुए कुन्डलों से युक्त इन्द्रजित् के शिरस्त्राण सहित दीप्तिमान् मस्तक को धड़ से काटकर धरती पर गिरा दिया। जैसे वृत्रासुर का वध होने पर देवता प्रसन्न हुए थे, उसी प्रकार इन्द्रजित् के मारे जाने पर विभीषण सहित समस्त वानर हर्ष से भर गये और जोर-जोर से सिंहनाद करने लगे।

अथान्तरिक्षे देवानामृषीणां च महात्मनाम्।
जज्ञेऽथ जयसंनादो गन्धर्वाप्सरसामपि॥

आकाश में देवताओं, महात्मा ऋषियों गन्धर्वों तथा अप्सराओं का भी विजयजनित हर्ष नाद गूँज उठा।

संग्राम भूमि में शत्रु विजयी इन्द्रजित् का वध करके रक्त से भीगे हुए शरीर वाले शुभ लक्षण लक्ष्मण बहुत प्रसन्न हुए। पुनः श्री राम चन्द्र जी के सामने आकर उनके चरणों में प्रणाम करके सुमित्रा कुमार अपने उन ज्येष्ठ भ्राता के पास उसी प्रकार खड़े हो गये जैसे इन्द्र के पास उपेन्द्र। उस समय विभीषण ने श्रीरामचन्द्र के प्रति यह सुखद समाचार निवेदन किया—प्रभो! इन्द्रजित् के वध का भयंकर कार्य सम्पन्न हो गया। लक्ष्मण के द्वारा इन्द्रजित् का वध हुआ है, यह समाचार सुनते ही महापराक्रमी श्री राम चन्द्र जी को अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ और वे इस प्रकार बोले,—

शाबाश लक्ष्मण! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। आज तुमने बड़ा दुष्कर पराक्रम किया। रावण पुत्र इन्द्रजित् के मारे जाने से तुम यह निश्चय समझ लो कि अब हम लोग जीत गये। वीर! तुमने अपने दुष्कर पराक्रम से परम कल्याण कारी मार्ग सम्पन्न किया है। आज बेटे के मारे जाने पर युद्ध-स्थल में रावण को भी मैं मारा गया ही मानता हूं—उस दुरात्मा शत्रु का वध हो जाने से आज मैं वास्तव में विजयी हो गया। सौभाग्य की बात है कि तुमने इन्द्रजित् वध करके निर्दय निशाचर रावण की दाहिनी बांह ही काट डाली—क्योंकि वही उस का सब से बड़ा सहारा था।

विभीषण और हनुमान् ने भी समर भूमि में महान् पराक्रम कर दिखाया है,—तुम सब लोगों ने मिल कर तीन दिन और तीन रात में किसी प्रकार उस वीर मेघनाथ को मार गिराया तथा मुझे शत्रुहीन बना दिया। अब रावण ही युद्ध के लिये निकलेगा।

इस प्रकार मेघवाद के मारे जाने पर ऋषियों के सहित देवगण तथा अप्सराओं के सहित गन्धर्व, नाग, पक्षी, सिद्ध, यक्ष और गुहयक आदि अति प्रसन्न होकर श्रीरघुनाथ जी पर पुष्पावली बरसाते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

इसी समय अपने प्रकाश से सम्पूर्ण दिशाओं को प्रकाशित करते हुए देवर्षि नारद भगवान् राम का दर्शन करने के लिये तुरंत ही आकाश से आये।

अथ नारद स्तुतिः-जो नीलकमल के समान श्यामवर्ण, अति मनोहर मूर्ति और धनुष धारण किये हुए हैं, जिनके नेत्र अति विशाल और कुछ अरुणवर्ण हैं तथा भुजाएँ ऐन्द्रास्त्र से सुशोभित हैं, जो अपनी दयामयी दृष्टि से बाणों से पीड़ित वानरों की ओर देख रहे हैं, उन भगवान् रामका दर्शन कर श्रीनारद जी भक्ति से गद्गद्कण्ठ हो इस प्रकार स्तुति करने लगे।

नारद जी बोले—हे देवाधिदेव! हे जगत्पते! हे परमात्मन्! हे सनातन पुरुष! हे नारायण! हे सर्वाधार! हे विश्वसाक्षिन्! आप को नमस्कार है। आप विशुद्ध विज्ञानस्वरूप हैं, तथापि लोकों की वञ्चना करने के लिये आप अपनी माया से मनुष्याकार धारणकर सुखी-दुखी से दिखायी देते हैं। आप अपनी माया से आच्छादित होकर अन्तर्यामी रूप से सब के अन्तः करण में स्थित हैं। आप स्वभाव से ही स्वयंप्रकाश हैं और शुद्धचित्त व्यक्तियों को ही आपका साक्षात्कार होता है। हे राम! आप नेत्र खोलकर ही इस सम्पूर्ण त्रिलोकी की रचना कर देते हैं और आपके नेत्र मूँदते ही इस सब का लय हो जाता है।

रावण पर्व

गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः।
गतः सत्वस्य संक्षेपः सुहृत्तानां गतिर्गता ॥
आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः।
किं शेषमिहलोकस्य गत सत्वस्य सम्प्रति ॥

देवियो एवं भद्रपुरुषो !

अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र की मृत्यु का समाचार सुन रावण दुःख से मूर्च्छित हो गया—

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः।
दीपाभ्यामिव दीप्ताभ्यां सार्चिषः स्नेहबिंदवः ॥

इस श्लोक में एक बात विचारणीय है। यहां रावण के नेत्रों के सम्बन्ध में "द्विवचन" का प्रयोग हुआ है,—अर्थात् रावण के दोनों नेत्रों से आंसुओं की बून्दें बहने लगीं, मानों जलते हुए दीपकों से लौ के साथ ही तेल के बिन्दु झड़ रहे हों। जो लोग यह समझते हैं कि रावण के वास्तव में दस सिर थे, यदि सचमुच में ऐसा ही होता तो यहां द्विवचन की बजाय बहुवचन होता। दो नेत्रों के स्थान पर बीस नेत्रों का वर्णन होता।—

पुत्र के वध से संतप्त हो क्रोध के वशीभूत हुए क्रूर रावण ने अपनी बुद्धि से सोच-विचार कर सीता को मार डालने का ही निश्चय किया। उसकी आंखे क्रोध से लाल हो गयीं और आकृति अत्यन्त भयानक दिखाई देने लगी। वह सब ओर दृष्टि डालकर पुत्र के लिये दुखी हो दीनतापूर्ण स्वर वाले सम्पूर्ण निशाचरों से बोला, —"मेरे पुत्र ने माया से केवल वानरों को चकमा देने के लिये एक आकृति को "यह सीता है"—**Artificial Sita** ऐसा कह कर दिखाया और झूठ ही उस का वध किया था। सो आज उस झूठ को मैं सत्य हो कर दिखाऊंगा और ऐसा करके अपना प्रिय करूंगा। उस क्षत्रियाधम राम में अनुराग रखने वाली सीता का नाश कर डालूंगा।

इतना कहते ही दशग्रीव रावण क्रोध से अचेत सा हुआ अशोक वाटिका में बैठी हुई विदेह कुमारी सीता का वध करने के लिये जल्दी दौड़ा।

उस समय रावण के सुशील एवं शुद्ध आचार-विचार वाले सुपार्श्व नामक बुद्धिमान् मन्त्री ने दूसरे सचिवों के मना करने पर भी उस समय राक्षसराज रावण से यह बात कही।—

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद् धर्ममपास्य च।

महाराज दशग्रीव ! तुम तो साक्षात् कुबेर के भाई हो, फिर क्रोध के कारण धर्म को तिलाञ्जलि दे विदेहकुमारी के वध की इच्छा कर रहे हो।

वेद विद्या व्रत स्नातः स्व कर्म निरतस्तथा।
स्त्रियः कस्माद् वधंवीर मन्यसे राक्षसेश्वर ॥

वीर राक्षसराज ! तुम विधिपूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वेद विद्या का अध्ययन पूरा करके गुरुकुल से स्नातक होकर निकले थे और तब से सदा अपने कर्त्तव्य के पालन में लगे, रहे

तो भी आज अपने हाथ से एक स्त्री का वध करना तुम कैसे ठीक समझते हो, मिथिलेश कुमारी पर दया करो। वीर पुरुष अबलाओं पर हाथ कभी नहीं उठाया करते। आप जैसे विश्व विजयी शूरवीर के लिये शरणागत देवी पर वीरता का प्रदर्शन उचित नहीं,—शोभनीय भी नहीं। उचित तो यही है, चलो हमें साथ लेकर और रणभूमि में राम से लोहा लेकर उसी पर अपने समूचे क्रोध को उतारो।

आज कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी है। अतः आज ही युद्ध की तैयारी करके कल अमावस्या के दिन सेना के साथ विजय के लिये प्रस्थान करो।

अपने प्रधान मन्त्री द्वारा इस प्रकार समझाने पर रावण ने अपनी तलवार को म्यान में डाल लिया, और अपने महल को लौट गया।— जाते ही उस ने बचे-खुचे अपने सेना नायकों को हुक्म दिया—अभी चढ़ाई कर दो और पूरी शक्ति लगा कर राम लक्ष्मण को मार डालो। राक्षसराज की इस आज्ञा को शिरोवार्य करके वे निशाचर शीघ्रगामी रथों तथा नाना प्रकार की सेनाओं से युक्त हो लङ्का से बाहर निकले। सूर्योदय होते-होते राक्षसों और वानरों के उस तुमुल युद्ध ने महाभयंकर रूप धारण कर लिया। "मरता क्या न करता,' राक्षस जी तोड़ कर लड़ रहे थे। वानर दल में हाहाकार मच गया। राक्षसों द्वारा मारी जाती हुई वानरों की वह विशाल सेना शरणागत वत्सल दशरथ नन्दन भगवान् श्रीराम की शरण में गई। तब बल-विक्रम-शाली महातेजस्वी श्रीराम ने धनुष ले राक्षसों की सेना में प्रवेश करके बाणों की वर्षा आरम्भ कर दी।—वह वर्षा इतनी भयंकर थी कि अपने शरीरों पर प्रहार करते हुए श्री रघुनाथ जी को वे उसी तरह नहीं देख पाते थे, जैसे शब्दादि विषयों के भोक्ता रूप में स्थित जीवात्मा को प्रजायें नहीं देख पाती हैं। महात्मा श्रीराम ने राक्षसों को गान्धर्व नामक दिव्य अस्त्र से विमोहित कर दिया था।

वे राक्षस रणभूमि में कभी तो हजारों राम देखते थे और कभी उन्हें उस महासागर में एक ही राम का दर्शन होता था। भगवान् बाल्मीकि लिखते हैं,—उस दिन श्रीरामने अकेले ही दिन के आठवें भाग में अर्थात् केवल डेढ़ घंटे में अग्नि की ज्वाला के समान तेजस्वी बाणों द्वारा इच्छानुसार रूप धारण करने वाले राक्षसों के वायु के समान वेगशाली दस हजार रथों की, अठारह हजार वेगवान् हाथियों की, चौदह हजार सवारों सहित घोड़ों की तथा पूरे दो लाख पैदल निशाचरों की सेना का संहार कर डाला।

मारे गये हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकों की लाशों से भरी हुई वह रणभूमि कुपित हुए महात्मा रुद्रदेव की क्रीड़ा भूमि-सी प्रतीत होती थी। तदनन्तर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षियों ने साधुवाद देकर भगवान् श्रीराम के इस कार्य की प्रशंसा की।

उस समय धर्मात्मा श्रीराम ने अपने पास खड़े हुए सुग्रीव, विभीषण, कपिवर हनुमान्, जाम्बवान्, कपि श्रेष्ठ मैन्द तथा द्विविद से कहा —"यह दिव्य अस्त्र-बल मुझ में है या शंकर में।"

राक्षस राम के सामने टिक नहीं सके, जो बच गये वे रणभूमि से भाग निकले। लंका में हाहाकार मच गया। राम का ऐसा विकट रूप राक्षसों ने आज तक न देखा था "जान पड़ता है श्रीराम का रूप धारण करके हमें साक्षात् भगवान् रुद्रदेव, भगवान् विष्णु, शतक्रतु इन्द्र अथवा स्वयं यमराज ही मार रहे हैं। युद्ध स्थल

में श्रीराम जिसे मारने पर तुल जायें, उसे न तो देवता, न गन्धर्व, न पिशाच और न राक्षस ही बचा सकते हैं, उद्दण्ड और दुर्बुद्धि रावण के अन्याय से यह शोक संयुक्त घोर विनाश हम सब को प्राप्त हुआ है ।''

इधर प्रजाजनों की यह मानसिक स्थिति थी, उधर रावण अपनी आंखों में क्रोध की ज्वाला भरकर मूर्तिमान् प्रलयाग्नि के समान दीख रहा था । उस समय वह अपने पास में खड़े राक्षसों से बोला—महोदर, महापार्श्व, विरूपाक्ष तुम शीघ्रता करो । मेरी आज्ञा से सेनाओं को कूच करने का आदेश दो ।

तदनन्तर काल, मृत्यु और यमराज के समान भयंकर रावण धनुष हाथ में ले राक्षसों की सेना से घिर कर युद्ध के लिये आगे बढ़ा ।

किन्तु श्रीरामचन्द्र ने उस समस्त राक्षसों को युद्ध में मार डाला । और स्वयं रावण भी हृदय में भगवान् राम का तीक्ष्ण बाण लगने से व्याकुल हो तुरन्त लंका में लौट आया ।

भगवान् राम और हनुमान् जी के बहुत-से अतिमानुष पौरुष देख कर रावण अति शीघ्रता से शुक्राचार्य जी के पास गया और उन्हें नमस्कार कर वह हाथ जोड़ कर कहने लगा—भगवन् ! राम ने समस्त राक्षस-यूथपों के साथ लंका नष्ट कर दी और जितने बड़े-बड़े दैत्य और मेरे बन्धु-बान्धव थे वे सभी मार डाले । अब आप ही कल्याण का कोई मार्ग बतावें । शुक्राचार्य बोले—रावण ! आप जैसे हो सके वैसे किसी एकान्त देश में हवन करो । यदि तुम्हारे हवन में कोई विघ्न न हुआ तो उस होमाग्नि से एक बहुत बड़ा रथ, घोड़े, धनुष, तरकश और बाण उत्पन्न होंगे । उन्हें पाकर तुम अजेय हो जाओगे । मेरे दिये हुए मन्त्रों को ग्रहण करो और इन से तुरन्त जाकर होम करो ।

तत्पश्चात रावण ने अपने राजमहल के भीतर ही पाताल के समान गम्भीर गुहा तैयार करायी और बड़ी सावधानी से लंका के सब फाटक बन्द करा दिये । तथा शास्त्रों में अभिचार कर्मों की जो-जो हवन-सामग्रियाँ बतायी गयी हैं वे सब एकत्रित कीं और गुहा में घुसकर एकान्त में मौनावलम्बनपूर्वक होम करने लगा ।

तब रावण के छोटे भाई विभीषण ने बड़ा भारी धुआँ उठते देख अति भयभीत हो उसे श्रीरामचन्द्र जी को दिखाया और कहा—"हे राम ! देखिये दशशीश ने हवन करना आरम्भ किया है, यदि यह हवन निर्विघ्न समाप्त हो गया तो वह अजेय हो जायगा । अतः इसमें विघ्न डालने के लिये शीघ्र हो बानर सेनापतियों को भेजिये ।'' तब रघुनाथ जी ने 'अच्छा' कहकर सुग्रीव की सम्मति से कपिवर अंगद और हनुमान् आदि महाबलवान् वानर-वीरों को आज्ञा दी । वे सब नगर के परकोटे को लांघकर रावण के महल पर जा पहुंचे ।

वहाँ उन्होंने रावण को नेत्र मूंदे दृढ़ आसन लगाये बैठे देखा । तदनन्तर अंगद जी की आज्ञा से समस्त वानरगण तुरन्त उस गुहा में घुस गये और रावण के उस यज्ञ को सर्वथा असफल बना सकुशल रामदल में लौट आये ।

उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य ।
राम बिरोध बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य ॥

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई ।
सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ॥
नाथ करइ रावन एक जागा ।
सिद्ध भएं नहिं मरिहि अभागा ॥
पठवहु नाथ बेगि भट बन्दर ।
करहिं बिधंस आव दससंधर ॥

प्रात होत प्रभु सुभट पठाए।
हनुमदादि अंगद सब धाए॥
कौतुक कूदि चढ़े कपि लंका।
पैठे रावन भवन असंका॥
जग्य करत जबहीं सो देखा।
सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेषा॥
रन ते निलज भाजि गृह आवा।
इहाँ आइ बक ध्यान लगावा॥
अस कहि अंगद मारा लाता।
चितव न सठ स्वारथ मन राता॥
नहिं चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारहीं।
धरि केस नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारहीं॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंसकृतमख देखि मनमहुँ हारई॥
जग्य बिधंसि कुसल कपि आए रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ त्यागि जिवन कै आस॥
चलत होहिं अति असुभ भयंकर।
बैठहिं गीध उड़ाइ सिरन्ह पर।
भयउ कालबस काहु न माना।
कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना।
चली तमीचर अनी अपारा।
बहु गज रथ पदाति असवारा॥
प्रभु सन्मुख धाए खल कैसें।
सलभ समूह अनल कहँ जैसें॥
इहाँ देवतन्ह अस्तुति कीन्ही।
दारुन बिपति हमहि एहि दीन्ही॥
अब जनि राम खेलावहु एही।
अतिसय दुखित होति बैदेही॥
देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना।
उठि रघुबीर सुधारे बाना॥
जटा जूट दृढ़ बांधें माथे।
सोहहिं सुमन बीच बिच गाथे॥
अरुन नयन बारिद तनु स्यामा।
अखिल लोक लोचनाभिरामा॥

कटितट परिकर कस्यो निषंगा।
कर कोदंड कठिन सारंगा॥
सारंग कर सुन्दर निषंग सिलीमुखाकर कटि कस्यो।
भुजदंड पीन मनोहरायत उर धरासुर पद लस्यो॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे।
ब्रह्मांड दिग्गज कमठ अहि महि सिंधु भूधर डगमगे॥
सोभा देखि हरषि सुर बरषहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन आगार॥

महोदर, विरूपाक्ष, महापार्श्व तो कल ही सुग्रीव एवं अंगद के हाथों काल का ग्रास बन चुके थे। अब केवल स्वयं रावण ही शेष था। उसे अब अपने बचने की कोई आशा नहीं थी, उस ने एक भयानक शक्ति का प्रहार विभीषण को लक्ष्य बना कर किया।

परन्तु वाह रे भक्तवत्सल लक्ष्मण! रावण द्वारा छोड़ी उस शक्ति को विभीषण की ओर आते देख, लक्ष्मण आगे बढ़े और विभीषण को पीछे डाल उस शक्ति के प्रहार को अपने पर लिया, अब तो रावण क्रुद्ध हुआ लक्ष्मण पर ही धड़ाधड़ शक्ति का प्रहार करने लगा।

पुनिपुनि प्रभु काटत भुज सीसा।
अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे छाइ नभ सिर अरु बाहू।
मानहुँ अमित केतु अरु राहू॥
जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुंतुद पोहहीं॥
जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर तिमि तिमि होहिं अपार।
सेवत बिषय बिबर्ध जिमि नित नित नूतन मार॥
दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी।
बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी॥
गर्जेउ मूढ़ महा अभिमानी।
धायउ दसहु सरासन तानी॥

समर भूमि दसकंधर कोप्यो।
बरषि बान रघुपति रथ तोप्यो॥
दंड एक रथ देखि न परऊ।
जनु निहार महुँ दिनकर दुरेऊ॥
हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा।
तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा॥
कहँ लछिमन सुग्रीव कपीसा।
कहँ रघुबीर कोसलाधीसा॥
पुनि दसकंठ क्रुद्ध होइ छाँड़ी सक्ति प्रचंड।
चली बिभीषन सन्मुख मनहुँ काल कर दंड॥
आवत देखि सक्ति अति घोरा।
प्रनतारित भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पीछें मेला।
सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥
उमा बिभीषनु रावनहि सन्मुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यों श्रीरघुबीर प्रभाउ॥

यह शक्ति स्वभाव से ही शत्रुओं के खून से नहाने वाली है, यह मेरे हाथ से छूटते ही तुम्हारे हृदय को विदीर्ण करके प्राणों को अपने साथ ले जायगी। ऐसा कहकर अत्यन्त कुपित रावण ने मयासुर की माया से निर्मित, महा भयंकर शब्द करने वाली, उस अमोघ एवं शत्रु घातिनी शक्ति को, लक्ष्मण को लक्ष्य करके चला दिया। वज्र और अशिनि के समान गड़-गड़ाहट पैदा करने वाली वह शक्ति युद्ध के मुहाने पर भयानक वेग से चलायी गयी और लक्ष्मण को वेग पूर्वक लगी। वह शक्ति विषधर के समान भयंकर थी। रणभूमि में कुपित हुए रावण ने जब उसे छोड़ा, तब वह तुरंत ही निर्भय वीर लक्ष्मण की छाती में डूब गयी। नागराज वासुकि की जिह्वा के समान देदीप्यमान वह महातेजस्विनी और महा वेगवती शक्ति जब लक्ष्मण के विशाल वक्षः स्थल पर गिरी, तब रावण के वेग से बहुत गहराई तक धँस गयी। उस शक्ति से हृदय विदीर्ण हो जाने के कारण लक्ष्मण पृथ्वी पर गिर पड़े।

अत्यन्त बलवान् रावण की चलायी हुई उस शक्ति को लक्ष्मण की छाती से निकलने के लिये बहुत प्रयत्न करने पर भी वानरगण सफल न होसके। क्योंकि वह शक्ति सुमित्रा कुमार के शरीर को विदीर्ण करके धरती तल तक पहुँच गयी थी।

उस समय श्रीराम बोले,—कपिवरो! तुम लोग लक्ष्मण की रक्षा के लिये इन्हें चारों तरफ से घेर कर खड़े रहो। अब मेरे लिये उस पराक्रम का अवसर आया है, जो मुझे चिरकाल से अभीष्ट था। इस पापात्मा एवं पापपूर्ण विचार रखने वाले दशमुख रावण को अब मार ही डाला जाय। वानरो! मैं इस मुहूर्त्त में तुम्हारे सामने यह सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूं कि कुछ ही देर में यह संसार रावण से रहित दिखायी देगा या रामसे।

अस्मिन् मुहूर्त्ते नचिरात् सत्यं प्रतिश्रृणोमि वः।
अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः॥
अद्य पश्यन्तु रामस्य रामत्वं मम संयुगे।
त्रयो लोकाः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्षिचारणाः॥

आज संग्राम में देवता गन्धर्व, सिद्ध, ऋषि और चारणों सहित तीनों लोकों के प्राणी राम के रामत्व को देखें।

आज मैं वह पराक्रम प्रकट करूंगा, जिस की जब तक यह पृथ्वी कायम रहेगी, तब तक चराचर जगत् के जीव और देवता भी सदा लोक में एकत्र होकर चर्चा करेंगे और जिस प्रकार युद्ध हुआ है उसे एक दूसरे से कहेंगे

अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोका सचराचराः।
सदेवा कथयिष्यन्ति यावद् भूमिर्धरिष्यति॥

ऐसा कहकर भगवान् श्रीराम सावधान हो अपने तीखे बाणों से दशानन रावण को घायल करने लगे।

इधर रावण भी अपने बाण बराबर छोड़ रहा था।—उधर लक्ष्मण मूर्छित पड़े थे—उस समय बाण-वृष्टि को जारी रखते हुए, श्रीराम ने वैद्यराज सुषेण से इस प्रकार कहा.—ये वीर लक्ष्मण रावण के पराक्रम से घायल होकर पृथ्वी पर पड़े हैं और चोट खाये हुए सर्प की भाँति छटपटा रहे हैं। इस अवस्था में इन्हें देख कर मेरा शोक बढ़ता जा रहा है। इस समय मेरा पराक्रम लज्जित सा हो रहा है, हाथ से धनुष खसकता-सा जा रहा है, मेरे सायक शिथिल हो रहे हैं और नेत्रों में आँसू भर आये हैं। उस समय वैद्यवर सुषेण उन्हें आश्वासन देते हुए बोले, पुरुषसिंह! व्याकुलता उत्पन्न करने वाली इस चिन्तायुक्त बुद्धि का परित्याग कीजिये, क्योंकि युद्ध के मुहाने पर की हुई चिन्ता बाणों के समान होती है और केवल शोक को जन्म देती है। लक्ष्मण मरे नहीं हैं। देखिये, इनके मुख की आकृति अभी बिगड़ी नहीं है और न इनके चेहरे पर कालापन ही आया है। शत्रुओं का दमन करने वाले वीर! आप विषाद न करें। इन के शरीर में प्राण हैं। वीर! ये सो गये हैं। साँस चल रही है और हृदय बारंबार कम्पित हो रहा है। उसकी गति बंद नहीं हुई है। यह लक्षण इनके जीवित होने की सूचना दे रहे हैं। तत्पश्चात् परम बुद्धिमान् सुषेण ने पास ही खड़े हुए महाकपि हनुमान् जी से कहा—सौम्य! तुम शीघ्र ही यहाँ से महोदय पर्वत पर, जिस का पता जाम्बवान् तुम्हें बता चुके हैं, जाओ और उसके दक्षिण शिखर पर उगी हुई विशल्यकरणी, तथा संघानी नाम से प्रसिद्ध महौषधियों को यहां ले आओ। वीर! उन्हीं से वीरवर लक्ष्मण के जीवन की रक्षा होगी।

उन के ऐसा कहने पर हनुमान् जी महोदय गिरि औषधि पर्वत पर गये। परन्तु उन महौषधियों को न पहचानने के कारण 'वे चिन्ता में पड़ गये'

तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरे॥

इसी समय अमित तेजस्वी हनुमान् जी के हृदय में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं पर्वत के इस शिखर को ही ले चलूँ।

ऐसा सोचकर महाबली हनुमान् तुरन्त उस श्रेष्ठ पर्वत के पास जा पहुँचे और उसके शिखर को तीन बार हिला कर उसे उखाड़ लिया। उस के ऊपर नाना प्रकार के वृक्ष खिले हुए थे। वानर श्रेष्ठ महाबली हनुमान् ने उसे दोनों हाथों पर उठा कर तौला। जल से भरे हुए नीलमेघ के समान उस पर्वत शिखर को लेकर हनुमान् जी ऊपर को उछले उन का वेग महान् था। उस शिखर को सुषेण के पास पहुँचा कर उन्होंने पृथ्वी पर रख दिया और थोड़ी देर विश्राम करके हनुमान् जी ने सुषेण से इस प्रकार कहा—

ओषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुङ्गव।
तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया॥

भगवन्! मैं उन औषधियों को पहचानता नहीं हूँ। इसलिये उस पर्वत का सारा शिखर ही लेता आया हूं।—इस प्रकार कहते हुए हनुमान् जी की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए वैद्यराज सुषेण ने उन औषधियों को उखाड़ लिया।

हनुमान् जी का वह कर्म देवताओं के लिये भी अत्यन्त दुष्कर था। उसे देख कर समस्त वानर यूथपति बड़े विस्मित हुए। सुषेण जी ने उस औषधी को लक्ष्मण जी को सुंघाया।

शत्रु का संहार करने वाले शेषावतार लक्ष्मण के शरीर में बाण धँसे हुए थे। उस अवस्था में उस औषधि को सूँघते ही उन के शरीर से बाण निकल गये और वे नीरोग हो शीघ्र ही भूतल से उठ कर खड़े हो गये।

लक्ष्मण को भूतल पर उठ कर खड़ा हुआ देख वे वानर अत्यन्त प्रसन्न हो साधु-साधु कहकर उन की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे; तब शत्रुओं का संहार करने वाले भगवान् श्रीरामने लक्ष्मण से कहा,आओ-आओ इतना कह कर उन्होंने उन्हें दोनों भुजाओं से भर लिया और गाढ़ आलिंगन करके हृदय से लगा लिया। उस समय उन के नेत्रों से आंसू छलक रहे थे।

राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवनसुत लेन॥
रामचरन सरसिज उर राखी।
चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
देखा सैल न औषध चीन्हा।
सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ।
अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ॥
भरत बाहुबल सील गुन प्रभु-पद प्रीति अपार।
मन महुं जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार॥
उहाँ राम लछिमनहिं निहारी।
बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ।
राम उठाइ अनुज उर लायउ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता।
सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥
सुत बित नारि भवन परिवारा।
होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥
अस बिचारी जियं जागहु ताता।
मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बांधवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥
किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्धनि लक्ष्मणः॥
किं नु राज्येन दुर्धर्षलक्ष्मणेन विना मम।
कथं वक्ष्याम्यहं त्वम्बां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम्॥
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥
निज जननी के एक कुमारा।
तात तासु तुम्ह प्रान अधारा॥
जथा पंख बिनु खग अति दीना।
मनि बिनु फनि करिबर कर हीना॥
अस मम जिवन बंधु बिनु तोही।
जौं जड़ दैव जिआवै मोही॥
जैहउँ अवध कौन मुहु लाई।
नारि हेतु प्रिय भाई गंवाई॥
बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन।
स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई।
नर गति भगत कृपाल देखाई॥
प्रभु प्रलाप सुनि कान बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान जिमि करुना महं बीर रस॥
हरषि राम भेंटेउ हनुमाना।
अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई।
उठि बैठे लछिमन हरषाई॥
हृदय लाइ प्रभु भेंटेउ भ्राता।
हरषे सकल भालु कपि ब्राता॥

उस समय श्रीराम बोले, लक्ष्मण! बड़े सौभाग्य की बात है कि मैं तुम्हें मृत्यु के मुख से पुनः लौटा हुआ देख रहा हूं। तुम्हारे बिना मुझे जीवन की रक्षा से, सीता से अथवा विजय से क्या प्रयोजन। जब तुम्ही नहीं रहोगे, तब मैं इस जीवन को रखकर भी क्या करूंगा।

लक्ष्मण बोले,—आप ने रणभूमि में राव को मार कर विभीषण को लंका का राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी, सत्यवादी पुरुष झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते। प्रतिज्ञा का पालन ही बड़प्पन का लक्षण है। निष्पाप रघवीर मेरे लिये आपको इतना निराश नहीं होना चाहिये। आज रावण का वध करके अपनी प्रतिज्ञा को पूरा कीजिये। आप के बाणों का लक्ष्य बनकर शत्रु जीवित नहीं लौट सकता।

अहं तु वधमिच्छामि शीघ्रमस्य दुरात्मनः।
यावदस्तं न यात्येष कृतकर्मा दिवाकरः ॥

जब तक ये सूर्य देव अपने दिन भर का भ्रमण कार्य पूरा करके अस्ताचल को नहीं चले जाते, तब तक ही जितना शीघ्र सम्भव हो सके, मैं उस दुरात्मा रावण का वध देखना चाहता हूं। लक्षमण की उस कही हुई बात को सुनकर शत्रु वीरों का संहार करने वाले पराक्रमी श्रीराम ने धनुष लेकर उस पर बाणों का संधान किया। उन्हीं ने सेना के मुहाने पर रावण को लक्ष्य करके उन भयंकर बाणों को छोड़ना आरम्भ किया।

इतने में राक्षसराज रावण भी दूसरे रथ पर सवार होकर श्रीराम पर उसी तरह चढ़ आया, जैसे राहू सूर्य पर आक्रमण करता है। दशमुख रावण रथ पर बैठा हुआ था। वह अपने वज्रोपम बाणों द्वारा श्रीराम को उसी तरह बींधने लगा, जैसे मेघ किसी महान् पर्वत पर जल की धारावष्टि करता है। श्रीराम चन्द्र भी एकाग्रचित्त होकर रणभूमि में दशमुख रावण पर प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी बाणों की वर्षा करने लगे।

श्री रघुनाथ जी भूमि पर खड़े हैं और वह राक्षस रथ पर बैठा हुआ है। ऐसी दशा में दोनों का युद्ध बराबर नहीं है। उस समय विभीषण चिन्तित हो विचारने लगे। गोस्वामी जी द्वारा वर्णित वह प्रसंग जहां ऐतिहासिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है, वहाँ आध्यात्मिक दृष्टिकोण से भी ज्ञान का अतुलित भंडार है।

दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहि उत रावनहिं बखानि ॥

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा।
देखि बिभीषन भयउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा संदेहा।
बंदि चरन कह सहित सनेहा ॥
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना।
केहि बिधि जितब बीर बलवाना।
सुनहु सखा कह कृपानिधाना।
जेहिं जय होइ सो स्यंदन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका।
सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे।
छमा कृपा समता रजु जोरे।
ईस भजनु सारथी सुजाना।
बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा।
बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना।
सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा।
एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें।
जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें ॥

महा अजय संसार रिपु जीति सकइ सो बीर।
जाकें अस रथ होइ दृढ़ सुनहु सखा मतिधीर ॥
सुनि प्रभु बचन बिभीषन हरषि गहे पद कंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु राम कृपा सुख पुंज ॥

तदनन्तर अत्यन्त क्रूर दशग्रीव रावण

क्रुद्ध हो कर दांतों से ओठ चबाता हुआ आंखें फाड़ कर श्री रामचन्द्र जी की ओर हो दौड़ा। रावण रथ में चढ़ा हुआ था और रघुनाथ जी रथहीन थे, तो भी वह, मेघ जिस प्रकार जलकी धाराएं बरसाता है वैसे ही महा भयंकर वज्र-सदृश बाणों से श्रीरामचन्द्र जी पर प्रहार करने लगा और भगवान् राम के सामने ही उसने समस्त वानरों को भी व्यथित कर दिया। तब श्रीरामचन्द्र जी भी सावधान होकर रणभूमि में रावण पर अग्नि के समान तेजस्वी सुवर्ण-भूषित बाणों की वर्षा करने लगे। इन्द्र ने जब देखा कि रावण रथ पर चढ़ा हुआ है और श्रीरघुनाथ जी पृथ्वी पर ही खड़े हैं तो उसने अपने सारथि मातलिको बुलाकर कहा—"हे अनघ! देखो रघुनाथ जी पृथिवी पर खड़े हैं, तुम तुरंत मेरा रथ लेकर भूलोक में उनके पास जाओ और मेरा कार्य करो।"

इन्द्र की यह आज्ञा पाकर देव सारथि रथ में हरे रंग के घोड़े जोत कर भगवान् राम की विजय के लिये स्वर्ग से चलकर उनके पास उपस्थित हुआ तथा उनसे हाथ जोड़ कर बोला —"रघुश्रेष्ठ! मुझे देवराज इन्द्र ने भेजा है। हे प्रभो! यह रथ इन्द्र का ही है, इसे उन्होंने आपकी विजय के लिये भेजा है। हे महाराज! इसके साथ हो यह अति शोभायमान ऐन्द्र धनुष, अभेद्य कवच, खड्ग और दो दिव्य तूणीर भी भेजे हैं। हे राम! मुझ सारथि के साथ, इन्द्रने जिस प्रकार वृत्रासुर का वध किया था उसी प्रकार हे देव! आप इस रथ पर आरूढ़ होकर राक्षस रावण का वध कीजिये।"

रथस्थं रावणं दृष्ट्वा भूमिष्ठं रघुनन्दनम्।
आहूयमातलिं शक्रो वचनं चेदमब्रवीत्॥
रथेन मम भूमिष्ठं शीघ्रं याहि रघूत्तमम्।
त्वरितं भूतलं गत्वा कुरु कार्यं ममानघ॥
एवमुक्तोऽथ तं नत्वा मातलिर्देव सारथिः।
ततो हयैश्च संयोज्य हरितैः स्यन्दनोत्तमम्॥
स्वर्गाज्जयार्थं रामस्य ह्युपचक्राम मातलिः।
प्राञ्जलिर्देवराजेन प्रेषितोऽस्मि रघूत्तम॥
रथोऽयं देवराजस्य विजयाय तव प्रभो।
प्रेषितश्च महाराज धनुरैन्द्रं च भूषितम्॥

रावन हृदयं विचारा भा निसिचर संघार।
मैं अकेल कपि भालु बहु माया करौं अपार॥

देवन्ह प्रभुहि पयादें देखा।
उपजा उर अति छोभ बिसेषा॥
सुरपति निज रथ तुरत पठावा।
हरष सहित मातलि लै आवा॥
तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा।
हरषि चढ़े कोसलपुर भूपा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी।
अजर अमर मन सम गतिकारी॥
रथारूढ़ रघुनाथहि देखी।
धाए कपि बलु पाइ बिसेषी॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी।
तब रावन माया बिस्तारी॥
सो माया रघुबीरहि बाँची।
लछिमन कपिन्ह सो मानी सांची॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी।
अनुज सहित बहु कोसलधनी॥

बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहं सो तहं चितवहिं खरे।
निज सेन चकित बिलोकि हंसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुं हरषी सकल मर्कट अनी॥
बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गंभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल श्रमित भए अति बीर।।
अस कहि रथ रघुनाथ चलावा।
बिप्र चरन पंकज सिरु नावा॥

मातलि के इस प्रकार कहने पर श्रीरामचन्द्र जी ने उस रथ की परिक्रमा कर उसे नमस्कार किया। और सम्पूर्ण लोकों को श्रीसम्पन्न करते हुए उस पर आरूढ़ हुए। फिर महात्मा राम और बुद्धिमान् रावण का महाभयानक और रोमांचकारी घोर युद्ध होने लगा। अस्त्र-विद्या में कुशल श्रीराम ने रावण के आग्नेयास्त्रको आग्नेयास्त्रसे और दैवास्त्रको दैवास्त्र से काट डाला। तब अस्त्रविद्याविशारद रावण ने अत्यन्त क्रोधाविष्ट हो श्रीरामचन्द्र जी पर महाभयंकर राक्षसास्त्र छोड़ा। रावण के धनुष से छूटे हुए बाण, जो सुवर्णमय पंख से भासमान हो रहे थे, महाविषधर सर्प होकर श्री रघुनाथ जी के चारों ओर गिरने लगे। जिनके मुख से अग्नि का लपटं निकल रहा था, रावण के उन सर्पमुख बाणों से उस समय सम्पूर्ण दिशा विदिशाएं व्याप्त हो गयीं। राम ने जब रणभूमि में सब ओर सर्पों को व्याप्त देखा तो महाभयंकर गरुड़ास्त्र छोड़ा। श्रीरामचन्द्र जी के छोड़े हुए वे बाण सर्पों के शत्रु गरुड़ होकर जहां-तहां सर्परूप बाणों को काटने लगे। इस प्रकार भगवान् राम द्वारा अपने शस्त्र को नष्ट हुआ देख रावण ने उनके ऊपर भयंकर बाण-वर्षा की। और फिर लीलाविहारी भगवान् राम को अति तीव्र बाणावली ने पीड़ित कर मातलिको वेध डाला। इतना ही नहीं क्रोध से उन्मत्त हुए रावण ने रथ की सुवर्णमयी ध्वजा काटकर, उसके पृष्ठ भाग पर गिरा दी और इन्द्र के घोड़ों को भी हताहत कर दिया।

भगवान् को इस आपत्ति में देखकर देवता, गन्धर्व चारण और पितर आदि विपदग्रस्त हो गये तथा महर्षिगण मन-ही-मन दुःख मानने लगे। विभीषण के सहित समस्त वानर-यूथपतिगण अति चिन्तित हुए। उस समय हाथ में धनुष-बाण लिये दसमुख और बीस भुजाओं वाला रावण मैनाक पर्वत के समान दीख पड़ता था। भगवान् राम के नेत्र क्रोध से लाल हो गये, उनकी त्यौरी चढ़ गयी और उस राक्षस को मानो जला डालेंगे ऐसा क्रोध करते हुए उन्होंने इन्द्र-धनुष के समान एक विचित्र धनुष उठाया तथा हाथ में एक कालाग्नि के समान तेजोमय बाण लेकर अपने नेत्रों से समीपवर्ती शत्रु की ओर इस प्रकार निहारा मानो भस्म कर देंगे। कालरूपी भगवान् राम ने अपने तेज से प्रज्वलित-से हो सम्पूर्ण लोकों के सामने अपना पराक्रम दिखाना आरम्भ किया। उन्होंने अपना धनुष खींचकर रावण को बींध डाला। और वे सम्पूर्ण वानर-सेना को आनन्दित करते हुए लोकान्तकारी काल के समान सुशोभित होने लगे।

शत्रु पर धावा करते हुए भगवान् राम का क्रोधयुक्त मुख देखकर समस्त प्राणी भयभीत हो गये और पृथिवी डगमगाने लगी। राम के अति रौद्ररूप और इन दारुण उत्पातों को देखकर समस्त जीवों में त्रास छा गया और रावण के अन्तःकरण में भी आतंक समा गया। उस समय देवता, सिद्ध, गन्धर्व और किन्नरगण विमानों पर चढ़े हुए संसार के महाप्रलय के समान इस घोर युद्ध को देख रहे थे। इसी बीच में रामचन्द्र जी ने ऐन्द्रास्त्र छोड़कर रावण के शिर काट डाले। तब रावण के बहुत-से-शिर रुधिर से लथपथ हो आकाश-मण्डल से इस प्रकार गिरने लगे जैसे ताल वृक्ष से उसके फल गिरते हैं। उस समय दिन, रात, सन्ध्या अथवा दिशाएं आदि कुछ भी स्पष्ट नहीं जान पड़ती थीं तथा उस संग्राम-भूमि में रावण का रूप भी दिखायी नहीं देता था। केवल कटे हुए शिर ही दीख पड़ते थे।

तब तो श्रीरामचन्द्र जी को बड़ा ही विस्मय हुआ। वे सोचने लगे "मैंने समान-तेज सम्पन्न एक सौ एक शिर काटे हैं, किन्तु फिर भी रावण प्राणनाश से शान्त हुआ दिखायी नहीं देता।" तब अनेक अस्त्रों से युक्त सर्वास्त्रविशारद धीर-वीर कौसल्यानन्दन रघुनाथ जी ने विचारा—"मैंने जिन-जिन बाणों से बड़े-बड़े तेजस्वी और पराक्रमी दैत्यों को मारा था, इस रावण का वध करने में वे सभी निष्फल हो गये।"

भगवान् राम को इस प्रकार चिन्ताग्रस्त देख उनके पास खड़े हुए विभीषण ने कहा—"भगवन्! ब्रह्मा जी ने इसे एक वर दिया था। उन्होंने कहा था कि 'इसकी भुजाएं और शिर बारम्बार काट दिये जाने पर भी फिर तुरन्त नये उत्पन्न हो जाएंगे। इसके नाभि देश में कुण्डलकार से अमृत रखा हुआ है। उसे आप आग्नेयास्त्र से सुखा डालिये, तभी इसकी मृत्यु हो जायगी। विभीषण के वचन सुनकर शीघ्र-पराक्रमी भगवान् राम ने अपने धनुषपर आग्नेयास्त्र चढ़ाकर उस राक्षस की नाभि में मारा और फिर महाबली रघुनाथ जी ने क्रोधित होकर उसके शिर और भुजाएं काट डालीं।

इस पर रावण ने अत्यन्त क्रोधातुर हो विभीषण को मारने के लिये एक महाभयानक शक्ति छोड़ी। किन्तु रघुनाथ जी ने उसे तुरंत ही सुवर्णमण्डित तीक्ष्ण बाणों से काट डाला। रावण के शिर काटे जाने से उसका तेज निकल गया और वह उन भयंकर शिरों के कट जाने से विरूप दिखायी देने लगा। अब रावण के एक मुख्य शिर और दो भुजाएं रह गयी थीं। किन्तु फिर भी वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर भगवान् राम पर नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र बरसाने लगा। इसी प्रकार राम ने भी उस पर भयंकर बाण-वर्षा की। फिर तो वहां अत्यन्त रोमांचकारी घमासान युद्ध छिड़ गया।

देवता, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, नाग, और राक्षसों के देखते-देखते वह महान् संग्राम सारी रात चलता रहा।

देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम्।
पश्यतां तन्महद् युद्धं सर्वरात्रमवर्तत॥
नैव रात्रिं न दिवसं न मुहूर्तं न च क्षणम्।
राम रावणयोयुद्धं विराममुपगच्छति॥

श्रीराम और रावण का वह युद्ध न रात में बंद होता था और न दिन में। दो घड़ी अथवा एक क्षण के लिये भी उस का विराम नहीं हुआ। एक ओर दशरथ कुमार श्रीराम थे और दूसरी ओर राक्षसराज रावण। उन दोनों में से श्री रघुनाथ जी को युद्ध में विजय होती न देख देवराज के सारथि महात्मा मातलि ने युद्ध परायण श्रीराम से शीघ्रतापूर्वक कहा,—मातलि ने श्री रघुनाथ जी को कुछ याद दिलाते हुए कहा—वीरवर! आप अनजान की तरह क्यों इस राक्षस का अनुसरण कर रहे हैं? प्रभो! आप इसके वध के लिए ब्रह्मा जी के अस्त्र का प्रयोग कीजिए। देवताओं ने इसके विनाश का जो समय बताया है, वह अब आ पहुँचा है। मातलि के इस वाक्य से श्री रामचन्द्र जी को उस अस्त्र का स्मरण हो आया। फिर तो उन्होंने फुफकारते हुए सर्प के समान एक तेजस्वी बाण हाथ में लिया। यह वही बाण था, जिसे पहले शक्ति-शाली भगवान् अगस्त्य ऋषि ने रघुनाथ जी को दिया था। वह विशाल बाण ब्रह्मा जी का दिया हुआ था और युद्ध में अमोघ था।

अमित तेजस्वी ब्रह्मा जी ने पहले इन्द्र के लिये उस बाण का निर्माण किया था और तीनों लोकों पर विजय पाने के लिये इच्छा रखने वाले देवेन्द्र को ही पूर्वकाल में अर्पित किया था। वह उत्तम बाण समस्त लोकों तथा इक्ष्वाकुवंशियों के भय का नाशक था, शत्रुओं की कीर्ति का अपहरण तथा अपने हर्ष की वृद्धि करने वाला था,

उस महान् सायक को वेदोक्त विधि से अभिमन्त्रित करके महाबलीश्रीराम ने अपने धनुष पर रक्खा, श्री रघुनाथ जी जब उस उत्तम बाण का संधान करने लगे, तब सम्पूर्ण प्राणी थर्रा उठे और धरती डोलने लगी। श्रीराम ने अत्यन्त कुपित हो बड़े यत्न के साथ धनुष को पूर्णरूप से खींच कर उस मर्म भेदी बाण को रावण पर चला दिया। वज्रधारी इन्द्र के हाथों से छूटे हुए वज्र के समान दुर्धर्ष और काल के समान अनिवार्य वह बाण रावण की छाती पर लगा। शरीर का अन्त कर देनें वाले उस महान् वेगशाली बाण के छूटते ही दुरात्मा रावण के हृदय को विदीर्ण का डाला।

स शरो रावणं हत्वा रुधिरार्द्रकृतच्छविः।
कृतकर्मा निभृतवत् स तूणीं पुनराविशत्॥

इस प्रकार रावण का वध करके खून से रंगा हुआ वह शोभाशाली बाण अपना काम पूरा करने के पश्चात् पुनः विनीत सेवक की भांति श्री राम चन्द्र जी के तरकस में लौट आया। श्री राम के बाणों की चोट खाकर रावण जीवन से हाथ धो बैठा। उसके प्राण निकलने के साथ हाथ से सायक सहित धनुष भी छूट कर गिर पड़ा। वह भयानक वेगशाली महा तेजस्वी राक्षसराज प्राणहीन हो वज्र के मारे हुए वृत्रासुर की भांति रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा।

गन्धर्वाप्सरसां संघा दृष्ट्वा युद्धमनूपमम्।
गगनं गगनाकारं सागरः सागरोपमः॥
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्व युद्धं रामरावणम्॥

गन्धर्वों और अप्सराओं के समुदाय उस अनुपम युद्ध को देखकर कहने लगे—"आकाश आकाश के ही तुल्य है, समुद्र समुद्र के ही समान है तथा राम रावण युद्ध के ही सदृश है' ऐसा कहते हुए वे सब लोग राम-रावण का युद्ध देखने लगे।

तदनन्तर कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाले सम्पूर्ण अस्त्रों के ज्ञाता वीर श्री रामचन्द्र जी अनेक प्रकार के बाणों से युक्त होने पर भी इस प्रकार की चिन्ता करने लगे।

अहो! मैंने जिन बाणों से मारीच, खर और दूषण को मारा, क्रौञ्चवन के गड्ढे में विराध का वध किया, दण्डकारण्य में कबन्ध को मौत के घाट उतारा, साल वृक्ष और पर्वतों को विदीर्ण किया, वाली के प्राण लिये और समुद्र को भी क्षुब्ध कर दिया, अनेक बार के संग्राम में परीक्षा करके जिनकी अमोघता का विश्वास कर लिया गया है, वे ही ये मेरे सब सायक आज रावण के ऊपर निस्तेज—कुण्ठित हो गये हैं, इसका क्या कारण हो सकता है। इस प्रकार चिन्ता में पड़े होने पर भी श्री रघुनाथ जी युद्ध स्थल में सतत सावधान रहे। उन्होंने रावण की छाती पर बाणों की झड़ी लगा दी। उस महायुद्ध ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया, उसे देखते ही रोंगटे खड़े हो जाते थे। वह युद्ध कभी आकाश में कभी भूतल पर और कभी-कभी पर्वत के शिखर पर होता था। आज अन्तिम निर्णायक युद्ध था।

जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः।
धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा॥

श्रीराम चन्द्र जी को यह विश्वास था कि मेरी ही जीत होगी और रावण को भी यह निश्चय हो गया था कि मुझे अवश्य ही मरना होगा, अतः वे दोनों युद्ध में अपना सारा पराक्रम प्रकट कर के दिखाने लगे। इस प्रकार उन दोनों में पुनः बड़ा भयंकर और रोमाञ्चकारी युद्ध होने लगा। गदाओं मुसलों और परिघों की आवाज से तथा बाणों के पंखों की सनसनाती हुई हवा से सातों समुद्र विक्षुब्ध हो उठे। पर्वतों, वनों और काननों सहित सारी पृथ्वी कांप उठी।

सूर्य की प्रभा लुप्त हो गई और वायु की गति भी रुक गयी। देवता, गन्धर्व, सिद्ध, महर्षि किन्नर और बड़े-बड़े नाग सभी चिन्ता में पड़ गये।

ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
चिन्तामापेदिरे सर्वे सकिन्नरमहोरगाः॥
स्वस्ति गोब्राह्मणेभ्यस्तु लोकास्तिष्ठन्तु शाश्वताः।
जयतां राघवः संख्ये रावणं राक्षसेश्वरम्॥

सब के मुंह से यही बात निकलने लगी—"गौ और ब्राह्मणों का कल्याण हो, प्रवाह रूप से सदा रहने वाले इन लोकों की रक्षा हो और श्री रघुनाथ जी युद्ध में राक्षस राज रावण पर विजय पावें।

एवं जयन्तोऽपश्यंस्ते देवाः सर्षिगणास्तदा।
रामरावणयोर्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम्॥

इस प्रकार कहते हुए ऋषियों सहित वे देवगण श्री राम और रावण के अत्यन्त भयंकर तथा रोमाञ्चकारी युद्ध को देखने लगे।

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः।
अनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः सम्प्रदुद्रुवुः॥

रावण को पृथ्वी पर पड़ा देख मरने से बचे हुए सम्पूर्ण निशाचर स्वामी के मारे जाने से भयभीत हो सब ओर भाग गये। उस समय वानर विजय लक्ष्मी से सुशोभित हो अत्यन्त हर्ष और उत्साह से भर गये तथा श्री रघुनाथ जी की विजय और रावण के वध की घोषणा करते हुए जोर-जोर से गर्जना करने लगे। इसी समय आकाश में मधुर स्वर से देवताओं की दुन्दुभियां बजने लगीं। वायु दिव्य सुगन्ध बिखेरती हुई मन्द-मन्द गति से प्रवाहित होने लगी। आकाश में महामना देवताओं के मुख से निकली हुई श्री राम चन्द्र जी की स्तुति से युक्त साधुवाद की श्रेष्ठ वाणी सुनायी देने लगी। सम्पूर्ण लोकों को भय देने वाले रौद्र राक्षस रावण के मारे जाने पर देवताओं और चारणों को महान् हर्ष हुआ—आकाश निर्मल हो गया पृथ्वी का कांपना बन्द हो गया। हवा स्वाभाविक गति से चलने लगी तथा सूर्य की प्रभा भी स्थिर हो गयी। शत्रु को मार कर अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करने के पश्चात् स्वजनों सहित सेना से घिरे हुए महातेजस्वी रघुकुल राजकुमार श्री राम रणभूमि में देवताओं से घिरे हुए इन्द्र की भांति शोभा पाने लगे।

डोली भूमि गिरत दसकंधर।
छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा।
जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा॥
बरषहिं सुमन देवमुनि बृंदा।
जय कृपाल जय जयति मुकुंदा॥
श्री राम रावन समर चरित अनेक कल्प जो गावहीं।
सत सेष सारद निगम कबि तेउ तदपि पार न पावहीं॥
ताके गुन गन कछु कहे जडमति तुलसी दास।
जिमि निज बल अनुरूप ते माछी उड़ई अकास॥

पापिष्ठो वा दुरात्मा परधनपरदा-
रेषु सक्तो यदि स्या
न्नित्यं स्नेहाद्भयाद्वा रघुकुलतिलकं
भावयन्सम्परेतः।
भूत्वा शुद्धान्तरङ्गो भवशतजनिता-
नेकदोषैर्विमुक्तः
सद्यो रामस्य विष्णोः सुरविनुतं
याति वैकुण्ठमाद्यम्॥
हत्वा युद्धे दशास्यं त्रिभुवनविषम
वामहस्तेन चापं
भूमौ विष्टभ्य तिष्ठन्नितरकरधृतं
भ्रामयन्बाणमेकम्
आरक्तोपान्तनेत्रः शरदालतवपुः
सूर्यकोटिप्रकाशो
वीरश्रीबन्धुराङ्गस्त्रिदशपतिनुतः
पातु मां वीररामः॥

श्री राम एवं विभीषण द्वारा दिवंगत आत्मा को श्रद्धाञ्जलि

भगवन् ! पूर्वकाल में युद्ध के अवसरों पर समस्त देवताओं तथा इन्द्र ने भी जिसे कभी पीछे नहीं हटाया था, वही रावण आज रणभूमि में आप से टक्कर ले कर उसी तरह शांत हो गया, जिस प्रकार समुद्र अपनी तट भूमि तक जाकर शान्त हो जाता है।"

"हा विकराल पराक्रमी वीर भाई दशानन ! हा कार्य कुशल नीतिज्ञ ! तुम सदा बहुमूल्य बिछौनों पर सोया करते थे, आज इस तरह मारे जाकर भूमि पर क्यों पड़े हो।"

"आज शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ इस वीर रावण के धराशायी होने से सुन्दर नीति पर चलने वाले लोगों की मर्यादा टूट गयी, धर्म का मूर्तिमान् विग्रह चला गया, सत्व के संग्रह का स्थान नष्ट हो गया, सुन्दर हाथ चलाने वाले वीरों का सहारा चला गया, सूर्य पृथ्वी पर गिर पड़ा, चन्द्रमा अन्धेरे में डूब गया, प्रज्वलित आग बुझ गयी और सारा उत्साह निरर्थक हो गया, रणभूमि की धूल में राक्षस शिरोमणि रावण के सो जाने से इस लोक का आधार औरबल समाप्त हो गया। अब यहाँ क्या शेष रह गया"

"हाय ! धैर्य ही जिसके पत्ते थे, हठ ही सुन्दर फूल था, तपस्या ही बल और शौर्य मूल था, उस रावण रूपी महान वृक्ष को आज रणभूमि में श्री राघवेन्द्र रूपी प्रचण्ड वायु ने रौंद डाला।"

"तेज ही जिसके दांत थे, वंशपरम्परा ही पृष्ठ भाग थी, क्रोध ही नीचे के पैर आदि अङ्ग थे और प्रमाद ही शुण्ड दण्ड था, वह रावण रूपी गन्ध हस्ती आज इक्ष्वाकुवंशी श्री राम रूपी सिंह के द्वारा शरीर के विदीर्ण कर दिये जाने से सदा के लिये पृथ्वी पर सो गया है।

गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः।
गतः सत्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां गतिर्गता ॥

"विभीषण ! यह रावण समरांगण में असमर्थ हो कर नहीं मारा गया है। उसने प्रचण्ड पराक्रम प्रकट किया है, इस का उत्साह बहुत बढ़ा हुआ था। इसे मृत्यु से कोई भय नहीं था। यह दैवात् रणभूमि में धरा शायी हुआ है। जो लोग अपने अभ्युदय की इच्छा से क्षत्रिय धर्म में स्थित हो समराङ्गण में मारे जाते हैं, इस प्रकार नष्ट होने वाले लोगों के विषय में शोक नहीं करना चाहिये।"

"जिस बुद्धिमान् वीर ने इन्द्रसहित तीनों लोकों को युद्ध में भयभीत कर रक्खा था वही यदि इस समय काल के अधीन हो गया तो उसके लिये शोक करने का अवसर नहीं है।"

"युद्ध में किसी को सदा विजय-ही-विजय मिले ऐसा भी कभी नहीं हुआ है, वीर पुरुष संग्राम में या तो शत्रुओं द्वारा मारा जाता है या स्वयं ही शत्रुओं को मार गिराता है, आज रावण को जो गति प्राप्त हुई है, यह पूर्वशील के महापुरुषों द्वारा बतायी गयी उत्तम गति है, क्षात्र वृत्ति का आश्रय लेने वाले वीरों के लिये तो यह बड़े आदर की वस्तु है क्षत्रिय वृत्ति से रहने वाला वीर पुरुष यदि युद्ध में मारा गया हो तो वह शोक के योग्य नहीं है, यह शास्त्र का सिद्धान्त है।"

"इस ने याचको को दान दिये, भोग भोगे, और भृत्यों का भरण पोषण किया है, मित्रों को धन अर्पित किये और शत्रुओं से वैर का बदला लिया।"

"यह रावण अग्निहोत्री, महातपस्वी, वेदान्त वेत्ता तथा यज्ञ-यागादि कर्मों में श्रेष्ठ शूर-परम तपस्वी रहा है। अब यह प्रेत भाव को प्राप्त हुआ है।

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥

(१६)

राम राज्याभिषेक

धनुर्वाणधरो वीरः सीतालक्ष्मण संयुतः ।
राम चन्द्र सहायो मे किं करिष्यत्ययं मम ।।

देवियो एवं भद्रपुरुषो !

कल हम ने रावण को मार दिय था। आज हमने प्रभु रामचन्द्रको शीघ्रातिशीघ्र श्री अवध पहुंचा कर उनका राज्याभिषेक करना है। भरत लाल उतावले हो रहे हैं, दिन गिन रहे है। राम बनवास की अविध पूरी होने में एक ही दिन बाकी है। अब हम भी कथा अधिक लम्बी नहीं करेंगे। एक ही दिन में प्रभु रामचन्द्र को सदल-बल श्री अवध पहुंचा देंगे।

ततो विमुक्त्वा सशरं शरासनं
महेन्द्रदत्तं कवचं स तन्महत् ।
विमुच्य रोषं रिपुनिग्रहात् ततो
रामः स सौम्यत्वमुपागतोऽरिहा ।।

आदि कवि लखते हैं, तदनन्तर इन्द्र के दिए हुए धनुष, बाण और विशाल कवच को त्याग कर तथा शत्रु का दमन कर देने के कारण रोष को भी छोड़ कर शत्रुसूदन श्रीराम ने शान्त भाव धारण कर लिया।

रामादल विजय की प्रसन्नता में फूला नहीं समा रहा था। सर्वत्र खुशी ही खुशी छा रही थी। वानर, भालु, रीछ सब एक दूसरे को वधाई दे रहे थे। उस समय रामदरबार के बीच में शोभायमान् विभीषण, हनुमान्, अंगद, लक्ष्मण, वानर—राज सुग्रीव, जाम्बवान तथा अन्यान्य वीरों को सम्बोधित कर परम प्रसन्न-चित्त श्रीरामचन्द्र जी बोले—

भवतां बाहुवीर्येण निहतो रावणो मया ।
कीर्त्तिः स्थास्यति वः पुण्या यावच्चन्द्रदिवाकरौ ।।

आप महावीरों के बाहुबल से आज मैंने रावण को मार दिया। आप सब लोगों की पवित्र कीर्ति जब तक सूर्य और चन्द्र रहेंगे तब तक स्थिर रहेगी।

उस समय श्रीराम अपने समीप में ही खड़े हुए बल एवं उद्दीप्त तेज से सम्पन्न सुमित्रा नन्दन लक्ष्मण से बोले—सौम्य ! अब तुम लंका में जाकर इन विभीषण का राज्याभिषेक करो, क्योंकि यह मेरे प्रेमी, भक्त तथा पहले उपकार करने वाले हैं।

एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् ।
लंकायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ।।

आइ बिभीषण पुनि सिरु नायो ।
कृपासिंधु तब अनुज बोलायो ।।
तुम्ह कपीस अंगद नल नीला ।
जामवंत मारुति नय सीला ।।

सब मिलि जाहु बिभीषण साथा ।
सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा ।।
पिता बचन मैं नगर न आवउं ।
आपु सरिस कपि अनुज पठावऊं ।।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना।
कीन्ही जाइ तिलक की रचना॥
किए सखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारें रिपुहयो।
पायो बिभीषन राज तिहुँ पुर जसु तुम्हारो नित नयो।
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिंधु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

महात्मा रघुनाथ जी के ऐसा कहने पर लक्ष्मण जी को बड़ी प्रसन्नता हुई, उन्होंने "बहुत अच्छा" कह कर वेदोक्त विधि के अनुसार विभीषण का लंका के राज्यपद पर अभिषेक किया। विभीषण को लंका के राज्यपद पर अभिषिक्त देख प्रभु राम चन्द्र को बड़ी ही प्रसन्नता हुई।

अब श्रीराम के लिये लंका की धरती पर कोई काम बाकी न था। एक क्षण के लिये भी वे लंका की धरती पर व्यर्थ में ठहरना नहीं चाहते थे। उस समय उन्होंने हाथ जोड़ कर विनीत भाव से खड़े हुए पर्वताकार वीर वानर हनुमान् जी से कहा,—

अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम्।
प्रविश्य नगरीं लंकां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम्॥

पुनि प्रभु बोलि लियउ हनुमाना।
लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु।
तासु कुसल लै तुम्ह चलि आवहु॥

सौम्य! तुम इन महाराज विभीषण की आज्ञा ले लंका नगरी में प्रवेश करके सीता जी से उनका कुशल समाचार पूछो। वक्ताओं में श्रेष्ठ हरीश्वर! तुम वैदेही को यह समाचार सुना दो—"रावण युद्ध में मारा गया। अब तुम अपने आप को अपने घर में समझो। अब विभीषण लंका का राजा है। रावणीय सत्ता को समूल नष्ट कर दिया गया"।

भगवान् श्रीराम का आदेश पाकर पवनपुत्र हनुमान् जी ने निशाचरों से सम्मानित होते हुए लंकापुरी में प्रवेश किया। पुरी में प्रवेश करके उन्होंने विभीषण से आज्ञा मांगी। उनकी आज्ञा मिल जाने पर हनुमान् जी अशोकवाटिका में गये।

रावणं ससुतं हत्वा सबलं सह मन्त्रिभिः।
त्वामाह कुशलं रामो राज्ये कुशल विभीषणम्॥

और उन्हें राम का दूत जानकर सीता का मुख हर्ष से खिल गया। हनुमान् जी ने उन्हें प्रसन्नमुखी देख उन से राम का सन्देश कहना आरम्भ किया। "देवि! विभीषण जिनके सहायक हैं वे श्रीरामचन्द्र जी लक्ष्मण, सुग्रीव और वानर सेना के सहित कुशलपूर्वक हैं। उन भगवान् राम ने पुत्र, सेना और मन्त्रियों के सहित रावण को मारकर तथा लंका का राज्य विभीषण को देकर तुम्हें अपनी कुशल भेजी है।"

दूरिहि ते प्रनाम कपि कीन्हा।
रघुपति दूत जानकीं चीन्हा॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता।
कुसल अनुज कपि सेन समेता॥
सब विधि कुसल कोसलाधीसा।
मातु समर जीत्यो दस सीसा॥
अबिचल राजु बिभीषनु पायो।
सुनि कपि बचन हरष उर छायो॥
अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउं तोहि त्रैलोक महुं कपि किमपि नहिं बानी समा।
सुनु मातु मैं पायो अखिल जग राजु आजु न संसयं।
रन जीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं॥
सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदयं बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनन्त॥
अब सोइ जतन करहु तुम्ह ताता।
देखौं नयन स्याम मृदु गाता॥

एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा।
साब्रवीद् द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम्॥

उस समय विदेह नन्दिनी जनकराज किशोरी बोलीं—"मैं अपने भक्तवत्सल स्वामी का दर्शन चाहती हूं।"

सीता जी को यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् पवनकुमार हनुमान् जी उन मिथिलेश कुमारी का हर्ष बढ़ाते हुए इस प्रकार बोले,—देवी ! जैसे शची देवराज इन्द्र का दर्शन करती हैं, उसी प्रकार आप पूर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर मुख वाले उन श्रीराम और लक्ष्मण को आज देखेंगी।

पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्ष्यस्यद्य सलक्ष्मणम्।
स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम्॥

सीता जी को इस प्रकार आश्वासन दे महातेजस्वी हनुमान् जी उस स्थान पर लौट आये—जहाँ श्री रघुनाथ जी विराजमान् थे। प्रभु चरणों में विधिवित् प्रणाम कर पवन सुत बोले,—

यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः।
तां देवीं शोक संतप्तां द्रष्टुमर्हसि मैथिलीम्॥

भगवन् ! जिनके लिए इन युद्धादि सकल कर्मों का सारा उद्योग आरम्भ किया गया था, उन शोक संतप्त मिथिलेश कुमारी सीता देवी को आप दर्शन दें।

यहां तक तो सब बात ठीक तौर पर सीधी चल रही थी,—आगे केवल इतनी ही राम कथा शेष थी कि सीता जी अशोक वाटिका से आईं और श्रीराम पुष्पक में सीता सहित प्रतिष्ठित हो श्री अवध पहुँच गये। परन्तु असम्भावित रूप से unexpectedly तत्क्षण राम जी के मुखारविन्द की रूप रेखा बदल गयी। रामायण कार लिखते हैं।

मायासीतां परित्यज्य जानकीमनले स्थिताम्।
आदातुं मनसा ध्यात्वा रामः प्राह विभीषणम्॥

अर्थात् श्रीराम ने उस मायामय सीता का परित्याग करने का निश्चय कर लिया। उस समय धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीराम चन्द्र जी सहसा ध्यानस्थ हो गये। उनकी आंखें डबडबा आईं और वह लम्बी सांस खींच कर भूमि की ओर देखते हुए पास में ही खड़े विभीषण से बोले, सीता जी को शीघ्र ही मेरे पास ले आओ। यह सुन कर विभीषण हनुमान् जी को साथ ले तुरन्त ही चले और बहुमूल्य वस्त्रों से आवृत दीप्तिमती सीता देवी को पालकी में बिठा कर भगवान् श्रीराम के पास ले आये। भगवान् राम ध्यानस्थ हैं, यह जानकर भी विभीषण उन के पास गये और प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक बोले—"प्रभो ! सीता देवी आ गई हैं"—परन्तु राम सीता जी की ओर से उपराम से दीख रहे थे। श्रीराम चन्द्र जी की बाहरी भयंकर चेष्टाएं यह सूचित कर रही थीं कि वे पत्नी की ओर से निरपेक्ष हो गये हैं। लक्ष्मण, सुग्रीव तथा कपिवर हनुमान् श्रीराम जी के इस परिवर्तित रंग-ढंग को देखकर अत्यन्त व्यथित हो उठे। आगे-आगे सीता थीं और पीछे विभीषण। सीता जी का मुख अत्यन्त सौम्य भाव से युक्त था। उन्होंने बड़े विस्मय, हर्ष और स्नेह के साथ अपने स्वामी के सौम्य मुख का दर्शन किया। उदयकालीन पूर्ण चन्द्रमा को भी लज्जित करने वाले प्रियतम के सुन्दर मुख को, जिसके दर्शन से बहुत दिनों से वञ्चित थीं, सीता जी ने जी भर कर निहारा और अपने मन की पीड़ा दूर की। उस समय उनका मुख प्रसन्नता से खिल उठा और निर्मल चन्द्रमा के समान शोभा पाने लगा।

गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज उस समूची परिस्थिति का विश्लेषण करते हुए Explaning the whole situation, Tulsi says लिखते हैं।

सीता प्रथम अनल महुं राखी।

प्रगट कीन्हि चह अन्तर साखी ।।
तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद ।
सुनत जातुधानीं सब लागीं करैं विषाद ।।

क्योंकि सीता हरण के समय अग्नि का प्रकाश हुआ था, सीता की पुनः प्राप्ति के समय भी अग्नि प्रकाश का होना आवश्यक था।

इसी चौपाई को आधार बनाकर कुछ लोगों का यह मत है कि जिस सीता को रावण ले गया था, वह नकली सीता थी। नकली सीता का अर्थ वह यह बताते हैं कि उसी आयु एवं समान रंग रूप की किसी दूसरी आर्य देवी ने राष्ट्र के लिये अपने आप को बलिदान के लिये समर्पित किया। इस बात की पूरी-पूरी सम्भावना थी। जीवन से निराश हुआ रावण, रोष में आया हुआ बदले की भावना से सीता जी को समाप्त कर दे। तलवार से उनकी हत्या कर दे। इस प्रकार तो रघुवंश ही प्रायः समाप्त हो जाता। ऋषि इस प्रकार का खतरा मोल नहीं लेना चाहते थे। इस लिये उन्होंने एक दूसरी आर्य देवी को तैयार किया, जो स्वयं सहर्ष रावण की कैद में रहना स्वीकार करे। लक्ष्मण को पर्णकुटी में कटु शब्द इसी मायामय सीता ने कहे थे। मृग भी मायामय, सीता जी का अपहरण करने वाला साधु भी मायामय और इधर सीता भी मायामय।

आगे जो कुछ हुआ, वह एक अत्यन्त ही रहस्यपूर्ण वातावरण में हुआ। पूर्व निश्चय के अनुसार हुआ। मानो एक ड्रामा हुआ इस लिये नहीं हुआ कि सीता रावण के कारागार में रह कर आयी थी,—शत्रु के कारागार में सीता पहले भी कई बार रही थी, उस समय राम ने सीता की अग्नि परीक्षा क्यों न ली। विराध ने भी सीता को उठाया था, जो शब्द श्रीराम ने अशोक वाटिका से आते समय सीता के प्रति कहे, विराध के कारागार से वापसी पर श्रीराम ने सीता से वैसे शब्द क्यों न कहे?

जिस समय पंचवटी में सीता-हरण की लीला हुई थी उस समय भी तो पंचवटी में एक बहुत बड़ा एकटिंग हुआ था। यह जानते हुए भी कि सोने का मृग नहीं बन सकता, राम मायामृग के पीछे भागे, क्या यह एकटिंग नहीं था? यह जानते हुए भी कि महान् योगीराज लक्ष्मण एक महान् चरित्र का स्वामी है, ऐसे जितेन्द्रिय देवर पर सीता जी ने जो इल्ज़ाम लगाये; जो-जो बातें लक्ष्मण से कहीं, यह भी एक प्रकार का एकटिंग ही था। कहां तो लक्ष्मण जाने को तैयार नहीं थे और फिर गये तो गये ही गये, क्या यह एकटिंग नहीं था? जो राम माता को छोड़ कर न रोये, पिता की मृत्यु पर भी न रोये, सीता के वियोग में साधारण से व्यक्ति की तरह रोना, क्या यह राम का एकटिंग नहीं था? जटायू की ड्यूटी थी चौबीसों घंटे पर्णकुटी पर ही रह कर सीता की रक्षा करना परन्तु सीता हरण के समय जटायू भी कहीं चले गये। सीता हरण रूपी लीला का श्रीगणेश ही जब सर्वतोमखी Acting एकटिंग के साथ हुआ था, तो वैसा ही एकटिंग सीता जी की पुनः प्राप्ति के समय होना अत्यन्त आवश्यक था। रावण भी कितना बड़ा ऐक्टर था, इतना बड़ा राजा—राजराजेश्वर सीता हरण के लिये फकीर बना, साधु बना और कमाल का साधु बना।

"अग्नि परीक्षा" का जो ड्रामा लंका की धरती पर खेला गया, उस का खेला जाना आवश्यक था। श्रीराम के प्रति इस सम्बन्ध में स्त्री-जाति के अपमान की भावना उसी अवस्था में पैदा की जा सकती है यदि वास्तव में राम

सीता को हृदय से दूषित मानते। किन्तु वह अग्नि साक्षी था Fire witness था jumping into fire नहीं था।

आर्य संस्कृति में अग्नि का स्थान बहुत ऊंचा है। "अग्निमोढ़े पुरोहितम्" अग्नि धरती पर परमात्मा का प्रतिनिधि है। अग्नि धरती पर परमात्मा का वायसराय है, भारतीय संस्कृति में चार वस्तुएं परम पवित्र हैं। अग्नि, गौ गंगा, गायत्री। गंगा हमारा हाईकोर्ट है, अग्नि हमारे लिये सुप्रीमकोर्ट है। रुपये पैसे का लेन देन हो, हम गंगा जी की कसम खाते हैं,—जब जिन्दगी के सौदे होते हैं उस समय अग्नि साक्षी होता है। विवाह शादी के अवसर पर अग्नि के सामने प्रतिज्ञायें की जाती हैं। लंका की धरती पर जो कुछ हुआ वह अग्नि साक्षी था।

प्रकृति का सिद्धान्त अटल है,—प्रकृति अन्धी है।' वह न गान्धी को देखती है, न पटेल को, न सुभाषचन्द्रबोस को। अग्नि का धर्म है दूसरों को जलाना। जो वस्तु अग्नि में गिरेगी अग्नि उसे जला कर राख का ढेर कर देगी।

आचार की पवित्रता यदि प्रकृति के नियमों को बदल सकती, संसार की कितनी दुर्घटनायें होने से बच सकती थीं। स्वामी रामतीर्थ गंगा में नहा रहे थे, पांव फिसल गया—मातेश्वरी जगज्जननी भागीरथी को देश के उस महान् सन्त पर तरस न आया, छोटा सा बच्चा बाल हकीकत कुछ कम पवित्र न था—सूली हकीकत के लिये फूल न बन सकी। गोडसे की गोली गान्धी के शरीर का स्पर्श करके स्वयं ठंडी न पड़ सकी। हज़ारों पद्मनियां जो चित्तौड़ की चिता में कूद पड़ीं निःसन्देह उन का पतिव्रत धर्म सन्देह से परे था, परन्तु हज़ारों पवित्र पद्मनियों के शरीर का स्पर्श करके भी अग्नि अग्नि ही रही, श्रीखण्ड के समान शीतल न बनी। हमारे अपने ज़माने में सन् ४७ में पश्चमी पंजाब के कितने ही ग्रामों में, परम पवित्र हिन्दु ललनायें आग में कूद पड़ीं परन्तु अग्नि के स्वभाव पर इन निर्दोष हिन्दु देवियों का पवित्रता का कोई प्रभाव न पड़ सका। अब्दुल्ला की जेल में डाक्टर श्याम प्रसाद मुकरजी को दिया गया विष, विष ही रहा, भारत माता के उस होनहार पुत्र पर तरस खाकर विष अपने को अमृत में बदल न सका। यदि प्रकृति अपने स्वभाव को बदल सकती नेता जी सुभाष विषाग्नि में दग्ध न होते, वीर वैरागी गुरु तेग बहादुर, गुरु अर्जुन देव, स्वामी श्रद्धानन्द, सरदार भगत सिंह और ऐसे कितने ही वीरों का बलिदान न होता।

अग्नि साक्षी की आवश्यकता न राम को थी, न सीता को, परन्तु अन्तःराष्ट्रीय संसार को इस परीक्षा की आवश्यकता अवश्य ही थी। सीता हरण के पश्चात् इन दस महीनों की अवधि में रावण के विरुद्ध प्रोपैगंडा जोर-शोर से हुआ था। रावण के चरित्र का एक भयानक पक्ष हमने संसार के सामने उपस्थित किया। राम-रावण युद्ध कोई मामूली सी स्थानीय घटना नहीं थी, यह एक विश्व-युद्ध था। धरती के बच्चे-बच्चे की ही नहीं, स्त्री पुरुष की ही नहीं, पशु और पक्षियों तक की निगाहें लंका की ओर लगी थीं, इस लिये लंका की धरती पर अग्नि परीक्षा के नाम से पन्द्रह बीस मिनट का जो नाटक सा हुआ, उसे व्यक्तिगत रूप से न देखकर राष्ट्रवादी रूप से देखना होगा। उस समय उस स्थल पर भारत के लग भग सभी ऋषि-मुनि विराजमान् थे, जो कुछ भी हुआ महामुनि विश्वामित्र, अगस्त्य एवं अन्य महा-ऋषियों की उपस्थिति में हुआ।

एक वर्ष के पश्चात् सीता-राम का आपस

में मिलाप हो रहा था, निःसन्देह वह दृश्य अभूत पूर्व होता, परन्तु against Expectations to all सीता जी के सामने आते ही श्रीराम ने इन शब्दों के साथ सीता जी का स्वागत किया—"भद्रे! समराङ्गण में शत्रु को पराजित करके मैं ने तुम्हें उसके चंगुल से छुड़ा लिया। पुरुषार्थ के द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह सब मैं ने किया। शत्रुजनित अपमान और शत्रु दोनों को एक साथ ही नष्ट कर डाला गया। आज सब ने मेरा पराक्रम देख लिया। अब मेरा परिश्रम सफल हो गया और इस समय प्रतिज्ञा-पूर्ण करके मैं उसके भार से मुक्त एवं स्वतन्त्र हो गया। हनुमान् ने जो समुद्र को लांघा और लंका का विध्वंस किया, उन का वह प्रशंसनीय कर्म आज सफल हो गया। अपने तिरस्कार का बदला चुकाने के लिये मनुष्य का जो कर्त्तव्य है, वह सब मैंने अपनी मान रक्षा की अभिलाषा से रावण का वध करके पूर्ण किया।"

यहां तक श्रीराम ने जो कुछ कहा उस में कुछ भी असम्भावित बात नहीं थी, स्वभाविक वार्तालाप थी, केवल हिस्टौरीकल रीकार्ड का विश्लेषण था—परन्तु आगे श्रीराम ने जो शब्द कहे वे शब्द सीताजी के लिये भी और उस स्थल पर उपस्थित सभी श्रोतागणों के लिये भी मानो वज्रपात के समान थे—

श्रीराम बोले—

विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः।
सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः॥

तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मैं ने जो यह युद्ध का परिश्रम उठाया है तथा इन मित्रों के पराक्रम से जो यह विजय प्राप्त की है—**वह सब तुम्हें पाने के लिये नहीं किया गया।**

क्या यह शब्द वास्तविक राम के थे—कदापि नहीं! यह शब्द उस महापुरुष के थे जो अन्तःराष्ट्रीय रंग मंच पर एक्टिंग कर रहे थे, अभिनव रामके थे। ये शब्द राम के हृदय से नहीं निकले थे, केवल मुख से ही निकले थे। इस घटना के आठ घंटे पहले और आठ घंटे बाद राम ने अपने हृदय के वास्तविक उद्गार प्रगट किये थे—केवल सात आठ घंटे पूर्व जो सन्देश श्रीराम ने हनुमान् जी के द्वारा सीता जी को भेजा था उसमें रामजी ने कहा—

मया ह्युपलब्ध निद्रेण धृतेन तव निर्जये।
प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ॥

अर्थात्, देवि मैं ने तुम्हारे उद्धार के लिये जो प्रतिज्ञा की थी उस के लिये निद्रा त्याग कर अथवा प्रयत्न द्वारा उस प्रतिज्ञा को पूरा किया और इस घटना के आठ घंटे बाद श्रीराम ने फिर वही शब्द सीता जी से कहे,—

दृश्य उस समय का है, जब श्रीअवध लौटते समय राम सीता जी को मार्ग के दृश्य दिखा रहे हैं—

एष दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः।
तव हेतोर्विशालाक्षि निहतो रावणो मया॥

विशाल लोचने! यह राक्षसराज रावण राख का ढेर बनकर सो रहा है। यह बड़ा भारी हिंसक था। और इसे ब्रह्माजी ने वरदान दे रखा था। "**किन्तु तुम्हारे लिये मैं ने इस का वध कर डाला है।**"

राम के सम्बन्ध में यह बात सर्वविदित है—"रामो द्वि न विभाषते"। राम दो बातें नहीं बोलता। तब तो विचारना होगा केवल चौबीस घंटे के भीतर-भीतर स्वयं राम दो भाषाएं क्यों बोले?

श्रीराम जी के श्रीमुख से इन शब्दों को

सुनकर सीता जी ने केवल इतना ही कहा,—

न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ।।
किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्र दारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ।।

महाबाहो ! आप मुझे जैसी समझ रहे हैं, वैसी मैं नहीं हूं । मुझ पर विश्वास कीजिये । मैं अपने सदाचार की ही शपथ खाकर कहती हूं कि मैं सन्देह के योग्य नहीं हूं । वीर ! आप ऐसी कठोर, अनुचित, कर्णकटु और रूखी बात मुझे क्यों सुना रहे हैं । आप किसी साधारण निम्न श्रेणी की स्त्री के सम्बन्ध में यह वार्तालाप नहीं कर रहे— ! भगवन्मैं महाराज दशरथ की पुत्रवधु हूं और विदेह जनक की पुत्री हूं । जो शब्द आप आज कह रहे हैं, यदि इतना प्रयास करने के पश्चात् भी यही कहना था, तो मुझे लाने के लिये हनुमान्जी को क्यों भेजा था,अपनी विजय का सन्देश मेरे तक क्यों पहुँचाया था,— समद्र पर पुल बांधने की आवश्यकता ही क्या थी, —मुझे आश्वासन देने के लिये बजरंग बली को लंका में क्यों भेजा था । मेरे हरण के तत्काल पश्चात् आप अयोध्या वापस क्यों नहीं चले गये ?

एक बात और ध्यान में अवश्य रखनी चाहिये, अग्नि प्रज्वलित करने की बात राम ने नहीं कही । यह प्रस्ताव स्वयं सीता जी का था।

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ।।

सुमित्रानन्दन ! मेरे लिये चिता तैयार करो –

प्रभु के बचन सीस धरि सीता ।
बोली मन क्रम बचन पुनीता ।।
लछिमन होहु धरम के नेगी ।
पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी ।।

परन्तु लक्ष्मण इतना साहस न कर सके । उन्होंने श्रीराम जी की ओर देखा । उस समय राम मानो अग्नि परीक्षा रूपी उस नाटक में चीफ-एक्टर का पार्ट प्ले कर रहे थे,—मुंह से तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, केवल आंख का इशारा कर दिया । "सजा दो चिता की सज्जा ।"

सुनि लछिमन सीता कै बानी
बिरह बिवेक धरम निति सानी ।।
लोचन सजल जोरि कर दोऊ ।
प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ।।
देखि राम रुख लछिमन धाए ।
पावक प्रगटि काठ बहु लाए ।।
पावक प्रबल देखि बैदेही ।
हृदय हरष नहिं भय कछु तेही ।।
जौं मन बच क्रम मम उर माहीं ।
तजि रघुबीर आन गति नाहीं ।।
तौ कृसानु सब कै गति जाना ।
मो कहुं होउ श्रीखंड समाना ।।

प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ।।
यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ।।
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ।।
कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम् ।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ।।
आदित्यो भगवान् वायुर्दिशश्चन्द्रस्तथैव च ।
अहश्चापि तथा सन्ध्ये रात्रिश्च पृथिवी तथा ।
यथाऽन्येऽपि विजानन्ति तथा चारित्रसंयुताम् ।।

वहां देवताओं अथवा ब्राह्मणों को प्रणाम करके मिथिलेश कुमारी ने दोनों हाथ जोड़ कर

अग्नि देव के समीप इस प्रकार कहा,—यदि मेरा हृदय कभी एक क्षण के लिये भी श्री रघुनाथ जी से दूर नहीं हुआ तो सम्पूर्ण के साक्षी जगत अग्नि देव मेरी सब ओर से रक्षा करें। मेरा चरित्र शुद्ध है फिर भी श्री रघुनाथ जी मुझे दूषित समझते हैं। यदि मैं सर्वथा निष्कलंक होऊं तो सम्पूर्ण जगत् के साक्षी अग्नि देव मेरी सब ओर से रक्षा करें। यदि मैं ने मन, वाणी और क्रिया द्वारा कभी सम्पूर्ण धर्मों के ज्ञाता श्री रघुनाथ जी का अतिक्रमण न किया हो तो अग्निदेव मेरी रक्षा करें। यदि भगवान् सूर्य, वायु, दिशायें, चन्द्रमा, दिन, रात, दोनों संध्याएं, पृथ्वी देवी तथा अन्य देवता भी मुझे शुद्ध चरित्र से युक्त जानते हों तो अग्नि देव मेरी सब ओर से रक्षा करें।

ततो वैश्नवणो राजा यमश्च पितृभिः सह।
सहस्राक्षश्च देवेशो वरुणश्च जलेश्वरः ॥
षड्र्धनयनः श्रीमान् महादेवो वृषध्वजः ॥
कर्ता सर्वस्य लोकस्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
एते सर्वे समागम्य विमानैः सूर्य संन्निभैः।
आगम्य नगरीं लंकामभिजग्मुश्च राघवम् ॥

इसी समय विश्रवा के पुत्र यक्षराज कुबेर, पितरों सहित यमराज, देवताओं के स्वामी सहस्रनेत्रधारी इन्द्र, जल के अधिपति वरुण, त्रिनेत्रधारी श्रीमान् वृषभध्वज महादेव तथा सम्पूर्ण जगत् के सृष्टा ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ ब्रह्माजी—ये सब देवता सूर्य तुल्य विमानों द्वारा लंकापुरी में आकर श्री रघुनाथ जी के पास गये। भगवान् राम उनके सामने हाथ जोड़े खड़े थे। वे श्रेष्ठ देवता अपनी विशाल भुजाओं को उठा कर उनसे बोले—

वधार्यं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्।
तदिदं नस्त्वया कार्यं कृतं धर्मभृतां वर ॥
अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भवि ॥
रावणेन हृतं स्थानमस्माकं तेजसा सह।
त्वयाद्य निहतो दुष्टः पुनः प्राप्त पदं स्वकम् ॥

रावण ने हमारे तेज के सहित हमारा स्थान भी छीन लिया था, सो आज वह दुष्ट आप के हाथ से मारा गया और हमें फिर अपना पद प्राप्त हो गया। धर्मात्माओं में श्रेष्ठ रघुवीर आप ने रावण का वध करने के लिए ही इस लोक में मनुष्य के शरीर में प्रवेश किया था। हम लोगों का कार्य आप ने सम्पन्न कर दिया। श्रीराम आप का दर्शन अमोघ है। आप का स्तवन भी अमोघ है। तथा आप में भक्ति रखने वाले मनुष्य इस भी भूमण्डल में अमोघ ही होंगे।

श्रुत्वा स्तुतिं लोकगुरोर्विभावसुः
स्वाङ्के समादाय विदेहपुत्रिकाम्।
विभ्राजमानां विमलारुणद्युतिं
रक्ताम्बरां दिव्यविभूषणान्विताम् ॥

प्रोवाच साक्षी जगतां रघूत्तमं
प्रपन्नसर्वार्तिहरं हुताशनः।
गृहाण देवीं रघुनाथ जानकीं
पुरा त्वया मय्यवरोपितां वने ॥

विधाय मायाजनकात्मजां हरे
दशाननप्राणविनाशनाय च।
हतो दशास्यः सह पुत्रबान्धवः
निराकृतोऽनेन भरो भुवः प्रभो ॥

निरोहिता सा प्रतिबिम्ब रूपिणी
कृता यदर्थं कृतकृत्यतां गता।
ततोऽतिहृष्टो परिगृह्य जानकीं
रामः प्रहृष्टः प्रतिपूजा पावकम् ॥

उस समय जितने भी लोग वहां उपस्थित थे, सभी का ध्यान उन आकाशीय देवताओं की ओर आकर्षित हो गया। सीता जी उस समय अग्नि-प्रवेश के साक्षात् अन्तःकरण में पहुंच चुकी थीं, उस समय एकाएक महर्षि अग्नि जो स्वयं महामुनि विश्वामित्र ही नाम रूप बदल कर वहां उपस्थित थे, प्रगट हुए। सीता जी का हाथ उन्होंने पकड़ा। जनकपुरी में भी तो इन्हीं महमुनि कौशिक ने राष्ट्रपिता की हैसियत में सीता का हाथ राम के हाथों में थमाया था। उस समय अग्निदेव के रूप में विश्वामित्र बोले—"बस-बस राम! अग्नि परीक्षा का यह नाटक पूरा हो गया। सीता आज भी उतनी ही पवित्र है जितनी जनकपुरी में थी।"

अब्रवीत् तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः।
एषा ते राम वैदेही पापमस्याँ न विद्यते ॥
विशुद्ध भावां निष्पापां प्रतिगृहणीश्व मैथिलीम्।
न किंचिद्भिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥

श्रीराम! यह आप की धर्मपत्नी विदेह कुमारी सीता है। इस में कोई पाप या दोष नहीं। इस का भाव सर्वथा शुद्ध है। यह मिथिलेश नन्दिनी सर्वथा निष्पाप है। आप इसे सादर स्वीकार करें। मैं आप को आज्ञा देता हूं, आप इस से कभी कोई कठोर बात न कहें।

अग्निदेव की यह बात सुन कर वक्ताओं में श्रेष्ठ धर्मात्मा श्रीराम का मन प्रसन्न हो गया। उन के नेत्रों में आनन्द के आंसू छलक आये। वे थोड़ी देर तक विचार में डूबे रहे। तदनन्तर महातेजस्वी, धैर्यवान्, महान् पराक्रमी तथा धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीराम ने देव-शिरोमणि अग्निदेव से उनकी पूर्वोक्त बात के उत्तर में कहा,—

अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावन मर्हति।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तः पुरे शुभा ॥

भगवन्! जनसाधारण में सीता जी की पवित्रता का विश्वास दिलाने के लिये इन की यह अग्नि साक्षी विषयक परीक्षा आवश्यक थी, क्योंकि शुभलक्षणा सीता को विवश हो कर दीर्घ काल तक रावण के कारागार में रहना पड़ा। मिथिलेश कुमारी सीता प्रज्वलित अग्नि शिखा के समान दुर्धर्ष हैं। दुष्टात्मा रावण मन के द्वारा भी इन पर अत्याचार करने में समर्थ नहीं हो सकता था।

अनन्यहृदयां सीतां मच्चित्तपरिरक्षिणीम्।
अहमप्यवगच्छामि मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥

यह बात मैं भली-भांति जानता हूं कि मिथिलेश नन्दिनी जनक कुमारी सीता का हृदय सदा मुझ में ही लगा रहता है। मुझ से कभी अलग नहीं होता।

इमामपि विशालाक्षीं रक्षितां स्वेन तेजसा।
रावणो नातिवर्तेत वेलामिव महोदधिः ॥

मुझे यह भी विश्वास है कि जैसे महासागर अपनी तट भूमि को नहीं लांघ सकता, उसी प्रकार रावण अपने ही तेज से सुरक्षित सीता पर अत्याचार नहीं कर सकता था।

अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा।
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ॥

सीता मुझ से उसी प्रकार अभिन्न है, जैसे सूर्यदेव से उनकी प्रभा। मिथिलेश कुमारी जानकी तीनों लोकों में परम पवित्र हैं।

इत्येवमुक्त्वा विजयी महाबला
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा।
समेत्य रामः प्रियया महायशाः
सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः ॥

ऐसा कह कर अपने किये हुये पराक्रम से प्रशंसित होने वाले महाबली, महा यशस्वी, रघुनन्दन श्रीराम अपनी प्रिया सीता से मिले और मिलकर बड़े सुख का अनुभव करने लगे।

उस रात्रि को विश्राम करके जब शत्रुसूदन

श्रीराम दूसरे दिन प्रातःकाल सुखपूर्वक उठे, तब कुशल प्रश्न के पश्चात् विभीषण ने हाथ जोड़ कर कहा—प्रभो ! अब आप कुछ दिनों के लिये राजधानी में विश्राम कीजिए। श्रीराम बोले,—लंकेश्वर !

तं बिना कैकयी पुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥
एतत् पश्य यथाक्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥

उन धर्म परायण कैकयी कुमार भरत से मिले बिना न तो मुझे स्नान अच्छा लगता है, न वस्त्र और आभूषणों को धारण करना ही। अब तो तुम इस बात की ओर ध्यान दो कि हम किस तरह जल्दी से जल्दी अयोयापुरी को लौट सकेंगे। क्योंकि वहां तक पैदल यात्रा करने वाले के लिये वह मार्ग बहुत दुर्गम है।

उनके ऐसा कहने पर विभीषण ने श्रीराम चन्द्र जी को इस प्रकार उत्तर दिया—"राजकुमार ! आप इसके लिये चिन्तित न हों। मैं एक ही दिन में आप को उस पुरी में पहुंचा दूंगा"।

पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसंनिभम् ।
मम भ्रातुः कुबेरस्य रावणेन बलीयसा ॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ।
त्वदर्थं पालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रमः ॥
तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति ।
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥

मेघ जैसा दिखाई देने वाला वह दिव्य विमान यहां विद्यमान है, जिस के द्वारा निश्चिन्त होकर आप अयोध्यापुरी को जा सकेंगे।

उस समय श्रीराम बोले,—राक्षसेश्वर ! इस समय मेरा मन अपने उन भाई भरत को देखने के लिये उतावला हो उठा है, जो मुझे लौटा लाने के लिये चित्रकूट तक आये थे और मेरे चरणों में सिर झुका कर याचना करने पर भी जिनकी बात मैं ने नहीं मानी थी। मातायें भी मेरी राह में आंखें बिछाये मेरी प्रतीक्षा में होंगी। इस लिये—

उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर ।
कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह सम्मतः ॥

राक्षस राज ! अब शीघ्र ही मेरे लिये पुष्पक विमान को यहां मंगाओ। अब मेरा काय समाप्त हो गया, तब यहां ठहरना मेरे लिये कैसे ठीक हो सकता है।

श्रीराम चन्द्र जी के ऐसा कहने पर राक्षस राज विभीषण ने बड़ी उतावली के साथ उस सूर्यतुल्य तेजस्वी विमान का आवाहन किया।

वह विश्वकर्मा का विमान सुमेरु शिखर के समान ऊंचा और चांदी से सुसज्जित बड़े-बड़े कमरों से विभूषित था। उस का मन के समान वेग था, उस की गति कहीं रुकती न थी।

विभीषण एवं सुग्रीवादि वीरों ने भी साथ ही श्री अवध जाने की इच्छा प्रकट की। तब वानरों सहित सुग्रीव और मन्त्रियों सहित विभीषण बड़ी प्रसन्नता के साथ उस पुष्पक विमान पर चढ़ गये। उन सब के चढ़ जाने पर कुबेर का वह उत्तम आसन पुष्पक विमान श्री रघुनाथ जी की आज्ञा पाकर आकाश को उड़ चला। आकाश में पहुंचे हुए उस हंसयुक्त तेजस्वी विमान में यात्रा करते हुए पुलकित एवं प्रसन्नचित श्रीराम साक्षात् कुबेर के समान शोभा पा रहे थे।

ततो बभौ भास्कर बिम्बतुल्यं
कुबेरयानं तपसानुलब्धम् ।
रामेण शोभां नितरां प्रपेदे
सीता समेतेन सहानुजेन ॥

चलत विमान कोलाहल होई।
जय रघुबीर कहइ सबु कोई ॥
कह रघुवीर देखु रन सीता।
लच्छिमन इहां हत्यो इंद्रजीता ॥
हनूमान अंगद के मारे ।
रन महि परे निशाचर भारे ॥
कुम्भकरन रावन द्वौ भाई।
इहां हते सुर मुनि दुखदाई ॥

इहाँ सेतु बाँध्यो अरु थापेउं सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपा निधि संभुहि कींन्ह प्रनाम ॥
जहँ जहँ कृपा सिंधु वन कीन्ह राम विश्राम।
सकल देखाए जानकहि कहे सबन्हि के नाम ॥

एतच्च दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ।
सेतुबन्धमिति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ॥
एतत्पवित्रं परमं दर्शनात्पातकापहम् ।
अत्र रामेश्वरो देवो मया शम्भुः प्रतिष्ठितः ॥
अत्र मां शरणं प्राप्तो मन्त्रिभिश्च विभीषणः।
एषा सुग्रीवनगरी किष्किन्धा चित्रकानना ॥
एषा पञ्चवटी नाम राक्षसा यत्र मे हताः ।
अगस्त्यस्य सुतीक्ष्णस्य पश्याश्रमपदे शुभे ॥
एते ते तापसाः सर्वे दृश्यन्ते वरवर्णिनि ।
असौ शैलवरो देवि चित्रकूटः प्रकाशते ॥
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसादयितुमागतः ।
भारद्वाजाश्रमं पश्य दृश्यते यमुनातटे ॥
एषा भागीरथी गंगा दृश्यते लोकपावनी ।
एषा सा दृश्यते सीते सरयूयूपमालिनी ॥
एषा सा दृश्यतेऽयोध्या प्रणामं कुरु भामिनि ॥

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा।
दंडक बन जहँ परम सुहावा ॥
कुंभजादि मुनिनायक नाना ।
गए रामु सब कें अस्थाना ॥
सकलरिषिन्ह सन पाइ असीसा।
चित्रकूट आए जगदीसा ॥

तहं करि मुनिन्ह केर संतोषा।
चला बिमानु तहाँ ते चोखा ॥
बहुरि राम जानकिहि देखाई।
जमुना कलि मल हरनि सुहाई ॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता ।
राम कहा प्रनाम करु सीता ॥
तीरथपति पुनि देखु प्रयागा।
निरखत जन्म कोटि अघ भागा ॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी।
हरनि सोक हरि लोक निसेनी ॥
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि ॥
त्रिबिध ताप भवरोग नसावनि ॥

सीता सहित अवध कहुं कीन्ह कृपाल प्रनाम ।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम ॥
पुनि प्रभु आइ त्रिबेनीं हरषित मज्जनु कीन्ह।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुं दान बिबिध बिधि दीन्ह॥

इस विशाल समुद्र पर यह सेतुबन्ध नाम से विख्यात तीर्थ दिखाई देता है, जो तीनों लोकों से पूजनीय है। यह अत्यन्त पवित्र है और दर्शन मात्र से ही सम्पूर्ण पापों को नष्ट करने वाला है। यहां मैंने श्रीरामेश्वर महादेव की स्थापना की है। यहीं मन्त्रियों के सहित विभीषण मेरी शरण में आया था। और देखो यह विचित्र उपवनों वाली सुग्रीव की राजधानी किष्किन्धा-पुरी है। किष्किन्धा में पहुंचने पर भगवान् राम की आज्ञा से सीता जी को प्रसन्न करने के लिये सुग्रीव अपनी तारा आदि स्त्रियों को ले आये। जब रघुनाथ जी ने विमान को तुरन्त ही उन सब को भी लेकर चलते देखा तो वे फिर सीता जी से कहने लगे—"यह ऋष्यमूक पर्वत देखो, यहां मैंने वाली को मारा था। इधर पञ्चवटी है जहां मैंने खर-दूषणादि राक्षसों का संहार किया था। देखो, ये मुनिवर अगस्त्य और सुतीक्ष्ण के अति पवित्र आश्रम हैं। हे सुन्दर

वर्ण वाली ! देखो, ये वे सब तपस्वीगण दिखाई दे रहे हैं और हे देवि ! यह पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट दीख रहा है। यहीं मुझे मनाने के लिये कैकेयी के पुत्र भरत आये थे, और देखो, वह यमुना जी के तट पर भरद्वाज मुनिका आश्रम दिखलाई दे रहा है। ये त्रिलोकपावनी भागीरथी गंगा जी दीख रही हैं और हे सीते ! सूर्यवंशी राजाओं के किए हुए यज्ञों के यूपों यज्ञस्तम्भों से युक्त यह सरयू नदी दिखाई दे रही है। हे सुन्दरी ! देखो, वह अयोध्यापुरी दीख रही है, उसे प्रणाम करो। इस प्रकार भगवान् राम क्रम से भरद्वाज मुनि के आश्रम पर पहुंचे।

पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पञ्चम्यां लक्ष्मणाग्रजः।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ॥

श्रीरामचन्द्र जी ने चौदहवां वर्ष पूर्ण होने पर पञ्चमी तिथि को भरद्वाज-आश्रम में पहुंच कर मन को वश में रखते हुए मुनि को प्रणाम किया। तपस्या के धनी भरद्वाज मुनि को प्रणाम करके श्रीराम ने उन से पूछा—"भगवन् ! आप ने अयोध्यापुरी के विषय में भी कुछ सुना है? वहां सुकाल और कुशल-मंगल तो है न? भरत प्रजापालन में तत्पर रहते हैं? मेरी माताएं जीवित हैं न? श्रीराम चन्द्र जी के इस प्रकार पूछने पर महामुनि भरद्वाज ने मुस्करा कर उन रघुश्रेष्ठ श्रीराम से प्रसन्नतापूर्वक कहा—रघुनन्दन ! भरत आप की आज्ञा के अधीन है। वे जटा बढ़ाये आप के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। आप की चरण पादुकाओं को सामने रख कर सारा कार्य करते हैं। आप के घर पर और नगर में भी सब सकुशल हैं।

सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव।
यत् त्वया विपुलं प्राप्तं जनस्थाननिवासिना ॥

रघुवीर ! आप ने जनस्थान में रहकर जो विपल सुख-दुःख उठाये हैं, वे सब मुझे मालूम है। धर्मवत्सल ! कपट मृग लीला से लेकर, उस देवकण्टक रावण के मारे जाने पर, देवताओं के साथ आप का समागम होने तक ये सारी बातें मुझे पहले ही तप के प्रभाव से ज्ञात हैं। आप आज यहां ठहरिये। कल सवेरे अयोध्या को जाइयेगा।

उस समय श्रीराम हनुमान् जी से बोले—कपिश्रेष्ठ ! तुम शीघ्र ही अयोध्या में जाकर पता लो कि राजभवन में सब लोग सकुशल तो हैं न ? शृङ्गवेरपुर में पहुँच कर वनवासी निषादराज गुह से भी मिलना और मेरी ओर से कुशल कहना। भरत के पास जाकर तुम मेरी ओर से उनका कुशल पूछना और उन्हें सीता एवं लक्ष्मण सहित मेरे सफल मनोरथ होकर लौटने का समाचार बताना।

इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान् मारुतात्मजः।
मानुषं धारयन् रूपमयोध्यां त्वरितो ययौ ॥

तब हनुमान् जी 'बहुत अच्छा' कह मनुष्य शरीर धारण कर तुरन्त ही वायुवेग से नन्दिग्राम को चले, मानो किसी श्रेष्ठ सर्प को पकड़ने के लिये गरुड़ जी जाते हों। शृङ्गवेर पहुंचने पर श्रीमारुति ने गुह के पास जाकर अति प्रसन्न चित्त से मीठी बोली में कहा—तुम्हारे मित्र परम धार्मिक एवं क्षेम-युक्त दशरथकुमार श्रीमान् रामचन्द्र जी ने सीता और लक्ष्मण के सहित अपनी कुशल कही है। आज मुनिवर भरद्वाज की आज्ञा लेकर श्री रघुनाथ जी आयेंगे, तब तुम्हें भी उन रघुश्रेष्ठ भगवान् राम का दर्शन होगा।

जिसे हर्ष से रोमांच हो रहा था, ऐसे गुह से इस प्रकार कह महातेजस्वी अत्यन्त वेगशाली हनुमान् जी फिर वायुवेग से उड़े। कुछ दूर जाने पर उन्होंने रामतीर्थ अयोध्या और महानदी सरयू के दर्शन किये। उसे भी पार कर हनुमान् जी अति प्रसन्न चित्त से नन्दिग्राम को चले।

अयोध्या से एक कोस की दूरी पर उन्होंने आश्रमवासी भरत को देखा, जो चीर वस्त्र और काली काली मृगचर्म धारण किए दुखी, एवं दुर्बल दिखाई दे रहे थे। उनके सिर पर जटा बढ़ी हुई थी। शरीर पर मैल जम गई थी, भाई के बनवास के दु:ख ने उन्हें बहुंत ही कृश कर दिया था, फलमूल ही उनका भोजन था, वे इन्द्रियों का दमन करके तपस्या में लगे हुए थे और धर्म का आचरण करते थे। सिर पर जटा का भार बहुत ऊंचा दिखाई देता था, बल्कल और मृगचर्म से उनका शरीर ढका था। वे बड़े नियम से रहते थे। उनका अन्तःकरण शुद्ध था और वह महर्षि के समान तेजस्वी जान पड़ते थे। रघुनाथ जी की दोनों चरण पादुकाओं को आगे कर वे पृथ्वी का शासन करते थे। उन के पास मन्त्री, पुरोहित और सेनापति भी योग युक्त होकर रहते और गेरुए वस्त्र पहनते थे।

न हीं बलमुख्यंश्च काषायाम्बरधारिभिः।

यथा राजा तथा प्रजा। जब राजा इतना सतो गुणी तो प्रजा कैसे तमोगुणी हो सकती थी आदि कवि लिखते हैं।

नहि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः॥

अयोध्या के वे धर्मानुरागी पुरवासी भी उन चीर और काला मृगचर्म धारण करने वाले राजकुमार भरत को उस दशा में छोड़कर स्वयं भोग भोगने की इच्छा नहीं करते थे। मनुष्य-देह धारण करके आये हुए दूसरे धर्म की भांति उन धर्मज्ञ भरत के पास पहुंच कर पवनकुमार हनुमान् जी हाथ जोड़ कर बोले।

जासु बिरहँ सोचहु दिन राती।
रटहु निरंतर गुन-गन पांती॥
रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता।
आयउ कुसल देव मुनि त्राता॥
रिपु रन जीति सुजस सुर गावत।
सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥
सुनत बचन बिसरे सब दूखा।
तृषावंत जिमि पाइ पियूषा॥

देव! आप दण्डकारण्य में चीरवस्त्र और जटा धारण करके रहने वाले जिन रघुनाथ जी के लिये निरन्तर चिन्तित रहते हैं, उन्होंने आप को अपना कुशल समाचार कहलाया है और आप का भी पूछा है। अब आप अत्यन्त दारुण शोक को त्याग दीजिए। मैं आप को बड़ा प्रिय समाचार सुना रहा हूं। आप शीघ्र ही अपने भाई श्रीराम से मिलेंगे।

निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम्।
उपयाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः।
लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी।
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा॥

हनुमान् के ऐसा कहते ही कैकयी कुमार भरत सहसा आनन्द विभोर हो पृथ्वी पर गिर पड़े और हर्ष से मूर्च्छित हो गये। तत्पश्चात् दो घड़ी के बाद उन्हें होश हुआ और वे उठकर खड़े हो गये। उस समय रघुकुलभूषण श्रीमान् भरत ने प्रिय वादी हनुमान् जी को बड़े वेग से पकड़ कर दोनों भुजाओं में भर लिया और शोक-संसर्ग से शून्य परमानन्द जनित विपुल अश्रु बिन्दुओं से वे उन्हें नहलाने लगे फिर इस प्रकार बोले—

देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम्॥

को तुम तात कहाँ ते आए।
मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥
मारुतसुत मैं कपि हनुमाना।
नामु मोर सुनु कृपा निधाना॥
दीन बंधु रघुपति कर किंकर।
सुनत भरत भेंटेउ उठि सादर॥

मिलत प्रेम नहिं हृदयँ समाता ।
नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥
कपि तव दरस सकल दुख बीते ।
मिले आजु मोहि राम पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता ।
तो कहुं देउं काह सुनु भ्राता ॥
एहि सन्देस सरिस जगमाहीं ।
करि बिचार देखेउं कछु नाहीं ॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही ।
अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥
तब हनुमंत नाइ पद माथा ।
कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गोसाइँ ।
सुमिरहिं मोहि दास की नाइँ ॥

निजदास ज्यों रघुबंस भूषन कबहुं मम सुमिरन करयो।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपिपुलकितन चरनन्हिपरयो
रघुबीर निजमुखजासुगुन गन कहत अगजग नाथ जो ।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सदगुन सिंधु सो ॥

राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात ।
पुनि पुनि मिलन भरत सुनि हरष न हृदये समात ॥
भरत चरन सिरु नाइ तुरित गयउ कपि राम पहिं ।
कहो कुसल सब जाइ हरषि चलेउ प्रभु जान चढ़ि ॥

निशम्य रामागमनं नृपात्मजः
कपिप्रवीरस्य तदाद्भुतोपमम् ।
प्रहर्षितो रामदिदृक्ष्याभवत्
पुनश्च हर्षादिदमब्रवीद् वचः ॥

मेरे स्वामी श्री राम को विशाल वन में गये बहुत वर्ष बीत गये। इतने वर्षों के बाद आज मुझे उनकी आनन्ददायिनी चर्चा सुनने को मिली है।

कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति माम् ।
इति जवीन्तमानन्दो नरं वर्ष शतादपि ॥

आज यह कल्याणमयी लौकिक गाथा मुझे यथार्थ जान पड़ती है—मनुष्य यदि जीता रहे तो उसे कभी-न-कभी हर्ष और आनन्द की प्राप्ति होती ही है, भले ही वह सौ वर्ष बाद हो।

ततः स वाक्यैर्मधुरैर्हनूमतो
निशम्य हृष्टो भरतः कृताञ्जलिः ।
उवाच वाणीं मनसा प्रहर्षिणी
चिरस्य पूर्णः खलु मे मनोरथः ॥

इस प्रकार हनुमान् जी के मधुर वाक्यों द्वारा सारी बातें सुनकर भरत जी बड़े प्रसन्न हुए और हाथ जोड़ कर मन को हर्ष प्रदान करने वाली वाणी बोले –"आज चिर काल के बाद मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ"।

हरषि भरत कोसलपुर आए ।
समाचार सब गुरहि सुनाए ॥
पुनि मन्दिर महं बात जनाई ।
आवत नगर कुसल रघुराई ॥
अवधपुरी प्रभु आवत जानी ।
भई सकल सोभा कै खानी ॥

आवत देखि लोग सब कृपा सिंधु भगवान ।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ उतरेउ भूमि बिमान ॥

महात्मा भरत इस समय श्रीराम की अगवानी के लिये आगे बढ़े। उन का शरीर हर्ष से पुलकित था।

आए भरत संग सब लोगा ।
कृस तन श्री रघुबीर बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ठ मुनि नायक ।
देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥
धाइ धरे गुर चरन सरोरुह ।
अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥
भेंटि कुसल बूझी मुनिराया ।
हमरें कुसल तुम्हारिहि दाया ॥
सकल द्विजन्ह मिलि नायउ माथा ।
धर्म धुरन्धर रघुकुल नाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभु पद पंकज ।
नमत जिन्हहि सुर मुनिसंकर अज ॥
परे भूमि नहिं उठत उठाए ।
बर करि कृपा सिंधु उर लाए ॥

ते कृत्वा मानुषं रूपं वानरा कामरूपिणः ।
कुशलं पर्यपृच्छस्ते प्रहृष्टा भरत सदा ॥

वे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानर मानव रूप धारण करके भरत जी से मिले और उन सब ने महान् हर्ष से उल्लासित होकर उस समय भरत जी का कुशल समाचार पूछा।—गोस्वामी तुलसी दास इस दृश्य का वर्णन करते हुए लिखते हैं ।

लंकापति कपीस नल नीला ।
जामवंत अंगद सुभ सीला ॥
हनुमदादि सब बानर बीरा ।
धरे मनोहर मनुज शरीरा ॥
भरत सनेह सील ब्रत नेमा ।
सादर सब बरनहि अति प्रेमा ॥

धर्मात्माओं में श्रेष्ठ महातेजस्वी राज कुमार भरत ने वानरराज सुग्रीव को हृदय से लगा कर उनसे कहा ।

त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ।
सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरिलक्षणम् ॥

सुग्रीव ! तुम हम चारों के पाँचवें भाई हो, क्योंकि स्नेह उपकार करने से ही कोई भी मित्र होता है अपकार करना ही शत्रु का लक्षण है ।

इस के बाद भरत ने विभीषण को सान्त्वना देते हुए उनसे कहा—'राक्षसराज ! बड़े सौभाग्य की बात है कि आपकी सहायता पाकर श्री रघुनाथ जी ने अत्यन्त दुष्कर कार्य पूरा किया है इसी समय वीर शत्रुघ्न ने भी श्री राम और लक्ष्मण को प्रणाम करके सीता जी के चरणों में विनय पूर्वक मस्तक झुकाया ।

पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन भेंटे हृदयँ लगाई ।
लछिमन भरत मिले तब परम प्रेम दोउ भाई ॥

भरतानुज लछिमन पुनि भेंटे ।
दुसह बिरह संभव दुख मेंटे ॥
सीता चरन भरत सिरु नावा ।
अनुज समेत परम सुख पावा ॥

माता कौसल्या शोक के कारण अत्यन्त दुर्बल और कान्ति हीन हो गयी थी । उनके पास पहुँच कर श्रीराम ने प्रणत हो उनके दोनों पैर पकड़ लिये और माता के मन को अत्यन्त हर्ष प्रदान किया ।

कौसल्यादि मातु सब धाई ।
निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥

जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं ।
दिन अंतपुर रुख श्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेंटी बचन मृदु बहु विधि कहे ।
गइ बिषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरण सुख अगनित लहे

भेटेउ तनय सुमित्रां राम चरन रति जानि ।
रामहि मिलत कैकई हृदयं बहुत सकुचानि ।
लछिमन सब मातन्ह मिलि हरषे आसिष पाइ ।
कैकइ कहं पुनि पुनि मिले मन कर छोभु न जाई ।

सासुन्ह सबनि मिली बेदेही ।
चरनन्हि लागि हरषु अति तेही ॥
देहि असीस बूझि कुसलाता ।
होइ अचल तुम्हार अहि बाता ॥
सब रघुपति मुख कमल विलोकहिं ।
मंगल जानि नयन जल रोकहिं ॥
कनक थार आरतीं उतारहिं ।
बार बार प्रभु गात निहारहिं ॥
नाना भांति निछावरि करहीं ।
परमानन्द हरष उर भरहीं ॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि ।
चितवति कृपासिंधु रनधीरहि ॥
हृदयं बिचारति बारहि बारा ।

कवन भांति लंका पति मारा ॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे।
निसिचर सुभट महाबल मारे ॥
लछिमन अरु सीता सहित प्रभुहि बिलोकत मातु।
परमानंद मगन मन पुनि पुनि पुलकित गातु ॥

फिर सुमित्रा और यशस्विनी कैकयी को प्रणाम करके उन्हों ने सम्पूर्ण माताओं का अभिवादन किया, इस के पश्चात् वे राजपुरोहित वशिष्ट जी के पास आये।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए।
मुनि पद लागहु सकल सिखाए ॥
गुरुवसिष्ट कुल पूज्य हमारे।
इन्ह की कृपां दनुज रन मारे ॥
ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जन्म इन्ह हारे।
भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे ॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए।
निमिष निमिष उपजत सुख नए ॥

कौसल्या के चरनन्हि पुनि तिन्ह नायउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥
सुमन बृष्टि नभ संकुल भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं नगर नारि नर बृंद ॥

स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्द वर्धनः।
इति प्राञ्जलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥

उस समय अयोध्या के समस्त नागरिक हाथ जोड़ कर श्री राम चन्द्र जी से एक साथ बोल उठे —माता कौसल्या का आनन्द बढ़ाने वाले महाबाहु राम की जय। भरत के बड़े भाई श्री राम ने देखा, खिले हुए कमलों के समान नागरिकों की सहस्रों अञ्जलियां उनकी और उठी हुई हैं।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी।
जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी।
कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥
अमित रूप प्रगटे तेहि काला।
जथा जोग मिले सबहि कृपाला ॥
कृपा दृष्टि रघुबीर बिलोकी।
किए सकल नर नारि बिसोकी ॥
छन महिं सबहि मिले भगवाना।
उमा मरम यह काहुँ न जाना ॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा।
आगें चले शील गुन धामा ॥

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम्।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवितः।

तदनन्तर धर्मज्ञ भरत ने स्वयं ही श्री राम की वे चरण पादुकाएँ लेकर उन महाराज के चरणों में पहना दीं और हाथ जोड़ कर उस समय उन से कहा,—

एतत् ते सकलं राज्यं न्यायस निर्यातितं मया।
अद्य जन्म कृतार्थ मे संवृतश्च मनोरथ।
यत् त्वां पश्यामि राजानमयोध्या पुनरागतम्ः ॥

प्रभो! मेरे पास धरोहर के रूप में रक्खा हुआ आप का यह सारा राज्य आज मैं ने आप के चरणों में लौटा दिया। आज मेरा जन्म निःसन्देह सफल हो गया मेरामनोरथ पूरा हुआ, जो अयोध्या नरेश आप श्रीराम को पुनः अयोध्या में लौटा हुआ देख रहा हूँ।

अवेक्षतां भवान् कोशं कोष्ठागारं गृहम् वनम्।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दश गुणा मया ॥

आप राज्य का खजाना, कोठार, घर और सेना सब देख लें। आप के प्रताप से ये सारी वस्तुएं

पहले से दस गुनी हो गयी हैं। भ्रातृवत्सल भरत को इस प्रकार कहते देख समस्त वानर तथा राक्षसराज विभीषण नेत्रों से आँसु बहाने लगे।

इस के पश्चात् श्री रघुनाथ जी भरत लाल को बड़े हर्ष और स्नेह के साथ गोद में बैठा कर विमान के द्वारा ही सेनासहित उनके आश्रम पर गये। भरत के आश्रम में पहुंच कर सेना सहित श्री रघुनाथ जी विमान से उतर कर भूतल पर खड़े हो गये;तत्पश्चात् महा पराक्रमी श्रीरघुनाथ जी ने अपनें सखा पुरोहित वसिष्ठ-पुत्र सुयज्ञ के अथवा अपने परम सहायक पुरोहित वसिष्ठ जी के उसी प्रकार चरण छुए, जैसे देवराज इन्द्र वृहस्पति जी के चरणों का स्पर्श करते हैं। फिर उन्हें एक सुन्दर पृथक आसन पर विराजमान करके उनके साथ ही दूसरे आसन पर वे स्वयं बैठे।

तत्पश्चात् कैकयी नन्दन भरत ने मस्तकपर अञ्जलि बाँध कर अपने बड़े भाई सत्यपराक्रमी श्री राम से कहा—

पूजिता मामिका माता दत्त राज्यमिदं मया।
तद ददामि पुनस्तुभ्यं यथा त्वमददा मम।

आप ने मेरी माता का सम्मान किया और यह राज्य मुझे दे दिया। जैसे आपने मुझे दिया उसी तरह मैं अब फिर आप को वापस दे रहा हूँ। अत्यन्त बलवान् बैल जिस बोझे को अकेला उठाता है,उसे बछड़ा नहीं उठा सकता उसी तरह मैं भी इस भारी भार को उठाने में असमर्थ हूँ। जैसे जलके महान् वेग से टूटे या फटे हुए बाँध को, जब कि उस से जल का प्रखर प्रवाह बह रहा हो, बाँधना अत्यन्त कठिन होता है. उसी प्रकार मैं आप के मार्ग का—रक्षणीय रक्षणरूपी कौशल का अनुकरणनहींकर सकता। महाबाहो! नरेन्द्र! जैसे घर के भीतर के बागीचे में एक वृक्ष लगाया गया, वह जमा और जमकर बहुत बड़ा हो गया, इतना बड़ा कि उस पर चढ़ना कठिन हो रहा था। उस का तना बहुत बड़ा और मोटा था तथा उसमें बहुत सी शाखाये थीं। उस वृक्ष में फूल लगें, परन्तु वह अपने फल नहीं दिखा सका था। इसी दशा में टूट कर धराशायी हो गया। लगाने वालों ने जिन फलों के उद्देश्य से उस वृक्ष को लगाया था, उनका अनुभव वे नहीं कर सके, यही उपमा उस राजा के लिये भी हो सकती है जिसे प्रजा ने अपनी रक्षा के लिये पाल पोस कर बडा किया और बड़े होने पर वह उन की रक्षा से मुहँ मोड़ने लगे। इस कथन का तात्पर्य आप समझें। यदि भर्त्ता हो कर भी आप हम भृत्यों का भरण-पोषण नहीं करेंगे तो आप भी उस निष्फल वृक्ष के समान ही समझे जावेंगे।

यावद्वावर्तते चक्रं यावती च वसुंधरा।
तावत् त्वमहि लोकस्य स्वामित्वमनुवर्तथै॥

रघुनन्दन! अब तो हमारी यही इच्छा है कि जगत् के सब लोग आप का राज्याभिषेक देखें। मध्याह्नकाल के सूर्य की भांति आप का तेज और प्रताप बढ़ता रहे।

जबतक नक्षत्रमंडल घूमता है और जबतक यह पृथ्वी स्थित है तब तक आप इस संसार के स्वामी बने रहें। भरत की यह बात सुन कर शत्रुवर्ग पर विजय पाने वाले भगवान् श्रीराम ने तथास्तु कहकर उसे मान लिया और वे एक सुन्दर आसन पर विराजमान हुए। अयोध्या में राजा दशरथ के मन्त्री पुरोहित-वसिष्ठ जी को आगे करके श्रीराम चन्द्र जी के राज्याभिषेक के विषय पर आवश्यक विचार करने लगे अशोक विजय, और सिद्धार्थ—ये तीनों मन्त्री एकाग्रचित हो श्रीराम चन्द्र जी के अभ्युदय तथा नगर की समृद्धि के लिये परस्पर मन्त्रणा करने लगे।

जैसे सहस्र नेत्रधारी इन्द्र हरे रंग के घोड़ों से जुते हुए रथ पर बैठकर यात्रा करते हैं, उसी प्रकार निष्पाप श्री राम एक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हो अपने उत्तम नगर की ओर चले। उस समय भरत ने सारथी बनकर घोड़ों की बागडोर अपने हाथों में ले रखी थी। शत्रुघ्न ने छत्र लगा रखा था और लक्ष्मण उस समय श्री राम चन्द्र जी के मस्तक पर चंवर झूला रहे थे। एक ओर लक्ष्मण थे और दूसरी ओर विभीषण खड़े थे। उन्होंने चन्द्रमा के समान कान्तिवाला दूसरा श्वेत चँवर हाथ में ले रखा था। उस समय आकाश में खड़े हुए ऋषियों तथा मरुद्गणों सहित देवताओं के समुदाय श्री राम चन्द्र जी के स्तवन की मधुर ध्वनि सुन रहे थे। तदनन्तर महातेजस्वी वानरराज सुग्रीव शत्रुञ्जय नामक पर्वताकार गजराज पर आरूढ़ हुए।

नव नाग सहस्राणि ययुरास्थाय वानराः।
मानुषं विग्रहं कृत्वा सर्वाभरणभूषिता॥

वानर लोग नौ हजार हाथियों पर चढ़ कर यात्रा कर रहे थे। वे उस समय मानवरूप धारण किये हुए थे और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित थे। पुरुष सिंह श्रीराम शङ्ख ध्वनि तथा दुन्दुभियों के गम्भीर नाद के साथ प्रासाद-मालाओं से समलंकृत अयोध्या पुरी की ओर प्रस्थित हुए।

अयोध्या वासियों ने अतिरथी श्रीरघुनाथ जी को रथ पर बैठ कर आते देखा। उनका श्री विग्रह दिव्य कान्ति से प्रकाशित हो रहा था और उनके आगे—आगे अनुगामी सैनिकों का जत्था चल रहा था। उन सबने आगे बढ़कर श्री रघुनाथ जी को बधाई दी और श्रीराम ने भी बदले में उनका अभिनन्दन किया। फिर वे सब पुरवासी भाईओं से घिरे हुए महात्मा श्री राम के पीछे-पीछे चलने लगे। जैसे नक्षत्रों से घिरे चन्द्रमा सुशोभित होते हैं उसी प्रकार मन्त्रियों, ब्राह्मणों तथा प्रजाजनों से घिरे हुए प्रभु श्री राम चन्द्र अपनी दिव्य कान्ति से उद्भासित हो रहे थे, श्रीराम चन्द्र जी अपने मन्त्रीयों से सुग्रीव की मित्रता, हनुमान् जी के प्रभाव तथा अन्य वानरों के अद्भुत पराक्रम की चर्चा करते जा रहे थे। वानरों के पुरुषार्थ और राक्षसों के बलकी बातें सुनकर अयोध्या वासियों को बड़ा विस्मय हुआ श्री राम ने विभीषण से मिलने का प्रसंग भी अपने मन्त्रियों को बताया। यह सब बता कर वानरों सहित तेजस्वी श्री राम ने हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों से भरी हुई अयोध्यापुरी में प्रवेश किया उस समय पुरवासियों ने अपने-अपने घर लगी हुई पताकाएँ ऊंची कर दीं, फिर श्री राम चन्द्र जी इक्ष्वाकु वंशी राजाओं के उपयोग में आये हुए पिता के रमणीय महल में गये।

प्रभु जानी कैकई लजानी।
प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोध बहुत सुख दीन्हा।
पुनि निज भवन गमन हरि कीन्हा॥
गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बुलाई।
आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन।
रामचन्द्र बैठहिं सिंघासन॥
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाए।
सुनत सकल विप्रन्ह अति भाए॥
कहहिं बचन मृदु बिप्र अनेका।
जग अभिराम राम अभिषेका॥
तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन सुनत चलेउ हरषाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत संवारे जाइ॥
जहं तहं धावन पठत् पुनि मंगल द्रव्य मगाइ।
हरष समेत वशिष्ट पद पुनि सिरुनायउ आइ॥
अब मुनिवर बिलंब नहि कीजै।
महाराज कहँ तिलक करीजै॥

अवध पुरी अति रुचिर बनाई ।
देवन्ह सुमन बृष्टि झरि लाई ।।
राम कहा सेवकन्ह बुलाई ।
प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ।।
सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए ।
सुग्रीव आदि तुरत अन्हवाए ।।
पुनि करुनानिधि भरतु हँकारे ।
निज कर राम जटा निरुआरे ।।
अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाईं ।
भगत बछल कृपाल रघुराई ।।
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई ।
सेष कोटि सत सकहिं न गाई ।।
पुनि निज जटा राम बिबराए ।
गुर अनुसासन मागि नहाए ।।
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे ।
अंग अनंग देखि सत लाजे ।।
सासुन्ह सादर जानकिहि मज्जन तुरत कराइ ।
दिव्य बसन बर भूषन अँग अँग सजे बनाइ ।।
राम बाम दिसि सोभति रमा रूप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरषीं जन्म सुफल निज जानि ।।
सुनु खगेस तेहि अवसर ब्रह्मा सिव मुनि बृंद ।
चढ़ि बिमान आए सब सुर देखन सुखकंद ।।
प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा ।
तुरत दिब्य सिंघासन मागा ।।
रबि सम तेज सो बरनि न जाई ।
बैठे राम द्विजन्ह सिरु नाई ।।
जनकसुता समेत रघुराई ।
पेखि प्रहरषे मुनि समुदाई ।।
बेद मंत्र तब द्विजन्ह उचारे ।
नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे ।।
प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा ।
पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा ।।
भूमि सप्त सागर मेखला ।
एक भूप रघुपति कोसला ।।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन ।
रहहिं एक सँग गज पंचानन ।।
खग मृग सहज बयरु बिसराई ।
सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई ।।
कूजहिं खग मृग नाना बृंदा ।
अभय चरहिं बन करहिं अनंदा ।।
सीतल सुरभि पवन बह मंदा ।
गुंजत अलि लै चलि मकरंदा ।।
लता बिटप मागें मधु चवहीं ।
मनभावती धेनु पय स्रवहीं ।।
ससि संपन्न सदा रह धरनी ।
त्रेतां भइ कृतजुग कै करनी ।।
प्रगटीं गिरन्ह बिबिध मनि खानी ।
जगदातमा भूप जग जानी ।।
सरिता सकल बहहिं बर बारी ।
सीतल अमल स्वाद सुखकारी ।।
सागर निज मरजादा रहहीं ।
डारहिं रत्न तटन्हि नर लहहीं ।।
सरसिज संकुल सकल तड़ागा ।
अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ।।

तत्पश्चात् जैसे आठ वसुओं ने देवराज इन्द्र का अभिषेक कराया था, उसी प्रकार वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, सुयज्ञ, गौतम और विजय—इन आठ मंत्रियों ने स्वच्छ एवं सुगन्धित जल के द्वारा सीता सहित पुरुषप्रवर श्री रामचन्द्र जी का अभिषेक कराया। सबसे पहले उन्होंने सम्पूर्ण ओषधियों के रसों तथा पूर्वोक्त जल से ऋत्विग् ब्राह्मणों द्वारा, फिर सोलह कन्याओं द्वारा, तत्पश्चात् मंत्रियों द्वारा अभिषेक करवाया। इसके बाद अन्यान्य योद्धाओं और हर्ष से भरे हुए श्रेष्ठ व्यवसायियों को भी अभिषेक का अवसर दिया। उस समय आकाश

में खड़े हुए समस्त देवताओं और एकत्र हुए चारों लोकपालों ने भी भगवान श्रीराम का अभिषेक किया।

सिंघासन पर त्रिभुअन साई।
देखि सुरन्ह दुंदुभीं बजाई॥

नभ दुंदुभीं बाजहिं बिपुल गंधर्व किन्नर गावहीं।
नाचहिं अपछरा बृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं॥
भरतादि अनुज बिभीषणनांगद हनुमदादि समेत ते।
गहें छत्र चामर ब्यजन धनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥
श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बर गात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोज नयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥
वह सोभा समाज सुख कहत न बनइ खगेस।
बरनहिं सारद सेष श्रुति सो रस जान महेस॥
भिन्न भिन्न अस्तुति करि गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद तब आए जहँ श्री राम॥
प्रभु सर्बग्य कीन्ह अति आदर कृपानिधान।
लखेउ न काहूँ मरम कछु लगे करन गुन गान॥
जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुज बल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जयप्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे॥
तव बिषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भव पंथ भ्रमत अमित दिवस निसि काल कर्म गुननि भरे।
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिबिधि दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमामहे॥
जे ग्यान मान बिमत्त तब भय हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइसुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जेहोइ रहे।
जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे।
जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनिपतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटककिन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

अब्यक्तमूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
षट कंध साखां पंच बीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल बिधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित संसार बिटप नमामहे॥
जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्य मन पर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जस नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं॥

तदनन्तर ब्रह्मा जी का बनाया हुआ रत्नशोभित एवं दिव्य तेज से देदीप्यमान किरीट, जिसके द्वारा पहले-पहल मनुजी का और फिर क्रमशः उनके सभी वंशधर राजाओं का अभिषेक हुआ था भांति-भांति के रत्नों से चित्रित, सुवर्ण निर्मित एवं महान् वैभव से शोभायमान सभाभवन में अनेक रत्नों ने बनी हुई चौकी पर विधिपूर्वक रखा गया। फिर महात्मा वसिष्ठ ने अन्य ऋत्विज ब्राह्मणों के साथ उस किरीट से अन्याय आभूषणों से भी श्री रघुनाथ जी को विभूषित किया। श्री रघुनाथ जी के राज्याभिषेकोत्सव के समय पृथ्वी खेती से हरी भरी हो गयी वृक्षों में फल आ गये और फूलों में सुगन्ध छा गयी।

ब्राह्मणों को एक लाख घोड़े, उतनी ही दुध देने वाली गौएँ तथा सौ सांड़ दान किये। यही नहीं, श्री रघुनाथ जी ने तीस करोड़ अशरफियां तथा नाना प्रकार के बहु मूल्य आभूषण और वस्त्र भी ब्राह्मणों में बाँटे।

अपने शत्रुओं का वध करके परम उदार महायशस्वी श्री रघुनाथ जी बड़े आनन्द से समस्त राज्य का शासन करने लगे। उन धर्मवत्सल श्री राम ने धर्मज्ञ लक्ष्मण से कहा।

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां
गां पूर्वराजाम्युषितां बलेन।
तुल्यं मया त्वं पितृभिर्धृता या
तां यौवराज्ये धुरयुद्वहस्य॥

धर्मज्ञ लक्ष्मण पूर्ववर्ती राजाओं ने चतुर-

ङ्गिणी सेना के साथ जिस का पालन किया था, उसी इस भूमण्डल के राज्य पर तुम मेरे साथ प्रतिष्ठित होओ। अपने पिता, पितामह, और प्रपितामहों ने जिस राज्य भार को पहले धारण किया था, उसी को मेरे ही समान तुम भी युवराज पद पर स्थित होकर धारण करो।

सर्वात्मना पर्यनुनीय मानो
यदा न सौमित्रिरुपैति योगम्।
नियुज्यमानो भुवि यौवराज्ये
ततोऽभ्यषिञ्चद भरतं महात्मा॥

परन्तु श्री राम जी के सब तरह से समझाने और नियुक्त किये जाने पर भी जब सुमित्रा कुमार लक्ष्मण ने उस पद को नहीं स्वीकार किया, तब महात्मा श्री राम ने भरत को युवराज पदपर अभिषिक्त किया।

राम दरबार लगा। आज पुरस्कार वितरण होगा। वानर दल को सेवा का मेवा मिलेगा। सर्विसिज की नीलामी बोली जायेगी। Freedom Fighters को जागीर, जमीन, पैन्शन बांटी जायेगी। सब को कुछ न कुछ मिला लंका का राज्य, युवराज्य, किष्किन्धा का राज्य, किष्किन्धा का यौबराज्य, फूड मिनिस्टर, एयर मिनिस्टर, ओयाअल मिनिस्टर, रेल मिनिस्टर, रोड मिनिस्टर, माल मिनिस्टर, स्टट मिनिस्टर, डैपुटी मिनिस्टर. मिनिस्टर विदौट पोर्ट फोलियो सभी को कुछ न कछ मिला—अब बारी थी बजरंग बली की, स्पैशियल प्राईज—श्रीराम बोले—

प्रयच्छ सुभगे हारं येन तुष्टासि भामिनी॥

सीते! जिस वीर की सेवाओं से तुम बहुत प्रसन्न हो यह हार उन्हें इनाम में दे दो।

सीता जी ने वह हार हनुमान् को दे दिया। रामायणकार लिखते हैं—बजरंगबली ने हार नहीं लिया, बोले! मां—मैं अपनी सेवाओं का बदला नहीं चाहता। इस हार के लिये मैंने राम की सेवा नहीं की थी—मैंने सेवा की थी, केवल सेवा के लिये Service only for service

यह है आदर्श हमारे Freedom Fighters का। यही कारण है? आप अयोध्या जी में जाएये—सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जामवन्त, गयन्द किसी का भी आपको मन्दिर नहीं मिलेगा, सेवा तो राम की सभी ने की थी, विभीषण, सुषेण सभी ने अपने-अपने स्थान पर रहते यथा-योग्य अपने कर्त्तव्य को निभाया था,—परन्तु अयोध्या में तो क्या समूचे देश भर में उनका एक भी मन्दिर नहीं। मन्दिर तो क्या किसी मन्दिर में पार्ट-टाईम भी नहीं। आप श्री अवध में जाइये, राम जी का मन्दिर, बड़ी कठिनाई से ढूंढते-ढूंढते आपको मिलेगा—परन्तु हनुमान जी का मन्दिर, इतना ऊंचा, इतना भव्य, इतना महान् दो-तीन मील की दूरी से ही आप को आंखों के सामने अपनी प्रतिभा को प्रकाशित करने लग जायेगा।

देश को आजादी उन्होंने नहीं दिलवाई जो अंग्रेज की जेल में स्पैशियल क्लासों में मौज उड़ाते रहे, देश को आजादी दिलवाई रामप्रसाद बिस्मिल, चन्द्र शेखर आजाद, खुदी राम बोस, कन्हाई लाल दत्त, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, ऊधम सिंह, मदन लाल ढिंगरा, रास बिहारी बोस। सुभाष चन्द्र बोस के बलिदान ने—

दिल फिदा करते हैं, कुरबान जिगर करते हैं।
पास जो कुछ भी है माता की नजर करते हैं॥
सूख जाए न कहीं पौदा यह आजादी का।
खून से अपने इसे इस लिए तर करते हैं॥
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।
जा के आबाद करेंगे किसी वीराने को॥
नौजवानो जो तबीयत में तुम्हारे खटके।
याद कर लेना कभी हमको भी भूले-भटके॥
बदन के इक्‍कू जुदा होवें जभी कट-कट के।
और सर चाक हो माता का कलेजा फटके॥
पर न माथे पे शकन आए कसम खाने को।

अब तो बस बांध चुके अपने गले में झोली ॥
एक होती है फकीरों की हमेशा बोली ।
खून से फाग मनायेगी हमारी टोली ॥
जब से बंगाल में खेले हैं कन्हैया होली ।
कोई उस दिन से नहीं पूछता बरसाने को ॥
सर फिरोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है ।
देखना है जोर कितना बाजुए कातिल में हैं ॥
वक्त आने दे बता देंगे तुझे अय आसमाँ ।
हम अभी से क्या बतावें क्या हमारे दिलमें है॥

यह थे राम प्रसाद विस्मिल के वे अन्तिम उद्गार जिन्होंने गुलामी को जंजीरों को तोड़ डाला ।

गान्धी के बहुरूपिये चेले, दूध पीने वाले मजनं भले ही आज अपने को फीडम फाईटर कह-कह कर संसार की आंखों में धूल डालने का यत्न करें परन्त सत्य यह है, कि आजादी मिली,वीर सावरकर,लोकमान्य तिलक,चन्द्रशेखर श्रद्धानन्द, मालवीय जी, भाई परमानन्द के तप और त्याग से । कामागाटा मारू के शहीदों ने, बबर अकालियों ने और अन्तिम चोट लगाई बरतानवी साम्राज्यवाद पर नेता जी सुभाषचन्द्र बोस ने ।

२६ जनवरी १९४१ को संसार यह जान कर स्तम्भित रह गया, सुभाष कहीं अन्तर्ध्यान हो गये । वे उन दिनों अपने घर में नजरबन्द थे। घर पर गुप्तचरों का कड़ा पहरा रहता। कुछ ही दिन हुए वे लम्बे अनशन के पश्चात अलीपुर जेल से छूटे थे। एक दिन उसकी आंखों में धूल झोंक कर वीर सूरमा दाढ़ी वाले पठान का वेश बना कर घर से निकल पड़ा । पेशावर के पठान अपनी जान लड़ा कर भी उन्हें भारत की सीमा के बाहर पहुंचा देने पर तुले हुए थे। उन्हें सफलता हुई और नेता जी कुशलपुर्वक जर्मनी जा पहुंचे ।

सुभाष की स्पेशल ट्रेन आ गई । भारत का लाल हैम्बर्ग के प्लेट फार्म पर उतरा। लार्ड मेयर ने उसके हाथ में गुलदस्ता भेंट किया। लाखों की भीड़ उस युग-पुरुष का स्वागत करने के लिए बाहर खड़ी थी 'लौंग लिव सुभाष चन्द्र बोस दि फुहरर आफ इण्डिया' जय-घोष से हैम्बर्ग का स्टेशन गूंज उठा । भारतीय नेता का जलूस निकाला गया जो पीछे सभा के रूप में परिवर्तित हो गया। सभा मण्डप पर स्वास्तिक के साथ "विजयी विश्व तिरंगा प्यारा" फहरा रहा था। बन्दे मातरम् गाया गया । अभिनन्दन पत्र पढ़ा गया। सुभाष ने उत्तर दिया ! एवं करतल ध्वनि के बीच घोषणा की—मैं मोर्चे की स्थिति देखना चाहत हूं । मैं मोर्चे पर जाऊंगा। ५८'५ शौर्ट वेव स्टेशन से एक आवाज आई—'हैलो इण्डिया ! मैं सुभाष चन्द्र बोस बरलिन से बोल रहा हूं—ब्रिटिश सरकार को छः महीने का अल्टीमेटम दे दो ।" देश की जान में जान आई। उनका प्यारा नेता विदेश में अपने देश की स्वाधीनता का यज्ञ रचाने लगा था ।

२५ अगस्त १९४३ को नेता जी नें आजाद हिन्द फौज की कमान सम्भाली । उस समय अपना वक्तव्य देते हुए नेता जी ने कहा—"आज मैं फौज की कमान अपने हाथ में लेता हूं। मेरे लिये सचमुच यह बड़े गौरव की बात है। एक भारतीय के लिये और अधिक सम्मान की बात क्या हो सकती है कि वह अपने देश को आजाद कराने वाली सैना का सैनापति बनें। संसार की कोई भी ताकत हमें अपने जन्म सिद्ध अधिकारों से वञ्चित नहीं रख सकती । "चलो दिल्ली' के नारे लगाते हम आगे बढ़ते ही जायेंगे और तभी दम लेंगे जब नई दिल्ली में वायसराय भवन पर जाकर अपना तिरंगा झण्डा फहरायेंगे और दिल्ली के लाल किले में जा कर विजय परेड़ करेंगे ।"

"आजादी तुम्हारे सर्वस्व का बलिदान

मांगती है। उसके द्वार पर तुम्हें अपना सब कुछ बलिदान देना होगा—सब कुछ! अपना धन, अपनी बुद्धि, अपने प्राण, अपना सर्वस्व! तुमने अभी तक बहुत कुछ दिया है। सोने के कोष, फड़कती भुजायें, धड़कते हुए दिल। मगर स्वतन्त्रता की देवी इतने से सन्तुष्ट न होगी। आजादी को आज अपने हाथ से शीश चढ़ाने वाले पागल भक्तों की जरूरत है। स्वाधीनता संग्राम में जीत खून की बून्दों से लिखी जाएगी। मैं तुम से वायदा करता हूं—तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूंगा।"

नेता जी ने धन की मांग की, बस फिर क्या था। लगी डालरों की वर्षा होने। १० करोड़ !!! ७० लाख तो तत्काल सभा में ही हो गये। एक वोहरा करोड़पति ने अपना सब कुछ दे दिया। २४ घण्टे में १ करोड़ २० लाख तक पहुंच गये। एक सप्ताह में १० करोड़ डालर हो गये। दक्षिण पूर्वी एशिया वासियों के लिये नेता जी मनुष्य न थे, वे उनके लिए अवतारी पुरुष थे।

नेता जी का पुष्पहार नीलाम हो रहा है। कौन लेगा ? एक पंजाबी युवक ने बढ़कर कहा—एक लाख ! बोलियां बोली गईं—सात लाख तक युवक घबराया, कब तक बोलता रहे ? वह मंच की ओर बढ़ा और कांपते हुए स्वर में उसने कहा—'इस हार के लिए मैं अपना सर्वस्व दे रहा हूं,' नेता जी ने उसे अपने हाथों का सहारा देकर ऊपर उठाया एवं गद्‌गद् कण्ठ से कहा—हार बिक गया, भारत को तुम्हारे ही जैसे सपूतों की जरूरत है।'

सुभाष का जन्म दिन है। जनता उन्हें सोने से तोलेगी, चांदी से तोलेगी, हीरों से तोलेगी। इकट्ठी दौलत से वह तलवार बनेगी, जिससे मां के बन्धनों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये जावेंगे। युवतियों को अपने भाई पर गर्व था, वृद्धाओं को अपने लाल पर। अपने आभूषण लिये वे दौड़ीं जहां सुभाष थे। शंख बजा एवं एक गुजराती माँ ने तुला पर सोने की पांच ईंटें रख दीं—सारी सम्पत्ति रख दी। अनेक नारियों ने अपने गहने चढ़ाये, पर तुलादण्ड बराबर न हुआ। पति-वियोग से सिसकती एक देवी ने अपना शीशफूल चढ़ाया, पर तुलादण्ड न माना। इतने में एक वृद्धा ने अपनी छाती से चिपकाये हुए एक चित्र को जमीन पर दे मारा, यह उसके मृत पुत्र का चित्र था, फ्रेम पलड़े पर चढ़ा और वह देखो, तुला-दण्ड बराबर हो गया। यह था सुभाषबाबू का जादू, स्वर्ग में बैठे देवताओं को भी ऐसे भाग्य पर ईर्षा होती होगी। उस समय नेता जी ने भाषण देते हुए कहा—

"हम आज अपनी मातृ भूमि से दूर हैं। नीड़ विहीन पक्षी की तरह हम अनन्त व्योम में मंडरा रहे हैं। लेकिन एक बार फिर हमें अपनी मातृ-भूमि में जाना है। हमारी जननी हमें बुला रही है देश के कोने-कोने से सिन्धु, गंगा, और रेवा के तट से चालीस करोड़ आवाजें हमें एक साथ पुकार रही हैं। अब हम नहीं रुकेंगे। खून ने खून को पुकारा है। माता ने अपनी रूठी निर्वासित सन्तानों को पुकारा है। शत्रु की पंक्तियों को चीर कर आप को अपने देश पहुंचना है। आजादी या मौत। या तो हमें अपना तिरंगा झण्डा फहराते हुए दिल्ली के लाल किले पर विजय प्राप्त करनी है या रणभूमि में जान दे देनी है। दिल्ली का मार्ग स्वतन्त्रता का मार्ग है। दिल्ली चलो !!

उस विद्रोह देवता की आज भी घर-घर में चर्चा है। उस का नाम लेते ही कोटिशः

नवयुवकों के हृदयों में उमंगों का तूफान उठ खड़ा होता है। उसके अनुपम बलिदान की गौरव गाथा ने उसकी प्राणों से भी प्यारी मातृ-भूमि के नाम को संसार के कोने-कोने में उज्वल किया है। उसका नारा आज उसके अपने देश के बच्चे बच्चे की जबान पर है। उसका देश उसकी विजय-यात्रा के गीत गाता फूला नहीं समाता। समूचा हिंदुस्तान उसकी राह में आंखें बिछाये हुए है। पता नहीं, कोटि-कोटि भारतीयों के दिलो-दिमाग पर छाया हुआ वह आजादी का मसीहा किस दिन अपना रण-विषाण बजाता हुआ अंशुमाली की किरणों पर चढ़ा आ जाए। अपने देश और जाति की सेवा में अपना सर्वस्व लुटाने वाला सुभाष, रात दिन अपनी प्यारी भारत माता के ही गीत गाने वाला सुभाष, चालीस करोड़ हृदयों की आशाओं और आकांक्षाओं का केन्द्र सुभाष, सर पै कफन बांध कर शहीदों की जमात बांधने वाला सुभाष, जो कुछ भी हो, वह जहाँ कहीं भी हो, उसकी आत्मा हमारे बीच विद्यमान है, वह हमें बल दे रही है, प्रेरणा दे रही है, उत्साह दे रही है।

बन्दौ श्री सुभाष बोस भारत भय हारी।
प्रतिभा के पूर्ण रूप, महिमा तव अति अनूप।
भारत-जन हृदय भूप युवक मनहारी॥
तन मन धन और प्राण, देश हित किये दान।
जग में कौन तव समान, तेज-पुंज धारी॥
दीनन हित हृदय तोर, तुम हो चन्द्र जग चकोर।
शत्रुन प्रति कठोर घोर, पुरुष अवतारी॥
लोक प्रेम में प्रमत्त, भारत सेवानुरक्त।
विषय रस विरक्त भक्त नेता अधिकारी॥
भय को नहीं तनिक लेश, ऐसो तेरो वीर वेश।
भारत हित सहे क्लेश, अमर पद विहारी॥
नेतावार तव कीर्ति गान, कहं लगि गावें बखान।
लखित नाहीं तव समान, भारत-ताप-हारी॥

रामचरितमानस चतुः शताब्दी के इस पवित्र दिव्य पर्व पर हम उस प्रातः स्मरणीय राष्ट्र पुरुष गोस्वामी तुलसी दास के श्री चरणों में अपनी पुष्पाञ्जली श्रद्धाञ्जली-समर्पित करते हैं। हमारे देश के सन्त स्वयं संसार में जैसे भी रहे हों परन्तु अपने पीछे आने वाली सन्तान को उन्होंने सदैव कर्मयोग का उपदेश दिया। कृष्ण ने अर्जुन को कहा, तुम्हें युद्ध करना ही होगा। विश्वामित्र बोले, राम ! तुम्हें ताड़का का वध करना ही होगा। तुकाराम बोले, शिवा ! तुम भी यदि खड़तालें हाथ में ले नाचने लग गये तो गो-ब्राह्मण की रक्षा कौन करेगा। गुरु गोविन्द सिंह का वीर वन्दा वैरागी के प्रति ऐसा ही सन्देश था। यही सन्देश विरजानन्द ने दयानन्द को दिया था, रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानन्द को दिया था, स्वामी राम तीर्थ ने भारतीय राष्ट को यही कर्मयोग का सन्देश दिया था—और यही सन्देश व्यक्ति निर्माण का सन्देश श्री गोस्वामी तुलसी दास ने रामचरितमानस द्वारा हम सब को दिया। वालमीकि के ऐतिहासिक पुरुष राम को गोस्वामी तुलसीदास ने राष्ट्र पुरुष राम के रूप में हमारे सामने उपस्थित किया। राम लीला आज भी हो रही है, चार बार हो चुकी है, पांचवीं बार फिर होने वाली है। केवल पात्र बदले हैं, दिशा बदली है, लंका का स्थान पाकिस्तान ने लिया है, रावण का स्थान भुट्टो ने, कुम्भकरण का स्थान टिक्काखां ने। आओ हम स्वयं राम बनें, महावीर बनें और पृथ्वी के वर्तमान रावण को ऐसे ही समाप्त कर दें जिस प्रकार रामचरितमानस के राम ने अपने समय के रावण को सदैव के लिए समाप्त कर दिया था।



(१)

श्रीकृष्ण चरित्र भागवत सप्ताह

अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान् भूतभावनः ।
कृतवान् यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥

रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः सङ्कर्षणस्त्वया ।
देवक्या गर्भसम्बन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥

कस्मान्मकुन्दो भगवान् पितुर्गेहाद् व्रजं गतः ।
क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान् सात्वतां पतिः ॥

व्रजे वसन् किमकरोन्मधुपुर्यां च केशवः ।
भ्रातरं चावधीत् कंसं मातुरद्धात दहणम् ॥

देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ।
यदुपुर्यां सहावात्सीत् पत्न्यः कत्यभवन् प्रभोः ॥

एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्ण विचेष्टितम् ।
वक्तु मर्हसि सर्वज्ञ श्रद्धधानाय विस्तृतम् ॥

श्री शुक उवाच —

सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ।
वासुदेव कथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥

गौर्भूत्वाश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ।
उपस्थितान्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत ॥

वसुदेवगृहे साक्षाद् भगवान् पुरुषः परः ।
जनिष्यते तत्प्रियार्थं सम्भवन्तु सुरस्त्रियः ॥

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणम् चतुर्भुजं शङ्खगदायुदायुधम् ।
श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥

स विस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानक दुन्दुभिस्तदा ।
कृष्णावतारोत्सवसम्भ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥

प्रिय बहनो एवं भाइयो! रामायण तो आपने सुन ली, अब हम आपको कृष्णायन सुनाते हैं। रामायण तो आपने कई बार सुनी होगी मैंने भी सुनाई, परन्तु महाभारत की चर्चा बहुत कम होती है। महाभारत का नाम सुनकर ही लोग घबड़ा उठते हैं। लोगों का आम ख्याल है कि जहां महाभारत की कथा हुई वहीं महाभारत हुई। फिर भी मैंने सोचा है आपको कृष्ण-चरित्र सुनाऊं। कृष्ण चरित्र तीन प्रकार का है,—एक तो कृष्ण हैं महाभारत के, दूसरे कृष्ण हैं श्री मद्भगवत्गीता के और तीसरे कृष्ण हैं श्रीमद्भागवत के। कृष्ण तो एक ही है परन्तु एक ही कृष्ण के तीन रूप हैं,—योगीश्वर कृष्ण, योगेश्वर कृष्ण और लोकेश्वर कृष्ण। पुराणों के कृष्ण लोकेश्वर कृष्ण हैं, महाभारत के कृष्ण योगेश्वर कृष्ण हैं और गीता के कृष्ण योगीश्वर कृष्ण हैं। कृष्णायन की आपके सामने व्याख्या करते हुए हम एक ही कृष्ण के तीनों स्वरूप अच्छी तरह आपके सामने उपस्थित करेंगे।

पुराणों का नाम सुनते ही कुछ लोग घबरा उठते हैं। उनके दिल और दिमाग पर किसी ने यह वात अंकित कर दी है, जो सहज में मिटने नहीं पाती, कि पुराणों की बातें वेद विरुद्ध हैं। यद्यपि स्वयं पुराणकार लिखते हैं,—जो श्रुति से प्रत्यक्ष विरोध है उसे प्रमाण नहीं माना जाता। जो वेदोक्त धर्म का त्याग करके दूसरे को प्रमाण मानकर व्यवहार करता है, उसे शिक्षा देने के लिये यमलोक में वहुत से नर्ककुण्ड बने हुए हैं। श्रुति और स्मृति दो नेत्र हैं, पुराण हृदय हैं। श्रुति-स्मृति दोनों में विरोध होने पर श्रुति ही श्रेष्ठ मानी जाती है।

पुराण शब्द इतना ही पुराना है जितना कि वेद। पुराण शब्द वेद में भी आया है। शतपथ ब्राह्मण में भी पुराण की महिमा का वर्णन है।

रामायण में भी पुराणों की महिमा का वर्णन है :—

वेद पुराण बसिष्ठ बखानहिं।
सुनहिं राम जदपि सब जानहिं॥

गुरु नानक देव जी भी कहते हैं :—

स्मति शास्त्र वेद पुरान।
पारब्रह्म का करें बखान॥

पुराणों के एक-एक पृष्ट पर भारतीय संस्कृति मुखरित होती है। पराणों से प्रेरणा प्राप्त करके ही अभी तक हमारी भारतीय संस्कृति जीवित रह पाई है।

पुराण कल्याण के मूल स्त्रोत हैं। इनमें अतुल ज्ञान-वैराग्य तथा सात्विक सिद्धियों का भण्डार भरा है। भारतीय वाङ्मय में पुराणों का विशिष्ट स्थान है। पुराण ही हिन्दू-धर्म के प्राण हैं, यदि यह कहा जाये तो अत्योक्ति नहीं। ये तो निर्विवाद सत्य है, इतना सत्य है जितना स्वयं सत्य-शब्द सत्य है कि भारत की कर्म, ज्ञान और भक्ति साधनाओं का मल स्रोत वेद ही हैं। वेद अपौरुषेय, नित्य और स्वयं भगवान् ब्रह्माण्डनायक की शब्दमयी मर्ति है। परन्तु जिस प्रकार भिन्न भिन्न मनुष्यों के शारीरिक स्वास्थ्यके अनुसार उनके भोजन भिन्न-भिन्न हैं, उसी प्रकार आयात्मिक भोजन भी सब का एक नहीं। स्कूलों-कालिजों में भिन्न भिन्न श्रेणियां हुआ करती हैं। सभी श्रेणियों की पुस्तकें भी भिन्न-भिन्न हुआ करती हैं। पुराण प्रारम्भिक श्रेणी वालों के लिये हैं और वेद उनके लिये हैं जिनकी विद्या चरम सीमा को पहुंच चुकी है।

वेद मन्त्ररूप में हैं। वेद रूपी मन्त्रों की पुराण व्याख्या हैं। पराण वेद का ही सचित्र, सजीव

व्यवहारिक रूप हैं। जिस मन्त्र के जो ऋषि हैं, पुराणकारों ने अपने ढंग पर उन्हीं ऋषियों की वाणी का शब्द चित्र खींच दिया है।

पुराणों के मूल लेखक हैं व्यास, जिन के चरित्र पर किसी प्रकार का भी सन्देह करना मानों स्वयं अपने अन्तः करण की पवित्रता पर ही सन्देह करना है। वैशम्पायन, पैल, जैमिनी आदि व्यास-शिष्यों के सम्बन्ध में भी सन्देह की भावना जागृत नहीं की जा सकती। शेष जिन महानुभावों ने पुराण ग्रन्थों में अपनी कविताओं का चमत्कार दिखाया, जिन्होंने पुराण ग्रन्थों का विस्तार किया, वे कौन थे, उनका नाम धाम हम कुछ नहीं जानते, फिर हम कैसे कहें कि पुराण ग्रन्थों में मिलावट किस की ओर से हुई। किसी के नाम—धाम-कुल गोत्र का पता चले तो आगे उस की कुलपरम्परा के अनुसार उसकी भावनाओं का भी विश्लेषण करें।

पुराण ग्रन्थों में अपनी रचनाओं का समावेश करने वाले वे महानुभाव कोई भी हों परन्तु उनके द्वारा किये गये त्याग की भावना की तो हमें सराहना करनी ही होगी। उन्होंने अपने नाम की कोई इच्छा नहीं की, जो कुछ उन्होंने किया अच्छा था अथवा बुरा सब व्यास नाम के अर्पण कर दिया।

पुराणग्रन्थों के रचयिता हैं व्यास और श्रोता हैं परीक्षित; जिनके सिर पर मौत की तलवार लटक रही हो उन्हें क्या वासनायें सूझा करती हैं?

पुराण ग्रन्थों के नायक हैं महा योगेश्वर गीता के गायक भगवान् श्रीकृष्ण, जिन्होंने विधि पूर्वक विवाह करने के पश्चात् भी बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया, उपनायक हैं वीरवर अर्जुन जिन्होंने इन्द्र के अखाड़े की परमसुन्दरी अप्सरा उर्वशी के प्रेम को ऐसे ठुकरा दिया जैसे कोई अपने रासते में पड़ी ईंट को ठुकरा देता है।

रचयिता भी महान्, व्याख्याता भी महान्, नेता भी महान्, उपनेता भी महान्, श्रोता भी महान् और वक्ता……महामुनि शुकदेव, परमवीतराग—जिन्होंने जन्मते ही वनों का मार्ग अपनाया। जिन्हें स्त्री एवं पुरुष के भेद तक का ज्ञान नहीं था। शुक-रम्भा सम्वाद तो विश्व भर में प्रख्यात है, कितने महान् थे भगवान् शुकदेव… इन्द्र के अखाड़े की परमसुन्दरी अप्सरा उस स्थान पर आई, कामनाओं से भरपूर, वासनाओं से परिपूर्ण—वह वहाँ पहुंची जहां परम वीतराग मुनिवर शुकदेव तपस्या में मग्न थे। आते ही रम्भा ने अपना राग अलापना शुरू किया।

पीनस्तनी चंदन चर्चिताङ्गी
विलोलनेत्रा तरुणी सुशीला।
नालिङ्गितो प्रेम भरेण येन
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम्॥

शुकदेव जी ने सुना नहीं, परन्तु वह कामविह्वला अप्सरा कहां पीछा छोड़ने वाली थी, अपने तरकश से उसने एक दूसरा तीर निकाला।

कामातुरा पूर्णशशाङ्कवक्त्रा
बिम्बाधरा कामलतेव गौरी।
नालिङ्गिता स्वे हृदये भुजाभ्याम्
वृथा गतम् तस्य नरस्य जीवनम्॥

अर्थात्—परमसुन्दरी षोडषी सोलह श्रृङ्गार किये स्वयं स्वेच्छा पूर्वक जिस नवयुवक को अपना सर्वस्व समर्पित कर रही हो—परन्तु वह नवयुवक उस के इस प्रणयोपहार को ठोकर मार दे—ऐसे नवयुवक का जीवन बिल्कुल व्यर्थ है।

शुकदेव जी की चेतना भंग हुई। रम्भा की

ओर उन्हों ने क्षण भर के लिये दयापूर्ण दृष्टि उठाई और बोले—देवी !

अचिन्त्यरूपो भगवान्निरञ्जनो
विश्वम्भरो ज्योतिमयश्चिदात्मा ।
न भावितो येन हृदि क्षणं वा
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।।
नारायणः पङ्कजलोचनः प्रभु
केयूरहारैः परिशोभमानः ।
भक्तया युतो येन सुसेवितो न हि
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।।

अरी रम्भे ! सुन, जिसने मानव देह पा कर अपने उस जगन्नियन्ता का सिमरण नहीं किया, उस सच्चिदानन्द स्वरूप को अपने हृदय में स्थान नहीं दिया , उस का जन्म समझो व्यर्थ है ।

परन्तु रम्भा निराश नहीं हुई; वह फिर बोली ।

ताम्बूलरागः कुसुम प्रकीर्णा
सुगन्धितैलेन सुवासितायाः ।
नामर्दितौ गृह्य कुचौ निशायाम्
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।।

परन्तु वह छोकरी अपने पूरे हाव भाव दिखाकर भी शुकदेव को अपने स्थान से च्युत न कर सकी । शुकदेव जी बोले—

विश्वंभरो ज्ञानमयः परेशो
जगन्मयोऽनन्तगुण प्रकाशः ।
आराध्ययेनैव धृतो न योगे
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।।
श्रीवत्सल मक्ष्मी कृत हृत्प्रदेशे
स्ताक्ष्यंध्वजश्चक्रधरः परात्मा ।
नासेवितोयेन क्षणं मुकन्दो
वृथा गतं तस्य नरस्य जीवनम् ।।

अब वह छोकरी शुकदेव जी के सामने टिक न सकी—भाग गयी । ऐसे थे महान् विजेता श्री शुकदेव, पुराणों के वक्ता ।

पुराण गिनती में अठ्ठारह हैं और अठ्ठारह ही उपपुराण हैं । इन अठारह पुराणों में बड़ा कौन है छोटा कौन है, इस प्रकार की तुलना व्यर्थ है, क्योंकि सम्पूर्ण पुराणों में देवत्रयी तथा उनकी शक्तियों की महिमा का वर्णन ही है ।

पुराण की महिमा गाते हुए शास्त्र में लिखा है—

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्च लक्षणम् ।।
सृष्टिश्चापि विसृष्टिश्च स्थितिस्तेषां च पालनम
कर्मणावासना वार्ता मनुनान्तु क्रमेण च ।।
वर्णनं प्रलयानां च मोक्षस्य च निरूपणम् ।
उत्कीर्तनं हरेरेव देवानाञ्च पृथक् पृथक् ।।

मूलसृष्टि, विस्तृत सृष्टि, संसार की स्थिति का वर्णन मनुओं का क्रम, प्रलय का वर्णन, मोक्ष का वर्णन, भगवान् श्री हरि का कीर्तन, देवताओं का पृथक-पृथक वर्णन, कर्मों की उपासना, ये हैं पुराणों का मुख्य विषय ।

पुराणों का मुख्यतम विषय भगवान् श्री कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन है। नैमिषारण्य में महात्मा शौनकादि ब्रह्मवादी मुनि मुक्ति की इच्छा से तपस्या में मग्न थे । वे सच्चे सन्त थे और सत्यस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति के लिये पुरुषार्थ करते थे । वे समस्त कामनाओं का त्याग करके सर्वथा निष्पाप हो गये थे । काले मगचर्म के चादर ओढ़े, सिर पर जटा बढ़ाये तथा निन्तर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए वे महर्षि-गण उस परब्रह्म परमात्मा का यज्ञ तथा कीर्तन करते थे । इसी पवित्र नैमिष के तपोवन में ऐसी परम पवित्र आत्माओं के सम्मुख सूत जी ने पुराणों का प्रकाश किया ।

पुराणों के वक्ता हैं शुकदेव जी । कितने

महान् थे शुकदेव । पिता-पुत्र दोनों गंगा के किनारे किनारे जा रहे थे। नवयुवतियां घाट पर नहा रही थीं। आगे-आगे जा रहे थे शुकदेव जी और पीछे-पीछे जा रहे थे कृष्ण द्वैपायन। शुक देव जी से लड़कियों ने कोई परदा नहीं किया परन्तु व्यास जी को देखते ही कन्याएं लज्जित हो गईं और वस्त्रों से अपने शरीर को ढांक लिया। व्यास जी ने पूछा,—पुत्रियो ! जब मेरा इक्कीस वर्ष का नवयुवक पुत्र यहां से गुजरा तुम ने उसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। जब मैं तुम्हारे दादा-परदादा के बराबर तुम्हें दिखाई दिया, तुम अपने कपड़ों की ओर लपकीं। कारण क्या है ? कन्याएं बोलीं,—दादा ! तुम्हें स्त्री और पुरुष के भेद का पता है ओर शुकदेव जो उस हद तक पहुंच चके हैं जहां उन्हें स्त्री और पुरुष के भेद तक का ज्ञान नहीं हैं। इतने महान् थे पुराणों के वक्ता।

मैं उनको सुना रहा हूं, जिन्हें भगवान् कृष्ण की बाल-लीला में अश्लीलता नजर आ रही हैं। मैं इस सम्बन्ध में थोड़ा सा प्रकाश डाल देना चाहता हूं। राधा और कृष्ण की लीला किसी स्त्री और पुरुष की लीला नहीं है। लीला प्रकृति और पुरुष की लीला है, शक्ति और शक्तिमान् की लीला है। राधा और कृष्ण का युगल स्वरूप अलौकिक और नित्य है इसमें मानुषीय स्त्री-पुरुष की भावना बिल्कुल नहीं है। श्री कृष्ण आनन्द, ज्ञान, रस, चैतन्य स्वरूप हैं। श्री राधा इच्छा, कृति, एवं भावना का स्वरूप है। भगवान स्वयं कहते हैं—

यथा क्षीरे च धावल्यं यथाग्नौ दाहका सती।
पृथिव्यां च यथा गन्धा तथा त्वमहम् वर्तमनि ॥

हे राधे ! जिस प्रकार दूध में सफेदी है, जिस प्रकार अग्नि में उष्णता है, जिस प्रकार पृथ्वी में गन्ध है, उसी प्रकार मेरा और तुम्हारा सम्बन्ध है, जिस प्रकार लकड़ी के बिना बढ़ई तख्त नहीं बना सकता, जिस प्रकार मिट्टी के बिना कुम्हार घड़ा नहीं बना सकता, जिस प्रकार स्वर्ण के बिना स्वर्णकार आभूषण नहीं बना सकता, उसी प्रकार तुम्हारे बिना मैं सृष्टि रचना नहीं कर सकता।

सीता की तरह राधा का विवाह कृष्ण से कभी हुआ नहीं। राधा-कृष्ण तत्व में विवाह की आवश्यकता नहीं। वह तो दिव्य चिन्मय साम्राज्य की लीलामात्र है।

एक बात और भी विचारणीय है। हिन्दू संस्कृति में आपको कितने हो राधा-कृष्ण मिलेंगे कितने ही राधा-रामभी मिल जायेंगे। लोग बड़े शौक से आज भी अपने पुत्र का नाम राधाराम रखते हैं, लेकिन कोई भी हिन्दू अपने पुत्र का नाम सीता-कृष्ण नहीं रखता।

गोपी और कृष्ण का प्रेम यदि वासनामय होता तो गोपियां कितनी हो बार मथुरा जा सकती थीं और कृष्ण भी पता नहीं कितनी बार वृन्दावन आ जा सकते थे। मथुरा एवं वृन्दावन के बीच में कोई समुद्र नहीं था, न कोई हिमालय पर्वत था, न ही कोई हिन्दुस्थान और पाकिस्तान के बोच में पासपोर्ट वीसा सिस्टम था। मथुरा में एक बार आ कर कृष्ण कभी वृन्दावन नहीं गए। वे मथुराधोश थे। मथुरा में गोपी नगर बसाकर गोपियों को एलाट कर सकते थे परन्तु कृष्ण ने ऐसा नहीं किया। एक बार अपना प्रतिनिधि बनाकर उद्धव को जरूर वृन्दावन भेजा। उद्धव जी गये, गोपियों को यमुना की रेत में बिठा लिया और लगे उपदेश देने।

कृष्ण को भूल जाओ, वह तुम्हारा था हा नहीं, अब वह यहां नहीं आयेगा।

गोपियों का कृष्ण के प्रति कितना पवित्र

प्रेम, गोपियां बोलीं—उद्धव !—

जो मथुरा प्रभु जाइ बस्यो,
हमरे हिय में बसि मूरति सोउ ।
उधो यही सुख एक हमें,
रु नीक रहें इह मरति दोउ ।
हमहरे नाम की छाप रही,
अरु अंतर बीच रहा नहीं कोउ ।
राधा कृष्ण तो सबहीं कहैं,
पर कूबरी कृष्ण कहैं नहीं कोउ ॥

यह था कृष्ण के प्रति गोपियों का अंनन्य प्रेम ।

एक और कथा आपको सुनाऊं ? एक था पठान । वह आत्महत्या करने जा रहा था । शास्त्र में लिखा है कि जन्म का अन्धा भी नहीं देखता और जिसके सिर पर काम का भूत सवार होता है वह भी नहीं देखता । वह पठान किसी लड़की से मुहब्बत करता रहा होगा, उस लड़की ने कुछ कह दिया होगा । निराश प्रेमी यमुना में डूबने जा रहा था । दयालु दीनबन्धु के बड़े विशाल हाथ हैं । मारने वाले से बचाने वाला ज्यादा शक्तिशाली है । रास्ते में एक पंडित जी महाराज भागवत वांच रहे थे, बोले,—देवियो एवं भद्र पुरुषो ! महारास जब अपने पूरे यौवन पर था, बीच ही में कृष्ण अन्तर्ध्यान हो गये । कृष्ण विरह में गोपियां व्याकुल होकर इधर-उधर भटकने लगीं कृष्ण कहां गया, कृष्ण कहां गया । ज्यों ही यह बात उस पठान के कानों में पहुंची, अन्तरात्मा पुकार उठी, सुन रहे हो रसखान ! एक वह कृष्ण था जिसके लिये गोपियां पागल थीं और एक तू है जो एक छोकरी के कारण मरने जा रहा है । बच गया वह पठान । भागवत के एक वाक्य ने उसकी जिन्दगी बदल दी । बोला,—ऐ मेरे परवर दिगार, ऐ मालके कुल आलम, ऐ सरकारे दो जहान, ऐ मेरे खुदावन्द करीम, ऐ मेरे अल्लापाक, ऐ मेरे मालिक ! अगले जन्म में तू मुझे कुछ भी बना । पशु बना, पक्षी बना, पत्थर बना, वृक्ष बना, मनुष्य बना, धूल बना परन्तु जो कुछ भी मुझे बना ब्रज-भूमि में बना ।

मानस हौं तो वही रसखान,
बसौं नित गोकुल गांव के ग्वालन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौ,
वही कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को,
जो नख कीन्ह पुरन्दर धारन ।
जो पशु हौं तो कहौं वसु मेरो,
चरौं नित नंद के धेनु मझारन ॥

ऐसे थे मेरे कृष्ण और ऐसा था उनका बालपन । उस दृश्य का वर्णन करते हुए भागवतकार लिखते हैं,—तदनन्तर भगवान् कृष्ण यमुना के तीर पर मधुर मुरली बजाने लगे । मुरली की तान सुनते ही गोपियां घरों से भागीं । परन्तु आश्चर्य की बात ये थी किसी भी घरबाले ने अपनी घरवाली को अपने से अलग नहीं पाया । मानों गोपियों का डुप्लीकेट तैयार हो गया । कृष्ण उन सम्पूर्ण ब्रज सुन्दरियों को साथ ले यमुना के तट पर आये वहां खिले हुए कुछ कुन्द और मन्दार के पुष्पों से सुगन्धित वायु चल रही थी और उसके साथ मधुमत्त मधुकर इधर-उधर उड़ रहे थे । शरत्चन्द्र के कमनीय किरणजाल से अन्धकार दूर हो जाने के कारण वह स्थान परम मंगलमय हो रहा था तथा यमुना के कलरव रूप तरंगों से वहां सुकोमल बालुका फैला दी गई थीं । कृष्ण दर्शन के आह्लाद से गोपियों के हृदय का ताप शान्त हो गया । वे ज्ञानकाण्ड की श्रुतियों के समान पूर्णकाम हो गईं ।

उन्होंने अपने प्रिय बन्धु भगवान् कृष्ण के

बैठने के लिये फूलों का आसन बनाया । जिनका आसन योगियों के अन्तःकरण में स्थित है वे भगवान् श्री कृष्ण वहां गोपियों की गोष्ठी में बैठे हुए उनसे पूजित होकर त्रिलोकी की शोभा के एक मात्र आश्रय रूप परम सुन्दर शरीर धारण किये सुशोभित हुए ।

तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ।
स्त्रीरत्नैरचितःप्रीतैरन्योन्यावद्धबाहुभिः ।।
रासोत्सवः सम्प्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ।
योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ।।
प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ।

गोपियों के मण्डल से सुशोभित रासोत्सव आरम्भ हुआ । उन स्त्रियों में से दो-दो के बीच में योगेश्वर भगवान खड़े हुए । उस समय सब स्त्रियों ने उन्हें अपने ही निकट समझा । इतने ही में अपनी-अपनी स्त्रियों के सहित रासोत्सव देखने के लिये अत्यन्त उत्सुक देवताओं के सैकड़ों विमानों से आकाश भर गया । तब दुन्दुभियों के शब्द के साथ आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी और गन्धर्वगण अपनी प्रियाओं के साथ भगवान् का निर्मल यश गाने लगे । आगे भागवतकार लिखते हैं—जिस प्रकार बालक अपने प्रतिबिम्ब के साथ खेलता है, उसी प्रकार रमारमण भगवान् श्री कृष्ण ने आलिंगन और मधुर मुस्कान करते हुए ब्रज रमणियों के साथ रमण किया ।

रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिः
यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः ।।

भगवान आत्माराम थे, तो भी उन्होंने जितनी गोपियां थीं उतने ही रूप धारणकर लीलापूर्वक उनके साथ विहार किया । गोपियाँ भी परम पुरुषोत्तम की लीला का गान करने लगीं ।

रासलीला इस जगत की क्रीड़ा नहीं है । उसमें योग है भोग नहीं, त्याग है अनुराग नहीं रासलीला का उद्देश्य काम पर विजय प्राप्त करना ही था । रासपञ्चाध्यायी टीका में श्री धर स्वामी लिखते हैं—

ब्रह्मादिजयसंरूढदर्पकन्दर्पं दर्पहा ।
जयति श्री पतिर्गोपीरासमण्डल मण्डनः ।।

रासलीला उस दिव्य आनन्दमय रसमय राज्य की चमत्कारमयी लीला है जिसके श्रवण और दर्शन के लिये परमहंस मुनि-गन भी सदा उत्कंठित रहते हैं । भगवान् श्री कृष्ण आत्मा हैं । आत्माकार वृत्ति श्री राधा है और शेष आत्मा की अन्तर्मुख वृत्तियां गोपियां हैं । उनका धारा प्रवाहरूप से निरन्तर आत्मारमण ही रास है ।

अब बात चलाता हूँ चीरहरण लीला की । जो गोपियां यमुना जल में नहा रही थीं, वे छोटी-छोटी कन्याएं थी और कृष्ण की आयु भी उस समय सात वर्ष की थीं । सात वर्ष के बालक से कन्याएं तो क्या स्त्रियां भी पर्दा नहीं करतीं । आयुर्वेद शास्त्र कहता है कि बारह वर्ष तक किसी भी बालक एवं बालिका के हृदय में स्त्री-पुरुष संबंधी भावनाओं की जागृति नहीं होती । मैं आजकल के जमाने की बात नहीं कहता । आज तो रेडियों ने, टेलीविजन ने लाउडस्पीकरों ने इन्सानियत का फक्का तक नहीं छोड़ा । मैं बात करता हूँ आज से पाँच हजार वर्षपहले की एक वर्ष कात्यायनी व्रत के पश्चात् जिस दिन गोपियों ने व्रत का उद्यापन किया उस दिन व्रत पूरा होने के कारण वे आनन्दित होकर यमुना म नहाने गयीं । इस व्रत में गोपियों को अधिकार की परिपक्वावस्था प्राप्त हुई कि नहीं, इसको परीक्षा करने के लिये मायाधीश ने एक मा

रची। श्रीमद्भागवतकार लिखते हैं—तब एक दिन योगेश्वरों के ईश्वर भगवान् गोपियों के अभिप्राय को जानकर उनके कर्म को सफल करने के लिये अपने साथी बालकों के साथ वहाँ गये और उनके वस्त्र लेकर तुरन्त ही कदम्ब पर चढ़ गये और हँसते हुए बोले अरी बालिकाओ! तुम यहाँ आकर अपने अपने वस्त्र ले जाओ। मैं तुमसे सत्य कहता हूं, यह सब बालक भी जानते हैं कि मैंने आज तक कभी झूठ नहीं बोला। तुम एक-एक करके अथवा एक साथ आकर अपना वस्त्र ले जाओ। वस्त्र शब्द "वस आच्छादने" धातु से बना है। जैसे शरीर को ढांकने वाला कपड़ा वस्त्र कहलाता है उसी प्रकार आत्मा जो सत्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त है, अज्ञानरूपी वस्त्र द्वारा ढक जाने पर अपने को अनित्य अशुद्ध और बद्ध मान बैठता है। जब तक अज्ञान है, परमात्मा से भेद है। तभी तक लज्जा और भय का आवरण है। परिपक्व अवस्था प्राप्त कर लेने पर किसी आवरण की आवश्यकता नहीं रहती। ज्ञान रूपी शंकर दिगम्बर है। बाइविल में भी ईसा ने भी एक स्थान पर कहा है—Come ye naked to the naked Christ.

चीरहरण प्राकृतिक शरीर की लीला नहीं है, यह तो चिन्मय शरीर की लीला है। इस चीरहरण गाथा में श्रीकृष्ण साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं। यमुना जल विषय वासनाओं की बहती हुई धारा है। हमारा मन इन वासनाओं के जल से निकलना नहीं चाहता। जब कभी जीव के शुभ कर्म के फलस्वरूप प्रभु मिलन का अवसर प्राप्त होता है तो जीव सोच में पड़ जाता है, परन्तु जीव के पुराने संस्कार भगवान् तक पहुंचने में बाधक हो जाते हैं। गोपियां श्रीकृष्ण के लिए संसार को तो भूल गईं किन्तु अपने को अभी तक नहीं भूली थीं। खुदी को भूलकर ही खुदा तक पहुँचा जा सकता है।

भगवान् श्री कृष्ण का जिस समय इस धरती पर प्रादुर्भाव हुआ, उस समय गान्धार प्रदेश से लेकर आसाम तक और कैलास पर्वत से लेकर रामेश्वरम् तक समूचे देश में सहस्रों सर्वतंत्र स्वतंत्र राजा भरे पड़े थे। राज्य इतने छोटे-छोटे हिस्सों में बंट चुका था कि कंस का राज्य गोकुल और वृन्दावन में नहीं था। यद्यपि मथुरा-वृन्दावन का अन्तर केवल चार मील था। शहंशाह आलम अज दिल्ली ता पालम। सभी राजे स्वेच्छाचारी और विलासी थे। एक ओर हस्तिनापुर में कौरव-पाण्डव का भयंकर कलह था। दूसरी ओर आसाम के राजा नरकासुर ने सोलह हजार नवयुवतियां अपने रंगमहल में पाल रक्खी थीं। कंस के दरबार में यह अत्याचार था कि उसने अपने पिता महाराज उग्रसेन को जेल में डाल रखा था। जरासंध इस देश का सर्वेसर्वा बनना चाहता था। चौरासी राजा उसने अपने कैदखाने में डाल रखे थे। जिस समय भगवान का जन्म हुआ, देशघाती शक्तियां बहुत ऊंचा सिर उठा चुकी थीं। चातुवर्ण्य व्यवस्था बिगड़ चुकी थी। एक ओर भोगवाद बढ़ रहा था और दूसरी ओर त्यागमार्ग भी अपनी चरम सीमा पर था। बीच का मार्ग लुप्तप्राय हो रहा था।

कंस मथुरा के राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी नहीं था। बात यह थी। देवक एवं उग्रसेन दो सगे भाई थे। देवक की पुत्री थी देवकी और उग्रसेन का पुत्र था कंस हिन्दु ला के मुताबिक पुत्री तो राज्य की अधिकारिणी नहीं तथापि पुत्री का पुत्र अधिकारी अवश्य है जरासंघ की शह पाकर कंस ने अपने पिता के रहते-

रहते ही मथुरा के शासन पर अधिकार जमा लिया। इस अवस्था में प्रजा निःसहाय थी। कंस ने निश्चय कर लिया कि वह देवकी के पुत्र को जीवित नहीं रहने देगा, परन्तु यदि प्रजा एक हो जाय हो वह बहुत कुछ कर सकती है। और मथुरा की जनता ने करके दिखाया भी।

कृष्ण जन्म

"मथुरा के बहादर जवानो! आज कंस ने खुले शब्दों में तुम्हारी सहनशक्ति, तुम्हारे धैर्य, तुम्हारे स्वाभिमान और कर्त्तव्य परायणता को चैलंज दिया है। अब देखना केवल इतना ही हैं, आप इस चैलन्ज का जवाब कैसे देते हैं। मैं कहता हूं धरती पर अन्याय हो रहा है। घोर अन्याय। भारतीय परम्परा में आज तक किसी पुत्र ने पिता को जीवित बन्दी गृह में नहीं डाला। पिता की आज्ञा का पालन करते हुए हमारे पूर्वजों ने राजपाट को ठुकरा दिया, फकीरी मोल ली। क्या आप रामायण में वर्णित भगवान् राम का उज्वल चरित्र भूल गए। आज पापी कंस ने अपने देव तुल्य पिता को बन्दीगृह में डाल कर भारतीय संस्कृति और भारतीय सभ्यता के उज्वल ललाट को कलंकित किया है और यह दुष्ट केवल अपने पिता को कारागार में डालकर ही संतुष्ट नहीं हुआ। अपनी बहिन को भी इस ने बन्दी बनाया। यह अन्याय कब तक सहन होगा। महापातकी कंस देवकी के छः पुत्रों की हत्या कर चुका है। अब सातवें पर आंख जमाये बैठा है। क्या यह राक्षसी लीला ऐसे ही होती रहेगी।"

"कभी नहीं कभी नहीं," एक ओर से आवाज आई।

"परन्तु इस आततायी के उत्पातों का मान-मर्दन करने के लिए आप ने क्या किया"?

"करेंगे, समय आने पर सब कुछ करेंगे। अपने प्राणों की बाज़ी लगा कर भी हम सत्य और न्याय की रक्षा के लिए सब कुछ करेंगे।"

"मथुरा के शासन का उत्तराधिकारी कंस नहीं देवकी का पुत्र है।"

"तभी तो इस पापी ने देवकी को कारागार में डाल दिया है।"

"मैं पूछता हूं यह अन्याय पूर्ण अत्याचार का चक्र कब तक चलता रहेगा।"

"जितना चल चुका था चल चुका अब नहीं चलेगा।"

"हमें अपना सर्वस्व दे कर भी देवकी-पुत्र की रक्षा करनी होगी। मथुरा के राज्य का वास्तविक उत्तराधिकारी देवकी का पुत्र ही है।"

"परन्तु यह दुराचारी कंस देवकी पुत्र की रक्षा कैसे होने देगा।"

"देवकी-पुत्र के बदले में मैं अपने नवजात बालक को कंस की भेंट करूंगा। राष्ट्र-पुत्र की रक्षा के लिये अगर मुझे अपना सर्वस्व भी देना पड़े तो मैं सब कुछ न्यौछावर कर दूंगा।"

"धन्य हो, धन्य हो"—चारों ओर से साधुवाद हुआ। नन्द बाबा की जय से सभा मण्डप गूंज उठा।

"जेल के द्वार?"

"वे स्वयं खुल जायेंगे।"

"पहरेदार?"

"स्वयं ही मार्ग दे देंगे।"

"और वर्षा के समस्त जल को अपने आंचल में छिपाये हुए यमुना मैया?"

"स्वयं राष्ट्र-पुत्र को अपनी गोद में लेकर जल के पार कर देगी।"

"नन्द बाबा का नाम धरती पर अमर

होगा। भगवान् के धर्म पिता बनने का नन्द बाबा को सौभाग्य प्राप्त होगा।"

"देवकी पत्र के प्रकाश में आते ही कंस ऐसे छिप जायेगा जैसे सूर्योदय पर उलूक। जरासन्ध शिशुपाल आदि भी इसी प्रकार कंस की ही गति को प्राप्त होंगे। अराजकता और अनार्यतम का धरती से विनाश होगा। विश्व में मानवता का प्रकाश होगा।

"गोकुल में देवकी पुत्र का पालन पोषण होगा। सोलह वर्ष को प्राप्त होते ही देवकी-नन्दन मथुरा में प्रकट होंगे। समूची प्रजा देवकी पुत्र का जय जयकार गाती हुई कंस के राज-महल में कूद पड़ेगी। मथुरा का कण-कण "अत्याचारी कंस का नाश हो" के निनाद से मुखरित हो उठेगा। कंस की पुलिस और फौज भी कंस के प्रति विद्रोह कर देगी। एक ही दिन में कंस के अस्तित्व तक का विनाश होगा। प्रजा देवकी पुत्र को अपना भाग्य विधाता बना कर अपने को धन्य धन्य समझेगी।"

"भगवान् वह सुदिन बहुत जल्दी लाये।"

बोलो देवकी नन्दन भगवान् कृष्ण चन्द्र की जय।

गिरिवर धारी कृष्ण मुरारी

छोटे से बालक ने अपनी माँ से पूछा, "मैया आज यह जो पकवान् बन रहे हैं किस के लिये?"

"इन्द्र देवता के लिये।"

"वह इन्द्र कहां रहता है, मैया?"

स्वर्ग लोक में, मां ने पुत्र का मुंह चूमते हुए कहा।

"परन्तु मैया, वह इन्द्र हमें देता क्या है?"

"वह हमें वर्षा देता है, धन धान्य देता है, उपद्रवों से हमारी रक्षा करता है?"

'इन्द्र जल नहीं देता! मैया! इन्द्र उपद्रवों से रक्षा नहीं करता, दाता और विधाता तो परम ब्रह्म परमात्मा है। यह इन्द्र दाता नहीं, त्राता नहीं यह तो अपनी सत्ता के बल पर हमें अपना दास बनाये है। हम इन्द्र की दासता स्वीकार नहीं करेंगे।" इस वर्ष इन्द्र की पूजा नहीं होगी"—श्री कृष्ण ने ब्रजवासियों को साफ साफ कह दिया।

"इन्द्र की पूजा नहीं होगी, तो पूजा होगी किस की"—भोले भाले ब्रजवासी बोले।

इस वर्ष "गोवर्द्धन" पूजा होगी। गोवर्द्धन हमारा अन्नदाता है। गोवर्द्धन के सहारे हमारा पशधन भर पेट भोजन पाता है। जो कुछ इन्द्र को भेजना है, क्यों न उसे गोवर्द्धन की अवस्था के सुधार में लगा दें। हम इन्द्र की पराधीनता सहन नहीं करेंगे।"

"इन्द्र दमन करेगा"

"हम प्रसन्नतापूर्वक इन्द्र के अत्याचारों को सहन करेंगे। शक्ति भर उन अत्याचारों का प्रतिरोध करेंगे। परन्तु हम इन्द्र की पराधीनता कदापि सहन न करेंगे। यदि हम में एकता रही और एक स्वर से हम सब ने इन्द्र की पूजा को अस्वीकार कर दिया तो एक इन्द्र नहीं सहस्त्रों इन्द्र मिल कर भी हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। सब ब्रजवासी एक स्वर से कहो, इन्द्र को पूजा नहीं करेंगे नहीं करेंगे। एक देश में दो निशान, दो विधान, दो प्रधान नहीं रहेंगे! नहीं रहेंगे!! नहीं रहेंगे!!!"

"नहीं रहेंगे, नहीं रहेंगे" की जय ध्वनि से गोवर्द्धन का कण-कण गूंज उठा।

उस वर्ष इन्द्र की पूजा नहीं हुई ब्रज वासियों से कर रूप में इन्द्र को कछ भी प्राप्त नहीं हुआ। इन्द्र तिलमिला उठा। उसने अपना कर प्राप्त करने के लिए ब्रजवासियों पर जी भर

कर अत्याचार किये। इन्द्र का यह दमन चक्र निरन्तर सात दिन चलता रहा। परन्त अपना पूरा ज़ोर लगा कर भी इन्द्र ब्रजवासियों की एकता को न तोड़ सका। इन्द्र के उत्पातों का ब्रजवासियों के पास एक ही जवाब था—

इन्द्र की पूजा नहीं करेंगे! नहीं करेंगे!! नहीं करेंगे!!!

गोवर्द्धन सर्वस्व हमारा।
गो-कुल का है एक सहारा।
प्राणों से भी बढ़ कर प्यारा।
आततायी से नहीं डरेंगे।
इन्द्र की पूजा नहीं करेंगे॥

देश भक्त श्याम के सभी कार्य देश भक्ति पूर्ण थे।—जहां तक कृष्ण द्वारा माखन की मटकी फोड़ने की बात है, कुछ महानुभावों का ऐसा विचार है किगोपिकायें वृन्दावन का माखन मथुरा ले जाया करती थीं, जिस प्रकार आज जालन्धर-अमृतसर का सारा दूध चंडीगढ़ चला जाता है, जिस प्रकार दिल्ली के आसपास के सौ-सौ मोल घेरे के नगरों ग्रामों का सब कुछ नई दिल्ली के निशाचरों के मौज मेले के लिये चला जाता है। देश भक्त श्याम ने इस प्रवाह को रोका। ब्रज मडल का अमृत ब्रज में ही रहेगा, कंस की नगरी में जा नहीं सकेगा।

कंस वध

मथुरा के बहादुर जवानो! सोलह वर्ष हो गए इसी मैदान इकट्ठे होकर हमने एक बहुत बड़ो प्रतिज्ञा की थी। कंस के अत्याचारी शासन का विनाश। उस समय हम विवश थे। शक्ति भी हमारे पास थी और साधन भी थे परन्तु शाही खानदान का ऐसा कोई उत्तराधिकारी नहीं था जिसे हम कंस के स्थान पर बैठा सकते। प्रभु ने आज वह हमारी कठिनाई दूर कर दी। देवकी-पुत्र कृष्ण अब सोलह वर्ष का हो गया। अपने नाना देवक के राज्य का वह पूर्ण उत्तराधिकारी है। हमने वृन्दावन में उनको जिन-जिन लीलाओं का वर्णन सुना है, वे महान् उत्साह-वर्धक हैं। ऐसा प्रतीत देता है मानों इस द्वापर के अन्त में त्रेता युग की लीलाएं होने वाली हैं। रावण कंस बनकर आ गया। खर-दूषण मुष्टी और चाणूर बन कर आ गये और उनके नाश के लिये बलराम और श्री कृष्ण का अवतार हो गया। त्रेता की उस रामायण में राम आगे थे लक्ष्मण पीछे थे। लक्ष्मण ने एक बार इच्छा प्रकट की थी,—प्रभो! ऐसा भी समय आएगा जब मैं आगे चलूंगा, कष्टों से भिड़ूंगा, दुष्टों से लड़ूंगा और आपकी चरण सेवा करूंगा। उस समय श्रीराम बोले,—लक्ष्मण! द्वापर के अन्त में कृष्णावतार होगा। मैं कृष्ण बनूंगा, तुम बलराम बनना। उस समय तुम्हारी इच्छा पूरी हो जायेगी। आज वही राम और लक्ष्मण कृष्ण और बलराम बनकर आये हैं। कौशल्या देवकी बनी है, सुमित्रा रोहिणी रूप बन कर आ गई है। मन्थरा ने कुब्जा का रूप धारण कर लिया—

अक्रूर जी हमारे दूत बन कर ब्रज-मण्डल में जा रहे हैं। बलराम और कृष्ण का आवाहन करने के लिये। हमने दिल खोलकर राष्ट्र-पुत्रों का स्वागत करना है। कंस अब जिन्दा नहीं रह सकता। हम सब एक हैं। हमारा नारा, हम सब एक हैं। फौज विद्रोह कर देगी सिपाही हम से आ मिलेंगे। कंस का अन्त अब बिल्कुल निकट ही जानिये।

आज वृन्दावन में बड़ी हलचल है। अक्रूर जी पधारे हैं, किस लिये? श्री बलदाऊ जी

और कन्हैया को मथुरा ले जाने के लिये। हम कृष्ण को मथुरा नहीं ले जाने देंगे। अपने हृदय-वल्लभ को कंस के अत्याचारों का शिकार नहीं बनने देंगे। उस समय यमुना के किनारे पर बहुत बड़ा दरबार लगा। उस दरबार के बीच में खड़े होकर श्रीकृष्ण बोले,निरन्तर सोलह वर्ष तक आप लोगों के बीच में रहते हुए मुझे भी इस पवित्र भूमि से और इस भूमि के भूमिहारों से इतना स्नेह हो गया है कि स्वयं मेरे लिये आपका वियोग असह्य है। इस पवित्र धरती के साथ मेरी बचपन की स्मृतियां बंधी हुई हैं। आप क्या ये समझते हैं कि इस पवित्र भूमि को छोड़कर मुझे कोई सुख मिलेगा? कालिंदी के तट पर चन्द्रमा की चाँदनी में महारास का वह महान् खेल जो मैंने इस ब्रज भूमि में खेला, जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं इस महारास का महाकीर्तन संसार भूलेगा नहीं। परन्तु जीवन में ऐसे महान् अवसर भी आया करते हैं जब कि एक महान् उद्देश्य के लिए अपने निजी प्यारपूर्ण सम्बन्धों को अन्ततोगत्वा छोड़ना ही पड़ता है। राम कथा आपने सुनी होगी। राम वनों में गये रावण को मारने के लिये। निसन्देह यह एक बहुत वड़ा उद्देश्य था, इसके लिये राम ने माता कौशल्या के प्रेम को छोड़ा, लक्ष्मण ने सुमित्रा के प्रेम को छोड़ा। राष्ट्र धर्म के पालन करने वाले महान् राष्ट्र-पुरुष चौदह वर्ष उन्होंने त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत किया। राष्ट्र धर्म का मार्ग एक महान् कण्टकाकीर्ण मार्ग है। एक ऐसा मार्ग है जिस मार्ग पर अंगारे ही अंगारे बिछे हुए हैं, परन्तु चलने वाले इन अंगारों को फूल समझ कर उनपर चलते ही हैं। मैं कुछ अपनी बात आप से कहना चाहता हूँ। मैं आपको छोड़ कर जाना नहीं चाहता परन्तु कंस के अत्याचार मुझे बुला रहे हैं, जिस प्रकार रावण के अत्याचार राम को बुला रहे थे, राम तो अयोध्या से तीन हजार मील चले गये थे, मैं तो केवल पाँच ही मील की दूरी जा रहा हूं। राम अपने साथ किसी भी अयोध्यावासी को साथ लेकर नहीं गये थे, मैं आप सब को साथ लेकर चलूंगा। गोप सभी चलेंगे। गोपिकाएं कोई नहीं जायेंगी। आज मथुरा और गोकुल दो राज्य हैं। किसी अत्याचारी ने हमारे देश पर कितना बड़ा भारी अत्याचार किया है। दो-दो मील की दूरी पर नया राज्य। मैं इस अराजकता को दूर करूंगा। कंस देश के दुश्मनों से मिला हुआ है। उसका नाश होना असंभावी है, इस लिये मैं आप लोगों से प्रार्थना करता हूं कि मुझे प्रसन्नता पूर्वक मथुरा जाने दीजिये। वहां कारागार में पड़े हुए मेरे माता पिता अपने मोक्ष की आशा किये मेरी ओर देख रहे हैं। कंस के अत्याचारों से पीड़ित लाखों नर-नारी मेरी प्रतीक्षा में हैं एक महान् कार्य के लिये मझे मथुरापुरी में जाना है। मैं आपको कभी भूलूंगा नहीं, मैं आपको भूल सकता ही नहीं। मुझे जाने दीजिये।

भगवान श्री कृष्ण की जय, बलराम जी की जय। ब्रज भूमि से उठी पुकार, मिटे कंस के अत्याचार। कृष्ण हमारा प्यारा है, सब का वही सहारा है। जनता के दुख दूर करन को, लियो आज अवतारा है। मथुरा निवासियों ने जयजयकार के साथ श्री कृष्ण का स्वागत किया। गोपाल कृष्ण की जय, मथुराधिपति, मुरली मनोहर, गोपाल श्री कृष्ण की जय।

जय बोलो, जय बोलो श्री कृष्ण चन्द्र की जय बोलो।

कृष्ण हमारा खास हरैया।

कृष्ण कंस का नास करेगा।
दैत्य वासता दूर भगा कर।
जीवन में परकास भरेगा ॥

जय बोलो, जय बोलो श्री कृष्ण चन्द्र की जय बोलो ॥

कंस ने महल की खिड़की से सर बाहर निकालते हुए पूछा,—यह शोर किस बात का हो रहा है। क्या राजाधिराज कंस के अतिरिक्त भी कोई दूसरा मथुराधिपति है।

कंस आज यमपुर जायेगा।
मथुरा में अब कृष्ण आयेगा।
कृष्ण आज निज बल—पौरुष से
द्वापर में सतयुग लायेगा—

जय बोलो, जय बोलो श्री कृष्ण चन्द्र की जय बोलो।

वह आवाज तीव्र से तीव्र तर होती गई और कंस के देखते ही देखते उस आवाज ने महल को चारों ओर से घेर लिया। कंसारि! गिरधारी! मुरारी! ब्रजबिहारी लाल की जय। भयभीत कंस ने फौज और पुलिस को पुकारा, परन्तु वे तो सब के सब पूर्व ही मक्ति सेना में मिल चुके थे।

महल के द्वार खुले। आकाश में एक आवाज गूंजी—"बोलो कृष्ण बलदेव की जय।" दस-पांच जो कंस के खुशामदी वहां पर थे, वे कृष्ण को देखते ही सिर पर पांव धर भागे। कृष्ण आगे बढ़े उन्होंने कंस को गर्दन से पकड़ा। कंस के प्राण उसके शरीर में नहीं थे। मथुरा ने सुख का सांस लिया।

कंस को समाप्त करते ही कृष्ण अपने माता-पिता के श्री चरणों में उपस्थित हुए। बोले,—आपके पास आने में मुझे देर हो गई। मेरे ही कारण आपको इतने कष्ट मिले। कृष्ण स्वयं राजा नहीं बने। उन्होंने अपने नाना उग्रसेन को गद्दी पर बिठाया। कृष्ण ने ब्रजभूमि में सच्चे अर्थों में प्रजातंत्र स्थापित किया। उग्रसेन राजा नहीं थे, प्रजाध्यक्ष थे। परन्तु मथुराधीश बन कर भी कृष्ण सुख चैन से मथुरा में रह न सके।

अस्ति प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ।
मृते भर्तरि दुःखार्ते ईयतुः स्व पितृगृहान् ॥
पित्रे मगधराजाय जरासंधाय दुःखिते।
वेदयांचक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ।

जरासंध की दो पुत्रियाँ अस्ति और प्राप्ति कंस से ब्याही थीं, जब वे विधवा बनकर रोती पीटती अपने पिता के पास पहुची. जरासंध के क्रोध की कोई सीमा न रही—वह सेना सहित मथुरा पर चढ़ आया।

कंस के श्वसुर जरासंध ने मथुरा पर निरन्तर आक्रमण किया। सत्रह बार कृष्ण ने उसे हराया। परन्तु अठारहवीं बार जरासंध एक विदेशी राजा की सहायता पाकर फिर मथुरा पर चढ़ आया। राष्ट्रवादी कृष्ण लड़े नहीं, अपनी समूची मथुरा को लेकर वे द्वारका पुरी में जा बसे। कालयवन ने श्रीकृष्ण का पीछा किया। कृष्ण द्वारिका में मथुरा वासियों को बिठाकर स्वयं चैन से नहीं बैठे, वे कालयवन का मुकाबला करने के लिए आये। उस समय कालयवन की फौजें अरावली पर्वत के बीच में पड़ी थीं। कृष्ण ने उसे कुछ इस प्रकार पर्वतों के घुम्मन घेर में फंसाया कि कालयवन को सेनाओं का फक्का तक नहीं बचा। उस समय द्वारिका में बैठे हुए भगवान श्री कृष्ण ने जब समूचे देश की ओर देखा, — देश के साढ़े तीन हजार टुकड़े हो गये थे और हर राजा अपने आप को सर्वतन्त्र स्वतंत्र समझता था कृष्ण ने निश्चय कर लिया, मैं देश को एक और अखण्ड

बनाऊंगा और अखण्डभारतका राष्ट्रपतिअर्जुनको बनाऊंगा अर्जुन को अखण्ड भारत का राष्ट्रपति बनाने के लिए कृष्ण ने क्या कुछ किया महाभारत में इसी का वर्णन है । इस प्रसंग की चरचा हम प्रसंग आने पर ही करेंगे, इस समय तो हम आप को कृष्ण का बाल चरित्र सुना रहे हैं।

राष्ट्रोद्धारक

राष्ट्रोद्धारक कृष्ण की शिक्षा दीक्षा के सम्बन्ध में पुराण लिखते हैं—

ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ।
गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥
प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ।
नान्य सिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥
अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ।
काश्यं सांदीपनिं नाम ह्यवन्तीपुरवासिनम् ।
यथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ॥
ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवाहृतौ ॥
तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ।
प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥
सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान् न्यायपथांस्तथा ।
तथा चान्वीक्षिकीं विद्या राजनीतिं च षड्विधाम् ।
सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्या प्रवर्तकौ ।
सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥
अहोरात्रैश्चतुःषष्टया संयत्तौ तावतीः कलाः ।
गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥

तदनन्तर वे दोनों धर्मज्ञ भाई गुरु सान्दीपनी के यहां उज्जयिनीपुरी में विद्याध्ययन के लिये गये । वहां वे गुरु सेवा-परायण हो सदा धर्म के ही अनुष्ठान में लगे रहे । वे दोनों महात्मा कठोर व्रत का पालन करते हुए वहां रहते थे । उन्होंने चौंसठ दिन-रात में ही छहों अङ्गों सहित सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया । इतना ही नहीं, उन यदुकुल कुमारों ने चित्रकला, गणित, गान्धर्व वेद, तथा सम्पूर्ण वैदिक शास्त्र को भी उतने ही समय में जान लिया । गज शिक्षा तथा अश्वशिक्षा को तो उन्होंने कुल बारह दिनों में ही प्राप्त कर लिया। इसके बाद वे दोनों धर्मज्ञ एवं धर्मपरायण वीर धनुर्वेद सीखने के लिये पुनः सान्दीपनि मुनि के पास गये । पच्चास दिन-रात में ही उन दोनों ने दस अङ्गों युक्त सुप्रतिष्ठित एवं रहस्य सहित सम्पूर्ण धनुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर लिया ।

ततस्तौ जग्मतुस्तात गुरुं सान्दीपनिं पुनः ।
गुरुशुश्रूषया युक्तौ धर्मज्ञौ धर्मचारिणौ ॥
व्रतमुग्रं महात्मानौ विचरन्तावतिष्ठताम् ॥
अहोराजचतुष्षष्टया षडङ्गं वेदमापतः ॥
लेख्यं च गणितं चोभौ प्राप्नुता यदुनन्दनौ ।
गान्धर्ववेदं वैद्यं च सकलं समवापतुः ॥
हस्तिशिक्षामश्वशिक्षां द्वादशाह्नेन चापतुः ।
तावुभौ जग्मतुर्वीरौ गुरुं सान्दीपनिं पुनः ॥
धनुर्वेद चिकीर्षार्थं धर्मज्ञौ धर्मचारिणौ ।
पञ्चाशद्भिरहोरात्रैर्दशाङ्गं सुप्रतिष्ठितम् ।
सरहस्यं धनुर्वेदं सकलं तावबापतुः ॥

श्री कृष्ण यदि ऐसे ही होते जैसा कि लोग उन्हें समझते हैं,वे इतने बलिष्ठ न होते जैसे कि थे उनके मुखमण्डल पर वह अलौकिक तेज न होता जो कि था । वे कंस की रंगभूमि में उतरकर चाणूर का मान मर्दन न कर सकते धर्मराज की स्थापना तो बहुत दूर की बात है, श्री कृष्ण यदि वैसे ही होते जैसे की लोगों ने समझा है, तो रुक्म स्वयंवर के अवसर पर दन्तवक्र ने उनके सदाचार की जो प्रशंसा की है वह न की होती और जरासन्ध, रुक्म, शिशुपाल आदि ने वह प्रशंसा चुपचाप न सुन ली होती । उसी

प्रकार राजसूय यज्ञ में जहां शिशुपाल ने श्री कृष्ण को दुनिया भर की गालियां सुनाई हैं, वहां तो वह श्रीकृष्ण को व्यभिचारी कहने से न चूकता। कौरवों की सभा में द्रौपदी ने जब द्वारिकावासी श्री कृष्ण का नाम स्मरण किया हैतब उसने श्रीकृष्ण को महायोगिन्, विश्वभावन् आदि नामों से पुकारा। यदि कृष्ण के चरित्र में थोड़ा भी दोष होता तो संकटकाल में द्रोपदी को उनका स्मरण न होता। इन बातों से यह स्पष्ट है कि कृष्ण के सम्बन्ध में बालपन के जो आक्षेप किये जाते हैं वह सर्वथा निराधार हैं। बात यह है कि श्रीकृष्ण अत्यन्त सुन्दर थे और श्रीमद्भागवतकार ने उनकी सुन्दरता का बड़ा ही सुन्दर वर्णन "स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान" कह कर किया है। सम्भव है इसी मूर्तिमान् कामदेव की कुछ लीला वर्णन करने के लिये कवियों ने श्रीकृष्ण की काम विलास की कल्पना कर ली हो, परन्तु उस काम विलास में भी यह खूबी है कि वर्णन तो श्रृंगार का है पर अर्थ उसका वैराग्य है।

श्रीकृष्ण का व्यक्तिगत चरित्र इतना पवित्र और अलौकिक था कि उनके समकालीन भीष्म जैसे महान् तपस्वी भी उन्हें साक्षात् ईश्वर का अवतार मानते थे और दुर्योधन जैसे दुष्टात्मा भी उन्हें निःस्पृह, सत्य, पवित्र और परोपकारी महात्मा जानते थे।

आज के इस प्रसंग को समाप्त करने से पूर्व हम भगवान् कृष्ण के विवाह की चरचा करेंगे, परन्तु जिस शानोशौकत के साथ हम राम विवाह की कथा सुनाते हैं, कृष्ण विवाह की कथा प्रायः बहुत कम होती है। कृष्ण की तो हर बात उल्टी है,—शब्द रचना भी टेढ़ी, खड़े होने का ढंग भी टेढ़ा, और विवाह भी टेढ़ा। हमारे देश के उस युग में कन्याओं को कितना अधिकार प्राप्त था, ऐसा लगता है देश उस समय भी आधुनिक भारत की तरह दो भागों में बंटा हुआ था। पर-देश भक्त, देशभक्त। रुक्मणी का भाई अपनी बहन का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था,—शिशुपाल राष्ट्रद्रोही शक्तियों में सर्वाग्रणी था। रुक्मणी एक देशभक्त कन्या थी—वह इस बात को सहन नहीं कर सकती थी कि वह देशद्रोही परिवार में जाय। रुक्मणी ने स्वयं अपने हाथों से श्री कृष्ण को पत्र लिखा—

ताराजकन्यांरथमारुरुक्षतीजहारकृष्णोद्विषतांसमीक्षता
रथं समारोप्य सुवर्णलक्षणं राजन्यचक्रंपरिभूयमाधवः।

श्रुत्वा गुणान् भुवन सुन्दर श्रृण्वतां ते
निविश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम्।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्रमपत्रपं मे ॥
का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूप
विद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥
धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्यां
काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम्।
तन्मे भवान् खलु वृतः पतिरङ्ग जाया-
मात्मापितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि।
मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्
गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥
पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्र-
गुर्वर्चनादिभिरलं भगवान् परेशः।
आराधितो यदि गदाग्रज सत्य पाणि
गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥

रुक्मिणी का पत्र पाते ही, कृष्ण दल-बल सहित आए। कोई दहेज नहीं, कोई बारात का स्वागत नहीं। आए और रथ में बिठा कर रूक्मिणी को द्वारका ले गये।

भगवान् की एक ही पत्नी थी। रूक्मिणी के विवाह के पश्चात् भी कृष्ण ने सन्तानोत्पत्ति के निमित्त बारह वर्ष के अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया।

धर्म शास्त्र में कृष्ण के लिये जिन शब्दों का प्रयोग हुआ है वे शब्द कितनें सुन्दर हैं, कृष्ण अर्थात् आकर्षक One who attracts others or towards whom all people are themselves attracted. माधव-जो कभी भागता नहीं अच्युत जो कभी गिरता नहीं, गोविन्द-चारों वेदों के ज्ञाता, master of speech. गोपाल—गो के अर्थ हैं पृथ्वी, वाणी, राष्ट, गो Cow, The saviour of the nation, the Cows and Brahmins. मदन मोहन मद और मोह से सर्वथा रहित। वासुदेव—दैवी सम्पदा के केन्द्र। जनार्दन, जनता के दुःख दर्द को दूर करने वाले। हृषिकेष-अपनी इन्द्रियों का दमन करने वाले। राधा रमण-आत्मा के आनन्द को ही आनन्द मानने वाले।—

विष्णु सहस्त्रनाम में श्री कृष्ण के एक हजार नामों का वर्णन है, समयाभाव के कारण हमने थोड़े से नामों की यहां चर्चा की है।

श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में एक अंग्रेज़ लिखता है।

India's greatest man is and God is Krishna. India's greatest religion is Krishna. Nay Krishna is the loftiest ideal of the world. He is the greatest source of universal brotherhood and ever lasting felicity. The greatest of all men ever born is now made to appear in a thousand and one light for hundreds of poets have painted him, as each believed him to be. Thus the world has been deprived of knowing one whose wonderful career and more wonderful teachings should be read, studied and followed by the entire human race.

भगवान् कृष्ण विष्णु के सर्वश्रेष्ठ अवतार है। नर को नारायण बना देना हिन्दु धर्म की सब से बड़ी विशेषता है। एक आदमी मुझ से बोला,—What is your definition of Hinduism ? मैं ने कहा Hinduism is a factory of Divine Origin where mortals are transformed into immortals एक दूसरे आदमी ने मुझ से प्रश्न किया। What is the main difference between man and God—मैं ने जवाब दिया प्यारे भाई According to Hinduism there is no difference between man and God. God is man on this earth subjected to death, while God is man in the Heavens free from death.

पांच हजार एक सौ अठानवें वर्ष हो गये प्रभु के कृष्णावतार को। यह हम सब का सौभाग्य है कि दिन प्रति दिन कृष्ण भक्ति का प्रसार देश में बढ़ता जा रहा है। अब विदेश में भी कृष्ण मन्दिर बनने लगे हैं। कृष्ण-कीर्त्तन से आज लंदन न्यूयार्क की गली-गली गूंज उठी है। एक तरफ से आवाज आती है,—

श्री कृष्ण गोविन्द प्रभु नित्यानन्दा।
हरे राम, हरे कृष्ण राधे गोबिन्दा॥

दूसरी गली में से ध्वनि उठती है—

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण-कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम, हरे राम, राम-राम हरे हरे॥

तीसरी ओर से आवाज आती है—

भज गोविन्दम् भज गोपाल।
केशव माधव दीन दयाल॥

अच्युतं केशवं राम नारायणं,
कृष्ण दामोदरं वासुदेव हरिम्।
श्रीधरं माधवं गोपिका वल्लभं,
जानकी नायकं श्रीरामचन्द्र भजे॥

(२)

हस्तिनापुर की कहानी

देवियो एवं भद्र पुरुषो !

कल हम आप को श्रीकृष्ण की बाल लीला सुना रहे थे, आज हम आपको मथुरा से एक दम हस्तिनापुर ले जाना चाहते हैं।

पौरवाणां वंशकरो दुष्यन्तो नाम वीर्यवान् ।
पृथिव्याश्चतुरन्ताया गोप्ता भरतसत्तम् ॥

पुरुवंश का विस्तार करने वाले एक राजा हो गये हैं, जिनका नाम था दुष्यन्त । वे महान् पराक्रमी तथा चारों समुद्रों से घिरी हुई समूची पृथ्वी के पालक थे।

आम्लेच्छावधिकान् सर्वान् स भुङ्क्तेऽरिमर्दनः
रत्नाकर समुद्रान्तांश्चातुर्वर्ण्यजनावृतान् ॥

रत्नाकर समुद्र तक फैले हुए, चारों वर्ण के लोगों से भरे-पूरे तथा म्लेच्छ देश की सीमा से मिले-जुले सम्पूर्ण भू-भागों का वे शत्रुमर्दन नरेश अकेले ही शासन तथा संरक्षण करते थे । महाभारतकार उस प्रतापी राजा के यश का वर्णन करते लिखते हैं, —

नासीच्चौरभयं तात न क्षुधाभयमण्वपि ।
नासीद् व्याधिभयं चापि तस्मिञ्जनपदेश्वरे ॥

राजा दुष्यन्त जब इस देश के शासक थे, उस समय कहीं चोरों का भय नहीं था। इस देश पर दुष्यन्त के शासन काल में रोग-व्याधि का डर तो बिल्कुल ही नहीं रह गया था। राजा दुष्यन्त का आश्रय ले कर समस्त प्रजा निर्भय हो गयी थी। पृथ्वी सब प्रकार के रत्नों से सम्पन्न तथा पशु धन से परिपूर्ण थी।

एक दिन की बात है, महाराज वनों में विहार करते हुए—एक मृग का पीछा करते हुए मालिनी तट पर अवस्थित कण्वाश्रम की ओर जा निकले। राजा ने उस आश्रम को देखा, मानो दूसरा ब्रह्मलोक हो। नाना प्रकार के पक्षी वहां कलरव कर रहे थे, भ्रमरों के गुञ्जन से सारा आश्रम गूंज रहा था । महर्षि कण्व का वह आश्रम, जिसमें वे स्वयं रहते थे, सब ओर से महान् व्रत का पालन करने वाले तपस्वी महर्षियों द्वारा घिरा हुआ था, वह अत्यन्त मनोहर, मंगलमय और एकान्त स्थान था। महाराज अकेले ही आश्रम पर पधारे,—उस समय महर्षि कण्व आश्रम पर नहीं थे।

उस समय आश्रमकन्या शकुन्तला ने महाराज का स्वागत किया।

अतिथि देव आपका स्वागत है, 'उवाच स्वयं मानेव किं कार्यं क्रियतामिति' । कहिये, आपकी क्या सेवा की जाय । शकुन्तला के रूप को देख कर महाराज मोहित हो गये, बोले,— मेरा नाम दुष्यन्त है। मैं परमभाग्यशाली महर्षि कण्व की उपासना करने उनके सत्संग का लाभ लेने आया हूं। शोभने ! बताओ तो भगवान् कण्व कहां गये हैं ?

राजा दुष्यन्त आश्रम पर ठहर गये। उनका मन शकुन्तला में आसक्त हो चुका था। महाराज बोले,—शकुन्तले ! मैं राजा पुरु के वंश में उत्पन्न राजा दुष्यन्त हूं। आज मैं अपनी पत्नी बनाने के लिए तुम्हारा वरण करता हू ।

क्षत्रिय कन्या के सिवाय दूसरी किसी स्त्री की ओर मेरा मन कभी नहीं जाता। तुम्हें ये ज्ञात होना चाहिए कि आज तक मैंने अपने मन को पूर्णतः संयम में रखा है। ब्राह्मण कन्या की ओर आकृष्ट होना मेरे मन को कदापि सह्य नहीं। महाभागे! विश्ववंद्य कण्व तो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं, वे बड़े कठोर व्रत का पालन करते हैं। ऐसी दशा में तुम जैसी सुन्दरी देवी उसकी पुत्री कैसे हो सकती है।

कथं त्वं तस्य दुहिता संभता वरवर्णिनी।
संशयो मे महानत्र तन्मे छेतमिहार्हसि॥

बातचीत से ये बात स्पष्ट हो गई कि शकुन्तला ऋषि कण्व की पालित पुत्री है। वास्तव में विश्वमित्र पिता एवं मेनका माता की पुत्री शकुन्तला है।

विश्वामित्र सुतां ब्रह्मन् न्यासभूतां भरस्व वै।

जो गर्भाधान के द्वारा शरीर का निर्माण करता है, जो अभयदान देकर प्राणों की रक्षा करता है और जिसका अन्न भोजन किया जाता है। धमशास्त्र में क्रमशः ये तीनों पुरुष पिता कहे गये हैं। उस समय शकुन्तला बोली राजन्!

सुतां कण्वस्य मामेवं विद्धि त्वं मनुजाधिप।
कण्वं हि पितरं मन्ये पितरं स्वं अजानती॥

आप मुझे कण्व की ही पुत्री समझें। मैं अपने जन्मदाता पिता को तो नहीं जानती, कण्व को ही पिता मानती हूं। मेरे पिता कण्व फल लाने के लिये इस आश्रम से बाहर गये हुए हैं। दो घड़ी प्रतीक्षा कीजिये, वे ही मुझे आपकी सेवा में समर्पित करेंगे। परन्तु महाराज शकुन्तला पर इतने आसक्त हो चुके थे कि उन के लिये दो घड़ी भी ठहर सकना असह्य हो गया। महाराज बोले,—शकुन्तले! मैं तुम्हें पाने के लिए अत्यन्त व्याकुल हूं, तुम भी मुझे पाने की इच्छा रख कर गान्धर्व विवाह के द्वारा मेरी पत्नी बन जाओ।

सा त्वं मम सकामस्य सकामा वरवर्णिनी।
गान्धर्वेन विवाहेन भार्या भवितुमर्हसि॥

शकुन्तला बोली,—पौरवश्रेष्ठ! यदि यह गान्धर्व विवाह धर्म का मार्ग है, यदि आत्मा स्वयं ही अपना दान करने में समर्थ है, तो इसके लिये मैं तैयार हूं। किन्तु प्रभो मेरी एक शर्त है, उसे सुनली जियें,—

सत्यं मे प्रतिजानीहि यथा वक्ष्याम्यहं रहः।
मयि जायेत यः पुत्रः स भवेत् त्वदनन्तरः॥
युवराजो महाराज सत्यमेतद् ब्रवीमि ते।
यद्येत देवं दुष्यन्त अस्तु मे सङ्गमस्त्वया॥

महाराज दुष्यन्त! मेरे गर्भ से आपके द्वारा जो पुत्र हो, वही आपके बाद युवराज बने। यदि यह शर्त इसी रूप में आपको स्वीकार हो तो आपके साथ मेरा समागम हो सकता है। आगे महाभारतकार लिखते हैं,—शकुन्तला की यह बात सुनकर राजा दुष्यन्त ने बिना विचार किये ही शकुन्तला की इस शर्त को स्वीकार कर लिया।

एवमस्त्विति तां राजा प्रत्युवाचाविचारयन्।
अपि च त्वां नेष्यामि नगरं स्वं शुचिस्मिते॥

वे बोले,—शकुन्तले! मैं तुम्हें शीघ्र ही अपनी राजधानी में ले चलूंगा। ऐसा कह कर दुष्यन्त ने विधिपूर्वक शकुन्तला का पाणिग्रहण किया, और उसके साथ एकान्तवास किया। तत्पश्चात् महाराज वहां से तत्काल ही विदा हो गये। चलते समय उन्होंने फिर कहा,—राजकुमारी! चिन्ता मत करो। मैं अपने पुण्य की शपथ खाकर कहता हूं,—तुम्हें शीघ्र ही राजधानी में अवश्य बुला लूंगा। इतना कह कर महाराज बिदा हो गये

महाराज के विदा हो जाने के पश्चात् महर्षि कण्व आश्रम पर पधारे। अपने हृदय की बात शकुन्तला ने छुपाई नहीं। समय अनुकूल पाकर वे पिता श्री कण्व से बोली,—पिताजी! महाराज दुष्यन्त अभी-अभी इस आश्रम पर पधारे थे। मैं ने उन्हें अपना पति स्वीकार कर लिया। आप उन पर प्रसन्न हों, आप उन्हें अभयदान देकर उन पर कृपा दृष्टि करें। महातपस्वी भगवान् कण्व दिव्य ज्ञान से सम्पन्न थे। वे दिव्य दृष्टि से देखकर शकुन्तला की पूर्व-कालीन बात को जान गये और प्रसन्न होकर बोले,—

त्वयाद्य भद्रे रहसि मामनादृत्य यः कृतः।
पुंसा सह समायोगो न स धर्मोपघातकः॥
क्षत्रियस्य हि गान्धर्वो विवाहः श्रेष्ठ उच्यते।
सकामायाः सकामेन निर्मन्त्रो रहसि स्मृतः॥

शकुन्तले! आज तुमने मेरी अवहेलना करके भी एकान्त में किसी पुरुष से सम्बन्ध स्थापित किया है, वह तुम्हारे धर्म का नाशक कदापि नहीं। क्षत्रिय के लिये गान्धर्व विवाह श्रेष्ठ कहा गया है। स्त्री और पुरुष दूसरे एक दूसरे को चाहते हों, उन दोनों का एकान्त में जो मन्त्रहीन संबंध स्थापित होता है, उसे गान्धर्व विवाह कहा गया है। महामना दुष्यन्त को मैं अच्छी तरह जानता हूं। वे धर्मात्मा और श्रेष्ठ पुरुष हैं। तुमने योग्य पति के साथ सम्बन्ध स्थापित किया है। मैं तुम्हें वरदान देता हूं तुम्हारे गर्भ से जो महाबली पुत्र उत्पन्न होगा, वह समुद्र से घिरी हुई इस समूची पृथ्वी का उपभोग करेगा। पुत्री! आज से तू महात्मा राजा दुष्यन्त की महारानी है, अतः पतिव्रता स्त्रियों का जो बर्ताव और सदाचार है, उसका निरन्तर पालन करो।

महाराज दुष्यन्त शकुन्तला को और शकुन्तला के प्रति की हुई अपनी प्रतिज्ञा को एकदम भुला बैठे। क्यों भुला बैठे, कैसे भुला बैठे, निश्चय ही ये संसार का एक बहुत बड़ा आश्चर्य है। एक धर्मनिष्ठ राजाधिराज जो इतनी आयु तक बड़ा धर्मात्मा रहा, जिसने शकुन्तला को कहा था कि मैं तुम्हें राजधानी में शीघ्र बुला लूंगा, वे अपनी बात से विस्मृत कैसे हो गये,—

रघुकुल रीति सदा चलि आई।
प्राण जाय पर बचन न जाई॥

कहां गई रघुकुल की रीति? बात वास्तव में ये थी,—महाराजा दुष्यन्त ने जिस समय शकुन्तला से विवाह किया, कोई बराती साथ नहीं था, कोई कुल पुरोहित, मन्त्री, महामन्त्री, उपमंत्री साथ नहीं था। महाराज स्वेच्छा पूर्वक विवाह नहीं कर सकते थे। क्योंकि राजा की पत्नी केवल राजा की पत्नी ही नहीं है, वह राष्ट्र की माता भी है। हमारे अपने समय में भी इंगलैंड के राजा छठे जार्ज ने एक होटल कन्या सिम्पसन से विवाह किया, परन्तु इंगलैंड की पार्लियामेन्ट ने सिम्पसन को राष्ट्रमाता के रूप में स्वीकार नहीं किया। परिणामतः जार्ज षष्टम् को गद्दी छोड़नी पड़ी। इन्दौर के राजा तुकाजी राव ने एक अमेरिकन लेडी से विवाह किया। मराठा सरदारों ने उस अमेरिकन लेडी को राजमाता के रूप में स्वीकार नहीं किया। महाराज दुष्यन्त को चाहिए था, वे मन्त्रीमंडल के सामने शकुन्तला के विवाह का प्रस्ताव उपस्थित करते, प्रजा की सहमति जीतते, बारात लेकर कण्व आश्रम जाते और बाजे-गाजे के साथ शकुन्तला को राजधानी में लाते। परन्तु महाराज ने चुपचाप एकान्त में शकुन्तला से विवाह कर लिया, अब वे शकुन्तला को पत्नी के रूप में राजधानी में ला कैसे सकते थे।

और इधर यह अवस्था थी कि महाराज के

चले जाने के पश्चात् शकुन्तला ने एक पुत्र को जन्म दिया। महाभारतकार लिखते हैं,—

कुमारो देवगर्भाभः स तत्राशु व्यवर्धत।
षड्वर्ष एव बाला सःकण्वाश्रमपदं प्रति ॥
सिंहव्याघ्रान् वराहांश्च महिषांश्च गजांस्तथा।
बबन्ध वृक्षे बलवानाश्रमस्य समीपतः ॥

उस बालक के शरीर का गठन सिंह के समान था, वह ऊंचे कद का था, उस के हाथों में चक्र के चिन्ह थे। वह अद्भुत शोभा से सम्पन्न, विशाल मस्तक वाला और महान् बलवान् था। छः वर्ष की अवस्था में ही बलवान् बालक कण्व के आश्रम में सिंहों, व्याघ्रों, वराहों, भैंसों और हाथियों को पकड़ कर खींच लाता और आश्रम के समीपवर्ती वृक्षों से बांध देता। यह देख आश्रम पर रहने वाले ऋषियों ने उसका नाम रखा सर्वदमन।

स सर्वदमनो नाम कुमारः समपद्यत।
विक्रमेणौजसा चैव बलेन च समन्वितः ॥

वह बालक सर्वदमन बारह वर्ष तक कण्व आश्रम में ही घूमता फिरता रहा। महाराज दुष्यन्त शकुन्तला को भूले नहीं थे, वे कभी भूल सकते ही नहीं थे। परन्तु हमारे भारतवर्ष को इस बात का गौरव है कि हमारे आदर्श पुरुष महान् चरित्र के उपासक थे। विवाह का उद्देश्य है केवल सन्तान प्राप्ति। भगवान् रामके पुत्र भी तो बारह वर्ष तक वाल्मीकि के आश्रम पर रहे थे। दो पुत्रों को एक साथ जन्म देने के पश्चात् सीता जी भी तो निरन्तर बारह वर्ष तक वाल्मीकि के आश्रम में रही थी। महाराजा दुष्यन्त के चरित्र की ये महानता थी कि उन्होंने शकुन्तला को पत्नी स्वीकार करने के पश्चात् कोई दूसरा विवाह नहीं किया, परन्तु शकुन्तला कण्व आश्रम में आखिर कब तक रह सकती थी, सर्वदमन बारह वर्ष का हो गया था। ठीक उसी प्रकार जैसे लव और कुश को सार्वजनिक रूप से प्रकट किया गया, ठीक वैसी ही लीला शकुन्तला के साथ भी हुई। योजना यह थी कि महामुनि कण्व शकुन्तला को लेकर राजदरबार में उपस्थित हों, साथ में सर्वदमन भी हो। यह एक रचना थी जो जान-बूझ कर रची गई। योजना यह थी कि महाराज दुष्यन्त तो सार्वजनिक रूप से शकुन्तला के प्रति उदासीन हो बने रहें। महामुनि कण्व भरे दरबार में यह घोषणा करें कि शकुन्तला महाराज की पत्नी है। शकुन्तला भी इस बात की घोषणा करे कि सर्वदमन महाराज ही का पुत्र है। महाराज दुष्यन्त को यह विश्वास था कि मंत्री मंडल ये समूचा दृश्य देखने के पश्चात् शकुन्तला को राजमाता और सर्वदमन को अपना भाग्य विधाता स्वीकार कर लेगा।

पूर्व निर्मित योजना के अनुसार शकुन्तला अपने पुत्र एवं कण्व आदि ऋषियों सहित महाराज दुष्यंत के दरबार में उपस्थित हुए। दुष्यन्त बोला,—सुन्दरी ! यहां तुम्हारे आगमन का क्या उद्देश्य है। शकुन्तला भरे दरबार में बोली,—राजन् ! ये आपका पुत्र है, इसे आप युवराज पद पर अभिषिक्त कीजिए। महाभाग ! आपने कण्व के आश्रम में मेरे साथ समागम के समय पहले ये प्रतिज्ञा की थी, उसका इस समय स्मरण कीजिए। महाभारतकार लिखते हैं —

सोऽथ श्रुत्वैव तद् वाक्यं तस्या राजा स्मरन्नपि
अब्रवीन्न स्मरामीति कस्य त्वं दुष्टतापसि ॥
धर्मकामार्थसम्बन्धं न स्मरामि त्वया सह।
गच्छ वा तिष्ठ वा कामं यद् वापीच्छसि तत् कुरु।

राजा दुष्यन्त ने सब बातों को याद रखते हुए भी शकुन्तला से इस प्रकार कहा,—मैं तो तुम्हें बिल्कल नहीं जानता तम्हारे दिल में जो

आता है करो। परन्तु शकुन्तला भी किसी छोटे मोटे बाप की बेटी नहीं थी। उसके शरीर में महाक्रोधी राजर्षि विश्वामित्र का खून था। वह बोली,—"महाराज ! सब कुछ जान कर भी आप अनजानेपन की सी बातें कर रहे हो, परन्तु आप ये मत समझिये कि आप उस समय अकेले थे। आप समझ रहे हैं कि उस समय आपको कोई देखने वाला नहीं था, परन्तु आपको पता नहीं कि वह सनातन पुरुष सब के हृदयों में अन्तर्यामी रूप से विद्यमान है। वह सब के पाप-पुण्य का जानता है और आप उसी के निकट रह कर पाप कर रहे हैं। मनुष्य पाप करके यह समझता है कि मुझे कोई नहीं जानता, किन्तु उसका यह समझना भारी भूल है क्योंकि सब देवता और अन्तर्यामी परमात्मा भी मनुष्य के उस पाप-पुण्य को देखते और जानते हैं।

आदित्यचन्द्रावनिलानलौ च
द्यौर्भूमिरापो हृदयं यमश्च।
अहश्च रात्रिश्च उभे च संध्ये
धर्मश्च जानाति नरस्य वृत्तम्।
यमो वैवस्वतस्तस्य निर्यातयति दुष्कृतम्।
हृदि स्थितः कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञो यस्य तुष्यति।
न तु तुष्यति यस्यैष पुरुषस्य दुरात्मनः।
तं यमः पापकर्माणं निर्यातयति दुष्कृतम्॥

सूरज, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज, दोनों सन्ध्याएं और धर्म, ये सभी मनुष्य के भले बुरे आचार-व्यवहार को जानते हैं। जिस पर हृदय स्थित कर्मसाक्षी क्षेत्रज्ञ परमात्मा संतुष्ट रहते हैं, सूर्य पुत्र यमराज उसके सभी पापों को स्वयं नष्ट कर देते हैं, परन्तु जिस दुरात्मा पर अन्तर्यामी संतुष्ट नहीं होते, यमराज उस पापी को उसके पापों का स्वयं ही दण्ड देते हैं। जो स्वयं अपनी आत्मा का तिरस्कार करके कुछ का कुछ समझता और करता है, देवता भी उसका भला नहीं कर सकते और उसका आत्मा भी उसके हित का साधन नहीं कर सकता। मैं स्वयं आपके पास आई हूं, ऐसा समझ कर मुझ पतिव्रता पत्नी का तिरस्कार न कीजिए। आप किस लिये भरी सभा में नीच पुरुष की भांति मेरा अपमान कर रहे हैं। महाराज ! मैं सूनो जंगल में नहीं रो रही हूं, फिर आप मेरी बात क्यों नहीं सुनते ? याद रखिये ! यदि मेरे उचित याचना करने पर भी आप मेरी बात नहीं मानेंगे तो आज आपके सिर के सैकड़ों टुकड़े हो जायेंगे। याद रखिये ! पति ही पत्नी के भीतर गर्भ रूप में प्रवेश करके पुत्र रूप में जन्म लेता है। पुत्र 'पुत्' नामक नरक से पिता का त्राण करता है, इस लिये साक्षात् ब्रह्मा ने उसे पुत्र कहा है। जिनके पत्नी हैं वे ही यज्ञादि कर्म कर सकते हैं। स्त्रियां पति के आत्मा के जन्म लेने का सनातन पुण्य क्षेत्र हैं। ऋषियों में भी इतनी शक्ति नहीं कि बिना स्त्री के सन्तान उत्पन्न कर सकें। इसलिए मैं आप से कहती हूं कि आप मेरा और अपने पुत्र का त्याग न कीजिए।" परन्तु दुष्यन्त इतने पर भी नहीं माना। वह अपनी इसी बात पर ही अड़ा रहा कि मैं तुम्हें जानता ही नहीं।

आखिर महाराज जो चाहते थे वही हुआ, उनका एक्टिंग सफल हुआ। उस समय जितने भी वहां पर ऋत्विज्, पुरोहित, आचार्य और मन्त्री उपस्थित थे, बोले,—राजन् ! अब इस अभिनय को बन्द कीजिये। शकुन्तला आपकी पत्नी है, ये सर्वदमन आपका ही पुत्र है। शकुन्तला पितृ पक्ष से राजवंशी है, इसलिए हम आपके इस पुत्र सर्वदमन को युवराज के रूप में स्वीकार करते हैं। हमारे आदेश से आप इस

अपने पुत्र का भरण-पोषण कीजिए।

भरतव्योऽयं त्वया यस्माद् अस्माकं वचनादपि ॥

इस लिये ये तुम्हारा पुत्र भरत के नाम से विख्यात होगा।

राजा दुष्यन्त देवताओं की यह बात सुन कर बोले,—मैं भी अपने इस पुत्र को अपना ही पत्र करके जानता था। यदि मात्र शकुन्तला के कहने से मैं इसे अपना लेता, तो सब लोग मुझ पर सन्देह करते और इस बालक को कोई युवराज स्वीकार न करता। महाराज दुष्यन्त ने शकुन्तला का धर्म-पूर्वक आदर-सत्कार किया और उससे बोले,—देवि! मैंने तम्हारे साथ जो विवाह सम्बन्ध स्थापित किया था, उसे साधारण जनता जानती नहीं थी, अतः समाज में तुम्हें उचित स्थान दिलाने के लिये ही मैंने ये सम्पूर्ण अभिनय रचा। यदि इस प्रकार मैं अभिनय न करता तो जनता मेरे चरित्र पर सन्देह करती।

कृतो लोकपरोक्षोऽयं सम्बन्धोवैत्वया सह।
तस्मादेतन्मया देवित्वच्छुद्धचर्थं विचारितम् ॥
मन्यते चैव लोकस्ते स्त्रीभावान्मयि संगतम्।
पुत्रश्चायं वृतो राज्ये मया तस्माद् विचारितम।

उस समय शकुन्तला और अपने पुत्र को लेकर महाराज दुष्यन्त गद्‌गद् मन हुए अपनी माता के पास पहुंचे। बोले,—मां! ये मेरा पुत्र है जो वन में पैदा हुआ। मां! तुम्हारे इस पौत्र को पाकर मैं आज पितृ ऋण से मुक्त हो गया। मां! यह शकुन्तला तुम्हारी पुत्रवधू है। महर्षि विश्वामित्र ने इसको जन्म दिया और महात्मा कण्व ने इसको पाला। तुम शकुन्तला पर कृपादृष्टि रखो। पुत्र की यह बात सुनकर राज माता रथन्तर्या ने पौत्र को हृदय से लगा लिया और अपने चरणों में पड़ी हुई शकुन्तला को दोनों भुजाओं में भर कर वे हर्ष के आंसू बहाने लगी साथ ही पौत्र के शुभ लक्षण की ओर संकेत करके बोली,—विशालाक्षि! तेरा पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् होगा। तदनन्तर महाराज दुष्यन्त ने शकुन्तला कुमार का नाम भरत रख कर उसे युवराज पद पर अभिषिक्त कर दिया। महात्मा राजा भरत का विख्यात चक्र सब ओर घूमने लगा। वह अत्यन्त प्रकाशमान् दिव्य और अजेय था। महाराज भरत समस्त भू-मण्डल में विख्यात प्रतापी एवं चक्रवर्ती सम्राट् थे। उन्होंने देवराज इन्द्र की भांति बहुत से यज्ञों का अनुष्ठान किया।

भरताद् भारती कीर्तिर्येनेदं भारतं कुलं।
अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः ॥

भरत से ही भूखण्ड का नाम भारत हुआ। उन्हीं से यह कौरववंश भरतवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद उस कुल में पहले तथा आज भी जो राजा हो गये हैं, वे भारत कहे जाते हैं।

भरतवंश में ही लगभग दो सौ वर्ष के पश्चात् शान्तनु जी महाराज का जन्म हुआ। महाभारतकार ने शान्तनु के तप तेज की बड़ी महिमा गाई है। शान्तनु भलेही कितने ही प्रबल प्रतापी राजराजेश्वर रहे हों, परन्तु उनकी एक भूल ने इस देश में एक ऐसा समय ला दिया जिसके परिणाम-स्वरूप महाभारत का युद्ध हुआ। इस बात में रामायण एव महाभारत का आधार साँझा है बुढ़ापे में जवान स्त्री से विवाह करना फरन्टयिर मेल में बैठकर श्मशान भूमि की ओर जाना है। रामायण में भी हमारे एक ऋषि ने सन्तान होते हुए भी दूसरा विवाह किया, परिणाम हुआ लंका का युद्ध। महाभारत में भी शान्तनु ने देवव्रत जैसे पुत्र के होते हुए भी दूसरा विवाह किया, परिणाम हुआ कुरुक्षेत्र का युद्ध। महाराज शान्तनु वृद्धावस्था में कन्या

पर आसक्त हो गये। दास बोला,— मेरी कन्या से जो पुत्र उत्पन्न होगा, आपके पश्चात् वही राजा बनेगा। परन्तु शान्तनु इस शर्त को मानने के लिए तैयार नहीं थे, तथापि वे सदा चिन्ता-मग्न रहते थे। एक दिन वे बातों-बातों में गंगा-नन्दन से बोले,— तुम मेरे एकमात्र पुत्र हो, धर्मवादी विद्वान् कहते हैं कि एक पुत्र का होना सन्तानहीनता का द्योतक है। यदि किसी प्रकार तुम पर कोई विपत्ति आई, तो उसी दिन यह हमारा वंश समाप्त हो जायेगा। बुद्धिमान् देवव्रत सब कुछ समझ गये। बूढ़े मन्त्री को साथ लेकर वे निषादराज के पास पहुंचे। उस समय दासराज की मन की बात जानते हुए देवव्रत बोले,सत्यवती के गर्भ से जो पुत्र होगा, वही हमारा राजा होगा। उस जमाने में प्रजा की भावनाएं कितनी बढ़ी चढ़ी थीं। प्रजा का एक साधारण से साधारण व्यक्ति भी सर्व-शिरोमणि राजाधिराज के सामने दिल खोलकर अपनी बातें निर्भयता-पूर्वक कह रहा है। निषाद बोला,— हो सकता है कि आपकी सन्तान इस बात को स्वीकार न करे। उस समय देवव्रत बोला,—नरश्रेष्ठ निषादराज! मैं ये घोषणा करता हूं,— राज तो पहले ही छोड़ दिया, अब सन्तान के लिये अटल निश्चय कर रहा हूं ॥

अद्य प्रभृति मे दाश ब्रह्मचर्यं भविष्यति।
अपुत्रस्यापि मे लोका भविष्यन्त्यक्षया दिवि।
परित्यज्यां अहं राज्यं मैथुनं चापि सर्वशः।
ऊर्ध्वरेता भविष्यामि दाश सत्यमब्रवीमिते॥

देवव्रत का यह वचन सुनकर निषादराज के रोंगटे खड़े हो गये। उसने तुरन्त उत्तर दिया,—मैं यह कन्या आपके पिता के लिए अवश्य देता हूं। उसी दिन से देवव्रत का नाम भीष्म हुआ। परन्तु इस अनमेल विवाह का परिणाम देश को भयानक रूप में भोगना पड़ा। वृद्धावस्था की सन्तान बोगस पैदा हुई, चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य। ये दोनों जवानी में ही मारे गये। विचित्रवीर्य की कोई सन्तान नहीं थी। यदि भीष्म विवाह कर लेते तो वंश नाश न होता। उस समय सत्यवती ने कहा, —पुत्र! वंश तबाह हो रहा है, तुम स्वयं धर्मानुसार विवाह कर लो। राज्य पर अपना अभिषेक करो और भारतीय प्रजा का पालन करो, परन्तु भीष्म ने अपनी प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी। वे बोले,— मैं तीनों लोकों का राज्य, देवताओं का साम्राज्य अथवा इन दोनों से भी अधिक महत्व की वस्तु को भी एकदम त्याग सकता हूं, परन्तु सत्य को किसी प्रकार भी नहीं छोड़ सकता। सारे संसार का नाश हो जाय, मुझे अमृतत्व मिलता हो या त्रिलोकी का राज्य प्राप्त होता हो तो भी मैं अपने किये हुए प्रण को तोड़ नहीं सकता। पुत्र के ऐसे वचन सुनकर माता सत्यवती इस प्रकार बोली,—बेटा! तुम सत्य पराक्रमी हो, फिर भी मेरा आग्रह है कि तुम आपद् धर्म का विचार करके, बाप-दादा के दिये हुए इस राज्य भार को वहन करो। परन्तु भीष्म ने सत्यवती की वह बात नहीं मानी।

अन्ततोगत्वा [विचित्रवीर्य की विधवा पत्नियों के द्वारा सन्तान नीयोग द्वारा उत्पन्न हुई। तीन पुत्र उत्पन्न हुए,—पाण्डु, धृतराष्ट्र एवं विदुर। धृतराष्ट्र अन्धे थे, वे राजा नहीं बन सके। पाण्डु राजा बने और विदुर प्रधान मन्त्री बने, यहां से महाभारत की कथा आरम्भ होती है। परन्तु गलती एक नहीं कितनी ही गलतियां हुई धृतराष्ट्र अंधे थे। न्याय तो ये था कि उनका विवाह न किया जाता और यदि किया भी जाता तो किसी अन्धी लड़की के साथ

किया जाता। परन्तु भूल ये हुई कि गन्धारी ने भी अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। परिणाम ये निकला कि बच्चों पर न तो माता की दृष्टि पड़ी न पिता की। नतीजा ये निकला कि लड़के लुच्चे और लफंगे बन गये। महाभारत के युद्ध का बीज बो दिया गया। पाण्डव थे पांच भाई पर कौरव थे दो। कुछ लोग कहते हैं कि कौरव सौ भाई थे, परन्तु वे अठानबे कीड़े-मकोड़े की तरह ही गिनती में आते हैं। उनके नाम भले ही कहीं किसी कागज पर लिखे हुए हों पर उनके काम की कहीं कोई चर्चा नहीं। मुख्य चर्चा का विषय यही दोनों दुर्योधन और दुःशासन हैं। दुर्योधन का ये पक्ष था कि उसका बाप सब से बड़ा था। पाण्डव उसके चाचा के पुत्र हैं, ताया के नहीं। इस लिये ये आग बचपन में भीतर ही भीतर जलती रही। ईर्ष्या से भरे हुए दुर्योधन एवं दुःशासन किसी भी लाईन में पाण्डवों का मुकाबला न कर सके। दुर्योधन, दुःशासन एन्ड ब्रदर्स अनलिमिटेड ने पांचों ही पाण्डवों को नष्ट करने की पूरी-पूरी कोशिश की। परन्तु—जाको राखे साइयां।

यह आग भीतर ही भीतर धीरे-धीरे सुलगती रही। अन्ततोगत्वा ये आग उस दिन अधिक प्रचण्ड हो गई जिस दिन युधिष्ठिर को युवराज घोषित कर दिया गया। अन्धा धृतराष्ट्र स्वयं अपने पुत्र को युवराज पद देना चाहता था।

महाभारत में कनिक नीति का प्रसंग पढ़ने लायक है। मैं ये शब्द उनको कह रहा हूं, जो ये कहते हैं कि हिन्दू धर्म केवल मार खाने का, केवल घंटे घड़ियाल बजाने का और चौके-चूल्हे का धर्म है। मैं कहता हूं हमारे धर्म में सभी रस हैं। हमारे यहां विदुर नीति भी है, शुक्र नीति भी है और कणिक नीति भी है। लीजिये, इस नीति का थोड़ा सा रसास्वादन कीजिए। हमारे इतिहास में जो गलतियां हुई हैं वे धर्म को सर्वांगरूपेण न समझने के कारण हुई हैं। हमने मुहम्मद गौरी को क्षमा कर दिया, अलाउद्दीन खिलजी को क्षमा कर दिया और ना जाने किस किस को हमने क्षमा किया। जिनको क्षमा करना चाहिए था, उनको क्षमा नहीं किया। महाराज हरीसिंह को हम क्षमा न कर सके। भूपत को मान सिंह को गोडसे को हम क्षमा न कर सके परन्तु हैदराबाद के निजाम को शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को, जुल्फिकार अलीखां भुट्टो को हमने क्षमा कर दिया। लीजिए, महाभारत में वर्णित कूटनीति का दिग्दर्शन कीजिए,—कणिक बोले,—धृतराष्ट्र! राजा को सर्वदा दण्ड देने के लिये उद्यत रहना चाहिए। राजा अपनी दुर्बलता प्रकट होने न दे परन्तु शत्रु की दुर्बलता पर सदैव दृष्टि रखे और शत्रु की निर्बलता का पता चलते ही उस पर आक्रमण कर दे। शत्रु पर आक्रमण जोर-शोर से करे। पूर्णतया शत्रु को परास्त किये बिना अधूरी लड़ाई न छोड़े। बात को एक तरफ लगा दे। आधा कांटा बाहर आधा कांटा भीतर न करे, क्योंकि शरीर में गड़ा हुआ कांटा यदि आधा टूट कर भीतर रह जाय तो वह बहुत दिनों तक मवाद देता रहता है।

जिस प्रकार थोड़ी सी भी आग ईंधन का सहारा मिल जाने पर समूचे वन को जला देती है। उसी प्रकार छोटा शत्रु भी अमेरिका और चाइना से प्रबल आश्रय का सहारा लेकर विनाशकारी बन जाता है।

यह मेरी शरण में आया है यह सोचकर शत्रु के प्रति दया नहीं दिखानी चाहिए। शत्रु

को मार देने में ही राजा निर्भय हो सकता है। शत्रु बहुत दीनतापूर्ण बचन बोले तो भी उसे जीवित नहीं छोड़ना चाहिए। जो शत्रु बार-बार वचन करके बार-बार भंग करे उसे तो समाप्त कर ही देना चाहिए। पुत्र, मित्र, भाई, गुरु अथवा पिता कोई भी क्यों न हो यदि वह देश के लिये घातक है, राजा को ऐसे लोगों को एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रखना चाहिए।

मन में क्रोध भरा हो तो भी ऊपर से क्रोध शून्य बना रहे और मुस्करा के बात करना चाहिए। जो विश्वासपात्र नहीं है, उस पर कभी विश्वास न करे परन्तु जो विश्वासपात्र हैं उस पर भी अतिविश्वास न करे, क्योंकि अतिविश्वास से उत्पन्न होने वाला भय राजा की जड़-मूल का विनाश कर डालता है। राजा को चाहिए कि शत्रु के राज्य में ऐसे गुप्तचरों को नियुक्त करे जो पाखण्ड वेषधारी अथवा तपस्वी आदि हों। राजा बातचीत में अत्यन्त विनयशील हो परन्तु हृदय छुरे के समान तीखा बनाये रखे। अत्यन्त भयानक कर्म करने के लिए उद्यत हो तो भी मुस्करा कर ही वार्तालाप करे। नीतिज्ञ राजा ऐसे वृक्ष के समान रहे। जिस में फूल तो खूब लगे हों पर फल एक भी न हो। फल लगने पर भी उस पर चढ़ना अत्यन्त कठिन हो। वह निरन्तर वायदे करता रहे परन्तु वायदे पुरे कभी न करे। मित्र और शत्रु किसी को भी यह पता न चले कि राजा कब क्या करना चाहता है। जो मनुष्य दण्ड के द्वारा वश में किये हुए शत्रु पर दया करता है, वह मौत को ही अपनाता है। ऐश्वर्य की इच्छा रखने वाले राजा को देश और काल का भली भांति ध्यान रखते हुए कदम आगे बढ़ाना चाहिए।

कुरुश्रेष्ठ! राजा को चाहिए, यदि वह किसी को किसी बात की आशा दे भी तो भी उसे शीघ्र पूरी न करके दीर्घकाल तक लटकाये रखे। जब उसे पर्ण करने का समय आवे तो उसमें कोई विघ्न डाल देवे और इस प्रकार समय की अवधि को बढ़ाता जाय।

कुरुश्रेष्ठ! आपके भतीजे बहुत बलवान् हैं, इस लिये आप ऐसी नीति से चलिये जिस से वे इतना आगे न बढ़ जायं जिससे तुम्हारे तथा तुम्हारे पुत्रों के लिये बहुत बड़ा खतरा बन जाय।

उसी रात शकुनी, दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण, इस चण्डाल चौकड़ी ने एक दुष्टतापूर्ण गुप्त सलाह की। उन्होंने कुरु नन्दन महाराज धृतराष्ट्र से आज्ञा लेकर पुत्रों सहित कुन्ती को आग में जला डालने का विचार किया। आगे महाभारतकार लिखते हैं,—

तेषामिङ्गितभावज्ञो विदुरस्तत्त्वदर्शिवान्।
आकारेण च तं मन्त्रं बुबुधे दुष्टचेतसाम्॥
ततो विदितवेद्यात्मा पाण्डवानां हितेरतः।
पलायने मतिं चक्रे कुन्त्याः पुत्रैः सहानघः॥
ऊर्मिक्षमां दृढां कृत्वा कुन्तीमिदमुवाच ह।
एष जात कुलस्यास्य कीर्तिवंशप्रणाशनः।
धृतराष्ट्र परीतात्मा धर्मं त्यजति शाश्वतम्॥
इयं वारिपथे युक्ता तरङ्गपवनक्षमा।
नौर्यया मृत्युपाशात् त्वं सपुत्रा मोक्ष्यसे शुभे॥
तच्छ्रुत्वा व्यथिता कुन्ती पुनः सह यशस्विनी।
नावमारुह्य गङ्गायां प्रययौ भरतर्षभ॥

महात्मा विदुर बड़े बुद्धिमान् थे। उन्होंने सारी बात समझ ली। वे पाण्डवों के शुभ चिन्तक थे पाण्डवों को बचाने का उन्होंने उपाय सोचा। उन्होंने सारी बात कुन्ती को बता दिया।

और पाण्डवों को गंगा के दूसरी ओर पहुंचा दिया गया। पाण्डव मृत्यु से बच गये, उन्हें किसी प्रकार की क्षति नहीं पहुंची। गंगा के पार पहुंचते ही पांचों भाई माता कुन्ती सहित तीव्र गति से आगे बढ़े। चलते-चलते वे एकचक्रा गांव में पहुंचे, जहां स्वयं सत्यवती नन्दन भगवान् वेदव्यास निवास करते थे। एक दिन कुछ ब्राह्मण कहीं जाते हुए एकचक्रा गांव में ठहरे। कुन्ती ने उनसे प्रश्न किया,—आप लोग कहां जा रहे हैं? वे ब्राह्मण बोले,—हम पांचाल देश को जा रहे हैं।

गच्छताञ्चैव पञ्चालान् द्रुपदस्य निवेशने।
स्वयंवरो महांस्तत्र भविता सुमहाघनः॥
एकसार्थं प्रयाताः स्म वयं तत्रैव गामिनः।
तत्र ह्यद्भुतसंकाशो भविता सुमहोत्सवः॥

वहां राजा द्रुपद के दरबार में स्वयंवर का बहुत बड़ा उत्सव होने वाला है। युधिष्ठर बोले,—

परमं भो गमिष्यामो द्रष्टुं चैव महोत्सवं॥

ब्राह्मणों! हम भी द्रुपद कन्या के उस स्वयंवर को देखने के लिए आपके साथ चलेंगे। व्यास जी की आज्ञा ले पाण्डव द्रुपद राजा की राजधानी की ओर चल दिये। आगे महाभारत-कार लिखते हैं।

यज्ञसेनस्य कामस्तु पाण्डवाय किरीटिने।
कृष्णां दद्यामिति सदा न चैतद् विवृणोति सः।

महाभारत में ही वर्णित कथा है। एक ही युग के दो रूप हैं। कृष्ण ने बालसखा सुदामा को कितना मान दिया, द्रुपद राजा ने अपने बाल सखा द्रोण का अपमान किया,—कथा इस प्रकार है, द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा दूध के लिए व्याकुल था। निधन ब्राह्मण गा याचना के लिये अपने सहपाठी द्रुपद राज के दरबार में उपस्थित हुआ,—बोला,—

ततो द्रुपदमासाद्य भारद्वाजः प्रतापवान्।
अब्रवीत् पुरुषव्याघ्रः सखायं विद्धि मामिति।

तब पुरुषसिंह प्रतापी द्रोण ने राजा द्रुपद के पास जा कर कहा—'राजन्! मैं तुम्हारा सखा हूं, मुझे पहचानो।"

महाराजा द्रुपद बोले,—

नाश्रोत्रियः श्रोत्रियस्य नारथी रथिनः सखा।
नाराजा पार्थिवस्यापि सखिपूर्वं किमिष्यते॥

जो श्रोत्रिय नहीं है, वह श्रोत्रियका, जो रथी नहीं है, वह रथी वीर का और इसी प्रकार जो राजा नहीं है, वह किसी राजा का मित्र होने योग्य नहीं है, फिर तुम पहले की मित्रता की अभिलाषा क्यों करते हो।'

अपमान का बदला

द्रोणाचार्य भीष्म की सेवा में उपस्थित हुए,—उद्देश्य केवल इतना ही था, राजकुमारों को शिक्षित बना उन द्वारा द्रुपद राजा को ताकत के घमण्ड का मजा चखाना। जब राजकुमार तैयार हो गये, उन्हें साथ ले गुरुदेव ने द्रुपद राजा पर आक्रमण कर दिया।

पार्षतो द्रुपदो नामच्छत्रवत्यां नरेश्वरः।
तस्मादाकृष्य तव राज्यं मम शीघ्रं प्रदीयताम्।

कर्ण, दुर्योधन आदि कौरव तो रणभूमि से भाग गये। तब पांचों पाण्डवों ने द्रुपद को युद्ध में परास्त कर दिया और मन्त्रियों सहित उन्हें कैद करके द्रोण के सम्मुख ला दिया।

अमित तेजस्वी अर्जुन का वह महान् पराक्रम देखकर राजा द्रुपद के सभी बान्धवजन बड़े विस्मित हुए और मन ही मन कहने लगे,—

नास्त्यर्जुनसमो वीर्ये राजपुत्र इति ब्रुवन्॥

अर्जुन के समान शक्तिशाली दूसरा राजकुमार नहीं है।

इन्क्लाब जिन्दाबाद। फकीर राजा बना बैठा था और राजा अपराधी के तौर पर हाथ जोड़े बैठा था। उस समय द्रोणाचार्य बोले,—राजन्! मैं फिर भी तुम से मित्रता के लए प्रार्थना करता हूं। यज्ञसेन! तुमने कहा था जो राजा नहीं वह राजा का मित्र नहीं हो सकता अतः मैंने राज्य की प्राप्ति के लिये तुम्हारे साथ युद्ध किया। तुम गंगा के दक्षिण में राजा रहो और मै उत्तर तट में।

उस समय द्रुपद नरेश बोले,—

एवं भवतु भद्रं ते भारद्वाज महामते।
सख्यं तदेवभवतु शश्वद् यदभिमन्यसे ॥

भगवन्! जैसा आप कहते हैं वैसा ही होगा, परन्तु महाराज द्रुपद अपने उस अपमान को भूले नहीं और अपने अपमान का बदला द्रोणाचार्य से लेने को तलाश में थे।

जिस समय महाराज द्रुपद ने अर्जुन को शूरमाई देखी थी, उन्होंने तभी निश्चय कर लिया कि मैंने अर्जुन को अपना धर्म-पुत्र बनाना है। अर्जुन का रूप अद्भुत था, उनका धैर्य आश्चर्यजनक था। उनका पराक्रम और उनकी अस्त्र-शिक्षा भी अलौकिक थी। उस समय द्रुपद राज ने द्रोणाचार्य से बदला लेने के लिये प्रभु से दो याचनाएं कीं। एक तो ऐसा पुत्र मांगा जो द्रोणाचार्य का वध कर सके और दूसरी—ऐसी कन्या मांगी जो वीर अर्जुन की पटरानी बन सके। पाञ्चालराज के गुरु बोले,—राजन्! आप सम्पूर्ण नगर में स्वयंवर को घोषणा करा दें।

यत्र वा निवसन्तस्ते पाण्डवाः पृथया सह।
दूरस्था वा समोपस्थाः स्वर्गस्था वापि पाण्डवाः ॥
श्रुत्वा स्वयंवरं राजन् समेष्यन्ति न संशयः।
तस्मात् स्वयंवरो राजन् घुष्यतां मा चिरं कृथाः ॥

पाण्डव लोग जहां कहीं भी होंगे, स्वयंवर का समाचार सुनकर वे अवश्य आयेंगे। पुरोहित की बात सुनकर पाञ्चालराज को बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने नगर में घोषणा करवा दी,—पौष मास के शुक्ल पक्ष में शुभ तिथि एकादशी को रोहिणी नक्षत्र में द्रोपदी का स्वयंवर होगा। स्वयंवर के दिन से पचहत्तर दिन पहले यह घोषणा की गई।

इसलिए हम यह कहते हैं कि स्वयंवर वर को ढूंढने के लिये नहीं था, केवल अर्जुन को अपना धर्मपुत्र बनाने के लिए था।

सोऽन्वेषमाणः कौन्तेयं पाञ्चाल्यो जनमेजय।
दृढं धनुरनायम्यं कारयामास भारत ॥

इन शब्दों से स्पष्ट प्रतीत देता हे कि स्वयंवर द्रौपदी के लिये वर ढूंढने के लिये नहीं था केवल अर्जुन को राष्ट्र-पुरुष के रूप में भारतोय रंग मंच पर एक बार पुनः प्रकाश में लाने के लिये था। इसलिये स्वयंवर को शर्त खूब छान-बीन कर ऐसी रखी गई जिसे अर्जुन ही पूरी कर सके। स्वयंवर का अर्थ यह कदापि नहां था कि जो भी चाहे ऐरा गैरा नत्थू खैरा बीच में आ टपके। कुछ आयु का भी ध्यान रखा जाता था दोनों वंशों की सामाजिक, आर्थिक समानताओं का भी ध्यान रखा जाता था।

एक प्रश्न विचारणीय अवश्य है। द्रुपदराज यदि अपनी पुत्री का विवाह अर्जुन के साथ करना चाहते थे तो अर्जुन को अपने घर में बुलाकर सामान्य रीति से भी विवाह पढ़ा जा सकता था। आपको एक बात और ध्यान में भली-भांति जमा लेनी चाहिए कि पर्दे के पीछे इस समूचे नाटक के सत्रधार थे भगवान् कृष्ण। स्वयं कृष्ण का यह प्रस्ताव था कि अर्जुन का विवाह द्रौपदी से हो। कुरुक्षेत्र के मैदान में राष्ट्र

के जिस भाग्य का निर्णय होना था, अर्जुन का पाञ्चाल देश के साथ इस प्रकार का सम्बन्ध एक भूमिका मात्र थी। धीरे-धीरे देश दो हिस्सों में बंटता जा रहा था। एक ताकत थी जिसके नेता थे श्री कृष्ण, दूसरी ताकत थी जिसका चौधरी था जरासंध। पाञ्चाल देश की गणना देश-भक्तों में थी, इसलिए कृष्ण महाराज पाण्डवों का सम्बन्ध पाञ्चाल देश के साथ करवाकर पाण्डवों को एकदम दूसरे दर्जे की ताकत तक पहुंचा देना चाहते थे।

कृष्ण जानते थे कि पाण्डव लाक्षागृह से बचा लिए गये हैं। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि पाण्डव स्वयंवर में अवश्य ही आयेंगे। धरती पर तीन ही व्यक्ति जानते थे कि पाण्डव जीवित हैं। एक महात्मा विदुर, दूसरे व्यास, तीसरे कृष्ण। क्योंकि संसार यह जान चुका था कि अर्जुन मर चुका, इसलिये वे चाहते थे, सर्वप्रथम अर्जुन से ऐसा महान् कार्य करवाया जाय जिससे संसार जान ले और मान ले कि पांचों पाण्डव भाई जीवित हैं। पीछे विवाह संस्कार निभाया जाना सहज और सरल है। फकीरों को बादशाह बनाने के लिये भगवान् कृष्ण अपने साथ बहुत कुछ लाये थे। मणिजड़ित आभूषण बहुमल्य वस्त्र, अनेक देशों के बने हुए कोमल स्पर्श वाले कम्बल, हाथी, घोड़े, रथ, करोड़ों स्वर्ण मुद्राएं और भी बहुत कुछ।

स्वयंवर आरम्भ हुआ, उस समय मंच पर उपस्थित हो महाराजा द्रुपद ने एक कृत्रिम आकाश यन्त्र बनवाया था उस यन्त्र के छिद्र के ऊपर उसी के बराबर का लक्ष्य तैयार करके रखवा दिया था। उस समय द्रुपद ने घोषणा की जो वीर इस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर इन बाणों द्वारा ही यन्त्र के छेद के भीतर से इसे लांघकर लक्ष्यवेध करेगा, वही मेरी पुत्री को प्राप्त करेगा। उस समय धरती भर के लगभग सभी नरेश वहाँ पर उपस्थित थे। जिनमें दुर्योधन, दुःशासन, विकर्ण, विविंशति, शकुनि, बृहद्बल, अश्वत्थामा, भोज, बृहंत, विराट, सेनाबिन्दु इत्यादि सभी राजा थे। सिन्धुराज जयद्रथ शिशुपाल, जरासंध, वत्सराज सभी थे। भगवान् कृष्ण, बलराम, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध ये सभी वृष्णिवंशी वहां पर थे। उस समय धृष्टद्युम्न मंच पर उपस्थित हुआ और—

निःशब्दे तु कृते तस्मिन् धृष्टद्युम्नो विशाम्पते।
कृष्णामादाय विधिवन्मेघदुन्दुभिनिःस्वनः॥
रङ्गमध्ये गतस्तत्र मेघगम्भीरया गिरा।
वाक्यमुच्चैर्जगादेदं श्लक्ष्णमर्थवदुत्तमम्॥

इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः
शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः।
छिद्रेण यन्त्रस्य समर्पयध्वं
शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः॥
एतन्महत् कर्म करोति यो वै
कुलेन रूपेण बलेन युक्तः।
तस्याद्य भार्या भगिनी ममेयं
कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि॥

बाजों की आवाज बन्द हो जाने पर जब स्वयंवर सभा में सन्नाटा छा गया, तब विधि के अनुसार धृष्टद्युम्न द्रौपदी को साथ लेकर रङ्गमण्डप के बीच में खड़ा हो मेघ और दुन्दुभि के समान स्वर तथा मेघ-गर्जन को सी गम्भीर वाणी में यह अर्थयुक्त उत्तम एवं मधुर वचन बोला,—यहां आये हुए भूपालगण! आप लोग ध्यान देकर मेरी बातें सुनें। यह धनुष है, ये बाण हैं और यह निशाना है। आप लोग आकाश में छोड़े हुए पांच पंने बाणों द्वारा उस यन्त्र के छेद के भीतर से लक्ष्य को बेधकर गिरा दें। मैं

सच कहता हूं, झूठ नहीं बोलता जो उत्तम, कुल, सुन्दर रूप और श्रेष्ठ बल से सम्पन्न वीर यह महान् कर्म कर दिखायेगा, आज यह मेरी बहिन कृष्णा उसी की धर्मपत्नी होगी।

क्योंकि स्वयंवर केवल अर्जुन को प्रकाश में लाने के लिये था। इस बात का अन्देशा था कि अर्जुन को अनुपस्थिति में यदि कर्ण ने निशाना बेध दिया तो? निश्चय यह हुआ कि कर्ण को स्वयंवर में हिस्सा न लेने दिया जाये। और हुआ भी ऐसे ही। जिस समय कर्ण उठा, द्रौपदी ने स्वयं ही ऊंची आवाज में कह दिया,—

दृष्टवा तु तं द्रौपदी वाक्यमुच्चैः—
जंगाद नाऽहं वरयामि सूतम् ।
सामर्षहासं प्रसमीक्ष्य सूर्य
तत्याज कर्णः स्फुरितं धनुस्तत् ॥

कर्ण को देखकर द्रौपदी ने उच्च स्वर से यह बात कही, —"मैं सूत जाति के पुरुष का वरण नहीं करूंगी"। यह सुनकर कर्ण ने अमर्ष-युक्त हंसी के साथ भगवान् सूर्य की ओर देखा और उस प्रकाशमान धनुष को डाल दिया।

कृष्ण महाराज जानते थे कि पाण्डव सभा में विराजमान् हैं।

दृष्टवा तु तान् मतगजेन्द्ररूपान्
पञ्चाभिपद्मानिव वारणेन्द्रान् ।
भस्मावृताङ्गानिव हव्यवाहान्
कृष्णः प्रदध्यौ यदुवीर मुख्यः ॥
शशंस रामाय युधिष्ठिरं स
भीमं सजिष्णुं च यमौ च वीरौ ।
शनैः शनैस्तान् प्रसमीक्ष्य रामो
जनार्दनं प्रीतमना ददर्श ह ॥

यदुवंशी वीरों के प्रधान नेता श्री कृष्ण ने लक्ष्मी के सम्मुख विराजमान गजराजों तथा राख में छिपी हुई आग के समान, मतवाले हाथी की सी आकृति वाले पाण्डवों को, जो अपने सब अङ्गों में भस्म लपेटे हुए थे, देखकर तुरन्त पहचान लिया और बलराम जी से धीरे धीरे कहा—भैया! वह देखिये, युधिष्ठर, भीम और अर्जुन दोनों जुड़वे वीर नकुल-सहदेव उधर बैठे हैं बलराम जी ने उन्हें देखकर अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो भगवान् श्री कृष्ण की ओर दृष्टिपात किया।

सबसे आखिर में अर्जुन उठा। अर्जुन का निशाना ठीक बैठा। लक्ष्य को बींध कर धरती पर गिरा देख इन्द्र के तुल्य पराक्रमी अर्जुन पर दृष्टि डालकर हाथ में सुन्दर श्वेत पुष्पों की जयमाला लिये द्रौपदी मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई कुन्ती कुमार के समीप गई। वह द्रुपद कुमारी बिना हंसी के भी हंसती सी प्रतीत होती थी। बिना बोले ही केवल दृष्टि से ही बातचीत करती सी जान पड़ती थी। जैसे शची ने देवराज इन्द्र का, स्वाहा ने अग्निदेव का, लक्ष्मी ने भगवान् विष्णु का, उषा ने सूर्य देव का, रति ने कामदेव का, गिरिराजकुमारी उमा ने महेश्वर का, विदेहराजनन्दिनी सीता ने श्री राम का तथा भीमकुमारी दमयन्ती ने नल का, उसी प्रकार द्रौपदी ने पाण्डुपुत्र अर्जुन का वरण कर लिया।

शचीव देवेन्द्रमथाग्निदेवं
स्वाहेव लक्ष्मीश्च यथा मुकुन्दम् ।
उषेव सूर्यं मदनं रतिश्च
महेश्वरं पर्वतराजपुत्री
रामं यथा मैथिलराज पुत्री
भैमीयथा राजवरं नलंहि ॥

कृष्ण की मनोकामना पूर्ण हुई। उन्होंने पाण्डवों को एकदम उठा कर देश की दूसरी परम शक्ति तक पहुंचा दिया।

अर्जुन के दो विवाह हुए,—दूसरा विवाह पौलीटिकल विवाह था, सुभद्रा के साथ। सुभद्रा बलराम जी की सगी बहन थी,—बलराम जी को अर्जुन के पक्ष में लाने के लिए ही कृष्ण ने अर्जुन का विवाह सुभद्रा से करवाया था।

द्रौपदी के पांच पतियों वाली जो बात प्रचलित है. उसके सम्बन्ध में भी कुछ शब्द कह देना आवश्यक है। इस गल्तफहमी का आधार एक केवल एक किम्वदन्ति—"जब पांडव द्रौपदी को लेकर आये तो मां ने कहा, बांट कर खा लो। सर्वप्रथम तो यह शब्द, माता ने केवल भ्रम में कहे थे,—द्रौपदी को देखे बिना। तथापि यदि माता के मुंह से शब्द निकल भी गये, तो क्या माता के शब्दों को हर हालत में अक्षरशः मान लेना जरूरी है, क्या इस सम्बन्ध में उचित अनुचित का कुछ भी विचार न होना चाहिये। यदि उत्तर "हां" में है तो भरत ने अपनी मां की आज्ञा क्यों नहीं मानी,—नवयुवक वेतवृतने अपनी माता सत्यवती की आज्ञा क्यों नहीं मानी प्रह्लाद ने अपने पिता की आज्ञा क्यों नहीं मानी ?

फिर श्रीराम ने इसी अपराध में वाली को क्यों मार डाला।

अनुज वधु भगिनी सुत नारी।
सुनु शठ इह कन्या सम चारी॥

सुग्रीव पत्नी रूमा की जो पोजीशन वाली के सामने थे वही पोजीशन द्रौपदी का युधिष्ठिर के सामने थी। जिस अनर्थ को श्री राम सहन न कर सके, क्या श्रीकृष्ण अपनी आंखों के सामने कभी भी ऐसा अनर्थ होता देख सकते थे।

सच बात तो यह है कि द्रौपदी धर्मपत्नी अर्जुन की ही थी.—वह पांचों पाण्डवों की पटरानी अर्थात् Queen Mother थी। जिस माता के पुत्र ने उत्तराधिकार सम्भालना है उसे महिषी महारानी, पटरानी का खिताब मिलता है, जब तक अर्जुन नहीं मिला था, द्रौपदी के पिता का ध्यान केवल एक ही समस्या पर टिका था—क्या अर्जुन मिल भी जायगा ? क्रिकेट तो बाई चांस ही है। यदि निशाना चूक गया, तो—जब अर्जुन परीक्षा में सफल हुआ, अब एक दूसरी चिन्ता व्यापी यज्ञ सेन के हृदय में। अर्जुन तो मध्यम पांडव है, राज्य का अधिकारी होगा युधिष्ठिर का पुत्र—मेरी पुत्री की पुत्रा क्या बनेगा ? प्रत्येक पिता चाहता है उस का पुत्र अपने घर की मालकिन बने। उस समय श्री कृष्ण ने इस समस्या को बहुत अच्छे ढंग से सलझाया। कृष्ण बोले, राजन ! अभी पांचों पाण्डव राज भवन में आ जावेंगे और यज्ञ की अग्नि को साक्षी करके वे इस बात का घोषणा कर देंगे कि पाँचों पाण्डवों के पश्चात् यौवराज्य पद का अधिकार अर्जुन के पुत्र को ही होगा।—द्रौपदी पांचों पाण्डवों की रानी नहीं थी, पटरानी थी। इस लिये धर्मराज ने जूए में अपकी पत्नी को नहीं हारा, द्रौपदी के अधिकार कों हारा।

अब प्रश्न यह है कि पांचों भाइयों के विवाह का महाभारत में वर्णन क्यों नहीं ?—महाकाव्य का यह सिद्धान्त है, केवल नायक के ही जन्म का एवं विवाह मां वर्णन होता है। रामायण में भी तो केवल श्री रामचन्द्र के ही विवाह का वर्णन है ? लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न के विवाह का तो वहां कुछ या वर्णन नहीं। और फिर अर्जुन का विवाह भी तो पहले नहीं हुआ था, अर्जुन से पूर्व भीम का विवाह भी तो हिडिम्बा से हो चुका था। सोचने वाली बात तो यह है विवाह मण्डप में माता की मौजूदगी के विवाह कैसे हो गया, विवाह संस्कार से पूर्व बड़े बजुर्गों की मिलनी होती है। पाण्डवों का ओर से किसी न किसी वृद्ध पितामहों से मिलनी अवश्य की होगी। अपने धर्मग्रन्थों को आकाश में उड़कर मत पढ़िय, धरती पर रहते हुए पढ़िये—आगे का वृत्तान्त कल सही।

बोल कृष्ण बलदेव की जय !

(३)

सभा पर्व

द्वैपायनोष्ठपुटनिःसृतमप्रमेय
पुण्यं पवित्रमथ पापहरं शिवं च।
यो भारतं समधिगच्छति वाच्यमानं
किं तस्य पुष्करजलैरभिषेचनेन ॥
यो गोशतं कनकशृङ्गमयं ददाति
विप्राय वेदविदुषे सुबहुश्रुताय।
पुण्यां च भारतकथां सततं श्रणोति
तुल्यं फलं भवति तस्य च तस्य चैव ॥

दवियो एवं भद्रपुरुषो !

अब हम अपने कल वाले प्रसङ्ग को आगे वढ़ाते हैं।

भगवान् श्री कृष्णद्वैपायन के मुखारविन्द से निकला हुआ यह महाभारत अत्यन्त पुण्यजनक, पापहारी एवं कल्याणरूप है; इसकी महिमा अपार है। जो इस महाभारत की कथा को सुन कर हृदयंगम कर लेता है उसे तीर्थराज प्रयाग में गोता लगाने की क्या आवश्यकता है? पुष्कर स्नान का जो फल शास्त्रों में कहा गया है, वह उसे इस कथा के श्रवण से ही मिल जाता है। एक ओर तो एक मनुष्य वेदज्ञ एवं अनेक शास्त्रों के जानने वाले ब्राह्मण को सोने से मढ़े हुए सींगों वाली सौ गौएं दान करता है दूसरी ओर दूसरा मनुष्य नित्य महाभारत की पुण्यमयी कथा का श्रवण करता है, उन दोनों को समान फल मिलता है। इस है गौरव महाभारत का।

द्रोपदी को स्वयंबर में जीतना पांडवों के लिए ओलिम्पिक गेम्ज़ में गोलडन मैडल जीतना था। दुर्योधन-दुःशासन-शकुनि-कर्ण- एन्ड कम्पनी के पल्ले एक कांसे का तगमा तक न पड़ा। धाक जम गयी संसार भर में पांडवों की और लानत मुलामत पल्ले पड़ी कौरव-कुल पिता धृतराष्ट्र के अब क्या होना चाहिए। दुर्योधन-शकुनि इत्यादि तो अब भी पांडवों को नेस्तो नाबूद कर देने के ही मन्सुबे बांध रहे थे, परन्तु इन्टरनैशनल राजनीति चक्र का दबाव कुछ इस प्रकार का था जो दुर्योधन के इस प्रकार के मंसूबे धरे धराय रह गये। कौरव-हाइ-कमांड अपने लिए यही श्रेयस्कर समझता था कि पांडव बन्धुओं को सम्मानपूर्वक हस्तिनापुर में लाया जाए, और राजवंशी उत्तराधिकारी के समान उन्हें यहां बसाया जाय। पांडव बन्धुओं के पुनर्वास के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए महात्मा विदुर बोले,—

कथं हि पाण्डवः श्रीमान् सव्यसाची धनंजयः ।

शक्यो विजेतुं संग्रामे राजन् मघवतापि हि ॥
यस्मिन् धृतिरनुक्रोशः क्षमा सत्यं पराक्रमः ।
नित्यानि पाण्डवे ज्येष्ठे स जीयेत रणे कथम् ॥

राजन् ! दायें-बायें दोनों हाथों से बाण चलाने वाले श्रीमान् पाण्डवकुमार धनंजय को साक्षात् इन्द्र भी युद्ध में कैसे जीत सकते हैं। जिन ज्येष्ठ पाण्डव युधिष्ठर में धैर्य, दया, क्षमा, सत्य और पराक्रम आदि गुण नित्य निवास करते हैं, उन्हें रणभूमि में कैसे हटाया जा सकता है ?

दस हज़ार हाथियों के समान महान् बलवान् महाबाहु भीम सेन को युद्ध में देवता भी कैसे जीत सकते हैं ?

येषां पक्षधरो रामो येषां मन्त्री जनार्दनः ।
किं न तैरजितं संख्ये येषां पक्षे च सत्यकिः ॥

बलराम जी जिनके पक्षपाती हैं, भगवान् श्रीकृष्ण जिनके सलाहकार हैं तथा जिनके पक्ष ने सात्यकि वीर है, वे पाण्डव युद्ध में किसे नहीं परास्त कर देंगे ?

अन्ततोगत्वा धृतराष्ट्र को हाईकौमान्ड की इच्छाओं के आगे सिर झुकाना पड़ा। उस ने समय की नज़ाकत को पहचाना, बोला—

यथैव पाण्डोस्ते वीराः कुन्तीपुत्रा महारथाः ।
तथैव धर्मतः सर्वे मम पुत्रा न संशयः ॥
यथैव मम पुत्राणामिदं राज्य विधीयते ।
तथैव पाण्डपुत्राणामिदं राज्यं न संशयः ॥

कुन्ती के वीर महारथी पुत्र जैसे पाण्डु के पुत्र हैं, उसी प्रकार धर्म की दृष्टि से वे सब मेरे भी पुत्र हैं—इसमें संशय नहीं है। जैसे मेरे पुत्रों का यह राज्य कहा जाता है, उसी प्रकार पाण्डु-पुत्रों का भी यह राज्य है।

भरतवंशी विदुर ! अब तुम्हीं जाओ और माता कुन्ती तथा वधू कृष्णा के साथ पाण्डव बन्धुओं को सत्कारपूर्वक हस्तिनापुर ले आओ।

पांडवों के हस्तिनापुर लौट जाने के प्रस्ताव का सब से प्रबल समर्थन स्वयं कृष्ण ने किया। महाराज द्रुपद ने भी प्रस्ताव का समर्थन किया।

माता कुन्ती सहित पांचों भाई हस्तिनापुर पधारे, नगर निवासियों ने उनका हार्दिक स्वागत किया—परन्तु धृतराष्ट्र हृदय से पाण्डवों को हस्तिनापुर में रखना नहीं चाहता था, क्योंकि पांडवबन्धु उस के अपने पुत्रों की अपेक्षा सब प्रकार से बढ़े चढ़े थे, अतः यह सोचा गया कि पाण्डवों को राज्य के दक्षिणी भाग खाण्डव बन में बसा दिया जाय। खाण्डव प्रस्थ उन दिनों एक भयानक वियावान के रूप में था, — परन्तु पाण्डव-बन्धुओं ने प्रसन्नतापूर्वक वहां जाकर रहना स्वीकार कर लिया, और उनके पुरुषार्थ एवं सद्गुरुदेव कृष्ण की कृपा से जंगल में मंगल लग गया। धीरे-धीरे उसी स्थान पर एक परम सुन्दर नगर इन्द्रप्रस्थ बस गया। खाण्डव-दाह के प्रसाद स्वरूप महान् वस्तुएं पाण्डवों को प्राप्त हुईं।

गदा जो अकेली एक लाख गदाओं के बराबर है, "सा वै शतसहस्त्रस्य सम्मिता शत्रुघातिनी" देवदत्त शङ्ख—अर्जुन को मिला, गदा भीम को' मयदानव ने चौदह महीनों में वह शानदार भवन तैयार किया, जिस की सुन्दरता देखते ही बनती थी, जहां थल के स्थान पर जल और जल के स्थान पर थल दिखाई देता था। इस सभा भवन को अर्जुन की भेंट करते हुए मयासुर ने कहा,—

एषा सभा सव्यसाचिन् ध्वजो ह्यत्र भविष्यति।
वहुवर्णं हि लक्ष्येत ध्वजं वानर लक्षणम् ॥

आपका यह वानर चिन्हित ध्वज अनेक

रंग का दिखायी देता है। आप युद्ध में इस उत्कट एवं स्थिर ध्वज को कभी झुकता नहीं देखेंगे।

धर्मराज का इन्द्रप्रस्थ खूब बढ़ा, खूब फैला, खूब प्रसारित हुआ। मल्ल, नट, झल्ल, सूत और वैतालिक वहां उपस्थित रहते। पाण्डवों की वह राजधानी सन्त-महात्माओं से सदैव भरी पूरी रहती।

असित, देवल, सत्य, सर्पिमाली, महाशिरा, अर्वावसु, सुमित्र, मैत्रेय, शुनक, बलि, बक, दालभ्य, स्थूलशिरा, कृष्ण द्वैपायन, शुकदेव, व्यास जी के शिष्य समन्तु, जैमिनी, पैल तथा दमलोग, तित्तरि, याज्ञवल्क्य, पुत्र सहित लोमहर्षण, अप्सुहोम्य, धौम्य, अणीमाण्डव्य, कौशिक, दामोष्णीय, त्रीबलि, पर्णाद, घटजानुक मौञ्जायन, वायुभक्ष, पाराशर्य, सारिक, बालिवाक, सिनीवाक, सत्यपाल, कृतश्रम, जातूकर्ण शिखावान्, आलम्ब, परिजातक, महाभाग पर्वत, महामुनि मार्कण्डेय, पवित्रपाणि, सावर्ण, भालुकि, गालव, जङ्घाबन्धु, रम्य, कोपवेग भृगु, हरिबभ्रु, कौण्डिन्य, बभ्रुमाली, सनातन, काक्षीवान्, औशिज, नाचिकेत, गौतम, पैङ्ग्य, वराह, शुनिक (द्वितीय), महातपस्वी शाण्डिल्य, कुक्कुर, वेणुजङ्घ, कालाप तथा कठ, आदि धर्मज्ञ, जितात्मा और जितेन्द्रिय मुनि उस सभा में विराजते थे। ये तथा और भी वेद-वेदाङ्गों के पारङ्गत बहुत से मुनिश्रेष्ठ उस सभा में महात्मा युधिष्ठिर के पास बैठा करते थे। वे धर्मज्ञ पवित्रात्मा और निर्मल महर्षि राजा युधिष्ठिर को पवित्र कथाएं सुनाया करते थे। इसी प्रकार क्षत्रियों में श्रेष्ठ नरेश भी वहां धर्मराज युधिष्ठिर की उपासना करते थे।

एक दिन धर्मराज कृष्ण से बोले,—

प्रार्थितो राजसूयो मे न चाऽसौ केवलेप्सया ।
प्राप्यते येन तत् ते हि विदित कृष्ण सर्वशः ॥

कृष्ण! मैं राजसूय यज्ञ करना चाहता हूं, परन्तु इसके विषय में अंतिम निश्चय आप ही को करना होगा। आप ही मेरे परम हितैषी हैं।

भगवान् श्री कृष्ण बोले,—राजन्! आपका विचार बहुत उत्तम है, परन्तु जरासंध के रहते हुए आप राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते। जरासंध इस समय अपने उत्कर्ष को चरम सीमा पर है। अभी-अभी उसने अपने आप को सम्राट घोषित कर दिया है और वह अपने बल पराक्रम से सब पर आक्रमण करके समस्त राजाओं का सिरमौर हो रहा है। इस समय वही सबसे प्रबल एवं उत्कृष्ट राजा है। यह सम्पूर्ण जगत् एक मात्र उसी के वश में है। राजन्! वह अपनी राजनीतिक युक्तियों से इस समय सम्राट बन बैठा है। शिशुपाल जैसा प्रतापी राजा उसका प्रधान सेनापति है। दन्तवक्र, हंस, डिम्भिक, मेघवाहन और करभ उनके साथ रहते हैं। यवनाधिपति राजा भगदत्त भी जरासंध के सामने विशेष रूप से नतमस्तक रहता है। इसलिए मेरी सम्मति यह है—

न तु शक्यं जरासंधे जीवमाने महाबले ।
राजसूयस्त्वयावाप्तं एषा राजन् मतिर्मम ।
तेन रुद्धा हि राजानः सर्वे जित्वा गिरिब्रजे ॥

अर्थात् जरासंध जब तक जीवित है, आप राजसूय यज्ञ नहीं कर सकते। यदि आप यज्ञ को पूर्ण रूप से सम्पन्न करना ही चाहते हैं, तो उन कैदी राजाओं को छुड़ाने और जरासंध को मारने का प्रयत्न कीजिये।

युधिष्ठिर बोले,—श्री कृष्ण! आप परम बुद्धिमान् हैं आपने जैसी बात कही है, वैसा दूसरा कोई नहीं कह सकता। इस पृथ्वी पर आपके सिवाय समस्त संशयों को मिटाने वाला और कोई नहीं है। आज तो घर-घर में राजा हैं और सभी मनमानी करते हैं। जहां तक आपने

जरासंघ के बल का वर्णन किये हैं, पापरहित महाभाग ! जब आप ही जरासंघ से शंकित हैं, तो मैं अपने को उसके सामने कदापि बलवान् नहीं मान सकता।

उस समय भीम बोले,—

कृष्णेनयो मयिबलं जयापार्थे धनञ्जये।
मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रयइवाग्नयः ॥
त्वद्बुद्धिबलमाश्रित्य सर्वं प्राप्स्यति धर्मराट्।
जयाऽस्माकं हि गोविन्द येषां नाथो भवानसदा।

श्री कृष्ण में नीति है, मुझमें बल है और अर्जुन में विजय की शक्ति है। हम तीनों मिल कर मगधराज जरासंघ के वध का कार्य पूरा कर लेंगे ठीक उसी तरह जैसे तीनों अग्नियां यज्ञ की सिद्धि कर देती हैं। गोविन्द ! आपके बुद्धि बल का आश्रय लेकर धर्मराज युधिष्ठिर सब कुछ पा सकते हैं। जिनकी सदा रक्षा करने वाले आप हैं, उनकी हम पाण्डवों की विजय निश्चित् है।

युधिष्ठिर बोले—श्री कृष्ण ! मैं सम्राट के गुणों को प्राप्त करने की इच्छा रखकर स्वार्थ साधन में तत्पर हो केवल साहस के भरोसे आप लोगों को जरासंघ के पास कैसे भेज दूं। भीम सेन और अर्जुन मेरे दोनों नेत्र हैं और जनार्दन आप को मैं अपना मन समझता हूं। अपना मन और नेत्रों को खो देने पर मेरा यह जीवन कैसा हो जायेगा ?

जरासन्ध को सेना का पार पाना कठिन है। उस का पराक्रम भयानक है। युद्ध में उस सेना का सामना करके यमराज भी विजयी नहीं हो सकते, फिर वहां आप लोगों का प्रयत्न क्या कर सकता है ?

उस समय अर्जुन बोला,—राजन् ! यदि हम राजसूय यज्ञ की सिद्धि के लिये जरासंघ का विनाश तथा कैद में पड़े हुए राजाओं की रक्षा कर सकें तो इस से उत्तम क्या हो सकता है।—हम लोग साम्राज्य को प्राप्त करने में समर्थ हैं, अतः हम लोग शत्रुओं से अवश्य युद्ध करेंगे।

भगवान् श्री कृष्ण बोले,—भरत वंश में उत्पन्न पुरुष और कुन्ती जैसी माता के पुत्र की जैसी बुद्धि होनी चाहिये, अर्जुन ने यहां उसी का परिचय दिया है। महाराज ! हम लोग यह नहीं जानते कि मौत कब आयेगी ? रात में आयेगी या दिन में। हम ने यह भी सुना है कि युद्ध न करने के कारण कोई अमर हो गया हो। अतः वीर पुरुषों का इतना ही कर्त्तव्य है कि वे अपने हृदय के सन्तोष के लिए नीति-शास्त्र में बताई हुई नीति के अनुसार शत्रुओं पर आक्रमण करें। जब हम लोग नीति का आश्रय ले कर शत्रु के शरीर के निकट तक पहुंच जायेंगे, तब जैसे नदी का वेग किनारे के वृक्ष को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार हम शत्रु का अन्त क्यों न कर डालेंगे। हम अपने छिद्रों को छिपाये रखकर शत्रु के छिद्र को देखेंगे और अवसर मिलते ही उस पर बल पूर्वक आक्रमण कर देंगे, जिनकी सेनाएं मोर्चा बांध कर खड़ी हों और जो अत्यन्त बलवान् हों, ऐसे शत्रुओं के साथ सम्मुख होकर युद्ध नहीं करना चाहिए, यह बुद्धिमानों की नीति है। यही नीति यहां मुझे भी अच्छी लगती है।

यदि हम छिपे-छिपे शत्रु के घर तक पहुंच जायें तो यह हमारे लिये कोई निन्दा की बात नहीं होगी। फिर हम शत्रु के शरीर पर आक्रमण करके अपना काम बना लेंगे।

श्री कृष्ण कहते हैं—धर्मराज ! जरासंघ के मुख्य सहायक हंस और डिम्भक यमुना जी में डूब मरे। कंस भी अपने सेवकों और सहायकों

सहित काल के गाल में चला गया। अब जरासंध के नाश का यह उचित अवसर आ गया है।

न शक्योऽसौ रणे जेतुं सर्वैरपि सुरासुरैः।
बाहुयुद्धेन जेतव्यः स इत्युपलभामहे॥

युद्ध मे तो सम्पूर्ण देवता और असुर भी उसे जीत नहीं सकते, अतः मेरी समझ में यही आता है कि उसे बाहुयुद्ध के द्वारा जीतना चाहिए।

मयि नीतिबलं भीमे रक्षिता चावयोर्जयः।
मागधं साधयिष्याम इष्टिं त्रय इवाग्नयः॥

मुझ में नीति है, भीमसेन में बल है और अर्जुन हम दोनों की रक्षा करने वाले हैं, अतः जैसे तीन अग्नियां यज्ञ की सिद्धि करती हैं, उसी प्रकार हम तीनों मिलकर जरासंध के वध का पूरा काम कर लेंगे।

त्रिभिरासादितोऽस्माभिर्विजने स नराधिपः।
न संदेहो यथा युद्धमेकेनाप्युपयास्यति॥
अवमानाच्च लोभाच्च बाहुवीर्याच्च दर्पितः।
भीमसेनेन युद्धाय ध्रुवमप्युपयास्यति॥

जब हम तीनों एकान्त में राजा जरासंध से मिलेंगे, तब वह हम तीनों में से किसी एक के साथ द्वन्दयुद्ध करना स्वीकार कर लेगा, इसमें सन्देह नहीं है। अपमान के भय से, बड़े योद्धा भीमसेन के साथ लड़ने के लोभ से तथा अपने बाहुबल के घमंड में चूर होने से जरासंध निश्चय ही भीमसेन के साथ युद्ध करने को उद्यत होगा।

अलं तस्य महाबाहुर्भीमसेनो महाबलः।
लोकस्य समुदीर्णस्य निधनायान्तको यथा॥

जैसे उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत के विनाश के लिए एक ही यमराज काफी है, उसी प्रकार महाबाहु भीमसेन जरासन्ध के वध के लिये पर्याप्त हैं।

यदि मे हृदयं वेत्सि यदि ते प्रत्ययो मयि।
भीमसेनार्जुनौ शीघ्रं न्यासभूतौ प्रयच्छ मे॥

राजन्! यदि आप मेरे हृदय को जानते हैं और आपका यदि मुझ पर विश्वास है तो भीमसेन और अर्जुन को शीघ्र ही धरोहर के रूप में मुझे दीजिये।

एवमुक्तो भगवता प्रत्युवाच युधिष्ठिरः।
भीमार्जुनौ समालोक्य सम्प्रहृष्टमुखौ स्थितौ॥

वैशम्पायन जो कहते हैं,—जनमेजय! भगवान् के ऐसा कहने पर वहां खड़े हुये भीमसेन और अर्जुन का मुख प्रसन्नता से खिल उठा। उस समय उन दोनों की ओर देखकर युधिष्ठिर ने इस प्रकार उत्तर दिया।

अच्युताच्युत मा मैवं व्याहरामित्रकर्शन।
पाण्डवानां भवान् नाथो भवन्तं चाश्रिता वयम्॥
यथा वदसि गोविन्द सर्वं तदुपपद्यते।
न हि त्वमग्रतस्तेषां येषाँ लक्ष्मीः पराङ् मुखी।

गोविन्द! आप जैसा कहते हैं, वह सब ठीक है। जिनकी राज्यलक्ष्मी विमुख हो चुकी है, उनके सम्मुख आप आते ही नहीं हैं।

निहतश्च जरासंधो मोक्षिताश्च महीक्षितः।
राजसूयश्च मे लब्धो निदेशे तव तिष्ठतः॥

आपकी आज्ञा के अनुसार चलने मात्र से मैं यह मानता हूं कि जरासंध मारा गया। समस्त राजा उसकी कैद से छुटकारा पा गये और मेरा राजसूय यज्ञ भी पूरा हो गया।

क्षिप्रमेव यथा त्वेतत कार्यं समुपपद्यते।
अप्रमत्तो जगन्नाथ तथा कुरु नरोत्तम्॥
त्रिभिर्भवद्भिर्हि विना नाहं जीवितुमुत्सहे।
धर्मकामार्थ रहितो रोगार्त इव दुःखितः॥
न शौरिणाविना पार्थो न शौरिः पाण्डवं विना।
नाजेयोऽस्त्यनयोर्लोके कृष्णयोरिति मे मतिः॥

जगन्नाथ! पुरुषोत्तम! आप सावधान

होकर वही कार्य कीजिये, जिससे वह शीघ्र ही पूरा हो जाय। जैसे धर्म, काम और अर्थ से रहित रोगातुर मनुष्य अत्यन्त दुःखी हो जीवन से हाथ धो बैठता है, उसी प्रकार मैं भी आप तीनों के बिना जीवित नहीं रह सकता। श्री कृष्ण के बिना अर्जुन और पाण्डुपुत्र अर्जुन के बिना श्री कृष्ण नहीं रह सकते। इन दोनों कृष्ण नामधारी वीरों के लिए लोक में कोई भी अजेय नहीं है। ऐसा मेरा विश्वास है।

यह बलवानों में श्रेष्ठ महायशस्वी भीमसेन भी आप दोनों के साथ रहकर क्या नहीं कर सकता। यदुश्रेष्ठ! इसी प्रकार समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए आपका आश्रय लेना परमावश्यक है। अर्जुन श्री कृष्ण का अनुसरण करे और भीमसेन अर्जुन का। नीति, विजय और बल तीनों मिलकर पराक्रम करें तो उन्हें अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी।

अर्जुनः कृष्णमन्वेतु भीमोऽन्वेतु धनंजय।
नयो जयो बलं चैव विक्रमे सिद्धिमेष्यति॥

श्री कृष्ण, अर्जुन और भीमसेन जरासंध से भिड़ने केलिये उसकी राजधानी की ओर चल दिये। उन्होंने अपने क्षत्रिय रूप को छिपा लिया स्नातक ब्राह्मणों का वेष धारण कर लिया। उस समय सूर्य, चन्द्र और अग्नि के समान तेजस्वी शरीर वाले उन तीनों का स्वरूप अत्यन्त उद्भासित हो रहा था। चलते-चलते आखिर वे मगध की राजधानी में पहुंच गये। जैसे हिमालय की गुफाओं में रहने वाले सिंह गौओं का स्थान ढूंढते हुए आगे बढ़ते हों, उसी प्रकार वे तीनों भी राजभवन में राजा जरासंध के सामने प्रकट हुए। उन्हें आया देख जरासंध उठकर खड़ा हो गया और उसने विधिपूर्वक उनका अतिथि सत्कार किया। तदनन्तर जरासंध ने इन तीनों अतिथियों से कहा,—आप लोगों का स्वागत है। उस समय अर्जुन और भीम तो मौन थे। श्री कृष्ण बोले,—राजेन्द्र! ये दोनों मेरे साथी एक नियम ले चुके हैं। इनका मौन ठीक आधी रात के समय भंग होगा। आधी रात के बाद आप से बात कर सकेंगे।

जरासंध इन तीनों अतिथियों को यज्ञशाला में ठहराकर स्वयं राजभवन में चला गया। जरासंध अपने नियम का पक्का था। उसका ये स्वभाव था कि स्नातक ब्राह्मणों का आगमन सुनकर आधी रात के समय भी उनके आवभगत के लिए उनके पास चला जाता था। जरासंध आधी रात में भीम, अर्जुन और कृष्ण के पास गया। वह यह नहीं जानता था कि ये तीनों भीम, अर्जुन और कृष्ण हैं। वह उन्हें स्नातक ब्राह्मण समझ कर उनके पास गया था। जरासंध को देखते ही वे तीनों उससे इस प्रकार बोले,—महाराज! आपका कल्याण हो। इतना कहने के पश्चात् वे तीनों कभी राजा जरासंध को और कभी एक-दूसरे को देखने लगे। उस समय जरासंध बोला,—आप लोग बैठ जायं। फिर वे सभी बैठ गए। वे तीनों पुरुष सिंह महान् यज्ञ में प्रज्वलित तीन अग्नियों की भांति अपनी अपूर्व शोभा से उद्भासित हो रहे थे।

जरासंध काफी सावधान हो चुका था। उसके गुप्तचर विभाग ने उसके पास ये खबर पहुंचा दी थी कि ये ब्रह्मवेष धारण किये ब्राह्मण मुख्य द्वार से नगर में प्रवेश न पाकर दीवार को फांद कर नगर में आए हैं। आप कौन हैं, अपना परिचय दीजिये? उस समय श्री कृष्ण बोले,—राजन्! तुम्हारा विचार बिल्कुल ठीक है। हम ब्राह्मण नहीं क्षत्रीय हैं। धीर मनुष्य शत्रु के घर में बिना दरवाजे के और मित्र के घर दरवाजे सेजाते हैं हम अपने कार्य से तुम्हारे

घर आये हैं, अतः शत्रु से पूजा नहीं ग्रहण कर सकते। इस बात को तुम अच्छी तरह समझ लो, ये हमारा सनातन व्रत है।

अद्वारेण रिपोर्गेहं द्वारेण सुहृदो गृहान्।
प्रविशन्ति नर धीरा द्वाराण्येतानि धर्मतः॥

जरासंध बोला,—मुझे तो याद नहीं आता, मैंने आप लोगों के साथ वैर कब किया। कृष्ण बोले,—राजन्! तुम ने भूलोक निवासी क्षत्रियों को कैद कर लिया है, ऐसे क्रूर अपराध का आयोजन करके भी तुम अपने को निरपराध कैसे मानते हो। तुम अपने ही जाति भाइयों के हत्यारे हो और हम लोग संकट में पड़े हुए दीन दुखियों के रक्षा करने वाले हैं। अतः सजातीय बन्धुओं की वृद्धि के उद्देश्य से हम तुम्हारा वध करने के लिए यहाँ आये हैं। राजन्! तुम जो ये मान बैठे हो कि इस जगत के क्षत्रियों में मेरे समान दूसरा कोई नहीं है, यह तुम्हारी बुद्धि का बहुत बड़ा भ्रम है। लो हम अपने आपको ज्यादा देर तक छपाते नहीं। सुनो,—

युयुक्षमाणास्त्वत्ता हि न वयं ब्राह्मणा ध्रुवम्।
शौरिरस्मि हृषीकेशो नृवीरौ पाण्डवाविमौ।
अनयोर्मातुलेयं च कृष्णं मां विद्धि ते रिपुम्॥

राजन्! हम तुम से युद्ध करने आये हैं। मैं वसुदेव पुत्र हृषीकेश हूं और ये दोनों पाण्डु पुत्र वीरवर भीमसेन और अर्जुन हैं। मैं इन दोनों के मामा का पुत्र और तुम्हारा प्रसिद्ध शत्रु श्री कृष्ण हूं। मुझे अच्छी तरह पहचान लो। मगध नरेश! हम तुम को युद्ध के लिये ललकारते हैं। तुम डट कर युद्ध करो। तुम या तो समस्त राजाओं को छोड़ दो अथवा यमलोक की राह लो।

जरासंध के लिए सिवाय युद्ध के और कोई रास्ता बचा नहीं था। श्री कृष्ण बोले,—देखो राजन्! हम तीनों यदि चाहें, अभी पकड़ कर तुम्हें चीर डालें, परन्तु हम में से जिस एक को तुम चुनो वही तुम से लड़ेगा। जरासंध बोला,—

एवमावदितो राजा जहासोच्चैः स्म मागधः।
आह चामर्षितो मन्दा युद्धं तर्हि ददामि वः॥
न त्वयाभीरुणा योत्स्ये युधि विक्लवचेतसा।
मथुरां स्वपुरीं त्यक्त्वा समुद्रं शरणं गतः॥
अयं तु वयसा तुल्यो नातिसत्त्वो न मे समः।
अर्जुनो न भवेद् योद्धा भीमस्तुल्य बलो मम॥
उवाच मतिमान् राजा भीमं भीमपराक्रमः।
भीम योत्स्ये त्वया सार्धं श्रेयसा निर्जितं वरम्॥

श्री कृष्ण पहले ही अपने मन में ये कार्य-क्रम बना कर आये थे कि भीम से ही जरासंध को लड़वाना है। अन्ततोगत्वा भीम द्वारा जरासंध को मार दिया गया। सत्यवादी कृष्ण ने जरासंध के स्थान पर उसके पुत्र सहदेव को गद्दी पर बैठाया।

सहदेवं तत्तनयं भगवान् भूत भावनः।
अभ्यषिञ्चदमेयात्मा मगधानां पीत प्रभः॥

यही सहदेव अंतिम समय तक पाण्डवों के प्रति वफादार रहा।

अब राजसूय यज्ञ का श्री गणेश हुआ परन्तु इससे पूर्व पाण्डवों द्वारा दिग्विजय यात्रा आवश्यक थी। चारों भाई चारों दिशाओं में गये। सहदेव दक्षिण की ओर गया, भीम पूर्व को ओर नकुल पश्चिम की ओर—

सहदेव दक्षिणस्यामादिशत् सह सृञ्जयैः।
दिशि प्रतीच्यां नकुलमुदीच्यां सव्यसाचिनम्।
प्राच्यां वृकोदरं मत्स्यैः केकयैः सहमद्रकैः॥

महाभारतकार ने अर्जुन द्वारा दिग्विजय यात्रा का विशेष रूप से वर्णन किया है। अर्जुन की दिग्विजय यात्रा का वर्णन करते हुए महामुनि व्यास लिखते हैं।

तत्र राजा महानासीद भगवत्तो विशाम्पते।

तेनासीत् सुमहद् युद्धं पाण्डवस्य महात्मनः ॥
स किरातैश्च चीनैश्च वृतः प्राग्ज्योतिषोऽभवत् ।
अन्यैश्च बहुभिर्योधैः सागरानूपवासिभिः ॥

वर्तमान नागालैंड से होता हुआ अर्जुन चीन, जापान और फिलेपाइन तक पहुंचा। राजा भगदत्त ने अर्जुन के साथ आठ दिनों तक युद्ध किया तो भी वे अर्जुन को युद्ध में थकते हुए न देख कर हंस कर बोले,—पाण्डुनन्दन ! तुम्हारी इच्छा क्या है। तुम जो कहोगे मैं वही करूंगा। अर्जुन बोला,—आप महाराज युधिष्ठिर को कर दीजिए। आप उन्हें चक्रवर्ती सम्राट् स्वीकार कीजिये। भगदत्त को जीत कर अर्जुन कुबेर द्वारा रक्षित उत्तर दिशा में गये। सभी पर्वतीय राजाओं को जीत कर अर्जुन ने उलूकवासी राजा बृहंत पर आक्रमण किया। तत्पश्चात् सेनाबिन्दु, मोदापुर, वामदेव, सुदामा, सुसंकल आदि देशों को अर्जुन ने अपने आधीन किया। मार्ग के अनेकों देशों को जीतते हुए वाह्लीकों, काम्बोजों, दरदों को जीतकर अर्जुन ने हरी वर्ष देश पर आक्रमण किया। हरीवर्ष का अर्थ है वर्तमान काकेशिया। परन्तु वहां के लोग अर्जुन के सामने दो मिनट भी टिक न पाये। वहां से अर्जुन ने हिरण्यकवर्ष में प्रवेश किया। वहां के लोग अर्जुन को देखते ही इस प्रकार की बातें करने लगे मानों अर्जुन के रूप में साक्षात् शक्तिधारी कार्तिकेय ही पधारे हों।

अयं सः पुरुषव्याघ्रो रणेऽद्भुत पराक्रमः ।
अस्य बाहुबलं प्राप्य न भवन्त्यः सुहृद्गणाः ॥

हिरण्यकवर्ष को जीतकर तथा उन लोगों से भारी भेंट पूजा लेकर अर्जुन ने उत्तर कुरुवंश पर आक्रमण कर दिया। उस देश वालों ने बिना लड़ाई के ही आत्मसमर्पण कर दिया हाथ जोड़ कर बोले,—आप क्या चाहते हैं। अर्जुन बोला,—

पार्थिवत्वं चिकीर्षामि धर्म राजस्य धीमतः ॥

राजसूय आरम्भ हुआ। युधिष्ठिर बोले,—श्री कृष्ण आपकी दया से समूची पृथ्वी इस समय मेरे अधीन हो गई है। अब मेरे द्वारा राजसूय का उपयुक्त समय आ गया है। विशाल भुजाओं वाले गोविन्द ! आप स्वयं यज्ञ की दीक्षा ग्रहण कीजिए। श्री कृष्ण बोले,—राजसिंह ! आप सम्राट् होने योग्य हैं। महान् यज्ञ की दीक्षा आप ही स्वयं ग्रहण कीजिये मुझे तो किसी और कार्य में लगाइये, मैं आपकी सभी आज्ञाओं का पालन करूंगा। युधिष्ठिर बोले,—श्रीकृष्ण! मेरा संकल्प सफल हो गया। मेरी सिद्धि सुनिश्चित है, क्योंकि हृषिकेश ! आप मेरी इच्छा के अनुसार स्वयं ही यहां उपस्थित हो गये।

तदनन्तर वहां आये हुए सभी ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर को राजसूय की दीक्षा दी। तदनन्तर राजा युधिष्ठर ने भीष्म, द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र, विदुर, कृपाचार्य तथा दुर्योधन आदि सभी भाइयों को बुलाने के लिये हस्तिनापुर भेजा। वे सभी हंसी-खुशी धर्मराज के यज्ञ में उपस्थित हो गये। विश्व के लगभग सभी राजा लोग यज्ञ में उपस्थित थे। उस समय युधिष्ठिर जी महाराज खड़े हुए,—बोले,—

कस्मै भवान् मन्यते अर्घ्यं एकस्मै कुरुनंदन ।
उपनीयमानं युक्तं च तन्मे ब्रूहि पितामह ॥

पितामह ! आप प्रथम अर्घ्य का पात्र किसे समझते हैं यह मुझे बताइये। महापराक्रमी भीष्म ने अपनी बुद्धि से निश्चय करके भगवान् श्री कृष्ण को ही भूमण्डल में सब से अधिक पूज्यनीय माना। उस समय श्री कृष्ण की महिमा वर्णन करते हुए भीष्म बोले,—

एष ह्येषां समस्तानां तेजोबल पराक्रमैः ।

मध्ये तपन्निवाभाति ज्योतिषामिव भास्करः ॥
असूर्यमिव सूर्येण निर्वातमिव वायुना।
भासितं ह्लादितं चैव कृष्णेनेदं सदो हि नः ॥
तस्मात् कृष्णाय महते दीयता परमार्हणम्।
एवं चेत् सर्वभूतानामात्मश्चार्हण भवेत्।

भीष्म ने कहा,—कुन्तीनन्दन ! ये भगवान् श्री कृष्ण इन सब राजाओं के बीच में अपने तेज, बल और पराक्रम से उसी प्रकार देदीप्यमान् हो रहे हैं, जैसे ग्रह-नक्षत्रों में भुवनभास्कर भगवान् सूर्य । अन्धकारपूर्ण स्थान जैसे सूर्य के उदय होने पर ज्योति से जगमग हो उठता है और वायुहीन स्थान जैसे वायु के संचार से सजीव सा हो जाता है, उसी प्रकार भगवान् कृष्ण के द्वारा हमारी यह सभा प्रकाशित हो रही है ।

इत्थं निशम्य दमघोष सुतः स्वपीठाद
त्थाय कृष्णगुणवर्णन जातमन्युः ।
उत्क्षिप्यबाहुमिदमाह सदस्यमर्षी
संश्रावयन् भगवते पुरुषास्यभीतः ॥

परन्तु शिशुपाल को कृष्ण की वह अग्र पूजा भायी नहीं । वह बोला,—मुझे बताया जाय कि कृष्ण की पूजा किस लिये की गई है कृष्ण को यदि आप बड़ा बूढ़ा समझते हैं तो इसके पिता वृद्ध वसुदेव जी के रहते हुए उनका यह पुत्र कैसे पूजा का पात्र हो सकता है। आचार्यों में बड़े-बूढ़े द्रोणाचार्य बैठे हैं। ऋत्विजों में द्वैपायन वेदव्यास जी विराजमान् हैं, योधाओं में सर्वश्रेष्ठ भीष्म पितामह बैठे हैं। सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता अश्वत्थामा यहां उपस्थित हैं। राजाधिराज दुर्योधन और भरतवंश के आचार्य महात्मा कृपा के रहते हुए कृष्ण को प्रथम स्थान क्यों दिया गया । यहां कर्ण बैठे हैं, भीष्मक, रुक्मी, शल्य और देश के बड़े-बड़े राजा बैठे हैं। श्री कृष्ण को मान्यता क्यों दी जा रही है, यदि आपने हमारे सामने ऐसा करना ही था तो क्या हमें अपमानित करने के लिए ही बुलाया गया था। यधिष्ठिर ! इससे बढ़ कर हमारा और अपमान क्या हो सकता है जो हमारे सामने कृष्ण की अर्घ्य से पूजा की गई है। वृष्णो कुल में पदा हुए इस दुरात्मा ने कुछ ही दिन पहले महात्मा राजा जरासंघ की अन्याय पूर्ण हत्या की । इसने अन्याय से कंस को मारा। ऐसा कह कर शिशपाल प्रोटेस्ट के तौर पर सभाभवन से वाकआउट कर गया। उस समय भीष्माचार्य ने जो उद्गार प्रकट किये, एक-एक शब्द पढ़ने योग्य है । भीष्मपितामह बोले,—धर्मराज ! भगवान् श्री कृष्ण ही सम्पूर्ण जगत में सब से बढ़कर हैं वे ही परम पूजनीय हैं। जो उनकी अग्रपूजा स्वीकार नहीं करता है, उनकी अनुनय विनय नहीं करना चाहिए। वह सान्त्वना देने अथवा समझाने बुझाने के योग्य भो नहीं है । जो योधाओं में श्रेष्ठ क्षत्रिय जिसे युद्ध में जीत कर छोड़ देता हैं, वह उस पराजित क्षत्रिय के लिये गुरु तुल्य पूज्य हो जाता है। राजाओं के इस समुदाय में एक भी भूपाल ऐसा दिखाई नहीं देता जो युद्ध में देवकी नन्दन श्रीकृष्ण की तेज से परास्त न हो गया हो। महाबाहु श्री कृष्ण केवल हमारे लिए ही परम पूज्य हों ऐसी बात नहीं है। ये तो तीनों लोकों के पूजनीय हैं। मैंने बहुत से ज्ञानबृद्ध महात्माओं का संग किया है, अपने यहां पधारे हुए उन सन्तों के मुख से श्री कृष्ण के असंख्य गुणों का वर्णन सुना है। कृष्ण में वेद वेदांगों का ज्ञान तो है ही, बल भी सब से अधिक है। श्री कृष्ण के सिवाय संसार के मनुष्यों में दूसरा कौन सब से बढ़कर है । दानदक्षता, शास्त्र ज्ञान, शौयं, लज्जा, कीर्ति विनय, श्री, धृति, तुष्टि-पुष्टि ये सभी सद्गुण भगवान् कृष्ण में नित्य

विद्यमान हैं श्री कृष्ण हमारे ऋत्विक्, गुरु, आचार्य, स्नातक, राजा और प्रिय मित्र सब कुछ हैं, इसी लिये हमने इनकी अग्रपूजा की है।

ऐसा कह कर महाबली भीष्म चुप हो गए, तत्पश्चात् सहदेव ने शिशुपाल की बातों का मुंह तोड़ उत्तर देते हुए यह बात कही – राजाओ अनन्त पराक्रमी श्री कृष्ण की मेरे द्वारा जो पूजा की गई है, उसे आप लोगों में से जो सहन न कर सके उन सब बलवानों के मस्तक पर मैंने पैर रख दिया है। मैंने खूब सोच-समझ कर यह बात कही है, जो इसका उत्तर देना चाहे वह सामने आ जाय ? उस समय सब ओर से सहदेव जी पर फूलों की वर्षा होने लगी। उस समय देवर्षि नारद सभा में उपस्थित हुए और बोले,—

कृष्णं कमलपत्राक्षं नार्चयिष्यन्ति ये नरः।
जीवनमृतास्तु ते ज्ञेयः न सम्भाष्या कदाचन ॥

जो मानव कमलनयन भगवान् श्री कृष्ण की पूजा नहीं करेंगे, वे जीते जी ही मृतक तुल्य समझे जायेंगे। ऐसे लोगों से कभी बातचीत भी नहीं करना चाहिए। उस समय शिशुपाल फिर खड़ा हुआ, कुछ और दुष्ट राजा भी उसके साथ मिल गए। अब शिशुपाल सीधे भीष्म को गालियां निकालने लगा, बोला—कुल को कलंकित करने वाले भीष्म ! तुम हम सब को व्यर्थ ही डराने की चेष्टा कर रहे हो। जैसे एक नाव दूसरी नाव से बांध दी जाय, एक अन्धा दूसरे के पीछे चले, वही दशा इन सब कौरवों की है जिन्हें तुम जैसा नेता मिला। इसने पूतना वध किया, कोई बात नहीं। बचपन इसने ग्राम के उजड्ड लोगों के साथ बिताया—यदि इसने बचपन में एक पक्षी को, एक बैल को और एक घोड़े को मार डाला तो इस में आश्चर्य की क्या बात है। चेतनाशून्य लकड़ियों का ढेर छकड़ा यदि इसने पैर से उसको उलट ही दिया तो कौन अनोखी करामात कर डाली। यदि इसने गोवर्धन पर्वत को अपने हाथ पर सात दिन उठाये रखा तो उस में भी मुझे कोई आश्चर्य की बात जान नहीं पड़ती। क्योंकि गोवर्धन तो दीमकों की खोदी हुई ढेर मात्र है। स्त्री पर, गौ पर, ब्राह्मणों पर तथा जिसका अन्न खाये तथा जिसके यहां अपने को आश्रय मिला हो उन पर हथियार चलाना कौन सी इन्सानियत है। भीष्म ! तुम्हारा ये ब्रह्मचर्य ढोंग है। तुम सन्तानहीन, वृद्ध और मिथ्या धर्म का अनुसरण करने वाले हो। इस लिये तुम महा मूर्ख हो।

बात बहुत बढ़ गई, भीम ने गदा उठा ली, सब राजाओं ने देखा मानो त्रिकूट पर्वत पर त्रिपथगामिनी गंगा लहरा उठी। वे दांतों से दांत पीसने लगे। उछल कर शिशुपाल के पास पहुंचना ही चाहते थे कि भीष्म ने बड़े वेग से उठ कर भीम को पकड़ लिया। मानो महेश्वर ने कार्तिकेय को रोक लिया हो। भीम को रुका हुआ देख शिशुपाल के हौसले और भी बुलन्द हो गये, बोला,—भीष्म ! छोड़ दो इसे रोकते क्यों हो, हो जाने दो आखरी फैसला।

उस समय श्री कृष्ण ने सोचा अब इसे खतम कर ही दिया जाय। उस समय श्री कृष्ण बोले,—

यहां बैठे हुए सब महिपाल सुन लें कि मैंने अब तक इस का अपराध क्यों क्षमा किये हैं ? इसी के माता को याचना करने पर मैंने उसे यह प्रार्थित वर दिया था कि शिशुपाल के सौ अपराध क्षमा कर दूंगा। राजाओ अब वे सब अपराध पूरे हो गये हैं, अतः आप सभी भूपतियों के देखते ही देखते मैं अभी इसका वध किये देता हूं। ऐसा कह कर कुपित हुए शत्रुहन्ता यदुकुल तिलक भगवान् श्री कृष्ण ने उसी क्षण चक्र से चेदिराज शिशुपाल का सिर उड़ा दिया।

(४)

जीती बाजी हार गये

श्रृण्वन्तु मे महीपाला येनैतत् क्षमितं मया।
अपराधशतं क्षाम्यं मातुरस्यैव याचने ॥
दत्तं मया याचितं च तानि पूर्णानि पार्थिवाः।
अधुना वधयिष्यामि पश्यतां वो महीक्षिताम् ॥
एवमुक्त्वा यदुश्रेष्ठश्चेदिराजस्य तत्क्षणात्।
व्यपाहरच्छिरः क्रुद्धश्चक्रेणामित्रकर्षण ॥

देवियो एवं भद्रपुरुषो !

शिशुपाल वध के पश्चात् यज्ञ का सुखपूर्वक आरम्भ हुआ। कितना वैभवशाली था मेरा देश उन दिनों। भोजन करने वाले ब्राह्मणों की संख्या जब एक लाख पूरी हो जाती थी तब वहां शंख बजाया जाता था। दिन में कितने ही बार इस प्रकार की शंख ध्वनि होती थी। अन्न के ढेर पर्वतों के समान जान पड़ते थे। वहां दही की नहरें बह रहीं थीं तथा घी के तालाब भरे हुए थे।

जम्बूद्वीपो हि सकलो नानाजनपदायुतः।

महाराज युधिष्ठिर के उस महान् यज्ञ में नानाजन पदों से युक्त समूचा जम्बूद्वीप हो एकत्र हुआ सा दिखाई देता था। देवता, असर, यक्ष, नाग, विद्याधर, गन्धर्व, यक्षों से सुशोभित वह रजयसूय अत्यन्त शोभा पा रहा था। महात्मा युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में सहस्रकोटि सुवर्ण मुद्राएं प्रदान कीं। अन्त में युधिष्ठिर ने कृष्ण, बलदेव, भीष्म आदि का पूजन किया। महाबाहु भगवान् कृष्ण ने आरम्भ से लेकर अन्त तक उस यज्ञ की रक्षा की। अन्त में जब धर्मराज अवभृतस्नान कर चुके, उस समय समस्त क्षत्रिय राजाओं का समुदाय उनके पास जाकर बोला,—धर्मज्ञ ! आपका अभ्युदय हो रहा है, यह बड़े सौभाग्य की बात है। आपने सम्राट् का पद प्राप्त कर लिया, साथ ही साथ आपने महान् धर्म का भी संस्थापन किया है। आपने जो हमारा स्वागत सत्कार किया उसके लिये आपका कोटि-कोटि धन्यवाद।

परन्तु स्वतन्त्रता के इस कल्प वृक्ष के साथ ही पाकिस्तान के विषवृक्ष का भी जन्म हुआ। अमृत और विष का आपस में सम्बन्ध है ही। आजादी आई परन्तु साथ में बरबादी भी आई। धर्मराज की गलतियों ने भविष्य को अन्धकारमय बना दिया। दुर्योधन पाण्डवों के उस वैभव को देख न सका। पाण्डवों के सर्वनाश का प्लैन उसने इन्द्रप्रस्थ में ही बना लिया। जूआ तो पीछे खेला गया परन्तु इस जूए का आभास वेदव्यास को पहले ही हो गया था। वे इन्द्रप्रस्थ में यज्ञ की समाप्ति के अगले ही दिन धर्मराज से बोले,—

त्रयोदश समा राजन् उत्पातानां फलं महत्।
सर्वक्षत्र विनाशाय भविष्यति विशाम्पते ॥

राजन ! उत्पातों का महान् फल तेरह वर्ष तक हुआ करता है। इस समय जो उत्पात प्रकट हुआ था अर्थात् शिशुपाल के मारे जाने से जो उत्पात् हुआ था वह समस्त क्षत्रियों का विनाश करने वाला होगा।

त्वामेकं कारणं कृत्वा कालेन भरतर्षभ।
समेतं पार्थिवं क्षत्रं क्षयं यास्यति भारत ॥
दुर्योधनापराधेन भीमार्जुन बलेन च ॥

भरतकुल तिलक ! एक मात्र तुम्हीं को निमित्त बनाकर यथा समय समस्त भूमिपालों का समुदाय आपस में लड़ कर नष्ट हो जायेगा । भारत ! क्षत्रियों का यह विनाश दुर्योधन के अपराध से तथा भीमसेन और अर्जुन के पराक्रम द्वारा सम्पन्न होगा ।

उसी दिन से दुर्योधन पाण्डवों को नष्ट करने का प्लैन बनाने लगा । वह गान्धारराज शकुनि से बोला,—मैं आग में जल मरूंगा, अब मैं जीवित नहीं रह सकूंगा । शकुनि बोला,—राजन् ! धीरज धरो, जो तुम चाहोगे वही होगा । हम ताकत से न तो धर्मराज को जीत सकते हैं, न भीम और अर्जुन को । हां, राजनीतिक दांव पेच से हम इसका सर्वस्व अवश्य हर सकते हैं । सफलता मिल सकती है,

......परन्तु एक शर्त रखी शकुनि ने । यदि कृष्ण को इन्द्रप्रस्थ से निकाल दिया जाय, और ऐसे स्थान पर डिस्पेच कर दिया जाय जहां पाण्डव उनसे परामर्श तक न कर सकें । ये समूचा प्रोग्राम उसी दिन बन गया था जिस दिन शिशुपाल का सिर धड़ से अलग हो गया था । प्रोग्राम ये बना कि भावनगर का राजा शाल्व सौभ विमान लेकर द्वारिका पर वायु आक्रमण कर दे । समाचार पाते ही कृष्ण द्वारिका की रक्षा को भागेंगे । और हुआ भी बिल्कुल ऐसा ही । राजसूय से लौटते ही अगले दिन शाल्व ने द्वारिका पर आक्रमण कर दिया । इधर जब श्री कृष्ण के पास इन्द्रप्रस्थ में ये समाचार पहुंचा, कृष्ण बोले,—कुरुनन्दन ! मैं आज्ञा चाहता हूं, अब मैं द्वारिका पुरी को जाऊंगा ।

आपृच्छे त्वां गमिष्यामि द्वारकां कुरुनन्दन ।
राजसूयं क्रतुश्रेष्ठ दिष्ट्या त्वं प्राप्तवानसि ॥

उनके ऐसा कहने पर धर्मराज युधिष्ठिर जनार्दन से बोले,—

त्वत्प्रसादाद् गोविन्द प्राप्ता क्रतुवरो मया ॥

गोविन्द ! आपकी ही कृपा से मैंने यह श्रेष्ठ यज्ञ सम्पन्न किया है । अनघ ! आपको जाने के लिए मेरी वाणी कैसे कह सकती है । परन्तु आपका जाना भी आवश्यक है ।

द्वारका में पहुंचते ही कृष्ण द्वारका-समर में जूझ पड़े । महाभारतकार ने इस आक्रमण का वर्णन बड़े विस्तार के साथ किया है ।

स लब्ध्वा कामगं यानं तमोधाय दुरासदम् ।
ययौ द्वारवतीं शाल्वो वैरं वृष्णिकृतं स्मरन् ॥

शाल्व ने द्वारका पर वायु आक्रमण कर दिया, Air raids हवाई हमलों का वर्णन करते हुए महामुनि लिखते हैं—

वह जहाज़ कभी पृथ्वी पर आ जाता था, कभी आकाश में जाकर अदृश्य हो जाता था । शाल्व के हवाई आक्रमण ने द्वारका में हाहाकार मचा दी ।

उस समय इस हमारे देश में विज्ञान इतना चरमोन्नति पर था.—शाल्व ने ऐसा बाण छोड़ा चारों ओर अन्धकार छा गया, कृष्ण ने अपने प्रज्ञास्त्र से चारों ओर प्रकाश फैला दिया ।

(दुर्योधन एन्ड कम्पनी अनलिमिटेड)

श्री कृष्ण चले गये । महाभारतकार लिखते हैं ।

सब को बिदा कर देने के पश्चात् भी दुर्योधन एन्ड कम्पनी को इन्द्रप्रस्थ में रखना धर्मराज की बहुत बड़ी भूल थी । ये गल्तियां आज भी हमारे देश ने की हैं । वह जूआ जो पांच हजार वर्ष पूर्व धर्मराजने खेला था, आज भी वर्तमान युग के धर्मराज ने वैसा ही जूआ खेला । लाहौर कांग्रेस पर १९२९ में हमने राजसूय यज्ञ किया था । सन् १९३२ में गांधी ने राउन्ड टेबल कान्फ्रेन्स में जूआ खेला ।

परिणाम क्या निकला ? बारह वर्ष का वनवास और तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास और पीछे मिला खण्ड-खण्ड भारत का राज्य लीजिये आजकल के जमाने में धर्मराज ने जो जूआ खेला उस जूए की कथा हम आपको सुनाते हैं । अपने जमाने की महाभारत ।

राष्ट्रगाथा

धर्म हेतु बलिदान है करना हंसी खुशी मरना होगा।
आज दुराग्रह से लड़ने को सत्याग्रह करना होगा॥
सत्य सूर्य की अरुण छटा ने, अनुपम दृश्य दिखाया है।
तिमिर राशि को भेदन करके, नवजीवन सरसाया है॥
विश्व विजयनी प्रबल कान्ति ने यह सन्देश सुनाया है।
शीघ्र तजो वासत्व भाव को कर्म-योग-युग आया है॥
मातृ वन्दना कर के वीरो आगे को अब बढ़ चलो॥
विजय तुम्हारी निश्चय होगी दृढ़ प्रतिज्ञ हो चल चलो॥

जननी-जन्म-भूमि देविपर
जो सर्वस्व चढ़ाते हैं।
धन्य धन्य है जीवन उनका
वही जन्म फल पाते हैं॥

भारतीय स्वाधीनता संग्राम की अमरकथा The Story of our sacrifices for Mother-India's freedom. देश की आजादी के लिये हमारा स्वतन्त्रता संग्राम। हमने किस प्रकार आजादी ली और स्वयं अपनी आजादी को अपनी बेवकूफियों से किस प्रकार बर्बादी में बदला।...सुनिये,

गंगा तीरे कुछ दिन हुए चण्डिकारण्य मध्ये
देवी एक विजन बन में रो रही थी अकेली।
रोती थी वह परम सबला, आज अबला की भांति
काल क्रूर सब ग्रस गया ताहि की वक्त्र-कान्ति॥
यस्यां जातः परम पुरुषः रामकृष्णादिदेवाः
वन्द्यः लोके विमल चरितं ब्रह्मचर्यं चरंतः।
स्नेहादार्या निखिल मनुजान् पुत्रवन्मन्यमानः
सेवा धातृ जगति नितरां क्रन्दति । विचित्रम्॥

कुछ ही दिनों की बात है, हरिद्वार से थोड़ी ही दूर ऊपर चण्डी पर्वत के पास भगवती भागीरथी के पवित्र तट पै एक देवी बैठी रो रही थी। वह थी तो सबला, परन्तु वह ऐसे रो रही थी मानों अबला हो गई। उसके ५५ करोड़ पुत्र अपनी स्वार्थ पूर्ति में हो लगे थे, विशालकाय सन्तरी भी अनाथ सा हुआ अपनी पुत्री की दुर्दशा पर आंसु बहा रहा था। वह गंगा, जिसके एक ही छींटे ने मृतकों को जीवनदान दिया, सगर के साठ हजार पुत्रों की भस्म को पुनः जीवित कर दिया, वह गंगा तेज गति से बहती जा रही थी—अपनी सहोदरा के दुख को दूर करने में मानो वह भी असमर्थ थी। अन्ततोगत्वा उस देवी ने सब ओर से निराश हो आकाश की ओर देखा और वह रोने लगी।

दयामय दीन बन्धु भगवान्, भारत देश जगाने आओ।
नैया फंसी बीच मंझधार, इसको पार लगाने आओ।
जब जब होय धर्म की हान,
तब तब आते हो भगवान्,
दिया गीता में जो वरदान, नाथ! अब उसे निभाने आओ॥
बढ़ा है दुष्टजनों का जोर,
मुझे ले जाते पतन की ओर,
घटा नभ पै छाई घनघोर, नाथ! सत्पथ दर्शाने आओ।

उस देवी के इस करुण-क्रन्दन से आकाश फट गया, धरती कांप उठी, स्वर्ग का सिंहासन हिल गया। इस प्रकार ब्रह्माण्ड को कम्पायमान

देख शेषशायी विष्णु भगवान् लक्ष्मी से बोले,—लक्ष्मी ! ऐसा प्रतीत होता है मानों मर्त्यलोक में कोई अबला बैठी रो रही है और अपनो रक्षा के लिए मुझे पुकार रही है। लक्ष्मो ! मैं अनाथों का नाथ हूं। मैं दीनानाथ हूं। इस अबला की रक्षा के लिए मुझे अवश्य जाना चाहिए। लक्ष्मी बोली, भगवन् ! रोने की आवाज मैंने भी सुनी है। यह हमारी बड़ी बेटी भारत माता रो रही है, इसको रोने दीजिए। प्रभो ! इसके भाग्य में रोना ही लिखा है, जब से इसको पैदा किया तभी से रो रही है। कभी कहती है मुझे हिरणकशिपु ने मारा, कभी कहती है रावण ने मारा, कभी रोती है कंस, जरासन्ध और दुर्योधन ने मारा, कभी कहती है कासम, नादिर, अब्दाली ने मारा,—क्या आपने कभी इसे हंसते हुए भी देखा ?

और प्रभो ! यह रोती क्यूं है ? यह हम से चाहती क्या है ? सर्वोत्तम पदार्थ जो भी हमारे पास था हमने इसको दे दिया। बड़े से बड़ा दरिया, बड़े से बड़ा पर्वत, उत्तम से उत्तम पशु-पक्षी जो कुछ भी हम इसे दे सकते थे, दे दिये। सब से प्रथम हमने इसे पैदा किया। इसे वेद का ज्ञान दिया। वेद का प्रकाश करने के लिये ऋषि-मुनि पैदा किये। कैसा सुन्दर इसे घर दिया। चालीस करोड़ इसको सन्तान दी। चाहे यह गुलाम थी अथवा आजाद थी, दुखी थी, अथवा सुखी थी, संसार का महापुरुष सदैव हमने इसी की गोद में भेजा। हमने इसके लिये क्या कुछ नहीं किया ? इतना कुछ हम से प्राप्त कर, विश्वम्भरा जगज्जननी जगदीश्वरी होकर भी यदि यह आत्म-रक्षा नहीं कर सकती तो इसकी चिन्ता करना ही व्यर्थ है।

प्रभो ! यह अबला नहीं, सारे संसार की बला है। इसके ५० करोड़ पुत्र—गोरखे, मराठे, जाट, सिंह और राजपूत हैं, जिन्होंने जर्मनी के दांत खट्टे किये, जिन्होंने जापानियों के छक्के छुड़ा दिये, वे क्या इस अपनी माता के लिये कुछ नहीं कर सकते ? यदि ५० करोड़ पुत्रों की माता भी अबला है तो संसार में फिर सबला कौन है ?

तत्क्षण फिर स्वर्ग का सिंहासन हिला और नीचे से आवाज आई,—

डूब रही पुण्य भूमि आज ब्रजराज देख,
कैसे हा बचेगी जो न आप ही बचाओगे।
नष्ट भयो जात सौरमयी वंश विश्व-रूप,
नष्ट भया भारत क्या दूसरा बसाओगे।
मारे इह जाते यह तुम्हारे प्यारे ऋषि सुत,
माधव मुरारे कैटभारे कब आओगे।
देर जो लगाओगे न पाओगे किसी को यहां,
पाछे पछताओगे कठोर कहलाओगे॥

भारत माता ने आकाश की ओर देखा। ज्योति-स्वरूप भगवान की ज्योति को देखकर भारत माता के हृदय में आशा की ज्योति जाग उठी। उसी क्षण गंगा तट से फिर एक आवाज उठी।

भिक्षा सों वाणिज्य सों दान सों
जोई भारत में पेट पालन आये।
शाहेजहां, जहांगीर, अकब्बर के
दीन हो जिन पैर दबाये।
लाख खुशामद की हाथ जोरि के
ताहि कबहुं कछु टूकड़ पाये।
आजु वही भारतेश बने, क्यूं न
भारत नैनों से नीर बहाये॥

भगवन् ! आज भारत माता क्यूं न रोये, जब कि सहस्राक्ष भगवान घटघट वासी सर्वान्तर्यामी भगवान सब कुछ जानते हुए भी भारत माता को पूछ रहे हैं—भारत माता ! तू क्यूं रो

रही हो। क्या सहस्राक्ष भगवान् को भारत माता के पाओं में पड़े हुए पराधीनता के प्रबल पाश दिखाई नहीं देते ?

श्री भगवान बोले—भारत माता ! दिखाई तो देते हैं, परन्तु इनको देखते देखते मेरी आंखें थक चुकी हैं। जिस अपनी बड़ी बेटी महामाया को संसार को सुख और शान्ति का सन्देश देने के लिये भगवान् ने संसार में आविर्भूत किया था उसी अपनी बड़ी बेटी के पाओं में गुलामी की बेड़ियां देख कर भगवान् को आत्मा को सन्तोष नहीं है। भारत माता ! मैंने तुझे इस लिये पैदा नहीं किया था कि तू रोये और संसार की आत्मा को रुलाये। मैंने तुझे इस लिये पैदा किया था कि तू अपनी कंचन भृंगा की चोटी पर बैठ कर हंसे और तेरी शुभ्र हंसी से सारा संसार उद्भासित हो जाय। भारत माता ! आज तू मुझे गुलामी की बेड़ियां दिखा रही है। इन तेरी बेड़ियों को काटने के लिए पता है मैंने कितना यत्न किया।

तेरे लिये श्री भगवान् अवधपति
विहाय राज्यं वनवास में गये।
भरत भागीरथ अज अंशुमाल से
महाव्रती तेरी ही गोद में भये॥
तेरे लिये श्रीपति कृष्णचन्द्र ने,
तू जानती है कितना किया प्रयास।
अशोक चाणक्य व चन्द्र गुप्त का
तेरे ही उत्संग में था हुआ विकास॥
तेरे लिये शाक्य मुनि प्रबुद्ध ने
भरी जवानी में धरे काषाय थे।
तेरे लिये श्री महाबीर सन्त भी
समस्त सुख छांड़ि बनों में आये थे॥
जगत् गुरु शंकर ने तेरे लिये
तजा शुभे मन्मथनाथ देह को।
तेरे लिए बाल कुमार भट्ट ने
सहर्ष जारा अग्नि में देह को॥
तेरे लिये वे सुकुमारियां शुभे!
समर में जाके यवनों से जा भिड़ीं।
तेरे लिये पद्मनियां सहस्रशः
चित्तौड़गढ़ की अग्नि में जल मरीं॥
तेरे लिये वह पृथ्वीपति मरा
हमीर संग्राम तेरे लिये गया।
तेरे लिये जयमल ने कटाया सर
सुवीर फत्ता रण में तभी चढ़ा॥
तेरे लिये वीर व्रती प्रताप ने
सही थी बनवास की यातना कड़ी।
तेरे लिये छत्रपति शिवाजी ने
म्लेच्छ कुल की प्रतिभा विनाश की॥
तेरे लिये सत्यव्रती राठौर ने
नौरंगजू का गढ़ दम्भ ढ़ा दिया।
तेरे लिये तेग गुरु ने सीस को
स्वतन्त्रता की बलि पै चढ़ा दिया॥
तेरे लिये देव गुरु गोविन्द ने
चिनाय दीवार में देवी ! लाल दो।
तेरे लिये सीखचों से कढ़ा दिया
म्लेच्छ सों वन्दा ने अपनी खाल को॥
साठ कोटि सन्तान तुझे जब कहती अपनी मात।
क्यों मिट्टी में बैठी है तू क्यों यह मैले गात॥
क्यों तू इतनी दीन हुई है क्यों है तुझ को क्लेश।
क्यों लज्जा से सर है नीचा क्यों है दुःख का लेश॥
युगल नयन क्यों सजल हुए हैं क्यों यह सूखे केश॥
ब्राह्मी स्वरूपा जम्मदातृ ज्ञान गौरव शालिनी।
प्रत्यक्ष लक्ष्मी रूपिनी धनधान्य पूर्णित पालिनी॥
जहं पर स्वयं भगवान ने वेदों का गाया गान था।
आदित्य वायु अंगिरा अग्नि की जो थी सम्पदा॥
जहं पर स्वयं भगवान नाना रूप धरि अवतारनम्॥
श्री राम कृष्ण कृपाल भजमन हरण भवभय दारुनम्॥
जिस गोद में पैदा हुए चाणक्य और अशोक थे।

भारत का जो सर्वस्व थे और विश्व का आलोक थे ।।
जहं हर्ष विक्रम भोज ने सुन्दर दिखाई थी छटा ।
परताप के परताप ने परिताप था जग का हरा ।।
नवरंग के आतंक से जब कांप उठ्ठी थी धरा ।।
हरने को भूतल भार जहं श्री कृष्ण बन आये शिवा ।।
गुरु तेग, वन्दा वीर बैरागी, गुरु गोविन्द से ।
जिस मातृ भू का ताप हरने को सजे सिंह सूरमे ।।
बहां आज भी गांधी जवाहर लाल का परकाश है ।
जिस मातृ भू का लाडला नेता सुवीर सुभाष है ।।
जगदीश के जय गान का सर्वोच्च जहं उत्कर्ष है ।
है कौन ऐसा देश ? मेरा प्यारा भारत वर्ष है ।।

प्रभु ने अपनी पुत्री का संकट काटने के लिये इस देश की धरती पर एक अद्भुत रचना रची। प्रभु की प्रेरणा से गांधी को आगे कर भारत पुत्रों ने एक विशाल स्वाधीनता-यज्ञ का अनुष्ठान किया—आकाशवाणी हुई।

अपनी इस घोर तपस्या से
तू ने जो लोक हिला डाला।
अपनी इस अनुपम आभा से
जगतीतल को चमका डाला ।।
हृदय की तेरी अभिलाषा
जिस हेतु तपस्या ठानी है।
अपने तप के बल से मैंने
वह आद-अंत सब जानी है ।।
भारत जननी के पात्रों को
जो छिन-भिन्न करना चाहो।
देवों की देवासुर युद्ध में
विपदा को जो हरना चाहो ।।
तो लो जग के कल्याण हेतु
देती हूं दो वरदान तुझे।
देती हूं अपना विश्व जीत
यह सत्याग्रह का बाण तुझे ।।
है विश्व-विजयी सत्याग्रह का
अचूक बीमा यह बाण तुझे।
लो पकड़ो कौशक देती हूं
इक और अतुल यह दान तुझे ।।
यह शस्त्र है जो घर बैठे ही
रिपुओं का होश भुलाता है।
यह शस्त्र है वायरलैस समान
रिपुगण में जो छा जाता है ।।
इस की घूं घूं से अरिदल
में फैलेगा ऐसा सन्नाटा।
तोपें ठंडी पड़ जावेंगी
मुंह बंद जायगा गोलों का।
कलियुग का चक्रसुदर्शन यह
मैं तुझे दान में देती हूं।
अंतिम स्वरूप में फिर से
मैं संकेत रूप में कहती हू ।।
भारत मां की रक्षा हेतु
जब रणभूमि में जाओगे।
भारत माता के रिपुओं से
जाकर जो युद्ध मचाओगे ।।
सत्य और अहिंसा का तन पर,
पहले दृढ़ कवच चढ़ा लेना।
और फिर रणभूमि में जाकर
चरखे का चक्र घुमा देना ।।

गान्धी ! देवताओं की रक्षा के लिये तू दधीचि के समान अपनी अस्थियों का वज्र बना कर देने लगा है—ले, मैं तुझे दो वरदान देती हूं। पहला तेरा कवच है और दूसरा चक्र। इन दोनों को धारण कर युद्धस्थल में जाना। तेरी विजय अवश्य होगी। स्वाधीनता की देवी यह दो वरदान दे स्वर्ग लोक को चली गई। इन दोनों सिद्धियों को प्राप्त करके सन्त उनकी ज्योति से प्रकाशमान हो उठे। उनके दिव्य तेज से निखिल ब्रह्माण्ड तेजोमय हो गया।

साबरमती के तीर पै भई संतन की भीर।
सिद्धाश्रम है बन रहा साबरमती का ती…

देवताओं ने यज्ञ कुण्ड में आहुतियां डालीं। तत्काल यज्ञकुण्ड से धुआं उठा। वह धुआं आकाश में जा एक सहस्त्र-भुजा देवी के रूप में परिणित हो गया। देवताओं ने आकाश की ओर हाथ जोड़ उस देवी का आवाहन किया।

आजा आजादी की देवी !
भारत में फिर आ जा।
ऊजड़ शुष्क स्थलों पर
अपनी सुखद समीर बहा जा॥

और वह आजादी की देवी बोली ! सावरमती के सन्त की तपस्या फली भूत हुई, स्वाधीनता की देवी का प्रकाश भारतीय गगन पर हो गया है, परन्तु भारत में आई हुई स्वाधीनता की तुम रक्षा भी कर सकते हो ? स्वाधीनता को पाना कठिन नहीं, प्राप्त की हुई स्वाधीनता की रक्षा करना कठिन है। क्या आप में सामर्थ्य है। क्या आप में त्याग की शक्ति है। तुम कह दोगे, हां ! परन्तु मैं तुम्हारी परीक्षा लेना चाहती हूं। दस वर्ष बाद १९२९ में मैं रावी तट पर प्रकट होऊंगी और यदि आप लोगों ने अपने बलिदान से मुझे प्रसन्न कर दिया तो मैं गांधी के राम के गले में अपनी जय माला डाल दूंगी।

आऊंगी मैं रावी तट देव-दुख नाशन को
दासता कुपाश छिन्न-भिन्न कर जाऊंगी।
भय सों भाग जाय इह भूत पराधीनता का
भारत में आके ऐसी ज्योत मैं जगाऊंगी।
सूखे बन भये शस्य श्यामला स्वदेश के जो
ताही पर आके सुधा वारी वर्षाऊंगी।
भारत का लाल भव-भारत की आशा एक
जवाहर के कंठ विजयहार पहराऊंगी॥
ईसा के नव वर्ष के प्रथम क्षण ईरावती देश में।
आयेगी वह भगवती गगनगा स्वाधीनता वेश में॥

जिल्लयाँ वाला बाग

डायर औड्वायर सुभट, महाक्रूर जग जान।
अमृतसर के बाग मे, आग बहाई आन॥

हजरत ईसा मसीह की बीसवीं शताब्दी का उन्नीसवां वर्ष पैदा होकर मुश्किल से अभी चलना ही सीखा था। अप्रैल महीने का तेहरवां दिन था। इस दिन बैसाखी थी। भास्कर भगवान् का जन्म दिन मनाने के लिये लाखों ही भारत-पुत्र अमृत-सर के तट पे बैठे बड़ी ही श्रद्धा तथा भक्ति से हाथ जोड़कर आदित्य देव की आराधना में लीन थे। "दिवाकर-प्रभु के जन्म-दिवस पर आज़ादी की देवी गुरु की नगरी में प्रगट होगी।" साबरमति के तट पर हुई आकाश वाणी का सुन्दर कल्पवृक्ष आज ही के दिन जिल्लयां वाला बाग में उपजना था। मातेश्वरी स्वाधीनता के चरण रज को अपनें मस्तक पे आरुढ़ कर अपना जन्म सफल करने की लालसा को हिय में धार लाखों ही स्वाधीनता देवी के उपासक आज अमृतसर के पावन तट पे समाधि लगाय आकाश की ओर देख रहे थे। एक सप्ताह पहिले देवताओं ने उपवास किया, व्रत रक्खा और पूर्ण हड़ताल मनाई।

बाल रवि अपने निश्चित समय पर अपने भव्य प्रासाद से निकले। उस दिन तो उनकी आभा भी निराली ही थी। देवोंने पूर्व की ओर देखा एक सहस्त्र-भुजा देवी सात घोड़े वाले रथ पर चढ़ी हुई सूर्य भगवान के रथ के पीछे २ आ रही थी।..."आकाश-वाणी अक्षरशः सत्य ही निकली।" स्वाधीनता की देवी अमृतसर के शिखर पे आने ही वाली हैं। अमृतसर के तट पे जलियां वाला बाग में सब देवता इकट्ठे हुए पूर्व की ओर मुंह करके स्वाधीनता स्तोत्र का पाठ करने लगे। 'जय स्वाधीनते मातु तुम्हारी'

१२ बज चुके थे। गगनपति स्वाधीनता देवी को साथ लिये आधी यात्रा को पार कर चुके थे। उस दिन तो वे आ भी रहे थे बड़ी ही मदोन्मत्त गति से। आज तो वे निकले ही थे

अपने घर से भूतल पे नव वर्षारम्भ का उत्सव मना रहे देवताओं की लीला को देखने । उन्हें क्या आवश्यकता थी अपने रथ को तीव्र गति से भगाने की ।

दोपहर बात चुकी थी । लगभग चार बजने ही वाले थे । भगवान आदित्य देव ने विपासा नदी को पार कर अमृतसर की सीमा में पांव धरा । आकाश में एक अद्‌भुत सा प्रकाश हुआ । गन्धर्व, किन्नर, अमर अपने अपने विमानों में बैठ इस अनोखे यात्री का स्वागत करने और उस के जन्म दिवस पर उसे बधाई देने आकाश में उड़े ।

रावी के तट पर ओडवायर अपनी सैना सजाये खड़ा था और देख रहा था दूर से वहभी अमृतसर की ओर आ रही सहस्र भुजा देवीको, जिस प्रकार सूर्य के उदय हो जाने पे नक्षत्रों का अस्तित्व ही मिट जाता है, उस ओडवायर ने देखा कि उस सहस्र भुजा देवी के प्रभाव से वह स्वयं मूर्तिमान् अन्धकार बन रहा है । प्रतिक्रिया की भावना ने जोश मारा, और एक ही क्षण में डायर अपनी आसुरिक सत्ता लेकर जिल्ल्यां वाला बाग के द्वार पर खडा था ।

चारों ओर से ऊंची २ दीवारों से घिरा हुआ वह जलियां वाला बाग आज स्वाधीनता देवी के भक्तों का शिवालय बन रहा था । इस शिवालय में आने जाने को केवल एक ही छोटा सा द्वार था ।

चार बज चुके थे, ३५ मिनट ऊपर भी हो गये । आज़ादी की देवी इस समय ठीक जलियां वाला बाग के ऊपर आचुकी थी ।

ठा ! ठा !! ठा !!! ३०००० देवताओं के समूह पर चौथाई घण्टे तक अग्नि वर्षा,—वर्षा के ओलों के मानिन्द १७५६ गोलियां, ठा ! ठा !! ठा !!! शिवालय के चारों ओर ऊंची दीवार थी ! केवल एक ही द्वार था उसी की ओर से ठा ! ठा !! ठा !!!

"मैंने तब तक गोली चलाई, जब तक मेरे पास एक भी गोली बाकी रही । मुझे इस बात का अत्यन्त शोक रहा कि मैं अपना मशीनगन को उस छोटे से दरवाजे में से अन्दर न ले जा सका । जो कुछ हुआ मुझे इससे सन्तोष नहीं । मैं सिपाही हूं, मेरा काम ही है दूसरों को गोली मारना । मुझे रंज था केवल इस बात का कि गोलियां खत्म हो जाने से मैं अच्छी प्रकार से अपनी मनोकामना पूरी न कर सका !!!"

यह थे शब्द जो उस सदेह अभिमान के मुँह से गोली चलाने के बाद निकले ।

अय मूके भारत देश जाग !
अय वैभव के अवशेष जाग !
अय जीवन के कंकाल जाग !
अब जले आग विकराल आग !

हे यौवन के अभिमान जाग !
हे जीवन के अपमान जाग !
हे नव भारत की शान जाग !
हे साहस के अभियान जाग !

अय सद्‌ब्राह्मण के ज्ञान जाग ! अय क्षत्रिय के अभिमान जाग !
अय वैश्य अर्थ विज्ञान जाग ! अय शूद्र हृदय के ध्यान जाग !

बढ़ आगे बढ़ अय शस्त्र हीन !
मत होना मन में कुछ मलीन !
तप तेज सत्य दृढ़ता प्रवीण !
ला देंगे तुझको विजय आशीष !
हे गौरव भूमि विहार जाग !

हे विश्व-वन्द्य पांचाल जाग !
हे स्वर्ग भूमि बंगाल जाग !
हे युक्त-प्रांत सुविशाल जाग !
हे हिम-नग भारत ढाल जाग !
भारत जीवन-आधार जाग !

गुजरात विश्व परकास जाग !
जीवन आहुतियां डाल डाल !
कर दे वसुधा का भाल लाल !
हो इक जननी के सभी लाल !
आने दे फिर से स्वर्ण काल !

महाराष्ट्र जाग मद्रास जाग !
दे जुआ आज नीचे उतार !
कर नीच गुलामी तार तार !
इस जीवन की ममता विसार !
सह तोप तीर तलवार वार !

अय भूखे भारत देश जाग !

जल्लयाँ-वाला बाग

अनुपम इन्द्र भवन से बढ़कर प्यारे जल्लियां वाले बाग !
तेरे दुःख को सुमिर आज भी फड़क उठे सीने में आग ।।
वीर सपूतों के पवित्र शोणित की सरिता बही जहां !
मरे सहस्त्रों वयोवृद्ध और सुन्दर बालक कई जहां !!
तोप और बन्दूक चलीं, दुखड़ों की छाई घटा जहां !
हुए मृत्यु के ग्रास किसी के पुत्र किसी के भ्रात जहां !!
स्मरण मात्र से तेरे दुःख के हृदय विकल हो जाता है !
व्याकुल रहते हैं निशदिन हा ! चैन नहीं अब आता है !!
मत निराश हो जल्लयाँ वाले ! मरे वीर फिर आवेंगे ।
स्वतंत्रता की ध्वजा देश में आके फिर फहरावेंगे ।।
रक्त बहा है जिन वीरों का वृथा नहीं वह जावेगा ।
शुभ स्वराज्य की सुन्दर लतिका लाकर शीघ्र लगावेगा ।।
रत्तो, बुग्गा की कुर्बानी, बालमदन का वह बलिदान ।
जर्जर भारत को कर देगा फिर से भारत महा महान ।।

असुर के उत्पात ने देव गण में हाहाकार मचा दी। तीस हजार देवताओं के समूह पर अग्नि वर्षा। निरन्तर दस मिनट १६५७ गोलियां .... त्राहिमाम्, त्राहिमाम् ! उस समय आकाश वाणी हुई............

'अय साबरमती के देवता ! जिस प्रयोजन के हेतु तुमने साबरमतो के तट पे घोर तपस्या की थी, जिस अवसर के लिये आशुतोष भगवान् ने तुम्हें दिव्य अस्त्र दिये थे, वह समय अब आ गया। गुरु की नगरी में उत्पात.. अमृत के सरोवर में रक्त-पात...ज्योतिर्मयी स्वाधीनता से विरोध, उलूक का दिवाकर भगवान् से बैर... भारत माता की शस्य श्यामला गोदा में रुधिर का धार......महात्मा ! ......वह समय अब आ गया है। उठा अपने आशतोष-प्रदत्त बाण को।

उस समय साबरमती के महात्मा ने उस दिव्य अस्त्र को छोड़ा। देवताओं ने आकाश से पुष्प वृष्टि की। गन्धर्व तथा किन्नर नभमण्डल में महात्मा की जय-जय के मधुर गीत गाने लगे। गांधी-शर के छूटते ही डायर दो सहस्त्र योजन परे सात समुद्र पार जा गिरा।

साबरमती के देवता...राजर्षि मालवीय, भगवान् तिलक, देशबन्धु चितरंजनदास को साथ लिये पांचाल वीरों को प्रोत्साहन देने चले... आजादी की देवी ने आशीर्वाद दिया...'तुम्हारी वीरता से मैं प्रसन्न हुई........भारत तुरन्त ही

स्वाधीन होगा..... नवयुवको आगे बढ़ चलो।"

आजादी की देवी आई और भारत पुत्रों को अपना शुभ आशीर्वाद देकर चली गई। गुरु की नगरी के ऊपर एक अभूत पूर्व ज्योति देखकर डायर उसे सहन न कर सका। वह तो था एक शिकारी और शिकार करने के लिये ही वह सात हज़ार मील चलकर आया था। अन्धकार में शिकार करना जितना सहज है, उतना सहज शिकार प्रकाश में नहीं हो सकता। यह उसे भली भांति ज्ञात था और इसी लिये उसे प्रकाश से बैर होना तो अवश्य ही था। अमृतसर की ज्योति ने उसे अन्धा कर दिया। सूर्योदय पर उल्लू तो स्वयं अन्धा हो ही जाया करता है, और इसी मदान्धता में उसने दिल खोलकर देवताओं पर अग्नि वर्षा की।

साबरमती के सत्याग्रही ने अपने आप को बहुत रोका ..बहुत रोका...परन्तु आततायी का अत्याचार अपना सीमा को पार कर चुका था।

आशुतोष भगवान के दिये हुए सुदर्शन चक्र को महात्मा ने छोड़ा......उस समय आकाश से सुधा वर्षा हुई और डायर उस शक्ति से बींधा हुआ दो सहस्र योजन परे त्राहिमां, त्राहिमां पुकारता हुआ जा गिरा।

सत्य की जय हुई—साबरमती के पवित्र तट से जिस देव-यज्ञ का शुभ श्रीगणेश हुआ था, वह अमृतसर के तट पे आज अपने सुखान्त इति श्री के स्वरूप में प्रकट हुआ। विरोधी शक्तियों ने यज्ञ विध्वंस करने में कुछ भी कसर न छोड़ी थी। परन्तु जिस यज्ञ के ब्रह्मा हों स्वयं धर्मराज बंगाल के बेताज बादशाह श्री चितरञ्जन बाबू हों जिस यज्ञ के अधिष्ठाता, त्रिवेणी पति राजराजेश्वर श्री मोतीलाल हों जिस यज्ञ के यजमान. देवता हों जिस महान यज्ञ के स्वयं महाराष्ट्र केशरी तिलक भगवान, पंजाब केशरी लाला लाजपतराय, वीर शिरोमणि श्री श्रद्धानन्द, श्रद्धेय गणेशशंकर विद्यार्थी तथा वल्लभ भाई पटेल सरीखे विकराल काल के गाल पे चपत लगाने वाले सत्याग्रही महारथी हों जिस यज्ञ के होता—वाराणसी-पति महामना मालवीय हों जिस यज्ञ के मन्त्र-दृष्टा, गर्जर नरेश विट्ठल पटेल हों जिस यज्ञ के आचार्य और जवाहर तथा सुभाष दो अतल वीर हाथ में धनुष वाण लिये रक्षा कर रहे हों जिस यज्ञ की···उस यज्ञ की ओर कोई असुर आंख तक उठाकर देख जाये···असम्भव!!

सत्य और अहिंसा की सत्ता के सामने निशाचर-नाच विफल रहा···लन्दन में हाहाकार मच गई। वह डायर जिसने बेल्जियम के क्षेत्रों में अपनी तलवार का आतंक जमा दिया था, वह डायर जिसने पैलस्टाईन, मिश्र तथा ट्रांस-वाल में विरोधियों के कान खैंचे थे···वही विश्व विजयी डायर त्राहि मां, त्राहि मां, करता हुआ गौरांग द्वीप में जा गिरा।··· ···

"उसके पास आशुतोष भगवान का दिया हुआ कवच है जिससे टकरा कर हमारा तोप, बन्दूकें, राइफलें, संगीनें सब निष्फल हो जाती हैं। उसके हाथ में एक ऐसा जादू है,— जिसके सिर पर वह अपना हाथ फेर देता है उसे मृत्यु का भय नहीं रहता। उसके अन्दर एक ऐसी शक्ति है जो कोई उसका पल्ला पकड़ता है वह उसीके समान बन जाता है। हमने गोलियाँ बरसाईं··· उससे टकराते ही हमारी गोलियां संजीवन बटी बन गईं। हमने खून की नदियाँ बहाईं···उस नदी के एक-एक रक्त के बिन्दु से उस सरीखा ही एक एक वीर उत्पन्न हुआ। हमने उसे अपने नाग फांस में फँसा जेलों में बन्द किया···उसके

चरणों का स्पर्श करते ही जेलखाना स्वराज्य मन्दिर बन गया।...वह एक अद्भुत शक्ति है जिसे आसुरिक शक्ति स्पर्श तक नहीं कर सकती।"...डायर ने कहा—

'तो क्या उसकी यह शक्ति छीनी नहीं जा सकती, डायर के शब्दों को सुनकर बरकनहैड ने कहा, जिन गौरांग महाप्रभुओं ने पाताल को विजय किया, जिन गौरांग वीरों ने नैपोलियन के पाओं में जंजीर डाली, जिन गौरांगसूरों ने वाटरलू के प्रलय क्षेत्र में हाहाकार मचादी वे गौरांगवीर जिनके शासन पै सूर्य तक कभी अस्त नहीं होता वे...क्या एक लंगोट बन्ध फकीर के हाथों से वह अजय शक्ति छीन नहीं सकते ?

"छीन सकते हैं", सर सायमन बोले...मैं जाता हूँ और अभी छीन कर दिखाता हूं।

पंजाब-केशरी।

देखो तो इस चक्र व्यूह में, घिरा हुआ पांचाल कुमार।
किस दृढ़ता से सहन कर रहा सप्त महारथियों के वार।

बारदौली-में हुई गौरांग महाप्रभुओं की घोर पराजय से विरोधी दल तिलमिला उठा। महासुर रौलट, सैनानी डायर एवं ड्यूक की हुई दुर्दशा का चित्र उनको दुःखाने के लिए पहले ही समुचित था, बारदौली में हुई पराजय ने घावों पर और भी नमक छिड़क दिया।

सत्याग्रह के विमल क्षेत्र में कण्टकवपन, असहयोग के शांतमयी युद्ध में गोलियों की वर्षा, सत्य तथा अहिंसा के पवित्र यज्ञ में रक्त-पात, महात्मा की तपस्या को भंग करने के प्रयत्न स्वरूप विरोधियों ने अपनी ओर से क्या कुछ नहीं किया, चौरा-चौरी की घटना......देवर्षि गान्धी का नाग-फांस प्रवेश...यह सब कुछ करके भी गौरांग वीर निराशा के अतिरिक्त और कुछ भी प्राप्त न कर सके...निराशा ! निराशा !! निराशा !!

"मैं अपने सात महारथियों को लेकर जाता हूँ। मेरी शक्ति के सामने वह लंगोटी वाला एक क्षण भर भी नहीं टिक सकेगा...गौरांगवीरो ! तुम घबराओ नहीं। चर्चिल, बाल्डविन बरकनहैड, ओडवायर, होर, सैम्युअल, लाईड जार्ज सरीखे वीरों की माता बृटानिया कभी निराश नहीं हो सकती, गौरांग महाप्रभुओं की सभा में सर जौन साईमन बोले,—डायर, रौलट तथा ड्यूक का बदला लेने के लिए मेरे सात वीर काफी हैं।

यही शब्द पहले ड्यूक ने भी कहे थे—उस समय इन शब्दों ने सभा में एक उल्लास का सागर सा बहा दिया था। एक एक शब्द पै करतल ध्वनि हुई थी...परन्तु आशा ! आशा !! आशा !!! हाय री आशा !!!!

आशा का है रूप निराशा

मृत्यु-शैया पर पड़े हुए रोगी को अपनी मृत्यु का पूर्ण विश्वास हो जाने पर भी वैद्य के शब्दोंसे कुछ न कुछ सान्त्वना मिल ही जातीहै।

साईमन अपने सात महारथियों सहित अपने रथ पर सवार हुआ। कुछ ही समय के बाद उसका रथ भारतीय दुर्ग के पश्चिमी द्वार बम्बई के फाटक पे खड़ा था। द्वार बन्द थे...अपने वज्र प्रहार से उसने द्वार को तोड़ डालने की धृष्टता की, वह असफल रहा।

उसने अपने रथ को दक्षिण की ओर फेरा उसने दूर से ही देखा—दक्षिण का द्वार भी बन्द था—निराशा !!! अपने घोड़ों की लगामें खेंच ली...पूर्व की ओर...उसने दूर से वीक्षण यन्त्र द्वारा देखा-द्वार खुला था...उसका हृदय खिल उठा......अपने द्रुत-गामी रथ को पूर्ण वेग से उसने पूर्व की ओर भगाया। थोड़ी सी देर में

उसका रथ पूर्वीय द्वार के निकट पहुँच चुका था।...एकाएक उसका हृदय धड़क उठा! दो शेर उस द्वार पर खड़े दहाड़ रहे थे। सेनगुप्त और सुभाष बोस...दो शेर अपनी दहाड़ से गगन को कंपा रहे थे। साईमन को निकट जाने का साहस ही नहीं हुआ –वह निराश हो उठा।

उत्तर का ओर! उत्तर-पश्चिम की ओर!! नहीं! कदापि नहीं!! देख लिया सब कुछ, बम्बई के रास्ते अब वापिस घर...सात समुद्र पार, वहीं! जहाँ से चले थे।

पूर्वीय-द्वार से साईमन ने सप्त-महारथियों सहित अपने रथ को मुम्बापुरी की ओर फेरा। साईमन-सैवन का रथ बम्बई के पास पहुँच गया था। घोड़े एकाएक रुक गयें। क्यों? साईमन ने पीछे लौट कर देखा।

कृष्ण-वर्ण फूंदे दार, रक्त-वर्णी ऊंची-२ टोपी सिर पर धरे, एक अभूत-पूर्व ढंग से नर-अजा सदृश ठोडी पे थोड़े से बाल रक्खे हुए लम्बा-लम्बा, बन्द गले का कोट, टाँगों पर तंग पाजामा, पाओं में डासन के बूट, हाथों में काली काली पतली सी छड़ी, पान चबाये, चोटी पर फूंदा लटकाये, एक पतला सा, लम्बा सा व्यक्ति रथ को पीछे पकड़े खड़ा था।

"उत्तर-पश्चिम को अपने चरण कमलों से कृतार्थ किये बिना ही आप घर का चल दिये वह लम्बा-२ व्यक्ति बोला।

"उत्तर पश्चिम को अपने चरण-कमलों से कृतार्थ किये बिना ही" साईमन के कान खड़े हो गये। बाकी स्थानों पर क्या बना लिया जो उत्तर-पश्चिम के द्वार पर जाने से भी बन जाता!!

पंजाब का शेर "जिल्लयाँ वाला बाग' खालसा-बहादुरां का तीर्थस्थल, डायर-संहार, रौलटोद्धार क्या यह सब उत्तर-पश्चिम की स्मृतियाँ नहीं हैं? और तुम कहते हो उत्तर-पश्चिम को कृतार्थ किये बिना ही! आपकी तारीफ!!

आपके भारत आगमन से हमारी आश बंध गई थी, गौराँग महाप्रभुओं का आशीर्वाद प्राप्त कर हमारा जन्म सफल होग, ऐसा विचार कर हम फूले नहीं समाते थे। परन्तु आप तो पंजाब को कृतार्थ किये बिना ही...

सर जौन साईमन ने हेलेशाम की ओर देखा "आर्यलन्ड की पवित्र वीरभूमि का स्वनाम-धन्य अलस्टर, रावण की स्वर्ण मयी लंका के विभीषण तरावड़ी-क्षेत्र के जयचन्द पानीपत की पहली लड़ाई के शिवाजी, पलासी के युद्ध के मीरजाफर यह पंजाब के छप्पन फीसदी गद्दार'

डूबते को तिनके का सहारा, अन्धकार में दीपक का उज्यारा, यह छप्पन फीसदी! मियाँ-साहिब!!

पंजाब को कृतार्थ किये बिना ही, परन्तु पंजाब का शेर...

पंजाब का शेर! आप कुछ चिन्ता न करिये। रात्रि के बारह बजे पंजाब का शेर सो रहा होगा..अपने रथ को पंजाब के द्वार पर ले आना; हम छप्पन फीसदी उसका द्वार खोल देंगे।

Bravo! शाबाश! शाबाश!! बड़े मियां साइमन-रथ के सारथी बने।

रात्रि लगभग आधी व्यतीत हो चुकी थी। १२ बज चुके थे। रथ पंजाब के द्वार पर आकर खड़ा हुआ। पंजाब केशरी सो रहे थे। छप्पन फीसदी सूरमाओं ने अपने कर-कमलों से द्वार का उद्घाटन किया।

"बोल! छप्पन फीसदी वालों की जय"

वीर साईमन ने अपने सप्त महारथियों सहित पंजाब में प्रवेश किया। उसका दिल धड़क रहा था। जिन मोर जाफरोंकी आशा पर उसने विश्वास किया उनका सहयोग कहां तक! पंजाब का शेर...रात्रि दो घण्टे शेष है, पंजाब का शेर शीघ्र ही उठेगा। साईमन ने रथ को बहुत ही तीव्र गति से भगाया। पंजाब द्वार में दाखिल हुए सर जौन साईमन को पांच घण्टे हो चले थे। कालिन्दी के तट से चल कर विपासा को पार कर के उसने चन्द्रभागा, वितस्ता, अट्टालिका तथा सरस्वती की ओर जाना था।

वर्षा के दिन निकल चुके थे। शरदऋतु का आरम्भ हो चुका था। प्रातः सात बजे थे। सूर्य भगवान् अभी अपनी दिनचर्या पर निकल ही थे। साईमन का रथ ईरावती के तट पर आ पहुंचा।

पंजाब का शेर जाग उठा था। दूर से उसने सप्त-गौरांग महारथियों को रथारूढ़ भागते हुए देखा...उसे आभास हुआ मानों विश्वम्भरा, भगवती जानकी जी को लंकाधिपति रावण बलपूर्वक भगाए लिये जा रहा है। वृद्ध जटायु के समान वह अकेला पंजाब-केशरी साईमन के रथ को ओर झपटा।

"साईमन गो बैक"

को ध्वनि से पंजाब केशरो ने आकाश गुंजा दिया।

साईमन का हृदय बराबर धड़क रहा था। जिस बात का उसे भय था वह प्रत्यक्ष सामने आई। पंजाब केशरी की दहाड़ से छप्पन फीसदी तो वहीं बेहोश होकर भूतल पर आ गिरे। साईमन ने अपने रथ को वापिस लौटा लिया! एक कदम भो आगे बढ़ने का उसे साहस नहीं हुआ। "बोल पजाब केसरी की जय"

सायमन संहार

साईमन के सब वीर, लगे भागने युद्ध से।

अरे अरे रणधीरो रणसे भाग रहे क्यों आज? रण में पीठ दिखाना था, तो घर से क्यों आना था।
रण में पीठ दिखाते क्या न आती तुमको लाज? क्या रण में तुम आये थे कर इन यवनों पर आस॥
भाइयों के न बने सगे जो, देश-द्रोह में नित्य लगेजो॥ अपने हाथों किया जिन्होंने अपने कुलका नाश॥

कैसे निज क्षात्रिय समाज म फिर कर तुम भी आज।
दिखलाओग अपना मुख। इस जीवन में है क्या सुख।
पत्नी, पुत्र हंसेंगे तुम पर, नहीं लगेगी लाज॥
हाय चिरापार्जित वह अपना कुल गौरव सिरमौर॥
कैसे तुम वह मंजु मयंक। करते हो मणिमय सकलंक।
उससे अधिक बृटिन वालों का क्या गौरव है और॥
मत खोओ, मत खोओ तुम, ओ मूर्ख! यह भारत रत्न।
यह सुदिव्य धन खोओग। तो जोवन भर रोओगे।
जान न सकोगे इसे कभी फिर करके लाख प्रयत्न॥
कभी एक दिन, किसी एक दिन जन्म जन्म में हाय।
कभी जो हारेंगे हम लोग। करेंगे अतुल यातना भोग।
पड़कर निर्मम नरगृद्धों के हाथों में निरुपाय॥

पराधीनता और अनादर सह सह कर अनिःार।
कैसे तुम पाओगे त्राण। किस प्रकार रक्खोगे प्राण।
हृदय जलेगा, हृदय जलेगा, होगा तप्तांगार॥

गांठ बांध रक्खा यदि रण में हुआ पराजय प्राप्त।
तो दासत्व शृंखला भार। नहीं मिटेगा किसी प्रकार।
जीवन संशय उपजावेगी पारतंत्र्य विष व्याप्त॥

चलो चलो, हे वीरबन्धु गण अब असह्य है देर।
देखें कौन विजय पावे। कौन अधिक बल दिखलावे।
बृटानिया का बल दिखलावेंगे भारत को घेर॥

बृटानियां-बल दिखलावेंगे लेकर उनसे वैर।
बल से हिमगिरी को टालें। पांव बेड़ियां जा डालें।
नहीं फेरना रण से लेकिन कभी एक भी पैर॥

क्या तुम नहीं देखते हो यह सत्यानाश समक्ष।
जाता है स्वतन्त्रता धन। और हिन्द का सिंहासन।
डूब रहा सर्वस्व सामने है अब किसका लक्ष्य॥

वीरों की सन्तति हो तुम उन वीरों के अवतार।
कैसे भागे जाते हो। कुल को दाग लगाते हो।
होकर सिंह-कुमार कार्य में बनते हो क्यूं स्यार॥

वीर पूर्वजों का शोणित है हममें ओत प्रोत।
रहते अपने दम में दम। रण से नहीं हटेंग हम।
रुक न जाए श्वेतांगों में जब तक रक्त स्रोत।

विश्रुत है बृटानियां का इक साहस मात्र सहाय।
उस वीरत्व विभाकर में। ग्रहण लगाकर तुम घर में
आज घुसोगे भला कौन सी आशा लेकर हाय॥
अस्त्र शस्त्र सों सज्जित हो साईमन—सैवन भरपूर।
कदम बेध बर आगे आ। लाला जी को घेर लिया॥
घेर लिया और ले गये उनको रावी तट से दू...र॥

सर फरोशी की तमन्ना

खुदीराम बोस, कन्हायीलाल दत्त, मदन लाल ढींगरा, लाहिरी राम प्रसाद बिस्मिल, चन्द्रशेखर आजाद, जेतन दास, सरदार भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु, वटुकेश्वर दत्त, रौशन, अशफाक, हरिकिशन

का प्यारा गीत

सरफरोशो की तमन्ना अब हमारे दिल में है,
देखना है जोर कितना बजुए कातिल में है।
रह रवे राहे मुहब्बत रह न जाना राह में,
लज्ज़तें सहरानवरदी दूरिये मंजिल में है,
आज यूँ मकतल में कातिल कह रहा था बार बार,
क्या तमन्नाय शहादत भी किसी के दिल में है?
वक्त आने दे बता देंगे तुझे अय आसमां,
हम अभी से क्या बतायें, क्या हमारे दिल में है।
खैंच कर लाई है हम को कत्ल होने की उमीद,
आशिकों का आज जमघट कूचाय कातिल में है।

... ...

दिल फिदा करते है कुरबान जिगर करते हैं,
खानाय वीरान कहाँ देखना घर करते हैं,
सूख जाय न कहीं पौदा यह आजादी का,
खून से अपने इसे इस लिए तर करते हैं,
खुश रहो अहले वतन अब हम तो सफर करते हैं,
जाके आबाद करेंगे किसी वीराने को,

याद आती है अलीपुर की सदा जेल हमें

हम भी आराम से सो सकते थे घर पर रह कर,
हमको भी पाला था माँ बाप ने सब दुःख सहकर,
वकते रुख्सत उन्हें इतना भो न आये कहकर
गोद में अश्क जो टपके कभी रुख से बहकर,
तिफल इनको ही समझ लेना जी बहलाने को ॥
देश सेवा का ही बहता है लहू नस-नस में,
अब तो खा बेठे हैं चित्तौड़ के गढ़ की कसमें,
सर फिरोशी की अदा होती हैं यूं ही रस्में,
भाई खञ्जर ले गले मिलते हैं सब आपस में,
बहनें तैयार चिताओं में हैं जल जाने को ॥
नौजवानों जो तबीयत में तुम्हारे खटके,
याद कर लेना कभी हम को भी भूले भटके,
बदन के इजू जुदा होवें जभी कट कट के,
और सर चाक हो माता का कलेजा फटके,
पर न माथे पे शकन आये कसम खाने को ॥
अपनी किस्मत में अजल से ही सितम रखा था,
रञ्ज रखा था अलम रखा था गम रखा था,
किस की परवाह थी और किस में यह दम रखा था,
हम ने जब वादिये गुरबत में कदम रखा था,
दूर तक यादे वतन आई थी समझाने को ॥
अपना कुछ गम नहीं लेकिन यह ख्याल आता है,
मादरे हिन्द पै कब तक यूं जवाल आता है,
देखें आजादी का कब हिन्द में साल आता है,
कौम अपनी पै तो रह रह के मलाल आता है,
मुन्तज़र रहते हैं हम खाक में मिल जाने को ॥
बात तो जब है कि इस बात की जिद्दें ठानें,
देश के वासते कुरबान करें सब जानें,
लाख समझाय कोई एक न उसकी मानें,
कौन कहता है कि खूं से न गिरेवां सानें,
नाखुदा आग लगे इस तेरे समझाने को ॥
अब तो हम बांध चुके अपने गले में झोली,
एक होली है फकीरों की हमेशा बोली,
खून से फाग मनायेगी हमारी टोली,
जब से बंगाल में खेलें हैं कन्हैया होली,
कोई उस दिन से नहीं पूछता बरसाने को ॥

बानर-दल में हाहाकार मच गया पन्जाब केशरी कहां गये ? "साईमन से लड़ते-लडते वे बहुत दूर निकल गये होंगे" सत्याग्रह—दल के जैनरल किचलूने कहा 'हां' ! मेरा भी विचार ऐसा ही है, गोपीचन्द ने किचलू का समर्थन करते हुए कहा। सत्याग्रह दल के महा सचिव सत्यपाल बोले "साईमन मायावी था... पन्जाब केशरी पर अपनी माया का जाल बिछाकर कहीं वह उन्हें आकाश में न ले उड़ा हो" ' सत्यपाल का विचार ठीक है—अवश्यमेव साईमन ने कुछ छल किया होगा। मुझे ऐसा भासित हो रहा है, मानों साईमन पंजाव-केशरी को बहकाने के हेतु अन्डमान की ओर भाग गया हो और पंजाब-केशरी भी उसी के पीछे-पीछे अन्डमान की ओर चल दिये हों, जनरल केदारनाथ सहगल ने कहा। "अन्डमान तो बहुत दूर की बात है... सहगल जी को सदैव अन्डमान की ही सूझती है ...यह हमारे निकट ही गौराङ्ग महा प्रभुओं की सैन्ट्रल-जेल क्या अन्डेमान से कम है। मेरा तो विचार है कि पंजाब केसरी को अजेय समझ कर सायमनने मायामय नागफांस में लाजपत को फंसा रक्खा हो" पुरषोत्तम दास टन्डन बोले।

जितने मुख उतनी बातें। कोई एक निश्चय न हो सका। उस समय एक नवयुवक उठा... उसके ललाट पर आषाढ़ के सर्य का सा तेज बरसता था। वह देव-पुत्र था, बाल-ब्रह्मचारी था। उसका गोल-गोल मुख, लम्बी सी गरदन, चौड़ी-चौड़ी चमकीली आंखें—सुसंगठित शरीर ...तेजस्वी स्वरूप सौम्य मर्त्ति, वह था महावीर चुपचाप कार्य करने वाला। उसका पहले किसी ने नाम तक भी नहीं सुना था। सत्याग्रही दल के बड़े-बड़े कार्य उस अकेले वीर ने सिद्ध किये थे। वह था भारत माता का सच्चा भगत, वह था मजनूं ...स्वाधीनता देवी का मजनुं ...सच्चा दूध पीने वाला नहीं, किन्तु खून देने वाला मजनूं...स्वाधीनता रूपी लैला का अनन्य पुजारी। २७ वर्ष का वह उठती जवानी का नौजवान, उस पर तो स्वयं स्वाधीनता लैला भी बलि-बलि जाती थी। उसकी दिव्याकृति के सामने तो खिले हुए कमल भी लज्जित हो अपने आप को जल के भीतर छुपा लेते थे। यद्यपि स्वयं उस मजनूं के पीछे देवी स्वाधीनता भागी-भागी फिरती थी परन्तु उसमें तो इस बात का कुछ भी अभिमान नहीं था। वह तो था स्वाधीनता देवी का सच्चा भगत और साथ ही बल पौरुष में था वह सिंह—भगत और सिंह... दोनों एक साथ...तो फिर स्वाधीनता देवी उस पर क्युं न अपना सर्वस्व वारती।

परन्तु यह सब कुछ जानता हुआ भी वह खून देने वाला मजनूं बना था। वह उठा—सब आंखें उस सिंह की आंखों पर केन्द्री-भूत हो गईं—उसके मुखारविन्द से सुधा-वाणी बही "सत्याग्रही वीरो ! अब अनुमान-मात्र से केवल बातें बनाने का समय नहीं। अब समय है क्रियात्मक-रूप से रण-केशरी की खोज करने का। पंजाब-केशरी के बहादुर सिपाही अपने प्राण-प्यारे जरनैल को अवश्य खोज कर लायेंगे। वह आकाश में हों, चाहे वह अन्डमान में हों, चाहे वह सैन्ट्रल-जेल रूपी-नाग फांस में जकड़े हों—हम नवयुवक पंजाब-केशरी को खोज कर लावेंगे। भूतल में, रसातल में, नभ में, पाताल में, हम चप्पा-चप्पा छान मारेंगे-परमात्मा न करें ! किन्तु मुझे फिर भी यह कहने के लिये आज्ञा दीजिये 'यदि पंजाब-केशरी स्वयं स्वर्ग-लोक में भी चले गये होंगे तो हम स्वर्ग-लोक तक पहुंचेंगे...हम पीछे नहां हटेंगे...हमें आप लोग अपने प्यारे जरनैल की खोज में जाने

दीजिए...यदि लौट कर आवेंगे तो प्यारे लाजपत को साथ लेकर नहीं तो...उस बांके वीर की वीरता को देख कर प्रत्येक सत्याग्रही बीर की आंखों में प्रेमाश्रु भर गये। धन्य, धन्य ...धन्य धन्य वह पंजाब जिस में तेरे से लाल पैदा हुए...धन्य! धन्य!! वह पंजाब का शेर जिसे तेरे से सच्चे वीर मिले और धन्य, धन्य है भारत मां जिसे तेरे सरीखे प्राणदाता भगत मिले.

देवता लोगों ने उस भारत-भगत पर पुष्प वृष्टि की, साधु! साधु!! की विजय ध्वनि से नभ मंडल गूंज उठा.........

वह अकेला ही वीर उठा और अपने प्यारे जैनरल की खोज के लिये निकल पड़ा। देवताओं ने उसे पुष्प मालाएं पहनाईं। भाईयों ने अपने प्यारे भाई को गले लगाया, बहनों ने अपने प्राण प्यारे भाई के हाथ पर राखी बांधी। भारत माता ने आकर उसके माथे पर विजय का तिलक लगाया। सत्याग्रही वीरों ने उस महावीर की पदरज का शिव-विभूति सदृश मानकर अपने मस्तक पै आरूढ़ किया, और वह अकेला ही वीर इस गुरुतम कार्य को निवाहने के हेतु चल पड़ा।

मत्त-गज के समान चलते हुए उस शूरवीर को देखकर कई एक नवयुवकों के हृदय फड़क उठे। "हम भी अपने प्यारे भाई के साथ जावेंगे..." इस प्रकार कहते हुए वीर जितेन्द्र, राजगुरु सुखदेव दत्त इत्यादि बीसियों नवयुवक प्यारे भगत के पीछे २ हो लिये।

पंजाब केशरी कहां मिलेंगे?......रात अन्धेरी थी। मार्ग कण्टकाकीर्ण था। पग पग पर ठोकरें लगती थीं—परन्तु उनके अन्दर तो अथाह श्रद्धा थी। उन्होंने विघ्न बाधाओं की कुछ भी परवाह नहीं की। कांटों को उन्होंने फल समझा। पत्थरों को उन्होंने कुसुम समझा... उन्हें पता भी नहीं वह जा कहां रहे हैं। जिस पगडंडी को उन्होंने अपनाया, उन्हें पता भी नहीं वह जाती किस स्थान पर थी। उन्हें कुछ भी पता नहीं था...? वह देखते थे चढ़ाई बहुत ऊंची है, वह देखते थे मार्ग तंग है, दुर्गम है कण्टकाकीर्ण है परन्तु बद्रीनारायण के वे अनन्य भगत... कुछ भी हो...आपत्तियों को घाटियां ही नहीं, किन्तु स्वयं आपत्तियों के पर्वत ही क्यु न टूट पड़ें...किन्तु उस मार्ग से वह विचलित नहीं हुए.. पीछे मुड़कर उन्होंने देखा तक नहीं—वह चलते गये...आगे ही आगे...प्राची दिक...वह चलते ही गये—बेखौफ निडर—निर्भय वे चलते ही गये।

वे चलते ही गये.........रात अंधेरी थी। वह बड़े राजमार्ग को छोड़कर पगडंडी पर हो लिये। उन्होंने समझा यह Short-cut छोटा रास्ता सम्भवतः उन्हें अपने उद्देश्य स्थल पर शीघ्र पहुंचा दे...बाधाओं का उन्होंने चिन्तन ही नहीं किया—कष्टों की ओर उन्होंने ध्यान तक नहीं दिया। उनके सामने ध्येय था अपने Almamater जीवनोद्देश्य को शीघ्रातिशीघृ प्राप्त करना।

उस पगडंडी पर वे चलते ही गये। यह डंडी समाप्त हो गई...एक भयानक बण में... जहां राक्षस चिंघाड़ते थे, हिंसक जीव नर-रक्त की पिपासा से भगाड़ रहे थे। आगे कोई रास्ता न था। पीछे हटना उन्होंने सीखा नहीं था। पगडंडी के अन्त पर रुक जाना उन्हें आता नहीं था, वे वियाबान भयानक जङ्गल में ही चल दिये। कष्ट पहले से भी अधिक थे परन्तु वे थे स्वाधीनता देवी के अन्ध-श्रद्धालु। हिंसक जीव दूर से ही नर-मांस की गन्ध पाकर उनकी ओर भागे परन्तु उन वीरों के तेज ने पास आते ही उन्हें भस्म कर दिया। कोई भी राक्षस उन

तक पहुंच नहीं सका।

उन्होंने उस वन का कोना २ छान मारा... पंजाब केशरी का कहीं भी कुछ भी पता न मिला...उनके हृदय में एक विचार उठा...... कार्य बहुत भारी है......हमें कार्य को बांट कर करना चाहिए। भूतल, रसातल, पाताल, नभ तल, सब विभाग को बांट लो...वह सब का सरदार बोला।

बी० के० दत्त...तुम धर्मसिंह इत्यादि साथियों के साथ अण्डमान जाइए...मि० जेतन दास तुम स्वर्गलोक में जाओ...और मैं अपने दो साथियों राजगुरु तथा सुखदेव के साथ इसी भयानक बन में अपने जरनैल की खोज करता हूं......

अपने सरदार के शब्दों को सुनकर सबके सब नवयुवक एवमस्तु कह अपने पुरोगम को पूरा करने के लिये सुसज्जित हुए।

दत्त अपने साथियों सहित अण्डमान को चले गये। आकाश से सहसा एक विमान उतरा। बंगाल किशोर उस विमान में बैठ कर स्वर्ग-लोक की ओर उड़े और सरदार अपने दो साथियों सहित उसी वन में पंजाब-केसरी को ढूंढने लगे।

वीर-जेतन आकाश में उड़ा, गौराङ्ग-महाप्रभुओं ने अन्तरिक्ष में उड़ती हुई एक दिव्य-ज्योत को देखा। वह कब सहन कर सकते थे। उड़े वह भी अपने यान पर, और जा घेरा उस अकेले ९८ वर्ष के नन्हें से बच्चे को आकाश-पथ पर। निरन्तर ६७ दिन तक भूका-बंगाली उन अनेकानेक यानारोही गौराङ्ग सैनानियों का सामना करता रहा।

१३ सितम्बर, शुभ रविवार का दिन था। उस वीर बंगाली ने एक बाण छोड़ा......गौरांग सैनानी देखते ही रह गए; आकाश-पट पर एक चमत्कार हुआ-स्वाधीनता देवी ने द्वार पे आ स्वाधीनता देवी के अनन्य पुजारी का माथा चूमा, तिलक लगाया और अपने प्रिय पुत्र को स्वर्ग में ले गई........

पंजाब-केशरी तो पहिले ही वहां विराजमान थे! अपने राज्य-प्रासाद में बैठे हुए लाजपत ने देखा...विजयी जेतन फूलों से लदे हुए स्वाधीनता-देवी के साथ स्वाधीनता भवन की ओर आ रहे हैं। पंजाब-केशरी भागे जेतन की ओर। जेतन की आंखों से आनन्दाश्रु की धारा बह निकली......उसके इष्ट-देव स्वयं उस की ओर भागे आ रहे थे।

वीर-जेतन पंजाब-केशरी के पाओं पर गिर पड़े, पंजाब केशरी ने जेतन को गले लगा लिया......बीर-बंगाली ने अपनी समस्त आप बीती लालाजी को सुनादी।

"आप यहां आगए। सत्याग्रही दल आप की खोज में परेशान हो रहा है...वह देखो, देव! सैन्ट्रल-जेल रूपी भयानक-बन में तीन महावीर आप को कितने परिश्रम से खोज रहे हैं" अपनी आप बीती को इन शब्दों के साथ जेतन ने समाप्त किया......

"तो उन सरदारों को बताना चाहिए कि मैं स्वर्ग में हूं' पंजाब केशरी बोले...

उस समय आकाश से एक ध्वनि उठी... ओ, पंजाब-केशरी की तलाश में भटक रहे वीरो...पंजाब-केशरी तो स्वर्ग लोक में पहुंच चुके हैं।

बसन्त की ऋतु थी! मार्च की २३ तारीख थी—प्रातः सात-बजे सैन्ट्रल-जेल के अन्दर भटक रहे तीन महावीरों ने इस आकाश-ध्वनि को सुना...

पंजाब-केशरी का पता मिल गया। अब हमें सीधे स्वर्ग में जाकर पंजाब केशरी को

मिलना चाहिये।

मार्च का महीना था—शनिवार का दिन था...महीने की २३ तारीख थी...सूर्य भगवान अभी आकाश पर दिखाई नहीं दिए थे।

प्रातः काल के सात ही बजे......बिमान में बैठ कर तीनों वीरों ने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया...

तेई तरीक दे सत्त बजे, शेरां नूं फांसी ते चाढ़या।
भारत मां पई रोंबदी, श्राए भगतसिंह पयारया॥

स्वतन्त्रता की देवी !

"भारत-जननी के वीर वांकुरो ! आज तुमने अपने क्रियात्मक बलिदान से स्वाधीनता की चंडिका को मोहित कर लिया। अत्याचारी डायर की गोलियों से हताहत सहस्रों भारत सपूतों के पवित्र-रुधिर के एक-एक कण से एक एक स्वाधीनता का कल्प वृक्ष उपजेगा-जल्लियां वाला बाग में उपजे स्वाधीनता बृक्ष की जड़ें फैलेंगी...और सारे पंजाब को ही जल्लियां वाला बना देंगी...आज से पूरे दस वर्ष पश्चात मैं रावी नदी के तट पर इस बृक्ष को फूलता फलता देखने आऊंगी।"

१३ अप्रैल १९१९ की दोपहर को स्वाधीनता देवी के द्वारा दिये हुए आशीर्वाद के अन्तिम शब्दों का क्रियात्मक स्वरूप प्रकट होने में थोड़े ही दिन बाकी हैं। सावरमति के तट पर बैठे महामुनि गांधी ने अपने मन में विचार किया। 'आज़ादी को देवी अवश्यमेव प्रकट होगी। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक, देशबन्धु चितरञ्जनदास, हकीम अजमल खां, स्वामी श्रद्धानन्द तो आज़ादी की देवी को अपने द्वारा कहे हुए समय से पहले ही भारत में आने को विवश करने चले गये थे.. ...अब तो पञ्जाब-केशरी भी आज़ादी की देवी के पास कैलाश को जा चुके हैं। पञ्जाब के शेर का कहना तो स्वाधीनता देवी कभी भी अस्वीकार नहीं कर सकती। अस्तु ! देवी स्वाधीनता ईरावती के तट पे प्रगट होने ही वाली हैं।

सावरमती के देवता ऐसा सोच ही रहे थे......इतने में उन्हें एक ध्वनि सुनाई पड़ी।

"लाहौर की सैन्ट्रल जेल में स्वाधीनता देवी के भक्तों ने अपनी अखंड तपश्चर्या द्वारा मुझे विचलित कर दिया है। जैसी घोर तपस्या इन छोटे छोटे कुमारों ने की है, कृतयुग, त्रेता अथवा द्वापर तक में इस की उपमा नहीं मिलती। उन वीर वांकुरों की तपस्या ने मुझे शीघ्र ईरावती के तट पै आने को वाधित किया है। अस्तू ! हे सावरमती के देवता, मैं इसी वर्ष के अन्तिम क्षण (१९२९-३१ दिसम्बर रात्रि के १२ बजे) रात के वारह बजे रावी के तट पर प्रकट होऊंगी।

सुना देवराज ने:—पञ्जाब की पवित्र आर्य-भूमि में देवी स्वाधीनता का प्रकाश होगा। बड़े बड़े अतुल वीर बहादुर अपनी आसुरिक शक्ति से जिसे कभी अपने आधीन नहीं कर सके, वह देवी आज स्वयं अपनी प्रसन्नता से भारत में आकर निवास करेगी।

रावी के तट पर स्वाधीनता देवी का स्वयंवर होगा। देवर्षि ने सोचा स्वाधीनता देवी का सम्बन्ध जवाहर ही के साथ होना चाहिये। स्वयंवर में डायर भी आयगा, रौलटासुर द्वारा प्रेरित और भी बीसियों असुर स्वाधीनता देवी को रावी तट से छलने के हेतु आवेंगे। ऋषि ने सोचा स्वाधीनता देवी का भावी-पति तो जवाहर ही होना चाहिये। जवाहर का तो निर्माण ही स्वतंत्रता की देवी को स्वयंवर में जीतने के लिये हुआ है ! स्वयंवर-स्थल में भले ही सैकड़ों बलि, बाण तथा रावण अपने दल

बल सहित सज रहे हों, परन्तु स्वाधीनता रूपी सीता सिवाय राम के और किसी की ओर आंख उठा कर देखेगी भी नहीं! सैकड़ों ही इन्द्र भले ही नल का रूप धारण करके सति साध्वी दमयन्ती के प्रति अपना प्रेम प्रकट करें, परन्तु स्वयं दमयन्ति तो सच्चे नल को ढूंढ़ हो लेगी।

अस्तु! जवाहर तथा सुभाष को साथ लेकर देवर्षि ने इरावती की ओर प्रस्थान किया।

त्रिवेणी के राजकुमार जवाहर-देवी,स्वाधीनता के स्वामी जवाहर-हिन्द महाराष्ट्र के राष्ट्रपति जवाहर-देवी पाञ्चाली के प्रणयोत्संग में खेलने लगे।

सौभाग्यवती पाञ्चाली के पवित्र तीर्थ के जिस-जिस स्थल को भारत-पुत्र ने अपने पद-सरोज से पबित्र किया वह स्थल पञ्जाबियों के लिये अमूल्य विभूति था। कोटिशः नर नारियों ने श्रद्धा, भक्ति, तथा प्रेम से उस चरण-कमल की रज-कण को अपने मस्तक पर आरूढ़ कर अपने आपको कृतार्थ समझा।

और जब वह तरुण-भारत का तरुण-सम्राट मोती का लाल जवाहर, अपने रथ से उतरा तो उसकी दिव्याकृति ने मानो समस्त भूमंडल की निराशा को आशा में बदल दिया। लाखों नर-नारी अपने हृदय-सम्राट के चरण-स्पर्श की लालसा से उस ओर बढ़े......विजय ध्वनि से आकाश गूंज उठा......

राष्ट्रपति जवाहर की जय"

"बंगाल-केशरी सुभाष की जय।"

और आंख की एक झपक-मात्र में उस स्थल पर प्रेम,श्रद्धा तथा भक्ति का ठाठें मारता हुआ सागर बह रहा था, जिसमें लाखों मछलियां प्रेमाम्बोज का रसास्वादन करने को तड़प रही थीं।

"स्वाधीनता पति जवाहर की जय।"

एक आकाश-वेधी ध्वनि उठी......फिर एक क्षण भर के लिये चारों ओर निस्तब्धता छा गई? इस निस्तब्धता में सप्त लोक, नवखण्ड चौदह भुवन की वात्सल्यता का समावेश था और फिर एक क्षणमात्र में गगन-मंडल।

आर्य पुत्र की जय! भारत वीर की जय!

को विजय-ध्वनि से गूंज उठा—

एक बार फिर चारों ओर शान्ति का साम्राज्य था। भक्त अपने भगवान् के दर्शनों के इच्छुक थे; नयन, उस तरुण भारत के भगवान् की छवि को निरख अपनी पिपासा को शांत करना चाहते थे! और एक हो क्षण में भारत के भगवान् उनके सामने थे।

काले काले घोड़े पर चढ़ा हुआ वह गोरा गोरा जवाहर-उसकी शान, उसकी शोभा, उस की कांति, उसका तेज उसकी आभा वही आंखें जानती हैं, जिन्होंने २५ दिसम्बर १९२९ को प्रातः ७ बजे प्राचि दिशा में प्रातरुषा के समान उस रविकुल-रवि का दिग्दर्शन किया। धन्य हैं लवपुर बासी जिन्हें इस घोर कलिकाल में त्रेता का वह मैथिली-दर्शन फिर से प्राप्त हुआ। काले काले घोड़े पर चढ़ा हुआ वह गोरा गोरा जवाहर ऐसा प्रतीत दे रहा था, मानों पूर्णिमा के निशा-पति अपनी सहस्रांशू धवल ज्योत्सनामयी रश्मियों के साथ श्यामवर्ण मेघों की सवारी कर रहे अपनी मस्तानी चाल से गगन में विहार कर रहे हों।

जवाहर—ज्योत्सना ने उस क्षणिक निस्तब्धता को तोड़ा और एक बार फिर गगन मंडल।

भारत-माता की जय!

से गूंज उठा......

जानकी-सुवन की नगरी से उठी जवाहर

की जय बेतार के समान समस्त भू मंडल में बिखर गई......और श्याम—वर्ण अश्व का वह गौर-वर्ण अश्वारोही उस प्रेम सागर में जल-विहार करने लगा।

देवता लोग अपने अपने विमानों में बैठ कर उस प्रेम सागर पर पुष्प-वृष्टि करने लगे।

जय जय जवाहर वीर के विजय गान से अन्तरिक्ष प्रति ध्वनित हो उठा।

भास्कर भगवान् अपने सात घोड़ों वाले रथ पर बैठे हुए अपने प्रासाद से निकले ही थे। सदूर-पूर्व बंगाल की खाड़ी से भी परे अपने रथ पै बैठे हुए भास्कर भगवान ने ईरावती के तट पे इस प्रणय-सिन्धु को बहते देखा।

अपना सारा कार्यक्रम स्थगित कर आदित्य देव लवपुर को ओर भागे और लगे अपनी लम्बी लम्बी तेज रश्मियों द्वारा इस प्रेम सागर के रस को खींच कर अपने संतप्त हृदय को शांत करने। निरन्तर २ घंटे सूर्य भगवान ने पेट भर कर इस प्रेम सागर के रस को पिया। अब उनके हृदय का संताप दूर हुआ फिर उन्होंने गम्भीर रूप धारण कर लिया। कई एक शताब्दियों के अनन्तर फिर से भारत-पुत्रों को मैथिली-कुमार की नगरी में विजयोल्लास के गीत गाते देख कर गगन-पति की आंखों में आनन्दाश्रु भर गये। मेघ-मंडल ने अपने महाराजाधिराज दिवाकर-प्रभु को चारों ओर से घेर कर अपनी विजय दुन्दुभी बजानी आरम्भ कर दी।

पंजाब केशरी लाजपत की जय!

भगवान भास्कर के आनन्दाश्रु धीमी धीमी सुधा वर्षा के रूप में बह निकले... ..प्रेम सागर ईरावती की ओर बढ़ा। मेघ-मंडल भी अपने राजा को आगे करके प्रेम-सागर के साथ साथ ईरावती की ओर जाने लगा......

प्रिय पुत्र के प्रणय प्रयास को सुन कर राजर्षि मोतीलाल नहरु जवाहर-जननी को साथ ले लवपुर की ओर चले। धन्य हैं वे पिता जिन्हें जवाहर सा पुत्र-रत्न मिला और धन्य है वह माता जिस ने जवाहर सा पुत्र जना। नभ मंडल में सप्त-नक्षत्रों द्वारा घिरे हुए जैसे निशापति शोभायमान हों ऐसे ही प्रेम-गगन पर सुभाष, पटेल; राजेन्द्र, सैन गुप्त, गणेश-शंकर, सत्यपाल, तथा नरीमन, सप्त ऋषियों द्वारा शोभायमान भारत-चन्द्र जवाहर को राष्ट्र पिता तथा राष्ट्र-माता ने देखा-मोतीलाल की आंखों से पता नहीं उस समय कितने मोती निकले और माता स्वरूप रानी ने पता नहीं अपनी आंखों से कितने जवाहरों की लड़ियां परोईं—

वात्सल्य-प्रेम के आवेग में आकर राष्ट्र-माता ने इन नक्षत्रों पे शुभ लक्ष्मी की वर्षा की। राष्ट्र माता की आंखों से उस समय आंसु बह रहे थे, पता नहीं इस एक-एक आंसु में कितने जवाहर छुपे हुए थे।

भल्ले की दुकान से आनन्द की धारायें बह निकलीं और अनारकली बाजार में ठाठें मार रहे उस प्रेम सागर में इसप्रकार समा गईं जिस प्रकार पद्मा भागीरथी की धाराएं हिन्द महासागर में...प्रेम की प्यासी मच्छलियां अपनी पिपासा को बुझाने के लिए इस ओर बढ़ीं और फिर एक बार गगन मंडल—

"राजर्षि मोतीलाल की जय"

"राज माता स्वरूप राणीकी जय" से गूंज उठा।

सौभाग्य-शालिनी अनारकली के कण-कण का चुम्बन करता हुआ यह प्रणय सिन्धु तीव्र-गति से आगे बढ़ा।......सैन्ट्रल जेल की ओर ...स्वाधीनता देवी के अनन्य भगतों के चरण-कमल का प्रक्षालन करने को कामना से...इन्हीं बाल-तपस्वियों ने ही तो अपने तपोबल से

स्वाधीनता देवी को रावी तट पर आने के लिए विवश किया है ? प्रेम-सागर आगे बढ़ा…

कुटि के द्वार बन्द थे । वह तपोवन के अन्दर नहीं जा सका । वह सावधान हो गया… उसके कानों में एक ध्वनि आई ।

"मेरा रंग दे बसन्ती चोला'
जेड़े रंग विच तैं हकीकत नूं रंगया
गुरु दे सपूता तेतों जेहड़ा रंग मंगया ।
रंग बड़ा अनमोला । मेरा रंगदे० ......

उसने अन्दर घुस कर उस तपस्वी के चरण चूमनें का प्रयत्न किया—वह सफल नहीं हुआ… और बड़ी ही श्रद्धा तथा भक्ति के साथ उस महान तपस्वी के तपोबन के एक-एक कणको चूम उसकी रज को अपने मस्तक पे आरूढ़ कर वह ईरावली की ओर बढ़ा ।

वीर जेतन दास की जय !
सरदार भगत सिंह की जय !!
राजगुरु सुखदेव की जय !!

इस समय पांच बज चुके थे। यह १९२९ का सन् बड़ी तेज़ी से भाग रहा था । इसकी आयु अभी सात घंटे शेष थी । परन्तु इस अभागे वर्ष को एक-एक पल काटना दूभर हो रहा था। लाहौर की संट्रल जेल के अन्दर भगतसिंह, भटुकेश्वर दत्त प्रभृत्ति भारत-पुत्रों की दशा ने मानों उसकी संवत्सर यात्रा को आरम्भ में ही कण्टकाकीर्ण बना दिया था ।

यह अभागा वर्ष आया और आते ही इसने देखा कई एक निरापराधी भारत-पुत्रों के निर्दोष खून से इसका माथा कलंकित हो गया है। किन्तु अपनी मृत्यु से पहले भी तो कोई मृत्यु को बुला नहीं सकता । लाजपत-बध की भूमिका के रूप में भारतीय नाट्यशास्त्र का जो दुःख पूर्ण अध्याय छिड़ा था उसका आदि अन्त इसही अभागे वर्ष ने अपनी आखों से देखना था । और इसने अपने हृदय को कड़ा करके खूब देखा । १९ वर्ष के बंगाली सूरमा जेतनदास को निरन्तर ६७ दिन तक यमराज के साथ उसी जेल में युद्ध लड़ते भी इसी ने देखा । भूखे बंगाली को दधीची के समान अपने आपको जीवित ही मृत्यु के मुख में ले जाते हुए इसी अभागे वर्ष ने अपनी आँखों से देखा । १३ सितम्बर १९२९ को रावी नदी के तट पे उठती हुई चिताग्नि को ललकार कर...

'अय दास तेरी मौत हकूमत की मौत है कहते हुए भी इसी वर्ष ने सुना था । और अब यह भाग रहा था । केवल ७ घण्टे बाकी रहते थे... और यह चाहता था कि यह.. अब शीघ्र ही इस दुःख-पूर्ण यात्रा की इति श्री करके "यद्गत्वा न निवर्तन्ते ऐसे स्थान पर चला जाये ।

इसने निश्चय किया "यह जायगा और जाता हुआ ठीक अन्तिम क्षण में इस भारतवर्ष पर ऐसा उपकार कर जायगा कि यतीन्द्रनाथ दास का खून इसके माथे से धुल जाय—

बारह बजने में अभी केवल पाँच मिनट की देर थी । आकाश से एक देवी उतरी । उस देवी ने एकाएक आगे बढ़कर जवाहर के गले में माला डाल दी ।

'स्वाधीनता पति जवाहर की जय ।'

देवताओं ने आकाश से फूल बरसाये । सिद्ध और चारण बड़े ही प्रेम से ताल बजाकर मंगल गाने लगे ।

जगदम्बा स्वाधीनता प्रगटेगी यह आज ।
वांता के दर्शन करन, आयो देव समाज ।।
आयो देव समाज सहित मण्डल रावी तट ।
देख रहे नभ ओर खुले कब अंतरिक्ष पट ।।
आवे देवी देश में होवे सुख भरपूर ।
स्वर्णिम भारत बने भगे दासता दूर ।।

उस समय अपने प्रिय पुत्र के स्वयंवर को देखने के लिये भारत माता आकाश में प्रकट हुई। जगज्जननी विश्वम्भरा को देखते ही भारत पुत्र मातेश्वरी का गुणगान करने लगे।

जय भारत-माता !

जय भारत माता !
जय-जय-जय भारत माता।
कोटि-कोटि प्राणन की तू जीवन-दाता॥
अर्जुन, भीम, शिवा से वीरों की माता।
सुना रहा है गिरिवर, तव गौरव गाथा॥
जय भारत माता।
शस्य श्यामला सुजला, पुण्य-भूमि सुरलोक।
दसहूं दिशा में जाको, छायो दिव्य-आलोक॥
जय भारत माता।
ईश-सुता, ऋषि जाया, धीर काहे तज दी।
देख खड़े सुत तेरे, पंच-त्रिंश कोटी॥
जय भारत माता।
स्वतंत्रता-पथ में सुत खड़े हाथ सर ले।
मत जननी निराश हो आश हृदय धर ले॥
जय भारत माता।
गौतम, कपिल, पाराशर, कृष्णचन्द्र, श्रीराम।
शंकर, बुद्ध, कुमारिल, दयानन्द गुण-धाम॥
जय भारत माता।
गुरु गोविन्द, शिवाजी, वैरागी परताप।
बन कर मात हरेंगे, तेरा सब संताप॥
जय भारत माता।

मोती के तुम लाल जवाहर,
भारत के नयनाऽभिराम।
कमला के सर्वस्व कोटिशः,
हिन्दिन के हृदय विश्राम।
वीर जवाहर रावी तट पै
फिर से छेड़ो ऐसी तान।
स्वतन्त्रता का मद-मतवाला
नाच उठे फिर हिन्दुस्तान।
तुम जवाहर कौम के सरदार हो।
वीरता दृढ़ता के तुम अवतार हो॥
चूमने को हैं कदम आजादियां।
आजाद होने के लिये तैयार हो॥

दोनों राजकुमारों के सहित महामुनि कौशक ने रावी तटस्थ मखशाला में प्रवेश किया। विपुल हर्ष ध्वनि हुई। चालीस करोड़ नर-नारी प्रेमोन्मत्त हो मंगलगान गाने लगे। रावी तट से एक आवाज उठी।

विजयी विश्व तिरंगा प्यारी।
झंडा ऊंचा रहे हमारा॥

उस समय रावी की तरगें भी उन दोनों राजकुमारों के चरण कमल का स्पर्श करने को आगे बढ़ीं और उनको तरंगों के संघर्ष से एक आवाज पैदा हुई।

सुधा शक्ति बरसाने वाला,
वीरों को हर्षाने वाला।
प्रेम सुधा सरसाने वाला,
मातृ भूमि का तन मन सारा॥
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा॥

पांच मील ऊंचा, अढ़ाई सौ मील चौड़ा और १५०० मील लम्बा सन्तरी इस अनुपम दृश्य को देखने के लिये रावी की ओर भागने लगा परन्तु वह भाग न सका। लाचार गौरी

शिखर की चोटी पर बैठ मधुरमधुर स्वर में वह गुनगनाने लगा।

इसकी शान न जाने पाये,
चाहे जान भले ही जाये।
विश्व विजय करके दिखलाये,
तब होवे प्रण पूर्ण हमारा॥
॥ विजयी विश्व तिरंगा प्यारा॥

उस समय तिलक, लाजपत, देशबन्धु, श्रद्धानन्द की आत्मायें अपने-अपने विमानों में बैठ रावी के ऊपर आ आनन्दाश्रुओं की वर्षा करनें लगीं।

स्वतन्त्रता के भीषण रण में,
लखकर जोश बढ़े क्षण-क्षण में।
कांपे शत्रु देखकर मन में,
मिट जाये भय संकट सारा॥
॥ झंडा ऊंचा रहे हमारा॥

रावी के तट से उठी वह विजयध्वनि बेतार के तार के समान समस्त जल प्रवाहों में प्रवाहित कर गई और एक ही समय टेम्ज, एमेजन, राईन, कांगो, वालगा, मिसिस्पी से एक ही आवाज आई।

इस झंडे के नीचे निर्भय,
लो स्वराज्य हो अविचल निश्चय॥
बोलो भारत माता की जय,
स्वतन्त्रता हो ध्येय हमारा॥
॥ विजयी विश्व तिरंगा प्यारा॥

उस समय भारत माता तू अपने पुत्र के स्वयंवर की शोभा निहारने रावी तट पर आई और अपना शुभाशीर्वाद दिया।

आओ प्यारे वीरो आओ,
देश जाति पर बलि बलि जाओ।
एक साथ सब मिल कर गाओ,
प्यारा भारत देश हमारा॥
॥ विजयी विश्व तिरंगा प्यारा॥

इरावती के तट पर सहसा जो, आजादी की देवीआई।
आते ही वीर जवाहर के उर में जयमाला पहनाई॥
उस समय गगनमें देववृन्द जय-जय का गान लगे करने।
कमलापति वीर जवाहर को वे फूलों से लागे भरने॥

उस समय महामुनि कौशक ने प्रतिज्ञा की– यदि कोई भी शक्ति स्वाधीनता की देवी को स्वाधीनता पति से छीनेगी तो इस बूढ़े की लाश डांडी के तट पर तैरती होगी। नभ मण्डल से जय-जयकार हुआ। स्वाधीनता रूपी वधु को साथ लिए राज-परिवार महामुनि सहित प्रयाग राज को चल दिए। २६ जनवरी सन ३० को देवी स्वाधीनता का पाणिग्रहण जवाहर के साथ हो गया।

मंगल मोद उछाह नित, जाहि दिवस यहि भांति।
उमंगी अवध आनंद भरि, अधिक अधिकअधिकाति॥

सुदिन साधकर कंकन छोरे,
मंगल मोद विनोद न थोरे।
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं,
अवध जन्म याचहिं विधि पाहीं।
विश्वामित्र चलन नित चहहीं,
राम सप्रेम विनय वश रहहीं।
माँगत विदा राउ अनुरागे,
सुतन समेत ठाढ़ भए आगे।
नाथ सकल संपदा तुम्हारी,
मैं सेवक समेत सुत नारी।
अस कहि राउ सहित सुतरानी,
परेउ चरण मुख आत न बानी।

राम रूप भुपति-भगति, ब्याह उछाह अनन्द।
जात सराहत मनहिंमन, मुदित गाधिकुलचन्द॥

भारत माता! तत्पश्चात सावरमति के सन्त अपने तपोवन को चले गए, परन्तु विरोधी आनन्दभवन में स्वाधीनता की देवी का निवास सहन न कर सके। वे देवी को भयभीत कर

वहां से भागना चाहते थे। पता लगा देवर्षि को, उन्हें अपनी प्रतिज्ञा याद आई । सर्व प्रथम उन्होंने सन्धि प्रयास ही उचित समझा। रैजनाल्ड ने इरवन को बहुतेरा समझाने का यत्न किया परन्तु सब विफल । आखिर लाचार होकर महामुनि को रणक्षेत्र में उतरना ही पड़ा।

महामुनि अपने ७९ योद्धाओं को साथ ले पैदल ही डांडी की ओर चले । आगे २ जा रहे हैं सावरमति के सन्त "रघुपति राघव राजा राम" का मन्त्रपाठ करते हुए और पीछे २ जा रही है उनकी वानर सेना,मस्ती में झूम-झूमकर गाती हुई।

बेड़ा गान्धी ने पार लगावना ए।
असाँ सुतड़ा हिन्द जगावना ए ॥

भारत माता! ६ अप्रैल सन ३० का प्रातः काल था। सावरमति के सन्त ने लवणासुर को ललकारा। परन्तु लवणासुर भय का मारा हुआ एक सुराख में सिर छिपाये बैठा था । सन्त ने लवणासुर के सिर को अपनी मुट्ठी में पकड़ा — आकाश से आवाज आई—

"नमक कानून तोड़ दिया—अन्याय का भांडा फोड़ दिया।

भारत माता! जिनके साम्राज्य पर कभी भी सूर्य अस्त नहीं होता था उस समय थोड़ी देर के लिए ऐसा प्रतीत हुआ मानो डांडी तट पै सचमुच साम्राज्य का सूर्य अस्त हो गया।

खरदूषण के होते हुए स्वरूपनखा का नाक कट गया। सर साईक और बैरवर्ण के होते-होते लवणासुर का वध हो गया। सागर तट पर हाहाकार मच गया। लवणासुर की ऐसी दुर्दशा देख पहरेदार भागे भागे दिल्ली बड़े लाट के पास पहुचे और जा हाहाकार मचाई।

दौड़े गये संतरी पुकारे जाके महाराज,
डांडिहू के तीर इक वीर बम आयो है।
अति तेजवान ओढ़े चादर लंगोटी पहरे,
भानु सम तेज ताके मुखपांही छायो है।
बृटिश साम्राज्यरूपी हिमालय से युद्ध हेत
एक कम चार बीस योधा संग लायो है।
सावरमती का ऋषि जगविख्यात गांधी,
महाराज तेरे संग युद्ध हेत आयो है॥

इस समय हिज मोस्ट एक्सेलन्सीने आकाशवाणी की बात को नहीं माना। उसके सिर पर साम्राज्य-सत्ता का भूत सवार था। संसार क्या कहेगा एक लंगोट-बंध फकीर के आगे साम्राज्य झुक गया। ईश्वर जिस को दुःख देना चाहता है उसकी बुद्धि फेर देता है। अतः राज राजेश्वर ने आकाशवाणी की बात को ठुकरा दिया। मैं लड़ूंगा अपनेप्रैस्टिज के लिए अन्तिम क्षण तक लड़ूंगा।

विश्व भरन अघदलदलन, करण सकल सुरकाज।
जाना नहीं दशशीस तेहि मूढ़-कपट के साज॥

पहरेदारों की ऐसी बात सुन कोमल कोमल शैया पर शयन कर रहे हिज मोस्ट एक्सेलैंसी गौरांग महाप्रभु विचलित हो उठे—कौन सा ऐसा सूरमा है, खरदूषण के बैठे-बैठे जिसने स्वरूपनखा की नाक काट दी। उस समय झरोखे से आवाज आई।

आई विल टैल यू माई लार्ड इरवन,
गांधी वट पावर हैज गौट।
ब्रिंगिंग आल दाई फोर्स इन एक्शन
सी दैट यू कैन क्रश हिमनौट॥
दिस वी फ्लरशिंग कॉंग्रेस ट्री,
हाईली ब्लूमिंग दैट यू सी।
टिज दी फ्रूट ऑफ दाई सप्रेशन,
इरवन हैव यू ऐवर थौट।
सी दैट गांधी इज सो ग्रेट
जीसस आईस्ट इन्कारनेट।

गो एण्ड हैव हिज, बलैसिंगज् इफ
यू वांट टू सी दाई राज एज ओट ॥

आकाशवाणी के ऐसे शब्द सुन हिज मोस्ट ऐक्सेलेंसी अपनी शैय्या से उठे और अपनी राजसभा में जा अपने मन्त्रियों को बुलाया, पहरेदारों को बात कही। आकाशवाणी का समाचार भी कहा। मैं कदापि नहीं झुकूंगा। एक लङ्गोटबंद फकीर के आगे मैं इतने बड़े साम्राज्य को नहीं झुकने दूंगा। परन्तु आगे वे कुछ न कह सके। शोकातुर हो बैठ गये। उस समय सर मियां फजलेहुसन उठे और नत-मस्तक हाथ जोड़ बोले।

नैवर लूज दाई हार्ट फिरंगी! नैवर लूज दाई हार्ट !!
वी शैल ट्राई वट ऐज वी कैन।
एवरी वोमैन एवरी मैन।
एण्ड वी शैल पुल दाई कार्ट,
फिरंगी! नैवर लूज दाई हार्ट ॥
वी शैल सूनर ब्रिंग इन एक्शन,
कुम्रिजलिंग जयचंद एण्ड विभीषण,
वी शैल प्ले देयर पार्ट, फिरंगी!
नैवर लूज दाई हार्ट ॥
वी शैल आलवेज बाई दी स्टैण्ड,
फाईट दी गांधी हैंड टू हैंड,
कैम्पेन लैट हिम स्टार्ट,
फिरंगी! नैवर लूज दाई हार्ट ॥

उस समय सर मियां महम्मद शफी उठ और उन्होंने भी वही हिज मास्टर्ज वोआयस रिकार्ड बजाना शुरू किया।

इफ यू वांट टू प्ले एट डाईस,
फिफटी परसैंट इज दी प्राईस
इन दी ओप्शन मार्ट,
फिरंगी! नैवर लूज दाई हार्ट
एक्सेलेंसी इफ यू पे,
वी शैल नेशन्ज काज बीट,
वी नो वैल दट आर्ट,
फिरंगी! नैवर लूज दाई हार्ट

उस समय सर मुहम्मद जफरूल्ला उठे और उन्होंने भी वैसा ही राग अलापना शुरू किया।

टू दी बार-फील्ड वी शैल गो,
लड़ेंगे चाहे कुछ भी हो।
वी आर स्टिल सो स्मार्ट,
फिरंगी! नैवर लूज दाई हार्ट
यू हैव मेड अस वट वी आर,
ग्रेट ब्रिटानियाज नोबल स्टार
हाऊ कैन वी डीपार्ट,
फिरंगी! नैवर लूज दाई हार्ट

श्रीभगवान् बोले, भारतमाता सभा ने अपनी-अपनी बात कही, परन्तु एक सज्जन भी था। वह महात्मा खड़ा हुआ और राजराजेश्वर को इस प्रकार समझाता हुआ बोला—

अरे हठी होहु न काज कीजे,
स्वतन्त्रता देवंहु जाय दीजे।
अदोष तेरा यह राज्य होगा,
सुखी तेरा यह साम्राज्य होगा ॥
अपार है सन्त जनों की माया,
किसी ने ताको नहिं भेद पाया।
अनेकधा वेदन गान गायो,
अनेक ब्रह्मादि न अंत पायो ॥
अधर्म संहारक धर्म धारी,
निजेच्छया भूतल देह धारी,
तपी व्रती केवल तारिबे को,
लियो जनम जहं जग तारिबेको।
अयलार्ड! गांधी का अपार बल है,
न जीत सकता ताहि तेरो छल है ॥
उन्हें न लंगोट धरेव जानो,

भला है जो देवगुरु सो मानो ।।
तेरा है घर सात समुद्र पार,
जमाया भारत पै अनाधिकार।
है कौन सा न्याय भला कहो तो,
जो आज इतने अभिमान में हो ।।
नहीं वकिंघम को उन्हें कोई चाह,
न जानते श्वेतभवन की वे राह ।।
चुराई स्वातंत्र्य स्वदेश सीता,
उन्हें तो बस एक उसी की है चाह।
न संत के साथ करो लड़ाई,
इसी में है लाट तेरी भलाई ।।
यह राज्य हो जायगा भस्मसार,
पड़ेगा जो संत को शाप भार ।।

परन्तु ! इरवन ने उस अपने महान शुभ-चिन्तक को बात नहीं मानो और वे महात्मा विदुर उस राजा के दरबार को छोड़ भगवानको शरण में चल दिये।

एक सज्जन था वह भी गया। राज-राजेश्वर को चिंता व्यापी, जिस को शरण में प्रधान पटेल गया वह गान्धी कितना महान होगा। उन्हों ने अपने सकत्तर को बुलाया और बोले 'वायुयान तैयार करो। मैं स्वयं डांडी-तट पर जा कर गांधी का थान को देखना चाहता हूं।'

क्रोधवन्त तब इरवन, लीन्हो यान सजाए।
चलेउ गगन पथ आतुर, भय रथ हांकि न जाए ।।

भारतमाता ! उस समय गौरांग महाप्रभु डांडो के तट पर आए और क्या देखते हैं—बस जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है। बोले महा-प्रभु ! मिस्टर ए० डी० सी० पहरेदार तो कहते थे वह फकीर केवल ७६ योधाओं को साथ लाया है, परन्तु यहां तो...गान्धी इतनो सेना कहां से ले आया। गांधी की शक्ति कितनी है। इसके बड़े बड़े जनरल कौन २ हैं, मैं सविस्तार सुनना चाहता हूं।

अपने आका के इस प्रकार वचन सुन ए० डी० सी० बोला—प्रभो वह देखिए।

सागर तट पै देखो राजन, वह यज्ञ धूम जो उठा हुआ।
देखो ता तिसके चहूं ओर इक जमघट सा है लगा हुआ।।
उस जन-समूह के बीचों में बैठा मलंग सा वेष धरे।
देखो वह इक नेकिड़ फकीर तन पै इक लंगोटी पहरे।।
देवों को देवासुर-युद्ध में रक्षा यह करने आये हैं।
धरि वामनको अवतार हरी हरिहर को हरने आये हैं।।
सचमुच है जादू भरा हुआ इस लंगोटी को गांठों में।
है कालदेव भी बन्धा हुआ इस लंगोटी को गांठों में।।
भूतल से पाप मिटाने को जिसने यह बहाई आंधी है।
ले दो वीरों को साथ खड़ा लंगोटी वाला गांधी है।।

मोतीलाल नेहरू

वह गांधी जी के बांय ओर,
जो महापुरुष है खड़ा हुआ।
खादी से सुहावत जिसका तन,
मुख तेज से जिसका भरा हुआ ।।
भारत सौभाग्य बढ़ाने को,
भावी भारत के ईश मिले।
सागर तट पै फिर से मानों,
कौशक व कौशलाधीश मिले ।।
भारत का भाग्य बढ़ाने को,
भारत में सत्युग लाने को।
राजर्षि और ब्रह्मर्षि मिल,
बैठे हैं यज्ञ रचाने को।
आकाश पै जैसे ध्रुवतारा,
रात्री को राह दिखाता है।
इस आजादी की नौका को,
यही योधा आज चलाता है ।।
अपनी अनुपम कुर्बानी से,
जिसने भारत शृंगार किया।
इक इकलौते बेटे को भी,
जिसने स्वदेश पर वार दिया ।।
हैं इलाहाबाद के राजा यह,
आनन्द भवन के वासी हैं।

कर त्याग सभी कुछ देश हित,
जो आज बने सन्यासी हैं ॥
बेताज बादशाह भारत के,
यह मोतीलाल कहाते हैं ।
गाँधी की सारी सेना का,
संचालन यही कराते हैं ॥

जवाहरलाल नेहरू

वे जो दिखाई देते हैं,
कुछ बाईं ओर को हटे हुए ।
जो सिंह समान नजर,
पड़ते हैं रणभूमि में डटे हुए ॥
हमरी सेना के महारथी,
जिनकी सब ओर हैं फिरे हुए,
कुरु क्षेत्र में ज्यूं अर्जुन
कुमार कुरु वीरोंसे हों घिरे हुए ॥
दक्षिण में जिन के वोर्णबोर,
उत्तर में खड़े स्टीफन हैं ।
पश्चिम में ठाडे मौरेन्सी,
पूरब में स्टैन्ले जेक्सन हैं ।
आगे हैं खड़े हेली बाबा,
पीछे बटलर तैयार खड़े ।
सब के ऊपर सबके बाबा,
इरवन लेकर हथियार खड़े ॥
राजाओं से कुछ कम नहीं,
यह राजाओं के राजे हैं ।
कर त्याग सभी कुछ देश,
हित अब मोटे खद्दर साजे हैं ॥
राजाओं से कुछ कम नहीं,
राजाओं के सरताज हैं यह ।
परयाग राज के राजा,
मोती राजा के युवराज हैं यह ॥
तुम राज्य जनों पर करते हो,
यह राज्य मनों पर करते हैं ।
तुम देश की दौलत हरते हो,
यह ताप दिलों का हरते हैं ॥
तुम्हरा शासन है दिल्ली पर,
इन का शासन है घर घर में ।
तुम न्यू देहली में रहते हो,
यह रहते हैं मन मन्दिर में ॥
तुम लाट हो अपने लाटों के,
भव-निशा तिमिर की लाट हैं यह ॥
तुम देहली के हो एकराट,
भारत के हृदय सम्राट हैं यह ॥
नव खण्ड लोक में मचे रहे,
जिनके बल पौरुष के थलके ।
जवाहर तो विश्व-विजेता हैं,
नेता हैं सत्याग्रह दल के ॥
हैं नीति में यह अति-निपुण,
और रणभूमि के माहिर हैं ।
परयाग राज के राजकुंवर,
यह कमलापति जवाहर हैं ॥
रावी पर जिस कंठ में,
डाली थी जयमाल ।
स्वतन्त्रता के देवता,
वही जवाहर लाल ॥

वीर सुभाष

पूरब से वह देखो राजन,
जो धूल उड़ाते आते हैं ।
मानो निज भुज बल से वह,
तो कैलास हिलाते आते हैं ॥
जिनके मुखमण्डल के आगे,
तारापति भी शरमाता है ।
जिनके बाहुबल के भय से,
कैलाश भी हिलता जाता है ।
जसु तेज असह्य सों पूर्णचन्द्र,
नभचर की ओट में आजायें ।
अपि विश्वजीत वे अङ्ग-अङ्ग,
वे कामदेव शरमा जायें ।

कुम्हला जायें उपवन के पुष्प,
वसु भानु रूप लखि शर्मा कर।
और जलज ईर्षा सों जल कर,
जल बन जायें जल में जाकर ॥
दु:खताप हरें भूतल का जो,
बरसा ससुधा धाराधर को ।
वसुभानु तो हैं सुधानिधि,
ससुधा करवें वसुधा भर को ॥

विजित्य यो मन्मथमप्रयत्नतो
जितेन्द्रियत्वादिहयोगमागतः ।
तृतीय नेत्र ज्वलन प्रयासितं,
जहास वेगान्नितरां कपर्दिनः ॥

तन मन धन जिन देश परवार दीन,
भरा है स्वदेश प्रेम जा की रग-रग में।
कोई वीर योधा नाहीं भुवि इस वीर सम,
जाकी वीरताकी धाक मची सारे जगमें।
तेजहू अनूप रूप गगन के भूप सम ।
सिंह की न्याईं जात विपदाके मग में।
'स्याम' पीछे हटनेका नाम नाहींलेत वीर,
कांटोंकी हो बिछी चाहे सेज पग-पगमें।

गाँधी मोहन के यज्ञ हेतु,
डांडी के तट पर आए हैं ।
देखो तो रूप तेज इनका,
क्या बाँके भेष सजाए हैं ॥
हैं राम रूप तहरू कुमार तो,
लक्ष्मण का अवतार हैं यह ।
भारतमाता के हृदय हार,
नवयुवक के सरदार हैं यह ॥
यह बङ्गाली की नयन ज्योत,
श्री चितरञ्जन-मन-रञ्जन हैं।
हैं हिन्द राष्ट्र के महारथी अब,
रञ्जन सब दुख भञ्जन है ॥
हैं नौजवान के नेता यह,
बङ्गाल देश से आते हैं ।
हैं वसुवंश के भानु यह,
सुभाश बोस कहलाते हैं ।

(सरदार पटेल)

गांधी के सङ्ग जरा देखो ठाड़े,
भये सागर तीर हैं जो ।
मेरु समान बलवान हैं जो,
सागर समान गंभीर हैं जो ।
सत्य और अहिंसा का मानो,
लेकर आये अवतार हैं यह ।
गुजरात क हैं यह शहजादे,
बरदौली के सरदार हैं यह ॥
भारत माता के हेतु सही,
जिस योधा ने आपद भारी ।
आ ! कर्णधार बनकर जिसने है,
भारत की तरणी तारी ॥
कहते हैं इनको जेलबर्ड,
पहले यही जेल में जाते हैं।
गाँधी जी के यह लैफ्टीनैण्ट,
छोटे पटेल कहलाते हैं ॥

(प्रधान पटेल)

मखथल की ओर लखो,
राजन धीमे-धीमे जो जावत हैं ।।
नभयान चढ़े नभ सों जिन पै,
देवता फूल बरसावत हैं ॥
सिर जटा सजाये ऋषिवर से,
कैसे यह शोभा पाते हैं ।
पहचानो तो इनको राजन,
क्या पहचाने भी जाते हैं ।
इकदिन ये तुमसे भी ऊंचे,
आसन पे शोभा पाते थे ।
तुमसे लाखों इरवन झुक-झुक,
[illegible] को शीश झुकाते थे ।

तज न्यू दिल्ली का राजपाट
गांधी जी का कर ध्यान चले,
कौरव दलका कर त्याग जिमि
तप हेतु विदुर भगवान चले।
राजन यह हैं नर शार्दूल
गुजरात देश से आते हैं,
बल्लभ भाई के ज्येष्ठ भ्रात
वी० जे पटेल कहलाते हैं।
बल्लभ बिठ्ठल दो वीरों की
कैसा यह मनहर जोरी है।
सागर तट पै फिरती मानों
हलधर गिरधर की जोरी है।

(सरहदी गांधी)

पश्चिमी सीमा पर डटा हुआ
कैसा है यह बलवान् देख।
नहिं इस समान कोई योधा
जरा नौजबान की शान देख॥
देखो तो तनिक महाराज!
इस नौजवान मस्ताने को।
मानो महावीर जी जाय
रहे हैं लंकापुरी जलाने को॥
गिरिराज से लाने सञ्जीवन
तैयार हुए हैं जाने को।
गत जीवन भारती लक्ष्मण में
फिर से नवजीवन लाने को॥
आते हैं गिरिराज से जाते डांडी तीर।
तज कर किस विधि मूर्च्छा जागें भारत-वीर॥
दो लाख वे इन के सुर्खपोश
जब रणभूमि में डट जायें।
इक इञ्च हटें वे क्या मजाल
जर्रा-जर्रा अपि कट जायें॥
जिनकी प्रत्येक भुजा से तो
है शूरवीरता बरस रही।
जिनकी दृष्टि आजादी के
दर्शनों को मानो तरस रही॥
इक दम शत्रु के होश उड़
जब रणभूमि में जाते हैं।
न तोड सके कोई योधा
यह ऐसा व्यूह रचाते हैं॥
हटते ही नहीं रणभूमि से
जब एक बार डट जाते हैं।
सीमा प्रदेश के गांधी
खान अब्दुलगफार कहलाते हैं॥

(लाजपतराय)

उत्तर से वे देखो राजन,
उठो जो तीव्र ज्वाला हैं।
सेना लिये मानो आय रहे
पञ्जाब केसरी लाला हैं॥
लाला हैं अग्नि की ज्वाला हैं
ज्वाला से जग चमका डालें।
अपनी आई पर आ जायें
जड़ से ब्रह्माण्ड हिला डालें॥
ए० डी० सी० की बात सुन बोले इरवनराज।
भैया! बोलो होश से हुआ तुम्हें क्या आज॥
लाला का खौफ दिलाते हो,
लाला से हमें डराते हो।
लालाजी के गुण गा-गा-कर,
क्या हमको भय दिखलाते हो।
उस सिंह का सुनकर सिंहनाद,
भूधर हिलने लग जाते थे।
लवपुर के उस मर्दाने से,
लाखों योद्धा भय खाते थे।
निज बल से इरविन के बल को,
माना वे कर निर्मूल गये।
लालाजी नहीं संसार में अब,
ए. डी. सी. क्या तुम भूल गये।
सम्वत अस्सी पांच में रावी नद के तीर।

पौष वदी एकादशी लालां तज्यो शरीर ।।
एवं इरवन-राज की वाणी सुनी सरोष ।
ए०डी०सी० बोले प्रभो मोपर का को रोष ।
उठी हैं तीव्र ज्वाला जो,
इसकी तो यही निशानी है ।
या स्वयं लाजपत आए हैं,
या कोई लाजपत सानी है ।।
अबला के खूं से रंगी हुई जिस,
बाग की डाली-डाली हैं ।
हां बाग वही जिल्यां वाला,
यह उसी बाग का माली है ।।
धारा हैं परस्पर प्रेम की,
यह फिरकापरस्ती के शत्रु हैं ।
उस अमृतसर के राजहंस,
यह वीर डाक्टर किचलू हैं ।।
किचलू दल के पीछे देखो,
जो शोर मचाता आता है ।
नीले नीले बस्तर धारी,
यह ज़फर अली कहलाता हैं ।।
मुल्ला है, शैतान कर चराखा है,
लोगों को लड़ाना सीखा है ।
करना धरना तो खुदा खैर,
हल्ला तो मचाना सीखा है ।।
सरकार से टक्कर लेने को,
हिन्दू को यह भड़कायेगा ।
जब अपनी बारी आयेगी तो,
कहीं खिसक यह जायेगा ।।
ऐसा है अद्भुत व्यक्ति,
यह नित्य नया बेष बदलाता है ।
इस ही गुण के कारण,
रावी-तट का गिरगट कहलाता है ।
हिन्दु-मुस्लिम को लड़वाना,
इस मुल्ला का है काम यही ।
लेक्चर दे दे कर भड़काना,

इस मुल्ला का है काम यही ।।
बनता है कभी यह इत्तिहादी,
लीगी, मिल्लती अहरार कभी ।
बेढंगा है यह ढोंगी है,
एहरार कभी गद्दार कभी ।।
दे दे कर जोशीले लैक्चर,
हिन्दू मुस्लिम को लड़वाना ।
हिन्दू-मुस्लिम को लड़वा कर,
खुद करमावाद खिसक जाना ।।
इस बहुरुपिये गिरगट का,
राजन सचमुच है काम यही ।
पाता है इन्हीं कामों के,
सरकार से चोख दाम यही ।।
लीडर के लीडर बने रहे,
चौद्धर की चौद्धर जगी रही ।
लोगों में जिन्दाबाद हुए,
सरकारी पैंशन लगी रहे ।
हिन्दू मुस्लिम के इत्तिहाद की,
जो हाथों में ध्वजा सम्भाल ।
समर क्षेत्र में आये हैं,
फिरकापरस्तों के गुरु घण्टाल ।।
लखपुर में सन् सत्ताईस में,
जो रौद्र रूप धरि आये थे ।
देहली, कोहाट अमरसर में,
जिन गरल तरू उपजाये थे ।
फिरकापरस्तों के वे पिशाच,
इक नया रूप धरि आये हैं ।।
परदेश भक्ति पर देशभक्ति,
का पोलश खूब चढ़ाये हैं ।।
गो माता का यह दूध पियें,
और गीत ऊंट के गाते हैं ।
पानी पीते हैं गंगा का दजला,
पर बलि बलि जाते हैं ।।

भारत में रह कर भारत को,
जो नोच नोच कर खाते हैं ।
फिर भी आपद् में भारत
मां के कभी काम नहीं आते हैं ।
त्रिवर्ण पताका के आगे,
नक्षत्रचन्द्र की ध्वजा उठा ।
भारत द्रोही रण में आये,
भारत भक्तों का वेष बना ॥
सिंहों का बाना धार स्यार,
क्या कभी सिंह बन सकता है ।
हंसों के पंख लगाने से,
क्या काक हंस बन सकता है ॥
जिस दिन ये सच्चे भारती बन,
रण भूमि में डट जायेंगे ।
तो सांचहु भारत माता के,
तत्क्षण बन्धन कट जायेंगे ॥
हुल्लड़ बाजी करके छप्पन,
प्रतिशत बटवाना चाहते हैं ।
जो लहु लगा कर नाम,
शहीदों में लिखवाना चाहते हैं ॥

दो दिन होने दो जरा डण्डों की बोछार ।
आंख उठा कर देखना कहां गये अहरार ॥

आगे जो खड़े मौलाना के,
जातीय पताका फहराए ।
धरि कृष्ण देव विराट रूप,
मानो रावी तट पर आए ॥
दो आलम भी मिलकर,
जिनकी नीति का भेद न पाते हैं ।
आलम आलम की आंखों में,
नीति की धूल उड़ाते हैं ॥
अलन हैं रुस्तम छिपे हुए,
मौलाना आते हैं मैदां में ।
कुछ भेद है तो है यही भेद,
आलम में और जफरखां में ॥
दोनों की फिरका परस्ती में,
आलम का दर्जा पहला है ।
वह सांपनाथ यह नागनाथ,
वह नहला है यह दहला है ।

सत्याग्रह संग्राम !!!

माता के अभिमान राष्ट्रके रथी व्रती त्यागी वीरो ।
स्वतन्त्रता देवी के दर्शन के दृढ़ अनुरागी वीरो ॥
विज्ञ, विजेता विश्व-व्यापिनी अचल-कीर्ति-भागी वीरो ।
साहस से संग्राम भूमि में आहुति दो त्यागी वीरो ॥
कठिन परीक्षा का अवसर है अपनी बात बचाना है ।
पशुबलके प्रतिकूल आज सात्विक संग्राम मचाना है ॥
बारम्बार वार हो तुम पर, उन पर अपना वार न हो ।
गोरे काले ऊंच नीच से भी अनुचित व्यवहार न हो ॥
करते रहो कार्य दृढ़ता से किन्तु कहीं तकरार न हो ।
तरणी हल्की रहे पुण्यकी तनिक पाप का भार न हो ॥
उन्हें डुबाना है निज नैया हम को पार लगाना है ।
पशुबल के प्रतिकूल आज सात्विक संग्राम मचाना है ॥
आगे ही बढ़ना है पीछे कभी नहीं हटना होगा ।
घोर युद्ध होगा किन्तु तुमको निःशस्त्र लड़ना होगा ॥
काटेंगे वे शीश शांति से खड़े-खड़े कटना होगा ।
जननी-जन्मभूमि की जय-जय बार बार रटना होगा ॥
मर मर कर इस भांति समर में,
अजर अमर पद पाना है ।
पशुबल के प्रतिकूल आज,
सात्विक संग्राम मचाना है ॥

देखो तो तुम भी शासक गण कितने अत्याचारी हैं ।
उनकी सेना के सैनिक गण भी कितने बलधारी हैं ॥
तोपों के गोलें तोलें तो कितने कितने भारी हैं ।
अपने अत्याचार दिखावें कितने अत्याचारी हैं ॥
बिस्मिल के बलिदान तुम्हें मनमोहन को अपनाना है ।
पशुबल के प्रतिकूल आज सात्विक संग्राम मचाना है ॥

उस समय भारत माता अपने पुत्रों को आशीर्वाद देने के लिये आकाश में प्रकट हुई। भारत पुत्रों ने हाथ जोड़ कर माता को प्रणाम किया।

वन्दे मातरम्

सुजलां सुफलां मलयज शीतलां,
शस्य श्यामलां—मातरम्। वन्दे मातरम्
शुभ्र ज्योत्स्नां पुलकित यामिनीं,
फुल्ल कुसुमित मृदमदल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुर भाषिणीं,
सुखदां वरदां मातरम्, वन्दे मातरम्।
त्रिंशकोटि कंठ कल कल निनाद कराले।
द्वित्रिंशकोटि भुजैर्धृत-खर-कर वाले॥
के बले मां तुमि अबले,
बहुबल धारिणीम् नमामि तारिणीं।
रिपुदल वारिणीं। मातरम्, वन्दे मातरम्
तुमिविद्या, तुमि धर्म, तुमि हृदि—
तुमि मर्म, त्वं हि प्राणाः शरीरे,
बाहुमे तुमि मा शक्ति हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गड़ी मन्दिरे मन्दिरे, वन्दे॥
त्वंही दुर्गा दश प्रहरण धारिणी,
कमला कमल दले विहारिणी,
वाणी विद्या दायिनी तारिणी नमामित्वाम्।
नमामि कमलां अतुलां सुजलां सुफलां॥
श्यामलां, सरलां, सुस्मितां भूषितां।
धरणीं भरणीं मातरम्॥ वन्दे०
धरा की जो शोभा सकल परमैश्वर्य हर का।
करा है ज्योति से जनम जिसने विश्व भर का॥
तुम्हारी माता हा! जन्म धरणी आज कितनी।
हुई दिना हीना अतिशय दुःखी दुर्गति सनी॥
सुधर्मों की शाला विधि नव मुमुक्षु जनन की।
शरच्चन्दा जैसी तन मुकुट आभा भवन की॥
जग-ज्योति करती जगत-भरका जो तिमिर नाश।
उसी की आभा का किस विधि,हुआ है सर्वनाश।
शक्ति हीनता देख तुम्हारी
हंसते हैं परदेशी लोग।
इसीलिये तो करें विदेशी,
भारत वैभव का उपयोग॥

हो परन्तु पैंतीस करोड़,
बलवान पुत्र जिसके तुम आज।
उसको लटते देख न आती क्या,
तुमको है कुछ भी लाज?
आर्यजाति जो इक हो जावे,
मिल जावें जो उसके वीर।
देखें तो फिर कौन विदेशी
सम्मुख आता है रणधीर॥
मीन रूप जापान कि जिसके
भूमि खण्ड हैं छोटे तीन।
देखो कैसा किया है उसी ने
रूस रीछ का मान विहीन॥
आत्म-शक्ति से विश्व-विजय
हित तुम सदैव कटिबद्ध रहो।
जीवन समर सबल में
मरने को सशान्त सन्नद्ध रहो।
तन मन धन सब अर्पण करदो
देशकार्य हित आज सभी।
जन्म सफल करने को ऐसा
अवसर होगा नहीं कभी॥

उत्तिष्ठतोत्तिष्ठतदेशपुत्राःकालोऽधुनानास्तिविलम्बनीय
लोकैरशेषै रपिवन्दनीय कृत्वा स्वदेशं प्रमुदं भजस्व।

आलस्य को तज के वीर बनो,
उद्यम को हिय में धार उठो।
पराधीन, दलित्त भारत मां का!
अब करने को उद्धार उठो॥
जागो! जागो!! भारत वीरो,
भारत की लाज बचानी है।
भारत मां की लुट गई शान,
अब फिर से ला दिखलानी है॥
जागो जागो भारत वीरो,
यह समय नहीं अब सोने का।
है समय अभी तो किये हुए
पहले पापों को धोने का॥
जागो! जागो!! भारत वीरो,
रण भूमि को प्रस्थान करो।
भारत जननी का दूध पिया
किञ्चित उसका भी ध्यान करो॥

चेतो प्यारे वीर, कार्य अवशिष्ट न छोड़ो।
सत्याग्रह का मार्ग समझ कर क्लिष्ट न छोड़ो॥
छोड़ो प्रिय सर्वस्व किंतु निज इष्ट न छोड़ो।
कर्मक्षेत्र में डटो लक्ष्य निर्दिष्ट न छोड़ो॥
इष्ट देव निज देश है, मन्दिर कारागार है।
देश सेवकों को सदा सहना अत्याचार है॥
किसी काल में कहीं देश का ध्यान न भूले।
स्वाभिमान के साथ राष्ट्र सम्मान न भूले॥
देश-प्रेम बढ़ रहे दान बलिदान न भूले।
आन बान कुल-कान और भगवान न भूले॥
आगा पीछा छोड़ कर डट जाओ मैदान में।
जौहर दिखला दो उन्हें कट जाओ मैदान में॥
तनमन धन सब देश-प्रेम के आगे तृण है।
नहीं किसी का मोह प्राण से प्यारा प्रण है॥
सुख है दारुण दुःख रम्य रंगस्थल रण है।
जन्म उन्हीं का सफल तथा सार्थक क्षण-क्षण है॥
गोले उनके गेंद हैं, जंजीरें शृंगार हैं।
पुष्प वृष्टि की भाँति वे सहते बज्र प्रहार हैं॥

उस समय अपने नेता का ऐसा आदेश पा सत्याग्रही दल आगे बढ़ा।

रल मिल के प्यारे देश नूं आजाद करावांगे।
न फेर कबे वी आपे अपना देश लुटावांगे॥
वानर सैना युद्ध मचाऊ, जय जय वन्दे भारत गाऊ।
ओ जब लाठी पुलिस चलाऊ हस हस डंडे खावांगे॥
हटना देश दी कालख धोके बूहा आजादी दा बोके।
असां नस नस अग्गे होके विच जेलां दे जावांगे॥
ओ जद रात नू मच्छर आन, आके बाजे खूब बजान।
दोनों नाल मिला के तान ते मल्हार गावांगे॥
रोटियां हुन्दियां वांग खताइयां,
ओथे मिलदियां मुफत रजाइयां।
ओथे खा के पक्कियां पकाइयां मोटे होके आवांगे॥
ओ आजादी दे दीवाने, भला मौत नू ओह की जाने।
वत्ते शमां वांग परवाने जिंदड़ी वार दिखावांगे॥

दोनों दल आपस में भिड़ गये और डांडी के तट पर घोर संग्राम मचा।

(सत्याग्रह संग्राम)

देखो जरा तो दोस्तो कैसी अजीब जंग है।
इक ओर शाहे जहान है, जा की निराली शान है॥
और उसके सामने खड़ा साबरमती का मलंग है।
खद्दर की चद्दर चढ़ाय है,इक लंगोट लगाय है॥
और उसके सामने डटा देखना तोपो तफंग है।
तोपो तफंग की चाह नहीं,किसी की भी परवाह नहीं।
उसका निराला ईश्वर उसके तो अंग संग है॥
रावण पै हैं जिमि रामजी, कंस पै हैं घनश्याम जी।
तैसे फिरंगी की फौज पर साबरवती का मलंग है॥
पौन जिमि बारिवाह पर, शम्भू जिमि रतिनाह पर।
तैसे अनीति की राह पर बापू का अंग अंग है॥
सेना पै जिनको नाज है, बम भी है जंगी जहाज है।
बापू ने आज कर दिया उन्हीं का काफिया तंग है॥
सत्याग्रह की शान है, मृत्यु से भी बलवान है।
जिसने किया जहान को दोस्तो आज दंग है॥

आज तक ऐसा संग्राम इस धरती तल पर न हुआ। सत्याग्रही सूरमाओं के तप-त्याग के आगे गन-मशीन, तोप-तलवार कुछ भी न कर सकी, आग बर्फ के समान ठण्डी पड़ गई। जैसे प्रहलाद अग्नि से बच गया वैसे ही सत्याग्रही वीर भी अग्नि से बच गये। तत्पश्चात शत्रु-दल ने सत्याग्रही दल पर अपना नाग-फांस डाला, परन्तु भारत माता ! मैंने आकाश में विहार करते हुए देखा तेरे वीर योधा नाग फांस में बन्धे हुए भी लाखों कष्ट सह कर भी झूमझूम कर गा रहे थे।

ओहवा मजा मैं की दसाँ,
जेलां दे विच जो आयआ।
आनन्द ओहो अपार भला,
जाय वाणी सों कैसे बतायआ॥
मोटियां-मोटियां रोटियां,
जेडी एडियां एडियां मोटियां।

पा भर मक्की दा आटा लया,
बिच दो सेर घट्टा मलायआ ॥
इक मिट्टी दे प्याले च दाल सी,
जेहदा अपना मन्दडा हालसी।
जद रोटी डुबाई ते एदॉं लगे,
जिमि टोबे च झोटा डुबायआ ॥
ओहो रातडी मंडी भी आ गयी,
नींद अखियां दे विच छा गई।
तद् रात दे साथियां आनके झट,
अपना बैण्ड बजायआ ॥
उत्ते तारयां दी भरी रात सी;
थल्ले मच्छरां साजी बरात सी।
देवी आजादी दे व्याहनतू,
देखो लाडा आजादी दा आयआ ॥

उस समय यरवदा के तपोवन में बैठे हुए साबरमती के सन्त ने एक बड़े जोर का ब्रह्मास्त्र छोड़ा। वह ब्रह्मास्त्र अदृश्य था सात समुद्र पार करके वह अस्त्र लंकाशायर के गगन पर छा गया और लगा अपना प्रभाव दिखाने। भारत माता! उस समय समस्त हरिलोक में हाहाकार मच गया। कारखाने बन्द हो गये, लाख चलाने का यत्न करके भी वे न चले। दिन में पांच पांच बार केक और बिस्कुट खाने वाले लगे भूकों मरने। लाचार लाखों मजदूर व्हाइट-हाल के सामने लगे हाहाकार मचाने।

चला जो बाण गंग के मैदान से पयान करि,
क्रांति मचाई जाके टेमज की धार में।
व्हाईट हाल बीथी पर कालिमा सी पूति गयी,
जंग लागा गोरे सैनिकों की तरवार में॥
वीरता ने आजु धारि लीन्हो भीरुता का रूप,
हर्ष अपार फेरि गयो हाहाकार में।
कौन चढ़ि आयो बजरंगी वीर बृटेन पे,
चरचा चलत यही बीथिन बाजार में।

अनेक धाए धाए सर रामजे पै जाय कहऊ।
नाथ! अरि बाण-वेग शीघ्र ही मिटाइये॥
वेधा जासु बाण सों तैं इटली जरम्मनी को।
नाथ वही बाण आजु गांधी पै चलाइये॥
उठो सर होर रणभूमि को पयान करि,
बृटेन की वीरता के जौहर दिखाइए॥
रोक न सकत यदि ताहि के प्रताप को तो,
ताहि संग नाथ बृथा वैर न बढ़ाइये॥
कारखाने सब बन्द हैं रोते है मजदूर।
कहते हैं सरकार को कुछ भी नहीं शऊर॥
उसको आखिर क्या मिला, कर साधु सों वैर।
उसका तो बिगड़ा ही क्या, अपनी मानो खैर॥
रैम्जे चर्चल, बाल्डविन अरु सर सैम्युल होर।
बल-बल ले दरबार में आए सभी शहजोर॥

उस समय सभी गौरांग योद्धा वहां यह सोचने लगे कि गांधी की शक्ति को कैसे कुचला जाए। सभी चिन्तित थे, कुछ भी सूझता न था, क्या करें, क्या न करें। परन्तु परमात्मा जब देता है छत फाड़ कर देता है। उनका भाग्य अच्छा था। पहरेदार ने आकर कहा—महाराज, हिन्दुस्तान से एक दुबला, पतला, लम्बा-सा काला-सा आदमी आया है। वह कहता है—यदि मुझे गौरांग महाप्रभुओं के चरण-स्पर्श का सौभाग्य प्रदान किया जाय तो मैं आप लोगों को ऐसा उपाय बता सकता हूं जिससे गांधी का ब्रह्मास्त्र शक्तिहीन हो जाए।

पहरेदार के इतने शब्द सुनते ही सभी लोगों के चेहरे चमक उठे। श्वेत-भवन की दीवारें भी हंस पड़ीं। जाओ! उसको शीघ्र यहां हाजिर करो। चर्चिल ने उस नवागन्तुक को सिर से पैर तक देखा। फिर बोले—तुम कौन हो, किस लिये यहां आये हो, सविस्तार कहो।

जिन्नाह उवाच

सर माई नेम इज मिस्टर जिन्नाह
लीडर औफ दी मुस्लिम लीग ॥
फौर एवरी मुस्लिम डू आई स्टैन्ड,
माई पोजीशन इज सो ग्रैन्ड,
माई लार्ड डू मी अन्डरस्टैन्ड
दी लीडर औफ दी मुस्लिम लीग ॥
आई हैव नेवर रैड कुरआन,
टू मी दी वर्डिंग्ज औफ शैतान,
स्टिल आई ऐम ए मुसलमान,
दी लीडर औफ दी मुस्लिम लीग ॥
विल यू डू मी अम्बल ग्रैस।
सो ऐज टू विनदी कांग्रेसरेस ॥
विल यु काईन्डली एम्ब्रेस,
दी लीडर औफ दी मुस्लिम लीग ॥

उस समय एंग्लो-मुस्लिम एलायंस हुआ और उस जशन के बीच में चरचल और जिन्ना मिल कर कोरस गाने लगे।

यू आर सिंगल मिस्टर गांधी,
चरचल जिन्ना वी आर टू।
अगेन्स्ट एंगलो मुस्लिम,
अलायंस वी शैल सी वट यू कैन डू॥

चर्चल बोला, मिस्टर जिन्ना! यह तो बताओ। गांधी की शक्ति को तुम समाप्त कैसे करोगे।

जिन्ना बोला, चर्चल! ताकत से हम ने देख लिया, हम गान्धी की शक्ति को समाप्त न कर सके, आओ अब हम वही उपाय करें जो उपाय पांच हजार वर्ष पूर्व दुर्योधन ने किया था; तुम बनो दुर्योधन, मैं बनता हूं शकुनि। टैन डौउनिंग स्ट्रीट में जुए का जाल बिछाओ और गांधी महात्मा को इस जाल में जकड़ लो।

"परन्तु धर्मराज को जुए की प्रेरणा देने वाले विदुर कौन बनेंगे?"

"इलाहाबाद के सर तेज बहादुर सप्रू।"

"ब्रेवो मिस्टर जिन्नाह, बस मैदान मार लिया। देखो, मैं अभी इरवन को सन्देश देता हूं।" हैलो इरवन! हम गांधी के साथ थोड़ी देर तक सुलह चाहते हैं। सर तेज बहादुर को यरवदा में भेज कर धर्मराज को यहां आने की प्रेरणा करो! यह हमारी पौलिटिकल चाल है।"

"लेकिन साम्राज्य का प्रैस्टिज?"

"वह मि० जिन्नाह के रूप में हमारे पास ही बैठा है।"

"लेकिन एक लंगोट बन्द फकीर के साथ सुलह की बात कैसी?

"कुछ देर के लिए प्रैस्टिज को भूल जाओ! मि० जिन्नाह हमारे साथ है। उनका प्लान जरूर ही अमल में लाना होगा। भारत माता! उस समय न्यू देहली और व्हाईट हाल में सहसा आकाश से आवाज आई।

डोन्ट बी सो रूड माई लार्ड इरवन
वन डे इण्डिया मस्ट बी फ्री।
नन कैन चैक दैट फोर्मिंग,
टाईड नाईदर दे नौर यू नौर वी॥

दी एड औफ मुस्लिम-लीग यू सौट,
बट एक्सेलैन्सी हैव यू थौट,
दोज हू आर नौट टरू टू दैमसैल्वज,
हौऊ कैन दे बी टरु टू दी॥

बम गन लाठी पिस्टल जेल,
अगेन्स्ट नौनवायलेन्स आल शैल फेल,
आल दीज ईवल्ज दे शैल हेल,
एण्ड शैल हेल दैम आल विद ग्ली॥

मे आई आस्क दी रीजन व्हाई,
मिलियन्ज औफ स्टारवेशन डाई,

एण्ड सो पीसफुल्ली यू लाई,
एन्जोआयइंग बिस्कुट केक एण्ड टी ।।
दी सन्ज औफ इंडिया नौउ आर अप
दे हैव ड्रङ्क दी फ्रीडम्ज कप
सीटिड औन दी पीकाक थ्रोन,
जवाहर वन डे यू विल सी ।।

आकाशवाणी से व्हाईट हाल की दीवारें थर्रा उठीं। मिस्टर चर्चिल जरा सहम से गए, परन्तु थोड़ी ही देर पीछे जरा दिल को कड़ा करके वे बोले—मि० जिन्नाह आपने सुना? मामला इतना आसान नहीं जितना हम और आप समझते हैं। परमात्मा गांधी के साथ है।

परन्तु मिस्टर चर्चिल! आप हिम्मत न हारिए। जरा एक बार तो मेरा अस्त्र आजमा कर देखिए।

After a full gap of five thousand years the Great Saint of Savarmati played well the part of Dharm Raj Yudhishthira. Surrounded on all sides by Jinnah, Liaqat, Shaukat and others Gandhi gambled for unity and he gambled well, losing himself, his colleagues and his pretty Congress into wilderness for ever and for ever.

हमने अपना लाहौर हारा, मुलतान हारा सरगोधा हारा, कराची हारा—केवल जुए में हारा—और आज भी तो हम केरल और काश्मीर में जुआ खेल रहे हैं।

What is gambling? Any action and every action where end is not definite that action is gambling—Our education is gambling, Our marrriages are gambling, even our life is a gambling. What shadows we are and what shadows we pursus.

परन्तु दुख की बात यह है—जुए में अपना सब कुछ हार कर आज भी हम निरन्तर उसी जुए के खेल में लगे हैं। हारते भी जाते हैं दाव भी लगाते जाते हैं। ६० वर्ष हो गये यह जुआ खेलते, हम हारे ही हैं जीते एक बार भी नहीं। शकुनि बोला, धर्मराज! लगाओ दाव पर क्या लगाते हो। धर्मराज बोले, मैं अपने आप को दाव पर लगाता हूँ। शकुनि ने पासा फेंका, हम जीत गये। अब लगाओ। धर्मराज बोले मैं भीम रूपी पटेल को दाव पर लगाता हूँ। शकुनि बोला यह भी हम जीत गये, और लगाओ धर्मराज बोले, मैं अर्जुन रूपी जवाहर को दाव पर लगाता हूँ। शकुनि ने पासा फेंका, बोला, यह भी हम जीत गए, और लगाओ, धर्मराज बोले मैं अपने नकुल रूपी राजगोपालाचार्य को दाव पर लगाता हूँ, शकुनि बोला, यह भी हम जीत गये, और लगाओ। धर्मराज बोले, मैं अपने सहदेव रूपी राजन बाबू को दाव पर लगाता हूँ, शकुनि उछल पड़ा, धर्मराज यह पासा भी हम जीत गये, और लगाओ। धर्मराज बोले, मैं अपनी द्रौपदी रूपी काँग्रेस को दाव पर लगाता हूँ। शकुनि ने पासा फेंका यह भी हम जीत गये।

क्या सभी पांसे शकुनि ही जीत रहा है? गान्धी ने कहा।
बापू की इस टेर की सुनकर बोल उठा शैतान।
कुछ अपनी संख्या बल से।
शेष कपट से और छल से,
हम दिखला देंगे भारत में बना के पाकिस्तान

शकुनि बोला,—

धनंजयो वासुदेवो भीमसेनो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रुपदश्च सहात्मजः ॥
नैते युधि पराजेतुं शक्या देवगणैरपि ।
महारथा महेष्वासाः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ॥

पांडव बन्धुओं को युद्ध में कोई जीत नहीं सकता। केवल एक ही उपाय है इन्हें जीतने का—जुआ।

देवेन्द्र कुशलश्चाहं न मेऽस्ति सदृशो भुवि।
त्रिषु लोकेषु कौरव्य तं त्वं द्युते समाह्वय ॥

दुर्योधन बोला,—मुझे इस के लिये क्या करना होगा।

"अपने पिता को प्रसन्न करके, अपने साथ सहमत करके, उन्हें इस बात के लिए तैयार करना होगा कि वे धर्मराज को बुलाने के लिए महात्मा विदुर को इन्द्रप्रस्थ भेजें।" शकुनि ने उत्तर दिया।

परन्तु धृतराष्ट्र ने दुर्योधनकी बात मानना स्वीकार नहीं किया। उसने अपने पुत्र को शकुनि के हाथों का खिलौना बनने से रोका—तब दुर्योधन ने इस प्रकार कहा—हे पिता जी! जिस मनुष्य में अपनी सब कुछ बद्धि नहीं होती है, केवल सुनी हुई बातों को जानता है, वह शास्त्र के अर्थ को इस प्रकार से नहीं जान सकता है जैसे चमचा किसी भोजन के पदार्थ के स्वाद को नहीं पहचानता है। आप विशेष रूप से सब जान-बूझकर भी बड़ी नाव में बंधी हुई छोटी नाव की तरह, मुझे क्यों रोक रहे हैं? स्वार्थ के साधन में यहां तक आप उदास हैं? अथवा मेरे अनिष्ट की चेष्टा ही इस समय आपका प्रधान उद्देश्य है? आप की आज्ञा के अनुसार काम करने से इस समय हमारा उबार नहीं दिख पड़ता। जुए के खेल में शत्रु का सर्वस्व हर लेने को आप भावी अनर्थ का कारण बतलाते हैं। जो लोग पथ-प्रदर्शक हो कर स्वयं औरों के उपदेश मानकर चलते हैं, उन्हें पग पग पर विपत्ति की आशका हो सकती है। ऐसे अगुआ का पीछा करना, या उसका कहना मानना, किसी तरह बुद्धिमानी का काम नहीं। हे पिता जी! आपकी बुद्धि विवेक से पक चुकी है, आपने बड़े-बूढ़ों की संगत की है, आप जितेन्द्रिय भी हैं, फिर न मालूम, आप क्यों हमारा उत्साह मिटाने की चेष्टा कर रहे हैं। बृहस्पति जी ने राजाओं की वृत्ति को संसार की वृत्ति से भिन्न कहा है। इससे सावधान होकर राजा को अपने कार्य का विचार सदैव करना उचित है।

जय प्राप्त करना ही क्षत्रियों का प्रधान धर्म है। इसलिए चाहे धर्म हो, चाहे अधर्म, कर्त्तव्यपालन से विमुख होने का क्या प्रयोजन है। सारथी जैसे चाबुक मारकर सब तरफ घोड़ों को चला सकता है, उसी प्रकार जय की इच्छा रखने वाला मनुष्य बिना रोकटोक के सभी मार्गों का आश्रय ले सकता है। भीतरी हो, या बाहरी, जिस उपाय से शत्रु का दमन किया जा सके, उसी उपाय को काम में लाना, जय की इच्छा रखने वाले पुरुष के लिए शास्त्र सम्मत है। यही 'उपाय' सच्चा हथियार है, कुछ वही हथियार नहीं हैं, जिससे कि मार-काट हो सके। हे महाराज! शत्रु और मित्रको पहचान का कोई नियम नहीं लिखा है। जिससे जिसको सन्ताप पहुंचे, वही उसका शत्रु माना जाता है। हे राजन्! सम्पत्ति की बढ़ती का मूल कारण असन्तोष ही है।

इसलिए मैं वही करूंगा जिसमें असन्तोष बढ़े, क्योंकि नीतिकार कहते हैं कि जो उन्नति की चाह रखता है, वही सचमुच नीति कुशल है। धन या ऐश्वर्य में कभी ममता न करनी चाहिए, क्योंकि उन्हें दूसरे लोग छीन सकते हैं। इस प्रकार बलपूर्वक शत्रु पर आक्रमण करके सर्वस्व छीन लेने को शास्त्रकारों ने राजा का धर्म माना है। देखिए, इन्द्र ने नमुचि दैत्य से मित्रता करके उसके सिर को काट डाला था। आज तक शत्रु के जीतने की वही सनातन वृत्ति चली आती है। शत्रु से विरोध न करने वाले राजा और देशों में न घूमने वाले विद्वान् को

पृथ्वी इस प्रकार से ग्रस लेती है, जैसे बिल में रहने वाले जीवों को सर्प ग्रस लेता है ।

हे महाराज ! जाति का विचार करनेसे तो कोई किसी का शत्रु नहीं हो सकता । जब दोनों का उद्देश्य या जीविका-विषयक निश्चय एक ही होता है. तभी आपस में शत्रुता पैदा होती है । जो राजा मोह से अपने शत्रु के पक्ष की बढ़ौत्तरी चाहा करता है, उसकी जड़ इस प्रकार से कटती जाती है जैसे रोग बढ़ने से दिन पर दिन शरीर क्षय होता चला जाता है । और जो शत्रु छोटा सा भी है, परन्तु पराक्रम में बढ़ गया है, तो वह भी इस प्रकार से जड़ काट देता है, जैसे जड में लगी हुई दीमक अपने पास के वृक्षों को भी खा जाती है । इस कारण से हे पिता जी ! आपको भी शत्रु की लक्ष्मी की वृद्धि चाहना उचित नहीं है । जाति वालों में वृद्धि उसी मनुष्य की होती है, जो अपने अर्थ की बढ़ौत्तरी इस प्रकार किया करता है, जैसे जन्म होने के पीछे मनुष्य का शरीर दिन पर दिन बढ़ता है । संसार में पराक्रम और उद्यम ही अभ्युदय के मूल कारण हैं । इस लिए पांडवों की लक्ष्मी को देखकर मैं अत्यन्त दुःखी हूं । मैं या तो उनके ऐश्वर्य और सौभाग्य को प्राप्त करूंगा, या युद्ध ठानकर प्राण दे दूंगा । पिता जी ! क्या जानें, हमारी उन्नति होगी या नहीं । किंतु पांडव लोग तो नित्य बढ़ रहे हैं । यह देख कर मुझे अपना जीवन भार सा मालूम पड़ रहा है ।"

धृतराष्ट् को अपने पुत्र से प्रेम था । जब दुर्योधन ने आत्म-हत्या तक की धमकी दी तो धृतराष्ट् के लिये पुत्र का यह दुःख असह्य हो उठा और उसने दुर्योधन के कथनानुसार सब कुछ करना स्वीकार कर लिया ।

धृतराष्ट् की प्रेरणा से महात्मा विदुर इन्द्रप्रस्थ पहुंचे, धर्मराज ने उसका स्वागत किया । अपने आगमन का हेतु बताते हुए महात्मा विदुर ने द्युत क्रीडा की चरचा की और द्युतक्रीड़ा की निन्दा भी की ।—धर्मराज ने पूछा—हे विदुर जी ! दुर्योधन आदि धृतराष्ट् के पुत्रों के सिवाय और कौन-कौन धूर्त वहां पर हैं, जिन के साथ यह खेल खेलना होगा । विदुर जी बोले—हे महाराज ! जुए में बडा चतुर गान्धार का राजा शकुनि, राजा विविंशति, चित्रसेन, सत्यव्रत, पुरुमित्र और जय, ये सब धूर्त वहां खेल के लिए तुम्हारा रास्ता देख रहे हैं ।

यह जानकर भी कि धूर्तमंडली उनका सर्वस्व हरने के लिए हस्तिनापुर में तयार बैठी है, महात्मा युधिष्ठिर बोले, विदुर जी ! धृतराष्ट् की आज्ञा के अनुसार जुआ खेलने के लिये मेरी प्रवृति नहीं होती. किन्तु आप कहते हैं. इसी कारण मैं जुआ खेलूंगा । यदि जीतने की इच्छा से मुझे कोई न बुलाता, तो अपनी ओर से मैं कभी शकुनि के साथ जुआ न खेलता; परन्त खेलने के लिए बुलाये जाने पर मैं नाहीं न करूंगा, यही मेरा सदा नियम है ।

धर्मराज अपने भाइयों तथा द्रौपदी सहित हस्तिनापुर पधारे । शकुनि इत्यादि ने उनका बढ़-चढ़ कर स्वागत-सत्कार किया । जुए का खेल आरम्भ हुआ । धर्मराज की स्थिति भी कितनी अद्भुत थी । वे निश्चित रूप से जानते हैं कि उन्हें धोका दिया जा रहा है, वे यह भी जानते हैं कि उनका वास्ता धूर्त-सम्राट से पड़ा है, वे यह भी जानते हैं कि संसार भर के छटे हुये धूर्तराज उनका सर्वस्व हरने के लिए वहां एकत्रित हुए हैं; धर्मराज को जीतने की इच्छा भी नहीं, जीत जाने पर भी उनका कुछ बनेगा नहीं ! असंख्य धन-राशि उनके पास पहले ही विराजमान है । सारे संसार की दौलत उनके खजाने में जमा है ।—

वे जुआ खेले क्यों ? केवल हारने के लिये और बचे खुचे हिन्दुस्तान में कितने ही और पाकिस्तान बनाने के लिये ।

(५)

उद्योग पर्व

नमस्तस्मै भगवते व्यासायामृततेजसे ।
पपुर्ज्ञानमयं सौम्य यन्मुखाम्बुसहासनम् ॥
वसिष्ठस्य सुतः शक्तिः शक्तेपुत्रपराशरः ।
पराशरसुतः श्रीमान् कृष्णाद्वैपायनो हरिः ॥

पाण्डव बन्धु द्रौपदी के साथ बनों को चले गये। इन्द्रप्रस्थ की जनता को उनके चले जाने का बहुत दुःख था। लाहौर जब पाकिस्तान में चला गया तो हिन्दुओं को कितना दुःख हुआ। लाहौर पाकिस्तान में न जाये हमने कितना प्रयत्न किया। इसी प्रकार इन्द्रप्रस्थ की जनता ने दुर्योधन के राज्य को कभी स्वीकार नहीं किया। दुर्योधन-दुःशासन की हिम्मत नहीं पड़ी कि इन्द्रप्रस्थ में कदम तक रख सके। अन्ततोगत्वा द्रोणाचार्य को वहां का शासक बनाकर दुर्योधन ने अपना पिण्ड छुडाया। वनवास के लगभग तीन महीने पीछे श्रीकृष्ण यदुवंशी सरदारों के साथ पाण्डवों से मिलने वनों में गये। द्रौपदी ने रो रो कर अपनी दुर्दशा सुनाई। द्रौपदी बोली,—कृष्ण! जब हस्तिनापुर में हम पर संकट आया था, तब तुम कहां थे। कृष्ण बोले,—द्रौपदा! मुझे पता बहुत पीछे चला। आप लोगों पर जो संकट आया, यदि उसका पता मुझे पहले ही चल जाता तो मैं अवश्यमेव बिना बुलाये ही हस्तिनापुर पहुंच जाता, परन्तु अब तो कुछ हो नहीं सकता। हां, इतना हो सकता है कि बारह वर्ष पाण्डव खूब तैयारी करें, चौदहवें वर्ष में सब कुछ ठीक हो जायेगा।

दुर्योधन अपनी दुष्टता को छोड़ नही सका। वह सदैव इसी टोह में था कि पाण्डव कहीं अचेत मिलें उन्हें मरवा दिया जाय।एक दिन इसी विचार से वह अपने कुछ सैनिक लेकर पाण्डवों का पीछा कर रहा था।पाण्डवों का एक मित्र था चित्रसेन गन्धर्व। उसको पता चल गया। पाण्डवों के उस महान् शुभ-चितक ने दुर्योधन को पकड़ कर बांध लिया और धर्मराज के पास संदेशा भिजवा दिया कि मैंने दुर्योधन को कैद कर लिया। परन्तु वाह रे धर्मराज! उनके अन्दर का महात्मापन फिर जाग उठा। बोले,—भीम! जाओ अपने भाई को बचा लाओ! भीम बोले,—मरने दो इस दुष्ट को। अच्छा है सड़ता रहे चित्रसेन की जेल में।धर्मराज बोले,—भीम! देखो, दुर्योधन फिर भी हमारा भाई है, हमारा खून है। जब हम में और दुर्योधन में झगड़ा हो तो हम पांच हैं और कौरव सौ हैं, परन्तु जब हम दोनों पर कोई बाहरी ताकत आक्रमण करे, तो हम एक सौ पांच हैं। यही थी मनोवृत्ति जिसने पाण्डवों के दुःख का अन्त होने नहीं दिया।

परन्तु दुर्योधन की दुष्टता में फिर भी कमी नहीं आई। वह पाण्डवों का बराबर पीछा

करता रहा । एक दिन जयद्रथ का दांव लग गया। वह द्रौपदी को ले भागा । भीम को लग गया पता, वह भागा भीम के पीछे अपनी गदा लेकर, परन्तु वाह रे धर्मराज ! वहां भी उनका महात्मापन विराट रूप में प्रकट हुआ । भागे बेतहाशा भीम के पीछे । बोले,—भीम ! जयद्रथ को मारना नहीं, बिलकुल मारना नहीं । नहीं तो दुःशला विधवा हो जायेगी । महात्मा जी के चमत्कार की ऐसी कितनी ही घटनाएंवन पर्व में हुईं, परन्तु दुर्योधन मानव न बन सका।

परन्तु कृष्ण को आने वाले समय की बहुत बड़ी चिन्ता थी। उन्होंने स्वयं अर्जुन को धनुर्विद्या का ज्ञान प्राप्त करने के लिए इन्द्रलोक में भेजा, पशुपति लोक में भी भेजा । अर्जुन निरन्तर कई वर्ष तक इन्द्र के अखाड़े पर रहा। हमारे बाप दादा कितने महान् थे। इन्द्रपुरी की ही एक बात आपको सुनाता हू ।

इन्द्र के अखाड़े की अप्सरा उर्वशी अर्जुन के स्वरूप पर मोहित हो गई । वह एकान्त में अर्जुन से वार्तालाप करने के लिये अर्धरात्रि में अर्जुन के निवास पर पहुंची । दरवाजा खट-खटाया, अन्दर से आवाज आई कौन ? उर्वशी सामने खड़ी थी। दरवाजा खोलते ही अर्जुन बोले,—देवताओं की माता ! इस असमय में यहां आने का कारण,क्या मैं आप से पूछ सकता हूं ? उर्वशी बोली,—आर्यपुत्र ! मेरी एक मनो-कामना है।

अर्जुन बोला,—आप कहिये, आपकी आज्ञा का मैं यथाशक्ति पालन करूंगा। उर्वशी बोली,—आर्य पुत्र ! मैं अपने से आप जैसा शूरवीर पुत्र चाहती हूं।

अर्जुन बोला,—देवताओं की माता ! जैसे मैं कुछ न कुछ अन्तर पड़ ही जाया करता है। योग्य पिता का पुत्र योग्य ही हो यह कोई आवश्यक नहीं।यह भी हो सकता है किपुत्र न हो पुत्री हो,यह भी हो सकता है कि कुछ भी न हो, यह भी हो सकता है कि हो भी और होकर के मर जाये। इस लिए जिस तरीके से तू मेरे जैसा पुत्र चाहती है, वह मामला संदिग्ध है। उर्वशी ! मैं तुम्हारी इच्छा अभी पूरी कर देता हूं, मैं स्वयंमेव तुम्हारा पुत्र बन जाता हूं । तुम मुझे पुत्र समझो और मैं तुम्हें माता समझता हूं। आज से जैसे मेरी माता कुन्ती, जैसे माताशची, वैसी माता उर्वशी।

उर्वशी सुनते हो क्रोधातुर हो उठी। बोली,—पार्थ ! मैं तुम्हें शाप दे दूंगी। अर्जुन बोला,—मैं जानता हूं उर्वशी ! माता अपने पुत्र को कभी शाप दे हा नहीं सकती। और यदि माता अपने पुत्र को किसी अवस्था में शाप दे भी दे, तो भी माता का शाप पुत्र को आशीर्वाद बन कर ही लगता है । ऐसे थे महान् हमारे पिता-पितामह।

इन्द्रलोक में रहते हुए अर्जुन ने बहुत कुछ सीखा। भगवान् शंकर ने उन्हें पाशुपत अस्त्र दिया। उन अस्त्रों को देते हुए भगवान् शंकर बोले,—अर्जुन ! इस अस्त्र का प्रयोग किसी पर करना नहीं। ये हाइड्रोजन बम है । मुहूर्त भर में समस्त सृष्टि को भस्मीभूत कर देने की इसमें शक्ति है।

वनपर्व ज्ञान का भण्डार है । पाण्डवों ने समूचे देश की यात्रा की। यही कारण है, आप देश में कहीं भी जाइए सभी लोग पाण्डवों के वनवास के साथ अपना संबंध जोड़ते हैं। वन-पर्व के अन्त में यक्ष और युधिष्ठिर का बड़ा ही सुन्दर सम्वाद आता है। उस सम्वाद के एक एक कण में हमारे बाप-दादाओं का महान् चित्र प्रकाशमान हो रहा है। हम चाहते हैं इस अमृत की थोड़ा सा रसास्वादन आपको करायें।

प्रसंग तो आप जानते ही हैं। चारों भाई पानी पीने गये, जल का देवता बोला,पानी पीने वाले राजकुमार मेरेसवाल का जवाब देकर पानी पीना। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव किसी ने भी यक्ष द्वारा दी गई चेतावनी की परवाह नहीं की । आखिर में धर्मराज स्वयं गये। यक्ष बोले,—पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो, फिर पानी पीना । धर्मराज में सहनशीलता थी। बोले,—पानी पीछे पी लेंगे पहले प्रश्न पूछो। यक्ष ने एक सौ आठ प्रश्न पूछे । यदि इस प्रश्नावली के चक्र में पड़े गये तब तो सात दिन यही कथा चलेगी, ... । तथापि हम अपने श्रोताओं को निराश नहीं करेंगे, इस ज्ञान सरोवर के एक-दो घूंट अवश्य पिलायेंगे।

यक्ष बोला,—धर्मराज ! एक शब्द में बताओ,—धर्म क्या चीज है ? एक शब्द में बताओ,—यश क्या है ? एक शब्द में बताओ,— स्वर्ग क्या है और एक शब्द में बताओ,—सुख क्या है ?

धर्मराज बोले,—

दाक्ष्यं एक पदं धर्मं दानं एक पदं यशः ।
सत्यं एक पद स्वर्ग्यं शीलं एक पदं सुखम् ॥

व्याख्या नहीं करेंगे, शब्द अपने आप में व्याख्या है।

यक्ष बोला,—

का दिक् किमुदकं प्रोक्तं किमन्नं किं च व विषम्।

अर्थात् धर्मराज ! किस दिशा में सबको चलना चाहिये, जल का वास्तविक स्रोत क्या है, अन्न क्या है और विष क्या है।

धर्मराज बोले,—

सन्तो दिक जलमाकाशं गौरन्नं प्रार्थना विषम्।

एक और प्रश्न यक्ष पूछता है,—

मृतं कथं स्यात् पुरुषः कथं राष्ट्रं मृतम् भवेत् ।
श्राद्धं मृतं कथं वा स्यात् कथं यज्ञं मृतं भवेत् ॥

अर्थात् मनुष्य जीवित रहता हुआ भी मृतक कब माना जाता है। कोई भी कौम जीति जागती भी मरी हुई कब मानी जाती है। श्राद्ध कब निष्फल है और यज्ञ भी कब निष्फल है।

धर्मराज बोले,—दरिद्री पुरुष मरे हुए के बराबर है। जिस देश में कोई मजबूत हकूमत नहीं, वह देश मरे हुए के समान है और जो श्राद्ध किसी वेदपाठी चरित्रवान सच्चे ब्राह्मण की अनुपस्थिति में किया जाता है वह बेकार है। और जिस यज्ञ में दी हुई दक्षिणा से ब्राह्मण प्रसन्न नहीं होता वह यज्ञ बेकार है।

एक और प्रश्न पूछता है,—

को मोदते किमाश्चर्यं कः पन्थः कश्च वार्तिका।

संसार में सुखी कौन है । सबसे बढ़ कर आश्चर्य की बात क्या है । जिस रास्ते पर सब चले वह रास्ता कौन सा है. और संसार में मरना-जाना जो है यह खेल क्या है।

धर्मराज बोले,—यक्ष ! जिसने अपनी आवश्यकताओं को कम कर दिया है , जिसने किसी का कर्जा नहीं देना और आजीविका के लिये जो दर-दर धक्के नहीं खाता, अपने घर में बैठकर सन्तोष के साथ जो रूखा-सूखा खा लेता है वही सुखी है।

सन्त जिस रास्ते पर चलते हैं वही सबके चलने का रास्ता है । प्राणी आते हैं जाते हैं, जो उन्हें छोड़ने जाते हैं श्मशान भूमि तक अच्छी तरह देख लेते हैं कि यह अपने साथ कुछ ले जा नहीं सका, परन्तु जब एक को बिदा करके स्वयं अपनी गद्दी पर आकर बैठते हैं तब कहते हैं उसके साथ नहीं गई, मेरा स्पेशल केस है मेरे साथ जरूर जायेगा।

और ही क्या रहा है ? धर्मराज बोले,— यक्ष ! उस काल रूपी हलवाई ने पकोड़े तलने

के लिये एक बहुत बड़ा भारी कड़ाहा आग पर रखा हुआ है। इस में मोह-माया का तेल है, दिन और रात की लकड़ियां हैं। सूरज की इस में आग है और महीना रूपी इसमें कडछी है काल बैठा पकौड़े तल रहा है और ये हलवाई ऐसा शानदार है, पकौड़े बेचता नहीं, अपने खाने के लिए तल रहा है। और इस काल रूपी महापुरुष का पेट नहीं भरता, निरन्तर खाता रहता है और खाता-खाता भी किसी समय ऐसा भूखा हो जाता है कि पकने का इन्तजार नहीं करता। कच्चे ही चबाने लग जाता है।

पाशुपतास्त्र तथा दिक्पालों द्वारा अन्य अस्त्र प्राप्त कर पाण्डव आने वाले संग्राम के लिये विशेष शक्तिशाली बन गये परन्तु एक भयानक समस्या आगे थी,—अज्ञातवास का तेरहवां साल। अज्ञातवास का अर्थ यह था कि पूरे एक वर्ष पाण्डवों का कहीं पता न चलने पावे। पाण्डव कोई साधारण पुरुष नहीं थे जो लुके-छिपे रह सकते थे। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई हमारे जमाने में कहे,—महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, लालालाजपतराय, पंडित मदनमोहन मालवीय, स्वामी श्रद्धानन्द, सरोजनी नायडू एक नगर में एक वर्ष भर रहे और कोई उन्हें पहचान नहीं सका। मनुष्य केवल शकल से ही नहीं पहचाना जाता। हजार भेष बदल ले परंतु आवाज से, चाल से, स्वभाव से आदमी झट पहचाना जाता है। भीम जैसा आदमी बाजार में सौदा लेने जाय और पहचाना न जाय! श्री कृष्ण के सामने ये एक बहुत बड़ी समस्या थी। इन महापुरुषों को कहां कैसे रखा जाय। अज्ञातवास के प्रस्ताव पर बोलते हुए, भीम ने स्वयं धर्मराज से कहा था,—भाई साहेब! आप हम लोगों को वन में गुप्त रखना चाहते हैं यह तो वैसे ही है जैसे कोई घास के चूले से हिमालय को ढकना चाहे। आप एक जगत प्रसिद्ध महापुरुष हैं। जैसे सूरज आकाश में छिप कर नहीं विचर सकता वैसे ही आप भी छिप कर कहीं धरती पर रह नहीं सकते। मुझे तो बच्चे-बढ़े सब पहचानते हैं। मोटा-ताजा हूं एकदम पतला कैसे बन जाऊं। मेरे तो कद-काठ को देखकर ही लोग चिल्लाने लग जाते हैं भीम आया, भीम आया। तो मैं कैसे छुपकर रह सकता हूं। अर्जुन, नकुल और सहदेव भी वैसे ही छुप कर कैसे रह सकते हैं। नकुल और सहदेव की सुन्दरता ही उन का सब से बड़ा सार्टिफिकेट है। वे क्या वर्ष भर अपने चेहरे पर काले पाउडर मलते फिरें।

कृष्ण के सामने बहुत बड़ी समस्या थी, परन्त कृष्ण ने अनहोनी होनी में बदल दी। कृष्ण ने पांच प्वाइन्ट सोचे—नम्बर एक—पाण्डवों को किसी ऐसे राजा की छत्रछाया में रखा जाय जो दुर्योधन का जानी दुश्मन हो। उस राजा से कोई भेद छिपाकर न रखा जाय। उस राजा को स्पष्टतया पता हो कि ये पांचों सूरमा पाण्डव और उनके साथ वाली स्त्री द्रौपदी है। उस राजा का ये परमधर्म हो कि वह एक वर्ष तक पाण्डवों को अपनी छत्रछाया में रखे। नम्बर दो,—वह राजा ऐसा होना चाहिए जो हस्तिनापुर के निकटतम हो, जिनकी सीमा आपस में लगती हो। श्री कृष्ण मनोविज्ञान के आचार्य थे। वे जानते थे कि दुर्योधन दूर खोजेगा पास नहीं खोजेगा। नम्बर तीन,—पाण्डवों को गुप्तरूप से महाराज के पास न रखा जाय। प्लान ये बना कि महाराज दरबारे आम लगायें। उस आम दरबार में पाण्डव बंधु एक एक करके महाराज के पास आवें और महाराज उनको अपनी सेवा में ले लें। यदि कल को भीम

जैसा आदमी बाजार में किसी से झगड़ भी पड़ा तो लोग यही कहेंगे अजी ! यह तो वही आदमी है जो भूखा मरता हुआ रसोइया बनने के लिये महाराज के पास आया था। नम्बर चार,पांचों भाइयों को नाममात्र एक ऐसा कार्य सौंपा जाय जिससे पांचों बन्धु अन्दर ही अन्दर बैठे अपना कार्य निभा सकें । नम्बर पांच यह कि जिस नगर में पाण्डव रहें कृष्ण वर्ष भर उस नगर में न जायं । इन सभी बातों पर भली भांति विचार करके कृष्ण ने पाण्डवों को विराट-राज के यहां रखा। विराटराज दुर्योधन के शत्रु थे। युधिष्ठिर का राजमहल के भीतरी प्रबन्ध का काम सौंपा गया । भीम भोजनशाला की देखभाल में लगा। अर्जुन फेमिली ट्यूटर बना। नकुल घोड़ों की सेवा में और सहदेव गौओं की पालना में लगा । इस प्रकार राजमहल की चारदिवारी में ही रहते हुए पाण्डवों ने अज्ञात वास का वह वर्ष भी सुख एवं सफलता पूर्वक व्यतीत कर लिया।

जिन दिनों पाण्डव विराट नगरी में थे, कीचकी घटना हो गई । हम उस घटना को कोई महत्व नही देते। हम केवल उस दुर्घटना के अन्तर्गत एक ऐतिहासिक तथ्य को प्रकाश में लाना चाहते हैं । जिस समय भीम के सामने द्रौपदी की इज्जत बचाने का सवाल पैदा हुआ तो उस समय भीम ने एक शब्द कहा,—

अद्याहमनृणी भूत्वा भ्रातुर्भार्यापहारिणम् ।
शितं लब्धासि कर्त्तव्य हत्वा सैरन्ध्रिकण्टकम् ।।

अर्थात् भीम कहता है,—आज मैं अपने भाई की धर्मपत्नी को दुष्ट कीचक से मुक्त कराकर अपने कर्त्तव्य का पालन करूंगा।

उस वर्ष भगवान् श्री कृष्ण वर्ष भर द्वारिका में ही रहे, परन्तु द्वारका में वे खाली नहीं बैठे रहे । आने वाले भारतीय संग्राम की वे तैयारियों में लगे हुये थे।

श्री कृष्ण के सामने बहुत बड़ी एक कठिनाई थी, उनके अपने घर में फूट थी। इन्डीकेट-सिन्डीकेट की तरह समूची द्वारिका दो दलों में बंटी हुई थी एक दल था बलराम का और दूसरा दल था स्वयं कृष्ण का । जिनके कार्यवाहक नेता थे आहुक और अक्रूर। श्री कृष्ण इस पार्टीबाजी से इतने तंग थे कि वे प्राय; द्वारिका से बाहर ही रहा करते थे । एक दिन को बात है कि दरवाजा कहीं खुला रह गया, नारद जी अन्दर आये, देखा श्री कृष्ण जार-जार रो रहे हैं। नारद जी दंग रह गये। कृष्ण बोले,—नारद ! मेरी मुसीबतों का कोई अन्त नहीं। दुनियां मुझे महान् समझती है, ईश्वर का अवतार समझती है। बाहर मेरी इतना मान्यता है, घर में मेरी मुसीबतों का अन्त नहीं । मेरा पुत्र प्रद्युम्न अपनी खूबसूरती में ही मरा जा रहा है। मेरे बड़े-बड़े सरदार ईर्ष्या को अग्नि में जल रहे हैं। जब मैं बाहर से आता हूं दोनों दलों के नेता अपनी-अपनी फाइलें लेकर मेरे सामने आ बैठते हैं । मैं कभी एक की ओर देखता हूं कभी दूसरे की ओर। एक अपने रोने रोता है दूसरा अपने ही रोने ले बैठता है । एक अपनी मुसीबतें सुनाता है, दूसरा अपनी मुसीबतें ले बैठता है । शिकायतों का भण्डार इधर शिकायतों का भण्डार उधर और मैं इन दोनों के बीच में ऐसे बैठ जाता हूं जैसे दो जुआ खेलते हुए बच्चों के बीच में मां बैठ जाती है। वह चाहता है दोनों जीतें, हारे कोई नहीं। यह थी अवस्था कृष्ण के अपने घर में।

अन्धकवृष्णिसंघ में बहुत बड़ी फूट थी। पता नहीं क्यों अधिकांश लोग दुर्योधन के पक्षपाती थे। स्वयं बलराम जी दुर्योधन के मित्र थे। कृष्ण के सामने सबसे बड़ी कठिनाई यह थी कि श्री कृष्ण चाहते थे या तो सम्पूर्ण द्वारिका

पाण्डवों के पक्ष में आ जाय नहीं तो द्वारिका एकदम तटस्थ हो जाय । इसलिये कृष्ण ने अन्धकवृष्णिसघ को बुलाया । उस समय सभा के बीच में खड़े हाकर श्री कृष्ण बोले,—आज हम इस स्थान पर इस बात का निर्णय करने के लिये एकत्रित हुए हैं कि कौरव-पाण्डव युद्ध में यादव शक्ति किस ओर होगी । दोनों हमारे संबंधी हैं, दोनों हमारे प्रियजन हैं । मैं अपनी ओर से युद्ध को टालने का पूरा-पूरा प्रयास करूंगा। पाण्डवों की अज्ञातवास की अवधि की समाप्ति होते ही मैं स्वयं शान्ति दूत के रूपमें हस्तिनापुर जाऊंगा, परन्तु मैं दुर्योधन को खूब समझता हूं । पाण्डव सर्वथा निर्दोष हैं। वे युद्ध नहीं चाहते परन्तु दुर्योधन युद्ध करने पर तुला बैठा है। मैं अपनी ओर से प्रयत्न करूंगा कि युद्ध न हो। मैं पांडवों के लिये पांच ग्राम की तुच्छ सी याचना करूंगा । दुर्योधन यदि फिर भी न माना तो हमें यह देखना है कि उस युद्ध में हमारी स्थिति क्या होगी। मैं नहीं चाहता कि कौरव-पाण्डव युद्ध हमारे संघ में फूट डालने का कारण बने। अतः मैं आप सब के भले के लिए एक प्रस्ताव आपके सम्मुख उपस्थित करता हूं। सुझाव यह है कि हम लोग इस युद्ध में सर्वथा तटस्थ रहें। किसी भी दल की ओर से हम युद्ध में खुल कर भाग न लें। तथापि मैं आप सब को इस बात की छूट अवश्य देता हूं कि यदि आप में से कोई अपनी मित्रता, अपनी नातेदारी जताने के लिये दोनों में से किसी भी दल का साथ देना चाहते हों वह दे सकता है, परन्तु उस सहायता और सहयोग की एक मर्यादा होगी,वह युद्ध के संचालन में सहयोग तो दे सकता है परन्तु स्वयं अपने हाथों में अस्त्र-शस्त्र लेकर युद्ध में लड़ने नहीं जा सकता। जहां तक मेरा अपना संबंध है, संसार जानता है कृष्ण और अर्जुन अभिन्न हैं। संसार की कोई शक्ति नर-नारायण को पृथक नहीं कर सकती । जब तक जीवन है तब तक शरीर और आत्मा एक है। मैं आत्मा हूं और अर्जुन मेरा शरीर है। युद्ध में मैं पाण्डवों की ओर जाऊंगा। परन्तु मैं घोषणा करता हूं कि पाण्डवों के पक्ष में रहते हुए भी मैं युद्ध में स्वयं सहयोग दूंगा पर युद्ध नहीं करूंगा। आप में से यदि कोई सज्जन कौरवों के पक्ष में जाना चाहता है वह जा सकता है परन्तु वह सिविल में काम कर सकता है मिलेटरी में काम नहीं कर सकता । अन्धक वृष्णि संघ ने कृष्ण के इस प्रस्ताव को सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लिया।

इसी ऐतिहासिक घटना को कवि ने अलंकारिक रूप दिया है । कवि लिखता है,—श्री कृष्ण सो रहे थे। अर्जुन और दुर्योधन दोनों सहायता मांगने के लिये उनके पास पहुंचे। अर्जुन पांव की ओर बैठा और दुर्योधन सिर की ओर। कृष्ण ने नेत्र खोले, सब से पहले उन्होंने अर्जुन को देखा, दुर्योधन को पीछे। अर्जुन को सीधी नजर से देखा और दुर्योधन को टेढ़ी नजर से ।यह तो सत्य है कि जिस पर भगवान् की टेढ़ी नजर हो जाय उसका फक्का बचेगा नहीं। दुर्योधन बोला,—मैं पहले आया था, गलती से सिरहाने बैठ गया । श्री कृष्ण बोले,—आप दोनों ही हमारे संबंधी हैं,मैं दोनों का समान रूप से सम्मान करता हूं। आप दोनों मुझ से सहायता मांगने आये हो। कृष्ण के दरबार से खाली कोई नहीं जाता। एक ओर मैं अकेला निःशस्त्र और दूसरी ओर मेरा समूचा ऐश्वर्य और समूची सेना। मांग दुर्योधन क्या मांगता है ? तू कहता है मैं पहले आया हूं, पहला चान्स तुम्हें दिया जाता है। दुर्योधन

बाला,—मुझे तुम्हारा ऐश्वर्य चाहिए, मुझे तुम्हारी नारायणी सेना चाहिए। अर्जुन बोला,—मुझे केवल आप ही चाहिए। दुर्योधन की आंखों पर माया का मोतियाबिन्द चढ़ा था।

पास खड़ा दीखैं नही लानत ऐसी जिन्द।
तुलसी या ससार को भया मोतिया बिन्द॥

युद्ध के पश्चात् कृष्ण ने अर्जुन से पूछा,—अर्जुन! तूने मुझे किस लिये मांगा। अर्जुन बोला,—कृष्ण! मुझे ये विश्वास था कि जिस का साथी श्री कृष्ण है वह कभी हार ही नहीं सकता। अपनी इज्जत के लिए आपने मुझे जिताना ही था।

श्री कृष्ण की इस रचना ने मुंह मांगा वरदान पाया। कृष्ण चाहते थे कि वे तो पाण्डवों के पक्ष में हों, परन्तु बलराम कौरवों के पक्ष में न हो। श्री कृष्ण चन्द्र की नीति सफल हुई। युद्ध का निश्चयात्मक निर्णय होते ही बलराम ने घोषणा कर दी,—

नाऽहं सहायः पार्थस्य नाऽपि दुर्योधनस्य वै।
इति मे निश्चिता बुद्धिर्वासुदेवमवेक्ष्य ह॥

इस प्रकार विराट नगर में रहते हुए पाण्डवों ने अज्ञातवास सफलता पूर्वक पूरा कर लिया। अब आगे क्या हो? विराट दरबार में बहुत बड़ी सभा हुई। उस सभा को सम्बोधन करते हुए श्री कृष्ण बोले,—शकुनी ने पाण्डवों को किस प्रकार अन्याय से जीता, वह सब आप लोगों को विदित ही है। पाण्डव यदि चाहते कोई भी ताकत इन्द्रप्रस्थ से उन्हें निकाल नहीं सकती थी। जुआ सरासर अन्याय का था। क्या कमाल है, शकुनी ही सब पांसे जीतता रहा,—पाण्डवों की ही हिम्मत थी कि उन्हों ने सहर्ष इस अन्याय को स्वीकार किया।

यद्यपि धृतराष्ट्र के पुत्रों के कारण इन्हें असह्य कष्ट भोगने पड़े हैं तथापि अपने सुहृदों के सहित वे सर्वदा उनका मंगल ही चाहते रहे हैं। अब यह पुरुषप्रवर अपना वही राज्य चाहते हैं जिसे इन्होंने अपने बाहुबल से राजाओं को परास्त कर के प्राप्त किया था। बालपन से ही दुर्योधन इनसे वैर करता है और इनके राज्य को हथियाने के लिए उसने तरह तरह के षडयन्त्र रचे। अब तो दुर्योधन का लोभ और भी बढ़ चुका है। पाण्डव तो आज भी सत्य और धर्म पर अटल है इस लिए यदि अब धृतराष्ट्र के पुत्र अन्याय करेंगे तो ये उन्हें मार डालेंगे। इस लिये उन लोगों को समझाने और महाराज युधिष्ठिर का अधिकार इन्हें दिलाने के उपाय पर आप लोग विचार कीजिये।

श्रीकृष्ण के वक्तव्य समाप्त होने पर दुर्योधनपक्षी बलराम जी खड़े हुए और बोले,—"आप लोगों ने श्रीकृष्ण का धर्म और अर्थ के सर्वथा अनुकूल भाषण सुना। वह जैसा धर्मराज के लिए हितकर है वैसा ही कुरुराज दुर्योधन के लिए भी है। वीर कुन्ती पुत्र आधा राज्य कौरवों के लिए छोड़ कर शेष आधे के लिए ही प्रयत्न करना चाहते हैं। अतः यदि दुर्योधन का विचार जानने और उसे युधिष्ठर का सन्देश सुनाने के लिए कोई दूत भेजा जावे, और इस प्रकार कौरव-पाण्डवों का निपटारा हो जावे तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। वहां जो दूत जाय, उसे कुरुकुल के सुप्रतिष्ठित, वयोवृद्ध एवं विद्या वृद्ध सभासदों के सामने नम्र शब्दों में युधिष्ठिर का पक्ष उपस्थित करना चाहिए। किसी भी अवस्था म कौरवों को कुपित नहीं करना चाहिए। कौरवों ने सबल हो कर ही पाण्डवों का धन छीना था। युधिष्ठिर की जुए में आसक्ति थी। यदि शकुनि ने उन्हें जुए में हरा दिया तो इसमें उसका कोई अपराध नहीं कहा जा सकता।'

बलराम जी की बात सुनकर सात्यकि उनके भाषण की बहुत निन्दा करते हुए बोला,—पुरुष का जैसा अपना चित्त होता है वैसी ही वह बात

भी कहता है। यह ठीक है कि धर्मराज जुआ खेलना नहीं जानते थे और शकुनि इस क्रिया में पारंगत था किन्तु इनकी उसमें श्रद्धा नहीं थी। कौरवों ने उन्हें कपट द्युत में हराया था। महाराज युधिष्ठिर बनवास की अवधि पूरी करके अब स्वतन्त्र हैं और अपनी पैतृक सम्पत्ति के अधिकारी हैं। ऐसी स्थिति में ये उनसे भीख क्यों मांगें– यह कैसे हो सकता है। दुर्योधन सीधी बातों से पाण्डवों को उनका अधिकार नहीं देगा। अब मैं रणभूमि में अपने पैने बाणों से उन्हें सीधा कर दूंगा और महात्मा युधिष्ठिर के चरणों पर उनका सिर रगड़वाऊंगा। हम लोग शकुनि के सहित दुर्योधन और कर्ण को मारकर महाराज युधिष्ठिर का राज्याभिषेक करेंगे।"

महाराज द्रुपद ने भी सात्यकि की बातों का समर्थन किया। वे बोले– मेरी बुद्धि में श्री बलदेव का प्रस्ताव नहीं जचा। दुर्योधन के आगे मीठे वचन तो कभी बोलने नहीं चाहियें। दुर्योधन के कान युद्ध की ही भाषा सुनने के अभ्यस्त हो चुके है। दुष्ट-लोग मृदु-भाषी को शक्ति-हीन समझते हैं। आप शाँति का उपाय भले ही करें परन्तु युद्ध की तैयारियाँ भी साथ ही करते रहें।

महाराज द्रुपद की बात सुनकर श्रीकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए, बोले–महाराज द्रुपद ने बहुत ठीक बात कही है। हम लोगों को सुनीति से काम लेना चाहिये।

यह निश्चय हुआ कि जहाँ एक ओर युद्ध के लिये तैयारियाँ की जायें वहाँ एक अन्तिम सन्धि प्रयास करके भी देख लिया जाय।

श्रीकृष्ण बोले—राजन् ! मैं स्वयं सन्धि-दूत बनकर कौरवों के दरबार में जाऊंगा, वहाँ जो आपके स्वार्थ को बनाये रख कर मैं शान्ति स्थापित कर सका तो मुझे पुण्य होगा। युधिष्ठिर ने कहा—हे कृष्ण ! तुम्हारा कौरवों के दरबार में जाना मुझे प्रिय नहीं। तुम्हारे युक्तियुक्त कल्याणकारी वचनों को भी दुर्योधन नहीं मानेगा। वहाँ दर्योधन और उसके सहायक राजाओं का बहुत बड़ा जमघट है। उनके बीच में तुम्हारा जाना मैं उचित नहीं समझता।

श्रीकृष्ण जी बोले—राजन् ! दुर्योधन की इस प्रकार की पाप बुद्धि को मैं भी जानता हूँ। किन्तु उसके पास सन्धि का प्रस्ताव लेकर जाने से राजा लोग फिर हमें दोष न लगावेंगे। कुल के नाश के लिए हमारी निन्दा न करेंगे। रही मुझ पर आक्रमण होने की आशंका, सो जिस प्रकार क्रोधित सिंह के सामने मृग नहीं ठहर सकते, वैसे ही मेरे कुपित होने पर सब राजा मिल कर भी मेरा सामना नहीं कर सकते। मैंने निश्चय कर लिया है कि जो वे लोग मेरे साथ कुछ अनुचित छेड़छाड़ करना चाहेंगे तो मैं वहीं सब कौरवों को भस्म कर दूंगा। हे राजेन्द्र मेरा वहाँ जाना व्यर्थ नहीं है। न जाने सन्धि हो जाय, और सन्धि यदि न भी हो सकी तो कम से कम हम दोष और निन्दा से तो बच जायेंगे ?

हे राजेन्द्र ! मैं कौरव सभा में जा कर जो लोग दुर्योधन को अच्छा समझते हैं उनका भ्रम दूर कर दूंगा। सब राजाओं के बीच में आप के असाधारण गुणों का और दुर्योधन के दोषों का बखान करूंगा। देश-देशान्तर से आए हुए राजा लोग मेरे धर्मार्थ संयुक्त और हितकारी वचन सुन कर आपकी धर्मपरायणता और सत्यता पर विश्वास करेंगे। उन्हें यह भी प्रतीत हो जायगा कि दुर्योधन कितना पतित और लोभी हैं।

हे भारत ! मुझे तो अपशकुन देख पड़ता है कि आपको शत्रुओं से युद्ध करना ही पड़ेगा ।

उस समय भीमसेन ने कहा,—हेमधुसूदन ! जिस प्रकार भी शाँति हो वही कीजिएगा । युद्ध की धमकी न दे कर कोमल शब्दों में समझाइएगा । उग्र स्वभाव वाले दुर्योधन से कठोर बातें न कहिएगा । हम नम्रता के साथ दुर्योधन की अधीनता मानने के लिए तैयार हैं कि हमारे भारत वंश का विनाश न हो । मैं शाँति के लिए यह कह रहा हूँ । राजा युधिष्ठिर सन्धि को पसन्द करते हैं, अर्जुन की भी यह इच्छा नहीं कि युद्ध हो, और क्योंकि ये बड़े दयालु हैं ।

भीमसेन के इन अपूर्व कोमल वचनों को सुन कर श्री कृष्ण मुस्कराने लगे, फिर बोले,—भीमसेन ! तुम और समय तो क्रूर धृतराष्ट्र-पुत्रों को मारने का इच्छा प्रकट करके युद्ध की प्रशंसा किया करते थे, आज तुम शान्ति-पाठ की रट लगा रहे हो । ऐसा लगता है भय और मोह से तुम्हारा चित्त बिगड़ गया है । अस्तु ! मैं कल कुरु सभा में जाकर तुम्हारे स्वार्थ की रक्षा करते हुए सन्धि होने का उपाय करूँगा, जो उन लोगों ने मेरी बात को मान लिया तब तो ठीक, अन्यथा विकट संग्राम होगा । हे भीम ! इस युद्ध का सब भार तुम्हारे ही ऊपर है ।

अर्जुन ने भी सन्धि का प्रस्ताव किया । नकुल ने भी अर्जुन और भीम का समर्थन किया । परन्तु सहदेव ने तो स्पष्ट शब्दों में कह दिया—कृष्ण ! यदि कौरव लोग हमारे साथ सन्धि कर लेना स्वीकार कर भी लें तो भी आप उन से युद्ध का ही प्रस्ताव कीजियेगा । हे कृष्ण मैंने सभा में द्रौपदी का वैसा अपमान होते देखा है फिर शत्रुओं से युद्ध किये बिना कैसे रह सकता हूँ । युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल जो धर्म अनुरोध से युद्ध नहीं करेंगे, तो मैं अकेला ही दुर्योधन से युद्ध करने को तैयार हूँ ।

उस समय सात्यकि ने भी सहदेव के ही मत का समर्थन किया । —परन्तु भीम और युधिष्ठिर के शब्द सुनकर द्रौपदी शोक से व्याकुल हो उठी और बोली—कृष्ण !

अप्रदानेन राज्यस्य यदि कृष्ण सुयोधनः ।
संधिमिच्छेन्न कर्तव्यं तत्र गत्वा कथंचन ॥
साम्ना दानेन वा कृष्ण ये न शाम्यन्ति शत्रवः ।
नियोज्यायस्तेषु दण्डाःस्याज्जीवितं परिरक्षता ॥
यथाऽवध्ये वध्यमाने भवेद्दोषो जनार्दन ।
स वध्यस्याऽवधे दृष्ट इति धर्मविदो विदुः ॥
पुनरुक्तं च वक्ष्यामि विश्रंभेण जनार्दन ।
का तु सीमंतिनी मादृक् पृथिव्यामस्ति केशव ॥
साऽहं केशग्रहं प्राप्ता परिक्लिष्टा सभां गता ।
पश्यतां पांडुपुत्राणां त्वयि जीवति केशव ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्या यदि तेऽस्ति कृपा मयि ।
धार्तराष्ट्रेषु वै कोपः सर्वं कृष्ण विधीयताम् ।

हे केशव ! आप कौरवों की सभा में जाईये जो दुर्योधन आधा राज्य न देकर सन्धि करने का प्रस्ताव करे तो आप उसे कदापि स्वीकार न कीजियेगा । शत्रु यदि साम या दान के द्वारा न माने तो उन्हें अपने जीवन और जीविका की रक्षा के लिए दण्ड देना ही चाहिए । हे जनार्दन ! धर्मज्ञ पंडितों का कहना है कि अवध्य का वध करने का जो पाप होता है वही पाप वध्य का वध न करने से होता है । हे केशव इस समय इस धरती पर मेरे समान दुखिया स्त्री और कौन होगी । पाण्डवों के सामने, आप के जीते जी मैं अपमानित की गई । हे कृष्ण ! यदि आप मुझे अनुग्रह और कृपा के योग्य समझते हैं, तो शीघ्र दुर्योधन आदि को अपने क्रोध की अग्नि द्वारा भस्म कर दीजियेगा ।

अयं ते पुंडरीकाक्ष दुःशासनकरोद्धृतः ।
स्मर्तव्यः सर्वकार्येषु परेषां संधिमिच्छता ॥

यदि भीमार्जुनौ कृष्ण कृपणौ संधिकामुकौ।
पिता मे योत्स्यते वृद्धः सह पुत्रैर्महारथः॥
दुःशासनभुजं श्यामं संछिन्नं पांसुगुंठितम्।
यद्यहं तु न पश्यामि का शांतिर्हृदयस्य मे॥
विरोबंते हो ने हृदयं भीमवाक्शल्यपीड़ितम्।
योऽयमद्य महाबाहुर्धर्ममेवाऽनुपश्यति॥

उस समय अपने बिखरे हुए केशों को बायें हाथ में लेकर आँखों में आँसु भरे हुए द्रौपदी बोली, कृष्ण ! शत्रु जब सन्धि की इच्छा प्रकट करें तब कर्त्तव्य निश्चित करते समय, दुःशासन के हाथ से खींचे गए मेरे इन बालों का स्मरण रखिएगा। जो भीमसेन और अर्जुन युद्ध विमुख होकर दीन भाव से सन्धि करने को तैयार हो जायेंगे तो मेरे पिता, मेरे भाई कौरवों से युद्ध करेंगे। जब तक मैं दुःशासन के काले हाथ को काटकर धूल में लौटते न देख लूँगी तब तक मुझे शान्ति कहाँ।

जल रही अग्नि के समान क्रोध को अपने हृदय में दबाकर तेरह वर्ष तक मैं क्लेश सहती रही हूँ। मुझे अभी तक शान्ति मिलती दिखाई नहीं देती। आश्चर्य तो देखिए, आज भीमसेन भी शान्ति-शान्ति का पाठ पढ़ रहे हैं।—इतना कह कर द्रौपदी सिसक-सिसक कर रोने लगी। तब महाबाहु उसे धीरज देते हुए कहने लगे।—

तामुवाच महाबाहुः केशवः परिसांत्वयन्।
अचिराद् द्रक्ष्यसे कृष्णे रुदतीर्भरतस्त्रियः॥
अहं च तत्करिष्यामि भीमार्जुनयमैः सह।
युधिष्ठिरनियोगेन दैवाच्च विधिनिर्मितात्॥
धार्तराष्ट्राः कालपक्वा न चेच्छृण्वंति मे वचः।
शेष्यंते निहता भूमौ श्वशृगालादनीकृताः॥

हे पाञ्चाली ! तुम शीघ्र ही अपनी तरह कौरवों की स्त्रियों को रोते-कलपते देखोगी। मैं यधिष्ठिर को आज्ञा से भीमसेन, अर्जुन, नकुल, और सहदेव के द्वारा कौरवों का नाश कराऊंगा दुर्योधनादि मेरी बात न सुनेंगे तो काल वश हो कर पृथ्वी पर पड़े होंगे।

उस समय धर्मराज बोले—

यत्तुभ्यं रोचते कृष्ण स्वस्ति प्राप्नुहि कौरवान्।
कृतार्थं स्वस्तिमंतं त्वां द्रक्ष्यामि पुनरागतम्॥
भ्राता चासि सखा चासि बीभत्सोर्मम च प्रियः।
सौहृदेनाऽविशंक्योसि स्वस्ति प्राप्नुहि भूतये॥
अस्मान्वेत्थ परान्वेत्थ वेत्थाऽर्थान्वेत्थ भाषितुम्।
यद्यस्मद्धितं कृष्ण तत्तद्वाच्य सुयोधनः॥

हे ऋषिकेश ! जैसा तुम्हें श्रेष्ठ लगे वही करो। तुम सकुशल कौरवों के पास जाओ। हे जनार्दन तुम्हा हमारे भाई और सखा हो। तुम मुझे और अर्जुन को बहुत प्यारे हो। हमारे हित के लिए शुभ यात्रा करते हुए तुम कल्याण प्राप्त करो। तुम हम को जानते हो, और प्रयोजन के अनुकूल उचित बात कहना जानते हो। जिस में हमारा हित जान पड़े, जो धर्म संगत हो वही दुर्योधन से कहना।

धर्मराज की ऐसी बातें सुनकर श्री कृष्ण बोले—राजन् ! आप की बुद्धि धर्म मार्ग पर दृढ़ है और कौरव वैर छोड़ने को तैयार नहीं हैं। बिना संग्राम के जो मिले उसी को आप बहुत समझने के लिए तैयार हैं, किन्तु क्षत्रिय के लिए जन्म भर ब्रह्मचारी या संन्यासी रहकर भिक्षा मांगना ठीक नहीं है। संग्राममें जय प्राप्त करना या मर जाना ही विधाता का बनाया हुआ क्षत्रिय सनातन धर्म है। दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र बड़े लोभी हैं, उन्होंने बहुत दिनों तक वीर-पुरुष के साथ रह कर उन से स्नेह बढ़ा लिया है, इस लिए बलवान् हो रहे हैं, अनेक मित्र भी उनके पक्ष में हैं, इस कारण अपने को बलवान् समझ कर वे आप से किसी

तरह सन्धि न करेंगे।

हे भारत! मुझे जो असगुण देख पड़े हैं उन से जान पड़ता है कि आपको शत्रुओं से युद्ध करना ही पड़ेगा। इसलिये आप के योद्धा लोग युद्ध के लिए दृढ़ विचार करके सब प्रकार की युद्ध सामग्री से तैयार रहें।

यदुवंश चूड़ामणि भगवान् वासदेव ने कार्त्तिक के महीने में, रेवती नक्षत्र और मैत्र मुहूर्त में यात्रा की। उन्होंने पहले ब्राह्मणों और ऋषियों के मुख से मंगलमय पुण्याहपाठ सुना। फिर स्नान सन्ध्या आदि करके उन्होंने वस्त्र-आभूषण पहन कर हवन किया, और सूर्य को उपासना को। तब एक श्वेत बैल की पूंछ छूकर ब्राह्मणों को प्रणाम किया, अग्नि की प्रदक्षिणा करके उन्होंने मंगल पदार्थों के दर्शन किए। फिर युधिष्ठिर की बातें स्मरण करके श्री कृष्ण ने अपने पास बैठे हुए सात्यकि से कहा—हे वीर! मेरा रथ जुतवा कर उस पर शंख, चक्र, गदा, तरकस, शक्ति और अन्य सब युद्ध की सामग्री रख दो। प्रबल पुरुष को निर्दल शत्रु से भी लापरवाही न करनी चाहिए। फिर दुर्योधन, शकुनि, और कर्ण तो अत्यन्त दुष्ट हैं।

श्री कृष्ण की आज्ञा से उनके सेवक रथ सजाने लगे। वह रथ कालानल के समान प्रज्वलित था। चलता इस प्रकार था मानों आकाश में उड़ रहा हो। इच्छानुसार चलने वाले विमान की मेघ की सी गड़गड़ाहट वाले ऊंचे रथ पर श्री कृष्ण सवार हुए सात्यकि भी उसी रथ में बैठे। रथघोष से आकाश और पृथ्वी कंपाते हुए श्री कृष्ण हस्तिनापुर की ओर चले। दारुक के हांके हुए घोड़े वायु से बातें करने लगे। कुछ दूर जाने पर जनार्दन ने मार्ग में इधर-उधर ब्रह्मतेज सम्पन्न अनेकों महर्षियों को देखा। उन्हें देखते ही श्री कृष्ण रथ से उतर पड़े। यथोचित अभ्यर्थना करके कृष्ण चन्द्र ने कहा—हे महर्षियो! सब लोक कुशल से तो हैं? धर्मकार्य तो ठीक रीति से किए जा रहे हैं। क्षत्रिय आदि वर्ण ब्राह्मणों की आज्ञा पर चलते हैं न? आप लोगों का कुछ कार्य हो तो कहिए। मैं आपकी क्या सेवा करूं? आप यहां किस कार्य से आये हैं?

तब इन्द्र के सखा महर्षि परशुराम कृष्ण के पास आ कर उन्हें गले से लगा कर कहने लगे—हे गोविन्द! हम में कोई देवर्षि बहु व्रतधारी ब्राह्मण हैं, कोई राजर्षि और कोई तपस्वी हैं। इस समय हम कौरव-सभासदों और राजाओं के बीच में आप को देखने के लिए जा रहे हैं। कौरव सभा में आप के मुंह से धर्मार्थयुक्त मधुर वचन सुनने की हमें बड़ी अभिलाषा है। हे यदुश्रेष्ठ! अब आप कौरव सभा को जाईये। हम वहीं दिव्य आसन पर बैठे हुए आप के तेजस्वी स्वरूप को देखेंगे।

शत्रु सेना को पीड़ा पहुंचाने वाले शस्त्रधारी महाबली पराक्रमी दस महारथी वीर, एक हज़ार पैदल सिपाही और इतने ही सवार श्री कृष्ण के साथ चले। वृकस्थल में पहुंच कर श्री कृष्ण ने सब को विश्राम की आज्ञा दी। वह रात्री श्री कृष्ण वहीं पर रहे।

श्री कृष्ण के हस्तिनापुर के सीमान्त ग्राम में पहुंच जाने का समाचार पाकर धृतराष्ट्र को बहुत चिन्ता हुई। श्री कृष्ण पांडवों का पक्ष ससार के सामने उपस्थित करने आए हैं, धृतराष्ट्र ने कृष्ण को प्रलोभन दे कर पांडवों से फटा देने की चेष्टा करनी चाही। वह विदुर से बोले, मैं श्री कृष्ण का आदर करना चाहता हूं। मैं उन्हें सवर्ण मन्डित सोलह रथ दूंगा। उन रथों

में वाह्लीक देश के श्रेष्ठ चार-चार घोड़े जुते होंगे। निरन्तर जिन के मद बह रहा है और आठ-आठ मनुष्य साथ रहते हैं ऐसे बड़े-बड़े दांत वाले गजराज दूंगा। पहाड़ी लोगों के दिए हुए अठारह मेढ़े और चीन देश के हज़ार घोड़े अर्पण करूंगा। दिन रात जगमगाने वाली मणियां और चौदह योजन नित्य चलने वाले बढ़िया खच्चर दूंगा। श्री कृष्ण के साथी लोग वाहण इत्यादि जितनी सामग्री खा-पी सकते हैं उससे अठगुनी सामग्री दूंगा। दुर्योधन के सिवा सभी पुत्र और पौत्र बढ़िया गहने और वस्त्र पहन कर उत्तम रथों पर बैठ कर कृष्ण चन्द्र की अगवानी के लिए जायेंगे। प्रजा जैसे सूर्य के दर्शन करती है, वैसे ही नगर-निवासी सब श्रीकृष्ण के दर्शन करेंगे। चारों ओर नगर में झण्डे, पताका, बन्दनवार आदि मंगलचिन्ह लगा दो। सड़कों को स्वच्छ कर छिड़काव कर दो। दुःशासन का महल दुर्योधन के महल से भी श्रेष्ठ है। इसलिए श्रीकृष्ण के ठहरने का उसी में प्रबन्ध करो। दुर्योधन के महल को सभी श्रेष्ठ सामग्री उस महल में ले जाकर सजा दो।

महात्मा विदुर उस समय धृतराष्ट्र की दूषित भावनाओं की धज्जियां उड़ाते हुए बोले—राजन्!

मैं सौगन्ध खा कर कहता हूं, आप धर्म समझ कर अथवा श्रीकृष्ण को प्रसन्नता के लिए यह सामग्री नहीं देना चाहते। यह केवल आप की माया ही है। इतनी सामग्री का लोभ दिखा कर आप श्रीकृष्ण को पांडवों सेफोड़ना चाहते हैं और अपनी ओर मिलाना चाहते हैं। पांडवों ने आप से केवल पांच गांव मांगे, आप वह तो देने को तैयार नहीं। इस से स्पष्ट ज्ञात होता है कि आप शांति नहीं चाहते। आप धन का लोभ देकर महाबाहु श्री कृष्ण को पांडवों से अलग करना चाहते हैं। किन्तु मैं आप को दावे से कहता हूं कि धन देकर पांडवों की निन्दा करके, या किसी और उपाय से आप कृष्णचन्द्र को अर्जुन से अलग नहीं कर सकते। श्रीकृष्ण को अर्जुन प्राणप्रिय है। वे अर्जुन को कभी भी छोड़ नहीं सकते। जर्नादन जल के कलश, पाद्य, और कुशल-प्रश्न के सिवा और कुछ न लेंगे। आप की दी हुई और वस्तुओं को वे आंख उठा कर देखेंगे भी नहीं। इस कारण जैसा सत्कार करने से माननीय जनार्दन प्रसन्न हो सकते हैं वही करना चाहिए। महात्मा वासुदेव आप सब के भले के लिए सन्धि का प्रस्ताव ले कर आ रहे हैं। इसलिए उनकी बात मान लेना ही आप के लिए योग्य होगा।

पितामह ने भी धृतराष्ट्र को ऐसा ही उपदेश दिया—वे बोले राजेन्द्र! श्री कृष्ण का सत्कार आप भले ही न करो, परन्तु उनका अनादर तो भूल कर भी न करना। कृष्ण जी जिस काम करने की प्रतिज्ञा कर लेते हैं, उसे हज़ार उपाय करके भी कोई उलट नहीं सकता। भगवान् कृष्ण जो कहें, बिना सोचे विचारे उसे अक्षरशः मान लो, श्री कृष्ण को मध्यस्थ बना कर पांडवों से सन्धि कर लो।

भीष्म के इस प्रकार के शब्द सुन कर दुर्योधन बोला—आप लोग पांडवों से समझौते की बात कहते हैं मैंने इस समय ऐसा प्रबन्ध कर रखा है कि पांडवों के सबसे बड़े सहायक कृष्ण यहां आवें तो उन्हें एकदम कैद कर लिया जाय।

फिर तो पाण्डव, यादव और सम्पूर्ण पृथ्वी मण्डल के राजा सहज ही मेरे अधीन हो जायेंगे। अतः इस सम्बन्ध में मुझे ऐसा उपाय बताईए

जिससे श्री कृष्ण मेरे इस अभिप्राय को पहले से न जान जायें और मेरा किसी प्रकार अनिष्ट भी न हो।

प्रातः श्री भगवान् ने हस्तिनापुर में प्रवेश किया। श्री कृष्ण के सम्मान में सारा नगर और राजमार्ग अनेक रत्नों और मूल्यवान् विचित्र वस्तुओं से सजाया गया था। भगवान् सीधे धृतराष्ट्र के पास पहुंचे! प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र श्री कृष्ण के आने का समाचार पा कर आदर से उठ खड़े हुए। सभी उपस्थित सज्जनों ने श्री कृष्ण का यथायोग्य सत्कार किया। थोड़ी देर तक धृतराष्ट्र के पास बैठकर भगवान् श्री कृष्ण महात्मा विदुर के निवास स्थान को चले गये।

महात्मा विदुर के घर पर श्री कृष्ण कुन्ती से मिले। उन्होंने कुन्ती को प्रणाम किया और उन्हें पांडवों का समाचार सुनाया। अपने पुत्रों के लिये सन्देश देती हुई कुन्ती बोली, कृष्ण! तुम भीमसेन और अर्जुन से कहना—

क्षत्रिय की कन्या जिस समय के लिए बालक उत्पन्न करती है, वह समय आ गया है। जो इस अवसर को हाथ से खो देंगे तो सारी उमर हाथ मलते रह जाओगे। उस समय अपनी बुआ कुन्ती को सान्त्वना देते हुए श्री कृष्ण बोले बुआ जी! संसार में आप के समान सौभाग्य-शालिनी स्त्री भला कौन है? आप अर्जुन और भीम सरीखे वीर पुत्रों की माता हैं। आप के पुत्र बड़े उत्साही और बलवान् हैं। आप देखेंगी कि आपके पुत्र शीघ्र ही शत्रुओं को मारकार साम्राज्य और अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे।

बुआ कुन्ती को इस प्रकार आश्वासन देकर के भगवान् अब दुर्योधन के रंग-ढंग देखने उसके दौलत खाने पर गये। दुर्योधन ठाठ जमाये बैठा था। श्रीकृष्ण को देखते ही दुर्योधन अपने मन्त्रियों सहित उठ खड़ा हुआ। उसने यथोचित रूप से श्रीकृष्ण की अभ्यर्थना की। श्रीकृष्ण भी सभी से यथा योग्य मिले। सब से कुशल-प्रश्न करके भगवान् कृष्ण एक सुन्दर सुवर्ण के पलंग पर जा बैठे। सूर्य सदृश तेजस्वी श्रीकृष्ण जब बैठ गये तब उनके पास ही कौरव और राजा लोग भी बैठे। तब दुर्योधन ने और सब बातें पीछे डाल कर श्रीकृष्ण को भोजन का निमन्त्रण दिया, परन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं किया। जब इस अस्वीकृति का कारण दुर्योधन ने पूछा, तो श्रीकृष्ण बोले।

हे दुर्योधन! जब काम में सफलता मिल जाती है, तभी दूत भोजन करते हैं और पूजा भी लेते हैं। जब कृतकार्य हो जाऊंगा तब तुम मुझे और मेरे साथियों को भोजन कराना।

उस समय दुर्योधन बोला, कृष्ण! हम लोगों के सम्बन्ध में आप को ऐसे वचन कहने नहीं चाहियें आप अपना काम पूरा कर सकें हम सदा आप की पूजा करने के लिए तैयार हैं। हम ने प्रीति पूर्वक आप की पूजा की, पर आप उसे स्वीकार नहीं करते, उसका यथार्थ कारण हमें दीख नहीं पड़ता। हे गोविन्द! आप के साथ हमारा वैर विरोध नहीं है, आप हमारी पूजा स्वीकार कीजिये।

दुर्योधन के यह शब्द सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराये और बोले—

हे कौरव! मैं काम, क्रोध, द्वेष, स्वार्थ कपट या लोभ के वश होकर धर्म का परित्याग नहीं कर सकता। लोग या तो प्रीति से या विपत्तिग्रस्त हो कर दूसरे का अन्न खाते हैं। तुम ने प्रीति से मुझे भोजन का निमन्त्रण नहीं दिया और मुझ पर विपत्ति भी कोई नहीं आई। फिर मैं भोजन क्यों करूं। तुम जन्म से ही

बिना कारण पांडवों से द्वेष करते हो। मैं जानता हूं पांडव सर्वथा निर्दोष हैं। जो कोई पांडवों से द्वेष रखता है, वह मानों मुझ से द्वेष रखता है, जो कोई उन से प्रीति का व्यवहार करता है, वह मानों मुझ से ही प्रीति करता है। जो पुरुष काम, क्रोध, अथवा मोह के वशीभूत हुआ गुणी पुरुष से द्वेष करता है, नराधम है। जो पुरुष कल्याणपात्री गुणी जातिवालों को अकारण लाञ्छण लगाता है और उन को सम्पत्ति हर लेने की इच्छा रखता है वह चिर सञ्चित सम्पत्ति नहीं भोग सकता, शीघ्र ही श्रीहीन हो जाता है। और जो कोई अपने को हृदय से अप्रिय होने पर भी गुणी जातिवालों को, उन का प्रिय करके अपने अनुकूल बनाता है वह सदा यशस्वी और श्रीमान् होता है। मुझे पूर्ण विश्वास है तुम किसी दुष्ट विचार से भोजन के लिये मुझ से अनुरोध कर रहे हो, इस लिये मैं इस दूषित अन्न को न खाऊंगा। मैं केवल विदुर जी का अन्न ग्रहण करना ही उचित और श्रेयस्कर समझता हूं। इतना कह कर महावाहु श्री कृष्ण वहां से उठकर विदुर के घर चले गये।

भोजनोपरान्त जब श्रीकृष्ण विश्राम कर रहे थे, उस समय एकान्त में विदुर ने उन से कहा—केशव! आप का यहां आना अच्छा नहीं हुआ। मन्दमति दुर्योधन धर्म और अर्थ के ज्ञान से शून्य काम-क्रोध परायण दूसरों के मान को मिटाने वाला, आप मान पाने का अभिलाषी, निर्बोध, मूढ़, इन्द्रियासक्त, अपने को बुद्धिमान् समझने वाला, मित्र-द्रोही, कृतघ्न, अधर्मी मिथ्यावादी और स्वेच्छाचारी है। वह युद्ध के लिये तैयार बैठा है। उस दुर्बुद्धि को यह पूरा-पूरा भ्रम है कि अकेला ही सब पांडवों को और उनकी सेना को परास्त करेगा। इस लिये दुर्योधन कभी भी शांति का रास्ता नहीं पकड़ेगा। इसी अवस्था में दुर्योधन को उपदेश देना आप का काम नहीं है। इस समय उसने बहुत बड़ी सेना इकट्ठी कर ली है।

कृष्ण! यह धरती अब अधर्म के बोझ से दब रही है। संहार का समय उपस्थित है। पृथ्वी के सब योद्धा, राजा दुर्योधन के लिये पाण्डवों से युद्ध करने आये हैं। वे सब पहले ही आप के प्रभाव से नीचा भी देख चुके हैं। आप से भयभीत होकर इस समय इन राजाओं ने दुर्योधन और कर्ण का आश्रय लिया है। वे दुर्योधन के साथ रह कर पांडवों से लड़ने का निश्चय कर चुके हैं। मैं उन के पास जाकर सन्धि के लिये प्रस्ताव करने का अनुमोदन नहीं करूंगा।

श्री कृष्ण बोले, विदुर जी! मुझ ऐसे सुहृद से तुम ऐसे व्यक्ति को जैसी धर्मार्थ संगत बात कहनी चाहिये वैसे तुम ने कही है। किन्तु मैं और ही विचार से यहां आया हूं। दुर्योधन का दौरात्म्य और क्षत्रियों की शत्रुता जानकर ही मैं यहां आया हूं। यदि मनुष्य यथा शक्ति धर्म के काम के लिये यत्न करके भी उसे पूरा न कर सके तो भी उसे वह काम पूरा करने का फल मिल जाता है। हे निष्पाप! मैं कौरवों और पांडवों में मेल कराने के लिये यथाशक्ति यत्न करके कृतकार्य न होऊंगा, तो भी अधर्मी मूढ़ पुरुष या आत्मीय लोग यह न कह सकेंगे कि कृष्ण ने समर्थ होकर भी कौरवों और पांडवों के क्लेश को शांत नहीं किया।

अगले दिन उस सभा का विशाल आयोजन था, जिस में श्री भगवान् ने संसार को सम्बोधित करना था। प्रातः ही दुर्योधन और शकुनि श्री

कृष्ण की सेवा में उपस्थित हुए और सभा में पधारने की प्रार्थना की। महात्मा वासुदेव ने मधुर वचनों से उनका अभिनन्दन किया। दारुक रथ को तैयार करके ले आया। महात्मा वासुदेव ने उस रथ को तैयार देख कर अग्नि और ब्राह्मणों की प्रदक्षिणा को। कौस्तुभ मणि पहनी, फिर वे उस रथ पर सवार हुए। महात्मा विदुर भी उस रथ में बैठे।

भगवान् का रथ सभा की ओर चला। चन्दन-जल के छिड़काव से सड़क की धूल बैठ गई था। शंख, नगाड़े आदि बजने लगे। सिंह के समान पराक्रमी, शत्रु-संहार में निपुण, वोर लोग श्री कृष्ण के रथ के चारों ओर चल रहे थे। हस्तिनापुर वासी बालक, बूढ़े, स्त्रियां सभी सड़क पर जाते हुए श्री कृष्ण को देखने के लिये आतुरता से दौड़ पड़े। श्री कृष्ण के आने की सूचना पाकर सारी सभा मानों हर्ष के मारे कांपने सी लगी। क्रमशः कृष्ण सभा के समीप पहुंच गये। रथ से उतर कर विदुर और सात्यकि के हाथ पकड़े हुए श्री कृष्ण आगे बढ़े।

नये मेघ-सदृश तेजस्वी श्री कृष्ण के तेज और सौन्दर्य के आगे सब का तेज फीका पड़ गया। श्री कृष्ण ने सभा मंडप में ज्योंही प्रवेश किया त्योंही भीष्म, द्रोण के साथ महाराज धृतराष्ट्र सिंहासन से उठ कर खड़े हुए। उनके खड़े होते ही सभा में बैठे राजा आसन छोड़ कर खड़े हो गये। धृतराष्ट्र की आज्ञा से सभा में श्रीकृष्ण के लिये सुवर्णमय, बहुत ही स्वच्छ आसन रखा गया। श्री कृष्ण ने भी मुसकरा कर धृतराष्ट्र, भीष्म, द्रोण और अन्य राजाओं की अभ्यर्थना की।

कृष्ण चन्द्र ने उन राजाओं के बीच खड़े हो कर, अन्तरिक्ष में स्थित नारद आदि महर्षियों को देख कर, भीष्म से कहा—हे पितामह! नारद आदि महर्षि इस सभा में समारोह को देखने के लिये देवलोक से आये हैं। इन को यथोचित आसन दीजिए और सत्कार कोजिये। उन लोगों के आसन ग्रहण किये विना कोई बैठ नहीं सकता। कुरु-वंश श्रेष्ठ भीष्म ने ऋषियों को सभा के द्वार पर उपस्थित देख कर शीघ्र आसन लाने के लिये सेवकों को आज्ञा दी। सेवक लोग उसी समय मणिकाञ्चन-शोभित श्रेष्ठ आसन ले आये। ऋषि लोग जब उन आसनों पर बैठ गये तब महात्मा वासुदेव और अन्य राजा अपने-अपने आसनों पर बैठे। दुःशासन ने सात्यकि को और विविंशति ने कृत वर्मा को आसन दिया। महात्मा विदुर जो कृष्ण के आसन से सट कर बैठे। जैसे अमृत पीने से तृप्ति नहीं होती, वैसे ही श्री कृष्ण को बारम्बार देख कर सभासदों को तृप्ति नहीं होती थी।

उस समय जब कि सभा में सन्नाटा छाया हुआ था तब महात्मा श्री कृष्ण वर्षाकाल के बादल के समान गम्भीर वाणी से सभा मण्डप को प्रति ध्वनित करते हुए धृतराष्ट्र की ओर देख कर कहने लगे।

कुरूणां पांडवानां च शमः स्यादिति भारत।
अप्रणाशेन वीराणामेतद्याचितुम् गतः॥
इदं ह्यद्य कुलं श्रेष्ठं सर्वराजसु पार्थिव।
श्रुतवृत्तोपसम्पन्नं सर्वैः समुदितं गुणैः॥
त्वं हि धारयिता श्रेष्ठ कुरूणां कुरुसत्तम।
मिथ्या प्रचरतां तात बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु च।
ते पुत्रास्तव कौरव्य दुर्योधनपुरोगमाः।
धर्मार्थौ पृष्ठतः कृत्वा प्रचरन्ति नृशंसवत्॥

हे भरतकुलदीपक! मैं इसी लिये आपके

पास आया हूं कि पाँडवों और कौरवों में परस्पर सन्धि हो जाये और वोर पुरुषों का विनाश न हो। आप को और कोई हितोपदेश करने की मुझे इच्छा नहीं, क्योंकि जानने योग्य सब बातें आप जानते ही हैं। हे राजेन्द्र! आप का घराना विद्या, सदाचार, वीरता आदि गुणों के कारण अन्य राज-घरानों से श्रेष्ठ समझा जाता है। दया, उदारता, सरलता, क्षमा और सत्य, ये बातें कुरुकुल में विशेष रूप से विद्यमान हैं। इसलिये इस घराने से, विशेष कर आप से, किसी तरह का अनुचित कार्य होना बहुत ही अनुचित है। आप कुरुकुल के प्रधान नेता और शासक वर्तमान हैं। आपके रहते आपसे छिपाकर और आपको जताकर भी कौरव लोग असत्य और कपट का व्यवहार कर रहे हैं। आपके पुत्र दुर्योधन आदि अत्यन्त अशिष्ट हैं। वे लोभ के वश हो कर प्राचोन मर्यादा को तोड़ते हैं—धर्म और अर्थ पर दृष्टि न रखकर पांडवों के साथ क्रूरता और बेईमानी का बर्ताव कर रहे हैं। उसी के कारण इस समय कुरुकुल के ऊपर विपत्ति के बादल मंडला रहे हैं। जो आप ऐसी अवस्था को न संभालोगे तो निश्चय है कि अन्त को युद्ध की अग्नि में पृथ्वी के असंख्य मनुष्यों का सर्वनाश हो जायेगा। हे राजेन्द्र! आप चाहें तो सहज में यह आपत्ति टल सकती है। इसलिए कदाचित् दोनों पक्षों को शान्त करना अत्यन्त दुष्कर नहीं है।

इस प्रकार व्याख्यान की भूमिका बांध भरी सभा में युद्ध का समूचा उत्तरदायित्व दुर्योधन पर ही डाल धृतराष्ट्र की ओर देखते हुए अपने भाषण को जारी रखते हुए श्रीकृष्ण बोले—

हे राजेन्द्र! कौरवों और पांडवों का मेल आपके और मेरे हाथ में है। आप अपने पुत्रों को समझाकर या डांटकर शान्त कीजिये और मैं आप के वर्तमान शत्रु पांडवों को रोकूंगा। हे राजेन्द्र! आपकी आज्ञा मानना आपके पुत्रों का आवश्यक कर्तव्य है। आपको आज्ञा पर चलने से उनका परम कल्याण होगा। शान्ति स्थापित करने से कौरव और पांडव दोनों का ही कल्याण होगा। इसलिए शान्ति स्थापित करने का यत्न कीजिए, व्यर्थ का वैर छोड़ दीजिए। कौरव आप के सहायक हैं ही, इस समय पांडवों के द्वारा सब ओर से सुरक्षित होकर धर्मार्थ के चिन्तन में शेष जीवन के दिन व्यतीत कीजिए। हे नरराज! विशेष यत्न और उद्योग करके भी आप पांडवों को हरा नहीं सकेंगे, किन्तु पांडव जो आपके रक्षक हो जायेंगे तो देवगण सहित इन्द्र भी आपका सामना न कर सकेंगे। राजाओं को तो कुछ बात ही नही। देखिए, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, कर्ण, विविंशति अश्वत्थामा, विकर्ण, सोमदत्त, वाह्लीक, जयद्रथ, कलिंगराज, कम्बोजराज, सुदक्षिण, युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव, सात्यकि, महारथी युयुत्सु आदि वोर यदि मिलकर एक हो जायं तो फिर संसार में कौन इन से युद्ध करने की शक्ति कर सकता है? हे शत्रुनाशन! कौरवों और पांडवों का मेल हो जाने पर आप सहज ही सब शत्रुओं को जीत सकते हैं और त्रिभुवन का साम्राज्य भी प्राप्त कर सकते हैं।

इस प्रकार सुख-शान्ति की अवस्था में कौरव कुल की समृद्धि की यशोगाथा गाकर श्रीकृष्ण सभा की ओर देखकर परन्तु सम्बोधित धृतराष्ट्र को ही करते हुए अपने भाषण को जारी रखते हुए बोले—

संयुगे वै महाराज दृश्यते समहान्क्षयः।

क्षये चोभयतो राजन् कं धर्ममनुपश्यसि ।।
पाण्डवैर्निहतैः संख्ये पुत्रै र्वाऽपि महाबलैः ।
यद्विन्देथाः सुखं राजन्स्तद् ब्रूहि भरतर्षभ ।।

युद्ध की भयंकरता का दिग्दर्शन कराते हुए, पाण्डवों के यश को बढ़ाते हुए श्री कृष्ण बोले,—

त्राहि राजन्निमं लोकं न नश्येयुरिमाः प्रजाः ।
त्वयि प्रकृतिमापन्ने शेषः स्यात्कुरुनन्दन ।।
शुक्ला वदान्याह्रीमन्ता आर्याःपुण्याभिजातयः ।
अन्योन्यसचिवा राजंस्तान्पाहि महतोभयात् ।।
शिवेनेमे भूमिपालाः समागम्य परस्परम् ।
सह भुक्त्वा च पीत्वा च प्रतियान्तु यथागृहम् ।।
बाला विहीनाः पित्रा ते त्वयैव परिवर्धिताः ।
तान्पालय यथान्यायं पुत्रांश्च भरतर्षभ ।।

हे राजेन्द्र ! संग्राम का फल केवल महाक्षय है। देखिए, कौरव या पांडव दोनों में से यदि कोई पक्ष नष्ट हुआ तो आपकी ही हानि होगी। शोक भी होगा। समर में पाण्डवों या कौरवों का विनाश होने से क्या आपकी प्रशंसा होगी? पाण्डव मरें या कौरव मरें तो आपको क्या सुख मिलेगा? पाँचों पांडव शूर, युद्धनिपुण और आपके सगे हैं। इसलिए आप इस होने वाले अनर्थ से दोनों पक्षों की रक्षा कीजिए। ऐसा उपाय कीजिए जिस में शूर और रथी पांडव और कौरव एक दूसरे के हाथ से मरते न देख पड़ें। हे राजेन्द्र ! पृथ्वी के सब राजा क्रोध-वश होकर एकत्र हुए हैं। उनके क्रोध से बड़ो भारी मनुष्यहत्या लोकक्षय होगा। इस लिए आप प्रजा की रक्षा कीजिए उसका विनाश न होने पावे। आप प्रकृतिस्थ हों, अर्थात् सत्वगुण की वृत्ति स्वीकार करें तो यह भाई-भाई का विरोध बहुत शीघ्र मिट सकता है। विशुद्ध वंश में उत्पन्न, उदार, यशस्वी, लज्जाशील कौरव-पांडवों को परस्पर मित्र बनाकर आप इस महाभय से बचाइए। आये हुए राजा लोग क्रोध और वैर-भाव छोड़कर, आपस में मिल कर, कीमती वस्त्र और माला आदि पहनें एक साथ भोजन करें और प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर को लौट जायं। पहले पाण्डवों के साथ आपका जैसा सदभाव था वैसा ही फिर हो जाय। हे भरत श्रेष्ठ ! आप शान्ति स्थापित करने के लिए यत्न कीजिये। पाण्डवों के पिता बाल्यावस्था में ही मर गये थे, तभी से वे पुत्र की तरह आपके यहां पले हैं। इस लिए आप उन्हें और अपने पुत्रों को एक-सा समझकर दोनों की रक्षा कीजिए। सब समय, विशेष कर विपत्ति के समय, आपको पाण्डवों की रक्षा करना चाहिए। इस कारण कर्त्तव्य-विरुद्ध कार्य करके धर्म और अर्थ की हानि करना आप लोगों के लिए सर्वथा अयोग्य है।

हे महाराज ! पाण्डवों ने आपको प्रणाम करके कहा कि 'हम ने आपको पिता मानकर आपकी आज्ञा से बारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करके बहुत भारी क्लेश सहे हैं। हम अपनी प्रतिज्ञा पूरी कर चुके, यह बात बनवासी ब्राह्मण जानते हैं। इस समय ऐसा उपाय कीजिये जिस से हमें अपने भाग का राज्य मिल जाय। आप धर्म और अर्थ तत्व को अच्छी तरह से जानते हैं। हमने आपको गुरु-तुल्य समझ कर सब क्लेश सहे हैं। इस लिए इस समय पिता-माता की तरह हमें विपत्ति से उबारना आपका परम कर्त्तव्य है। महाराज ! गुरु से शिष्य को जैसा व्यवहार करना चाहिए, वैसा ही व्यवहार हम आपके साथ करते हैं।

आप भी हमारे साथ ऐसा व्यवहार कीजिए जैसा गुरु को करना चाहिए। हम जो कुराह पर चलें तो हमें सुमार्ग पर चलाना आपका काम है। आप धर्म-कर्म पर दृढ़ होकर हमें उसी राह पर लगाईए।

तत्पश्चात् उपस्थित जनता को भी उसका कर्त्तव्य जताते हुए श्री कृष्ण बोले—

आहुश्चेमां परिषदं पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
धर्मज्ञेषु सभासत्सु नेह युक्तमसाम्प्रतम ॥
यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्राऽनृतेन च ।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदाः ॥
विद्धो धर्मो ह्यधर्मेण सभा यत्र प्रपद्यते ।
ये धर्ममनपाल्यन्तस्तूष्णीं ध्यायन्त आसते ।
ते सत्यमाहुर्धर्म्यं च न्याय्यं च भरतर्षभ ॥

पाण्डवों ने आपके सभासदों से भी कहा है कि 'आप लोगों के ऐसे सभासदों के रहते सभा में अन्याय होना उचित नहीं। यदि सभासदों के आगे अधर्म से धर्म का और असत्य से सत्य का विनाश हो तो वे भी नष्ट हो जाते हैं। जिस सभा में अधर्म के हाथों हत्या होती है और वहां के सभासद अधर्म से धर्म की रक्षा नहीं करते तो उस समय धर्म की हत्या से वे भी मारे जाते हैं। नदी जैसे किनारों पर के वृक्षों को उखाड़ डालती है वैसे ही धर्म ऐसे सभासद को नष्ट कर देता है। जो सभासद धर्म पर दृष्टि रखकर सोच-विचार करते हैं अर्थात् अधर्म का अनुमोदन नहीं करते वे ही सत्य धर्मसंगत और न्यायपूर्ण वचन कहते हैं हे महाराज मैं आपसे इसके सिवा और कुछ नहीं कह सकता कि आप पांडवों को राज्य दे कर उन से सन्धि कर लीजिए, अथवा इस बारे में जो वक्तव्य हो सो यहां के सभासद कहें। हे राजेन्द्र! यदि आपको मेरी ये बातें धर्मार्थ संगत सत्य समझ पड़ें तो इन राजाओं को और अपने पुत्रों को मृत्युपाश से छुड़ाईए। हे भरतश्रेष्ठ! अब आप क्रोध-ईर्षा त्याग कर शांत भाव धारण कीजिए। पांडवों को उनके पिता का भाग देकर पुत्रों के साथ सुख से रहिए।

अन्त में अपने वचन को उपसंहार की ओर ले जाते हुए श्री कृष्ण बोले—

शक्यं किमन्यद्वक्तुं ते दानादन्यज्जनेश्वर ।
ब्रुवन्तु ते महीपालाः सभायां ये सभासते ॥
ततः सपुत्रः सिद्धार्थो भुंक्ष्व भोगान्परंतप ।
अजातशत्रुं जानीषे स्थितं धर्मे सतां सदा ।
सपुत्रे त्वयि वृत्तिं च वर्तते या नराधिप ।
दाहितश्च निरस्तश्च त्वामेवोपाश्रितः पुनः ।
क्षत्रधर्मादमेयात्मा नाऽकम्पत युधिष्ठिरः ।
अहं तु तव तेषां च श्रेय इच्छामि भारत ॥
धर्मादर्थात्सुखाच्चैवव मा राजन्नीनशः प्रजाः ।
अनर्थमर्थं मन्वानोऽप्यर्थं चाऽनर्थमात्मनः ॥
स्थिताशुश्रूषितुं पार्थाः स्थितायोद्धु मरिन्दमाः ।
यत्ते पथ्यतमं राजस्तस्मिंस्तिष्ठ परन्तप ॥

महात्मा युधिष्ठिर धर्म मार्ग से कभी डिगने वाले नहीं। आप अच्छी तरह से जानते हैं कि महाराज युधिष्ठिर आप से और आपके पुत्रों से कैसा व्यवहार रखते हैं। यद्यपि आपने उनको जलाना चाहा, देश से निकाल दिया, तो भी वे आपकी शरण में आये हैं। आपने पहले, पुत्रों की सम्मति से युधिष्ठिर को हस्तिनापुर से इन्द्रप्रस्थ में रहने को बाध्य किया था। उसके अनुसार वे वहां रहे थे और अपने बाहुबल से राजाओं को जीत कर उन्होंने आपके आधीन कर दिया था। इसके विरुद्ध उन्होंने कभी कुछ काम नहीं किया। किन्तु बीच में सुबल पुत्र शकुनि ने, आपकी सम्मति से, कपट-द्यूत में उनका राज्य और धन-

सम्पत्ति अन्यायपूर्वक हर लो । उस अवस्था में द्रौपदी का घोर अपमान देख कर भी पाण्डव लोग क्षत्रिय-धर्म से विचलित नहीं हुए। हे भारत ! मैं आपके और पाण्डवों के कल्याण के लिए ही यह सब बातें कह रहा हूं । हे राजेन्द्र ! आप युद्ध ठान कर अपनी प्रजा के धर्म अर्थ और सुख को नष्ट न कीजिएगा । हे महाराज ! आपके लोभी पुत्र अनर्थ को अर्थ और अर्थ को अनर्थ समझ रहे हैं । इस लिए आप उनको शासन में लाइए। पाण्डव लोग सन्धि और युद्ध दोनों के लिए तैयार हैं, अब आपको जो रुचे सो कीजिए।

उस समय दुर्योधन, दुःशासन, शकुनि और कर्ण ने आपस में सम्मति करके यह निश्चय किया कि कृष्ण को उसी स्थान पर कैद कर लिया जाए। कृष्ण के पकड़े जाने की सूचना पाकर पाण्डव लोग, जिसके दांत तोड़ दिए गये हैं उस सर्प की तरह, बिल्कुल उत्साहहीन और किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जावेंगे ।—परन्तु महा बुद्धिमान् और इशारे से ही सारी बात जानने में प्रवीण सात्यकि ने उन लोगों का यह दुष्ट विचार जान लिया। वे तत्काल सभा भवन के बाहर निकल गए और कृतवर्म्मा से सम्मति कर के कहने लगे कि मैं महाबाहु श्री कृष्ण को यह सूचना देने जाता हूं, तब तक कवच पहन कर यादव सेना को युद्ध के लिए सुसज्जित कर के व्यूह रचना के साथ शीघ्र सभा भवन के द्वार पर आ जाओ।

सात्यकि के द्वारा सारी रहस्यमयीलीला को जान कर श्री कृष्ण बोले—

एकोऽहमिति यन्मोहान्मन्यसे मां सुयोधनः ।
परिभूय सुदुर्बुद्धे ग्रहीतुं मां चिकीर्षसि ॥

दुर्योधन ! तुम बड़े मूर्ख हो, इसी कारण मुझे अकेले समझ कर हराना या पकड़ना चाहते हो। तुम सत्य समझो, मैं अकेला नहीं हूं । सब पांडव, अन्धक और वृष्णि- वंश के यादव, आदित्य, रुद्र, वसु, देवता और ऋषि इसी स्थान पर मेरे समीप हैं । इस के पश्चात् शत्रु सेना पर संहार करने वाले वासुदेव ऊंचे स्वर से हंसे। उस समय उनके शरीर से तेज के समूह निकलने लगे। सभा मंडप दुर्योधन के प्रति धिक्-धिक् (shame shame) की आवाज से गूंज उठा।

उस समय सभा को सम्बोधित करते हुए श्री कृष्ण बोले, संसार के सभ्य पुरुषो ! आप साक्षी हैं। देवलोक से पधारे हुए यह ऋषि-गण साक्षी हैं, कौरव-कुल के वयोवृद्ध विद्यावृद्ध गुरुजन साक्षी हैं, मैं ने तो शान्ति-स्थापना के लिए वह कुछ किया जो कुछ मैं कर सकता था। शान्ति इसलिए नहीं हो सकी, क्योंकि दुर्योधन शान्ति नहीं चाहता । अब युद्ध होगा, शान्ति के द्वारा शान्ति की स्थापना न हो सकी तो अब शान्ति के लिए क्रान्ति की देवी का आवाहन होगा। और भयंकर युद्ध होगा और इस युद्ध में निश्चयही पांडवों की विजय होगी।

युद्ध का निश्चय हो गया । युद्धहोना ही था, क्योंकि दुर्योधन युद्ध चाहता था। जब एक दल यद्ध का ही पाठ पढ़ रहा हो तो दूसरे दल द्वारा शान्ति पाठ सर्वथा निरर्थक ही है। परन्तु हस्तिनापुर में श्री कृष्ण एक और विजय प्राप्त करना चाहते थे। दुर्योधन की शक्ति के रहस्य को वे भली भान्ति जानते थे । श्री कृष्ण इस बात को अच्छी तरह से जानते थे कि दुर्योधन की वास्तविक शक्ति है कर्ण । केवल "कर्ण" ही की शक्ति के बल पर दुर्योधन युद्ध के जयघोष लगा रहा था । भीष्म एवं द्रोणाचार्य यद्यपि दुर्योधन के साथ थे, परन्तु केवल उनके शरीर

ही दुर्योधन के पक्ष में थे, उन का हृदय तो पांडवों के हो साथ था। हृदय लड़ता है, मनुष्य नहीं लड़ता। मानव शरीर में एक हृदय नामी वस्तु है, उसके भीतर भावना रूपी एक पदार्थ है, यह भावना हो मनुष्य द्वारा सब कुछ करवाती है। पितामह तथा आचार्य की सभी सद्भावनायें पांडवों के पक्ष में थीं। शारीरिक रूप से दुर्योधन के पक्ष में हो कर भी वे उसके लिए न होने के बराबर थे। विपरीत इसके इन दोनों कुलपतियों का दुर्योधन के पक्ष में रहना पाण्डवों के लिए अत्यन्त लाभकारी था। दुर्योधन इन दोनों कुलपतियों की अवहेलना तो कर नहीं सकता था और इनके जीते जो वह कर्ण को आगे ला नहीं सकता था।—पाण्डवों को सब से बड़ा लाभ यह था कि पितामह तथा आचार्य के रहते कर्ण दुर्योधन के लिए सर्वथा "बेकार" था। न ही आचार्य कर्ण को उभरने देते थे और न ही पितामह। विपरीत इसके यह दोनों महानुभाव कर्ण को निरुत्साहित तथा अपमानित करने का एक भी अवसर हाथ से नहीं जाने देते थे।

कौरवों की ओर से एक ही सूरमा था, दिल से लड़ने वाला,—कर्ण। कर्ण का हृदय पांडवों के पक्ष में जीतने के लिए श्री कृष्ण ने एक युक्ति सोची। कर्ण कुन्ती का पुत्र नहीं था, परन्तु कण का हृदय जीतने के लिए श्री कृष्ण ने उसके हृदय में यह विचार जागृत कर दिया, —"कर्ण! तू कुन्ती का पुत्र है"।

कर्ण को कुन्ती का पुत्र बनाने का कार्यक्रम सभा भवन में आने से पूर्व ही श्री कृष्ण ने निश्चित कर लिया था, और कुन्ती को भलोभान्ति सिखा पढ़ा दिया था कि कर्ण के हृदय में कुन्ती-पुत्र होने का विचार जागृत करने के लिए कुन्ती को क्या कुछ करना है। कर्ण के प्रति कुन्ती के हृदय में जो भय था उसे व्यक्त करते हुए कुन्ती ने कहा—कृष्ण! यह सत्य है कि निर्धन जीविकाहीन पुरुष का मरना ही श्रेष्ठ है। किन्तु असंख्य जाति-भाइयों की हत्या करके यश प्राप्त करना भी सराहनीय नहीं है। इन दोनों संकटों की चिन्ता से मेरा मन दुःख के समुद्र में गोते खा रहा है। इधर महायोद्धा भीष्म द्रोण और कर्ण को दुर्योधन के पक्ष में देख कर मुझे बड़ा भय लगता है। किन्तु यह निश्चित है कि आचार्यद्रोण शिष्यों पर कृपा करते हैं, वे अपने शिष्यों से जी लगा कर युद्ध नहीं करेंगे। पितामह भीष्म पाण्डवों को स्नेह की दृष्टि से देखते हैं, वे भी पांडवों का बुरा नहीं कर सकते। एक कर्ण ही ऐसा है जो दुर्बुद्धि दुर्योधन के मोह में पड़ कर सदा पाँडवों से कुढ़ता सा रहता है। वह पांडवों के अनिष्ट की चिन्ता किया ही करता है। कर्ण बलवान और वीर है। सब से बड़ा खटका उसी से है।

... ...

ततो विसर्जयामास भीष्मादीन्कुरुपुंगवान्।
आरोप्याथ रथे कर्णं प्रायात्सात्यकिना सह॥

जब श्री कृष्ण माता कुन्ती से बिदा हो पांडवों की ओर चले उन्होंने कर्ण को भी अपने साथ बिठा लिया। उस समय श्री कृष्ण कर्ण से बोले, कर्ण! युद्ध का निश्चय हो गया। तम्हारी स्थिति क्या होगी, मुझे इस बात की बड़ी चिन्ता है। कर्ण! तुम कितने शूरवीर हो, परन्तु कौरव दल में तुम्हारी स्थिति कुछ भी नहीं। जिस दुर्योधन के तुम इतने गीत गाते हो, उस दुर्योधन ने तुम्हारे लिए किया क्या। अंगराज! कर्ण—क्या कभी अंग देश में पधार कर वहाँ राज्य किया भी! यदि तुम पांडवों के पक्ष में होते, हम तुम्हें पाण्डव सेना का प्रथम सेनापति बनाते,

दुर्योधन ने तुम्हें क्या बनाया । कर्ण! हमारे पास यह समाचार पहुंच चुका है, -कौरव दल के प्रथम सेना पति होंगे भीष्म, दूसरे सेनापति होंगे शल्य और तुम्हारा नाम तो कहीं जाकर शल्य के पश्चात् आयेगा । तुम्हारे सेना पति बनने की बारी ही कहाँ आने पावेगी। क्या तुम्हारी वीरता का दुर्योधन ने यही सन्मान किया।

कर्ण बोला, कृष्ण ! तुम्हारा कहना बिल्कुल सत्य है। मैं ने दुर्योधन को अनेक बार कहा,—प्रथम सेनापति मुझे बनाओ···

"तो क्या बनाया तुम्हें सेनापति ?"

"नहीं"

"क्यों नहीं—जानते हो इस का कारण ?"

कर्ण चुप था। बात आगे बढ़ाते हुए श्री कृष्ण बोले—कर्ण ! कारण है भीष्म पितामह, उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया है मेरे जीते जी यदि कर्ण को सेनापति बनाया गया तो मैं युद्ध भूमि में जाने से ही इन्कार कर दूंगा । सभी राजाओं ने भी ऐसा ही अल्टीमेटम दे दिया है —"हम भीम की छत्रछाया में लड़ सकते हैं, अज्ञातकुलशील कर्ण के अधीन लड़ने को हम तैयार नहीं"—

"तुम्हें हृदय से चाहते हुए भी दुर्योधन यदि तुम्हारे सम्बन्ध में कुछ भी कर सकने में अपने को असमर्थ पा रहा है, इस का मुख्य कारण है भीष्म पितामह।'

कर्ण बोला, कृष्ण ! मैं इस रहस्य को खूब अच्छी प्रकार जानता हूं। भीष्म मेरा सर्वत्र विरोध करते हैं।

श्रीकृष्ण बोले,—"कर्ण ! युद्ध में वीरता दिखाएगा तू, परन्तु सफलता का मुकुट पहनाया जाएगा पितामह के सिर पर। सिपाही भले ही कितना ही वीरता दिखाए, कर्ण ! नाम सरदार का ही होता है। १७० वर्ष के वृद्ध भीष्म लड़ेंगे ही क्या ?दुर्योधन की सभी आशा तो तुम्हीं हो। तथापि तुम्हारी वीरता का लाभ भीष्म पितामह को अवश्य मिल जावेगा।"

कर्ण बोला,—कृष्ण ! और अपनी इस प्रतिज्ञा की सूचना दुर्योधन को भी दे चुका हूं ।

'भीष्म जब तक रणभूमि में रहेंगे तब तक मैं रणभूमि में नहीं जाऊंगा।

कर्ण की इस घोषणा ने श्रीकृष्ण की एक और मनोकामना पूरी कर दी। पांडवों के पक्ष में कर्ण का आना यद्यपि असम्भव था तथापि श्रीकृष्ण ने कर्ण की शक्ति को दुर्योधन के लिये भी सर्वथा बेकार बना दिया।

परन्तु श्रीकृष्ण एक विजय और प्राप्त करना चाहते थे। वे कर्ण के हृदय को जीतना चाहते थे। भीष्म के पश्चात् जब कर्ण मैदान में आये तब भी वह कुछ न कर सके। उस समय बात को आगे चलाते हुए श्रीकृष्ण बोले,—कर्ण ! रोग की जड़ जानते हो क्या है। तुम्हारी उन्नति में जानते हो कौन सी चीज बाधक है।—कहते हैं तुम्हारे माता पिता का पता नहीं। कर्ण ! तुम में सभी मानवोचित गुण हैं, तुमने बहुत से वेदपारगी ब्राह्मणों की सेवा की है, असूया छोड़ कर निष्ठा और श्रद्धा के साथ अनेक तत्व उनसे समझे हैं। तुम सनातन वेद का ठीक-ठीक मर्म समझ चुके हो। तुम ज्ञानी हो, दानी हो, मानी हो, तुम्हारे शरीर में उच्च कुल का रक्त प्रवाहित करता है।

कर्ण ! तुम राधा के पुत्र नहीं हो, कुन्ती के पुत्र हो, धर्म के अनुसार महाराज पाण्डु ही तुम्हारे पिता हैं। इस लिये चलो, राज्य के स्वामी तुम्हीं होगे। पाण्डव तुम्हारे पिता के

कुल और यादव तुम्हारी माता के कुल के हैं। ये दोनों वंश राज्य प्राप्त करने में तुम्हारी सहायता करेंगे। आओ, मेरे साथ चलो। पाण्डव भी तुम्हें कुन्ती का पुत्र और युधिष्ठिर का बड़ा भाई जानें। आये हुए राजा लोग, अन्धक और वृष्णि वंश के सब यादव तुम्हारे चरणों में प्रणाम करेंगे। हम सब आप के अनुगामी होंगे। हे कुन्ती पुत्र ! तुम नक्षत्रों से शोभित चन्द्रमा की तरह पाण्डवों के बीच रह कर राजकार्य करते हुए कुन्ती का आनन्द बढ़ाओ। तुम में और पाण्डवों में आज भ्रातृभाव स्थापित हो।

कर्ण बोला, कृष्ण ! मैं यह सब जानता हूं। परन्तु धृतराष्ट्र के कुल में दुर्योधन के आश्रित रहकर मैंने तेरह वर्ष तक अकण्टक राज्य भोग किया है। दुर्योधन मेरे ही आश्रय पर पाण्डवों से भिड़ने की तैयारी कर चुके हैं। मेरे ही आश्रय पर उन्होंने पांडवों से विरोध-करने की हिम्मत की है। द्वन्द्वयुद्ध में मैं ही अर्जुन से भिड़ने को चुना गया हूं। इसलिये इस समय बल, बन्धन, भय या लोभ के वश होकर मैं दुर्योधन को धोका न दे सकूंगा।

भारत को महाभारत बनाने के लिये श्री कृष्ण ने महाभारत की रचना रची। इतना बड़ा संग्राम,—कृष्ण ने केवल १८ दिन में समाप्त कर दिया और समेट भी लिया। महाभारत में दुर्योधन पक्षी योधा था—कर्ण और कर्ण को कृष्ण ने इतना बेकार कर दिया था कि कर्ण कुछ कर ही नहीं सका। सर्वप्रथम तो कृष्ण ने कर्ण के अन्तः करण में यह भावना जागृत की,—कि वह कुन्ती का पुत्र है अतः वह पांडवों का सहोदर भ्राता है। दूसरे कृष्ण ने कर्ण से प्रतिज्ञा करवा ली,—वह भीष्म के रहते युद्ध क्षेत्र में नहीं उतरेगा। तीसरे उन्होंने कर्ण को कुण्डल विहीन कर दिया। विप्र वेष धारी कृष्ण ने कर्ण से कुण्डल भीख में मांग लिये। चौथ शल्य को कर्ण का रथवान् बनाकर शल्य ही के द्वारा कर्ण को गतिहीन कर दिया।—महाराज शल्य आ रहे थे युद्ध में शामिल होने—दुर्योधन को वरदान दे बैठे भ्रम से यह समझ कर कि जो कुछ भी हो रहा है युधिष्ठिर की ओर से हो रहा है, परन्तु वास्तव में हो रहा था वह दुर्योधन की ओर से। तब जाकर श्री कृष्ण महाराज शल्य से मिले और उन्हें इस बात के लिये राजी कर लिया कि वे रहें भले ही दुर्योधन के पक्ष में, परन्तु वे निरन्तर कर्ण को निरुत्साहित करते रहें। कर्ण के सारथी के रूप में कर्ण का पथ-प्रदर्शन इस प्रकार करें जिस से पांडवों का हित हो।

भीष्म ने प्रतिज्ञा की थी, मैं शिखण्डी से नहीं लड़ूंगा। कृष्ण ने शिखण्डी को सामने ला कर खड़ा कर दिया।—कृष्ण ने द्रौपदी को सिखा-पढ़ा कर भीष्म से वर मांगने भेजा। उस दिन कृष्ण को पता चला आज दुर्योधन की पत्नी लक्ष्मणा अपने अखण्ड सौभाग्य का वरदान मांगने पितामह के दर्शनों के लिये आ रही है।—कृष्ण ने ठीक उस समय से पूर्व द्रौपदी को पितामह के समीप भेज दिया।

"प्रणाम"

"अखण्ड सौभाग्यवती भव"

"परन्तु मेरे सौभाग्य को खण्ड-खण्ड करने के लिये ही पितामह सेनापति बने हैं।"

पितामह चौंके—"तुम कौन ? द्रौपदी ! तुम्हें यहां किस ने भेजा। बड़ा नट-खट है कृष्ण। परन्तु मेरा वचन वृथा नहीं जायगा। द्रौपदी ! तुम्हारा सौभाग्य मेरे हाथों खण्ड-खण्ड कभी न होगा।"

महाभारत युद्ध में शतप्रतिशत माया कृष्ण

की ही थी। खाटु नरेश बरबरीक आ रहे थे युद्ध देखने।—उनका ऐसा सिद्धान्त था—जो पक्ष हारता हुआ प्रतीत होगा उसी का पक्ष लेंगे। कृष्ण जानते थे, वह तीर मारता,—वृक्ष के सभी पत्तों में छेद कर देता। ऐसा वीर यदि दुर्योधन के पक्ष में गया तो प्रलय मचा देगा। कृष्ण ने बरबरीक का सिर मांग लिया।

"केवल सिर ही नहीं, समूचा शरीर ही आप का है—परन्तु मेरी इच्छा थी युद्ध देखने की"

"युद्ध अब भी देख सकोगे। तुम्हारे सिर को यह शक्ति प्रदान करता हूं, यह सब कुछ देख सके। तुम्हारा यश अजर-अमर होगा। मेरे ही "श्याम" रूप में विश्व में तुम्हारे सर की पूजा होगा।"

युद्ध हुआ—अब चली होड़—जीत किस की शक्ति से हुई। सभी लोग बढ़-चढ़ कर बातें बना रहे थे। अन्ततोगत्वा फैसला यह हुआ कि बरबरीक से पूछा जाय।—बरबरीक बोला—"मैंने न तो भीम की गदा हो कहीं देखो। न अर्जुन का गांडीव। मैंने तो जहां भी देखा, जिधर भी देखा, कृष्ण का सुदर्शन चक्रही अपना चमत्कार दिखाता देखा।"

युद्ध प्रारम्भ हुआ। कौरव दल में सेनापति थे भीष्म। इधर पांडव दल का सेनापति कौन हो। कृष्ण जानते थे अर्जुन हथियार डाल देगा। आज भले ही वह कितनी लम्बी चौडी बातें बनाता हो, परन्तु भीष्म-द्रोण को अपने सामने देखते ही वह आगे बढ़ने से इन्कार कर देगा। इस लिये कृष्ण ने अर्जुन को सेनापति नहीं बनाया। वे इस बात के लिये तैयार नहीं थे कि अर्जुन सेनापति की हैसीयत में हथियार डाले। यदि ऐसा हो जाता ती पांडव सेना का morale गिर जाता। दुर्योधन को संसार में इस बात का प्रौपेगंडा करने का मौका मिल जाता—"अभी पूर्वी-मोरचे से खबर आई है, शत्रु दल के प्रधान सेनापति ने हथियार डाल दिये।

युद्ध का निश्चय हो गया परन्तु धृतराष्ट्र अपनी साज़िशों से बाज़ नहीं आया। उसने संजय को भेजा। योजना यह थी कि धर्मराज को एकान्त में मिल कर युद्ध से रोका जाय। इससे पहले यह देख लिया जाय कि कृष्ण तो वहां नहीं है। संजय धर्मराज को मिला, बोला,—महाराज! आप तो बहुत समझदार हैं, फिर आप इस प्रकार मूर्खता की बातें किस लिए कर रहे हैं। आप सत्तर वर्ष को पार कर चुके हैं। यह आयु बनों में जाकर प्रभु का नाम लेने की है, न कि युद्ध में बेगुनाहों का बहता हुआ खून देखने की। दुर्योधन तो मूर्ख है, दुःशासन का दिमाग खराब हो गया है। कर्ण की अपनी कोई इच्छा नहीं, वह दुर्योधन के इशारे पर नाच रहा है। परन्तु आप तो एक आदर्श महापुरुष हैं, संसार के कोने-कोने में आपका यश गाया जा रहा है। जवानो तो जंगलों में दर-दर भटकने में गुजार दी, अब आखिरी उमर में राजा बनने का शौक सिर पर सवार हुआ है। संसार तो मोह-माया जाल है, यह शरीर क्षण भङ्गर है। माया नटनो की तरह सबको नाच नचा रही है। मेरा तो आपको यही परामर्श है आप अपना परलोक सुधारिये।

न जाने संजय अभी और क्या कुछ कहता, एकाएक भगवान् कृष्ण उपस्थित हो गये। संजय घबड़ा गया। कृष्ण बोले,—संजय महाराज! अब चुप काहे को हो गये। यह संसार क्या केवल पाण्डवों के लिये ही झूठा है? यह दुनियां केवल क्या युधिष्ठिर के लिये ही मोह-माया जाल है।

धृतराष्ट्र सौ वर्ष को पार कर चुका है, आप ये उपदेश उसे जाकर क्यों नहीं देते ?

संजय ने समझ लिया अब यहां दाल नहीं गल सकती।

पाण्डवों की ओर से सेनापति था धृष्टद्युम्न। सेनापति के चुनाव में श्रीकृष्ण ने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम लिया। धृष्टद्युम्न ने दो बदले लेने थे,– अपनी बहन के अपमान का बदला भीष्म से। कुलपति होते हुए भी उन्होंने अपने पोतों को रोका क्यों नहीं। राज्य नायक होते हुए भी पत्थर की मूर्ति के समान यह तमाशा क्यों देखते रहे। द्रोणाचार्य से बदला लेना था अपने पिता के अपमान का।

कुरुक्षेत्र के मैदान में दोनों सेनायें आमने-सामने आ गईं। लगभग नब्बे लाख प्राणी उस मैदान में एकत्रित थे। नब्बे मील लम्बा और पैंसठ मील चौड़ा, नरेला से लेकर शाहबाद मार्कण्डा तक गुरुग्रामा से लेकर करनाल तक इतना लम्बा-चौड़ा क्षेत्र कुरुक्षेत्र कहाता है। पुराणकारों ने इस क्षेत्र की बहुत महिमा गाई है। शास्त्र कहता है,—सृष्टि का प्रथम प्रकाश इसी धरती पर हुआ। पाण्डव थे अम्बाला की ओर और कौरव थे दिल्ली की ओर। दोनों सेनाओं के बीच में बीस मील का मैदान आगे बढ़ने के लिये खाली था। दोनों सेनाओं के प्रतिनिधियों ने युद्धस्थल का भली भांति निरीक्षण कर लिया था। पंजाब, काश्मीर, सिन्ध, सीमा प्रदेश, बलोचिस्थान, ईरान, अफगानिस्तान, उड़ीसा, लंका, मथुरा, आसाम, अंग, वंग, उत्तर बिहार ये सब कौरवों के पक्ष में थे। राजस्थान, काशी, कानपुर, झांसी, देहरादून, विदर्भ, बुन्देलखण्ड, रेवा, केरल, चोल, पूर्वी-उत्तर प्रदेश पांडवों के पक्ष में था। यद्यपि भगवान कृष्ण स्वयं इलेक्शन एजेंट बन कर देश के घर-घर में पहुंचे। इलेक्शन होने वाला है। एक ओर हैं दुर्योधन, दूसरी ओर हैं अर्जुन। यह लड़ाई व्यक्तियों की लड़ाई नहीं, आदर्शों की लड़ाई है। देश-भक्तों और देश-द्रोहियों की लड़ाई है। अर्जुन की जीत का अर्थ है देशभक्तों की जीत दुर्योधन की जीत का अर्थ है विदेशियों का हमारे देश पर आधिपत्य। परन्तु इतना जोर लगा देने पर भी अर्जुन दुर्योधनसे ज्यादा वोटें प्राप्त न कर सका। इलेक्शन में वह हार चुका था, परन्तु कृष्ण अर्जुन की हार को कभी सहन नहीं कर सकते थे, इसलिए तो युद्ध के बीच में भी कृष्ण को स्वयं अपने हाथों में अस्त्र उठा कर युद्ध करना पड़ा। यद्यपि वे इस बात की घोषणा कर चुके थे कि मैं स्वयं अस्त्र न उठाऊंगा।

महाभारत का युद्ध केवल कृष्ण की ही लीलाओं का चमत्कार है। एक बार धर्मराज और अर्जुन के बीच में मनमुटाव पैदा हो गया। धर्मराज बोले,– अर्जुन ! फेंक दे अपने गाण्डीव को। तुम्हारे होते हुए हम गिरफ्तार होने से बचे। अर्जुन बोला,—जो मेरे गाण्डीव का अपमान करेगा मैं उसकी गर्दन उड़ा दूंगा। एक अद्भुत प्रकार का गृहयुद्ध शुरू हो गया। कृष्ण ने परिस्थिति को खूब अच्छी तरह सम्भाला। कृष्ण बोले,—अर्जुन ! छोटा भाई अगर बड़े भाई को तू कह देता है तो छोटे के सामने बड़े की स्वयंमेव मृत्यु हो जाती है। तू धर्मराज को तू कह के सम्बोधित कर ले। अर्जुन बोला,—सारी मुसीबतों की जड़ तू है, जुआ खेलने का शौक तूने पूरा किया और दर-दर धक्के हमको खाने पड़े। अब अर्जुन बोला,– मैं ने पाप किया बड़े भाई का अपमान किया, अब मैं आत्महत्या करूंगा। कृष्ण बोले,– अर्जुन ! तू अपनी प्रशंसा अपने मुंह से कर ले, अपने लिये तू मर गया जो होना था वही हुआ, भीष्म पितामह को अपने सामने देख अर्जुन ने युद्ध से इन्कार कर दिया। उस समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो उपदेश दिया उसे गीता का ज्ञान कहते हैं। आज संसार में सब से ऊंचा स्थान है। श्रीमद् भगवद्गीता का। सन्त की कुटिया से लेकर कर्मयोगी राष्ट्र-सेवी तक के पास आपको गीता मिलेगी। खुदीराम बोस को जब फांसी का हुक्म हुआ, वह वीर बोला, मैजिस्ट्रेट साहिब ! मैं मौत से नहीं डरता, मैं नित्य गीता का पाठ करता हूं। आज विदेशों में गीता का सर्वाधिक प्रचार प्रसार है। आज अमेरिका इंग्लैंड के गली बाजार हरे राम हरे कृष्ण की ध्वनि से गूंजायमान हो रहे हैं।

आज का प्रसंग हम यहीं समाप्त करते हैं। कल के प्रसङ्ग में हम केवल गीता की ही चर्चा करेंगे। गीता सभी उपनिषदों का सार है—

सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतमहत् ॥

(६)

गीता सुगीता कर्त्तव्या

इदं वृन्दावनं रम्यं मम धामैव केवलम् ।
पञ्च योजनमेवास्ति वनं ते देहरूपकम् ॥
कालिन्दीयं सुषुम्नाख्या परमामृतवाहिनी ।
अत्र देवाश्च भूतानि वर्तन्ते सूक्ष्म रूपतः ॥
सर्वदेवमयश्चाहम् न त्यजामि वनं क्वचित् ।
आविर्भावस्तिरोभावो भवत्यैव युगे युगे ॥

आदरणीय बन्धुओ, माताओ एवं बहनो !

युद्ध का बिगुल बजते ही अर्जुन ने लड़ने से इन्कार कर दिया, बोला, युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए स्वजनों को देख कर मेरे अंग शिथिल हुए जाते हैं, गाण्डीव हाथ से गिरता जा रहा है मैं गिरा- गिरा सा जा रहा हूं युद्ध अपने ही कुल-पतियों को मार कर मैं कोई कल्याण नहीं देखता । मैं विजय नहीं चाहता, राज्य तथा सुख भी मैं नहीं चाहता, क्योंकि जिन के लिये राज्य, भोग और सुखादिक इच्छित हैं वे सब जीवन की आशाओं को त्याग कर युद्ध में खड़े हैं ।— मैं युद्ध नहीं करूंगा । अर्जुन को ऐसी अवस्था में देख कर श्रीकृष्ण ने कहा,—अर्जुन ! इस प्रकार की बातें करने का यह समय कदापि नहीं । यह तो तू जानता ही था कि यही तुम्हारे गुरुजन संग्राम में तुम्हारे सन्मुख आ कर खड़े होंगे । इस समय इस प्रकार की बातें करनेसे युद्ध टल न सकेगा। युद्ध तभी टल सकता है जबकि विरोधी दल युद्ध टालने के पक्ष में हों । दुर्योधन लड़ना चाहता है, तू न भी चाहेगा तो भी तुझे लड़ना ही पड़ेगा । बहादुर बन कर लड़ेगा तो छाती पर गोलियां खायगा । भाग जायगा तो पीठ पर किये प्रहारों से मरेगा ।......यह जो सात अक्षौहिणी सेना तुम पर विश्वास करके तुम्हारे साथ आई है पहले इस से तो पूछ ले ।......अर्जुन ! कायर मत बन, उठ और युद्धकर......जहां तक मरने मारने का प्रश्न है अर्जुन ! जो जन्मा है सो तो मरेगा ही । जिन देवताओं ने समुद्र से निकला अमृत पिया था वे भी आज इस धरती पर कहीं दिखाई देते नहीं । मृत्यु तो इस देह का धर्म है । क्या जरूरी है कि जिन्हें अपने हाथ से मारे वही, मरें । यदि तू इन्हें न भी मारेगा तो भी ये स्वयं-मेव एक न एक दिन मरेंगे ही ।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व

जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवेते निहताः पूर्वमेव
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥

अर्जुन ! तूं न शोक करने योग्यों के लिये शोक करता है और पण्डितोंके से बचन कहता है परन्तु पंडित जन मरने वालों का कभी शोक नहीं करते । न तो ऐसा ही है कि हम सब नहीं थे, न ऐसा ही है कि आगे हम सब नहीं रहेंगे ! जैसे जीवात्मा के इस देह में कुमार, यौवन और वृद्धावस्था होती है वैसे ही अन्य शरीरकी प्राप्ति होती है । यह आत्मा नाश रहित है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र उतार कर नये वस्त्र पहन लेता है उसी प्रकार यह आत्मा नया शरीर धारण कर लेता है । आग इस आत्मा को जला नहीं सकती, जल गीला नहीं कर सकता, हवा सुखा नहीं सकती ।

जो जन्मता है वह मरता अवश्य है, जो मरेगा उसका जन्म अवश्य होगा । इसलिये उठ और क्षत्रिय योधा के धर्म का पालन करो ।

गीता राष्ट्र-गाथा है (Psalm of life) गीता ने भागते हुए अर्जुन को मैदान में ला कर खड़ा कर दिया । गीता सिपाही के लिये राष्ट्रीय योधा के लिये, Freedom fighter के लिये है, गीता को यदि कोई बुढ़ापे में पढ़ना चाहता है बेशक पढ़े, परन्तु यौवनारम्भ में गीता बच्चों को अवश्य पढ़ानी चाहिए । जवानी में की हुई भूलें बुढ़ापे में मनुष्य को बहुत परेशान करती हैं। जवानी की चकाचौंध -यौवन को ले डूबती है । सब्ज बाग उस समय इतने रंगीन दिखाई देने लगते हैं कि दिल ललचाने लगता है, परन्तु यह समस्त दिलफरेबियां सारे सब्ज बाग केवल धोका ही होते हैं । उनके पीछे अंधेरी गुफा है । पाप के पहाड़ हैं । यौवन का तनिक सा झोंका आया कि धड़ाम । इस लिये मैं तुम्हें कहता हूं, आरम्भ में हो सम्भल के चलो ।
दो दिन की जिन्दगी में न इतना उछल के चल ।
दुनिया है चलचलाव का रस्ता सम्भल के चल ॥

सुनो ! एक प्राचीन दार्शनिक विद्वान ने लिखा है कि संसार में तीन प्रकार के घोड़े होते हैं—एक लद्दू जो जीवन भर दूसरों का बोझ लादते मर जाते हैं । दूसरे कोतल जो शोभा के लिये द्वार पर घुड़शाला में बंधे रहते हैं और कभी-कभी खेल कूद में सवारों द्वारा नचाये जाते हैं, तीसरे लड़ाई के घोड़े, जो गोली की बौछार के बीच निर्भय होकर आगे बढ़ते हैं ।

मनुष्यों के सम्बन्ध में भी यही बात है । जो लोग जीवन भर घर का बोझा ढोते रहते हैं उन्हें नर रूपी लद्दू घोड़ा समझना चाहिए । जो लोग आराम से खाते-पीते रहते हैं वे कोतल, जो साहस पूर्वक जीवन सग्राम में आगे बढ़ते हैं, विघ्न बाधाओं के बीच में निर्भय होकर दौड़ते हैं और यथाशक्ति पुरुषार्थ करते हैं उनकी तुलना युद्ध के घोड़ों से की जाती है ।

अब आप ही बताइये आप ने कौन से घोड़े बनना है । मैं तो आप को युद्ध का घोड़ा बनाने आया हूं । गीता का सन्देश आप को सुना कर आपको कर्मयोग का पाठ पढ़ाने आया हूं । आप जानते हैं गीता के कृष्ण कौन थे । महान कर्मयोगी, जिन्होंने भारत को महाभारत बनाने के लिए महाभारत युद्ध की रचना रची । लोग युद्ध के नाम से घबराते हैं । सुनो ! युद्ध बुरा नहीं तथापि योधा की नीयत यदि बुरी है तो युद्ध बुरा है । अच्छे योधा द्वारा, शांत योधा द्वारा, जितेन्द्रिय द्वारा आरम्भ किया हुआ युद्ध परिणामतः बुरा कदापि नहीं हो सकता । भगवान् श्री रामचन्द्र द्वारा लंका के युद्ध का

परिणाम बड़ा सुन्दर था, योगेश्वर कृष्ण द्वारा रचाये हुए महाभारतीय युद्ध का परिणाम भी बड़ा ही सुन्दर था। युद्ध में न राम का कोई व्यक्तिगत स्वार्थ था न श्री कृष्ण का। श्री राम द्वारा रचे उस युद्ध का परिणाम इतना सुन्दर था कि उस दिन से आज दिन तक लंका एवं भारत के बीच कभी कोई यद्ध नहीं हुआ। और श्री कृष्ण द्वारा रचाये उस महाभारत युद्ध ने भारत की पराधीनता को मानों साढ़े तीन हजार वर्ष पीछे धकेल दिया।

दो प्रकार के लोग इस संसार में होते हैं एक वे जो अपने घर को ही अपनी दुनिया समझते हैं और दूसरे वे जो सारी दुनियां को ही अपना घर समझते हैं। इस संसार में जिसे किसी से ममता नहीं, जो किसी को प्यार नहीं करता, जो किसी से द्वेष भी नहीं करता, जो सब में एक ही परम-पुरुष की ज्योति का प्रकाश देखता है, इस समस्त संसार का आदि कारण जो एक ही परमतत्त्व को समझता है, जो सब को समान दृष्टि से देखता है, जिसका हृदय गंगा जल के समान परम पवित्र है गीता उसी के लिये है।

यह मकान, मोटरें, गाड़ियां, बाग-बागीचे मैं अपने साथ लेकर पैदा नहीं हुआ। जब मैं संसार में नहीं था यह वस्तुयें संसार में उस समय भी थीं, और जब मैं इस संसार में न रहूंगा यह सभी वस्तुयें फिर भी रहेंगी। यह सभी विभूतियां राष्ट्र माता की ही धरोहर हैं। मुझे इनका अभिमान न कर केवल इन पर प्रयोग-मात्र का अधिकार है जो ऐसे समझता है गीता उसी के लिए है।

यह मेरे पुत्र और पुत्रियां भी देश ही के हैं। इनकी उत्पत्ति में देश माता के अन्न द्वारा बनी हुई शक्ति ही निमित्त है, इन के जीवन को मैं अपने राष्ट्र के ही अर्पण करूंगा। बिरादरियों के ढकोसलों से ऊपर उठ कर मैं इन्हें सच्ची राष्ट्र-भक्ति का ही उपदेश दूंगा। मैं इन के जीवन में सच्चाई, ईमानदारी तथा समत्व योग लाने को अपना पितृ-धर्म समझूंगा। इनके विवाहादि संस्कारों पर किसी प्रकार आडम्बर न रचाऊंगा। जात-पात का कभी विचार तक मन में न लाऊंगा। अपने पुत्र के मूल्य स्वरूप अपनी भावी पुत्र वधू के पिता से एक कौड़ी तक न मांगूंगा—जिस का ऐसा शुद्ध सात्विक विचार है गीता का सन्देश उसी के लिये है।

देश सेवा को ही जो अपने जीवन का ध्येय समझता है, सेवा मार्ग पर जो बिल्कुल निष्काम भावना से अग्रसर होता है, जो मृत्यु से न डरता हुआ त्याग और तपस्या के मार्ग पर चलता हुआ जय को दक्षिण हाथ पर और बायें हाथ पर मृत्यु को लेकर चलता है, जिसका जीवन सेवा-पथ और न्याय पर अवलम्बित है, सुख और दुख जिसके लिये दोनों ही एक समान हैं, धर्म-युद्ध से अधिक हितकर जो कुछ नहीं समझता, शरीर के नाश हो जाने पर भी आत्मा का नाश नहीं होता ऐसा तत्त्व जानने वाला जो ज्ञानी पुरुष है गीता उसी के लिये है।

जिस को इन्द्रियां विषयों से विमुख हो गई हैं। जो सब मनोरथों का त्याग कर अपने में रम गया है, जिसने काम रूपी भीतर के प्रबल शत्रु को दग्ध कर दिया है, भूख प्यास, निद्रा, तन्द्रा पर जिसे पूरा काबू है, आलस्य और प्रमाद को जिसने दूर भगा दिया है, जैसे कछुआ अपने अंगों को अपने ही भीतर समेट लेता है इसी प्रकार अपनी इन्द्रियों को समस्त विषयों से हटा लिया है जिसने जो योगी है बुद्धि से युक्त है गीता

उसी के लिये है—

जिस का जीवन यज्ञमय है, यज्ञ से बचा हुआ भोजन ही जिस का आहार है, जो केवल यज्ञ ही के लिये कार्य करता है, जिस में मेरा मैं भाव नहीं, जो क्षमावान है, जिस से न लोगों को भय है और स्वयं भी किसी से जो भयभीत नहीं होता, निन्दा स्तुति में जो समान रहता है, जिस का हृदय पवित्र पक्षपात रहित है। जो काम क्रोध से दूर हो गया है, बाहरी पदार्थों में चित्त को आसक्त न होने दे कर जिस ने भीतरी सुख का रसास्वादन कर लिया है—गीता उसी के लिये है।

जिसका चित्त और शरीर स्वाधीन है, शीतोष्ण जिसे सता नहीं सकते, कर्म फल की जिसे इच्छा नहीं, जो अर्थ सहित वेद का विचार करता है, ब्रह्मचर्य्यादि व्रतों से शरीरादि को वश में रखता है, कपट रहित है, जो कुछ मन में हो वैसी ही बात कहता है, अपेक्षा में किसी पुरुष के दोष प्रकट नहीं करता, मन्द कर्मों में लोक लाज से डरता है, आपत्ति में जो दृढ़ता से रहता है—गीता उसी के लिये है।

गीता उसके लिये नहीं है

जो अपने अवगुणों को छिपा कर लोभ के लिये अपने महात्मापन को प्रकट करता है, श्रेष्ठ पुरुषों का अपमान करने में जिसे गर्व है, जो सदा अन्तःकरण में द्वेष -बुद्धि से ही जलता है, व्यर्थ में दूसरे को सताने के लिये कटु वचन बोलता है, दुराचारी है, झूठा है, पवित्रता का जिस में अंश मात्र भी नहीं, गीता उसके लिये नहीं है।

धर्म और अधर्म के मार्ग का जिन्हें ज्ञान नहीं, ईश्वर द्वारा जगत की रचना को न मान कर जो इसे असत्य तथा धर्मा-धर्म की व्यवस्था से रहित मानते हैं, मनुष्य की उत्पत्ति का कारण केवल स्त्री-पुरुष की महिमा का ही समझते हैं इसी कारण जो परमात्मा को नहीं मानते, तुच्छ बुद्धि वाले, क्रूर कर्मी, अनपकारी लोगों के लिये गीता नहीं है।

पूर्ण न होने वाली कामनाओं को लेकर हो जो दम्भ तथा मद से सदा लिपटे रहते हैं, झूठी बातों का मोह से ग्रहण करके वर्तते हैं अपवित्र वस्तुओं की प्रतिज्ञा करते हैं, काम का भोग करना ही जिन के जीवन का उद्देश्य है, काम के भोग्य के लिये अन्याय से धन संचय करने की चिन्ता में ही जो सदा लगे रहते हैं। मैं ही ईश्वर हूं, मैं सुखी हूं, मैं बलवान हूं, धनवान हूं, कुटुम्ब वाला हूं मेरे बराबर दूसरा धरती पर है कौन जो ऐसा अभिमान करते हैं—गीता उनके लिये नहीं है।

अब चली बात जीवन और मृत्यु के रहस्यों को, गीता यह कहती है कि जीवन और मृत्यु एक ही रस्सी के दो सिरे हैं।

कोई भी व्यक्ति अपने जीवन में कितना महान् था, यदि इस बात की परीक्षा लेनी है तो उस महापुरुष के अन्तिम समय में संसार से उसके विदा होने का दृश्य देखिये। जो हंसता हुआ जायगा वह महान् है, जो रोता हुआ गया वह कायर है। महमूद गज़नवी रोता हुआ गया, अपनी दौलत को देख कर आंसू बहाता हुआ गया। मुहम्मद गौरी रोता हुआ गया, तैमूर रोता हुआ गया। स्वामी रामतीर्थ हंसते हुए गये, बाल हकीकत हंसते हुए गये,—महर्षि दयानन्द हंसते हुए गये।

भारतीय परम्परा सम्बन्धी धर्म शास्त्र में मानव जीवन की यात्रा से उपमा दी गई है। यात्रा और आवारागर्दी में भारी भेद है। आवारा

गर्दी एक निष्प्रयोजन भ्रमण है। यात्री पहला पग उठाने से पूर्व जानता है कि उसे जाना कहां है। वह टाईमटेबल देखता है। कौन से प्लेट-फार्म पर गाड़ी खड़ी होगी यह जानने का प्रयास करता है। मोटर में जाना होता है तो बस का नम्बर पूछता है, क्यों भाई! देवनगर को कौन से नम्बर की बस जाती है। कहां ठहरती है। कोई यात्री बस स्टेंड पर खड़ा हो, आप उसे पूछें, क्यों भाई कहां जाना है आप ने? वह यदि उत्तर में यह कह दे कि मुझे तो पता नहीं, मैं ने कहां जाना है, आप उस आदमी की ओर कौतूहल भरे नेत्र से देखने लगेंगे और उस के व्यक्तित्व को उपहास-जनक मानने लगेंगे परन्तु आप स्वयं तो अपने सम्बन्ध में निश्चय कीजिये कि आप ने कहां जाना है और कौन सी बस में जाना है। गुज़ारने का तो जीवन सभी गुज़ार देते हैं परन्तु बहुतेरे लोगों का जीवन अवारागर्दी का जीवन होता है।

एक व्यक्ति जल्दी-जल्दी पग बढ़ाये कहीं जा रहा था, किसी ने पूछा —श्रीमान् जी! कहां जा रहे हो। वह बोला, अजी! अभी मेरे साथ बात मत करो। मैं एक बहुत जरूरी काम के लिये पोस्ट आफिस जा रहा हूं। यह जरूरी पत्र मुझे पोस्ट करना है। कहां भेजना है यह पत्र? जब देखा तो कार्ड पर पता नदारद। अजी श्रीमान् जी! पता तो लिखा ही नहीं तो यह पत्र जायगा कहां।

निष्प्रयोजन भागादौड़ी। तेली के बैल की तरह जो दिन भर चलता-चलता यह समझने लग जाता है कि पता नहीं मैं इतनी देर चलते-चलते कहां पहुंच गया। परन्तु जब आंख पर से पट्टी उतारी जाती है तो देखता क्या है कि जहां से प्रातः चला था—दिन भर चलते-चलते है वहीं का वहीं।

जीवन की पवित्रता, लक्ष्य की पवित्रता बहुत बड़ी चीज़ है। विद्यार्थी जब स्नातक बन कर गुरु गृह से विदा होता है उस समय गुरु कहता है।

शिष्य प्रति गुरोरनुशासनम्

सत्यं वद। धर्मञ्चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सी। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्, कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम् स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यं। देव पितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यम् मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवोभव। यान्यवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणाः तेषां त्वयाऽऽसने न प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। श्रिया देयम्। संविदा देयं। अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा व वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ताः अलूक्षा धर्म्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्तरन् तथा तत्र वर्त्तेथाः अथाभ्याख्यातेषु ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्म्म कामाः स्यु यथा ते तेषु वर्त्तेथः। एष आदेशः एष उपदेशः एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्। एवमुपासितव्यम्।

भगवती श्रुति ने इस शरीर को दैवी नाव कहा है।

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणम
दितिं सुप्रणीतिम दैवीं नावं स्वरित्रा
मनागसमस्रवन्तीमारुहेमा स्वस्तये ॥

हम लोग स्वस्ति तक पहुंचने के लिये इस दैवी नाव पर आरूढ़ हैं। यह नाव कहीं से रिसती नहीं। इसमें इन्द्रियां रूपी बड़े सुन्दर डांड लगे हुए हैं। सुअरणीत अर्थात् सुघटित है, इसके निर्माण कौशल का क्या ठिकाना। यह अदिति है, अखंडनीया तथा देवों की जननी है। सुशर्मा अर्थात् सुप्रतिष्ठित प्राण से सम्पन्न है। सुशर्मा इन्द्र का यह नाव है। इस में पृथ्वी से द्युलोक तक की समस्त रचना है।

गीता ने इस शरीर को "देवपुरी" कहा है। देवताओं को निवास के लिये कोई स्थान चाहिये था। ब्रह्मदेव ने उन्हें कितने ही शरीर दिखाये—गाय का, घोड़े का, सिंह का परन्तु कोई भी शरीर उनके पसन्द नहीं आया। अन्त में उस परम पिता परमात्माने एक बहुत बढ़िया मकान—मानव शरीर देवताओं को दिखाया, जिसे देखते ही देवता प्रसन्न होकर बोले, यह बहुत अच्छा है। हमारे सब के रहने के लिये यह सब प्रकार से सुखप्रद एवं श्रेयस्कर है। देवता उस मकान में रहने लगे।

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्। वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षु र्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद् दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन्मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्। एषा दैवी परिषद दैवी सभा, देवा संसत्।

अपनी रुचि के अनुसार सब ने स्थान पा लिया।

देवताओं की इस नगरी के सम्राट "अन्तरात्मा" ने आत्मा को अपना प्रतिनिधि बनाकर इस शरीर का भली भांति शासन चलानेके लिये नियुक्त किया। अकेला व्यक्ति तो शासन चला नहीं सकता। हुकूमत की मशीनरी को चलाने के लिये पूरा मन्त्री-मंडल चाहिये।

आत्मा शरीर के भीतर रहता है बाहर उस की गति नहीं, इस लिये उसे बाहर के जगत के साथ सम्बन्ध रखने के लिये अपना प्रधान मन्त्री मन रखना पड़ता है। यह मन भी इस शरीर के गढ से बाहर नहीं जा सकता अतः इसे भी आत्मा का यह कारखाना चलाने के लिये सेवक रखने पड़ते हैं। आत्मा के इन्हीं सेवकों का नाम देव (Minister) है। इन देवताओं द्वारा होने वाले प्रकाश का नाम ज्ञान है और इस ज्ञान को उत्पन्न करने की ऐश्वर्य शक्ति इन में विद्यमान है अतः इन्हें इन्द्रियां कहते हैं। ज्ञान का साधन होने के कारण इनका ज्ञानेन्द्रिय नाम है। यह ज्ञानेन्द्रिय पांच हैं—नासिका—रसना—चक्षु—त्वक्—श्रोत्र।......मन ज्ञानतन्तुओं के द्वारा इन्हें प्रेरणा करता है।

मन रूपी प्रधान मन्त्री की इस कैबिनेट को भगवती श्रुति ने ऋषि मंडल की संज्ञा दी है।

जानते हो यह सप्त-ऋषि कौन हैं?

यजुर्वेद में एक मन्त्र है।

सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे
सप्त रक्षन्ति सदमप्रमादम्।
सप्तापः स्वपतो लोकमीयुस्तत्र
जागृतो अस्वप्नजौ सत्रसदौ च देवौ।

सप्त ऋषि इस शरीर में प्रतिष्ठित हैं। प्रमाद रहित रहकर सदा इस की रक्षा में सावधान रहते हैं। सात बहिर्मुखी प्राण धारायें या इन्द्रियां सोते समय सोने वाले के लोक में संहृत हो जाती हैं। उस समय भी स्वप्न रहित रहने वाले देव प्राण और अपान जागने वाले

आत्मा के साथ स्थित रह कर जागते हैं।

सात ऋषि ही सात प्राण हैं। दो कान गौतम और भारद्वाज हैं। दो आंखें विश्वामित्र और जमदग्नि हैं, दो नासिका रन्ध्र वसिष्ठ और कश्यप हैं। वाक् अत्रि है।

ये सातों ऋषि स्व: अर्थात् स्वर्ग या मस्तिष्क के वेत्ता है।—प्राणा वा ऋषयः।

ये पहले तप करते हैं। तभी बल ओज आता है और राष्ट्र की उत्पत्ति होती है। तप से ही राष्ट्र का जन्म होता है। भोग से राष्ट्र नष्ट हो जाते हैं। चाहे शरीर रूपी राष्ट्र हो चाहे विराट रूप में देश व्यापी राष्ट्र हो। तप प्रत्येक व्यक्ति में आना चाहिये।

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो
दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं,
तदस्मै देवा उपसंनमन्तु।

तप का अर्थ शरीर को निष्प्रयोजन कष्ट देना नहीं, इसका अर्थ शरीर और मन को इतना दृढ़ बनाना है कि वह आपत्ति में टूट न जाय। तप से कठिनाईयों को सहने, उसके आक्रमण में सीधा खड़े होने की योग्यता मिलती है। कठिनाईयां तो प्रत्येक मनुष्य के जीवन में आती ही रहती हैं। तपस्वी इन कठिनाईयों को हंस कर झेलता है, योगी हाय-हाय करके झेलता है। झेलते सब हैं।

सुनो! तपस्या में बड़ी शक्ति है। कोयलेने बड़ी घोर तपस्या की हीरा बन गया। तप का अर्थ है असीम दृढ़ता। अपने शरीर से दूसरों की सेवा करना यह शरीर के तप का आरम्भ है। जो सेवक नहीं बना वह कभी प्रभु नहीं बन सकता।

वाणीके तप के बिना शारीरिक तप की सिद्धि नहीं हो सकती इस लिये वाणी को पवित्र करो। मानस तप मनुष्य को मनुष्यत्व के पद से उठा कर देवता के पद पर पहुंचाने का साधन है। श्री मद्भगवद्गीता में तीन प्रकार के तप कहे गये हैं।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥
अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥
मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।
भाव संशुद्धि रित्येतत्तपो मानसमुच्यते॥

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनों का पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर सम्बन्धी तप कहा जाता है।

जो उद्वेग को न करने वाला, प्रिय एवं हितकारक तथा यथार्थ भाषण है, जो वेद शास्त्रों को पढ़ने का एवं परमेश्वर के नाम जपने का अभ्यासहै वह निःसन्देह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

मन को प्रसन्नता और शांतभाव, मन का निग्रह, अन्तःकरण की पवित्रता यह मन सम्बन्धी तप हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों की दृष्टि में यह मानव शरीर केवल चूने अभ्रक, गन्धक, सीसा, चर्बी, नमक, खाण्ड, पानो, चांदी का सम्मिश्रण है। इस शरीर में यह वस्तुएं जितनी मात्रा में हैं यदि उन्हें बाजार में बेचने जाओ तो अधिक से अधिक पांच रुपये मिल सकते हैं—परन्तु क्या मानव शरीर का मूल्य पांच रुपया ही है। क्या इन पांच रुपयों में बाजार में सुभाष मिल सकता है, दयानन्द मिल सकता है, तिलक मिल सकता है। पांच नहीं पांच अरब में भी नहीं मिल सकता।

सुनो! मनुष्य में बहुत बड़ी शक्ति है। मानव तो विधाता की रचना का सब से बड़ा चमत्कार है। भारत वर्ष में आज तक महामुनि व्यास जो सब से बड़े विद्वान हुए उन्हों ने बहुत सोच विचार कर यह मत प्रकट किया कि संसार में मनुष्य से बढ़ कर अन्य कुछ नहीं है। मनुष्य वास्तव में संसार का सर्व शक्ति सम्पन्न प्राणी है। अब तक मनुष्य ने जो कुछ भी किया है उस से यह सिद्ध होता है कि मनुष्य में अदभुत और अनन्त शक्तियां हैं, उसके लिये कोई पदार्थ कोई वैभव, कोई सम्पत्ति दुर्लभ नहीं। अपने वैभव से एक व्यक्ति कितना विराट और विलक्षण हो सकता है इस की कोई सोमा नहीं। मनुष्य लौकिक जीवनमें अलौकिक शक्तियों का उपार्जन करके असम्भव को भी सम्भव बना देता है।

मनुष्य के भीतर अनन्त शक्तियोंका भंडार छिपा हुआ है। अकेला मनुष्य क्या कुछ कर सकता है। अकेले राम ने क्या कुछ करके दिखा दिया, अकेले कृष्ण ने क्या कुछ करके दिखा दिया। गांधी अकेला था, दयानन्द अकेला था, सुभाष चन्द्र बोस अकेला ही भारत से गया था-

कहता है कौन जग में कर सकता क्या अकेला।
आकाश में चमकता है चन्द्रमा अकेला॥

एक सूर्य विश्व को प्रकाशित कर देता है। अग्नि कीएक चिंगारी समस्त जगत कोप्रज्वलित कर देती है। एक प्रमाणु में कितनी शक्ति होती है उसे आज हम प्रत्यक्ष देख सुन रहे हैं। आज से सहस्त्रों वर्ष पूर्व हमारे पुरुषाओं ने इस तथ्य को समझ लिया था कि अणु प्रमाणु में दिव्य शक्ति व्याप्त है। संसार में शक्तिहीन और निरर्थक कुछ नहीं। एक शून्य भी किसी की शक्ति को दस गुणा बढ़ा देता है। आंख का छोटा सा तिन लोक को प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष तथा जीवन को प्रकाशमय या अन्धकार मय बनाने की हिम्मत रखता है। एक छोटा सा बीज भी विशाल वृक्ष को जन्म दे सकता है। इतना शक्ति शाली शरीर आप जानतेहैं गिरताक्यों है। जबसे संसार बना. मनुष्य के बाहर भी और मनुष्य के भीतर भी देवासुर संग्राम अनादि काल से चला आ रहा है। देव और दानव, राक्षस और मानव सदैव ही आमने-सामने सर धड़ को बाजी लगाय डटे रहे हैं। धृतराष्ट्र और हृत राष्ट्र प्रत्येक युग में रहे हैं। दुःशासन रूपी अहंकार के हाथों द्रौपदी रूपी बुद्धि का चीर हरण तो अनादि काल से ही होता आया है। क्रोध रूपी दुर्योधन पाण्डव रूपी सात्विक वत्तियों को संज्ञाशून्य करने का सदा से यत्न करता आया है :—

यह हमारा शरीर एक घर के समान है, जिस घर के दस द्वार हैं। दो आंखें, दो नाक के छेद, दो कान, मुख, गुदा, लिंग यह हुए नौ जो प्रत्यक्ष हैं। दसवां द्वार गुप्त द्वार (Emergency Exit) जो योगाभ्यास के द्वारा खुलता है ब्रह्मरन्ध्र। इसी के द्वारा परमात्मा का ज्ञान होता है। योगियों का आत्मा मृत्यु के पश्चात् इसी दशम द्वार से मानव शरीर को छोड़ कर जाता है।

यह नौ दरवाजे वाला मकान, जिस के द्वार चौबीसों घंटे खुले रहते हैं—जहां कोई चौकीदार भी न हो, वहां तो चोरों की चांदी होगी ही। इसी लिये हमारे शरीर को चारों ओर से चोरों ने घेर रखा है - काम, क्रोध, लोभ मोह, अहंकार. ईर्षा द्वेष, मत्सरता, माया, ममता, अहम्मन्यता......जानते हो आप! यह लूटेरे क्या हैं ? यह ठग हमें फुसला कर सत्य से दूर ले जाते हैं. सन्मार्ग से भटका कर अज्ञानान्धकार में धकेल देते हैं।

कहलाती है। और यह जलन उन दिलों में भी पैदा होती है जो अत्यन्त पवित्र समझे जाते हैं। यह तो हमें ज्ञात नहीं कि ईर्षा रूपी रोग नरक में भी होता है कि नहीं तथापि स्वर्ग में तो यह रोग अवश्य ही होता है। नरक में है ही क्या जो एक दूसरे से लोग ईर्षा करें। इन्द्र सब देवताओं के राजा हैं, सब से ईर्षालु। जब कोई व्यक्ति दुनिया में यज्ञ करता हैं तो इन्द्र महाराज के कान खड़े हो जाते हैं और जब कोई बहुत से यज्ञ करने में सफल हो जाता है तो इन्द्र का सिंहासन हिलने लग जाता है और इन्द्र की यही कोशिश रहती है कि यज्ञ में विघ्न डाला जाय।

ईर्षा का कीड़ा सबसे ज्यादा खतरनाक वह होता है जो त्याग की भूमि में पैदा होता है। लोग समझते हैं कि अमुक महात्मा बहुत बड़ा त्यागी है वास्तव में सत्य बात तो यह है कि उस ने भगवें कपड़ों के नीचे ईर्षा के कीड़ों को पालने के लिए एक ऐसी फैक्ट्री बना रखी है जैसी कि लोग शहद की मक्खी को पालने के लिये बनाते हैं।

गीता का स्वर्ग आकाश पर नहीं, इसी धरती पर मानव शरीर के भीतर है।

पाप और पुण्य का सम्बन्ध स्थूल शरीर के साथ नहीं, सूक्ष्म शरीर के साथ है। हाथ कभी पाप नहीं करते, पैर कभी पाप पथ की ओर नहीं बढ़ते, आंखें कभी भी पापपूर्ण पदार्थों की ओर नहीं देखतीं, इन सभी वस्तुओं को पाप की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देने वाला, जो गृहपति बन कर हमारे भीतर बैठा है वह है मन। पापी मन ही कामेन्द्रियों को पाप के पंक में फंसा देता है।

स्थूल शरीर उत्पन्न होता है, बढ़ता, घटता है, रोगी होता है, नाश को प्राप्त होता है। स्थूल शरीर एक ही जन्म का साथी है, सूक्ष्म शरीर जन्म जन्मान्तर का साथी है। जब तक मोक्ष नहीं होगा, तब तक यह सूक्ष्म शरीर हमारे साथ रहेगा। योगीजन इसी सूक्ष्म शरीर द्वारा गत जन्म की बातें जान लेते हैं। यह सूक्ष्म शरीर पंच तन्मात्राओं से बना है।

इस सूक्ष्म शरीर में जन्म-मरण की वासनायें रेखा रूप में हैं। इसी सूक्ष्म शरीर के सहारे अपने कर्मों द्वारा आत्मा भिन्न भिन्न योनियों में पहुंचाया जाता है। यह अत्यन्त सूक्ष्म है, इतना सूक्ष्म कि जिसे खुर्दवीन से भी देखा नहीं जा सकता। जब किसी प्राणी की मृत्यु होती है, तो उसका सूक्ष्म शरीर सब की सब शक्ति और इन्द्रियों के सक्ष्म भागों को एकत्रित कर अपने साथ ले जाता है। हम इस जीवन में जो भी कार्य करते हैं, धर्म अधर्म, भक्ति मुक्ति वैराग्य, इसी सूक्ष्म शरीर में जमा होते जाते हैं।

जो कुछ भी आप करते हैं, वह आरम्भ होता है और समाप्त हो जाता है, परन्तु इसका संस्कार अवशिष्ट रह जाता है। संस्कारों का यह जमघट हर समय आत्मा के साथ रहता है। साधारण भाषा में उसे संस्कारी शरीर कहते हैं। इस संस्कारी-शरीर से ही आत्मा का भाग्य बनता है।

सूक्ष्म शरीर को हम एक प्रकार से रीकार्ड कीपर भी कह सकते हैं। जैसी फाईल या मिसल हम ने यहां तैयार की है उसके अनुसार आत्मा इस सूक्ष्म शरीर के द्वारा मोक्ष में या अन्य योनियों में भेज दिया जाता है। हमारा एक-एक संकल्प, एक-एक विचार, एक-एक कर्म, एक-एक हावभाव इस सूक्ष्म शरीर में चित्र पर अंकित होता है। स्थूल शरीर आत्मघात अथवा

अन्य साधनों से नष्ट किया जा सकता है, परन्तु संसार में किसी वैज्ञानिक ने अभी तक कोई ऐसा आविष्कार नहीं किया जिस के द्वारा इस सूक्ष्म शरीर से छुटकारा पाया जा सके।

इन दो शरीरों के साथ-साथ एक तीसरा शरीर भी है जिसे कारण शरीर कहते हैं। मनुष्य जब सुषुप्ति अवस्था में होता है तो उस समय केवल मात्र कारण शरीर में काम करता है।

मृत्यु तो केवल एक परिवर्तन मात्र है और जिसे हम जीवन कहते हैं वह स्थायी है, अनादि और अनन्त है। वह न तो कहीं से आरम्भ हुआ और न कहीं समाप्त होगा। इस निरन्तर को जीवन यात्रा में मृत्यु केवल एक पड़ाव मात्र है।

कीड़े की आयु कुछ मास है, वह कुछ मासों के बाद मर जाता है मनुष्य की आयु कुछ वर्ष है वह कुछ वर्षों के बाद समाप्त हो जाता है मृत्यु को रोकने की शक्ति न उस में है न हम में।

यह हमारा शरीर भी एक मशीन है, हर क्षण मर रहा है। हम केवल अन्तिम मृत्यु को ही मृत्यु समझते हैं। हर क्षण की मृत्यु को ही मृत्यु नहीं समझते हैं। हम मानें या न मानें, परन्तु सत्य यह है कि मृत्यु हर क्षण हमारे पीछे लगी रहती है।

जिस प्रकार सर्प अपनी पुरानी कञ्चली का परित्याग कर नई कञ्चली ले लेता है, जिस प्रकार पक्षी पुराने पर नोच कर नये पर ले लेते हैं, जिस प्रकार पुराने पत्ते झड़ जाने पर नये पत्ते आ जाते हैं, ठीक उसी प्रकार जीवात्मा पुराना शरीर छोड़ कर नया शरीर धारण कर लेता है।

सुनो मेरे भाईओ और बहनो! मृत्यु का भय वास्तव में हमारी अज्ञानता के ही कारण से है। मानो हमारा बच्चापन है। कारण यह है इस भय का कि हम शरीर एवं जीवात्मा को एक ही समझे बैठे हैं, शरीर और शरीरी में भेद करना हम भूल गये। डिब्बी और उस डिब्बी के भीतर बन्द हीरे को समान भाव से परखने लगे। लैम्प को और उसके भीतर की ज्योति को एक ही वस्तु समझने लगे। इसी कारण से मृत्यु हमें भयानक प्रतीत देती है।

सच बात आप को बताऊं—मनुष्य मृत्यु से नहीं घबराता, घबराता वह इस बात से है कि मृत्यु के पश्चात् उस का बनेगा क्या। दुःख मृत्यु का नहीं दुःख उन परिस्थितियों का है जिन में मृत्यु होता है।

इसी लिये गीता कहती है, Travel light, सुख जीवन की आवश्यकताओं को बढ़ाने में नहीं घटाने में है।

आज क्या राजनीतिक, क्या धार्मिक जीवन सर्वथा आडम्बर पूर्ण हो चुका है। रोटी कपड़ा और मकान का शोर केवल अपने आप को तथा संसार को धोका देने के लिये लगाया जा रहा है। आज कपडे तन ढकने को नहीं पहने जाते, दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये पहने जाते हैं, आज भोजन पेट भरने के लिये नहीं किया जाता बल्कि आल-वर्ल्ड-भोजन सम्मेलन करने के लिये किया जाता है, आज मकान शरीर छुपाने के लिये नहीं बनाया जाता, दूसरों पर अपनी अमीरी का रोब जमाने के लिये बनाया जाता है।

अन्न परमात्मा के पास गया, बोला—मुझे बचाओ, मैं जहां भी जाता हूं वही मुझे खाने को आता है। प्रभु बोले, अन्न देवता, धन्य है तू जो दूसरों के जीवन का आधार बनता है। जा तुम्हें वरदान देता हूं—जो तुम को थोड़ा

खायेगा वही तुम को खा सकेगा । जो तुम को ज्यादा खायगा तुम्हीं उसको खा जाओगे । इसी लिये भगवद् गीता ने कहा—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

धर्म शब्द की व्याख्या तो बड़ी विस्तृत है परन्तु गीतोक्त धर्म—वर्णाश्रम धर्म ही है। आज साम्यवाद का शोर मच रहा है। पर्वत और ढोल दूर से ही सुहावने हुआ करते हैं। साम्यवाद के सिद्धांत ही आकर्षक दिखाई देते हैं। इन सिद्धान्तों का व्यवहारिक रूप न कभी हुआ, न कभी होगा—उद्देश्य में एकता होनी चाहिये। रेलवे स्टेशन पर कोई स्टेशन मास्टर होता है, कोई तार बाब, कोई स्टेशन सुपरिन्टैंडन्ट, कोई माल बाब, कोई टिकट बाबू, कोई पायान्टमैंन—लक्ष्य सभी का एक है कि गाड़ी ठीक-ठाक चलती रहे। यदि किसी स्टेशन पर सभी स्टेशन मास्टर ही इकट्ठे कर दो, तो! गाड़ी सिगनल के बाहर खड़ी है, इधर स्टेशन-मास्टर आपस में झगड़ रहे हैं। सिगनल कौन दे—तू भी रानी मैं भी रानी कौन भरेगा पानी। पाठशालाओं में हैडमास्टर भी, होता है छोटे मास्टर भी, चपरासी भी हैडकलर्क भी। लक्ष्य सब का एक है कि स्कूल चलता रहे। मनुष्य मात्र को देखिये। आंखें सब की दो, कान, नाक हाथ, पैर सभी के एक समान परन्तु शक्लोसूरत सभी की भिन्न-भिन्न। एक दूसरे के हस्ताक्षर नहीं मिलते, अंगूठे की लकीरें नहीं मिलतीं। एक दूसरे का रक्त आपस में नहीं मिलता।—

आज संसार में जितने भी इज्म हैं—हिन्दइज्म सब में श्रेष्ठ है। जेब में पैसा हो, बैंकों में पैसा हो, घर में सर्वत्र पैसा हो, परन्तु दिल और दिमाग में पैसा न हो—यह है हिन्दुइज्म। जेब खाली है, घर में कुछ है नहीं परन्तु दिल और दिमाग में हाय पैसा, हाय पैसा यह है कम्यूनिज्म।

वर्णाश्रम व्यवस्था की पद्धति इन कष्टों के निवारण का उपाय बताती है। जब तक हम ने इस संसार में रहना है तब तक हमारे शारीरिक कष्टों का निवारण होना ही चाहिये। परन्तु यह संसार ही सब कुछ नहीं वर्णाश्रम व्यवस्था के दर्शन-शास्त्र में मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्ति माना गया। शरीर के प्राकृतिक बन्धन से छूट कर परमात्मा का सीधा साक्षात्कार माना गया है। परमात्मा में आनन्द ही आनन्द है। वहां दुख का लेश भी नहीं। दुःख और परमात्मा का वैसा विरोध है जैसा अन्धकार और प्रकाश का होता है। दोनों एक साथ रह नहीं सकते। परमात्मा में इतना अधिक इतना असीम आनन्द है कि परमात्मा को आनन्द स्वरूप कहा जा सकता है।

जीवन, धर्म एवं ईश्वर के यथार्थ स्वरूप का वर्णन गीता में उत्तम रीति से हुआ है। पहले छः में है गीता में जीवन, दूसरे छः में है गीता में ईश्वर, तीसरे छः में है गीता में धर्म। गीता को पुस्तक में मत पढ़िये अपने जीवन में पढ़िये। यह तुम्हारा शरीर कुरुक्षेत्र है, अन्तरात्मा कृष्ण हैं, जीवात्मा अर्जुन है। जब मनुष्य अपने लिये प्रकाश चाहता है उसे चाहिए वह अपने अन्तरात्मा की आवाज़ को सुने।

कृष्ण का प्रयास सफल हुआ। अर्जुन बोला—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाऽच्युत ।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव ॥

(७)

महाभारत पर्व

जयति पराशर सूनुः सत्यवतीहृदयनन्दनो व्यासः ।
यस्यास्य कमलगलिते वाङ्मयामृतं जगत्पिबति ।।

भीष्म पितामह दस दिन लड़े । भगवान् श्री कृष्ण ने जानबूझ करके भीष्म को दस दिन तक जिन्दा रखा । वास्तव में भीष्म लड़ नहीं रहे थे, वह लड़ाई की एक्टिंग कर रहे थे । उनका हृदय पाण्डवों के पक्ष में था । आज भी, हमारे अपने समय में भी कितने ही महापुरुष ऐसे हैं जिनका शरीर तो कौंगो के साथ है, परन्तु हृदय किसी और स्थान पर है । दुर्योधन इस बात को जानता था कि भीष्म नहीं लड़ेगा, परन्तु वह मजबूर था, विवश था । यदि कौरव कुलपति को प्रधान सेनापति न बनाते तो इस बात का अंदेशा था कि कितने ही राजा लोग उनकी तरफ से लड़ना अस्वीकार कर देते । श्री कृष्ण का यह आदेश था कि भीष्म की हत्या न की जाय । यदि ऐसा हो जाता तो युद्ध आगे चल नहीं सकता था । पितामह दोनों पक्षों के पितामह थे । पितामह के देहान्त के पश्चात् दोनों पक्षों को शोक दिवस मनाना पड़ता । कुलपति का विधिपूर्वक दाह-संस्कार किया जाता । एक बार लड़ाई थम जाती या स्थगित हो जाती तो नये सिरे से चलना मुश्किल । इस लिये कृष्ण ने भीष्म को क्षत-विक्षत करके लड़ाई से हटा दिया । अब बारी थी दूसरे सेनापति की । द्रोणाचार्य सेनापति की हैसियत से रणभूमि में अवतरित हुए । दुर्योधन को आचार्य पर भी विश्वास नहीं था । भीष्म की मृत्यु के पश्चात् आचार्य द्रोण सेनापति की हैसियत में आगे बढ़े । दुर्योधन का दिल हिल चुका था । वह बोला शक्ति के बल से हम पाण्डवों को जीत नहीं सकेंगे । यदि जीत सकते तो अब तक जीत गये होते । एकमात्र यही उपाय है कि धर्मराज को फिर जूए पर बाधित करें । खुली लड़ाई में पाण्डवों को कोई जीत नहीं सकता, परन्तु टेबल पर बैठ कर पाण्डव कभी नहीं जीत सकते । यह बात आज भी हमारे देश में बराबर हो रही है । मैदान में हमने सन् ६५ की लड़ाई जीती, ताशकन्द में जाकर हार दी । सन् ७१ की लड़ाई मैदान में तो हमने जीत ली परन्तु आधी शिमला में हारी, बाकी जो बची वह नई दिल्ली में हारी । इसीलिये द्रोणाचार्य ने कहा, —राजन् ! जैसा भी आप कहें मैं करने को तैयार हूं, परन्तु धर्मराज को मेरे पास लायेगा कौन ? पिछली बार जब हमने इन्द्रप्रस्थ में जुआ खेला था, कृष्ण द्वारका में थे । परन्तु अब तो श्री कृष्ण युधिष्ठिर के पास मौजूद हैं । कृष्ण की मौजूदगी में खेला नहीं जा सकता, तथापि

यदि आप परिस्थितियां ऐसी बना दें कि धर्मराज अकेले रह जायं तब तो एक और जुए के लिये उन्हें विवश करना कुछ भी कठिन नहीं।

दुर्योधन ने ऐसा करना स्वीकार कर लिया। कार्यक्रम यह बना कि दक्षिणी मोर्चे पर जबरदस्त आक्रमण कर दिया जाय। श्री कृष्ण एवं अर्जुन की यही ड्यूटी थी, जहां से समाचार मिलता,—अमुक मोरचे की हालत पतली है, कृष्ण वहां जाते, अर्जुन भी वहां साथ ही जाता।—ज्योंहि कृष्ण महाराज को यह सूचना मिली कि ससप्तक-दल ने दक्षिणी मोर्चे पर ज़ोरदार धावा बोल दिया है, कृष्ण-अर्जुन उधर भागे। वह स्थान केन्द्रीय स्थल से ६०, ७० मील दूर वर्तमान गुरुग्राम: की ओर था। मैदान खाली पाकर द्रोणाचार्य केन्द्रीय मोर्चे पर आगे बढ़े। अर्जुन की अनुपस्थिति में अभिमन्यु आगे बढ़ा अभिमन्यु वीर पिता का वीर पुत्र था। वह आगे बढ़ा,—परन्तु कहां आचार्य और कहां एक बालक। अभिमन्यु में जोश था, परन्तु आचार्य में जोश के साथ-साथ होश भी था। अभिमन्यु कैंची की तरह आगे बढ़ता गया और काफी आगे बढ़ गया। पीछे से सप्लाई के इन्चार्ज थे भीम। परन्तु जयद्रथ ने सप्लाई की लाईन काट दी। भीम का रास्ता रोकने के लिये जयद्रथ डट गया। सात वीरों ने अकेले अभिमन्यु को घेर लिया। अभिमन्यु समाप्त...

अभिमन्यु की मृत्यु का समाचार ज्योंहि अर्जुन को मिला, अर्जुन का शोकाकुल होना स्वाभाविक ही था,—एक ही पुत्र, आगे वंश कैसे चलेगा। अर्जुन को जब यह पता चला कि मेरे पुत्र की मृत्यु का कारण एकमात्र जयद्रथ है, अर्जुन ने प्रतिज्ञा की—"मैं कल जयद्रथ का वध अवश्य करूंगा और यदि जयद्रथ का वध न कर सकूंगा तो स्वयं प्राण दे दूंगा।"

निःसन्देह बड़ी भयानक प्रतिज्ञा थी। अर्जुन की प्रतिज्ञा का समाचार जानते ही कौरव दल में हाहाकार मच गया।

निश्चय ही आज जयद्रथ की खैर नहीं,—परन्तु कृष्ण एक बात को जानते थे, जयद्रथ का मारना आसान नहीं। यह भी हो सकता है, जयद्रथ मैदान में आए ही नहीं, दुर्योधन उसे कल की छुट्टी दे दे। जब जयद्रथ मैदान में आयेगा ही नहीं तो अर्जुन मारेगा किस को।

कृष्ण ने एक कार्यक्रम बनाया। अज्ञात स्थान पर छिपे जयद्रथ को निकाल कर अर्जुन के सामने लाकर खड़ा कर देने का। उस समय कृष्ण बोले, अर्जुन! प्रतिज्ञा भयानक है, अब देखना यही है इसे पूर्ण कैसे करते हो। कृष्ण इतने महान् थे, बड़ी से बड़ी मुसीबत में भी वे घबराते नहीं थे। महाभारतकार लिखते हैं, कृष्ण ने उस रात भी उसी शान से अपना नित्य-कर्म, पूजा-पाठ निभाया।—प्रातः काल ब्रह्म-मुहूर्त में उन्होंने सात्यकि को बुलाया, सात्यकि! आज मेरी परीक्षा का दिन है, सखा की जान बचानी है।

मैं ने निश्चय किया है, अपनी योग माया के बल पर आज मैं सूर्य को समयपूर्व ही अस्त कर दूंगा। और हुआ भी ठीक ऐसे ही। उस दिन लड़ाई बड़ी भयंकर हुई। कहते हैं, अर्जुन ने उस दिन डेढ़ अक्षौहिणी सेना का वध किया। परन्तु जयद्रथ का कहीं पता तक न चला। एकाएक कृष्ण ने अपनी योगमाया का चमत्कार दिखाया...सूर्य समय पूर्व ही अस्त होता प्रतीत दिया।...वास्तव में सूर्यास्त नहीं हुआ था, कृष्ण के पास ऐसे-ऐसे वैज्ञानिक आविष्कार थे जो आकाश में ऐसा वातावरण बना देते, सूर्य को ढांप देते, दिन को रात में बदल देते।

एकाएक युद्ध समाप्त हो गया। दुर्योधन की ओर से घोषणा हुई;—अर्जुन अपनी प्रतिज्ञा पूरी करे। पक्ष दुर्योधन का प्रबल था, अर्जुन ने यह नहीं कहा था कि वह साढे पांच बजे मरेगा, प्रतिज्ञा यह थी कि सूर्यास्त पर मरेगा और उधर आकाश पर सूर्यास्त प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा था।

"परमात्मा हमारे साथ है" (God is with us) पता नहीं दो घंटों में अर्जुन क्या प्रलय मचा देता। इसीलिये परमपिता परमात्मा ने अपनी स्पैशियल इमरजैन्सी पावर्ज़ का इस्तेमाल करते हुए सूर्य भगवान् को समय से पूर्व ही अस्त कर दिया है। पक्ष तो दुर्योधन का ही प्रबल था।—"अब अर्जुन को आत्महत्या कर लेनी चाहिए"—यत्र कृष्णस्ततो धर्मः। कृष्ण सर्वथा तैयार थे। यद्यपि गाड़ी बीफोर टाईम आ गई थी, परन्तु कृष्ण जानते थे इस दैवी योगमाया का परिणाम। लड़ाई बन्द। अब अर्जुन आत्महत्या करेगा।

एक वीर पुरुष का मरना था, इसी तैयारी में कृष्न ने वह समय लगा दिया। चिता बनाई गई, सामग्री आई, वेदपाठी ब्राह्मण आये,...... दुर्योधन को यह विश्वास था, कृष्ण की मौजूदगी में पाप हो नहीं सकता। इसी आशा से उसने रक्षा-गृह से जयद्रथ को निकाला। सिन्धुपति जयद्रथ की जय हो, अर्जुन के विजेता की जय हो, कौरव दल में उत्साह भरने के लिये दुर्योधन ने जयद्रथ को समर भूमि में लाकर खड़ा कर दिया, कृष्ण यही तो चाहते थे कि जयद्रथ अर्जुन के सामने आ जाय। इतने में सूर्य के ऊपर जो आवरण था वह स्वयमेव दूर हो गया, सूर्य को ढांपने के लिये जो गैस सात्यकि ने आकाश में फैलायी थी, समय पाकर वह निःस्तेज हो गई। आदित्य देव अपनी पूरी शानोशौकत के साथ एक बार फिर आकाश में आकर शोभायमान हुए। भगदड़ मच गयी......यह क्या! कृष्ण बोले अर्जुन देखता क्या है और सोचता क्या है, यह माया तेरे ही लिये मैं ने रची थी—समय खो न, शिकार सामने खड़ा है, समाप्त कर इसे। अर्जुन समझ गया। उसने गाण्डीव सम्भाला, निशाना बिल्कुल ठीक बैठा, जयद्रथ खतम।

जयद्रथ के मृत्यु का ग्रास बनते ही, दुर्योधन की रही सही आशा निराशा में बदल गई, जो कृष्ण छुपे हुए जयद्रथ को निकाल कर मैदान में ला सकता है, वह सभी कुछ कर सकता है।

कृष्ण ने उसी दिन आचार्य को समाप्त कर देने का निश्चय कर लिया। Tit for tat. इन्होंने हमारे पुत्र का वध करके हमें समाप्त करने का हर प्रयास किया। हम इन के पुत्र का वध करके उसी उपाय से इनका वध करेंगे। परन्तु कृष्ण के सामने बड़ी कठिनायी यह आन पड़ी कि द्रोणपुत्र को मारने के लिए कोई तैयार नहीं था, एक तो गुरु पुत्र, दूसरे ब्राह्मण, यह डबल पाप कौन करे। अन्ततोगत्वा कृष्ण ने एक उपाय सोचा,—अश्वत्थामा एक हाथी था। वह किसी के द्वारा युद्ध में मारा गया था, एकाएक आकाशवाणी पर आवाज उठी। अश्वत्थामा मारा गया।" कार्यक्रम ऐसा बना था, ज्योंहि उधर यह बात आकाश में उड़े त्योंहि द्रोणाचाय को सब ओर से घेरे में ले लिया जाय। कृष्ण जानते थे, पुत्र की मृत्यु का समाचार सुनते ही आचार्य-द्रोण मृतप्राय हो जायेंगे। जब आदमी दूसरे का मांस खाता है तो मुस्कराता है; जब अपने पांव में कांटा चुभता है हाहाकार मचाता है। द्रोण पर घटोत्कच ने बहुत भारी आक्रमण किया,—द्रोण टिक नहीं सके,—समाप्त।

अब आये नाजी नम्बर थी। कर्ण पर दुर्योधन की बहुत बड़ी आशायें थीं । सच बात तो यह है, दुर्योधन ने युद्ध छेड़ा ही एकमात्र चायना के बल पर था। इधर कृष्ण भी बिल्कुल तैयार थे, कर्ण अर्जुन की ओर बढ़ा और कृष्ण भी कर्ण की ओर बढ़े। अर्जुन का यह सौभाग्य था, कर्ण का सारथी शल्य, हृदय से पांडवों के पक्ष में था । कृष्ण भी जानते थे, कर्ण की समाप्ति के साथ ही साथ युद्ध भी समाप्त होगा। और सच बात तो यह है, कर्ण आधा तो पहले ही मर चुका था। कृष्ण ने पहले ही उसे कुण्डल विहीन कर दिया था, दूसरे कर्ण का दुर्भाग्य यह था कि उसे साथी ऐसा मिला जो हृदय से उसके खिलाफ था।—उधर से कर्ण बढ़ा, इधर से कृष्ण ने रथ को हांका, ज्योंहि कर्ण का रथ कृष्ण के रथ के सामने आया वह गतिहीन हो गया, कर्ण ने समझा उसका रथ बिगड़ गया है। वह चिल्लाया—

भो भो पार्थ महेश्वासः मुहूर्त्तं परिपालय।
यावच्चक्रमिदं ग्रस्तमुद्धरामि महीतले॥

ओ लम्बी-लम्बी भुजाओं वाले अर्जुन ठहर जा! मानवता के नाम पर, इन्सानियत के नाम पर Humanity के नाम पर मैं अपील करता हूं, ठहर जा! मेरा रथ कीचड़ में भंस गया है, मैं इसे निकाल लूं।''—कृष्ण महाराज जानते थे, रथ फंसा नहीं बल्कि स्वयं कृष्ण की योग माया से रुक गया। यह पीत रश्मी Yellow Ray का प्रभाव है।—उस समय ऐसा दीख पड़ा, मानो अर्जुन सचमुच रुक जाने वाला है, उस समय कृष्णने अर्जुन को तो कुछ नहीं कहा, —कर्ण से बोले—

तमब्रवीत् वासुदेवो रथस्थो
राधेय दिष्टया स्मरसीह धर्मं।
प्रायेन नीचाःव्यसनेनिमग्नः
निन्दन्ति दैवं न तु कुकृतं स्वकम्॥

कर्ण! आज तुम्हें इन्सानियत याद आई है आज तुम्हारे मुँह से भी धर्म शब्द निकला है, परन्तु कर्ण यह तो बता उस समय तुम्हारी इन्सानियत कहां चली गयी थी जिस समय निःसहाय देवियों का स्यालकोट के बाजारों में तुमने नंगा जलूस निकाला था, कर्ण जिस समय रावल-पिंडी बन्नू और कोहाट में माताओं के सामने, पिता और भाई को वृक्षों के साथ बांध कर उनकी जवान बेटियों के साथ बलात्कार किया था उस समय तुम्हारी इन्सानियत कहां चली गयी थी । नवाखाली में, खुलना और बारीसाल में जो कुछ तुमने किया, उस समय तुम्हारा यह इख्लाक, तुम्हारा यह Humanity का शोर कहां चला गया था। ढाका में जो कुछ तुमने किया, नारायणगंज, राजशाही में जो कुछ तुमने किया— २५ मार्च १९७१ को क्या तुम्हीं ने नहीं कहा था,—अल्ला के फजलोकरम से पाकिस्तान बच गया। आज तुम्हें धर्म भी याद आ गया, इख्लाक भी, इन्सानियत भी, धर्म भी क्योंकि आज मौत प्रत्यक्ष तुम्हारे सिर पर मंडला रही है।

कर्ण! जिस समय तुमने वारणावात के लाक्षाग्रह को आग लगवायी थी, उस समय तुम्हारी इन्सानियत कहां घास चरने चली गयी थी; भीम को लड्डू में जहर खिला कर जब तुम सभी ने मिल कर गंगा में धक्का दे दिया था, उस समय तुम्हारी मानवता को क्या जंगाल खा गया था? भोले भाले धर्म राज को जुए में तुम ने फंसाया। भरी सभा में द्रौपदी का अपमान तुमने किया जुआ सरासर अन्याय का था, बारह वर्ष का बनवास एवं तेरहवें वर्ष का अज्ञातवास

समाप्त कर लेने पर भी तुमने कहा था।

सूच्यग्रं नैव दास्यामि बिना युद्धेन केशव ।

तुमने मुक्के दिखाये । One thousand years war निरन्तर एक हजार वर्ष तक युद्ध लड़ने की धमकी तुमने दी । नादिर, अब्दाली, तैमूर, चंगेज के भय तुमने दिखाये। यह जानते हुए भी कि तुम एक हिन्दु माता जेनाबाई के पुत्र हो, नारायण दास के दोहते हो, दामोदर प्रसाद के भानजे हो फिर भी तुम ने अपना रक्त का सम्बन्ध हलाकु और चंगेज के साथ जोड़ कर हिन्दुस्थान की ईंट से ईंट बजा देने की धमकी दी। कुन्ती के पुत्र बने, कुन्ती के पुत्रों का गला काटने के लिये ? कर्ण ! आज इन्सानियत की दुहाई मचा रहे हो, उस समय तुम्हारी यह इन्सानियत कहां चली गयी थी जिस समय सात महारथियों ने अकेले में अभिमन्यु को घेर कर उसे मार डाला था । सम्बोधित कर रहे हैं कर्ण को परन्तु indirectly सुना रहे हैं अर्जुन को। निशाना ठीक बैठा । सुनते-सुनते अर्जुन का खून खौल उठा, यही है हत्यारा भुट्टो समूचे फिसाद की जड़ ।—

कर्ण के समाप्त होते ही युद्ध भी समाप्त हो गया। अब बचा ही क्या ?

हते भीष्मे हते द्रोणे कर्णस्य वै दिवं गते ।
आशा बलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।।

शल्य के हाथों में युद्ध का सेनापतित्व सौंप दुर्योधन युद्ध से भाग गया और दूर जाकर एक तालाब के भीतर जा छिपा । ज्योंहि कृष्ण को पता चला, भीम को साथ ले वे पहुंचे उस तालाब के किनारे—"अब यहां आ छिपा है सब को मरवा कर, क्या तुम्हीं को जान प्यारी है?—जरा निकल तो सही बाहर ।" आखिर दुर्योधन बाहर निकला,—अभी बात हो ही रही थी, एकाएक धर्मराज पहुंच गये । जीती हुई बाजी को फिर हारने लगे। बोले,—भीम और दुर्योधन का गदा युद्ध हो जाय, जो जीत जाय वह जीता। यह था धर्म राज का दूसरा जुआ। जीती हुई बाजी को हारना । परन्तु कृष्ण He was a practical statesman, जैसा संकेत कृष्ण ने जरासन्ध के समय किया था, वैसा ही संकेत कृष्ण ने उस समय किया—भीम समझदार था। दुर्योधन समाप्त हो गया।

विजयी पांडव हस्तिनापुर में दाखिल हुए। भारतीय संग्राम के पश्चात् ३६ वर्ष तक पाण्डवों ने इन्द्रप्रस्थ+हस्तिनापुर=हिन्दुस्थान+पाकिस्तान=यूनायटेड हिन्दुस्थान पर शासन किया।

कृष्ण की मनोकामना पूर्ण हुई । कृष्ण के उद्योग से भारत को एक महाशक्तिशाली केन्द्रीय सत्ता प्राप्त हुई । यद्यपि कृष्ण के पश्चात् ही देश पर बड़े-बड़े आक्रमण हुए, परन्तु देश की सामूहिक शक्तिने आक्रान्ताओं का खूब शानोशौकत के साथ मुकाबला किया। सम्राट जनमेजय इस देश को इतना सुदृढ़ शासक मिला ; पश्चिमोत्तर सीमा पार से देश पर जोरदार आक्रमण हुआ, जनमेजय ने उस आक्रमण को अटक के उस पार जाकर रोका। तक्षशिला को सम्राट् जनमेजय ने देश की राजधानी बनाया । इसी को जनमेजय का सर्प यज्ञ कहा है महाभारत के सहस्रों वर्ष पश्चात् भी हम महान शक्तिशाली थे। इतिहास के पन्नों पर सब से शक्तिशाली आक्रमण है—सिकन्दर का, परन्तु सिकन्दर महान् भी व्यास के आगे बढ़ने नहीं पाया। वह स्वयमेव पीछे लौट गया और रासते में ही मर गया । सिकन्दर के समय की दो चार घटनायें सुनिये।

भारतीय योगियों की महिमा

सिकन्दर की सेना ने जब व्यास के किनारे हथियार रख दिए और आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया, तब मजबूर हो कर उसे पीछे लौटना पड़ा। पर लौटना भी आसान न था। राह में आजाद और अविजित जातियां पड़ती थीं जिन्हें बगैर जीते आगे बढ़ना कठिन था। इंच-इंच जमीन के लिए रक्त बहाना आवश्यक था, अपना भी, शत्रु का भी। पंजाब में पंचायती राज बिखरे पड़े थे। उन के बीच से निकलना खतरे को चनौती देना था। फिर भी राह तो उन्हीं के बीच से होकर गई थी, रावी के तट पर ही विकट किसान मालवक्षुद्रकों से सिकन्दर का सामना हुआ और कहते हैं कि मालव तीर का ही असर उस बुखार में था जिस से सिकन्दर बाबुल में इतनी कम उम्र में मरा।

इन्हीं पंचायती राज्यों में एक राज्य मूषिकों का था, सिन्ध में। मालवों और क्षुद्रकों की पराजय सुनकर पहले तो मूषिक डर गए, क्योंकि उनकी जनसंख्या और शक्ति तो मालवों से घट कर थी ही, उनकी फौजें भी सिकन्दर की सेना से तादाद में कम थीं। पर उन के मुखिए ब्राह्मणों ने उन्हें देश के दुश्मन के विरुद्ध कमर कसनेको मजबूर किया। सिन्ध में ब्राह्मणों का बोलबाला सदा रहा है। बाद में तो उन्हीं में से दाहिर ने अरबी हमले के समय सिन्ध पर राज भी किया था। अरबी हुकूमत के समय ब्राह्मणों को ही लगान आदि की वसूली का काम सौंपा गया था। इस प्रकार उस प्राचीन काल में, सिकन्दर के हमले के वक्त भी सिन्ध में शान्ति और युद्ध के मामलों में ब्राह्मण सर्वेसर्वा थे।

मूषिकों ने पहले जो घबड़ा कर सिकन्दरके सामने आत्मसमर्पण कर दिया, वह ब्राह्मणों को बड़ा बरा लगा। उन्होंने सिकन्दर के देश में रहते अपनी आजादी का फिर से ऐलान करने का मूषिकों को ललकारा। मूषिकों ने बगावत कर दी। सिकन्दर गुस्से से पागल हो उठा। अस्सी हजार मूषिक मारे गए। इन मरने वालों में सब से अधिक संख्या ब्राह्मणों की थी। इनमें बागियों का सरदार शम्भु भी था। शम्भु शत्रु से लड़ता हुआ मारा गया। पहली लड़ाइयाँ जो सिकन्दर ने भारत में लड़ी थीं अधिक शस्त्र की रही थीं, यहां लड़ाई केवल शस्त्रकी ही नहीं थी, विचारधारा और सिद्धान्त की भी थी। इसमें बड़े-बड़े चिन्तक भी शामिल थे। इसका सबूत हमें यूनानी इतिहासकार प्लूतार्च के सिकन्दर-सम्बन्धी निबन्ध से मिलता है।

प्लूतार्च लिखता है कि इन ब्राह्मणों में कुछ तपस्वी साधु भी थे। इनकी निर्भीकता का उस इतिहासकार ने विशद् वर्णन किया है। उनमें से एक ने सिकन्दर से कहा,—'हम भी तुम्हारी ही तरह मनुष्य हैं, फर्क बस इतना है कि हम शान्तिपूर्वक रहते हैं, तुम बौखल की तरह अपना घर छोड़ दूर-दूर जाकर दूसरों के काममें खलल डालते हो, छिः' सिकन्दर उनकी बेबसी में भी उन्हें इतना निर्भीक पाकर दंग रह गया।

पर उनके साथ उसने उदार बीर का-सा सलूक न किया। उन में से दस विख्यात साधुओं को उसने पकड़ लिया। यह दसों अपनी बुद्धि के लिये प्रसिद्ध थे। सिकन्दर जानता था उसे उनकी हर तरह से जान लेनी पड़ेगी, फिर भी उसने उनके इन्साफ का स्वांग भरा। दसों में से एक को उसने जज बनाकर कहा— देखो, मैं इन

से प्रत्येक से एक-एक सवाल करूंगा। तुम सुनो और बताओ कि इनमें सब से अधिक हाजिर जवाब कौन है। जो सबसे ज्यादा हाजिर जवाब होगा उसकी जान सब से पहले लूंगा, और दूसरों की, जवाब की चुस्ती के मुताबिक सिलसिले से।"

यानी कि मरना सबको था। जज का काम बड़ा कठिन हो गया। फिर भी वह चुपचाप आसन मार बैठ गया। सवाल और जवाब सुनने लगा। निर्भीक साधु उत्तर देने लगे।

सिकन्दर ने पहले से पूछा—'तुम्हारे विचार में जिन्दों की संख्या अधिक है या मरे हुओं की?'

उत्तर—'जिन्दों की, क्योंकि मरे हुए मरकर नहीं रहते।'

प्रश्न (दूसरे से)—'जीव समुद्र में ज्यादा हैं या जमीन पर?'

उत्तर—'जमीन पर, क्योंकि समुद्र जमीन का ही एक हिस्सा है।'

इस हाजिर जवाबी ने सिकन्दर को और चिढ़ा दिया। उसका ख्याल था कि मौत से डरे हुओं की बुद्धि बिगड़ जाती है। पर जब उन सवालों का जवाब इतना सही, इतनी जल्दी, इतनी आसानी से आने लगा जिन्हें वह कठिन-से-कठिन समझता था तब वह कुछ सहम गया। पर था तो वह भी अरस्तू का शिष्य। अरस्तू तब के युनान का सब से महान् दार्शनिक था ही, आज के यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान का भी वही अधिष्ठाता माना जाता है। सिकन्दर के पिता, यूनान विजेता फिलिप ने अपने बेटे का शिक्षक अरस्तू को ही नियुक्त किया था। अपने प्रश्नों में इससे उसे काफी चमत्कार लाना था। फिर वहां उसके साथ आये यूनान के अनेक दार्शनिक बैठे हुऐ थे। कुछ अजब नहीं जो उसने प्रश्न करने से पहले उन्हें उन्हीं से प्राप्त किया हो। जो भी हो, उसके विचार से प्रश्न काफी महत्व के और पेचीदे थे। इसी से जब उनके उत्तर उसे इस आसानी से मिलने लगे तब उसने और भी कठिन प्रश्नों की सूचना दी।

उसने पूछा—'जानवरों में सब से बुद्धिमान कौन है?'

पर इसका जो उत्तर मिला वह विश्वविजेता के प्रति नंगे साधु की उपेक्षा का असाधारण प्रमाण है। व्यंग की प्रखरता में वह उत्तर आज भी लासानी है, वाल्तेयर को लजा सकता है।

उत्तर यह था—'वह, जिसका पता मनुष्य अब तक ना लगा सका' मतलब कि जो उस दयावान् इन्सान कहलाने वाले जीव की नजरों से बचा रह सका, जो पता पा जाने पर दुसरे जीव को या तो कैद कर लेता है या उसे कत्ल कर देता है, वही जीव बुद्धिमान है। उत्तर का अभिप्राय समसामयिक स्थिति से था।

सिकन्दर चौंका पर चुप हो रहा। फिर उसने चौथे साधु से पूछा—'तुमने शम्भु को बगावत करने के लिए क्यों उकसाया?'

वह बोला—'इसलिए कि मैं चाहता था कि अगर वह जिए तो इज्जत के साथ और मरे तो इज्जत के साथ।'

वीरता के साथ उत्तर पा कर सिकन्दर ने प्रशनों की दार्शनिकता छोड़ दी। अब उसे पहेली बुझाने की सूझी। 'पहले कौन बना—दिन या रात?

तत्काल उत्तर मिला—'दिन, रात से एक दिन पहले बना।'

सिकन्दर कुछ समझ ना सका, चकरा

गया। यूनानी दार्शनिक सन्नाटे में आ गया! सिकन्दर ने फिर पूछा—'इसका मतलब ?'

साधु को प्रश्नकर्ता और उसके पंड़ितों के टकरा जाने से मजा आ रहा था। उसने उत्तर दिया,—'असंभव सवालों के जवाब भी असम्भव होंगे।'

सुननेवालों ने उसकी निर्भीकता देख दांतों तले उंगली दबा ली। विजेता ने गुस्सा चुपचाप पी लिया।

फिर उसने छठे से पूछा—'मनुष्य किस तरह दुनिया का प्यारा हो सकता है ?'

साधु बोला—'बहुत ताकतवर पर साथ ही प्रजा का प्यारा होकर, जिससे प्रजा ड़रे नहीं ?'

प्रश्न (सातवें साधू से): 'मनुष्य देवता कैसे बन सकता है ?'

उत्तर—'मनुष्य ऐसे काम करके देवता बन सकता है जो मनुष्य न कर सके।'

प्रश्न (आठवें साधु से): 'जिन्दगी और मौत दोनों में ज्यादा ताकतवर कौन है ?'

उत्तर—'जिन्दगी, क्योंकि वह भयानक से भयानक तकलीफ बरदाश्त कर सकती है।'

अगला प्रश्न जैसे इसी का उत्तरार्द्ध था, सारे प्रश्नों का जैसे सार हो—'कब तक जीना इज्जत से जीना है ?'

नवें साधू ने उत्तरदिया,—'जब तक मनुष्य नहीं सोचता कि अब जीने से अच्छा मर जाना है।'

अब सिकन्दर दसवें की ओर फिरा, जज की ओर। उससे उसने पूछा-'किसका जवाब सबसे अच्छा है ?'

जज के लिए जवाब देना आसान न था, क्योंकि उसी पर दसों जानें निर्भर करती थीं, खुद उसकी भी। जवाब ऐसा देना था जो सही भी हो, पर ऐसा जो सबको बचा ले। उसने युक्ति शायद पहले ही सोच ली थी। शान्ति और गम्भीरता पूर्वक उसने कहा—'जवाब एक-से एक बढ़कर हैं।'

यानी कि अब निर्णय का फैसला करना था, जो स्वयं पेंचीदा पहेली बन गया। इससे इसका पता ही नहीं चल सका कि वस्तुत: कौन जवाब किससे चुस्त है, न उसका परस्पर उत्तरोत्तर क्रम ही बन सका।

सिकन्दर झल्ला उठा। जवाबों से उसे पहले भी कुछ कम झल्लाहट ना हुई थी, इस उत्तर से तो वह आपा ही खो बैठा। उसने कहा—'तुमने इतना गलत न्याय किया। अब पहले तुझे यमलोक पठाऊंगा।' इसपर साधू बोला,—'राजन्! ऐसा करने से तुम खुद झूठे साबित होओगे। तुमने मुझसे पूछा था कि कौन-सा जवाब सबसे अच्छा है। मैंने निर्णय किया कि जवाब एक से एक बढ़कर है। अब मेरे उत्तर को भी लेकर निर्णय तुम्हें करना है। और अगर तुम्हारी बुद्धि काम नहीं करती तो मुझे या इन्हें मारकर झूठे बनोगे।' विजेता के साथी यूनानी दार्शनिकों ने भी, जो साधुओं के उत्तरों और निर्भयता से दंग थे, सिकन्दर को रोका।

दसों साधू आजाद कर दिए गए।

तक्षशिला की पहाड़ियों में एक महान् सन्त का निवास है। सिकन्दर उस से मिलने गया। सन्त की कुटिया के बाहर कुत्ते बँधे थे। जाते ही सिकन्दर बोला,—सन्तों की कुटिया में कुत्तों का क्या काम ? सन्त बोला,- सिकन्दर कभी-कभी तुम्हारे जैसे लालची कुत्ते भी इधर आ जाते हैं, कुत्तों का मुकाबला कुत्ते ही कर सकते हैं।

सिकन्दर ने एक नगर पर आक्रमण किया। नगर के अधिपति ने सिकन्दर के पास सन्देश भेजा, सिकन्दर! जो तुम चाहते हो बिना युद्ध के ही मिल जायेगा।—महाराज ने सिकन्दर को

दुपहर के भोजन के लिये आमन्त्रित किया। एक देशी नरेश का कितना स्वादिष्ट भोजन होगा, शायद सिकन्दर रात को भी निराहार हो रहा हो ताकि दुपहर खूब डट कर भारतीय भोजन करे। सिकन्दर और उसके साथी भूख से व्याकुल हो रहे थे और उधर भारतीय नरेश के शिष्टाचार ही समाप्त होने में नहीं आ रहे थे, बहाने-बहाने से यह देरी जान बूझ कर की गई थी,—आखिर जब थालियों पर से रेशमी रुमाल उठे, सिकन्दर के क्रोध की सीमा न रही। बोला,—'यहक्या मजाक हो रहाहै हमारे साथ'? बात वास्तव में यह थी कि उन थालियों में चमचम रसगुल्ले नहीं थे। हीरे जवाहरात थे, मणि पुखराज थे।

सिकन्दर बोला,—यह क्या है? भारतीय नरेश गरज कर बोला,—ओ सिकन्दर! सच बता क्या तुम्हें रोटियों की भूख यहां खैंच कर लायी है? क्या रोटियां तुम्हारी मां मैसेडोनिया में तुम्हें नहीं खिला सकती थी? सिकन्दर! तुम्हें भूख रोटियों की नहीं, हीरे जवाहरात की है। इसीलिये जिस चीज की भूख है वह चीज आपके आगे धरी है।

सिकन्दर के समय भारत की महानता का एक और दृश्य। दो झगड़ते किसान सिकन्दर के सामने लाये गये। झगड़ा यह था—एक किसान ने दूसरे किसान को जमीन बेची थी। जमीन जोतते समय जमीन के नीचे से स्वर्ण भण्डार निकला। जिस किसान ने जमीन खरीदी थी, वह कह रहा था,—"मैंने जमीन खरीदी है। जमीन से निकला सोना आपके बाप-दादाओं का है।" दूसरा किसान कह रहा था,—जब मैं ने जमीन बेच दी जमीन में रसातल तक जो कुछ था सभी कुछ दे दिया। स्वर्ण-कलश पर मेरा कोई अधिकार नहीं। सिकन्दर आश्चर्य-चकित रह गया भारत की ईमानदारी पर ओ सिकन्दर! एक तू है जो सोने के लिये मारा-मारा फिर रहा है और दूसरी ओर भारत का यह गरीब किसान है कि स्वर्ण-कलश को माटी के बर्तन के समान पांव से ठुकरा रहा था। यह थी महाभारत के पश्चात् भी भारत की महानता।

महाभारत के पश्चात् ही हमारे देश पर शकाओं का, हूणों का, मंगोलों का, सेथियन्स का आक्रमण हुआ, हमने इन सब आक्रमणों को मटियामेट कर दिया। आज इस देश में एक भी सेथियन नहीं, एक भी मंगोल नहीं, एक भी शाका नहीं और एक भी हूण नहीं। महाभारत के पश्चात् भी हमारे देश में वह युग था जिसे गुप्ताओं का स्वर्ण युग कहते हैं (Golden Age of the Guptas)। किसी भी युग की यदि शान आपने देखनी है तो उस युग के साहित्य में देखिये। आप जरा कालीदास के मेघदूत को तो उठाइये। कवि बादल को कहता है,—बादल! मार्ग तो तेरा टेढ़ा अवश्य हो जायेगा, परन्तु एक बात मेरी सुन ले। भारत की राजधानी उज्जयिनी को देखे बिना आगे मत जाना। तुझे ऐसा प्रतीत देगा मानो आकाश धरती पर उतर आया है, मानो स्वर्ग में जिसे जगह नहीं मिल सकी उन्हें बसाने के लिये परमात्मा ने धरती पर एक नया स्वर्ग बना दिया है।

महाभारत के पश्चात् भी भोज का जमाना कितना शानदार था। हर्ष का समय कितना शानदार था।

महाभारत के पश्चात् की ही एक घटना और सुना कर आज के प्रसंग को समाप्त करता हूं।—यह घटना है सिन्धुपति महाराज दाहर की पुत्रियों की।

भारतीय इतिहास का एक पृष्ठ

वह पहला 'जौहर' था। राजपूत नारियों की वीरता और बलिदान का प्रतीक वह जौहर बार-बार इस देश में रचा गया। बार-बार आग की उन लपटों ने आसमान चूमा जिनके ईंधन में इंसान की देह मिली थी, पर जिनमें आन के लिए जलते हुए भी उसने उफ न की। हम जिस जौहर की बात कहने जा रहे हैं वह राजपूती जौहर से पहले का है जिसे ब्राह्मणी ने रचा।

बात पुरानी है, सन् ७१२ ईसवी की। अरब में अस्सी बरस पहले जो चिनगारी चमकी थी उसने अब तक दावाग्नि का रूप धारण कर लिया था। समरकन्द और काशगर से स्पेन के अलहमरा तक, तातारी से मिश्र तक इस्लाम का नया साम्राज्य कायम हो चुका था। उसी सिलसिले में भारत पर भी चढ़ाई हुई।

खिलाफत उमेया खानदान की थी, अल-हज्जाज खल्द का गवर्नर था और भारत खल्द से ही लगा हुआ समझा जाता था। खल्द सिन्धु-सभ्यता के दिनों से ही, हजारों साल से, भारत का पड़ोसी राज्य रहा था—खल्द, एलाम, बिलोचिस्तान, सिन्ध—एक सिलसिला। मुमकिन न था कि अल-हज्जाज के-से साम्राज्यवादी को पास का यह समृद्ध देश न दीखता।

अपने भतीजे मुहम्मद इब्न कासिम को उसने सेना देकर भेजा। सत्रह साल के मुहम्मद ने गजब का हौंसला दिखाया। देवल की लड़ाई उसने घण्टों में जीत ली। और तभी राजा दाहिर की बहिन ने महल की रानियों और दूसरी नारियों को इकट्ठा किया। दुश्मन के हाथ पड़ने का मतलब था दीन, ईमान सब-कुछ खोना। राह बस एक थी, सामने की लपटों में समा जाना।

चिता धीरे-धीरे ऊपर उठती जाती थी। उसकी सुनहरी लपटों से चन्दन की गन्ध उठ-उठ हवा में पसर रही थी। महल की सम्पदा, उसके बहुमूल्य सामान, रेशम-किमखाब सब उसमें भस्म होते जा रहे थे। पश्चिम की दुनिया—एशिया, मिश्र और यूरोप—से जल और थल की राह आई और व्यापार की सारी अनोखी चीजें जली जा रही थी।

राजा की बहन उठी। उसकी सुनहरी काया पर जैसे मदन ने झंडा फहराया था। उस के, उसके रूप पर आंख नहीं टिकती था। अभिराम सिंगार उसने किया था, और उन सबने भी जो उसके पीछे कतार में खड़ी थीं। वह आगे बढ़ी, पूरी कतार शालीनता से हिली, मंत्र पढ़ते ब्राह्मणों के पास से निकली, चिता की परिक्रमा की और चिता पर चढ़ गईं। किसी ने ललाट पर बल न आने दिया, अग्नि की लाल ज्वाला में सभी राख हो गईं। सतीत्व की रक्षा में वह पहला बलिदान था।

पर उस चिता से दो कुमारियां अलग-अलग रहीं। दोनों बहनें थीं, राजा दाहिर की बेटी। उन्होंने साथियों के व्यंग्य सुने, धिक्कार सुने, पर रोष न किया, चुपचाप वे देवल से बाहर निकल गईं।

उन्हें विजेता हमलावरों से बदला लेना था। कुछ अजब नहीं कि अगले मोर्चे भारत के पक्ष में उतर जायें, इससे वे मोर्चा-मोर्चा अरब सेनाओं के साथ चलीं, छिपी-छिपी। पहले बहमनाबाद, फिर मुल्तान।

अरबों ने किश्तियों के पुल से सिन्धु को पार कर लिया। सामने खड़ी तीर बरसाती सेना उन्हें न रोक सकी। अगली लड़ाई फिर जमकर हुई, पर किस्मत उलटी थी। नप्था अग्नि वाणों ने हौदों में आग लगा दी। उनकी चमक से हाथी भाग चले। युद्ध में लड़ता राजा दाहिर खेत रहा। मुलतान पर अरबों का अधि-

कार हो गया। राजकुमारियों की आशा धूल में मिल गई। अब बस एक साध रह गई थी, बदले की।

मुहम्मद कासिम ने इस्लाम के असूलों के मुताबिक नई रियाया से बरताव किया। उसने ब्राह्मणों को बुला लगान की वसूली उनके जिम्मे की और ऐलान कर दिया कि हिन्दुओं के मन्दिर उसी तरह पाक समझे जाएंगे जिस तरह ईसाइओं के गिरजे, यहूदीयों के मन्दिर और मगों की पूजा-वेदियां। अपने अहलकारों को बुलाकर उसने कहा, "रियाया और हाकिम के बीच ईमानदारी बरतो। अगर मिल्कियत बांटनी हो तो बराबर-बराबर बांटो और लगान की दर अदा करने की कुव्वत के मुताबिक तै करो। आपस में मेल रखो, लड़ो नहीं, जिससे मुल्क में अमन कायम रहे।"

ऐलान मुनासिब था। रियाया के रवैये में फर्क ना पड़ा। पर राजकुमारियों का मन उससे शान्त न हुआ। उन्हों ने अपना राज पलटते देखा, देश के नगर एक-के-बाद एक सर होते देखे, वतन पर विदेशी हुकूमत कायम होती देखी, अपनी बुआ और सहेलियों को चिता चढ़ते देखा, पिता को आजादी के लिए तलवार की भेंट चढ़ते देखा। उनके सभी कोमल धागे टूट गए थे, सभी ताने छिन्न-भिन्न हो गए थे।

मुहम्मद सुकुमार था, सुन्दर और वीर। मुल्क को उसने बरबाद भी नहीं किया। पर था तो वतन की आजादी का दुश्मन। कुमारियों को देश के शत्रुओं से बदला लेना था और उन शत्रुओं का प्रतीक था मुहम्मद। कुमारीओं ने अपना कर्तव्य स्थिर कर लिया।

उन्होंने अपने दूत दमिशक भेजे और उनके देश से बाहर जाते ही उन्होंने अपने को पकड़वा दिया बगावत की साजिश करती वे पकड़ ली गई और किले के भीतर कैद कर दी गई।

दूत दूर दमिश्क पहुँचे, खलीफा के दरबार में, मंजिल पर मंजिल मारते। खलीफा से उन्होंने कहा,—"हम राजा दाहिर की कन्याओं की ओर से आए हैं। उन्हें इब्न कासिम ने अपने हरम में डाल लिया है और उनके हजार कहने पर भी दमिश्क के हजूर में भेजने को तैयार नहीं।"

खलीफा को नाचीज मुहम्मद की जुर्रत देख बड़ा गुस्सा आया। उसने अपने दूत सिन्ध भेजे, इस हुकम के साथ कि हाकिम चमड़े में सीकर दमिश्क भेज दिया जाए। दूत सिन्ध पहुँचे। अरब सेनापतियों को इकट्ठा कर उन्होंने खलीफा का हुक्म उन्हें पढ़ सुनाया। खौफ और दर्द की लहर उनके जिस्म में दौड़ गई पर जो हुक्म आया था उसका कोई इलाज ना था, उसे बजा लाना ही फर्ज था।

मुहम्मद भरी जवानी में चमड़े के खोल में घुसा। खोल सी दिया गया। फिर दाहिर की बेटियों के साथ सिला हुआ चमड़े का वह खोल दमिश्क पहुंचा और कुछ दिनों बाद जब वह वहां खोला गया घुटता दम सहसा टूट गया। सिन्धी तरुणियों ने वह हत्या देखी जो उन्हीं की साजिश का नतीजा था। पर उन्ह अफसोस न हुआ। उन्होंने मुल्क को सर होते देखा था, पिता को बलिदान होते, बुआ को जवानी में रूपवती और कच्ची उम्र की कन्याओं के साथ चिता चढ़ते। उनकी तोल में दुश्मन की सारी सजाएं हलकी थीं।

और अब उनकी कुरबानी की बारी थी। उनका सतीत्व बेदाग बचा था। पर अब उसका बचा रहना मुश्किल था। उन्होंने तब कहलाया

कि मुहम्मद पर उनका इलजाम झूठा था, मुहम्मद बेगनाह था, गो उनके बदले का सही हकदार था।

खलीफा गुस्से से जल उठा। इन्साफ की कोई भी सजा इस कसूर के लिए उसने काफी समझी। तब उसने बदले का साहारा लिया। हुक्म दिया कि उन सिन्धी लड़कियों को घोड़ों की पूंछ से बांध दिया जाए, सवार उनपर बैठ कर दमिश्क की सड़कों पर भागें।

दमिश्क की सड़कों पर जब घोड़ों पर बैठ सवार भागे तब उनकी पूंछ से दाहिर की बेटीयां बंधी थीं। खिलाफत को राजधानी बड़ी थी। लोग बेशुमार उन सड़कों पर खड़े थे। उन्हों ने सुकुमार कमनीय तरुणियों के बदले का किस्सा सुना था, अब उनके कुचले-रौंदे शरीर को टूटते-बिखरते देखा।

महाभारत के पश्चात् भी हमारा देश महान् था, हम यदि गिरे केवल अपनी भीतरी निर्बलताओं के कारण से।—दुश्मन हमें कभी जीत नहीं सका।

अब मैं अपनी इस कथा को उपसंहार की ओर ले जाता हूं। राम और कृष्ण भारतीय संस्कृति के दो महान् प्रतीक हैं, उन्हीं के दिखाये मार्ग पर चलने से राष्ट्र का कल्याण होगा। मैंने अपने इन प्रवचनों में रामायण एवं महाभारत का राष्ट्रवादी स्वरूप का आपको दिग्दर्शन कराया। मैं यह नहीं कहता जो स्वरुप मैं ने दिखाया बस वही स्वरुप है--। और स्वरुप भी हैं; आध्यात्मिक स्वरुप भी हैं, भक्ति रस में प्रवाहित हो जाने वाला स्वरुप भी है। वाटिका में सभी प्रकार के रंग-बिरंगे फूल हैं। जैसा आपका स्वभाव है, जैसी आप की प्रकृति है, जैसी आपको रुचि है उसी स्वरुप का आप रसास्वादन कीजिये। इस ब्रह्म यज्ञ की समाप्ति हम एक सुन्दर भजन से करेंगे।

एक सन्त का प्रसाद

मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान् तुम्हारे चरणों में।
यह बिनती है पल-पल क्षण-क्षण रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में।
चाहे वैरी सब संसार बने।
चाहे मौत गले का हार बने।
चाहे जीवन मुझ पर भार बने। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में......
चाहे अग्नि में मुझे जलना हो।
चाहे कांटों पे मुझे चलना हो।
चाहे छोड़ के देश निकलना हो। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में...
जिह्वा पर तेरा नाम रहे।
हर सुबह रहे हर शाम रहे।
दिन रात ये आठों याम रहे। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में.....
चाहे संकट ने मुझे घेरा हो।
चाहे चारों ओर अन्धेरा हो।
पर मन नहीं डगमग मेरा हो। रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में......
मिलता है सच्चा सुख केवल भगवान् तुम्हारे चरणों में।



(८)

अध्यात्म विद्यापीठ

यौवन काल में की हुई भूलें बुढ़ापे में बहुत परेशान करती हैं।

सत्य का सूर्य चाहे थोड़ी देर के लिये असत्य के मेघों से ढक जाए किन्तु वह पूर्णतया अस्त कदापि नहीं होता।

काम, क्रोध, लोभ से मन को पाक करने का नाम ही तप है। यही सच्ची उपासना है, यही सच्ची तपस्या है।

शुद्ध जल और प्रगाढ़ निद्रा सर्वोत्तम टौनक हैं।

निर्बल भाग्य की प्रतीक्षा करता है, परन्तु वीर स्वयं अपने भाग्य का निर्माण करता है।

छोटा सा सुराख बड़े-बड़े जहाज़ों को डुबो देता है।

पाप कर्मों से दौलत कमाने की बजाय गरीब रहना अच्छा है।

यदि तुम किसी की स्तुति नहीं कर सकते तो उसको निन्दा भी मत करो।

देहात परमात्मा ने बनाये थे परन्तु नगर हजरते इन्सान के बनाये हुए हैं।

जो भाग्य के भरोसे बैठा रहता है उसका भाग्य भी बैठ जाता है।

जो तुम्हारे साथ भलाई करता है उसका हाल पत्थर पर लिखो और बुराई करने वाले का ज़िकर रेत पर लिखना हो काफी है।

भौंकने वाला कुत्ता सोने वाले शेर से लाख दर्जा अच्छा है।

सत्य के साथ सौंदर्य को ढाल दो सारा घर तुम्हें प्यार करेगा।

मुसीबतें सब पर आती हैं, बुद्धिमान हँस कर टाल देता है मूर्ख रो कर।

मुर्झाये हुए वृक्ष वसन्त में पुनः हरे भरे हो जाते हैं, परन्तु बीते दिन फिर नहीं आते।

सुख मिल सकता है केवल एक उपाय से कि इन्द्रियां मन के वश में रहें, मन बुद्धि के वश में रहे और बुद्धि आतमा के वश में रहे।

जब तक मैला कपड़ा धोया न जाय वह पहनने के काबिल नहीं होता। जब तक कीचड़ से लूथड़ा सोना साफ न किया जाय वह चमक नहीं देता। इसी प्रकार जब तक आत्मा को काम, क्रोध और लोभ की गन्दगी और मल से साफ न किया जाए आत्मा अपने शुद्ध रूप में नहीं आ सकता।

विचार का दीप बुझ जाने से आचार अन्धा हो जाता है।

आत्मगौरव नष्ट करके जीना मृत्यु से भी बुरा है।

मन की शान्ति ही सब से बड़ा धन, सुख और आनन्द है। द्वेष-ईर्षा सब से बड़ा पाप है। मन और तन का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। सदैव प्रसन्न रहने वाले के पास रोग नहीं फटकता।

भगवान में चित्त को जोड़ने का नाम योग है। भगवान में चित्त को एक कर रखना भक्ति

है। जिस चित्त में जगत के सुख की इच्छा है, वह मलिन है।

आचरण एक दर्पण के सदृश है, जिस में प्रत्येक मनुष्य को अपना प्रतिबिम्ब दिखता है।

अन्याय के आगे माथा टेक देने का परिणाम प्रायः उतना ही भयंकर होता है जितना कि स्वयं अन्याय करने का।

अधर्म की सेना का सेनापति झूठ जहां पहुंच जाता है वहां कुछ समय के लिये अधर्म का राज्य हो जाता है।

आत्मिक पर्वत की यात्रा के बीच में रुकने का नाम मृत्यु है।

उच्च दिमाग संसार के नाश का कारण है यदि उसके साथ पवित्रता सम्मिलित न हो।

एक इन्द्रिय की गिरावट शेष सब इन्द्रियों को ले डबती है।

ज्ञान और कर्म को आत्मा का संगीत एवं व्यायाम कहा गया है।

दौलत होने से मनुष्य अपने आप को भूल जाता है। दौलत न होने से लोग उसे भूल जाते हैं।

तीन वस्तयें कभी किसी को प्रतीक्षा नहीं करतीं—समय, ग्राहक और मृत्यु।

अभिमान और आत्म-प्रशंसा से बचो।

तीन वस्तुयें निकल कर वापस नहीं आतीं, तीर कमान से, बात ज़बान से, आत्मा शरीर से।

भगवान् भरे हुए हाथों को नहीं देखते भगवान् पवित्र हाथों को देखते हैं। भगवान् केवल हृदय की भाषा सुनते हैं। यदि हृदय गूंगा है तो भगवान् भी बहरा होगा।

मन श्वेत वस्त्र के समान है। जिस रंग में उसे डुबोओगे वह वैसा ही बन जायगा।

भगत का हृदय भगवान् का विश्राम-स्थल है।

सज्जन पुरुष गौ के समान हैं जो घास खा कर दूध देती है, दुर्जन सर्प के समान हैं जो दूध पी कर भी डंक मारता है।

पर्वत से गिरा हुआ आदमी उठ सकता है परन्तु नज़र से गिरा हुआ कभी उठ नहीं सकता।

मकान खरीदने से पूर्व अपने पड़ोसी से और यात्रा से पूर्व अपने साथी से कुशलता अवश्य पूछो।

जो व्यक्ति किसी औरत से उसकी सुन्दरता के लिये शादी करता है वह मूर्ख है, जो धन के लिये करता है वह लोभी है, जो उस की शीलता के लिये करता है वही पति है।

जो परमात्मा से नहीं डरता वह सब से डरता है और जो परमात्मा से डरता है वह किसी से नहीं डरता।

दुनियादार की हिरस की आंखों को या तो सन्तोष भर सकता है या कब्र की मिट्टी।

बुद्धिमान् स्वयं अपने दोषों को देखता है। मूर्ख अपने दोष नहीं देखता उस के दोष दुनिया देखती है।

संकट रूपी कांटों में हाथ डाल कर ही वैभव रूपी पुष्पों की प्राप्ति की जा सकती है।

प्रत्येक नई वस्तु भली प्रतीत देती है, परन्तु मित्रता जितनी पुरानी हो उतनी बढ़िया और दृढ़ होती है।

इन्सान का दिल एक चलती चक्की है कि जब तक इसमें कोई वस्तु पड़ी रहे तो वह उसे पीसती रहती है और कुछ न हो तो वह अपने को ही पीस डालती है।

यदि तुम सूर्य की ओर मुंह करके दौड़ोगे

तो छाया तुम्हारे पीछे चलेगी। जिस समय तुम सफलता की ओर पीठ कर लोगे, परिणाम की चिन्ता छोड़ दोगे सफलता तुम्हारे पीछे दौड़ेगी।

अधिक प्रकाश प्राप्त करने के लिये जो प्रकाश तुम्हारे पास है उसी का श्रद्धापूर्वक उपयोग करो। यदि अन्धेरी रात में तुम्हें २० फुट फासला तय करना है और तुम्हारे हाथ के लैम्प से केवल १० फुट रोशनी होती है तो सारे रास्ते के अन्धेरे की चिन्ता मत करो, केवल उतना ही मार्ग तय करो जो प्रकाशित है, और यह फासला पार होते ही अगला १० फुट का मार्ग स्वयं प्रकाशित हो जायगा।

वर्तमान शिक्षा बी. ए., एम. ए. डाक्टर और शास्त्री तो पैदा करती है परन्त इन्सान पैदा नहीं करती।

वर्तमान युग में जिस घर में औरत का शासन हो, शैतान उस घर का मुलाज़म है।

सूर्य जब सारे संसार पर चमकता है तब सारा संसार उस से लाभ उठाता है,—परन्तु यदि कोई सूर्य को अपने घर में ही चमकाने का प्रबन्ध करे तो वह उसे भस्म कर देगा। ईर्षालु की यही गति है।

गुलाब के कांटे भी कपड़े फाड़ने में उसी तरह हैं जैसे बबूल के कांटे...गुलाब के फूल पर रीझ कर पल्ला फाड़ लेना कोई बुद्धिमत्ता नहीं।

सच्चा प्रेम वह है जो कुटिया को महल में, औरत को अप्सरा में और आदमी को देवता में बदल देता है।

पांच वस्तुएं बहुत ही बुरी हैं :—

(१) बुद्धिमानों में दुश्चरित्रता, (२) वैद्यों में ईर्षा, (३) धनियों में कंजूसी, (४) स्त्रियों में निर्लज्जता, (५) बूढ़ों में बदचलनी।

मनुष्य की नम्रता की परीक्षा अपने घर में ही होती है। हम होटल में सड़े बुसे खाने को बड़ी शांति से खाते हैं परन्तु घर में रोटी तनिक सी ठंडी हो जाये तो पतिदेव थाली उठा कर बाहिर फैंक देते हैं।

खोई हुई दौलत फिर हासिल की जा सकती है। भूला हुआ ज्ञान याद करने से फिर याद हो सकता है। खत्म हुई सेहत इलाज से पुनः ठीक हो सकती है। परन्तु बरबाद हुआ समय फिर लाख कोशिश करने पर भी हाथ नहीं आता।

ईश्वर की सृष्टि में सब से दुखी व्यक्ति वह है जिस का साहस बढ़ा-चढ़ा हो परन्तु जिसकी शक्ति उसके लक्ष्य से न्यून हो।

जब वैद्य और डाक्टर बीमार होते हैं तो वे स्वयं अपनी नाड़ी नहीं देख सकते।

जिस वस्तु का प्राप्त करना कठिन है उसका त्याग उतना ही सुलभ है।

आलस्य और कुसंग मानव के दो महान् शत्रु हैं।

अनुशासन-हीनता पतन का कारण है। दुराचार पतन का हेतु है।

फूल तो भगवान् पर चढ़ाने के लिये होते हैं। फूलों की माला अपने गले में डालने को नहीं होती। इन्द्रियाँ अपने लिये नहीं भगवान् के लिये हैं।

यदि तुम अपने पांव का ध्यान रखोगे तो तुम्हारे पांव स्वयं तुम्हारा ध्यान रखेंगे। निःसन्देह मानव शरीर में सर का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है परन्त पांव का महत्त्व भी कुछ कम नहीं। पांव समूचे शरीर का बोझ सहारते हैं इस लिये पूजा पांव की ही होती है सर भी पांव पर जा कर गिरता है।

निर्बलता मिटाई तो जा सकती है छिपाई नहीं जा सकती।

जिस देश के पूंजीपति तथा विद्वान् विषयासक्त हो जाते है उस देश का शासन दूषित हो जाता है।

तलवार का काटा घाव भर जाता है वाणी से भरा घाव कभी भरता नहीं सदैव ताज़ा रहता है।

कुत्ता कमर तक पानी में खड़ा हो कर भी पानी जिहवा से चाट कर पीता है।

जो मनुष्य स्वयं आग जला कर उसे कपड़े में लपेट लेता है और जलने पर मन में संताप अनुभव करता है वह बुद्धिमान् नहीं कहा जा सकता।

अधर्म का सेनापति झूठ है। जहां झूठ पहुंच जाता है वहां कुछ समय के लिये अधर्म का राज्य हो जाता है।

सफलताओं का महल असफलता की ईंटों पर ही तैयार किया जाता है।

जब परिवर्तन धीरे-धीरे आता है तो सुधार कहलाता है, जल्दी आता है तो क्रान्ति कहाता है।

कल शैतान का सेनापति है। कल बेकारी तथा आलस्य का दूसरा नाम है।

बहना और तैरना प्रत्यक्ष तो एक ही दिखाई देते हैं परन्तु वही नहीं तैरो।

दीपक के प्रकाश से काम लो। यह न सोचो बत्ती कहां से ली, तेल कहां से आया। अगर इस पहेली को सुलझाने में पड़ गये तो यह पहेली कभी न सुलझेगी।

जिसका अन्तःकरण कामनाओं से भरा रहता है उस में न तो ईश्वर का भय ही रहता है और न ही ईश्वर से प्रेम।

चन्द्रमा और हिमालय पर्वत भी इतने शीतल नहीं, कदली वृक्ष और चन्दन भी इतने शीतल नहीं जितना तृष्णा रहित चित्त शीतल रहता है।

संसार क्या है, भगवान से मिलने की ट्रेनिंग। जो संसार में ठीक से रह लेता है, ढंग से रह लेता है वह भगवान् से अच्छी तरह मिल सकता है।

अपने सुख के लिये दूसरे की आवश्यकताओं का नाश न करो।

शीशे में पानी और पहाड़ दोनों का प्रतिविम्ब पड़ता है पर न तो पानी उसे भिगोता है न पर्वत उसे तोड़ता है। उसी प्रकार ज्ञानी में दुःख-सुख का प्रतिबिम्ब अवश्य पड़ता है पर उसे दुःखी-सुःखी नहीं बनाता।

सोते को कोई उपदेश नहीं। खुली आंख वाले को मुर्दे भी उपदेशक हो जाते हैं।

नये पैसे की अपनी कोई कीमत नहीं। बाज़ार में नये एक पैसे की कोई चीज़ नहीं आती परन्तु वही एक नया पैसा जब पांच पैसे के साथ मिल जाता है उसे इकन्नी बना देता है।

मनुष्य अपने हाथ से जो धन दूसरों को दे जाता है वही धन वास्तव में उस धनी का है। मरे हुए मनुष्य के धन से तो दूसरे ही लोग मौज उड़ाते हैं। दिया जाने वाला धन घटता नहीं अपितु सदा बढ़ता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कूएँ से पानी उलीचने से जल बढ़ता है।

दौलत, हुकूमत और मुसीबत में इन्सान की अक्ल का इम्तिहान होता है।

दूसरों के सहारे जीवित रहने वाले जल्दी मर जाते हैं।

शान्ति अपने लिये और शक्ति सेवा के लिये होती है।

मौन के वृक्ष पर ही शान्ति के फल लगते हैं।

पुस्तक समय के महासागर में प्रकाश स्तम्भ का कार्य करती हैं।

बहुमत की आवाज़ न्याय की कसौटी कदापि नहीं।

जिस ने अपने को वश में कर लिया है संसार की कोई शक्ति उसकी जीत को हार में नहीं बदल सकती।

जिन्हें कहीं प्रशंसा नहीं मिलती वे ही आत्म-प्रशंसा करके अपनी प्रशंसा की पिपासा को शांत किया करते हैं।

जल काठ को नहीं डुबाता क्योंकि उसने स्वयं उसे सींचा है। तालाब सूखने पर पक्षी उड़ जाते हैं परन्तु मच्छलियां कहां जावें।

मां पुरुष को शक्ति देती है और स्त्री पुरुष से शक्ति लेकर उसी से सन्तान का निर्माण करती है। इसी लिये तो संसार में अधिक मां बनाने वाले शक्ति पाते हैं और अधिक स्त्री बनाने वाले शक्ति खोया करते हैं।।

चील, गिद्ध, पक्षी, मन विषय रूप दाना देख जाल में फंस जाते हैं, दुःख-जाल पर उनकी दृष्टि नहीं जाती।

शुद्ध विचार आग के समान हैं, लकड़ी मनो हो आग छोटी भी हो तो भी सब कुछ है। जैसे छोटे से वट बीज में महान् वृक्ष वैसे ही छोटे से विचार में सम्पूर्ण जीवन।

यह जगत संकल्प से ही उत्पन्न हुआ है, संकल्प ही से स्थिर है, संकल्प में विचित्र सामर्थ्य है। संकल्प से ही इस जगत की उत्पत्ति एवं स्थिति है।

पहले के लोग चाहे बोलना न जानते हों परन्तु उनका हृदय सरल था। वे अपने दोष छिपाना नहीं जानते थे।

सरलता में पवित्रता है और कपट में अपवित्रता।

यदि ईश्वर दो होते तो आज तक आकाश में भी एक पाकिस्तान बन चुका होता।

वस्त्र मैला तो बिना परिश्रम के ही हो जाता है। परिश्रम तो उसे शुद्ध बनाने के लिये ही किया जाता है—ठंडी बरफ भी गरम कपड़े में लपेटी जाता है।

आप मुक्त मुक्त करे संसार।
नानक तिस जन को सदा नमस्कार।।

जब यम का विचार न करके नियमों पर ही ध्यान दिया जाता है तो समाज का नाश हो जाता है।

An open enemy is better than a doubtful friend.

A friend in power is a friend lost.

Prayer keeps the mind in tune with God.

Prayer can reach a realm where reason does not enter.

सुखस्य मूलं धर्म :—
धर्मस्य मूलं अर्थः।
अर्थस्य मूलं राज्यं।
राज्यमूलमिन्द्रिय जयः।
इन्द्रिय जयस्य मूलं विनयः।
विनयस्य मूलं वृद्धोपसेवा।
वृद्धसेवया विज्ञानम्।
विज्ञानेनात्मानं संपादयेत्।
संपादितात्मा जितात्मा भवति।
विजितात्मा सर्वार्थैः संयुज्येत।
अर्थ सम्पदा प्रकृति सम्पदं करोति।

धन की पुष्कलता और ज्ञान का अभाव

चरित्रहीन होने में बड़ा सहायक होता है।

विवाहित जीवन एक तपोभूमि है। सहनशीलता एवं संयम खो कर कोई इस में सुखी नहीं रह सकता।

जिस समाज के व्यक्तियों में ईश्वर-विश्वास का अभाव होता है वह समाज सर्वसम्पन्न होते हुए भी नष्ट हो जाता है।

जो भाषा कठोर हो, दूसरों को भारी दुःख पहुंचाने वाली हो—वह सत्य ही क्यों न हो—नहीं बोलनी चाहिये।

काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर कहना यद्यपि सत्य है तथापि ऐसा नहीं करना चाहिये।

The wife of a Careless-man is almost a widow.

सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च ॥

दूरदर्शिता आंख का गुण है और भविष्यदर्शिता बुद्धि का

भार्या को एकाकी छोड़ने वाला मूर्ख है। अपनी गठड़ी दूर किसी के हाथ में सौंपने वाला मूर्ख है। नातेदारों को ऋण देने वाला महामूर्ख है। जन कंटक बन कर रहने वाला मूर्ख है।

जिस के घर में खाना है उसी के घर के पत्तल में छेद करने वाला, जिस का खाता है उस का न गाने वाला मूर्ख है।

अपराधी प्रजा की बजाय अपराधी राजा अधिक दंडनीय है। बकरी पागल हो जाय उस का इलाज है शेर पागल हो जाय उसका कोई इलाज नहीं।

The body of a sensualist is the coffin of a dead soul.

Faith is the pencil of the soul that pictures heavenly things.

Treachery though at first pays but in the end it betrays itself.

Wise men learn more from fools than fools learn from the wise.

There is a higher law, even than the constitution.

Adversity is the only balance to weigh friends.

Communism is the monstrous child of the present day civilization.

A married man is no more than half man.

Artificial beauty through paints andpowder is no beauty at all. It destroys one's natural beauty.

Fashion is indeed a terrible curse. It is Asuric.

Simplicity is the highest virtue.

यदि पत्थर अलग पड़ा है तो उस का कोई महत्व नहीं, परन्तु यदि वह संयमपूर्वक किसी भवन में बिठा दिया जाता है तो वह अमर हो जाता है।

विचारों में वह शक्ति छिपी है कि जिस से संसार का स्वरूप तक बदला जा सकता है।

ईंट पत्थर फैंकने से इतना आघात नहीं होता जितना विचारों के फैंकने से पहुँचता है।

बुरे विचार अन्धकार के समान हैं अच्छे विचार प्रकाश के समान।

अपने पापों को मत छिपाओ, पुण्यों को प्रकट न करो।

अहित केवल वाणी और शरीर से नहीं होता, मन से भी होता है!

या घट भीतर जल अरु बस्ती याही में झाड़ पहाड़ा।
या घट भीतर बाग बगीचा याही में सींचन हारा॥
या घट भीतर सोना चाँदी याही में लागे बजारा।
या घट भीतर हीरा मोती याही में परखन हारा।
या घट भीतर सात समुन्दर याही में नदिया नारा।

या घट भीतर सूरज चन्दा याही में नौ लख तारा ।
या घट भीतर बिजली चमके याही में होय उजियारा ।
या घट भीतर अनहद गरजे बरसे अमृतधारा ।।
या घट भीतर देवी देवता याही में ठाकुर द्वारा ।
या घट भीतर काशी मथुरा याही में गढ़ गिरनारा ।।
या घट भीतर ब्रह्मा विष्णु शिव सनकादि अपारा ।
या घट भीतर आप लेत हैं राम कृष्ण अवतारा ।।
या घट भीतर कामधेनु है कल्पवृक्ष इक न्यारा ।
या घट भीतर ऋद्धि सिद्धि है भरे अटल भंडारा ।।
या घट भीतर तीन लोक हैं याही में है करतारा ।
कहे कबीर सुनो भाई साधो याही में गुरु हमारा ।
पूर्व की कमाई तू ने पश्चिम में बैठ खाई
आगरे की खेप तू ने कछु न चलाई है ।
दिल्ली के दलालों तेरा सौदा ही बिगाड़ दीनों ।
पटियाले की ओट जगाधरी न पायी है ।।
नाभे के लोग तो पकार बार बार कहें,
तज वैरो वाल अमृतसर की तलाई है ।।
अजनाले के साथी तेरी हिम्मत लाहौर कहे ।
सहारनपुर के रासते हरिद्वार जाई है ।।
नयनां नारायण को देख बंगला अजब बनाया कैसा ।
इस बंगले के दस दरवाजे बीच पवन का खम्बा ।।
आवत जात कोई नहीं देखा है यह बड़ अचम्भा ।।
पांच तत्व की भीत उठाय तीन गुणन को गारा ।
रोम रोम के छाजन छाये निरखे चेतन हारा ।।
पाँच पचीस पतुरिया नाचे मनुवा ताल लगावे ।।
सुरत निरत के मृदङ्ग बाजे राग छत्तीसों गावे ।।
दास कबीरा ताना ताने मन की ढरकी चलावे ।
जो ढरकी का अर्थ लगावे आवागवन छुटि जावे ।।
कबिरा कबिरा क्या करे जा जमुना के तीर ।
इक गोपी के प्रेम में बह गये कोटि कबीर ।।
लघुता से प्रभुता मिले प्रभुता से प्रभु दूर ।
चींटी ले शक्कर चली हाथी के सर धूर ।।
धन यौवन यूं जायगा जैसे उड़त कपूर ।
नारायण गोपाल भज क्यों चाटे जग धूर ।।
नारायण संसार में भूपति भये अनेक ।
मैं मेरा कहते रहे ले न गये तृण एक ।।
सुन्दर पंछी विरछ पर लियो बसेरा आन ।
राति रहे दिन उड़ि गये त्यों कुटुम्ब सब जान ।।
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास ।
तिनका तिनके से मिला तिनका तिनके पास ।।
आत्म अनुभव ज्ञान की जो कोई पूछे बात ।
गूंगे का गुड़ खाय कै कहे कौन मुख स्वाद ।।
जल में कुम्भ कुम्भ में जल है बाहर भीतर पानी ।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना यह बत सुनहु ज्ञानी ।।
सेठ जो को फिक्र थी कि इक-इक के दस-दस कीजिये ।
मौत आ पहुँची कि साहिब जान वापस कीजिये ।।
अपने मन में डूब कर पाजा सुराग जिन्दगी ।
तू अगर मेरा नहीं बनता न बन अपना तो बन ।।

Hate the sin but love the sinner.

An honest man is God's best creation.

Just as health is to the body the same is honesty to the soul.

जब शासक पर सत्ता का मद चढ़ जाता है तो वह उचित और अनुचित का, विवेक छोड़ कर पशु तुल्य व्यवहार करने लगता है।

परिस्थिति का रोना छोड़ कर कर्त्तव्य पथ पर अग्रसर हो। फिर तुम देखोगे कि सफलता हाथ जोड़े तुम्हारे सन्मुख खड़ी है।

जो भूतकाल की घटनाओं से भी शिक्षा नहीं ग्रहन करता उस से बड़ा मूर्ख संसार में और कोई नहीं होता।

नम्रता का कवच पहन लेने पर कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। कपास की रुई तलवार से भी नहीं कटती।

बिन ब्रेक का मोटर और विना सबल

विरोधी दल का प्रजातंत्र सदैव खतरे का कारण बनता है।

मृत्यु क्या है ? मानो आत्मा परमात्मा का मिलन है। मृत्यु मानो शान्ति है। मृत्यु मानो नवजीवन है। मृत्यु मानो आनन्द का दर्शन है। मृत्यु आत्मा परमात्मा की एकता का संगीत है।

यदि हमारे चारों ओर दुःख है तो हम सुःखी कभी नहीं हो सकते। जिसके चारों ओर आग हो वह व्यक्ति क्या कभी ठंडक को महसूस कर सकता है ? कदापि नहीं अतः व्यक्ति के सुख के लिए सुखी समाज का होना आवश्यक है।

यदि यह सत्य है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है तो यह बात उस से भी अधिक सत्य है कि परिस्थितियों का निर्माता भी मनुष्य ही है।

धनवान होते हुए भी जिसकी धनेच्छा दूर नहीं होती उस से अधिक गरीब और दया का पात्र और कौन हो सकता है।

जब तक विश्व में एक भी व्यक्ति दुःखी है, पीड़ित है, त्रस्त है, तब तक उस की ओर से आंख बन्द करके ऐहिक सुखोपभोग में लिप्त प्राणी मानव कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता।

क्षणिक पराजय और परिस्थितियों की विपरीतता देख कर जो विचलित नहीं होता एवं कर्तव्य पथ पर आगे बढ़ता है अन्त में विजय श्री उसी का वरण करती हैं।

संसार में सन्त दुर्लभ तो हैं पर अलभ्य नहीं। चन्दन महँगा अवश्य मिलता है पर मिलता तो है, हां, उसकी खोज करनी पड़ती है और साथ ही कीमत चुकानी पड़ती है।

दुनिया में कोरे शब्द का कोई मूल्य नहीं। मूल्य है इस बात का कि उन्हें कहता कौन है ? कहने वाले का त्याग और तपस्या ही वास्तव में शब्दों को शक्ति प्रदान करती है।

हंस के दुनिया में मरा कोई रो के मरा।।
मौत बस अच्छी उस की है जो कुछ हो के मरा।।

स्वार्थ, भय, एवं मान सम्मान की इच्छा से की गई मातृ सेवा-सेवा नहीं द्रोह है।

बुरे आचरण वाले लम्बे जीवन से शुभ आचार का थोड़ा सा जीवन भी हजार गुना अच्छा है।

अपमानों को सहते हुए जीने की अपेक्षा तो लाख गुना अच्छा है कि सम्मान पूर्वक मौत का आलिंगन किया जाय।

युद्ध पिपासु केवल तलवार की ही भाषा समझता है उसे नीति नियम का उपदेश देना अपनी मूर्खता प्रकट करना है।

अन्याय और अत्याचार को सतत सहते रहना कायरता का ही नहीं अधमता का भी द्योतक है।

सांसारिक भोग विलास की भूमि में बोये हुए बीज से आध्यात्मिक विकास का पौधा नहीं पनप सकता।

युग बदला बदली युग गाथा
बदल गई हर रीत।।
तुलने लगी आज पैसे से
प्यारे पावन परीत।।

तस्वीर उमीदों की आईना मलालों का।
इन्सां जिसे कहते हैं महशर है ख्यालों का।।

One who depends on others is completely lost,

मुहब्बत जज्ब-ए-ईसार से परवान चढ़ती है।
खलूस-ए दिल न हो तो दोस्ती से कुछ नहीं होता।
वहां तेरा करम तेरा भरोसा काम आता है।
जहाँ मजबूर होकर आदमी से कुछ नहीं होता।।

When money begins to speak truth automatically becomes silent.

राम कथा

आज से आठ लाख वर्ष पूर्व इस देश के दो सौभाग्यशाली युग-पुरुष राम और कृष्ण

रघुवीर एवं लघुवीर

राष्ट्र-शत्रु रावण के आतंक को सदा सर्वदा के लिए समाप्त करने हेतु वनों में गये

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज ने

प्रभु की उसी यशोगाथा का गान करके अपनी लेखनी को चरितार्थ किया।
मैंने भी अपने इस ग्रन्थ में तुलसीदास के उन्हीं चरण-चिन्हों पर
चलते हुए प्रभु की यशोगाथा के ऐतिहासिक एवं राष्ट्रीय
स्वरूप का देश की जनता को दिग्दर्शन कराया है।

COMING SHORTLY

A Secret Study Of Hinduism

BY

Sant Parashar

Sada Nanda Sewa-Ashrama Nijatma nagar, JULLUNDUR CITY.